理學可能可能可能可能可以可以

सम्पूर्ण मूत्रवह संस्थान एवं सम्बन्धित अङ्गों-उपाङ्गों के रोगों के लक्षण, निदान, सापेक्ष-निदान एवं व्हिक्तिसा कृत विस्तृत साङ्गोवाङ विवेचन «

216

तेखक एवं संकलनकर्ता

क्षायु. बाच. करि. शिरिधारीलाल मिश्र

ए एम॰बी॰एम॰, एम॰ए॰एम॰ एस॰, एम॰एन्यी॰ए . साहित्य रत्न, सोहित्यालंकार अधीक्षक चिकित्सक—श्री केदार्मल स्मान्द्र ध्यार्थ आंयुर्वेद चिकित्सालय. तेजपुर (असम)—७५४००१

一: प्रकाशक :--

निर्मल आयुर्वेद लंखान, अलीगढ़।

अपने कृपालु पाठकों की सेवा में यह "मूल रोग चिक्तिसा" प्रस्तुत करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। आजकल गलत खान-पान एवं आचार व्यवहार के कारण बहुत से व्यक्ति मूत्रवह संस्थान के रोगों से प्रसित होते हैं। बहुत से व्यक्ति तो धर्म के कारण प्रारम्भ में ही चिकित्सक के पास न जाकर जब रोग जपनी जग्रावस्था में पहुँच जाता है तब चिकित्सक के पास आते हैं और ऐसी स्थिति देखकर चिकित्सक भी विकर्तव्य विमूद हो जाता है और रोगी को किसी अच्छे चिकित्सालय में जाकर चिकित्सा कराने का परामर्ग दे देता है अर्थात् स्वत: ही आयुर्वेद से चिकित्सा न कर उसे ऐलोपैथी की शरण में भेज देता है और इस कारण से आयुर्वेद को उपहास का पात्र वनाता है। यह स्थिति मैंने प्रत्यक्षतः कई चिकित्सकों के पास देखी और इस दिशा मे प्रयास करने की प्रेरणा हुई। सन् १६८९ में 'धन्दन्तरि' का एक लघु विशेणंक "मुख एवं कण्ठ रोग चिकित्साङ्क" बाचार्य श्री गिरिधारी लाल जी मिश्र के सम्पादकत्व मे प्रकाशित विया था और दैश समाज ने उसे बहुत सराहा था। उसी से प्रभावित होकर इस प्रम्तुत "मूत्र रोग चिकित्सा" का भार आपको सींपने का निर्णय किया एया हमें प्रसन्नता है कि श्री भिश्र जी ने अपने इस उत्तरदायित्व का अत्यन्त कुणलता एवं तत्परता से निर्वाह किया है। इसे प्रकाशित करने का पूर्ण तः निर्णय जीनाई १६५२ में किया गया था और उसी समय अपने लेखक मण्डल से सम्पर्क स्थापित किया गया था तथा वार्पने अपना सभी कार्य पूर्ण करके नवस्वर मास मे हमें भेज दिया। इतनी शीव्रता में नम्पूर्ण मैटर तैयार करना एक दुरूह कार्य है जिसमें श्री मिश्र जी पूर्णत: सफल हुये हैं छोर एसदर्थ छाप वधाई के पान हैं। मेरी हब्टि में यह "मूच रोग चिकित्सा" वत्यन्त उत्कृष्ट सामिग्री से एवं अधिकादिक चिल्लों से परिपूर्ण है लेकिन हम अपने-प्रयासों में कहां तक सफल हुये हैं इसका अन्तिम निर्णय तो पाठकों पर ही निर्भार करता है। आशा है कि हमारे वे पाठक जो मूल संस्थान से सम्बन्धित रोग के रोगियों को एनोपैधिक अस्पतांलों मे भेज देते हैं अब उनकी प्रायुर्वेंद द्वारा ही चिकित्सा करने को अग्रसर होंगे।

"मूत्र रोग चिकित्सा" के सम्बन्ध में कुछ हमारे लेखक बन्धुओं का विचार था कि प्रमेह, मधुमेह, पौरप प्रनिय शोध आदि रोगों की गणना मूत्र रोगों में नहीं की जानी चाहिये, यह भिन्न रोग हैं। लेकिन जब रोगी चिकिन्सक के पास आता है तो वह आकर इन रोगों से प्रस्त होने पर भी "स्वयं को मूत्र-विकार से प्रस्त" बतलाता है तथा इनके लक्षण भी मूत्र विकारों सहश होते हैं अतः इन रोगों का समावेश भी इसमे करना उचित सगा।

इस "मूत्र रोग चिकित्सा" में हमने ऐसे शल्य कमें बादि का दिवेचन नहीं किया है जिन्हें कि एक विशेषज्ञ ही-कर सकता है। हमारा प्रमुख बक्ष्य हो साधारण चिकित्सक ही है तथा उसके समक्ष वही चिकित्सा प्रस्तुत करना हमारा ध्येय है जो उसकी पहुंच एवं समझ से परे न हो। विज्ञान अनन्त है। विज्ञ एवं ज्ञानिषपा-सुओं को स्नातकोत्तरीय चिकित्सा पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिए।

्रहस "मून रोग निकित्सा" की सम्पूर्ण सामिग्री श्री हाः गिरिष्ठारी नान जी मिश्र ने नवस्वर १६६२ में ही भेज दो भी सेकिन उसमें नित्रों की विषयानुसार व्यवस्था करना भी एक दुहह कार्य था। आपसे सम्पूर्ण सामिग्री प्राप्त होने पर मैंने इसकी पूटा तथा अनेकों पुस्तकों से चित्र एक वित कर उन्हें वनवाया। इसमें अनेकों चित्रों का भी दिया जाना अत्यावश्यक था लेकिन इसे छापने वाले प्रेस की राय थी कि एक्सरे चित्र आट

EST CHEFFERENCE STILL

पेपर पर तो उत्तम आर्येगे-इस साधारण कागज पर तो स्पष्ट न छप कर काले-काले धन्वे मात्र पाठकों की समझ में कुछ का कुछ आयेगा। बार्ट पेपर का मूल्य इस समय १८-२० गुना है और उसकी छपाई , दर भी अधिक है। इतना अधिक न्यय करना अपनी सामर्थ्य से बाहर होने के कारण उन्हें छापने का विचार ही ह. त्याग देना पड़ा। यद्यपि मात्र ५ एक्सरे चित्रों को मुख पृष्ठ पर छापा है न्योंकि वह अपेक्षाकृत उत्तम कागज है।

इस "मूत्र रोग चिकित्सा" के प्रकाशन में जिनसे भी सहयोग मिला है उनका अत्यन्त आभारी हूं श्री कवि॰ गिरिधारी लाल जी मिश्र का अत्यन्त आभारी हूं जिन्होंने अल्पकाल में ही एक विशाल कार्य की स किया है। इसमें अधिकांगतः लेखन भी आपने ही किया है जोकि आपकी अद्गुत लेखन-कर्मठता एवं विद्वता क धोतक है। आपका जीवन परिचय अन्यत प्रकाशित है उससे भी आपकी विद्वता का परिचय प्राप्त होगा। इ कार्य में की उनाई रही तो असम आन्दोलन के कारण दहां की संचार व्यवस्था का उप्प होजाना। वह तो समयान धन्वन्तरि की कृपा रही कि यह मैंटर हमे नवम्बर पर में प्राप्त हो गया अन्यथा उसके पश्चात् तो असम आन्ते लन के कारण यह स्थित रही कि श्री मिश्र जी को हमारा पत्र १४-२० दिनों में मिलता और उसका उत्तर मिश्र जी कलकत्ता आते जाते किसी, आदमी द्वारा कलकत्ता के डाकघर से भेजते क्योंकि असम के डाकघर वन्द प्र थे। इसके मुद्रग काल में जो भी समस्यायें आईं उनके विषय में समय पर ही श्री सिश्व जी से सम्पर्क नहीं हो सके और मुझ स्ववियेक से ही उनका निवारण करना पड़ा। एक बार ऐसा अतीत हुआ कि श्री मिश्र जी हारा ने गया मैंटर कम रहेगा तो उनसे और लेख आदि भेजने की प्रार्थना की गई लेकिन जब कोई उत्तर १५-२० दिनों , नहीं मिला तो संचार व्यवस्था के ठप्प होने के कारण हमारे बीम सम्पर्क नहीं हो रहा ऐसी भान हुआ। उस स कुछ लेखों का मैंने स्वयं लेखन कर पूर्ति की । आशा है कि पाठकों को यह लेख सुरुचिपूर्ण प्रतीत होंगे तथा 🕝 का ज्ञानवर्धन होगा । इस "मूत्र रोग चिकित्सा" में अन्य जिन विद्वान लेखकों से सहयोग मिला है उन सभी → हृदयं से बाभारी हूं। अपने विद्वान लेखकों के बल-वूंते पर ही तो हम इतना उत्कृष्ट साहित्य आपको दे पाते है जिसका अन्य कोई विकल्प नहीं।

इस "मूल रोग चिकित्सा" में १४० से अधिक चित्र दिये गये हैं जिनमें से लगभग १०-१२ चित्रों े विषय के संदर्भ में आवश्यकता होने पर पुनः उपयोग किया गया है। लेखकों के फोटों चित्र तथा लेखों के ग्रीर्वका के चित्र इस संख्या में सम्मिलित नही है। सन्भवत. इतने अधिक चित्र हमारे द्वारा पहली बार दिये गये हैं और इनका श्रेय जाता है सफल चित्रकार श्री मदनमोहन वार्णिय को। एतदर्य हम आपके अत्यन्त आभारी हैं।

इसके अतिरिक्त अपने कम्पोजीटर सर्वश्री पत्रालाल, पं॰ अनोखेलाल, अपने कमंचारी सेवंश्री राकेश कुमार शर्मा, राजेशकुमार शर्मा, किशनलाल शर्मा का आभारी हूं जिनका कि सम्पूर्ण सहयोग मिला है। आदर्श प्रस, अलीगढ़ का आभारी हूं जहां कि इसका मुद्रण सौफ-सुथरा एवं शीद्यता के साथ हुआ है।

भवदीय

२०-१-५३ गुलजार नगर, रामघाट रोह, अलोगढ़—२०२००१.

निर्मालं आयुर्वेद संर्थान डी--७८ औद्योगिक नग्र, अलीगढ़

संक्षिप्त परिचय



सीकर (राजस्थान) के नेछ्वा नामक स्थान पर जन्मे सुदूर पूर्वाञ्चल में आयुर्वेद चिकित्सा द्वारा यश अर्जन पूर्ने वाले देश गिरिधारी लाल मिश्र अपने पिता स्व. पं० राधाकृष्ण मिश्र की सुयोग्य संतित के रूप में यशोन स्तार में संलीन हैं। आप असम प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन स्नातक सङ्घ तथा अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के असम प्रान्तीय इठन मन्त्री हैं। आप जहां सुयोग्य वैद्य हैं वहीं वैद्यकीय विपयो पर उत्तमोत्तम लोख लिखने में सिद्धहस्त हैं। निर्जल क्ष्मूमि में जन्मा यह वृक्ष असम की औदक और सानूप जलवाय में मां ब्रह्मपुत्र का पावन नीर पाकर हरित-भरित स्लिवत और पुष्पित होकर रसूलि फल दे रहा है। असम जैसे मुद्द पूर्वाञ्चल में आयुर्वेद प्रदीप जलाकर माज के स्वास्थ्य संरक्षण में कविराज मिश्र एक सर्व हितकारी व्यक्तित्व वाले, प्रखर पाण्डित्य के धनी हैं। आपकी लिश अत्यन्त सरल तथा मौलिक है। आयुर्वेद को आप से बड़ी-२ लाशायें हैं।

ाम — किवि॰ डा॰ गिरिधारीलाल मिश्र, पुत्र स्व॰ पं. राधाकृष्ण मिश्र
ान्म स्थान — नेछवा (सीकर), जन्म तिथि — ६।६।१६४६
यायी पता — तिवाडी भवन (गंगा वन्स जी तिवाडी का मकान), विहारी मार्ग-सीकर (राज॰)
. तिक पुत्र - अपने नाना जी स्व॰ श्रो गंगावन्म जी तिवाडी (गुरु जी) के दत्तक पुत्र एवं उत्तराधिकारी
। सिणिक योग्यताएं — A. M. B. S., M. A. M. S., M. Sc. (A) बायुर्वेद वाचस्पति आयुर्वेदरत्न साहित्यरत्न,
साहित्यालङ्कार, ज्योतिष विशारद, योगविशारद

चिकित्सानुभव—आयुर्वेद के प्रति जन्मजात अिरुचि, वंशगत प्रभाव, विगत १६ वर्षों से चिकित्सा कार्य में संलग्न, जित्त एवं असाध्य रोगियों की चिकित्सा में विशेष अभिरुचि एवं आशातीत सफलता, आयुर्वेदीय सूचीवेश (Injection) तथा सामान्य शल्यकमं में सिद्ध हस्त ।

बशेवज्ञ स्त्री पुरुषों के समस्त प्रकार के गुप्तरोग, आमाशियक वृण (Peptic Ulcer) अइमरी संग्रहणी नासार्श प्रवास; चर्म रोग, श्वेत प्रवर, रक्तप्रदर, वन्ध्यत्व, पुंसवन संस्कार, अस्थिसन्धान, हृदयरोग, रक्तचाप आदि कई रोगों के संयुक्त चिकित्सक एवं अन्य समस्त चिकित्मा पढ़ितयों की आगुकारी औषधियों एवं

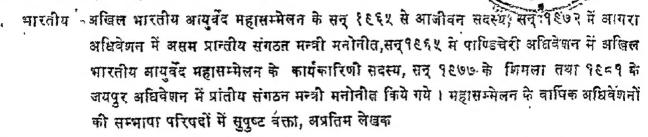
स्य रोग चिकित्सा

खनानुभव - धन्वन्तरि, सुद्यानिधि, सायुर्वेद विकास, महासम्मेलन पत्रिका बादि में विगत ११ वर्षों से सारगितत गवेषणात्मक लेख प्रकाशित होते रहते हैं।

.शेप सम्यादक - धन्वन्तरि मुख एवं कळ रोग चिकित्साङ्क १६०१ मुझानिधि श्वास रोग चिकित्सांक १६०० सुझानिधि काम समस्या अङ्क (प्रथम भाग) १६०९

रिनः पद

अन्तर्राष्ट्रीय—अन्तर्राष्ट्रीय आयुर्वेद सम्भाषा परिषद पटियाला में वक्का सदस्य—अन्तर्राष्ट्रीय महा सम्मे न न एशियाई परम्परागत औषधियां



तिर भारत-अध्यक्ष-असम नागानेण्ड, मेघालय मिजोरम मणिपुर त्रिपुरा वरुणाचल-प्रान्तों के अखिल भारतीय आयुर्वेद स्नातक संघ के अध्यक्ष

- पान्तीय मन्त्री-असम राज्य आयुर्वेद महासभा गौहाटी (जो अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन-दिल्ली की अगभूत माखा है)
- ान चिकित्सक केदारमल मेमोरियल आयुर्वेदिक हास्पीटल, तेजपुर (असम) यह पूर्वाञ्चल भारत का सुविधाल चिकित्सा केन्द्र है जो अन्तरङ्ग बहिरङ्ग, रसायनधाला, पैथोलोजी लेबोरेटरी, बनौषधि उद्यान, पुस्तकालय, योग तथा प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र आदि सभी विभागों से सुसज्जित जहां प्रतिदिन ५०० से अधिक रोगी चिकित्सार्थ आते है।
- ्रिय-युवक परिषद तेजपुर के भूतपूर्व सहयक्ष, चिन्मय ियशन के सह सचिव तथा जिला वैद्य सम्मेलन के सरक्षक, अन्य विविध संस्थाओं के अष्टपक्ष एवं सचिव पद से अनेक बार सम्मानित । हंसमुख मिलनसार सेवामावी, समाज सेवी, सफल चिकित्सक ।
- विकित्सक—विगत १५ वर्षों से "कामये दुःख तप्तानाम् प्राणिनामाति नाणनम्" के पुण्य लक्ष्य को लेकर विविध चिकित्सा पद तियों के प्रति अपने सुलक्षे हुए मस्तिष्क से 'विकारनामाऽकुशलो न जिह्नी- यात् कदाचन" द्वारा अल्पज्ञता पर लिजत न होते हुए "संचैव मिपजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो य. प्रयोग्चियेत्" की भावना से ओत प्रोत्त "तस्मात् बहुश्रुतः शास्त्रं विजानीयाच्चिकित्सकः" के निर्देशन में आधुनिक पैथोलाजी काह्यितेलाजी, रेहियोलाजी तथा ज्योतिष, योग, स्वर विज्ञान की विविध चिकित्सोपयोगी विधियों का चिकित्सा में प्रयोग करते हुए "तदेव युक्तं भैपज्यं यदारोग्याय कल्पते" के अनुसार अन्य चिकित्सा पद्धतियों की ज्यादेय सामग्री को आयुर्वेद में आत्मसात् करते हुए एक "पूर्ण चिकित्सक (Complible physician) के रूप में रोगाकुल जनता जनादेन की सेवा में—'या देवी सर्व भूतेष बुद्ध रूपेण संस्थिता" स्वरूप जगदम्बापित बुद्धि से संलग्न ' एवं समर्पित हैं।

प्रतावना

विश्व स्वास्थ्य नियामक आयुर्वेद का पहला अध्याय ही दीर्घायुष्य प्राप्त करने के विचार से 'अयातो दीर्घ जीवतीयमध्यायं ज्याख्यास्यामः' (चरक) तथा आयुर्वेद विकास की योजनाओं 'आयुर्वेदोत्पत्ति ज्याख्यास्यामः' (सुश्रुत) से प्रारम्म होता है तथा उपरोक्त दोनों उद्देश्यों की पूर्ति हेतु ऋषियों (Research scholars) ने जो ऋख्यज्ञीन (Research) अनन्तकाल पूर्वे किया वह आज भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना सहस्रों वर्ष पूर्व था। उन्होंने 'रोगास्तस्यापहर्त्तारः श्रेयसो जीवितस्य च'—रोग तो मानव जीवन के श्रेय और स्वास्थ्य संहारक एवं अनन्य शानु है की उद्घोषणा कर 'आयुर्वेद पठिष्यामि नैष्ज्याम शरीरिणाम्' शरीर को नीरोग रखने के लिये आयुर्वेद का प्रणयन किया तथा इसी उद्देश्य की पूर्ति में हो युग-युग से चिकित्सा वैज्ञानिक रोग पर विजय प्राप्त करने के लिये प्रयत्नणील है। इसीके फलस्वरूप आधुनिक चिकित्सा वैज्ञानिक भी रोग निवारणार्थ नित नये आविष्कार करने में साधनारत हैं।

प्राचीन आयुर्वेद सम्मेलंन और W. H. O.-

जायुर्वेद मनीपों का सर्वष्रथम विश्व सम्मेलन विश्व के मानद मात्र को रोगरहित सुखमय दीर्घंजीवन प्रदान करने हेतु नगाधिराज हिमालय पर हुआ था जिसमें प्रमुख १० महिंपयों ने विश्व के कोने-कोने से भाग लिया था। बाचार्य चरक ने उनके नाम लिसे हैं -अंगिरा, जमदिन, विशिष्ठ, कश्यप, भृगु, आत्रेय, गौतम, सांख्य, युल-स्त्य, नारद, असित, अगस्त्य, वामदेव, मारकण्डेय, आश्वलायन, पारिक्षि, भिक्षु आत्रेय, भारद्वाज, किपञ्जल, विश्वामित्र, अश्मरक्ष्य, भागंव, च्यवन, अभिजित, गाग्यं, णाण्डिल्य, काँडिल्य, वाक्षि, देवल, गालव, सांस्कृत्य, विजवाित, कोशिक, वादरायण, विष्ठा, शक्लोमा, कष्य, कात्यायन के कांवायन, के कक्ष्मेम, धौम्य, मरीचिकाश्यप, शर्कराक्ष, हिरण्याक्ष, लीकाक्ष, पैंगि, शौनक, शाकृतेय, मैहोय, मैनतायिन, वैखानस, वालखिल्य तथा अन्य महिंपगण। आज भी इन ऋषियों की परम्परा में पले लोग विद्यमान हैं। आज भी चीन में हिरण्याक्ष, यूरोप में शंकराक्ष, समीका में वालक्षिल; उत्तरी श्रृव में लोकाक्ष; कैस्पियन सागर के तट प्रदेश में कश्यप; इस, ईरान तथा अफगानिश्तान में कांकायन गीत्र वाले व्यक्ति मिलते हैं। अंगिरा, भारद्वाज, कश्यप, मृगु आदि गोत्रधारी इसके लेखक उन्हीं नामधन्य महिंपयों की सन्तान हैं जो अपने जीवन के सारभूत अनुभवों से प्रस्तुत 'मूत्ररोग चिकित्सा' को अलंकृत कर रहे हैं तथा स्वयं गये गोत्रीत्पन्न 'धन्वन्तिरं' की वागढोर अपने हिंद हायों में सभाले हुये हैं।

भारद्वाज की इन्द्रलोक यात्रा—उक्त बायुर्वेद विश्व सम्मेलन में इन्द्र द्वारा बायुर्वेद की उच्च शिक्षा प्राप्त हेतु भेजा और भारद्वाज द्वारा इन्द्र से बायुर्वेद की उच्च शिक्षा प्राप्त कर इस लोक में बायुर्वेद का आगमन किया। बाधुनिक वैज्ञानिकों का भी चिकित्सा विज्ञान की प्रगति व चिकित्सा विज्ञान की उच्च शिक्षा प्राप्ति हेतु विदेश जागा इसी भारद्वाजीय परम्परा के बन्तर्गत है। बाज बायुर्वेदज्ञों के लिये देवलोक तक की दुष्कर कठिन यात्रा के समान ही कठिन कार्य है, बायुर्वेद की उन्नित एवं बायुर्वेद को समृद्ध करने के लिये बाधुनिक चिकित्सा विज्ञान के उपादेय साधनों का वायुर्वेदीयक्ररण कर बायुर्वेद में बात्मसात् कर लेना।

अतमा-अता दिक्लेरेशन - प्राचीन ऋषि परम्परा की सम्भाषा-परिपदों के अनुरूप ही रूस के 'अत्मा अता' नामक स्थान पर सन् १६७० के सितम्बर के दूसरे सप्ताह में विश्व स्थास्थ्य संगठन (W. H. O.) तथा UNICEF (The United Nations International Children's Emergency Fund (UNICEF) के संयुक्त तत्थावधान में अन्तर्राष्ट्रीय प्राथमिक स्वास्थ्य रक्षा सम्मेलन हुआ था जिसमें डा॰ एच मलहर 'निदेशक'

etal elelebeen

W. H. O. तथा मिस्टर हेनरी आर लावेयुसी 'निदेशक' UNICEF ने सिम्मिलित रूप से आह्वान किया है कि हम लोगों को यह संकल्प लेना चाहिये कि सन् २००० की अवधि तक विश्व मानव की सीमान्यतः स्वस्य बनाया जाय। जिस सम्मेलन में यह आह्वान किया गया था उसमें विश्व के विभिन्न देशों के स्वास्थ्य विभागों के उच्चस्तरीय ७०० चिकित्सा विशेषज्ञों ने भाग लिया था तथा संकत्प को कार्यस्प में परिणित करने के निमित्त गठित समिति के अध्यक्ष रूस के स्वास्थ्य मन्त्री डा० वोरिस पेट्रोवस्की चुने गये तथा अन्य पांच उपाध्यक्षों में भारत के स्वास्थ्य मन्त्री भी पदेन सम्भिलित हैं।

परम्परागत चिकित्सा पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलत — आस्ट्रे लिया में केनवरा विक्वविद्यालय के, एणियंन स्टडीज विभाग द्वारा आहूत प्रथम 'इन्टरनेशनल कान्फेंस खोन ट्रेडीणनल मेंडीसिन' २ से ६ सितम्बर १९७६ में हुआ है जो संकेत है कि आधुनिक तीव्र जीवाणु विनाशक औषधियों के दुष्प्रभाव से बचने के लिये विश्व के चिकित्सा-विभापत्र नैसर्गिक औषधियों से स्वास्थ्य लाभ में योगदान चाहते हैं। इस सम्मेलन में २० राष्ट्रों के विद्वामों ने भाग लिया था जिसमें भारत के स्व॰ पं॰ शिव शर्मा, डा॰ उडुपा, डा॰ देश पांडे, डा॰ एल॰ बी॰ गुरु प्रमुख थे। आधुर्वेद को परम्परागत चिकित्सा पद्धित के रूप में स्थान देने से आधुर्वेदतों को बड़ा रोष हुआ तथा भारत सरकार द्वारा भी आयुर्वेद के लिये ट्रेडीशनल (परम्परागत) शब्द का प्रयोग करने से रोप होना स्वाभाविक था क्योंकि जो आयुर्वेद विश्व चिकित्सा पद्धितयों का जनक एवं अनादिकाल से युगानुरूप प्रगतिशीलता से अग्रसर है, जिसके सिद्धांत इतने सार्वभीम हैं कि विश्व के चिकित्सा विज्ञान को अपने में आत्मसात् करने में समयं हैं उसके लिये ट्रेडीशनल शब्द निश्चय ही हीनता ब लघुता का चोतक था और यह प्रसन्तता का विषय है कि वैद्य समाज के विरोध पर सरकार को यह शब्द वापस ले लेना पढ़ा। पर वैद्य समाज को इतिश्री इतने में ही नहीं है चिकित हमारा कर्तिय है कि हम आयुर्वेद को समुन्नत कर विश्व मानव को स्वास्थ्य हेतु दिशा निर्वेशन करें और एतदर्थ हमें अपने उपे- क्षित अङ्गों को पुष्ट करना होगा तथा सम्पूर्ण चिकित्सा पद्धितयों की जपदेय उपलब्धियों को आयुर्वेद में आत्म-सात् करना होगा तथा सम्पूर्ण चिकित्सा पद्धितयों की जपदेय उपलब्धियों को आयुर्वेद में आत्म-सात् करना होगा।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में आयुर्वेद ग्रंथ चर्ची-

न्नह्मा ने चारों वेदों की रचना कर पांचवां वेद आयुर्वेद का सृजन कर भास्कर को दिया और भास्कर के सोलह शिष्यों द्वारा आयुर्वेद के विभिन्न ग्रन्थों का प्रणयन किया गया। भास्कर की मास्कर संहिता, घन्वन्तरि का चिकित्सात्तव-विज्ञान, दिवोदास का चिकित्सादर्पण, काशीराज की चिकित्सा कीमुदी, धांववनी कुमारों का चिकित्सासारतन्त्व, नकुल का गैद्यक सर्वस्व, सहदेव का ग्याधि सिन्धुविमदंन, यमराज का ज्ञानाणेव, प्यवन का जीवनदान, योगीराज अनक का गैद्य संदेह भंजन, जावालि का सर्गसार, जाजित का वेदांगसार, गैलऋषि का निदान ग्रन्थ, करथ-का सर्गधर, अगस्त्य का दिधानिणय तन्त्व — ये प्रन्थ चिकित्सा भास्त्र के बीज स्वरूप, रोगनाण के मूलतत्व, बलाधानकारक, दिव्य सन्देशवाहक ज्ञान-विज्ञान के मन्त्रों द्वारा आयुर्वेद सागर से सथकर नवनीत के समान सारभूत धायुर्वेद के ग्रन्थ थे जो आज काल के गाल में समा जाने से अनुपलब्ध हैं। फिर भी भास्वतोऽयमा-युर्वेद का रव गू ज रहा है जो यह बतलाता है कि धायुर्वेद न ग्रन्थ परक है, न व्यक्ति परक। यन्यों का निर्माण एक के बाद दूसरा होता जायेगा। वैज्ञानिक एक के बाद दूसरा आयेगा। वह अपने ग्रुग की पुकार सुनेगा। अपने अतीत से साधन प्राप्त कर नये भवन का निर्माण करेगा और उसी विचार धारा के अन्तर्गत पाठकों के हाथों में प्रस्तुत 'मूत्ररोग चिकित्सा' का संकलन युगानुरूप कृति है।

आयुर्नेद में सूत्ररोग — आयुर्नेदर्शों की यह घारणा है कि आयुर्नेद में मूत्ररोगों व वृक्त रोगों का विश्वद विवेचन नहीं है — कारण कि जबर अतिसार अर्थ यहमा शिरं नेत्र कण्ठ कणें नासादि रोगाधिकार की तरह वृक्तरोग परिचायक कोई अध्याय दिण्टगोचर नहीं है किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि आयुर्नेदज्ञ

वृक्कह्य की रचना और किया से अपिरिचित थे। आयुर्गेदशों की वृक्कह्य क्रिया कलापों का पूर्ण झान था तथा उसका वर्णन भी उपलब्ध है पर आयुर्गेदीय सिद्धान्तानुसार उदाहरणार्थ प्रमेह जन्द की न्युत्पित 'प्रकर्षण मेहित इति प्रमेहः' प्रमेह के इस न्यापक अर्थ में तथा प्रमेह के भेदों में प्रमेहोत्पादक कारण दोष दूष्य सम्प्राप्ति लक्षण उपद्रव आदि के न्यापक लक्षणों में आधुनिक वृक्क रोगों के सभी रोगों का समावेश हो जाता है। पर ऐलोपेशी हारा नामतः निद्धित दक्षों की मूल में उपस्थित आयुर्गेद की सारणी के अनुसार सान्द्रमेह इक्षुमेह पिष्टमेंह लालामेह हिरद्रामेह मन्जिष्ठमेह सारमेह नीलमेह लवणमेह आदि में कौन कौन द्रव्य है तथा कौन कीन दोप धातु वृष्य का मिश्रण मूर्य में उपस्थित है तथा उसकी उपस्थित का कारण सम्प्राप्ति आदि क्या है ? इससे नैस समाज अनिभन्न सा ही है। इस सन्दर्भ में प्रस्तुत साहित्य एक प्रारम्भिक प्रयास मात्र है। इसका उत्तरदा- यित्व णिक्षण संस्थाओं पर ही है और घोर प्रयत्नसाध्य कार्य शिक्षण संस्थाओं हारा ही फलीभूत हो सकता है।

हम आयुर्वेद प्रवर्ते के महिंपियों के ऋणि है जिन्होंने आयुर्वेद की आधारशिला सत्य, सनातन विश्वजनीन या सार्वभीम सिद्धान्तों पर रखकर सदैव आयुर्वेद को प्रगति का समर्थंक तथा युगानुरूप बनाने का निर्देश दिया। एक तरफ जहाँ चिकित्सक की अल्पज्ञता प्रेम भाव से बचाने लिये 'विकारनामाऽकुशको न जिह्वीयात् कदाचन' कह निराशा में चिकित्सक को साहंस प्रदान किया वहां दूसरी तरफ "तस्माद् बहुर्श्रुतः शास्त्रः विजानीयाच्चिकित्सकः" का निर्देशन देकर चिकित्सक को सागं को प्रशस्त किया। आचार्य पुनवेंसु आत्रेय का चरक संहिता का सारा व्याच्यान अल्पबृद्धि वालों को व्यवहारायं ही है। बुद्धिमानों को तो इस उपदेशामृत को आधार मानकर अनुमान और युक्ति को बल पर इसे विकसित करना चाहिए।

कीयिश (Drug) वही उत्तम है जो आरोग्यता प्रदान कर सके। चिकित्सक वही श्री कि है जो रोगी को रोग मुक्त कर सके। इस सिद्धांत में लेशमाल भी संकीणंता नहीं हैं पर इस सिद्धांत को ढाल मान कर यदि आयुर्वेदज्ञ एलीपैथिक चिकित्सकों की नकल करने लगे जहां उदरशोधनायं एरण्ड तैल और त्रिफला ही पर्याप्त है वहां आगरील दें, अमीवा व आमनाशक कुटज जैसी महोपिध को छोड़कर भेत्रसाफोर्म दें व जिन रोगों की आयुर्वेद में सर्वोत्ज्ञच्द बहुपरीक्षित औपिधियां हैं वहां एलोपैथिक के संगयास्पद योगों का प्रयोग करें तो यह निश्चय ही उपहासास्पद है। अतः हमें पहले अपने घर में अपने शास्त्रों में ही उपाय खोजने होंगे तथा उपाय न दिखने पर ही दूसरे घर जाना चाहिए वंगोंकि आयुर्वेद खदैव प्रगति का समर्थक रहा है तथा युगानुरूप सभ्यता के आदिम काल से आज तक अपनी सेवाएं दे रहा है।

वैदिक काल में (अयर्व वेद) विशेषतः काष्टीषिधयों द्वारा ही चिकित्सा की जाती थी—संहिताकाल (चरक सुधुत) में चिकित्सा के नये नये साधनों का आविर्भाव हुआ। मध्यकाल (बौद्धकाल) में भगवान बुद्ध के द्वारा शल्य चिकित्सा पर सरकारी प्रतिबन्ध लगाकर तथा उसे 'आसुरी चिकित्सा' कहकर यद्यि शल्य शास्त्र का अन्त कर डाला पर नागार्जु न द्वारा चिकित्सा जगत में 'रस विज्ञान' के आविष्कार से विशेष सुविधाएं प्रस्तुत कीं। मुस्लिम काल में भारतीय वैद्य यूनान देशों में आमन्त्रित होते थे तथा चोषचीनी, यवानी (अजवायन) के थोगों से आयुर्वेद को अलंकृत किया। यूरोपियनों की संस्कृति के साथ भारत में नये रोग भी आये जिनका आयुर्वेद में वर्णन न था। आचार्य भाविम्थ ने फिरप्त रोग की आयुर्वेद में निदान-चिकित्सा लिखी।

अतः प्रस्तुत प्रयास भी गहर्षियों का अनुकरण ही है। हिमालय की तलहटियों में व आधुनिक प्रयोगणालाओं में रोग मुक्ति का उपाय ढूढने वालों को जो भी शान प्राप्त हुआ वह आयुर्वेद है। एतदर्थ हमने जहां से भी जा कुछ सामग्री सक्लित की है हृदय से आधारी हैं। अपने सहयोगी लेखक वन्धुओं के आज तक के प्राप्त सभी लेखों का समावेश करते हुए उनके प्रति हृदय से छतज्ञ हैं।

ब्ब सेंग बिनिसा

की

विषय निक्रम जिन्हा

of of of€:

प्रयम खण्ड-आर्ष रोग खण्ड

9,	 आर्थ प्रन्यों में मूत्र रोग विज्ञान आचार्थ डा० महेश्वरः 	साद 'उमार्शकर'	25
₹.	रे. आयुर्वेद में मूत्र रोग वैद्य ज	गदीशप्रसाद शर्मा	२
₹.	 मूत्रयह संस्थान के अवयर्व डा० (श्रीमती) शोभा मोवार, डा० 	 जयराम यादव, 	
,	डा॰ यज्ञदत्त गुनल, प्र		3 6
¥,	. मूत्र निर्माग प्रकिया । इन् पी.सी. मिन्ना, हा		2.2
•	डा॰ जेएन. मिश्र, डा॰ यजदल शुक्ल,		३३
	र मूत्रवह संस्थान 'रचना एवं क्रिया शारीर' डा॰,विजयकुमार नार्जेय एवं ड		ইও
	. मूत्रवह नंस्थान के कार्यारम्भ पर दृष्टिपात एवं विकृति थी डी.एन. मिश्र	_	४३
છ.		देवेन्द्र नॉय भिश्र	४६
ᡪ.	. सूत्र रोगों की परीक्षा विधियां	धारीलाल मिश्र	Ko
3.	. आयुर्वेदीय तेल विन्दु-पूल परीक्षा	शिचन्द्र देव शर्मा	X3
9 e.	ः. स्वानुभवानुसार मूत्र परीक्षा प्राणाचार्यं	पं० हर्षुं स मिश्र	ध्र
99.	. मूत्रं परीक्षा से साध्यासाध्यत्व एवं अरिष्ट ज्ञान डा० रणवीर सिंह श	ास्त्री पीएच.डी.	38
ξ ₹.	. आधुनिक मूत्र परीक्षा का नैदानिक महत्वपरक विवेचन । डा० जगदीशचन्द्र असाव	ए.एम.ची.एस.	६व
₹₹.	। मूत्र संस्थान के रोगों की ज्योतिषीय निदान व्यवस्था ज्योतिविद् आचार्य निर्विकार	गुप्त साहि. रत्न	66
	हितीय खण्ट—सूत्र रोग		
ξ٧.	८. मूत्रकृच्छ् विमर्श	त आयु० भिषक्	48
ባሂ.	 मूत्रकृच्छ्ता, अश्मरी और उनका प्रतिकार वैद्य श्री गुलराज गर्मा मिश्र आयु०, अ 	।।यु० शिरोमणि	48
98.	. मूत्रकृच्छ्र–लक्षण एवं चिकित्सा वैद्यंदर पं० अनन्त	नारायण ठाकुर	દ્વ
	 मूलकुच्छ्ता वैद्य रामदल शास्त्री सायुः 	र्वेदाचार्य एम.ए.	£ 3
	. मुत्रोबात	ए.एम.बी.एस.	K3
	. मूत्रकुच्छ पर मेरा बनुमत अयु० विरिन्स्लाल शास्	नी आयु० वृह०	६५
	. मूत्रावरोध एवं उपचार विद्यासाय विद्यासाय विद्यासाय विद्यासाय विद्यासाय विद्यासाय विद्यासाय विद्यासाय विद्यास	ती आयु० वृहट	33
	l. मुदाधात ।	हुशवाहा एम.ए.	909
२२.	र. सूत्र विपमयता किंवि किंवि गिरिधारीलाल मिश्र [वि	रशेष सम्पादके]	803
₹₹.	 मूत्रकुरुख्, सुजाक और अश्मरी पर अनुभूत योंग े , अाचार्य श्री रघूवीरणरण ण 	र्भा आयु० वृह०	309
	४. बहुमूत्र प्राणाचार्य पं० 'हर्णु		999
२्५:	ः डांयनैसिस डा० विजयकुमार वार्णिय	वी.ए.एम.एस.	११३
ગૃદ્	. सल्पमूत्रता कवि० गिरिधारीलाल मिश्र	ए एम बी.एस.	998
₹ĕ.	. एक निदानंत्र की दृष्टि में प्रमेह · ः वैद्यं जगदी	ण के. पुरोहित	990
२इ.	इ. ह्या प्रमेह मुत्ररोग है ?	•	929

THE PION PRINCE

			<u> </u>
•	₹€.	प्रमेह रोग-निदान एवं सम्भाव्त डा० (श्रीमती) गोभा मोवार, डा० जयराम यादव डा० यज्ञदत्त गुक्ल, प्रो० पी.सी. जैन	970
	n ´		•
	₹ 9.	प्रमेह विमर्ग वास्त्रीय प्राप्ता केर स्वायु (निकेट केर) किरोप	, ६३९
	₹₹.	जदक्षेत्रह, इक्ष्मेह, सान्द्रमेह, सान्द्रप्रसाद मेह, व सुरामेह (एसीटोन मेह), पिण्टमेह या जुनल मेह, सिकता मेह, जुक्रमेह, शीतमेह, जन मेह, लालामेह, लवजमेह, फेनमेह, झारमेह. नीलमेह, काल- मेह, अम्लमेह, शोजितमेह, संजिष्ठमेह, हारिद्रमेह, वसामेह, मज्जा मेह, हस्तिमेह कृवि० डा० गिरिधारीलाल मिश्र ए.एम.बी.एस	. 972
	ə ą.	लालामेह कवि॰ दी.एस. प्रेमी एम.आई.एम.एस	. १५३
		पूर्यमेह कवि॰ श्री रचुवीरणरण शर्मा वैद्यरत्न, आयुर्वेदाचार्यं, लायू॰ वह	2 4 2
	₹Ÿ.	पूर्यमेह डा० विजयकुमार वार्ष्णेय, डा० बीरेन्द्रकुमार सिंह	ह १५६
	₹Ę.	मधुमेह कवि॰ डा॰ गिरिबारीलाल मिश्र ए.एम.बी एस	ક પ્રેલ
	₹७.	मधुमेह वैद्य कवि । वेदप्रकाश गुप्त वैद्य वाच । आयुर्वेदाचार्थ, वी.आई.एम.एस	953.
	₹€:	अम्रक सत्व भस्म का मधुमेह पर प्रभावात्मक प्रयोग वैद्य वाच. डा० गणनाथ बी. द्विवेदी एम.डी	986
	¥٥.	मधुमेह की पूर्व सफल चिकित्सा कवि० वी.एस. प्रेमी एम.आई.एम.एस	8190
	89.	. मधुमेह	. १७३
		. मधुमेह एवं दौवंलय पेर अमोघ - प्रमदेशांकुण रस 📝 🦸 कवि व्यजविहारीलाल सिध	30° T
	४३.	. मधुमेह पर अमोघास्त्र—शिवा गुटिका कवि॰ डा॰ गिरिधारीलाल मिश्र ए.एम.वीःएस	996
		. वसन्त कुसुमाकर रस वैद्य श्री जगदम्वाप्रसाद श्रीवास्तव	T 959
		. मधुमेह की योगासनों द्वारा चिकित्सा श्री विष्णुकुमार आये योगाचार	रे १८३
	४६	. गोक्षुरादि गृग्गुलु.का मूत्रज व्याधियों में प्रयोग 🕺 💮 🕏 चैतन्यस्वरूप दाधीन	980'
	খত	. हित्रयों में मूनरोग—निदान एवं उपचार किवि वेदप्रकाण गुप्त बी. आई.एम.एस	: 9E3
	४द	. चन्द्रप्रभावटी डा॰ ताराणंकर वैद्य आयुर्वेदाचा	र्दं १६५
	` .	, तृत्य खण्ड- इंदकरीग	
		. वृक्क - एक परिचय वैद्य श्रीनिवास शम	f- 986
		· ,दुवक रागाधकार डा० गिरिव।रीलाल मिश्र ए एम,वी.एस	. 200
•		. वुक्त रागा म सावधान ! हा० जी.सार. भार्ट	708
		. वृहक का सहज विकृतियां किवारी लाल मिश्र	र २०७
	_	. वृक्कारमरा चिक्तिसा ् वैद्यं श्री अस्वालाल जोशी आय० केशर	ी २०६
	-	• 'यूनप' शूष अवार्ष पं विश्वताण विनेत्र	रे २१४.
		त्. पृष्यारम् ।	. २१७
		कवि॰ डा॰ गिरिधारीलाल मिंह	र २२१
		हा० शिवपन्न विव क्रांत्र कर्	. २३१
		. वृक्कणोय की सक्षत चिकित्सा . वृक्कणोय पर सारम्बधाद अवलेह	१ ३३२
		. वृषक्षाल पर जारापधाद अवलह । १. वृषकार्श्वेद	२३४
		केंद्रिक विकित्यानी С	
	۲:	रे. वक्ष्य क्रिकेट	235
		कवि॰ डा॰ गिरिधारीलाल मिश्र एएएए०ली०एए	. 54.

कवि॰ डा॰ गिरिधारीलाल मिश्र ए०एम॰बी॰एस॰

स्वा सेवा चिक्तिस्या

हरे. बलापवृक्तता किंत. हा॰ गिरिघारी ताल मिश्र ए. एम. ही. एस. हरे. वृक्त क्षय हरे. वृक्त क्षय हरे. वृक्त के आधात किंत. हा॰ गिरिघारी ताल मिश्र ए. एम. ही. एस. हरे. वृक्त के आधात किंत. हा॰ गिरिघारी ताल मिश्र ए. एम. ही. एस. हरे. वृक्त के आधात किंत. हरे. वृक्त के आधात किंत. हरे. वृक्त के आधात किंत. हरें वृक्त के आधात किंत. हरें वृक्त के आधात के निक्त. हरें वृक्त प्रेस हरें हर्ग हरें हरें हरें हरें हरें हरें हरें हरें
हिंश. बाधुंनिक विज्ञान पी हिंग्ट से—बृक्क यहमा डा॰ श्री जमवीशकुमार अरोरा ही एस-सी.एवाई १५ वृक्क के बाधात किया किया किया किया किया किया किया किया
हर. ब्रक्त के बाघात हर व्कत के विक्रत के विक्रत के विक्रत के विक्रत के विक्रत के व्कत के व्यत के व्यत के व्कत के व्यत के व
ह ६. वृक्क के आधात ६७. वृक्क के आधात ६०. वृक्क के आधा ६०. वृक्क के आधा ६०. वृक्क के आधा ६०. मूंगडम (एवं वृक्काधमरी की योगासनों द्वारा चिकित्सा ७०. मैंपडम रत्नावली में, वृक्कामय ७१. संजय गांधी स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान संस्थान में सन् १९८४ से गुर्दा प्रत्यारोपणं — एक समाचार चतुर्थ खण्ड — सूत्राध्य अध्मरी और उसकी सफल चिकित्सा ७२. सूत्राध्य अध्मरी और उसकी सफल चिकित्सा ७२. सूत्राध्य अध्मरी और उसकी सफल चिकित्सा ७३. ईस्ट के सिस्टोमीटर द्वारा मृत्राध्य का जन्तः दवाव मापन ७४. श्रूष्टाध्य अध्मरी और उसकी सफल चिकित्सा ७४. श्रूष्टाध्य अध्मरी की सफल चिकित्सा ७४. श्रूष्टाध्य अध्मरी की सफल चिकित्सा ७४. श्रूष्टाध्य अध्मरी ७४. श्रूष्टाध्य का निकत्सा ७४. मृत्राध्य का निकत्सा ७४. मृत्राध्य का निकतेचन ७४. मृत्राध्य का निकतेचन ७४. मृत्राध्य की विपुटी ६४. मृत्राध्य की निकतेचन ६४. मृत्राध्य की निकतेचन ६४. मृत्राध्य की निकतेचन ६४. मृत्राध्य की निकतियां ६३. मृत्राध्य की जन्मचात विक्रितियां ६३. मृत्राध्य की जन्मचात विक्रितियां ६३. मृत्राध्य की विपुटी ६४. रक्तमेह या रक्तमृत्रता ६४. रक्तमेह या रक्तमृत्रता ६४. रक्तमेह या रक्तमृत्रता ६५. रक्तमेह या रक्तमृत्रता ६५. एते ह्या यक्तमृत्रता ६५. एते ह्या यक्तिव्यां और उनका प्रतिकार ६५. पौह्य प्रन्य वृद्धि
१७. वृक्त प्रश ६६. बृक्त रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा ६८. सुनाइमरी एवं वृक्ताइमरी की योगसनों हारा चिकित्सा ७०. मैपण्य रत्नावली मे वृक्तामय ७०. मैपण्य ग्रांची स्नातकोत्तर आर्युविज्ञान संस्थान मे सन् १८६४ से गुर्दी प्रत्यारोपणं— एक समाचार ७१. सुनाशय अथमरी और उसकी सफल चिकित्सा ७१. सुनाशय अथमरी और उसकी सफल चिकित्सा ७१. सुनाशय व्यक्तमरी ७१. सुनाशय क्रमरी ७१. सुनाशय क्रमरी का निकोचन ७१. सुनाशय क्रमरी ०१. सु
इत् वृक्त रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा इत् योगेन्द्रनाथ मिश्र इत् युनाइमरी एवं वृक्काध्यरी की योगासनों हारा चिकित्सा इत् योगेन्द्रनाथ मिश्र इत् योगेन्द्रनाथ में स्व वृक्काध्यरी की योगासनों हारा चिकित्सा इत् योगु॰ वृक्त हत्य के स्व योग स्व यो
६६. सुनाइमरी एवं वृक्काष्मरी की योगासनों द्वारा चिकित्सा डा॰ पी सी. णायदा उर्फ निरंजन नाय २५ ७०. भैपज्य रत्नावली मे वृक्कामय आयु॰ वृह० हा॰ दाऊदमाल गर्ग ए.,एम.बी.एस. २५ थ.१ संजय गांघी स्नातकोत्तर आयुर्वज्ञान संस्थान मे सन् १६८४ से गुर्दा प्रत्यारोपर्ण — एक समाचार १५ चतुर्थ खण्ड — मुन्नाश्य, मुन्नप्रसेक निका, पौरुष प्रन्थि एवं खन्य सम्ब्रिट्यत अङ्गों के रोग ७२. सुनाश्य अध्मरी और उसकी सफल चिकित्सा प्राणा॰ पं॰ हर्षुं व मिश्र प्रवीण बी ए., लायु॰ २६ भूनाश्य अध्मरी और उसकी सफल चिकित्सा प्राणा॰ पं॰ हर्षुं व मिश्र प्रवीण बी ए., लायु॰ २६ भूनाश्य अध्मरी विकित्सा डा॰ दाऊदयाल गर्ग ए, एस.जी.एस. २६ खण्ड समरी विकित्सा डा॰ विजयकृमार वार्ष्णय बी०ए०एम॰ एस॰ २६ खण्ड समरी का निकोचन " प्रत्यान की असंगतियां " " प्रत्यान की असंगतियां " " " देवर समरावात या मुनावरोध विकृतियां विकृतियां " " " देवर समहम्बात या मुनावरोध विकृतियां विकृतियां विकृतियां विकृतियां विविध्न विकृतियां और उनका प्रतिकार विकृतियां विकृतियां विवध्न विद्वतियां और उनका प्रतिकार विकृतियां विवध्न स्वात्य वृद्ध विवध्न वृद्ध वा महेन्द्रकृतार शर्म ए०,एम.०वी॰एस॰ एवं विवध्न वृद्ध वा महेन्द्रकृतार शर्म ए०,एन.०विव्धल एवं विवध्न वृद्ध वा महेन्द्रकृतार शर्म ए०,एन.०विव्धल एवं विवध्न वृद्ध वा महेन्द्रकृतार शर्म ए०,एन.०विव्धल एवं विवधन वृद्ध वा महेन्द्रकृतार शर्म ए०,एन.०विव्धल एवं विवधन वृद्ध वा महेन्द्रकृतार शर्म ए०,एन.०विव्धल एवं विवधन वृद्ध विवधन
७०. प्रैपण्य रत्नावली मे बृक्कामय आयु॰बृह॰ हा॰ दाऊदशाल गगँ ए.एम.बी.एस. २५ ७१. संजय गांघी स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान संस्थान मे सन् १६८४ से गुदा प्रत्यारोपणं — एक समाचार १५ जतुर्थं खण्ड — सूत्राशय, सूत्रप्रसेक न लिका, पौरुष प्रन्थि एवं अत्य सम्बन्धित अख्नों के रोग ७२. सूत्राशय अश्मरी और उसकी सफल चिकित्सा प्राणा॰ पं॰ हर्षुं ल मिश्र प्रवीण वी ए., आयु॰ १६ कु. सूत्राशय अश्मरी और उसकी सफल चिकित्सा वाल्यः दवाव मापन १६८ सूत्राशय अश्मरी की सफल चिकित्सा वाल्यः दवाव मापन १६८ सूत्राशय अश्मरी की सफल चिकित्सा वाल्यं वी०ए॰एम॰एस॰ २६ वा॰ दाऊदयाल गर्ग ए, एस.जी.एस. २६ वा॰ दाऊदयाल गर्ग ए, एस.जी.एस. २६ वा॰ दाऊदयाल गर्ग ए, एस.जी.एस. २६ वा॰ स्वार्थ की वाल्यं वी०ए॰एम॰एस॰ २६ वा॰ स्वार्थ की वाल्यं वाल्यं वाल्यं वी०ए॰एम॰एस॰ २६ वा॰ स्वार्थ की वाल्यं वाल
७१. संजय गांधी स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान संस्थान मे सन् १६८४ से गुर्दा प्रत्यारोपण — एक समाचार १५ चतुर्थ खण्ड — सूत्राशय, सूत्रप्रसेक निल्हा, पौरूप प्रन्थि एवं अत्य सम्बन्धित अर्झों को रोग ७२. सूत्राशय अश्मरी और उसकी सफल चिकित्सा प्राणा० पं० हर्षु ल मिश्र प्रवीण बी ए., आयुर १६ के सिस्टोमीटर हारा मूत्राशय का अन्तः दवाव मापन व व व जयनारायण गिरि 'इन्हुं' १६ अर. स्मृत्राशय अश्मरी विकित्सा वाल्याय वा
चतुर्थं खण्ड — सूत्राशय, सूत्र प्रसेक न लिका, पौरुष प्रनिथ एगं अन्य सम्बन्धित अर्झों को रोग ७२. सूत्राशय अध्मरी और उसकी सफल चिकित्सा प्राणा॰ पं॰ हर्षु न मिश्र प्रवीण वी ए., आयु॰ २५ ७३. ईस्ट के सिस्टोमीटर द्वारा मूत्राशय का अन्तः दवाव मापन ७४. मूत्राशय वहमरी वैद्य जयनारायण गिरि 'इन्दु' २६ थ. यहमरी की सफल चिकित्सा वा॰ दाऊदयाल गर्ग ए, एस ठी.एस. २६ ७६, मूत्राशय अध्मरी डा॰ विजयकुमार वा॰ पाँच वी॰ ए० एस॰ एस॰ २६ ७६, मूत्राशय शोथ कवि॰ श्री गिरिधारीलान मिश्र २७ ५६, मूत्र स्थाग की असंगतियां , , , , , , , , , , , , , , , , , , ,
७२. मूत्राशय अश्मरी और उसकी सफल चिकित्सा प्राणा॰ पं॰ हर्षु ल मिश्र प्रवीण वी ए., लायु॰ २५ ७३. ईस्ट के सिस्टोमीटर हारा मूत्राशय का अन्तः दवाव मापन रहे थे मूत्राशय अहमरी वैद्य जयनारायण गिरि 'इन्टु' १६ ७६. मूत्राशय अहमरी की सफल चिकित्सा डा॰ दाऊदयाल गर्ग ए, एस.जी.एस. २६ ७६, मूत्राशय शोध किविल्सा डा॰ विजयक्तृमार वार्ल्य बी०ए०एम॰ एस॰ १६ ७६, मूत्राशय शोध किविल्सा गर्ग ए एस.जी.एस. १६ ७६. मूत्राशय की वसंगतियां गर्भ प्रताशय की वसंगतियां गर्भ प्रताशय की विद्या प्रताशय की जन्मजात विद्यां विद्या प्रताशय की जन्मजात विद्यां विद्या प्रताशय की पर प्रताशय की जन्मजात विद्यां विद्या प्रताशय की पर एस.जी॰ एस. १६ व्या रक्तमृत्रता वाल्य स्त्राशय की विश्वलियां कीर उनका प्रतिकार विश्वलियां विद्यां विद्
७३. ईस्ट के सिस्टोमीटर द्वारा मूलाशय का अन्तः दवाव मापन ७४. मूनाशय यहमरी ७५. यहमरी की सफल चिकित्सा ७६. मूलाशय अध्मरी ७६. मूलाशय शोथ ७६. मूलाशय शोथ ७६. मूलाशय शोथ ७६. मूलाशय की असंगितयां ६०. मूलाशय की असंगितयां ६०. मूलाशय की असंगितयां ६०. मूलाशय की विपुटी ६०. मूलाशय की किपुटी ६०. मूलाशय की कनमवात विकृतियां ६०. मूलाशात या मूलावरोध ६०. मूलाशात या मूलावरोध ६०. मूलाशात या मूलावरोध ६०. मूलाहात या मूलावरोध ६०. मूलाहात या मूलावरोध ६०. मूलाहात या मूलावरोध ६०. मूलाहात या मूलावरोध ६०. प्रतमेह या रक्तमूलता ६०. प्रतमेह या रक्तमूलता ६०. प्रतिच प्रत्यावुँ व ६०. प्रीहण प्रत्यावुँ व ६०. प्राहण प्रत्यावुँ व ६०. प्रतम्य व्राहण प्रतम्य व्राहण प्रतम्य व्राहण प्रतम्य प्राहण प्रतम्य व्राहण प्रत्य व्राहण प्रतम्य व्
७३. ईस्ट के सिस्टोमीटर द्वारा मूलाशय का अन्तः दवाव मापन ७४. मूनाशय यहमरी ७५. यहमरी की सफल विकित्सा ७६. मूलाशय अध्मरी ७६. मूलाशय शोथ ७६. मूलाशय शोथ ७६. मूलाशय शोथ ७६. मूलाशय की क्रमंगिता ७६. मूलाशय की असंगितयां ६०. मूलाशय की विप्टी ६०. मूलाशय की विप्टी ६०. मूलाशय की क्रमंगित्यां ६०. मूलाश्य क्रमंगित्यं ६०. मूलाश्य की क्रमंगित्
७१. यश्मरी की सफल चिकित्सा डा॰ दाऊदयाल गर्ग ए, एस.जी.एस. २६ ७६. मूलाशय अश्मरी डा॰ विजयकुमार वार्लोय बी०ए०एम॰ एस॰ २६ ७७. मूलमार्ग का निकोचन " " १७७ ७६. मूल त्यान की असंगतियां " " १७७ ६०. मूलाशय की विपुटी ६०. मूलाशय की जन्मजात विकृतियां " " १०० ६०. मूलाशत या मूलावरोध वीचरतम प्राप्त की ज्यनारायण गिरि 'इन्दु' २६० ६०. मूल-कृष्ण्यता डा॰ दाऊदयाल गर्ग ए॰ एम॰वी॰ एस॰ ६०. रक्तमेह या रक्तमूलता डा॰ दाऊदयाल गर्ग सम्पादक 'धन्वन्तरि' ६०. पाँचप प्रत्यावुँद डा॰ गजेन्द्र सिंह छाँबर ए॰,एम॰वी॰ एस॰ ६०. पाँचप प्रत्यावुँद डा॰ महेन्द्रकुमार शर्मा एम॰ ए०,ए॰,एम०वी॰ एस॰ एवं
७५. यश्मरी की सफल चिकित्सा डा० दाऊदयाल गर्ग ए, एम.जी.एस. २६ ७६. मूलाशय वश्मरी डा० विजयकुपार वार्ल्य बी०ए०एम०एस० ७७. मूलागं का निकोचन " , १७० ७६. मूल त्यान की वसंगतियां " , १०० ६०. मूलाशय की विपुटी " , १०० ६०. मूलाशय की विपुटी " , १०० ६०. मूलाशत या मूलावरीध वैद्यत्त श्री जयनारायण गिरि 'इन्दुं' २६० ६३. मूलाशत या मूलावरीध वैद्यत्त श्री जयनारायण गिरि 'इन्दुं' २६० ६३. मूलाशत या मूलावरीध विश्वत्यां गर्ग ए०एम०वी०एस० ६४. मूल-कृष्ण्या विकृतियां और उनका प्रतिकार वैश्वर जयनारायण गिरि 'इन्दुं' २६० ६५. सूल की विभिन्न विकृतियां और उनका प्रतिकार वैश्वर जयनारायण गिरि 'इन्दुं' २६० ६६० पाँच्य प्रत्यावुंद डा० गजेन्द्र सिंह छोंबर ए०,एम०वी०एस० एवं ६६० पाँच्य प्रत्यावुंद डा० गजेन्द्र सिंह छोंबर ए०,एम०वी०एस० एवं
७७, मूत्राशय शोध ७६. मूत्राशय शोध ७६. मूत्र त्यान की असंगतियां ६०. मूत्राशय की विपुटी ६०. मूत्राशय की विपुटी ६२. मूत्राशाय की जन्मजात विकृतियां ६२. मूत्राशात या मूत्रावरोध ६३. मूत्राशात ६४. मूत्र-कृष्ठकृता ६५. रक्तमेह या रक्तमूत्रता ६६. यूत्र की विश्विच विकृतियां और उनका प्रतिकार ६५. यूत्र की विश्विच विकृतियां और उनका प्रतिकार ६७. पौरुष ग्रन्थावुँ द ६७. पौरुष ग्रन्थावुँ द ६१. पौरुष ग्रन्थावुँ द
७७. मूत्राशय शोध ७६. मूत्र त्याग की असंगतियां ६०. मूत्राशय की विपुटी ६०. मूत्राशय की विपुटी ६२. मूत्राशय की जन्मजात विकृतियां ६२. मूत्राशत या मूत्रायरोध ६३. मूत्राशत ६३. मूत्राशत ६४. मूत्र-कुच्छृता ६५. रक्तमेह या रक्तमूत्रता ६५. रक्तमेह या रक्तमूत्रता ६५. यूत्र की विश्वित्र विकृतियां और उनका प्रतिकार ६५. पौरुष प्रत्यावुँ द ६५. पौरुष प्रत्यावुँ द ६१. पौरुष प्रत्यावुँ द
७६. मूत्रागि का निकोचन ७६. मूत्रागि की असंगतियां ५०. मूत्रागि की असंगतियां ५०. मूत्रागि की विपुटी ५०. मूत्रागि की त्र्याग की जन्मजात विकृतियां ५२. मूत्रागि की मूत्रागि की जन्मजात विकृतियां ५३. मूत्रागि वा मूत्रागि विकृतियां ६४. मूत्र-कुक्छूता ६४. मूत्र-कुक्छूता ६५. एक्तमेह या रक्तमूत्रता ६५. यूत्र की विभिन्न विकृतियां और उनका प्रतिकार ६५. यूत्र की विभिन्न विकृतियां और उनका प्रतिकार ६५. पौरुष ग्रन्थार्युव ६० वा महेन्द्रकुमार शर्मा एम०ए०,ए०,एम०वी०एस० एवं
७६. मूत्रांशय की विपुटी प. मूत्रांशय की विपुटी प. मूत्रांशय की विपुटी प. मूत्रांशय की विपुटी प. मूत्रांशय की जिप्पाय की जन्मजात विकृतियां प. मूत्रांशय की ज्ञांस्य की जन्मजात विकृतियां प. मूत्रांशय या मूत्रांवरीध प. मूत्रांशय या मूत्रांवरीध प. मूत्रांशय या मूत्रांवरीध प. मूत्रांशय या मूत्रांवरीध प. मूत्रांवरात प्रांच्यांत्रयाल गर्ग ए॰ एम०वी॰ एस० प्रांच्यांत्रयाल गर्ग ए॰ एम०वी॰ एस० प्रांच्यांत्रयाल गर्ग सम्पादक 'धन्वन्तरि' प. मूत्र की विभिन्न विकृतियां और उनका प्रतिकार प. प. प. एम०विक्यां प्रांच्यां प्रतिकार ए॰, एम०विक्यं एस० प. प
दः. मूत्राशय की विपुटी दः. मूत्राशय की विपुटी दः. मूत्राशय की जन्मजात विकृतियां देशस्त श्री जयनारायण गिरि 'इन्दु' दः. मूत्र-क्रुक्ता दः. स्त्र-क्रुक्ता दः. रक्तमेह या रक्तमूत्रता दः. यूत्र की विभिन्न विकृतियां और उनका प्रतिकार दः. पौरुष प्रन्थावुँ द दः पौरुष प्रन्थावुँ द दः पौरुष प्रन्थावुँ द दः पौरुष प्रन्थ वृद्धि
द मुत्राचात या मूत्राचरोध वैद्यरत श्री जयनारायण गिरि 'इन्दु' रहें द मूत्राचात डा॰ दाऊदयाल गर्ग ए॰ एम॰ वी॰ एस॰ रहें द मूत्र-कुच्छता श्री जयनारायण गिरि 'इन्दु' रहें द मूत्र-कुच्छता श्री जयनारायण गिरि 'इन्दु' रहें द मूत्र की विभिन्न विकृतियां और उनका प्रतिकार वै०र० जयनारायण गिरि 'इन्दु' रहें द पौरुष ग्रन्थायुँद डा॰ गलेन्द्र सिंह छींगर ए॰,एम०वी॰एस॰ रे॰। द पौरुष ग्रन्थि वृद्धि डा॰ महेन्द्रकुमार शर्मा एम॰ए०,ए॰,एम०वी॰एस॰ एवं
दश्यान या मूत्रावरोध वैद्यरत श्री जयनारायण गिरि 'इन्दु' २० विद्यान स्थान स्था
दश्यान गर्ग ए एप वी एस व दश्यान गर्ग एप एप वी एस व दश्यान गर्ग सम्पादक 'धन्वन्तर' २६४ दश्यान गर्ग सम्पादक 'धन्वन्तर' २६४
मथ. मूत्र-कृष्ण्या श्री जयनारायण गिरि 'इन्दु' २०१ तथ. रक्तमेह या रक्तमूत्रता डा॰ दाकदयान गर्ग सम्पादक 'झन्वन्तरि' २६१ तथ. मूत्र की विभिन्न विकृतियां और उनका प्रतिकार वै०र॰ जयनारायण गिरि 'इन्दु' २६६ तथ. पौरुष ग्रन्थार्यु डा॰ गजेन्द्र सिंह छौंबर ए॰,एमं॰वी॰एस॰ ३०० तथ. पौरुष ग्रन्थार्यु डा॰ महेन्द्रकुमार शर्मा एम॰ए०,ए॰,एम०वी॰एस॰ एवं
दर्. रक्तमेह या रक्तमूत्रता डा॰ दाक्रदयाल गर्ग सम्पादक 'घन्वन्तरि' २६१ दर्. यूत्र की विभिन्न विकृतियां और उनका प्रतिकार वै०र० जयनारायण गिरि' 'इन्दु' २६९ द७. पौरुष ग्रन्थार्युंद डा॰ गजेन्द्र सिंह छींकर ए॰,एमंट्वी॰एस॰ ३०० दद. पौरुष ग्रन्थि वृद्धि डा॰ महेन्द्रकुमार शर्मा एम॰ए०,ए०,एमंट्वी॰एस॰ एवं
द्र सूत्र की विभिन्न विकृतियां और उनका प्रतिकार वै०र० जयनारायण गिरि' 'इन्दु' २६० द्र. पौरुष ग्रन्थार्युंद डा० गजेन्द्र सिंह छींकर ए०,एमंटबी०एस० ३०० द्र. पौरुष ग्रन्थि वृद्धि डा० महेन्द्रकुमार शर्मा एम०ए०,ए०,एम०वी०एस० एवं
=७. पौरुष ग्रन्थार्युंद डा० गजेन्द्र सिंह छींबार ए०,एमंव्वी०एस० २०० ==. पौरुष ग्रन्थि वृद्धि डा॰ महेन्द्रकुमार शर्मा एम॰ए०,ए०,एम०वी०एस० एवं
==. पौरुष ग्रन्यि वृद्धि डा॰ महेन्द्रकुमार शर्मा एम॰ए०,ए०,ए०,एम०वी०एस० एवं
डा॰ दिनेशांचन्द्र गुप्ता वी ०ए० एम० एस० ३०।
पर. पौरुप प्रन्थि वृद्धिःकी चिकित्सा ' विकास वृद्धिःकी चिकित्सा विकास विकास विकास विकास विकास विकास विकास विकास
हo. पीरुप ग्रन्य शीय एवं वृद्धि डा० प्रकाश चन्द्र गंगरांटे ३०६
६१. शिश्न का अर्बुंद और उसका उपचार आचार्य हरिबल्लभ मन्त्रूलाल द्विवेदी सिलाकारी शास्त्री ३०५
हर. शिक्त मुण्ड शोथ कि. डा. गिरिधारी लाल मिश्र १०६
६३, परिवर्तिका : अवपाटिका : निरुद्ध प्रकण - छा० जयनारायण गिरि 'इन्दू' आ० वृ० ३१
६४. निरुद्ध प्रकश श्री हा० वंगाराम भारी २१६
६५. वृपण-अधिवृपण शोथ डा० वेदप्रकाश शर्मा ए०, एम वी०एस० . ११
६६. वृपणाचुँद डा० भ्रेमणंकर गर्सा ए.,एम.बी.एस. ११९

पंचन खण्ड—प्रकीर्ण प्रकरण

٤७,	चरक के आधार पर आएं ग्रन्थों में मूत्ररोग विज	ान वैद्य अश्विनीकुमार शास्त्री भिषः,पीएच०डो०	₹ {6
	मृतरोगों की सफल चिकित्सा	आचार्यं डा० महेश्वरप्रसाद उमाशंकर	३२१
	मूत्रवह संस्थान के रोगों पर पथ्य व्यवस्था	आचायं ढा॰ गोषीनाघ पारीक 'गोपेश' भिपगाचायं	. ३२६
१०० ,	मूत्ररोगों की व्यवहारिक चिकित्सा	वैद्य श्रीनिवास शर्मा	३३४
६०१.	मध्मेह	डा॰ विठ्ठलदास मोदी प्राकृतिक विकित्साचार्यः	३३५
१०२.	मूल यन्त्रों १९ प्रभावकारी कतिपय वनीय वियां	कवि० गिरिधारीलाल मिश्र आयुरवाच०	इ३७
	गश्मरी पर शनुभूत गोक्षुर कल्य	वैद्यराज डा॰ रणवीर सिंह शास्त्री पीएव०डी॰	. ३४१
90%	. मुद्र संस्थान रोगों में यन्त्र शास्त्र प्रयोग	ं डा० दाऊदयाल गरी आयु०वृह०	३४३.
	. मुगरोगों की होमियोपैधिक चिकित्सा	होमियो रत्न डा॰ बनारसीदास दीक्षित	388
	. मूजवह संध्वान के रोगों की आधुनिक औपधिय	ां डा॰ हरेन्द्रकुमार प्रवीण	३५३

पण्ठम खण्ड—ज्ञास्त्रीय एवं अनुभूत योग खण्ड

९०७. मूर्शरोगहर शास्त्रीय योगणतक	कवि० गिरिधारीनाल मिश्र आर्यु० बाच०	इंप्रह
१०८. मूलरोगनाशक सफल योग	प्राणाचार्य श्री हर्पु ल मिश्र	३७५
मूत्रकृच्छृता निवारण के लिये अनुभूत	वैद्य हर्षवर्धन सिंह शास्त्री सायुः	३७६
मूझरोगीं पर अनुभव	श्री लगदम्वा प्रसाद श्रीवास्तव	<i>थण</i> ई,
मूचरोगों पर स्वानुभूत प्रयोग	वैद्य विरिन्चिलाल शास्त्री आयु.	र्थथङ्
मूत प्रदाह की अनुभूत चिकित्सा	वैद्य वजितहारी जाल मिश्रं एम ए.	३७८
वहृमूल और सोमरोग	वैद्य रत्न द्वारिका मिश्र आयु०	३७६
प्रमुख यूनरोगों की स्वानुभूत चिकित्सा	कवि॰ वजमोहन वाशिष्ठ ए.एम.वीं.एस.,डी.एस-सी.ए	308
धमूलता पर मेरा धनुभव	वैद्य बद्रीनारायण भामी	300
मधुमेहारि थोग	डा॰ गजानन सिंह भुवाल	३००
मधुमेह चिकित्सा	. वैद्य मिश्रीलाल गुप्त आचार्य	३८०

मुख पृष्ठ (टाइटिल कवर) पर दिये गये १ एक्स-रे चिल्लों का विवरण (क्रमश: वार्ये से दायें बोर)

- १. हतस्यादस्या का गृक्क गवीनी शोणि का पश्चादावर्ती एनस-रे चित्र (Normal Retrograde Pyelogram)— यह अपेक्षाकृत अधिक अपट चित्र हैं तथा इस विधि का प्रयोग उत्सर्जन विधि द्वारा लिये गये एनस-रे चित्रों की संगयात्मक स्थितियों में सुनिश्चितता प्राप्त्यर्थ किया जाता है।
- २. वाम जुवकायुँद रोगी का गदीनी श्रीणि का पश्चादावर्ती एक्स-रे चित्र—यह वित्र लेने से पूर्य रोगी को सिर्फ. एकबार वेदनायुक्त रक्तमूत्रता की शिकायत हुई थी।
- २. मूत्र गदीनी में अश्मरी
- 'ा खुनकाश्मरी प्रदर्शन एक साधारण'एवस-रे चित्र—इससे ठीक से जात नहीं होता है कि अध्मरी वृक्क के किस भाग हिध्य है ?
- . नं ४ के चित्र के रोगी का उत्मर्जन विधि द्वारा लिया गया स्पष्ट चित्र जिससे कि ज्ञात होता है कि अध्मरी पूरक पत्रीनी श्रोणि में स्पित है।

अवार्य डा.महश्वरप्रसाद् उमाशंकर'

यदान्त्रेषु गवीन्योर्धद् वस्ताविध संश्रितम्।
एवा ते मूलम्।। — अथर्वदेद १-१-३
मूत्र के सम्बन्ध में उपर्युक्त तथ्य अथर्व वेद में मिलते
हैं। सायण ने भी अपने वक्तव्य से मूत्र की निम्न व्याख्या
प्रस्तुत की है—

लान्त्रेभगो विनिर्गतस्य मूत्रस्य मूत्राणय प्राप्ति साधने पार्श्वत्रयस्थे नाड्यौ गवीन्यौ ॥ —सायण ।

इनसे स्पट्ट है कि समूचे गारीर में दौड़ता हुआ रक्त तथा आन्तों के सूक्ष्म छिद्रों से रिस रिसकर मूत्र पहले वृक्कों को और बाद में गवीनियों द्वारा वस्ति को भरता रहता है। वृक्कों में रक्त से छनकर आया दूपित जल संचित होता है तथा गवीनी इसे वस्ति तक पहुंचाते हैं। वेदों में ऐसा उल्लेख है कि मूत्र अपने प्रारम्भिक उत्पत्ति स्थान से लेकर वाहर निकलने के स्थान तक कहीं भी रुक जा सकता है। यह रुकाबट यदि स्थायी और विकृति-जन्य हुए तो ये ही विविध मूत्र रोगों के कारण होते हैं। दो वृक्क, दो गवीनियाँ, एक वस्ति तथा एक मून प्रसेक ही मून यन्त्र कहलाते हैं जो मून संस्थान के अन्तर्गत आते हैं। मून निर्हृत द्रव है।

मूत्र रोगों के कारण—

मूलितोदकभक्ष्यस्त्रीसेवनान्मूत्र निग्रहात्।

मूलवाहीनि दुष्यन्ति क्षीणस्याभिक्षतस्य च।।

(च०वि० १-२०)

आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध आर्ष प्रत्य चरक-संहिता विमान स्थान स्रोतोविमानाध्याय ५ में श्रुद्धेय आचार्य प्रवर महर्षि अग्निवेण ने मूजवह स्रोतों के दूषित होने के क्या ही सुन्दर संक्षित्त सारक्ष एवं प्रत्यक्ष क्रिया में धनुभूत कारणों का निर्देश किया है। उनकी उक्ति है कि मूल के वेग को रोककर जल पीत, मैथन करने, भोजन करने अथवा उपस्थित वेग को रोकने से, शरीर के क्षीण होने से तथा मूलवाही स्रोतों पर आघात लगने या कट-फट जाने से मूलवह संस्थान के अवयव दूपित हो जाते हैं अथित् सूल रोग उत्पन्त हो जाते हैं।

इसी कथन को श्री गङ्गाधर ने निम्नलिखित ताररूप में प्रस्तुत कर उनका समर्थन किया है—

'मू शितस्य यू शवेगवत् उवक्भक्ष्यस्त्रीणां सेवनात्।' (गंगाधर)

मूत्र के उपस्थित वेग को रोकने से वस्ति और शिशन (मूत्र प्रसेक) में पीड़ा, मूत्र त्याग में कठिनाई, सिर दर्व, गरीर का झुक जाना तथा जांघ की जड़ में जकड़ जाने जैसी अनुभूति और दर्व की प्रतीति होती है। यदुक्तं—

वस्तिमेहनयो णूलं मूत्रकुच्छ्रं श्विरोल्जा । यिनामो वंक्षणानाह स्याल्लिङ्ग मूत्रनिग्रहे ॥ (च० सू० ७-६)

मूद्य रोगों के लक्षण-

म् त्रवहानां स्रोतसां नित्तमूलं वंक्षणी च प्रदुष्टानां तु खल्देपामिदं विशेषविज्ञानं भवति; तद्यथा—अतिपृष्टमित-वद्धं प्रकृपितमल्पालपमधीक्षणं वा बहलं सणूल मूत्रयन्तं हण्ट्वा मूत्रवहान्यस्य स्रोतांसि प्रदुष्टानीति विद्यात्।

[च॰ वि० ४-५(४)]

महर्षि अग्निवेप कहते हैं कि मूचवह स्रोतों का मूल वस्ति और वंक्षण है, जिन स्रोतों के दूपित होने पर मूज की माना अधिक या कम होना, मूत्र रुक्त रुक्त के आना, मूज वार-वार थोड़ा-थोड़ा या कम या अधिक आना, दिकृत मूज थाना, थोड़ा थोड़ा वार वार शूल के साथ गाढ़ा मूझ निकलते रहना छादि लक्षण प्रकट होते हैं।

योग ताछना, मुण्डलिनी जागरण एवं तांत्रिक साधना के विविध ग्रंथों में अमरौली प्रक्रियो, जिसमें मानव मूत्रा THE REAL PROPERTY

पान द्वारा विविधं मूत्र रोगों एवं अन्य रोगों की चिकित्सा का उल्लेख है आयुर्वेद मनीषियों के 'विषस्य विषमी-पद्मम्' सिद्धान्त का प्रतिपादन करता' है।

चेंद-पुराण और अध्यात्म ग्रन्थों में मूत्र रोग विज्ञान का वर्णन ही नहीं वरच् नरम् श की महत उपयोगिता का भी वर्णन पढ़ने को मिलता है जिन्हें पढ़ गुणकर परमा विस्मय से दांतों तले अ गुली दवाकर मन्त्रमुख हो जाना पड़ता है। उनमें एक स्थान पर ऐसा उल्लेख है कि नर-मृ न को खपर एवं पारद के चूर्ण के साथ खूर घोट घोट कर और वीच वीच में उसमें निदिष्ट माला में केंनुए का सुखा कपड्छन चूर्ण मिलाकर पुनः नरमूत्र देकर खरल करने से 'जो रंगे काया वही रंगे माया' सिद्धान्त के अनु सार भरीर के समस्त रोगोपहारी रसायन या स्वर्ण निर्माण के घटक तैयार किए जा सकते हैं। आधुनिक रसायन विज्ञान (Chemistry) तथा उनके विविध प्रकार फे नव आविष्कृत विश्लेपणात्मक प्रत्यक्ष प्रक्रिया (Practical Analysis) के दृष्टिकोण से गम्भीरता से विचार करने पर इस महत रहस्य का उद्घाटन सहज में हो जाता है कि किसी अल्प मूल्य घातु को विविध रासाय-निक पिक्तियाओं द्वारा पारद के संयोग से स्वर्ण के इव में परिवर्तित कर देना कोई कपोल कल्पना नहीं है वरन् ऐसा सम्भव है। ययोंकि अनेकानेक वैज्ञानिक गवेपणाओं के वाद .यह पाया गया कि पारवें के गतिशीज व्यूहाण औं में थोड़ा ही परिवर्तन होने से, जो कमी होना सम्भव है, वह स्वर्ण के रूप में यदल सकता है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी यह बात तहे दिल से एक बार नहीं दरन् बार दार कवूल की है कि प्राचीन ऋषि-महर्षियों द्वारा प्रणीत आयुर्वेद फी दिव्य जड़ी यूटियों एवं रस-रसायनों में अल्प मूल्य की घातुओं को स्वर्णादि जैसी उच्च मृत्य की धातुओं में परि-घतंन फरने की अद्मुत एवं विलक्षण क्षमता उपस्थित है। द्यायस्यकता है केवल उनकी सहनिम्न गवेषणा से हूँढ़ निकालने भी। तभी तो भारत के महान् रक्षायनज्ञ आचायं नागाजुन ने यह प्रण किया चा-

'मिछे रते करिप्यामि निर्दारिविमदं जगृत' सूत्र कैसे उत्पन्न होता है?

> बाहारस्य रसः मारः मारहीनो मलद्रवः। शिराशिस्तव्यसं नीतं वस्तौ मूबस्वगाप्तुयात्।। (शंक्ष्यं घर संहिता पूर्व गण्ड ६-६)

अभिप्राय यह है कि पदवाशय में शोषित जल रकत- अ वाहिनियों द्वारा रक्त में और वहां से वृक्कों द्वारा क्षरित होकर वस्ति में पहुँचा दिया जाता है। तब वस्ति से यह मूत्र के रूप में बाहर फेंक दिया जाता है। आधुनिक विज्ञान भी थोड़ा वहुत वातों में हेर-फेर करके इसी तथ्य को अभिव्यनत करता है। सूत्र रोग के शेद—

म्ब्रक्षये वस्तितोदोऽल्प गृबता च।।
(सु॰ सू॰ ४-११)

सूब्रक्षये मूत्र कुच्छं मूत्रवैवर्ण्यमेव च।

पिपासा वाधतेचास्य युखं च प्रिशुष्यति।।
(सु॰ सू० १७-७१)

मूतं मूत्रवृद्धिं मुहुर्मुहुः प्रवृत्ति वस्तितोदगाद्यानं च॥ (सु॰ सू॰ ९४-२५)

ऊपर के उद्धरणों में मूत्रक्षय और मूलवृद्धि इन दो प्रकार के मूल रोग के लक्षणों का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

मूत्र स्वस्थावस्था में एक रात-दिन में १२ तोला (लगभग १॥ किलो) निकलता है। इस मात्रा में हास होने पर वस्ति में चुभने के समान पीड़ा, पेणाव में कमी, पेणाव में कठिनाई, पेणाय के रंग में परिवर्तन, अधिक प्यास और मुख का सूखागन प्रतीत होता है।

- इसके विपरीत मूत्र की वृद्धि होने पर मूत्र का अधिक मात्रा में आना, मूत्र का अधिक वार आना, मूत्र का पुनः पुनः देग से उपस्थित होना, वस्ति में सूई चुभने जैसी पीड़ा और अफ़ारा होना आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

इनके बितिरकत बोजोमेह (Albuminuria), उदवृक्क क्षय (Addison's disease), गतिशील वृक्क (Mobable Kidney), जीर्ण वृक्क जोष (Chronic Paranehymatous Nephritis), तीज वृक्क जोष (Acuts
nephritis), सधुमेह (Diabetes) मृत्रावरोध (Retention of Urine), विस्त्रिशोध (Cystitis), वृक्काक्ष्मरी
(Renal Calculus), वृक्कशूल (Renal Colic),
सान्तर वृक्क प्रवाह (Intestitic) Nephritis) द्यादि
विविध प्रकार के मूच सेगों का उत्लेख भी वेद, पुराण,
चरक, मुश्रुन वास्भट एवं प्रांड्य संहिता के विविध
स्थलों पर मिलते हैं जिन सक्का उल्लेख यहां विस्तार भय
से नहीं किया जा सका।

6 6 2 6

अनेक स्थलों में तो मूत्र रोग एवं वसकी चिकित्सा की छोटी छोटी कहानियां भी पढ़ने को मिलती हैं जो अति विस्मयकारिणी हैं।

जहां तक विविध ग्रत्र रोगों एवं उनके निदानारूप सफल काय एवं प्रत्य चिकित्सा का प्रश्न है हमारे ऋषि महर्षि किसी से पीछे नहीं थे। एक स्थल पर ऐसा उत्लेख है कि एक धनी, किन्तु कन्जूस महा सेठ के पुत को मूत्र आना बन्द होगया था । लाख प्रयास किया किन्तु मूत्र त्याग न हुआ। वस्ति (मूत्राशय) मूत्र से लवालव भर कर काफी तनाव की स्थिति नें आ गया। रोगी कण्ट और पीड़ा से बेचैन था। जब कोई घरेलू उपाय कारगर नहीं हुए तो महासेठ ने समीप के वैद्यक विद्या में पार्गत एक महिंप की बुला लाये। उन्होंने रोगी की नाड़ी-परीक्षा की तथा ताने तरवूज के फल का छिलका लाने को आदेश दिया। तत्क्षण आज्ञा का पालन हुआ। महर्षि ने 'उसे पिसवाकर रोगी को पिला दिया और इसे थोड़ी-. थोड़ी देर पर पिलाते रहे। कुछ ही क्षणों में रोगी को धाराप्रवाह म्ब फूट पड़ा। मूच त्याग के सारे अवरोध एवं कव्ट्दूर हो गये। सारे परिवार में प्रसन्तता की लहर दौड़ आई। महासेठ ने पर्याप्त पुरस्कार और सामग्री के साय महंिष को विदा किया। छः महीने के वाद रोगी को फिर मूत्र आना वन्द हो गया। पहले जैसी हालत पुच: उत्पन्न हो गई। कंजूस महासेठ ने सोचा महिंप को बुलाने में वड़ा खर्च है और उन्होंने मान गैर-बूजे के छिलके से चिकित्सा की थी; क्यों न हम भी वैसा करके अभीष्ट फल प्राप्त करें। अतः उसने भाल भी तरबूजे के छिलके को मंगाकर महिष के अनुसार ही उचित मात्रा में पीसकर रस निषोड़ रोगी को पिला दिया। ऐसा उसने कई बार किया। किन्तु यह क्या? लाभ के बदले में रोगी का वस्ति प्रदेश और भी अधिक सूज (फूल) गया तया तनाव बढ़ने से वेचैनी और भी बढ़ गई। जब रोगी मूछित होता दीख पड़ने लगा तो महासेठ ने विवश हो महपि को वुलाया। उन्होंने रोगी की, नाड़ी परीक्षा की, ऋतु एवं समय पर नजर डाली (महान वैज्ञानिक तथा परमाणुचिक हथियारों इवं जलीप-योगी ऊर्जा के आविष्कर्ता सलवर्ट आन्स्टीन ने भी सापे-क्षवाद के सिद्धान्त में यह स्तप्ट कहा या कि काल, दिशा, त्रातु, स्थान आदि सवका प्रभाव वस्तु पर पड़ता है और

उनके अनुरूप ही उसमें क्रियाएँ होती हैं) तथा पूनः दर-- बूजे का छिलका मंगाने को आदेश दिया। महासेठ ने कहा-श्रीमान् ! यह उपचार तो पहले ही किए जा चुके हैं; किन्तु उनसे कोई लाभ एहीं हुआ, मर्ज बढ़ता गया, .ज्यों ज्यों ददा की गई और अयंती हालत ऐसी नदतर हो गई कि प्राण-प्रवेह कब उड़ जाय कोई पता नहीं। महर्पि ने कहा-मंगाओं तो सही ! बाजा का तुरन्त पालन हुआ। छिलका आते ही महर्षि ने उसे पिसना उसके निनोडे रस को आग पर थोड़ा गरम करवाया तथा उसे रोगी को पिला दिया। इस बार तो मान एक खुराके से ही रोगी का मूत्र त्याग हो गया, सभी कण्ट दूर हो गये। रोगी भला-चंगा हो गया। सभी विस्मय विमुख हो एक दूसरे का मुंह टकटकी लगाकर देखने लगे और कहने लगे कि इन्होंने कोई जरूर जाद-टोना किया है। इसी वीच स्वयं महिंप ने रहस्य का उद्घाटन किया। उन्होंने कहा - इसमें जादू-टोना की कोई वात नहीं है। सव काल और ऋतुका अन्तर है। उस समय ग्रीष्म ऋतुका और गर्मी का समय था, इसलिए बिना गर्म किये. स्वरस विलाया और लाभ हुआ। इस समय शीत ऋतु और वेहद र्हंड का समय है इसी हेतु स्वरस गरम करके पिलाया और वैसा ही जाभ हुआ। चूँकि आप इस विद्यान को . नहीं जानते थे अतएव मूल वात की योड़ी सी गड़वड़ी से आपसे कोई लाम उपलब्ध नहीं हो सका।

इसी प्रकार की बहुत-सी आख्यायिकाएँ, कृषाएँ एवं छोटे-छोटे उल्लेख आप प्रन्थों में देखने को मिलते हैं जिनमें मूत्र रोग से सम्बन्धित अधिकांश विवरण हैं। प्राचीन समय में जब सिद्ध योगी या गहात्मा फ्रोधित या अप्रसन्त होते थे तो प्रायः मूबावरोध होने का आप देते थे। अध्यात्म ग्रंथ में एक स्थान पर ऐसा उल्लेख है कि जब सुकन्या से च्यवन ऋषि की बांखें अनजान में फूट गई तो दुःख की दारुण ज्वाला से चिन्तित हो क्रोध में ऋषि ने सुकन्या के पिता सम्राट और उनके सैनिकों को यह श्याप दे दिया कि उनके मूब त्याग होना बन्द हो जाय। उन सभी के मूब साना बन्द हो गये। फिर जब सुकन्या ने ऋषि को पित रूप में स्वीकार कर लिया तो उन सभी

- शेपांश्रीपृष्ठ २६ पर देखें i



क्षायुर्वेद जगत के अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिनामा वैद्यराज श्री जगदीणप्रताद गर्मा आचार्य अन्तर्राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान के अध्यक्ष हैं। वापके इस लेख-प्रसाद पर हन आभारी हैं। आयुर्वेद शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार अनुभूत योग सिहत प्रस्तृत लेख पटनीय एवं मननीय है (

—विशेष सम्पादना ।

कुछ विद्वान सूत्र रोग की गणना यद्यपि एक बहुत साधारण रोग में करते हैं और विभिन्न हम में इससे सम्ब-नियत रोगों का वर्णन मिलता है किन्तु वास्तव में यदि देखा जाय तो यह भी एक बहुत भयद्धर मूत्ररोगाधिकार है और जो ९ ७ ममें बताये हैं, 'उनमें ३ ममों की प्रधानता है, उनमें दिस्त ममें, हृदय ममें, शिरःममें प्रधान माने गये हैं। अतः धाचायों ने तीनों ममों की रक्षा का विशेष उल्लेख किया है।

हुन्ये मूर्वित वस्तौच नृणां प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
तन्मात्तेषां सदा यत्नं कुर्दीत परिपालने।।
नर्मे की व्युत्पत्ति से भी ज्ञात होना है कि इन तींनों
मर्नो में किसी भी प्रकार से यदि आधात होजाय तो प्राण
नष्ट होजाते हैं।

'मारयन्तीति मर्माण अथवा मरण कारित्वात् ममं, इसकी चिद्धिमुधातु के मिनन प्रत्यय करने पर होती है। जियते अस्मिन् इति ममं अर्थात् जिस पर आवात लगेने से मृत्यु हो जाती है। गर्म स्थान में होने वाले रोग असाध्य होते हैं यहा "मर्माध्यिष्ठण्ठाये हिये विकाराः मूच्छंन्तिकाये विविवाः नराणां। प्रायेण ते क्रच्छुतमा भवन्ति नरस्य यत्नै-रिम साध्यमानाः ॥ इसलिये उपरोक्त प्रमाणों से जिसको बाप्तोपदेश माना जाता है। मूत्र सम्बन्धि जितने भी गोग हैं उनना किसी न किसी रूप में स्थान भेद से बन्ति मर्म में अभिन्त सम्बन्ध रहता है। शक्ते ही आजवल मर्भन अनुगान को प्रधानमा जी अस्कृति है विन्तु आयुर्वेद का निद्धान्त तो अतव्यों है। यह टीक है कि आयुर्वेद में भी दी प्रवार की परीक्षा रोग विद्यान में मानी गई है। इसके

साथ ही आप्तोपदेश को आधारभूतसिद्धानंत माना है

वस्तिममं से सम्बन्धित मूत्ररोगों की जो गणना है उसमें गम्भीरता से तिचार करना चाहिये। चरक ने नानात्मज, सामान्यज रोगों की परिभाषा में जहां मूत्र रोग वहां सामान्यजाः रोगों की परिभाषा में धाते है। वहां सूत्र स्थान में अध्दो मूत्राघाताः और चिकित्सा के तिमर्भीय २६ वे बध्याय में इसका मूत्रकृच्छ के रूप में उल्लेख है।

व्यायाम तीक्णीपध रूक्षमद्य प्रसंग नित्यद्रुतपूष्टयानात् । कानूपमत्स्याध्यणनादजीणात्

स्युम् वक्रच्छापित्णागिहाप्टी ॥३२॥ • पृथङमकाः स्दैःकृपिताः

- विदानैः सर्वेऽधवाकोपमुपेत्प वस्तौ । मूत्र स्यमार्गं परिशोडयन्ति

ं यदा तदा मूत्रमतीह कृच्छात् ॥३३॥ तीवणा रजा वंभणवस्ति

मेन्द्रेस्वस्पगुहुमूं वभयतीह वातान् । पीतं सरक्तं सवनं नवाहं क्रच्छान्मुहु मूं वयतीहिपत्तान् ॥३४॥

वस्तेः स्विनस्य गुरुत्व शोधी मूत्रं

सिवच्छं कफमूबकुच्छे।

इसी संदर्भ में घरक ने ति नर्मीप सिद्धि में दिस्त रोगों का विशेष वर्णन किया है। यहां मनं की परिनाषा में वरितममं को थी विशेष महत्व दिया है। यथा—

न्प्तोत्तरं मर्मणतमस्मिन्छरीर रवन्ध पाखा समाधित अग्निवेषः तेयाभन्यतमा पीडायां समधिका पीडा भवति । चेतना निवंध वैशेष्यात्। तत्र शाखाधितेभ्यो मर्मभ्यः स्कन्धा भिनानि गरियान्ति शाखानां सदाश्रितत्वा । अस्कन्धाभिते-भ्योहद्वज्ति शिरांसि तन्मुलत्वाच्छरीरस्य ॥

वस्ति मर्म मेंपुनः तेरह रोग विशेष उल्लेख किया है—
मूत्रावसादो जठरं कृच्छमुत्संग संचयौ ।
मूत्रातीतोऽनिसाप्ठीला बात वस्त्युष्ण मास्तौ ॥२४॥
यात कुण्डलिका ग्रन्थि विड्धातो वल्ति कुण्डलम् ॥
त्रयोदशैते मूत्रस्य दोपास्ताल्लिगतः शृणु ॥२५॥

ुमाधविनदान में १३ प्रकार ही मूत्राघातरोग में गणना की है और सुश्रुत ने केवल बारह का वर्णन किया है। जैसे—

"वातकुण्डिलकाष्ठीला वातवस्ति तथैवच । सूत्रातीत सजठरोम्त्रीत्संग क्षयस्तथा ।। सूत्रप्रन्थि मूबगुक्रं मुण्णवात तथैवच । मूत्रोत्सादी द्वीचाऽपिरोगाः द्वादण कीर्तिताः ॥"

सुश्रुत ने वहित कुण्डल मूत्रकृष्ठ का उल्लेख नहीं किया है। मूत्रश्रुक एक अधिक नाम संज्ञा मानी है। यह आप्तोपदेश अन्य संहिताओं में भी वर्णन है। आजकल प्रत्यक्ष में जो भी मूत्र सम्बन्धी विकार नये नये नाम संज्ञा से उद्बोधित हो रहे हैं उनकी जय पीड़ा, सम्प्राप्ति, कारणे, ह्यान, लक्षण देखते है तो प्रत्यक्ष और अनुमान के साथ उनका पूरा समन्वय हो जाता है। इस सन्दर्भ में कवि. हव. गणनाथ सैन जी ने नया पथ प्रदर्शन किया। कुछ विद्वान यद्यपि उनके प्रति ऐसी धारणा बनाते रहे हैं कि स्वर्गीय किव. जी ने आप्तोपदेश को अधिक महत्व न देकर प्रत्यक्ष क्षीर अनुमान को विशेष आधारभूत मानकर आयुर्वेद के साहित्य का सूजन किया है किन्तु भारीर के विषय में कुछ

स्थलों में ही उनके प्रति ऐसी घारणा सम्भव हो सकती है। वास्तव में उन्होंने तो एक नया प्रथ प्रदर्भन आयुर्वेद मनीपियों के लिए किया है वह भी एक प्रकार से आप्तोप-देश के सिद्धांत की-उन्होंने तिरस्कृत नहीं किया। बाज जो नए नए रोग देश काल के अनुसार उत्पन्न हो रहे हैं। आचार्यों ने कहा है कि व्याधियां वस ख्य है। यदि किसी व्याधि का नाम नहीं है तो उसमें कोई लज्जा नहीं करें।

· चिकित्सा के सम्बन्ध में किन कारणों से रोग उत्पन्न होते हैं उन कारणों को दूर करना चाहिए।

संक्षेप में कुछ प्रयोग प्रस्तुत किये जा रहे हैं। मूत्र व्याधियों में स्वतन्त्र रोगों में जो प्रयोग किये हैं उनमें पञ्च तृणमूल—का प्रयोग करते हैं। खरबूजे का कार यव-क्षार पापाण भेद नीचे एवं लिखा शिलाजत्वादि चूर्ण।

शिलाजीत -पीपल, पापाणभेद, बड़ी इलायची समान भाग लिया जाता है। अनुपान भेद से सूत्र सम्बन्धी सभी रोगों को जांत करता है। इसी प्रकार 'वृवक रोग में पुन-चैंबार्ध्टक क्वायें और तृणपञ्चमूल की सौपिधयां मिश्रण करके देते हैं।

.४. गोक्षुरादि गूगल-इसका मूच रोग की प्रत्येक अवस्था में प्रयोग करते हैं। चरक पाण्डुरोगाधिकार का शिलाजत्वादि बटक वृक्क रोग में विशेष रूप से प्रयोग करते हैं। वृदक रोग में सर्वतो भद्ररस विस्व पत्र रस से प्रयोग करते हैं। वृदक रोग में सर्वतो भद्ररस विस्व पत्र रस से प्रयोग करते हैं। वश्मरी रोग में वरुणादि क्वाथ यवक्षार मिलाकर सैकड़ों की संख्या में सैकड़ों रोगियों की पथरी निक्षली भी है जों सुरक्षित है। इसी प्रकार मूच कुच्छू में केवल खरवूजे के वीजों का प्रयोग किया गया। हिंह

आर्ष ग्रन्थों में मूत्र रोग विज्ञान

पृष्ठ २७ का रोपांश

के मूत्र खुल गये। विदित हो कि योगध्यान और चक्र-भेदन साधना के हिण्टकोण से कुण्डिलनी नाड़ी, जो योगियों की शक्ति का आदि स्रोत है, के समीप ही गुद-मार्ग एवं मूत्र मार्ग रहता है। अतएव श्राप जो कुण्डिलनी नाड़ों के जाग्रत होने पर ही फलीभूत होता है, का अनि-ण्टकारी प्रभाव इन पर ही अधिक पड़ सकता है। नीचे मूलाधार चक्र और उसके ऊपर स्वाधिष्ठान चक्र हैं। इसी मध्य कुण्डिलनी नाड़ी शिविलिंग पर तीन फेरा लगाये हुए सर्प की भाँति सोई पड़ी रहती है। योग साधना से जब यह जाग्रत होती है तो सुपुम्ना निलका के मार्ग से शनैः शनैः या एकाएक ऊपर सहस्रार की बोर वढ़ती है। इस मध्य इसे मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा, बिन्दु विसर्ग आदि कई चकों को पार करना पड़ता है। स्वाधिष्ठान चक्र मूलेन्द्रिय के ठीक़ पृष्ठ प्रदेश में है, अतएव मूच्योग एवं स्वमूलपान योग साधना के महत्वपूर्ण अनुसंधान के प्रमुख विन्दु है जिन पर वृहत् रूप से शोध अपेक्षित है।

— भाचार्य हा॰ महेश्वरप्रसादः 'उपाशकर' चीफ रार्जन—एम॰ हास्पीटल, मंगलगढ़ (समस्तीपुर)

शाबीर पद्म पर राकविदेशनात्मक अस्यवन -उत्ति हिन्दि है।

डा० (श्रीमती) शोभामोवार डा० जयराम यादवर डा० यज्ञदत्त शुक्ल शोः पी०सी० जैन कि स्नातकोत्तर शारीर विभाग-राजकीय लायुर्वेद महाविद्यालय, जखनऊ (उ० प्र०)

కపైం ఇస్టు ఇస్టుం ఇస్టుం

सायुर्वेद की मान्यताओं के अनुसार मानव शरीर के मूल दोप धातु एवं मल हैं। इनकी साम्यावस्था ही शरीर की प्राकृत सबस्या है अन्यया दुःख या विषमता की स्थिति है। शरीर के सङ्घठक द्रव्यों में से शरीर दोप कियात्मक द्रव्य है। रोग या दुःख के शरीर और मन दो साथ्य होने के कारण दोप भी शारीरिक और मानस ही हैं। दोष विषमता को प्राप्त होकर दृष्यों (धातु एवं मल) को प्रभावित कर रोगोत्पत्ति के कारण होते हैं। गर्भ स्थापना काल में इनमें से एक ही प्राकृत उत्कटता प्रकृति के निर्माण का कारण होती है। रस रक्तादि सम धातु शरीर के घारण एवं पोपण के प्रति उत्तरदायी हैं। ये विकृत दोपों के द्वारा प्रभावित होने के कारण दूष्य हैं। केवल धारण करने वाली रचनाओं को उपधातु संज्ञा प्रदान की गई है। अनि की क्रिया के परिणामस्वरूप मलों की उत्पत्ति सायुर्वेदिक साचार्यों ने व्याणत की है।

मल साम्यावस्था में शरीर को धारण करते हैं और इनके निहेरण से शरीर का शोधन होता है। जठराग्नि की क्रिया के परिणामस्वरूप बाहारमलों यथा-पुरीय मूत्र एयं वायु की तथा धात्वग्नि की क्रिया के परिणामस्वरूप पित्त, कक, मल, स्वेद, नख, लोम, केशश्मश्रु बादि मलों की उत्पत्ति होती है। ग्ररीर के तीनों संगठक द्रव्य अपना पोपण आहार पचनोपरान्त निमित आहार रस से ही प्राप्त करते हैं। मूत्रवह संस्थान एवं मूत्र निर्माण प्रक्रिया से सम्बन्धित अनेक गट्यों का प्रयोग आयुर्वेक्षीय आचार्यों ने किया है। ग्ररीर की इन क्रियाओं से सम्बन्धित जिसका विवेचन बाद्युनिक चिकित्सा विज्ञान में उपलब्ध है, के परिप्रोह्य में कायुर्वेद में विजत शब्दों की विवेचना प्रस्तुत

करने का प्रयत्न किया आयेगा। आयुर्वेदीय आचार्यो ने विभिन्न रचनाओं से सम्बन्धित भव्दों के प्रयोग के सम्बन्ध में एक रूप नीति का पालन नहीं किया है। इसलिए उत्तरवर्त्ती आचार्यों ने उन भव्दों का अर्थ भिन्न-भिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है। इन भव्दों का निश्चयात्मक अर्थ प्रस्तुत करना सत्यन्त दुरूह कार्य है। इस सम्बन्ध में सर्वी-धिक प्रमुख उदाईरण धमनी, भिरा, स्रोतस् का दिया जा सकता है। अथवेवेद में मूत्रवह संस्थान से सम्बन्धित रच-

स्जदह संस्थान (स्टार्ववाराजा)

Seamete Act

चित्र क्रमांक-- १

¹ जिमान्स्ट्रोट्टर

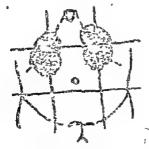
नाओं में आंत्र, गरीनी एवं वस्ति का उल्लेख किया गयाहै। शाष्यकार सायण ने यत व्यक्त किया है कि आंत्र से निकलने वाली मूलाणय को यूल प्रदान कराने वाली पार्श्व स्थित को नाड़ियों को गवीनी कहा जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि अथवंवेद के काल से ही सूत्र निर्माण के सम्बन्ध में यह ज्ञान था कि आंत्र वह रचना है जो गवीनी के माध्यम से मूलाणय को मूल की प्राप्ति की प्रक्रिया कराता है। इसी कारण सम्भवतः कुछ उत्तरवर्ती आचार्यों ने बांक शब्द द्वारा वृक्क के ग्रहण का उल्लेख किया है। मूलवह संस्थान से सम्बन्धित निम्न रचनाओं का उल्लेख आयुर्वे-दीय आचार्यों ने विभिन्न सन्दर्भों में प्रस्तुत किया है—

१—वृदक, २—मूतवह स्रोतस्, ३ मूत्रवह धमनी, शिरा और नाड़ी, ४ -वस्ति, ५ वस्तिसर।

(१) वृक्क वृक्क शब्द की व्युत्पत्ति उक्तदाने जिसका अर्थ ग्रहण करना, से की गई है। यह संख्या में दो होते हैं। इस शब्द का प्रयोग दिवचन में किया ग्या है। यह कोण्ठों के मध्य में पृष्ठिभित्ति से लगे हुए स्थित होते हैं। यह चरक संहिता में उल्लिखित है। सुश्रुत के

शरीर में वृक्कों की स्थिति

चित्र - २



अनुसार वृक्त मांस पिण्डों से निर्मित वाम एवं दक्षिण पार्श्व में स्थित रचनायें हैं। इनका आकार गोल है और यह रवत और मेद के प्रसाद से निर्मित हैं। इसका उल्लेख भी सुश्रुत संहिता में उपलब्ध है। शारङ्गधरकार ने वृक्त के कार्यों का उल्लेख करते हुए इसे जठरस्थरत मेद का (उदरस्थ नेद का) पुष्टिकत्ता बताया है। इस सन्दर्भ में जठरस्थ रस मोद का उल्लेख करके आचार्यों ने वृक्त हारा उदर्शत मोद की विशेष पुष्टि की है। शारङ्गधर की टीका यूढ़ायं दीपिका में वृक्त के अग्रमांस की वृक्त कहा गया है। इस रचना को मोदोवह स्रोत्स से सम्दिन्धत उसके मूल के रूप में विश्वत किया है। इसी टीका में वृक्त को आहार जलवाही शिरा का मूल कहा गया है। म्रीणिक विकास की इर्टिट से यह रचना मातृज अवयव कही गई है।

सुश्रुत के टीकाकार डल्हण के अनुसार शी वृदक मांस से ् ही निर्मित अवयव हैं।

आधुनिक काल के सुश्रुत के टीकाकार डा॰ घाणेकर और गणनाथ सेन के अनुसार वृक्क शब्द के द्वारा 'रीन्स या किडनी' नामक अवयवों के प्रहण करने का निर्देश किया गया है। जबकि इन्हीं के समकालीन आचार्य डा॰ बी॰ एन॰ वनर्जी उनके इस मत से सहमत नहीं हैं। इनके अनुसार वृक्क स्तन्य ग्रन्थियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उन्होंने अपने कथन की पृष्टि के लिये निम्न तर्क प्रस्तुत किया है—

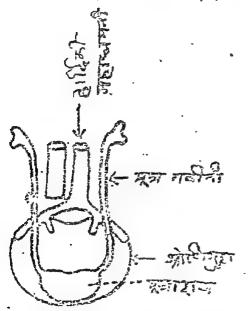
- 9. भ्रीणिक एवं क्रिया शरीर की हिन्द्र से वृक्क नामक रचना का किडनी के कार्यों का कोई भी सम्बन्ध कहीं भी बर्णित नहीं है।
- २. इस रचना का सम्बन्ध बाठ प्रकार कैमूत्रकृच्छू, तेरह प्रकार के मूत्राघात, चार प्रकार की अश्मरियों और बीस प्रकार के प्रमेहों के संदर्भों में कहीं वर्णित नहीं है।
- ३. वृक्क शन्द द्वारा स्तन्य ग्रंथियों के ग्रहण का आधार अमरकोश में उपलब्ध वृक्क राम्बन्धी वर्णन और शारङ्गधर द्वारा प्रदत्त उसके कार्य द्वारा किया गया है।
- ४. किंडनी शब्द का ग्रहण रचना शरीर की हिंदि से इस काचार्य द्वारा बस्ति शब्द के अन्तर्गत सिम्मिलित कर लिया गया है। इसलिए वृक्क और किंडनी शब्द में कोई समानता प्रतीत नहीं होती है। यद्यपि वृक्क शब्द का मूत्र-निर्माण से कहीं कोई सम्बन्ध उल्लिखित नहीं है, फिर भी ढा॰ इनर्जी के इस कथन का खण्डन निम्न तथ्यों के बाधार पर किया जा सकता है—
- (अ) समस्त आयुर्वेदिक आचार्यो ने वृक्कों का उल्लेख कोण्ठांगों के अन्तर्गत किया है। इससे यह स्पष्ट है कि यह रचना उरोगुहा के बीच में स्थित है।
- (व) जैसाकि पूर्व में इंगित किया गया है कि चरक तथा सुश्रुत गादि आचार्यों ने चृत्रक की स्थिति उदरगुहा में कही है न कि उरोगुहा में । आयुर्वेदिक आचार्यों के इस कथन के परिश्रेक्ष्य में असरकोश के वर्णन का आयुर्वेद के संदर्भ में कोई महत्व नहीं है ।
- (स) डा॰ बी॰ एन॰ वनर्जी के अनुसार वृक्क द्वारा जठरस्य मेद का पोपण किया जाता है। यह स्तन्य ग्रंथि संदर्भ में निराधार है एवं तथ्यहीन है।

(द) आयुर्वेदीय संहिताओं में ऐसा कोई संदर्भ उप-लब्ध नहीं है, जिसके आधार पर कहा जा सके कि वृक्क, स्तन्ययाहिनियों एवं स्तन वाहिनियों के समान विकसित व्यवस्था में केवल स्थियों में ही पाया जाता है।

हा० वनर्जी ने स्वतः अपनी भ्रांति को स्पष्ट किया है, क्योंकि उन्होंने पृक्ष शब्द के द्वारा ही अधिवृक्क ग्रंथियों के ग्रहण का भी उन्लेख किया है। इसलिए किसी भी प्रकार डा॰ बी॰ एन॰ वनर्जी का कथन स्वीकार नहीं है। उन्होंने वस्ति शब्द के द्वारा वृक्क या किडनी नामक रचना के ग्रहण का जो वर्णन किया है वह भी मान्य नहीं है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बायुर्वेद में विणत वृक्क शब्द किडनी का पर्याय है। अष्टांग संग्रहकार वाक्सट ने

शब्द किडनी का पर्याय है। अव्टांग संग्रहकार वाग्यट ने भारीर में कुल सात आभयों का उल्लेख किया है, जिसमें मूत्रा-शय की भी उणना है। इन साशयों से निवद्ध अंगों की गणना के प्रसंग में मूत्राभय से निवद्ध अंग के रूपमें वृक्ष का उल्लेख हुआ है।

मूत्रवह स्रोतस चरक के अनुसार एक है जिसका मूल बस्ति (मलाशय) और बंक्षण है तथा सुश्रुत के अनुसार ये दो होते हैं जिसका मूल वस्ति और मेण्ड्र (शिश्न) है।



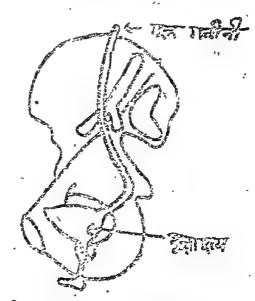
चित्र २-उदरगुहा तथा श्रीणि प्रदेश में पीछे की कोर सूत्र ग्लीनिकाओं की स्थिति।

वाग्भट का ज्ञयन चरक के समान है। विब्विद्यात रोग की सम्प्राप्ति का वर्णन करते हुथे मूद्रवह स्रोतस शब्द का प्रदोग एक वचन में किया गया है। चरक ने विषम बात द्वारा पुरीप में मिश्रित होकर विसर्जित किये जाने का जल्लेख किया है। माध्यकार ने भी अश्मरी निदान के संदर्भ में वृक्क शब्द का उपयोग एक वचन में किया है। मूत्रवह स्रोतन के वास्तविक रूप का भान करने के लिए



चित्र ४-पुरुप की मूत्रनलिका, पौरुप ग्रन्थिं तथा मूत्राशय का काट दाम पार्श्व ते

यह आवश्यक है कि स्रोतस शंद्र की पहले समझां जाये जौर उस अयं को मूत्र के संदर्भ में घटित किया जाये।' स्रोतस, शिरा, धमनी और नाड़ी इन सभी रचनाओं से भिन्न हैं, ऐसा भी आयुर्वेदीय दाचार्यों ने स्वीकार किया है। यह भी सर्वमान्य है कि स्रोतस भी रचनाएँ हैं जिनके



चित्र ५-श्रोणिशदेश में मूत्र गदीनी का मार्ग

माध्यम से परिवहन एवं श्रदण का कार्य मुम्पादित होता है। सवण शब्द से द्रव्यों के निष्यन्दन, पारगमन एवं निस्तवण आदि का बोध करना चाहिए। इसका ताल्पर्य

Tan Ren fallabert

है कि जिस रचना के माध्यम से जपयु क कियायें हो सकती हैं, वे स्रोतस हैं। स्रोतस शरीर के द्रवीय भावों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर वहन भी करते हैं। इससे यह भी स्वष्ट होता है कि ये अत्यन्त सूक्ष्म, दीर्घानार, जालमय रूप में ग़रीर में स्थित हैं। चरक ने इन्हें विविध - अण् अंतरिक्ष से सम्वन्धित कहा है। स्रोतसों के साथ चरकें ने अयन और मुख इन दो शब्दों का भी उल्लेख किया है। चक्रपाणि ने इस पर टीका करते हुए कहा है कि मुख वे छिद्र या प्रवेश मार्ग है, जिनके माध्यम से द्रव्य किसी निलका या वाहिनी में प्रविष्ट करते है। बहुन करने वाली निलकाओं को अयन शब्द के द्वारा महिं ने कहा है, यह टीकाकार ने स्पष्ट किया है। मुखों से प्रविष्ट होकर प्रसादाख्य और मलाख्य 'अयन' को माध्यम से स्रवित होते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान को परिवहन भी किये जाते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि स्रोतस मान्द द्वारा बायुर्वेदीय आचार्यों ने उन रचनाओं का उल्लेख किया है जिसमें परिवहन और परिगमन एकं साथ सम्भव ं होता है। विभिन्न आचार्यों की मूत्रवह स्रोतस के परिपेक्ष्य में विभिन्न टीकाकारों ने भिन्न-भिन्न वर्थ प्रस्तुत किये हैं।

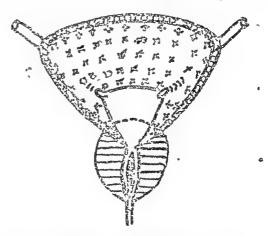
चिहा ६ व ७-पीरुप ग्रंथि की अन्य अङ्ग के साथ स्थिति ।

A. एक पार्श्व से दूसरी पार्श्व की ओर काट

B. ऊपर से नीचे की ओर काट

चरक और सुश्रुत हारा प्रस्तुत सूत्रवह सोतसों के परिपेक्ष में यह कहा जा सकता है कि सुश्रुत हारा प्रस्तुत सूत्रवह सोतस सम्यन्धी विवेचन गणनाथ सेन हारा विणत गवीनों के विवेचन से सामन्त्रस्य प्रदिश्चित करता है। चरक ने सूत्रवह स्रोतस का उल्लेख करते हुए उसमें दो प्रकार की रचनाओं के संयुक्त होने का आभास प्रदान किया है। प्रथम वे जो मूत्र परिवहन से सम्बन्धित हैं, दितीय वे जो उनके अभिश्यन्दन के प्रति उत्तरदायी हैं। प्रथम रचना सुश्रुत हारा विणत सूत्रवह स्रोतस या गवीनी के समान दिखायी पड़ती है। जबिक दूसरे वर्ग की रचना वृद्ध या किहनी के वृक्काणुओं के समान कार्य करती हुई प्रतीत होतो है। यण्ट्रांग संग्रह के रचित्रता वाग्मट एवं सुश्रुत ने मूत्रवह नाड़ी के द्वारा इन्हीं रचनाओं का उल्लेख किया है, क्योंकि उनके अनुसार यह सूक्ष्म एवं असंख्य हैं और इनके माध्यम से ही मूत्र का निश्यन्दन वस्ति में होता है।

नाड़ी, धमनी और शिरा शब्दों का प्रयोग आयुर्वेदीय आचार्यों ने भिन्न-भिन्न-भ्यलों पर किया है। मूत्रवह नाड़ी

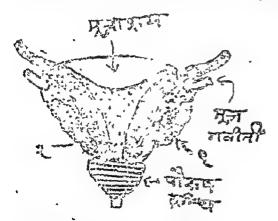


चिहा ५-मूत्राशय एवं पौरुप ग्रन्थि का काट (अन्दरका दृश्य दिखाने हेतु)

का उल्लेख चरक ने सिद्धि स्थान में वस्ति के स्थान सम्बन्धी विवरण प्रस्तुत फरते समय किया है। इसी प्रकार वाग्मट एवं सुश्रुत ने भी इन्हें वसंख्य सुन्म रूप में विणत किया है। टीकाकार डल्हण ने कहा है कि मूत्रवह मूत्र-धमिनयां शाखा, प्रशाखाओं में विभक्त होते हुए १०,१०० और हजारों की संख्या में हो जाती हैं। मूत्रवह घमिनये का प्रयोग सुश्रुत ने अधोगामिनी धमनी के रूप में किय है। यह पिताणय से मूत्र और स्वेद का विवेचन करती ALEN CHOUNTERFEEDERIN.

हैं। यह धमनी, मूत्र एवं वस्ति का घारण और यापन करती है। वाग्मट ने भी अद्योगामिनी घमनी में मूत्रवह धमनी को समाविष्ट किया है। भाविषश्र ने इस धमनी के कार्यों में मूत्र में घारण एवं चालन का उल्लेख किया है। भाव भिश्र ने कहा है कि मलद्रव का जलीयांश मूत्र-वह शिराओं के हारा ग्रहणी से वस्ति में ले जाया चाता है। णारक्षधर ने भी इसी प्रकार का वियेचन प्रस्तुत किया है। इसकी टीका गूढार्थदी दिका में बाहार जलवाही शिराओं का मूल वृक्कं किया है। चरक ने मूत्रवह नाड़ियों के द्वारा जिन रचनाओं का उल्लेख किया है, उनसे गदीनी का ग्रहण किया जा सकता है। सुश्रुत और वाग्भट द्वारा प्रदान किया, मूजबह धमनियो और नाडियों का विवेचन चरक द्वारा प्रस्तुत मूत्रवह नाड़ियों के विवेचन के समान है। अनेकों उत्तरवर्ती टीकाकारों ने आयुर्वेद के विभिन्न संदभीं को प्रहण कर इन्हें मूत्रवह संस्थान से सम्बन्धित इत रचनाओं के संदर्भ में विधिन्न प्रकार के विवेचन प्रस्तुत किये हैं। जैसे-पन्दाण्य द्वारा मूत्राशय का ग्रहण, यामाश्रय द्वारा वृश्क का ग्रहण, किन्तु यह तर्क और तथ्य की कसौटी पर किसी भी प्रकार उचित नृहीं प्रतीत होता है।

वस्ति--आचार्यो ने स्यूल गुद, मुश्क, सीवनी शुक्रवह



चित्र ६-पुरुष के मूत्राशय पीछे की और देखने पर १-शुजाशय, २ - शुक्रवाहिनी नितका

नाड़ी और मूत्रवह नाड़ियों के समीप अलावु के फल के समान रचना बताई है। यह शिराओं और स्नायुओं से परिपूर्ण रहती है। इसे 'तनुत्वक' विधेषण प्रदान किया गया है, जिसका अर्थ है कि इनकी भित्ति पतली जीर कलासय है। वाग्मट ने इसे धन्वाकार तथा पेशी और रकत से निर्मित माना है। यह मूत्र का संचय स्थल है, और प्राण का आयतन है। चरक ने इसे अम्बुवह स्रोतस का विश्राम स्थान कहा है। मूत्रवह स्रोतस, मूत्र-वह धमनी, मूत्रवह शिरा और नाड़ी इससे सम्बन्धित रंचनायें हैं। इसके संदर्भ में वस्ति, वस्तिसिर, वास्तिविक, वस्तिमुख और वस्ति हार आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। इनमें से वस्तिसिर शब्द उसके बुब्न भाग को वस्तिद्वार या वस्तिमुख, वस्ति का अधोष्ट्रिद्व है। इसीसे अन्तः प्रसेकीय द्वार जुड़ा रहता है। जामनगर से प्रकाशित चरक संहिता में वस्तिसिर की वस्ति का अध्वंभाग स्वीकार किया गया है, क्योंकि टीकाकार इल्हण ने भी इसी प्रकार का मन्तव्य दिया है और चक्रपाणि ने नाभि के नीचे की ओर कहा है। इन घट्यों का प्रयोग भी इन दोनों शब्दों का प्रयोग एक दूसरे से सम्बन्धित रचनाओं के रूप में किया है। चरक और मुश्रुत ने वस्ति की ममें फे अधीन वर्णन किया है। टीकाकारों ने इसके स्थान के सम्बन्ध में 'नाभि पृष्ठयोर्मध्ये' कहरूर उसकी स्थिति को स्पष्ट किया है।

मूत्रवह संस्थान के अवयवों से सम्बन्धित आयुर्वेदीय आवार्यों द्वारा प्रस्तुत विवेचन द्वारा यह स्पष्ट है कि इस संदर्भ में इतनी छांति सम्पायतः अलग-अलग व्यक्तियों के-द्वारा प्रथक-प्रथक आचार्यों के परिपेक्ष में अपने-अपने मावों का प्रदर्शन किया गया है। इनके फ्रमबद्ध स्पष्ट ज्ञान के लिए यह आवश्यक है कि सभी संदर्भों को क्रम से रखकर उनका अध्ययन आधुनिक ज्ञान के परिपेक्ष में किया जाये। प्रस्तुत विवेचन के आधार पर विभिन्न आचार्यों के मतों को चित्र ज्य में इस लेख में प्रारम्भ में दिये चित्र फ्रमांक १ से प्रदिश्त किया जा सकता है।



डा० पी०सी मिश्रा¹ डा० जयराम यादव² डा० जे०एन० मिश्र⁸ डा० यज्ञदत्त शुक्ल⁴ डा० पी०सी० जैन⁵ स्नातकोत्तर शारीर विभाग, राजकीय **वायुर्वेदिक** महाविद्यालय, लखनऊ।



मिहिप चरक के अनुसार मूत्र अन्न का किट्ट हैं । चतु-विध आहार के पाचन स्वरूप प्रसाद एवं किट्ट भागों की उत्पत्ति होती है। प्रसाद माग या आहार रस धातुओं का पोपण करता है तया किट्ट भाग स्वेद, मूत्र, पुरीष, वात, पित्त, कफ आदि मलों का पोषण करता है। आहार के किट्ट भाग से इन मलों की साम्यावस्था आजीवन गरीर में बनी रहती हैं तथा पोपण होता रहता है, वाग्मट भी इसी मत से सहमत हैं। सुश्रुत के अनुसार चतुर्विध आहार का आमाशय एवं पक्वाशय के मध्य स्थित पाचक पित्त के द्वारा पाक हो जाता है और रस, मूत्र तथा पुरीप का विभाजन होता है। पक्व आहार का सार भाग और सार-हीन भाग मल द्रव कहलाता है। इसका जलीय अंश शिराओं द्वारा जब वस्ति में पहुंचता है, तब इसे मूत्र कहते हैं। अद्योगामिनी णिराओं के कार्य वर्णन प्रसंग में सुश्रुत ने कहा है कि पिलाशय में पहुंचकर ये धमनियां पक्व आहार के मूत्र पुरीप और रवेद का विमोचन करती हैं। इस स्थल के व्याख्यान में डल्हण का कथन है कि पक्वाणय में आहार जो रस, मूत्र और पुरीष में विभाजित हो जाता है, वह वास्तविक रूप से अन्न रूप में ही नहीं रहता है। इसी प्रकार जल भी जो सामान्य रूप से ग्रहण किया जाता है। इसका तात्पयं यह है कि वह द्रव (तोय) जिसे उदक, कहा जाता है, पक्व आहार का उत्पादन है जो विवेचन के पश्चात भावी मूत्र का उत्पादन द्रव्य है। श्री उपेन्द्रनाय दास ने भी यही मत अपने लेख, Where is urine produced' में व्यनत किया है। उनका कथन है कि मूल दो

रूपों में होता है। प्रथम मताख्य दूसरा मलमूत । धमलाख्य ही कालोपरांत मलमूत होकर शरीर से बाहर निकृतता है।

मुश्रुत के अनुसार पक्वाशय में स्थित मलधराकला मल के विभाजन का कार्य करती है। आमाशय और पनवाशय मे संचरण करने वाला समान वायु पाचक पित्त के सहयोग से भुक्त आहार का पाचन और रस, मूत्र, पुरीष के विभाजन के लिए पाचक पित्त जठराग्नि, भूता-ग्नियों और धात्वग्नियों की सहायता से होता है। इसका तात्पर्यं यह है कि पक्वाशय से शोषित जलीयांश, जिसे पूर्व में उदक कहा जा चुका है, सम्पूर्ण शरीर में रस रक्त के रूप में परिश्वमित होते हुऐ सम्पूर्ण शरीर में भूताग्नि एवं घात्विग्नयों द्वारा उत्पन्न होने वाले जल में घुलनशील मल द्रव्यों को एकत्र करता है। यही उदक त्वचा के विदीण ' होने पर नसीका के रूप में निकलता है। अग्नि के प्रभाव-वश रोककूपों में पहुँचकर स्वेद और मूत्रवह स्रोतस् में स्रवण क्रिया के पश्चात् निकल कर वस्ति में पहुंचने पर मूत्र सज्ञा प्राप्त करता है। महपि सुश्रुत ने मूत्र निर्माण प्रक्रिया के भौतिक रूप का वर्णन करते हुए स्पष्ट मत न्यक्त किया है कि परवाशय से जाने वाली मूत्रवह नाड़ियां वस्ति को उसी प्रकार पूर्ण करती है, जिस प्रकार विभिन्त नदियां सागर की जलापूर्ति करती है। नाड़ियों के मुख अति सूक्ष्म होने के कारण इन्द्रियातीत होते है। इन्हीं नाड़ियों के मुखों से निष्यन्दन क्रिया के द्वारा वस्ति की पूर्ति मूत्र द्वारा जागृत एवं स्वप्नावस्था में निरन्तर होती रहती है। इस घटना क्रम की तुलना महर्पि ने गले तक

हैं। कर धम के : है। वह हैं। किर शिर के इ না प्रदा चरा हैं। संदः इन प्रस्तु साम की होता

पानी में रखे नये घड़े में पानी रिस-रिस कर परिपूर्ण करने से किया है। विभिन्न टीकाकारों ने सुश्रुतं के इस कथन का विवेचन भिन्न-भिन्न हवीं में किया है। महर्षि चरक ने इस उदक का प्रनीण सम्पूर्ण शरीर में दस अञ्जलि वताया है। उदक रूप में शारीर परिभ्रमित होने वाला द्रव्य मूत्र का पोपक है। इसका परिश्रमण भरीर में शिराओं के माध्यम के रस, रक्त, वात, पित्त, कक बौर बीज रूप में होता है। इसी में भारीर के प्रत्येक देह पर-माणु में धात्विग्नयों एवं भूताग्नियों की सहायता से हीने वाले धातु पाक के परिणामस्वरूप उत्पन्न मल द्रव्य भी सम्मिलित होते हैं। मूत्रवह स्रोतस् तक इन सभी द्रव्यों को पहुँचाने का कार्य शायुर्वेदीय आचार्यों के अनुसार मूत्र-वह धमनियों द्वारा सम्पन्न होता है। मूत्रवह धमनी से म्त्रवह स्रोतस् में के जाने दाला दव पक्षाशय द्वारा शोपित द्रव से जिन्न होता है, नयोंकि मध्य के मार्ग में विभिन्न कारणों के प्रभावनण उसमे विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते हैं और कुछ नये पदार्थ यिल जाते हैं। सामान्य अवत्या में मूत्र को लाप्त और क्लेप्साथित माना गटा है। भाव्मिश्र ने इराके गुणों में अग्नि गुण की वृद्धि की है, और सुन्नुत ने मून में उप्ण, तीक्ण, लघु, कट् एवं लदण गुण वताये हैं। इसके अधम दो गुण अर्थात आप्यत्व और फफाश्रयत्य: उदक और रस से व्याप्त होते हैं, दशोंकि यह दोनों ही द्रव्य वाप्य हैं और इनमें क्फ की यधिकता है। रस का गल कम माना गया है। यह सम्भव हं कि नूत्र के सामान्य सङ्घटक द्रव्यों में से कुछ इच्य ऐसे भी हो सकते हैं, जिन्हें इस माध्यम से शरीर से बाहर निष्कासित किया जाता है। सम्भवतः इन द्रव्यों की उपस्पिति के कारण ही कक्षाश्रयी माना गया है। मृत्र के घोष गुण नयात भाग्नेयत्व, उत्णत्व, कटुत्व और सारत्व रक्त और पित्त से प्राप्त होने वाले सङ्घटक द्रव्यों से उप-लब्ध होते हैं। ये गुण घारीर में धातुपाक के परिणाम-स्वरूप उन मलद्रव्यों के भी प्राप्त होते हैं, जिन्हें रक्त. रस और मूत्र में प्रतिक्षेषित करता है। वनेकों व्याधियों में ऐसे मूजगत परिवर्तन परिलक्षित होते हैं, जिससे व्याधियों का नूत्रवह संस्थान से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। यह कयन भी जदक राहित रक्तरत और मूत्र के सम्बन्ध की सीर अधिक पुष्ट करता है। इस आधार पर यह कल्पना की जाती है कि घाट्यिन जिया के विषम होने के कारण

वहुत से ऐसे द्रव्य उत्पन्न होते हैं जो रक्तरस के सङ्गठन न को भी विषम कर देते हैं, बीर परिणामत: मूच के सङ्ग-ठन में भी तबनुसार परिवर्तन परिलक्षित होता है।

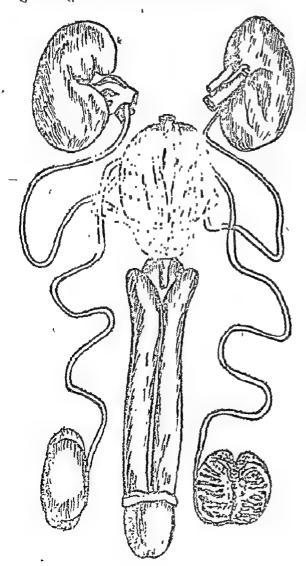
उपर्युक्त निवेचन के परिप्रक्षिय में यह स्पष्ट है कि
मूत्र और शरीर के अन्य इन्य के सध्य एक धनिष्ठ
सम्बन्ध है। यह भी एक सुनिदित तथ्य है कि मूत्र की
मात्रा एवं गुण सामान्य परिस्थितियों में मनुष्य के द्वारा ग्रहण
किये जाने वाले आहार से भी प्रभावित होते हैं। यह कार्य
रक्तरस के माध्यम से होता है। इसिलए रक्तरस के संगठन में होने वाले परिवर्तन मूत्र के संगठन को भी प्रमाणित करते हैं। उदाहरणार्थ — अत्यधिक मात्रा में ग्रहण
किये गये जल के परिणामस्वरूप मूत्र के प्रवाहण में भी
वृद्धि हो जाती है। यदि मनुष्य लवण एवं शीत द्रव्यों का
अधिक प्रयोग करता है, तो भी इनकी मात्रा मूत्र में बढ़
जाती है। शीत आंर लवण द्रव्यों के रूप में णर्करा और
सोडियम क्लोराइड (Nacl) का भी ग्रहण किया जा
सकता है।

मूत्र के सञ्चठन में अधिकांण ऐसे द्रव्य हैं जी पादन क्रिया के परिणासस्वरूप तो नहीं उत्पन्न होते, किन्तु धात्विन किया के फलस्वरूप घातु पाकजन्य होते हैं। यद्यपि आधुनिक क्रिया शारीर वेत्ताओं द्वारा मूत्र और पनवाशय का कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध तो स्थापित नहीं किया -गया है, किन्तु कुछ बाधुनिकतम अनुसन्धानकर्ताओं ने इस बात को स्वीकार किया है कि इन दोनों धर्मी में कुछ समानता अवश्य है, न्शोंकि मूत्रमार्ग से विसर्जित होने वाले द्रव्यों की मात्रा रक्त में बढ़ जाती है, तो उनका भी विसर्जन आंत्र के माध्यम से हाता है। उदाहरणार्थ-अधु-लनशील कैल्शियम बीर अन्य अयुलनशील द्रव्य । कुछ ऐसे भी द्रव्यों का नामोल्लेख किया गया है जिनका विसर्जन मूत्रमार्ग से होता है, किन्तु उनका निर्माण वृहदांत्र या पनवाशय से होता है यथा-इन्डोल एसिटिक एसिड, फिनाइल सल्फेट और इन्डिकेन । इनमें इन्डोन और इस्के-टाल ऐसे द्रव्य हैं जो पुरीप के प्राकृत गेंध के प्रति भी उत्तरदायी होते हैं। मूत्र में विसर्जित होने वाले इन्डोल, एसिटिक एसिड का निर्माण बीर शोपण वृहदांत्र में होता है। यह द्रव्य भौद्भिद् आहार द्रव्यों में दिद्यमान रहते हूँ। वतः इनके मूत्र में प्रकट होने की स्थिति स्पण्ट है। —ग्रेपांत्र पृष्ठ ४६ पर देखें।

र्गता एवं क्रियाशारीतः दिस्यविद्धे सिस्याप्ता

डा॰ विजयकुमार वार्णिय, कटरा वाजार, तहावर-टाउन (एटा) उ० प्र० डा॰ वीरेन्द्र कुमार, रेलवे रोड, कासर्गज (एटा) उ०प्र०

अाहार के द्रग रूप मल को मूत्र बतलाया गया है। आयुर्वेद में मूत्र की उत्पत्ति इस प्रकार बताई गई है—



चिला सं. १० - सम्पूर्ण मूत्र संस्थान - एक इष्टि में

"आहारस्य रसः सारः सारहीनो गलद्रनः सिराभिस्तज्जलं नयतं वस्तो मूत्रत्वमवाष्नुगात्"

अर्थात् आंहार के सार भाग की रस कहते है और ! जो सारहीन दव होता है बढ़ दवांग कियाओं के द्वारा वाचुित होकर अन्तोगत्वा वस्ति या मूनागय में पहुँचता दें जहां उसकी संज्ञा मूत्र ही जाती है। इस संकर्ष में वृक्षक का वर्णन वैदिक साहिन्य में प्राप्त नहीं होता। जबिक आधुनिक विज्ञान के अनुसार सम्पूर्ण, गरीर में संवहन करता हुआ रक्त वृक्क (Kidney) में पहुंचता है तो वहां हजारों वृक्ताणु (replace) के द्वारा रक्त में स्थित जल एवं त्याज्य अंशों को प्रयक्ष कर देना है और यह प्रपक्त किया हुआ इव हल मल ही मूत बहुनाता है।

मूत्र के निर्माणं तथा वाहर निकाराने की किया भें भाग लेने वाले अवयव निग्न हैं --

(१) वृदक (Kidne;) (२) गवीनियां (Ureters) (३) मुत्राणय (Urmary Bladder) (४) मूत्रपथ या मूलप्रसेक (Urethra)। खूरफ या किडनी—

इसे आजकल सामान्यतः गुर्वा या मूत्र पिण्ड कहा जाता है। गुर्दा(वृदक)को ही आधुनिक चिकित्सा विज्ञान परिभाषा के अनुसार इसे किछनीज (Kidneys) कहा जाता है। ये संख्या में दो होते है -

(१) दायी किडनी (२) वांदी फिटनी ।

वृत्क, उटर हुन न पीछे सी ओर मेरडण्ड के पार्श्व में दोनों तोर उदरावरणणता के पीछे स्थित होते हैं। इसके दानों ओर पर्याप्त माद में दमा एकवित रहती है। वृक्क को स्पर्ण द्वारा प्रकीत नहीं किया जा सकता है।

THE FIELD CHIE

किडनी का उपरी सिरा वारहवें दक्षीय क्योरका उपरी किनारे के लेविल पर और इनका नीचे का सिरा तृतीय कटि क्योरका के लेविल पर स्थित

होता है [युक्कों की स्थिति, देखें चित्र २ पर] । दांया वृक्क लीवर की उपस्थिति के कारण वांये तृंक्क की अपेक्षा लगभग एक से॰सी॰ नीचा होता है जबिक बांया वृक्क, हांये वृक्क की अपेक्षा साकार में कुछ लम्बा, कंम चौड़ा तथा मेरुदण्ड के अधिक समीप होता है।

वृदक का आकार लगभग सेम के. बड़े बीज कि समान होता है। इनका वर्ण लाल कत्थई होता है। इनका वर्ण लाल कत्थई होता है। इनकी लम्बाई ११ से० मी०, चौड़ाई ६से१० मी० तथा मोटाई ३ से०मी० के लगभग होती है। पुरुप में वृदक का वजन १२६ से१७० ग्राम। स्त्रियों में वृदक का वजन १९६ से १४० ग्रा। वृदक के दो सिरे पाये जाते हैं—ऊपरी सिरा

वृक्ष का द्रपरी सिरा अपेक्षाकृत अधिक मोटा तथा गोलाई लिये होता है और अधिवृक्ष (सुप्रारीनल) ग्रंथि के सम्बन्ध में रहता है, जब कि इसका निचला शिरा अपेक्षाकृत कुछ पतला तथा छोटा होता है।

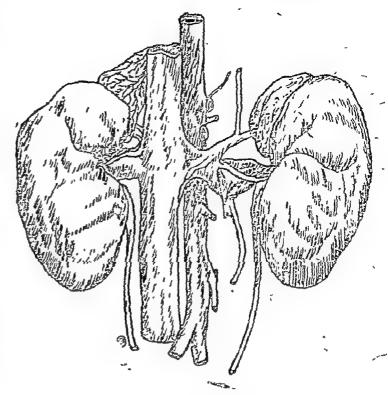
एवं नीचे का सिरा।

भग पृष्ठ (Anterior Surface)— ; यह पृष्ठ उत्तल होता है तथा उदर के सभी : लवयवों के सम्पर्क में रहता है परन्तु दोनों] वृष्क के सम्बन्ध में रहने वाले अवयव हे शिन्न भिन्न होते हैं—

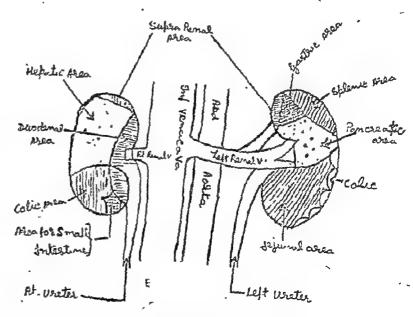
व पांगी वृतक का अग्र पृष्ठ का अधि-वै कांश भाग पकृत के दांगे भाग के सम्पर्क में रहता है। इसके ऊपर का संकुचित भाग ह दांगे अधिवृतक ग्रन्थि (Rtsuprasenal-

ह gland) के साथ रहने वाला भाग ग्रहणी (डुओडिनम) र के सम्बन्ध में रहता है। इस पृष्ठ का शेप भाग में दांये कॉलिक पर्लंग्जर तथा छोटी बांद के सम्बन्ध में रहता है।

ण यहत (लिवर) आदि अवववों के चनिष्ट सम्पर्क में संरहते तथा निरन्तर दवाव पड़ने के कारण इस पृष्ठ पर चिह्न फैंदन जाते हैं जो निम्न है-Hepatic Impression, Supra



चिटा सं. ११--वृक्कों का पश्चात् तल



्चित्र सं. १२ - वृक्क का अग्र पृष्ठ

renal Imp Duodenal Imp, Calic Imp, ression.

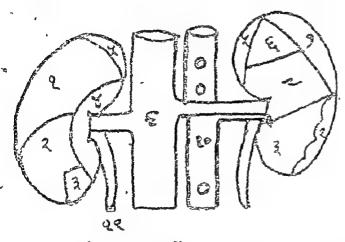
वांसा कृतक की अब प्ष्य के मध्य किनारे के ऊपर

के भाग के समीप रहने वाले छोटे से भाग पर बांधी,
सुप्रारीनल ग्रंथिस्थित होती है। और इस प्ष्य के पार्थीय

किनारे के साथ रहने-वाला ऊपर का २/३ भाग प्लीहा

The Stat Filascall

सम्बन्ध में रहता है। इस पृष्ठ का लगभग मध्य में द्नोम में यि से सम्पर्क रहता है। इस पृष्ठ के सध्य में सुप्रा-रीनल ग्रंथि, प्लीहा और अन्याशय के सध्य, इस पृष्ठ का त्रिकीणाकार स्थान आमाश्यय के सम्पर्क में रहता है। क्लोम और प्लीहा के नीचे शेष भाग जेजुनम तथा वाम कॉलिक प्लैक्जर तथा डिसेडिङ्ग कोलन के प्रारम्भिक भाग के सम्पर्क में रहता है। वांये वृक्क के अस पृष्ठ पर चिह्न—Supra-renal Impression Splenic Imp, Gastric Imp. Pancreatic Imp, Jejunal.& Coelic Impression.

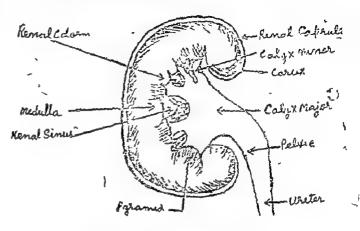


चित्र १३ — वृद्धों का पृष्ठ तल विम्नानुसार अङ्गों के सम्पर्क में रहते हैं — १. यक्त २. उड्डुक, ३. जेजुनम, ४. ब्रहणी, ५. अधिवृद्ध ग्रन्थि, ६. आमाशय, ७. प्लीहा, ८. क्लोम ग्रन्थि, ६ अधोपहाशिरा, १०. महाधमनी(Aorta) ११.मूत्रगवीनी

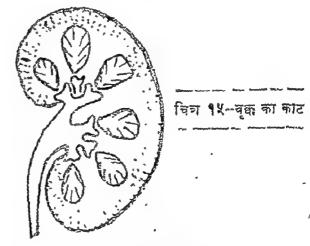
पश्चिम पूष्ठ—यह पूष्ठ उदरावरणकला से पूर्णतः रिहत होती है इसके पीछे पर्याप्त मात्रा में वसा संचित होती है। दिये एवं बांये वृक्क के पश्चिम पृष्ठ पर उदरगुहा की पश्चात् मित्ति का निर्माण करने वाली कुछ पेशियों पर आधारित रहते हैं। इस पृष्ठ, का ऊपर का भाग महा-प्राचीरा पेणी (Upper part Diaphragm Muscle) पर मध्य सीमान्त की ओर का भाग किट लिम्बनी दीर्घा पेणी (Psoss Major Muscle) पर, मध्य का भाग किट चर्तु स्त्रापेणी (Quadratus Lumborum Muscle) पर तथा वाह्य मीमान्त की ओर रहने वाला भाग वनुप्रस्थ चदरगुहा पेणी पर आधारित रहता है।

वृवक में दो किनारे होते हैं - पार्श्वीय एवं मध्य-ं (१) पार्श्वीय किनारा-यह उत्तल होता है।

विये वृक्त का ऊपर का भाग उदरावरण कला के सम्पर्क में रहता है जिससे यह प्लोहा से प्रथक रहता है और इसका नीचे का भाग डिसीण्डिंग कीलन के सम्पर्क में रहता है। दांये वृक्त की पाश्वं की किनारी उदरावरणकला के द्वारा यकृत से प्रथक रहती हैं।



विदा १४-- वृद्ध की रचना



वृक्क का मध्य किनारा यह किनारा ऊपर एवं नीचे में उत्तल और मध्य में अव्तल होता है। इसके मध्य भाग में एक छिद्र पाया जाता है जिसे वृक्क द्वार (Hilum) कहते हैं जिसमें से रक्त वाहिनियां, नाडियां एवं गवीनिका गुजरते हैं सिंगिया में सबसे आगे वृक्क सिरा, मध्य में वृक्क धमनी तथा सबसे पीछे गवीनी के श्रीण भाग रहते हैं। यह Hylum Remal Sinus तक पहुँचता है। इस Sinus में गवीनी ना शाकार और अधिक विस्तृत होजाता है जहां पर यह दो और तीन वड़ी भाषाओं में विभाजित हो जाता है जिन्हें Calyx Major कहते हैं। ये अनेकों छोटी-छोटी शाखाओं में विभक्त हो जाते हैं जिन्हें Calyx

To the fillest

Minor कहते हैं। ये साधारणतया संख्या में ७ से ९३ तक हो सकते हैं।

वृत्यक के उत्तर एक पतला आवरण चढ़ा रहता है।
है इस आवरण को आसानी से प्रथक किया जा ककता है।
प वृत्यक की परिधि वाले भाग को नहित्र्यस्तु (Cortex) तथा
व केन्द्रस्थ भाग को अन्तंबस्तु कहते हैं। अन्तंबस्तु (Meduहै lla) में पीतवर्ण के मसे १२ तक की संख्या में Pyraल mides पाये जाते हैं। ये आकार में नुकीलें (कानीकल)
में होते हैं जिनका आधार वृत्यक परिधि की और तथा इनका
नुकीला भाग शिखर भाग की और रहता है।

वृषक की वान्तरिक रचना—

बृक्कों में बहुत अधिक संख्या में फियाशील निलकायें होती हैं जिन्हें मूत्रजनन निलका कहते हैं। प्रत्येक निलका को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं:

(१) वृवकाणु (Nephron) (२) संग्राही निका (Collecting Tubule)।

१—हिनकाण (Nephren)—इसे पुनः दो मो भागों में विभक्त किया जा सकता है एक तो वह (सुभाग जो छने हुये श्रंश से शारीरोपयोगी तत्वों का है, पुनः शोषण का कार्य करता है। इसे वृक्क निकायें हों (Renal tubule) कहते हैं।

२ — वृत्क सम्पुट (Malpigian Corpusale) – यह इनकी संख्या प्रत्येक वृत्क में एक लाख के. लगभग अवहीती हैं। ये वृत्क के कार्टेन्स में स्थित होता है। वृक्क्मैलपीजियन कारपुसिल को दो भागों में बांटते हैं।

भिन्न (a) केशिकास्तकीय (Glomesulus)—रक्त केशिकाओं हारा निर्मित एक जान जैसी रचना होती कांझे । इसमें अभिवाही शाखा (Affesent duct) हारा रहतरक्त पहूंचता है और अपनाहीशोखा (Afferent

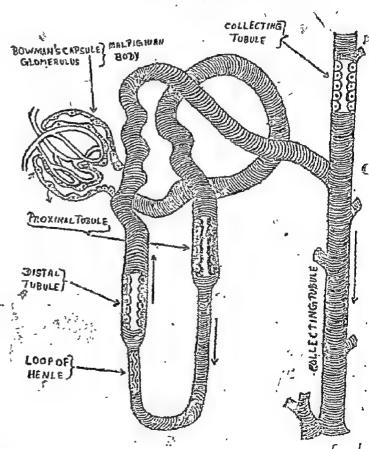
वाये gla के (※※※※※※※※※ वाये विन १६

केणिका स्तवकीय सम्पुट् अर्था अर्थ अर्थ अर्थ अर्थ अर्थ

धरहरे स्वन duct) रक्त को वापस लाने का कार्य करती है।

(b) केणिका स्तेवकीय सम्पुट (Glomerular Corpusale)-ये कप के आकार होता है जो कि नीचे की होर हक्क निका के नाम निरन्तर सन्विध्य रहता है। इसमें एक विधेप प्रकार की पनिष्मिक कला होती है जिसे Basement Membran कहते हैं। यह कला Semipermeable होती है जिसके कारण रक्त प्लाजमा में स्थित विधिष्ट पदार्थ इसके द्वारा छाने जाते हैं।

(१) वृक्क निका (Renal Tubule) - क्रमा-



चिन १७-- मूत्र कणिकाओं (Nephrons) की रचना एवं स्थिति

नुसार निम्न भागों से सेवनी होती है--Proximal Convoluted Part, Spiral Part, Henles Loop, Irregular Distal Convoluted Part.

(२) संप्राही निलका (Collecting Tubule) - इसका निर्माण वृषक निलका के आपस में मिलने से होता है। ये थोड़ी-थोड़ी दूरी पर आपस में मिल जाती हैं और अन्त में एक वड़ी निलका में जिसे duct of Bell hi कहते हैं

मूल रोगा चिकित्सा

जो Pyramids-में स्थित Papilac के क्य में खुलती है ये Duct of Belline कैलिक्स माइनर में खुलती है। ये कैलिक्स माइनर बापस में मिलकर कैलिक्स मेजर, का निर्माण करती है अन्त में ये। कैलिक्स मेजर बापस में मिल कर गवीनी निर्माण करती है और मूत्र को यूरेटर में लाकर छोड़ देती हैं। [देखें चिल्ल १४]

(२) गवोनी-

ये सूत्र को किहनी से मुहाशय तक ले जाने वाली दो निलकायें हैं जो किहनी के हाइलम से प्रारम्भ होती हैं और मुहाशय के नाधार भाग में जाकर खुलती हैं। इसका प्रारम्भिक भाग सधिक चौड़ा होता है। आकार में कीप के समान होता है। शेष भाग की चौड़ाई क्रमण कम होती जाती है और वह संकुचित होती जाती है साधारणतया यूरेटर की लम्बाई २४ से० मी० से २० से० मी० के लगभग होती है।

- (a) गवीनी श्रोणि—रीनल साइनस तथा ढाइलस में पाये जाने वाले यूरेटर के इस भाग की चौड़ाई सबसे अधिक होती है। आकृत कीप के समान होती है जिसका विस्तृत भाग रीनल साइनस में दो और तीन शाखाओं में विभक्त हो जाता है। इन शाखाओ को कैलिक्स मेजर कहते हैं। ये फैलिम्स सात से तेरह तक की संख्या में पुनः विभाजित हो जाते हैं। इन्हें कैलिक्स माइनर कहते हैं।
- (b) गवीनी का उदरस्य भाग—यह भाग उदरावरण कला के पीछे दीर्घा पेशी पर आधारित रहता है। इसकी पीछे से और्वीनाड़ी तथा सामने से अण्डकोपीय रक्त वाहिनियां (परन्तु स्त्रियों में हिम्ब रक्त वाहिनियां) गुजरते हैं। Common Iliac Vasseles के सामने से गुजरने के पश्चात् यह श्रेणी गुहा में प्रवेश करता है। दांगे गवीनी का प्रारम्भिक भाग साधारणतया हुगोडीनम के द्वारा आच्छादित रहता है। यह अधीमहाशारा के दक्षिण पार्थ्व में रहता हुआ नीने की ओर जाता है। श्रोणिगुहा के प्रवेश द्वार के सभीप यह Mesentary & Gleurn के पीछे से गुजरकर श्रोणी गुहा में प्रवेश करता है।

(c) गवीनी का श्रोणीय भाग-

पह भाग उदरावरण कला के बाहर रहता है। प्रारंभ में यह Greater Sciatic Notch के अग्रं सीमान्त के साथ-साथ श्रोणीगुहा पार्श्व एवं पीछे के भाग में रहता हुना नीचे की बीर जाता है। अन्त में यह इश्चिमल स्पाईन के सामने पहुंच कर मूत्राशय में मिलने के लिए मध्य की बोर मुड़ जाता है। यूरेटर का यह भाग पुरुषों में शुक वाहिनों (Vas Deserens) एवं शुक्राशय (Seminal Vesicle) के सम्पर्क में रहता है। स्त्रियों में यह गभशिय के बन्धन में रहता हुआ मूत्राशय के पाएवं में पहुँच कर एक दूसरे से ५ से० मी० की दूरी पर रहते हुए मूत्राशय भित्त में प्रवेश कर खुलते हैं।

(३) सूत्राशय या वस्ति-

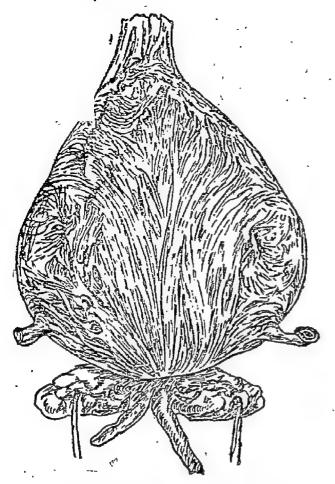
यह श्रोणीगुहा में रहने वाली एक थैंले के समान -रचना है जिसमें कुछ समय के लिए मूत्र संचित रहता है।



चित्र १५-म्त्राणय का अधः अग्र तल

इसका आकार समीपवर्ती अवयवों एवं मूत्र के कारण परिवर्षित होता रहता है। युवा व्यक्तियों में इसकी क्षमता १५० मि॰ ली॰ से ३०० मि० ली॰ के लगमग होती है। रचना की इंप्टि से मूत्राणय को निम्न भागों ये बांटते हैं—

(a) मूत्रामय का आधार भाग-यह मूत्रामय का पीछे की ओर रहने वासा भाग है जो तिकोणाकार होता है।



चित-१६ मूत्राशय का अध्वं प्रश्नात् तल



चित्र-२० स्त्रियों में मूलशय की स्थिति

स्त्रियों में यह योनि की अग्र भित्ति के सम्पर्क में रहता है तथा पुरुषों में मलाशय के सम्पर्क में।

- (b) ग्रीवा यह मूद्राशय का सबसे नीचे का संकु-चित भाग होता है जो भगास्यि सन्धि (Symphysis pubis) के तीन-चार से॰ भी॰ पीछे स्थित एक छिद्र के द्वारा मूत्रपथ के साथ सम्बन्धित रहता है। पुरुषों में यह भाग पीरुष ग्रन्धि के सम्बन्ध में रहता है।
- (C) शीर्ष (Apex) यह भगास्यि संधि के ऊपर की तरफ रहने वाला मूलाशय का सबसे आगे का भाग है रिक्तावस्था में मूलाशय में तीन पृष्ठ देखे जा सकते हैं-
- 9 अध्व पृष्ठ-यह त्रिकोणाकार, पुरुषों में यह पृष्ठ उदरावरणकला के द्वारा आवृत रहता है। यह उदरावरण कला पीछे की ओर मूत्राशय के आधार भाग के कुछ हिस्से को आवृत करती हुई यलाशय पर परावितत हो जाती है।
- २. वधः पार्श्वीय तल यह दांये और वाये भेद से दो होते हैं। यह पृष्ठ उदरावरणकला के द्वारा बनावृत होते हैं। सामने की ओर यह Retropubic pad के द्वारा भगास्थि से प्रथक रहता और पीछे की ओर यह फेशिया के द्वारा औदिरिक पेशियों से प्रथक रहता है। ४. मूत्रपछ (Urethra)—

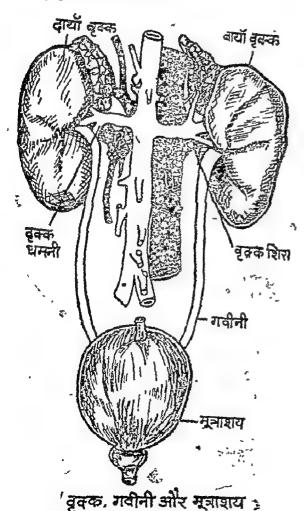
पुरुषों में मूत्रपथ की लम्त्राई ९८ से० मी० के लगभग होती है। यह मूत्राशय-ग्रीवा से प्रारम्भ होकर पौरुष ग्रंथि एवं शिश्न में रहता हुआ शिश्न मुण्ड पर एक छिद्र के रूप में खुलता है। इस प्रकार मूत्रपथ जिन जिन रचनाओं में स्थित रहता है इसके अनुसार इसे—

- (१) वस्तिद्वारिक मूत्रप्रसेक (Prostatic Urethra) यह पौछप ग्रंथि के मध्य में रहने वाला भाग है जिसकी चौड़ाई लगभग ३ से॰ मी॰ होती है। यह मूत्रपथ का सबसे चौड़ा भाग होता है। मध्य में कुछ चौड़ा होता जाता है और अन्त में संकृचित होकर मूत्रपथ के कला निर्मित भाग के साथ निरन्तर सम्बन्धित रहता है।
- (२) कलामय मूत्रपथ (Membraneous Urethra) यह Perineal Membrane के मध्य में रहते वाला लगभग २ से ॰ मी ॰ लम्बा भाग है। वह पौरुप ग्रंथि के
 शिखर से प्रारम्भ होकर शिशन का मूल द्वारि का (Bulb
 of the Penis) तक रहता है जहां पर यह Spongy
 Urethra) के साथ निरन्तर सम्बन्धित रहता है। मूत्रप्य
 —शेषांश पृष्ठ ६ ६ पर देखें।

स्त्रवह संस्थान के कार्यारम्भ पर दृष्टिपात एवं विकृति

श्री डी॰ एन॰ मिश्र¹ एवं सी॰ चतुर्वेदी², प्रसूति तन्त्रा विभाग [वाल रोग यूतिट] । भारतीय चिकित्सा संकाय, चि॰ वि॰ सं॰, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

आयुर्वेद मनीषियों ने नवीन जीवन का आरम्भ गर्मा-धान के समय से ही माना है। शुक्रशोणित जीव संयोग तु खलु कुक्षिगते गर्भसंज्ञा भवति। (च॰ शा० ४/५)



चित्र सं । १२

नवीन जीवन के धारण करने के रामय से ही उस गर्भस्य जीव में सम्पूर्ण अङ्ग रहते हैं।

स सर्व गुणवान् गर्भत्वमापन्नः प्रथमे मासि, संमूछितः सर्वे धातुकलुपीकृतः खेटभूतोमवत्यन्यक्तविग्रहः सद-सद्भृताङ्गावयव।। (च० ॥० ४/६)

यह सत् और असत् रूप में उपस्थित अङ्ग प्रत्यङ्ग कव प्रकट होते हैं।

वृतीये मासि सर्वेन्द्रियाणि सर्वोङ्गावयवाश्च यौग-पद्येनाभिनिवेतंन्ते। (च॰ गा॰ ४/११)

वस्तुतः इसी स्थिति का वर्णन धधुना वैज्ञानिक भी करते हैं। वालेख से सम्बन्धित विषय मूत्र निर्माण प्रक्रिया का प्रारम्भ ६ वें सप्ताह एवं १२ वें सप्ताह के मध्य प्रारम्भ हो जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि ६ वें सप्ताह के पूर्व अर्थात तृतीय माह प्रारम्भ होने के पूर्व भी मूत्रवह संस्थान का निर्माण प्रारम्भ रहता है। परन्तु जगका प्रत्यक्ष रूप तीसरे माह में होता है।

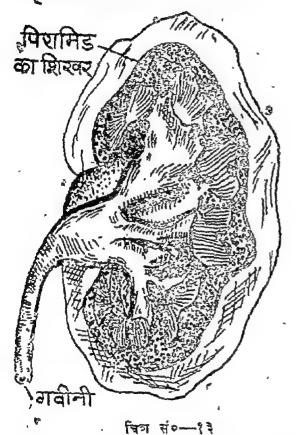
गर्मस्य शिशु के वृत्क के कार्य क्षमत्व के विषय में अभी भी वैज्ञानिक वितन मनन कर रहे हैं एवं स्पष्ट रूप से कुछ कह पाने में असमधं हैं। परन्तु प्रयोगणालाओं में किये गये परीक्षणों से यह पता चलता है कि स्तनपायी विभिन्न प्राणियों में यह वृत्क अनेक कार्य करता है यथा-

- —मूत्र की सघनता कम करना (Dilute)
- मंत्र को अम्लीय करना
- -फास्फेट का पुनः शोपण करना
- —आरगैनिक घातुओं का संवहन

युना सेवा निहिन्स

तमांत्रस्था में शिशु के उत्सर्जन कार्यों को करने में वस्तुतः अपरा ही सक्षम होता है। नवजात शिशु में यदि दोनों वृक्कादि मूत्रवह संस्थान के अंगों का निर्माण न भी पूरा हुआ हो (Renal Agenesis) तो भी शिशु के शरीर की ऊतकों की रचना में सामान्य शिशु से कोई अंतर नहीं मिलता।

वृक्क की बीच से काटागया



जन्म के तुरन्त बाद ही अपरा का स्थान वृक्कों को लेना पड़ता है। जो शारीरस्य जलीय अंश को स्थिर करता है। गर्भस्थ शिशु में वृक्कीय रक्त संबहन गति एवं वृक्कान्त्रमुख (Bowmans Capsule) स्थित केशिका गुन्छ (Glomerulis) छन्न गति (Filteration Rate) बहुत ही कम होता है परन्तु जन्म के बाद प्रथम कुछ दिनों में ही यह गति जमत्कारिक रूप से बढ़ जाती है। और प्रथम वर्ष में ही युवावस्था के समान हो जीता है। इसपरि- यतन में शरीर में र प्रकार के कार्यों का सहयोगहोता है—

ी व्कान्तर मूहम धमनियों के रक्त संचार में प्रति-) रोधारमक गनित में कमी।

२. हृदय से रक्त निकलने के आंश में वृद्धि । कुछ अन्य महत्त्र पूर्ण तथ्य—

प. वृक्त के वृक्तान्त्रों (Nephrons) में जो बाह्य भाग में स्थित होते हैं। उनमें रक्त संत भाग के वृक्तान्त्री की अपेक्षा देर से प्रारंभ होता है।

ेर जीवन के प्रथम वर्ष में ही वृवकान्त्रों का विकास पूर्णता की दृष्टि से हो जाता है। वृवकान्त्रों के समूह में वृद्धि ही वृक्क की वृद्धि का कारण जन्म के बाद होती है।

रै. जब गर्भस्य शिशु २ से २.५ किया. का हो जाता है तो नवीन वृक्कान्त्रों का निर्माण रुक खाता है,।

वृक्कान्त्रस्थित केशिकाओं के गुच्छ से छनन गति (Glomerular Filteration Rate-G. F. R.) वय जी.एक सार. (मि.ली. प्रति वर्ग मी. गरीर की माप प्रति मिनट)

नवजात १५ ३ दिन २० दितीय सप्ताह तक ३० चतुर्थ मास तक ३५ ६ माह से १ वर्ष में ४५ से ५० ३ वर्ष तक ५० से ७० नवयुवावस्था में १२०

४. फ़्रींक्शन रीनल प्लाजमा संवहन नवजात में युवा-वस्था की अपेक्षा अधिक होता है।

नवजात /.३२ से .३४ युवाबस्या .१८ से .२०

६. नवजात शिशु में जी. एफर आर. आन्त्र कार्य-क्षमत्व से अधिक होता है। इसीके परिणामस्वरूप नव-. जात शिशु में बहुत से तत्वीं का. पुनः शोषण नहीं हो पाता जो कि अधिक वय में हो जाता है। यथा फास्फेटस, जमाइनो एसिड्स आदि

७. ६३ प्रतिशत नवजात शिशु सूत्रत्याग २४ घंटे के अन्दर मूत्र बन्दर कर देते हैं। ६६% शिशु ४५ घंटे के अन्दर मूत्र त्याग कर देते हैं।

इ. सोडियम के संरक्षण की स्थित नवजात में अन्य अवस्थाओं से कम परन्तु अच्छी होती है।

जीवन के प्रथम कुछ दिनों में मूत्र की अम्लीयता

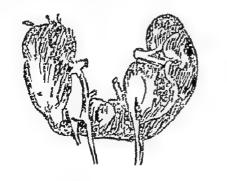
मुन रोगा चितिन्सा

कम रहती है। परन्तु दूसरे सप्ताह के वाद अन्यावस्था के समकक्ष आ जाती है।

सामान्य विकास क्रम के यह कुछ महत्व पूर्ण तथ्य हैं जो नवजात शिशु को अन्य वय के लोगों से अलग करते है। मूत्रवह संस्थान की रचनात्मक विकृति—

विशव के १० % लोग इस वर्ग की विकृति से पीड़ित हैं। इसमें से कुछ विकृतियां अल्प एवं लक्षणरहित होती हैं। इसमें से कुछ विकृतियां अल्प एवं लक्षणरहित होती है। ४५ % वृक्कजीणं रोग (Chronic Renal Failure) शैंशवावस्था में इन्हीं विकृतियों से होते हैं जो प्रायः अनुवांशिक होती है तथा प्रायः शरीर के अन्य संस्थाओं की विकृति के साथ होती है। मूत्रवह संस्थान की रचनात्मक विकृतियों के वर्गीकरण का एक प्रयास यहां पर दिया जा रहा है।

- 9. विकास के दृष्टिकोण से
- (अ) एक या दोनों वृतको का अपूर्ण विकास या न वनना — अनुवांशिक — कभी कभी
- (व) आकार में कमी—एक में अथवा दोनों में व् वृतक के लोब्यूल्स में कमी होना, या Calyces की संख्या में कमी, या वृतकाकार में कमी आदि
 - (स) दो के अतिरिक्त अन्य वृक्क' का निर्माण
 - २. स्थान एवं भाकार में परिवर्तन
 - (अ) अपने स्थान से एक या दोनों का च्युत होना
- (व) दोनों वृक्क का नीचे से जुड़कर घोड़े की नाल सहश शकृति बनाना । देखें नीचे का चित्र



चिला सं० १४

- ३. वृवक विभेदकावस्था में विकृति
- (अ) वृक्क में असामान्य ऊतकों का निर्माण-स्थानीय, सम्पूर्ण, एक ही वृक्क में, दोनों वृक्कों में।
 - (व) वृषक गुल्म विकृति।

(स) जन्मजात वृक्क गुल्म।

४. वृक्क एवं मूत्रवह संस्थान में अन्य संस्थानों की विकृति के साथ साथ विकृति—इस समूह में २४-२५ व्याधियों की गणना की गई है। सम्पूर्ण की गणना देना और वर्णन कठिन है। क्योंकि लेख का अनावश्यक अति विस्तार हो जावेगा। इसमें अन्य संस्थानों की विकृति (कान, नेत्र, अंगुलियां, क्रोमोजोम्स एवं जीनस) के साथ साथ वृक्क की कोई भी विकृति हो सकती है। मूत्रवह संस्थान की विकृति भी हो सकती है। यथा—

Fanconi Syndrome of multiple anamolies and aplastic anaemia

Oral Facial Jigital syndrome Congenital renal and ear syndrome Cat eye syndrome बादि

- ५. मूत्रवह सस्थान के अन्य अंगों में विकृति
- अ—वृक्ष के निकासी मार्ग, गवीनी मे अवरोध के कारण वृक्क का मूद्र एकन्न कर वृद्धि करना (Hydronephrosis)
- व मूत्र एकत्र कर गवीनी का फूलना (Hydro ureter)
- स-गवीनी वृद्ध (Mega ureter)
- a-Vesico ureteral Reflex
- य -- गवीनी में कोप बनाकर फूलना (Uretrocele)
- र—दोहरा हो जाना(Duplication of Kidney)
- ল—Ectopic ureteral insertion
- व-शिश्न के ऊपरी भाग पर मूत्रमागं
- ₩—Bladder exstrophy
- ग—शिश्न निकृति Posterior urethral valve and other anamolies. जिसके अन्तर्गत जन्मजात मूत्रमार्गं मे संकोच (Stricture) (Stenosis) परिवर्तिका एवं निरुद्ध प्रकश आदि व्याधियां भी होती हैं।

आयुर्वेद संहिता ग्रन्थों में भौशवकाल में अश्मरी के प्राय: होने का वृर्णन मिलता है। प्रमेह को कुलज विकार बताया है। परिवर्तिका, निरुद्ध प्रमश का वर्णन है।

इस प्रकार से प्रस्तुत आलेख में मूत्रवह संस्थान के निर्माण काल से कार्य करने की क्षमता का परिचय एवं विकृतियों का परिचय कराने का प्रयास किया है।

** दूत्र निर्पाण का आयुर्वेदोय सिद्धान्त एवं परीक्षण विधि ***

ढा॰ देवेन्द्रनाथ मिश्र¹

क्षाद्युनिक मतानुसार मूत्र निर्माण की जो प्रक्रिया प्रकाश में आयी है प्रत्यक्ष रूप में आयुर्वेद में ऐसी प्रक्रिया का कहीं भी उल्लेख नहीं है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उन्हें मूत्र निर्माण प्रक्रिया का ज्ञान नहीं था। सावश्यकता इस बात की है कि आयुर्वेद साहित्य को उनके सिद्धान्त के परिपेक्ष्य में देख कर समझने का प्रयास किया जाय। प्रस्तुत आलेख में ऐसा ही प्रयास किया है।

किट्टमन्नस्य विष्मूत्रम् (च. चि. १४)

हम जो भी बाहार (ठोस अथवा द्रव) ग्रहण करते हैं, वह अञ्चनहन्नोतस में पूर्णतयः परिपाक को प्राप्त होता है। तदोपरान्त उस पक्व आहार रस का दो भागों में विभाजन होता है—सार भाग एवं किट्ट भाग। यह किट्ट भाग भरीर से दो क्यों में निकलता है। ठोस भाग सक्कप में मला-गय से होकर, एवं द्रव भाग मूत्र स्वरूप वस्ति से होकर। उण्डकस्यं विभवते मलंधराकला

एण्डुक (Caecum) पर क्षुद्रान्त्र एवं वृहदान्त्र का मिलन होता है। अर्थात् उण्डुक में आकर क्षुद्रान्य समाप्त होती है और वृहदात्र का प्रारम्भ होता है। इस स्थल पर पत्र्व आहार रस का विभाजन होता है। सार भाग क्षुद्रान्त्र में भोपित कर लिया जाता है। अवशेष किट्टमाण वृहदात्र में भेज दिया जाता है। यहां पर मलधराकला होती है जो मल का विभाजन करती है। ठोस यस मला- शय में चला जाता है। द्रव मल एवं जल का जोपण हो जाता है।

मूबस्य वलेदवाहनम् । विक्लेदकृत्भूत्रम् ।
यह अतिरिक्त शोपण जो जलीय अंश का होता है
यही मूब का उपादान धातु है अथवा प्रारम्भिक तत्व है।
जो शरीर की सफाई करने में एवं वलेद (त्याज्य पदार्थ
शरीर के) संग्रह का कार्य गरता है।

इस तरह से हगारे गरीर में दो प्रकार से जल का शोषण हो जाता है।

- १. स्ट्रांत्र में सार भाग रस के साथ
- २. वृहदांत्र में मल द्रक रूप में

मूत्र निर्माण के सम्पूर्ण मार्ग को अथर्ववेद ने मात इतने में कहा है कि "यदान्त्रेम्योयगवीन्यों" अर्थात् मूत्र निर्माण वृहद्रांत्र (आंत्र) से प्रारम्भ होकर गवीनियों में समाप्त होता है। इसके मध्य की प्रक्रिया का वर्णन आचार्य शार्ङ्गधर ने इन शक्दों में किया है—

बाहारस्य रसः सारः सारहीनो मलद्रवः। सिराभिस्तज्जलं नीतं वस्तौ मूबत्वमाप्नुयात्॥

वर्यात् शिराजाल (Portal System) के द्वाराः शोषित वाहार रस एवं वृहदांत्र द्वारा शोषित मल द्रव सम्पूर्ण शरीर में एक साथ स्नमण करते हैं (रक्तवह संस्थान द्वारा) और अंत में मलद्रव वस्ति में पहुंचता है और मूत्र स्वरूप को प्राप्त करता है। व्हन्फ अवयद विचार विसर्श—

पंद्रह कोण्ठांगों में विणित दो गोलक या पिण्ड समान अङ्ग जो नाम एवं दक्षिण कुक्षिपार्थ्व में स्थित रहते हैं वह वृवक हैं।

व्का कुलि गोलकी।

वृतको मांसपिण्डद्वयम्, एको वामपाश्वं स्थितो द्वितीयो दक्षिणपाश्वं स्थितः । (डल्हण शा. ४/३१,

एवं नि. ६।१८)

वृतक की आंतरिक रचना क्या है माल स्यूल एवं सूक्ष्म घमनी, शिरा एवं तथाविध स्रोतस का समुच्य मात्र । आचार्य चरक द्वारा स्थल विशेष दृष्ट (अ,व) पर प्रयुक्त वसण या पाठान्तर का युक्क शब्द मूत्रवह स्रोतो मूलतया निर्दिष्ट होने से वृक्क का एक पर्याय ही होगा।

डा. देवेन्द्र नाच निश्न, वी. एम. एमे. एम. (आयुर्वेदाचार्य) (ल. वि.), एम. डी. बायु -प्रसूति तंत्र वाल रोग) (का. हि. वि. वि.) सिंटिफिकेट कोसे आव योग, तथा परिवार नियोजन ट्रेनिंग सिंटिफिकेट (वम्बई), डिप्लोमा इन्योग,(का.हि.वि. (क्लीनिकल रिजण्ट्रार प्रमूति विभाग चि. वि. सं. काशी हिन्दू विश्व विद्यालल वाराणसी आवासीय पता— डा. डी. एन. मिश्र, साकेत नगर प्लाट नं० २०, वाराणसी [उ० प्र०]

EN TROP FERRENCE I

- (ब) मूत्रवहानां स्रोतसां वस्तिर्मूलं वंक्षणी (बुक्की इति पाठ) चरक विमान ४/८
- . (ब) मत्रवहानां च स्रोतसां वंक्षणवस्तिप्रभवणा चरक निमान ४। द

वुक्क शब्द बुक्क का एक तत्सम शब्द है। "वृक्क आदाने" घातु से कन् प्रत्यय होकर निष्पन्न वृक्क शब्द सविवेक निष्यन्दन एवं पुनः शोषण क्रिया का संकेत हैं।

वृक्क की ईकाई आधुनिक विज्ञान में नेफांस (Nephrans) है। इसे ही आचार्य शार्ज्ज धर ने उप-युंक्त संदर्भ में स्रोतस से स्पष्ट किया है। आचार्य कश्यप ने कहा है कि सूक्ष्म स्रोतस एवं महास्रोतस भेट से दो प्रकार के होते हैं। महास्रोतस का वर्णन तो किया गया है पर सूक्ष्म स्रोतसों की गणना अधिक होने से वर्णनकठिन हैं।

स्रोतासि द्विविधान्याहुः सूक्ष्माणि च महन्ति च (काश्यव विचय शारीर)

महर्षि एवं शल्यतंत्र के प्रणेता आंचार्य सुश्रुत ने मूत्र-वहादि स्रोतसों को गोगवाही स्रोतस कहा है। टीकाकार डल्हण ने योगवह का अर्थ धमनी से योग रखना कहा है। "सिरा धमन्यो योगवहानि स्रोतांसि (सु.शा. ५.१५) धमन्या सहयोगं वहन्ति यानि स्रोतांसि तानि योग वहानि ""। डल्हण (जपर्योव)

यहां पर वृद्धवारमट का यह उद्धरण भी हण्टन्य है-

स चाधोमुखोअपि मूत्रवहासु नाडीसु सूक्ष्ममुखसहस्र-निष्यन्देन मूत्राख्येना अविरतं न वो घट इवाप्यु निमग्नमुखो अपि पाश्वेभ्योगम्भसा पूर्यते ।।

मूलवह नाडियो में होने वाले सूक्ष्ममुख सहस्त्रित्यंद को मूल कहना भी आधुनिक व्याख्या के समकक्ष रहता है। सहस्रों मूलवाहि स्रोतसों (Uriniferous Tubules) के भीतर सूक्ष्म घमनी गुन्छों का मूल रूप में होता है। इसके अतिरिक्त वृद्धवाग्भट्ट ने सप्ताथयों से प्रतिवद्ध कोच्छांगों के विवेचन में वृक्क का भी निर्देण किया है।

(वृद्ध वान्भट्ट शारीर ४)

६. मूत्र शुक्र

१०. उष्णवात

११. मूत्रोकसाद-पित्तज (सु॰)

या मृतसाद-कफज (स्०)

१२, विड विद्यात (च० एवं वाग्भट्र)

१३. बस्ति कुण्डल (चरक संहिता)

वस्ति कुण्डल नामक मूत्राघात

(वरक) मूत्रण्क का पर्याग है।

इतने विवेचन के बाद भी मूत्र निर्माण एवं वृक्क का सम्बंध आयुर्वेद में स्पण्ट नयों नहीं लिखित है—

१. कालक्रम में लिपिबद्धता में बृदि-जैसा कि पाठ भेद का चरक संहिता में एक उदाहरण दे चुके हैं। दूसरा उदाह-रण गणनाथ भेन ने (प्रत्यक्ष णारीर ज्योज्यन) में दिया है। 'सूक्ष्मत्यान्नोपलभ्यन्ते मुखान्यासां सहस्रसः' में कथित प्रणालियां निःसंशय वृक्कों में स्थित मूत्रनिर्माण प्रणालियां है। अतः "तर्पयन्ति सदा मूलं" के स्थान परः 'तर्पयन्ति सदा वृक्कों' तथा "घटो यथा तथा विद्वि वस्ति मूलेण पूर्यते" में शुद्धपाठ "घटो यथा तथा वृक्कों ततो वस्तिश्च पूर्यते" होना चाहिए।

२. आयुर्वेद ग्रन्थों में प्रयुक्त संज्ञाओं के प्रसंगवणात् अर्थभेद होना भी एक कारण है यथा वृक्क के स्थानपर वंसण।

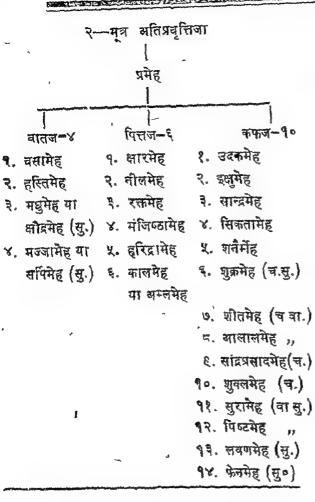
रे. आचार्य दामोदर शर्मा गौड़ के शब्दो मे "अधि-कांश आयुर्वेदीय किया शारीर और विकृत शारीर कोव्छांग परक न होकर दोपपरक एवं स्रोतसपरक है। अन्यथा गवीनीयों के माध्यम से मूत्रवह स्रोतस का अनुसंधान करने वाले आचार्य वृत्रक का अनुसन्धान न कर पाये हों, यह वात समझ मे नहीं आती।

मूत्रवह संस्थान के रोग

यह दो प्रकार के है—१. मूत्र अप्रवृत्तिजा २. मूत्र अतिप्रवृत्तिजा। आगे दोनों सारिणियों का अवलोकन करें—

6 Trans.	-
१—मूत्र अप्रवृत्ति	ाजा _
मूत्राघात	मूत्रक् च्छ्र
 वात कुण्डलिका 	४. दोषानुसार
२. वात अण्ठीला	चार भेद
३. वात वस्ति	५. अश्मरीजन्य
¥. मूत्रातीत	६. शुक्रजन्य
५. मूत्र जठर	७. रक्तजन्य
६. मूत्रोत्संग	
७. मूत्रक्षय	
मृत्र ग्रन्थि	*

Har for fatabeth



नोट-१-संख्या एवं नाम के विभिन्न अन्तरों को कोष्ठक में आचार्यों के नाम पर दर्शाया गया है यथा च. -चरक, सु.-सुध्रुत, वा.-वामट।

र--- इनके सम्यक अध्ययन से प्रतीत होता है कि मूत्रकृच्छ मे मूत्र के सङ्घटक तत्यों का वैषम्य या विकृति होती है तथा इसका सम्बन्ध धात्विन व्यापत या धातु चयापचय से प्रधान रूप से होता है। (च०चि० २६/३३)

३—मूत्र की नियत प्रतिक्रिया का परिवर्तन (Reaction Acidic or Alkali) या अति सांद्र होने पर मृत्रमार्ग के तन्तुओं पर निपरीत प्रभाव पहता है।

४ - मूत्राघात में मूल रूप से संस्थान में रचनात्मक विकृति होती है जिससे मूत्र प्रवृत्ति में वाधा पड़ती है। इसके कारण स्रोतदुष्टि के परिणामस्वरूप मूत्र के सङ्कठन में कालान्तर में वैषम्य होता है।

५-प्रमेह में मूत्र की अतिप्रवृत्ति को प्रमुख माना है।

बापुर्वेद संहिताओं के आधार पर मूत्र परोक्षण

मूत्र परीक्षण विधि—योगरत्नाकर ने इसका सुन्दर विवेचन किया है—

(१) मूत्र एकत्र करने का काल - निशान्त्ययामे घटि-काचतुरुटये उत्थापय वैद्यः किल रोगिणं च ।

(२) मूत्र एकत्र करने का पात्र—मूत्रं घृतं काचमपे च पाते।

(३) उत्तम परीक्षण योग्य मूत्र—तस्या वाश्यधारां परिहृत्य मध्यधारोद्भवं तत्परिधारमित्वा।

(४) मूत्र परीक्षण काल—सूर्योदये तत्सतं परीक्षते । अर्थात् रात्रि के अन्तिम प्रहर में चार घड़ी रात्रि शेष रहने पर रोगी को उठाकर मूत्र करायें, मूत्र की पहली धार को त्याग मध्य धार को कांच के पात्र में एकत्र कर सूर्योदय होने पर परीक्षण करें।

मूत्र लक्षण विषयक उद्धरणों की देखने से प्रतीत होता है कि मूत्र का परीक्षण दो प्रकार से भाषायें करते थे-

१. मूत्र की जानेन्द्रिय परीक्षा, और प्रश्न परीक्षा।

२. मूत्र की प्रायोगिक प्रीक्षा।

ज्ञानेन्द्रिय परीक्षा और प्रवन प्ररीक्षा

मूत्र के वर्ण, गंध, रस, गुर्ण (स्पर्ण), मूत्र में उप-स्थित पदार्थ और उपमानुसार परीक्षण एवं मूत्र के मूत्र प्रसेक से निकलने की प्रक्रिया पर आधारित प्रकृत के आधार पर परीक्षण होता है।

- (१) प्रश्न परीक्षण—यथा माता (अति है तो उदक मेह, नवीन ज्वर अल्प मात्रा में मूलकुच्छ्र) सश्च, -गुहुँ -मुह, विशीण धार वाला आदि ।
- (२) वर्ण हिरद्रा वर्ण (जिल्लावात, हिरद्रामेह), पीत वर्ण (जिल्लावात, मूत्रसाद, पैत्तिक पाण्डु कामला), ध्वेत वर्ण (कफ वातज व्याधि, उदनमेह, नवण मेह, मूलसाद), इसी तरह से रक्तवणं, मूल विवर्णता (बस्ति कुण्डल), पाण्डु वर्ण, सौद्र वर्ण, मसीवर्ण, गदला, निर्माल, स्वच्छ, नीलाभ, रक्तपीत (जीर्ण ज्वर), कृष्णपीत (असाध्य कामला) आदि।
- (३) गंध—मलगंधी (विड विधात), आमगंधी (रक्तमेह, मंजिन्छामेह), अम्ब्रगंधी (अम्लमेह), गंधरिहत (उदक्रमेह)।

En Por Edder

- (४) स्पर्श—उष्ण (उष्णवात, रक्तमेह, रक्तजं रोग याले मूत्रा में), शीतल, उदक, इक्षु, शीतमेह, विशव, वहल, विच्छिल, सांद्र(मूत्रोकसाद), विच्छिल (वस्तिकुण्डल, उदक मेह, कफज, रक्तिवित्त), सांद्र (सांद्रमेह, वस्ति कुण्डल) आदि।
- (१) रस—मधुर-मधुमेह, इक्षुमेह, शीतमेह, क्षौद्र मेह [क्षौद्ररस]। अम्ल—नीलमेह, अम्लमेह। लवण— लवणमेह, रक्तमेह। कदु—हरिद्रामेह। कपाय—मधुमेह।
- (६) मूत्र में पाये जाने वाले पदार्थ—रक्त (मूलो-रसंग, उठणवात, पित्तज मूलकृच्छ, रक्तज मूल कृच्छ, अश्मरी), फेन (कफ) युक्त (कफज मूलकृच्छ, नीलमेह, फेनमेह, शनैमेंह, बातज रक्तपित्त), निसंका (हिस्तिमेह), मूल में छोटे छोटे सिकतास्पी टुकड़े (सिकतामेह अश्मरी) तन्तुयुक्त लालामेह।
- (७) विशेष-कुछ सक्षण उपमा के आधार पर विशेष-हैं। यथा-जल के समान, क्षारोदक के समान, चाषपक्षी के पंख के समान, चावल के घोवनवत (अजीर्ण मे) आदि।

मू न का प्रायोगिक परीक्षण

- (१) सांद्र परीक्षण—मूत्र रख देने पर कुछ सूखने पर सांद्र हो जाय, तो यदि निर्मल हो तो सांद्रप्रसादमेह, यदि गंदला हो तो साद्रमेह।
- (२) तैल विन्दु परीक्षण—मू श को स्थिर पात्र में रखकर तेल की विन्दु डालते हैं और उसकी अध्ययन करते हैं।

अ-विभिन्न दिशाओं में फैलना-साध्यता एवं दक्षिण दिशा में निस्तार ज्वर क़ा सूचक है।

ब्-विभिन्न कोणों पर फैलाव बसाध्यता का बोतक है। स-बाकृति निर्माण यथा-पशुवत, शस्त्रवत (मृत्यु), पक्षीतोरण (निरोगता), मनुष्य या मस्तकृदय की संख्या में बने तो भूतदीप, चलनी सा छिद्र दीखे तो (कुलदोष, भेतदीय)।

व-गति-बिन्दु फैसने की गति तीव या मंद (साध्य या कुच्छ्)। यदि बिन्दु तल में बैठ जाय ती (असाध्य)।

य-दोध-सपिकार, मुक्ताकार, छ्लवत विस्तार, क्रमशः दातज, कफज एवं पित्तज मूलरोग का द्योतक है।

इस प्रकार मूल के परीक्ष्य भावों का संग्रह यहां किया गया है तथा उनके कुछ उदाहरण भी दिये गये हैं। आवश्यकतानुसार संहिता ग्रन्थों से न्याधि प्रकर्ण से परीक्ष्य भावों के वर्णन का संकलन किया जा सकता है। यथा अश्मरी का वर्णन तो आचार्य चरक ने किया परन्तु आचार्य सुश्रुत ने अश्मरी के स्वरूप, वर्ण आदि को देख कर दोषानुसार अश्मरी का वर्गीकरण भी कर डाला है। आज आवश्यकता है कि आयुर्वेदज्ञ इन संदर्भों को विषयानुसार संग्रह करें। फिर परीक्षण करके देखें, क्या सत्य है और क्या अतिश्योक्ति।

💥 पृष्ठ ३६ का भोषांग 💥

शांष एल्कोहल और फिनाइल सल्फेट और इंडिक में (इन्डाविसल सल्फेट) वृहदांत में निर्मित होते हैं, और उनका विसर्जन मूत्रमार्ग से होता है। टाइरोसीन और ट्रिप्पोफेन नामक द्रव्य भी वृहदात्र से शोषित होकर यकत में सल्फेट से मिलकर मूत्र के साथ विसर्जित होते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मूत्र के बहुत से मंगठक वृहदात्र से शोषित होने वाले उदक से प्राप्त होते हैं। मूत्र को वर्ण प्रदान करने वाला द्रव्य वाइल पिगमेंट, सोडियम क्लोराइड और बहुत से अकावंनिक सल्फेट भी इसी माध्यम से मूत्र को प्राप्त होते हैं। इस परिप्र स्थ में यह स्पष्ट रूप से कहा जाता है कि मूत्र और पनवाशय में एक निश्चित सम्बन्ध है। पदवाशय मूत्र के निर्माण मे तीन प्रकार से सहायक होता है—

१--- मूत्र के आवश्यक संघटकों को प्रदान करके।

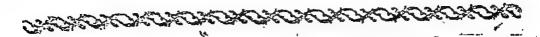
२—उन द्रव्यों का विसर्जन करके जिन्हें सामान्य रूप से मूत्र के साथ विसर्जित होना चाहिए।

३--- जल एवं लवणो का आहार प्रोपांण से घोषण करके।

बन्त में यह कहा जा सकता है कि आयुर्वेदीय मूत्र निर्माण किया सिद्धांत के संबंध में कुछ आपत्तियां तो निश्चित रूप से उठायी जा सकती है, ये आपत्तियां विभिन्न आयुर्वे-दीय सन्दर्भों में अलग-अलग अध्ययन करने से उत्पन्न होती है, किन्तु यदि सभी आयुर्वेदीय सन्दर्भों को एक साथ क्षमबद्ध विधि से आधुनिक ज्ञान के परिश्रेष्ट्य में अध्ययन किया जाये तो ऐसा प्रतीत होता है कि आयुर्वेदीय एवं आधुनिक सिद्धांतों में पूर्ण साम्य है। इस सन्दर्भ में और अधिक परिपृष्टि प्रकरणों को एक जित करने के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न आयुर्वेद अनुसन्धाता इस दिशा में विना किसी पूर्वाग्रह के मलगन हों।

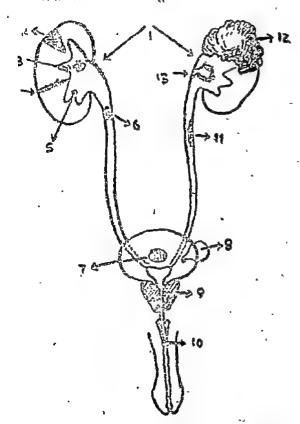
स्वारोगियश्चातिधियाँ.

विशेष सम्पादक—डा० गिरिधारीलाल मिश्र



इतिवृत्त--मूत्र रोगों का परीक्षण करने के लिए सर्वप्रथम रोग का इतिवृत्त प्राप्त करना चाहिए फिर उसकी शारीरिक परीक्षा और मूत्र की परीक्षा तथा अन्य विशेष परीक्षण अत्यावश्यक है।

लाक्षणिक परीक्षण-मूत्र सम्बन्धित रोगों के विविध



चित्र सं ० १५-- मूत्रवह संस्थानं के विविध रोग े

१. रक्तलाव २. अन्तःस्फान (Infarct) ३. वृक्काश्मरी ४. क्षाधातज विदर ५ ५. क्षयज व्रण ६. गवीनिका

स्थित अग्मरी ७. अम्मरी अर्वुद, क्षयज वण, मूलाशयशोय द. मुद्रागय भित्ति का वाहर की ओर उमार

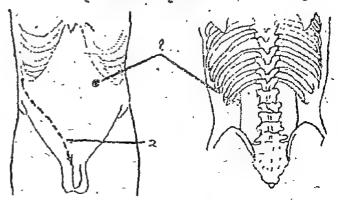
ह. पौरुप ग्रन्थि गोय १० मूत्रप्रसेकस्थ अश्मरी, अर्बुद, विदर, संकोच १८ मूत्र गतीनीस्थ अर्बुद

१२. बृकार्युद ।

लक्षणानुसार रोग का परीक्षण किया जाता है। रोगी के विशेषतया दिन और राित में मूतावृत्ति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। मूत्र त्याग में वेदना होती है या नहीं। मूत्र के साथ रक्त या पूय तो कभी नहीं आते, मूत्र त्याग के प्रारम्भ पर कष्ट होता है या नहीं, वल तो नहीं लगाना पड़ता, मूत्र त्याग तत्काल तो नहीं करना पड़ता मूत्र का प्रवाह पूर्ण होता है, धार पतली तो नहीं होती, मूत्र त्याग की इच्छा होने पर कुछ समय तक रोक सकता है या नहीं, इन सन बातों का जानना आवश्यक है।

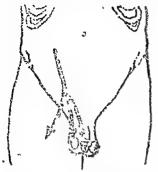
सार्वदेहिक परीक्षा—इसमें त्वचा की सूजन, पांडुरता, क्षाता, रक्तसाव, छाजन इत्यादि की परीक्षा की जाती है। रक्तवह संस्थान में हृदयवृद्धि, धमनी काठित्य तथा रक्तभार वृद्धि इत्यादि को देखना चाहिए। रक्तसाव, रक्तवाहिनियों की स्थिति, निर्यास इत्यादि को देखना, चाहिए। उदर और किट प्रदेश में वृक्त का परीक्षण उसकी अभिवृद्धि या अर्बुद के लिए गवीनी का परीक्षण उसकी स्यूलता के लिए तथा वस्तिप्रदेश का परीक्षण मूत्रा- शय गत अश्मरी या मूत्राध्यमान के लिए किया जाता है।

स्यानिक वृक्क वेदना-वृक्क कोप में अन्तिम पर्शु का



चित्र सं ० १६ — वृत्रक शूल का प्रसार १ — स्थिर जूल २ — प्रमरणणील णुलं

और कण्टिकोत्किषका (Erector spinae) के बीच अवकाश में वेदना की प्रतीति होती है। मन्द और मीठी



वित—१७

मूला गवीनी निलका के
नीचे के एक तिहाई भाग
मे अश्मरी के कारण शूल
होने पर उसके प्रसार की

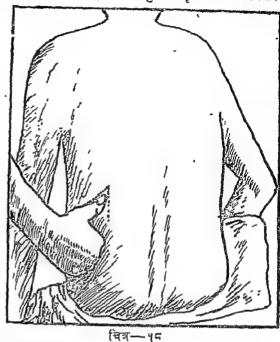
३ स्थितियां।

वेदना होने पर दोनों हाथों से वृक्क को दवाना परन्तु स्वस्थ अवस्था में किसी प्रकार की वेदना या स्पर्ण की असहाता नहीं होती। वृक्क के अर्बुद व विद्रिध तथा वृक्क के नीचे खिसक जाने से वेदना-स्पर्ण की असाहग्रता रहती है। वेदना की तीव्रता, स्थिति, रूप, फैनने की दिशा और किन कारणों से वह घटती है या बढ़ती है इन सबका ज्ञान करना चाहिए।

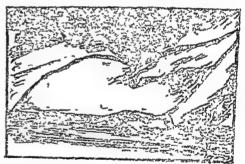
वृतक भूल—यह, तीक्ष भूल रोगी के लिए अत्यन्त असहा होता है। वेदना से छटपटाता है और लोटता है। वेदना के साथ मूलक्रच्छू हो सकता है। प्रायः इस तरह की वेदना अष्मरी, रक्त के थक्के या अर्बुद के ऊतक के कुछ अंश के गवीनी में होकर नीचे को जाने पर होता है।

स्पर्श परीक्षा—वृदक का स्पर्शन दोनों हाथों से किया जाता है। द्वाश पुरुषों में स्वस्थ अवस्था में दक्षिण वृदक का निचला सिरा स्पर्श किया जा सकता है। जिन व्यक्तियों की कोण्ठ की भित्ति शिधिल होती है या जिन भौरतों की बहुत संतान हो चुकी होती हैं उनमें दक्षिण वृदक का अनुभव किया जा सकता है। रोगी को पीठ के बल लिटाकर कोण्ठ की पेशियां ढीली कर देनी चाहिए। चिकित्सक को रोगी के दक्षिण पायवें में खड़ा होकर अपना वायां हाथ रोगी की पीठ के नीचे पर्श काओं के सामने ले जाना चाहिए। दक्षिण हाथ को चपटाकर कोण्ठ के सामने की पृष्ठ पर रखना चाहिए, इस हाच को अक्षकास्थि रेखा को मध्य में इस प्रकार रखे कि अंगुलियों के अग्रभाग उत्तर की ओर ठीक यकृत के नीचे रखें। अब रोगी को एक गहरा घवास लेने के लिए कहना चाहिए। रोगी के गहरा घवास लेने से वृदक का निचला गोल सिरा हाथों के

वीच में सरक आयेगा। जब वृक्कं के स्नायु शिथिल हो जाते हैं तब दक्षिण हाथ की अंगुलियाईवृक्क के उपरले सिरे



वुनक विकोण पर दबाने से बुक्क में दर्द प्रतीत होता है।



चिम १६ — द्विहस्तीय वृक्क परीक्षा की विधि

को स्पर्श कर सकती हैं और वही श्वास में इसे रोक सकती है। यतः श्वास के साथ धिवद्धित वृदक ऊपर नीचे गति करता हुआ प्रतीत किया जा सकता है। साधारण-तया वृदक परिस्पर्शन केवल दुवले-पतले व्यक्तियों में ही किया जा सकता है।

उदर के अधिजधन प्रदेश की परीक्षा द्वारा मूत्राशय के प्रसार का पता लगाया जा सकता है। शिश्नदण्ड के परिस्पर्णन से कठोर तांतव निकुंत्रन (Stricture) की प्रतीति की जा सकती है। वृपणकोप की परीक्षा

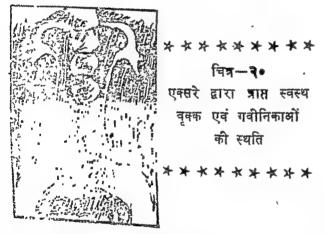
an eighteness

से अधिवृषण और वृषण ग्रन्थि की असमानतायें जात की जाती है। वृषणकोष में वृषण ग्रन्थि के अनुपस्थित होने पर वंक्षण निलंका की सावधानी से परीक्षा करके वहां वृषण ग्रन्थि को खोजा जाता है। गुदा में अंगुली डालकर पुरस्थ ग्रन्थि (Prostate) का आकार, उसका कड़ापन, गुदनिका की श्लेष्मिक कला की दशा और शुक्राशय की स्थिति का जान किया जाता है।

एनस-रे नित्रण (Radiography)—वृक्क रोग के निदान में एक्स-रे चित्रण का महत्वपूर्ण स्थान है तथा आधुनिक चिकित्सा विज्ञान द्वारा निदान साधनों में यह सर्वोपिर है। मूल प्रणाली के परीक्षण की निम्न अवस्थाओं में आवश्यकता हुआ करती है—

(क) कटिवेदना अथवा वृक्कञ्चल होने पर कलन (Calculus) अथवा सजल विम्बोत्कर्ष (Hydro-ne-phiosis) आदि रोगों की शङ्का होने पर।

(ख) जब जननेन्द्रिय प्रणाली राजयक्ष्मा क्षत, वृक्का-

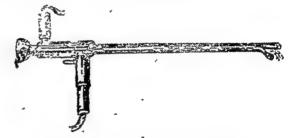


र्बुट, बहुपुटिक वृक्क (Policystic kidney) तथा उग्र वृक्काघात के कारण रक्त मूलता (Haematurea), पौरुप-ग्रन्थि वृद्धि, मूत्र प्रणाली के नाड़ीजन्य क्षत आदि कारणों का स्पष्ट ज्ञानकरने के लिए X-ray की आवश्यकता होती है।

साधारण एवस-रे परीक्षण (Plain X-ray Examination)—इससे वृवक की रूप रेखा स्पिति और उनका आकार तथा वृवकीय स्थान पर असामान्य अपारदर्शकता (Abnormal opacity) का पतां लग जाता है। वृवक प्रदेग में, गवीनी के मार्ग में तथा अधिजयन (Suprapubic) प्रदेश के चित्रों में एक्स-रे अपादर्शक (Radiopaque) छाया उपस्थित दीख जाती है। उत्सर्जन गोलिका चित्रण (Excretion Pyelography) इस विधि में यूरोसिलेक्टान नामक पदार्थ को शिरा द्वारा रक्त में प्रविष्ट किया जाता है जिसका उत्स-र्जन वृक्कों द्वारा होता है। ५,१६ और ३० मिनट के पश्चात् एक्स-रे लिए जाते हैं। इसे वृक्कं गोलिकार्ये, गवीनियों और मूलाणय के चित्र स्पष्ट हो जाते हैं। एक ओर रंजक (Dye) को उत्सर्जन होने से दूसरी ओर के वृक्क की अकर्मण्यता समझी जाती है।

आरोही गोगिका (Ratrograde Pyelography)—सिस्टोस्कोप की सहायता से गवीनी में कैथी-टर प्रविष्ट करके उसमें १२.५% सोहियम आयोहाइड का विलयन भर दिया जाता है। इस विधि से वृक्क आलवाल और गोलिका की क्परेखा स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

सिस्टोस्कापी (Cystoscopy)—द्वारा मूत्राशय, पुरुस्य तथा गवीनियों के अधोशान्तों में उपस्थित विकृत दशाओं का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।



चित्र २१-विड का मूत्राशयदर्गक यन्त

मूत्र परीक्षण (Urine Analysis)—मूत्र की परीक्षा के लिए मूत्र एकत्र करने की विधि बड़े महत्व की है। स्त्रियों में कैयीटर द्वारा निकाला हुआ मूत्र तया पुरुषों में मूत्र त्याग के बीच के भाग का मूत्र लिया जाता है। मूत्र रोगों के निदानार्थं मूत्र परीक्षण सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ साधन है। इसमें मूत्र की भौतिक, रासायनिक और सूक्ष्म दर्शक तीनों परीक्षायें करनी चाहिए। भौतिक में—मूल की राशि, गुरुता, वर्ण, गंध आदि, रासायनिक में—मूल की राशि, गुरुता, वर्ण, गंध आदि, रासायनिक में—मूल को राशि, गुरुता, वर्ण, गंध आदि, रासायनिक में—प्लाहित सोडियम द्रव्य और जीवाणु देखने चहिए। जाव-स्पिटक सोडियम द्रव्य और जीवाणु देखने चहिए। जाव-स्पित सो मूल परीक्षा मूल रोगों के निदान में सर्वोपिर साधन है एतदर्थं विस्तृत लेख के रूप में इसका प्रथक से वर्णन इसी विभेषांक में आगे दिया जा रहा है।

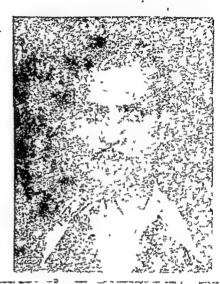
— भेषांश पृष्ठ ६८ पर देखें।

अगुर्वेहीय तेल बिन्दु -टिन्ट्री एरिन्ट्रीरिश्हेरीरि डा. गणेश चन्द्रहेवश्रम

्ञायुर्वेदीय तेल बिन्दू परीक्षा—

अायुर्वेद मर्मेज नागार्जुंन द्वारा आविष्कृत तेल विन्दु परीक्षा आयुर्वेद की अत्यन्त विश्वस्त, आश्चयंजनक परीक्षा है। तैल मूत्र से हल्का होता है अतः मूत्र पर तैरता है तथा मूत्र के दोषानुमार विभिन्न आकार धारण करता है जो निदान में सहायक हैं।

विधि — पूर्वोक्त मूत्र संग्रह विधि के अनुसार मूत्र ग्रहण कर काँच पात्र में सूर्योदयोपरांत, समतल स्थान पर स्थित कर शुद्ध तिल तैल की एक बूंद मूत्र पर तृण से या सींक से टपका दें। मूत्र में वूंद की स्थित से अधो लिखित तालिका के अनुसार रोग निदान का निष्कर्ष निकालें —



मूत्र में तैल विन्दु की अवस्था¹

रोग निदान के संकेत

रोग स्थिति सूत्र की सतह पर तैल बिन्दु का फैलना सूत्र की सतह पर तैल बिदु का न फैलना सूत्र की सतह पर तैल बिन्दु का डूब जाना

दोप-तैल की बूंद का सर्पाकार होना
तैल की बिन्द्र का छत्राकार होना

तैल की विन्दु का मोती की तरह चमकना
मूत्र दोष—वूँद का नराकार-दो मस्तक वाला होना
कुलदोष-प्रेत दोष—वूँद का चलनी सहश होना
साध्यता—तैल विदु का रूप-हंस कारण्ड पक्षी

तद्याग, कमल, गज, चवरछत्र, तोरण मकानवत होना

रोग की साध्यावस्था का सूचक
रोग की कण्टसाध्यता का सूचक
असाध्यावस्था वा मृत्यु सूचक
वात व्याधि का सूचक
पित्त व्याधि का सूचक
कफ विकार का सूचक
भूतबाधा सूचक, दैवव्यापाश्रय चिकित्सा करें
कुलदोष-प्रेतवाधा संकेत ,,
रोग की साध्यता का सूचक

—योग रत्ना०

विकाशितं तैल तथाशु मूले, साध्यः स रोगी न विकासितं चेत्। स्यात् कष्ट साध्यस्तलेगे त्वसाध्यो नागार्जुं नेनैव कृता परीक्षा ॥ सर्पाकारं भवेत् वातान्छलाकारः तु पित्ततः। मुक्ताकारं बलासात्स्यादेतन्मूलस्य लक्षणम् ॥ अन्यं मूल पाठ भी क्रमशः हैं। लेख के विस्तार भय से पूर्ण मूल पाठ उद्घृत नहीं कर रहे हैं।

मूल तैल विन्दु की अवस्या

रोग निदान के संकेत

असाध्यता—तैल की बूंद का हल-कूर्म-महिए मधुमक्खी आकृति का होना।

का छत्ता, शिर विहीनपुरुपाकृति, शरीर के वंगों के दुकड़े, शस्त्र-तलवार, मूपल, धनुष सहश दिशा—तैल वूँद का पूर्व की ओर फैलना

तैल वूंद का दक्षिण दिशा की ओर बढ़ना तैल वूंद का उत्तर दिशा की क्षोर वढ़ना तैल वूँद का पश्चिम दिशा की ओर बढ़ना तैल वूंद का ईशान कोण दिशा की ओर वढ़ना तैल वृंद का आग्नेय व नैऋत्य कोण में फैलना तैल बूद का वायव्य कोण में फैलना तैल विंदु में छिंद्र दिखाई देना तैल विंदु का मूत्र में डालते ही घूमने लगना तैल विन्दु का मूत्र में वुदबुदाकार होना तैलं विन्दु का मूद्र में स्थिर हो जाना तैल विन्दु का मूझ में चमकते रहना पूर्व पश्चिम, नैऋत्य दिशा की ओर फैलना दक्षिण, ईशान और अग्निकोण में फैलना म्तियों के समानाकृति, हल, कहुआ ऊंट की आकृति रोग की असाध्यता का सूचक तथा मृत्यु सूचक संकेत

शीघ्र आरोग्यप्राप्ति सूचक ज्वर रोग सूचक शनै शनै : आरोग्य प्राप्ति आरोग्यता जनक् आरोग्यता सूचक एक मास में मृत्यु सम्भावित मृत्यु सूचक असाध्यावस्था, अरिष्टावस्था निश्चित मृत्यु कारक अरिप्टावस्था का सूचक, पित्तज विकार दैवी प्रकोप का सूचक, असाध्यता सूचक साध्यावस्था की सूर्चेकः सुख-साध्यता सूचक अशुभे-अरिष्टावस्था रोग की असाध्यावस्था सूचक

मोट ना वंगसेन के रचयिता ने ईशान अग्नि कोण, वायव्य, ने ऋत्य इन चारों में बूँद फैलने को अशुभ तथा याग चिन्तामणिकार ने वायव्य और नैऋत्य की ओर फैलना शुभ माना हैं।

आयुर्वेदोय सूत्रवर्ण (रंग) परीक्षा —

(६) मूल का रंग-प्राञ्चत अवस्था में मूल हलके पीले रङ्ग का होता है पर विभिन्न रोग की अवस्थाओं में भूत्र के रंग में परिवर्तन होता रहता है। आयुर्वेदीय संहिता ग्रंथों में मूत्र रंग की परीक्षा प्रशस्त है, अधी-लिखित तालिका में मूल के रंग के अनुसार रोग संकेत हण्टव्य हैं—

क्रम	मूत्र का रंग त	*	रोग निदान के संकेत
. 9	कूप जलवत्		सम धातु पुरुप का सूचक .
२	जलवत्	-	उदकमेह, सोमरोग, अतिजलपान
ą	दुग्घवत्	-	वसामेह, शुक्रतारल्य, श्लीपद
४	घृतवत् .		दकोदर रोग सूचक
-	मघुवत्	terraps.	रक्तमेह, मधुमेह (Dibetes)
	सर्पपतैलवत्	-	कामला, पित्तकफ दोप सूचक
	रक्त (लाल) होना	—-रवत	मेह, पित्तदोप(Haematuria)
5	्षीत (पीला) होना		विपमज्बर, पित्तदुष्टि

ेमूत्र की अन्य विशेष अवस्थायें रोगों में-मारात्मक रंग सन्तिपात में-कालरंग मारात्मक है जलीदर में-ची के दाने के समान क्षयरोग में-धूवे की तरह श्वेत उदर वृद्धि-तैल सहश मृत्र जामवात-मठे के समान यांत्रिक ज्वर-हरा-नीला रंग अतिसार-पेशाव नीचे से कुछ लाल

Can dem herebe all

क्रम	मूत्र का रंग		रोग-निदान के संकेत	1 25
3	नीला होना		नीलमेह और वातदोप	ক
90	म्वेत होना		बहुमूत्र, कफ दुष्टि	है
99	अति ग्वेत होना		कफजज्बर, बहुयूत्र	दो
97	तंडुलापिष्ट समक्वेत हो	ना—	गुक्लमेह पिष्ट प्रमेह	
93	ईक्षुरसवत्	Manage	इक्षुमेह, रसमेह (Dibeties)	
98	सीवीरसम् होना	640mm	वात कफदोपज विकार	
9%	वीर्यवत् होना	Applications	शुक्रमेह	
	मज्जायुक्त होना	-	मज्जामेह (Lipuria)	
	पांडुर रंग होना		क्षोद्रमेह, कफित्तदोप	
१५	हरिद्रज्लवत होना		हारिद्रमेह	
38	मंजिष्ठजल सहण	-	मंजिष्टमेह (Urobilinuria)	मृ
२०	मसीवत् कृष्ण होना	-काल	मेह, वातदोप (Melanuria)	मू
99	सुरावत् होना	— सान्द्र	मेह, सुरामेह (Acetonuria)	म्
	क्षार जलवत् होना	*******	क्षारमेह	म
२३	सिकतायुक्त होना	***************************************	सिकतामेह (Lithuria)	म
२४	स्निग्घपित्थल होना		लालामेह	अ
२५	अजामू व वत् होना ,	-	जीर्णेज्वर	
२६	हरितम् त्रवत् होना	-	हस्तिमेह	270
२७	सोदवद कृष्ण होना		सन्निपातज विकार	अ
२८	पीत, वातादवत् होना	-	ज्वरावस्था	,,,
	गंदला होना		इक्षुवालिका, रसमेह	म्
	क्षय में खेत	-	क्षयावस्थासूचक	म्
	हरिद्रावत् होना	******	पितार्श सूचक, पांडुरोग	स्
	घी के दानों के समान	-	जलोदर रोग सूचक	म्
	मठे (तक्र) के समान		आमवात रोग सूचक	पू
	धूवे की तरह क्वेत		क्षय रोग सूचक	ર
	तैल सप्टश मूत्र	and a feel of the second	उदररोग सूचक	fa
	नीचे से कुछ लाल		अतिसार सूचक प्रसुतिदोप सूचक	
	पीत सक्तव्णोद्रवुद		प्रसातिकार पूजन - सुजाक, भीपसर्गिक रोग	₹
	पूय मिश्रित मूत		मारात्मक सूचक	Ħ
3.5	घने भूरे, कालारंग		हिस्टीरिया या कोई फल खाने से	 म
80	रंग रहित मूत	.2	भी ऐसा होता है	
V.			कक जबर सूचक	
م ۲	मूत्र का फेनयुक्त होना			E

्र- मूत्र की सन्य विशेष अवस्थायें कामला-पीला-हरा रंग हैजा-मूत्रावरोध मारक है दोपज प्रकोप— बात प्रकोप-मूत्र नीला, क्वेत

पित्तप्रकोप-पीला, उष्ण कफ प्रकोप-श्वेत, शीतल त्रिदोप-मूत्र का काला, चूमिल रंग कफ प्रकृति वाले का-कीच के पानी सदृश पित्त प्रकृति वाले का-तैल जैसा मृत्र वात प्रकृति वाले का-जलवतश्वेत मूत्र की मात्रा कम-शोध होने का सूचक मूत्र की मात्रा अधिक-मधुमेह सूचक मूत्र में णक्ररा-मधुमेह सूचक मूत्र में एल्ब्युमिन-वृक्त शोध मूत्र में अम्लाधिक्य-अश्यरीराचक आपेक्षिक घनत्व कम-वृक्तक्षय रन्त हीनता

आपेक्षित घनत्व अधिक—यूरिक एसिड मघुमेह

हिस्टीरिया

मूत्र का एक एककर आना अग्मरी मूत्र मार्ग में तीव दर्द ,, मूत्र घारा का सहसावरोध ,, सूत्र प्रवाह में जलन ,,

मूत्र काला मैला उपदंश, सुजाक पूर्यमिश्रित " उत्पादक अंगों में दर्द "

दिन में बार-वार मूत्र त्याग-अश्मरी
रात में बार-वार मूत्र त्याग-पौरुपग्रंथिशोध
मूत्र त्याग के समय पीड़ा-पूरामेह.
मूत्रप्रतेकशोध
मूत्रत्याग के तुरंत वाद पीड़ा-अश्मरी

पौरुपग्नंथिशोय शर्वद

THE PRINCE HE

(७) मूत्र की गंध

रोग निदान-संकेत

मधुर गंध
पूति गंध
बस्तम च गंधित्व
अम्लगंध
अम्लगंध
अम्लगंध
अम्लगंध
अजामूबवत् गंध
हस्तिमूचवत् गंध
सुरा तुल्य गंध
सड़े हुए फूल के समान गंध
दुर्गेन्धित मूच

उपवास, मूत्र में अधिक शकरा आना-मधुमेह सूत्रक पूर्यमेह (सूजाक), मूत्रनली में ज़ण, अरिष्ट लक्षण सूत्रक आमवात, अश्मरी, लालामेह सूत्रक अम्बप्रतिक्रिया—अम्लगंधी रक्तमेह, मंजिष्ठामेह सूत्रक अजीणं रोग सूत्रक हस्तिमेह तथा अजीणं रोग सूत्रक शराब की सी गंध मधुमेह का एक विशेष लक्षण, सुरामेह सूत्रक मूत्र में एसीटोन आने से होती है वैक्टीरिया, पौष्प ग्रन्थि शोध सूत्रक

(व) मूत्र की तलछट (Deposit)—मूत्र को कुछ देर पड़ा रखने पर ये पदार्थ पानी में नीचे जम जाते हैं। फोस्फेट का तलछट सफेद तथा यूरेट का प्रायः समान होता है। मूत्र में फोस्फेट, यूरेट, ओक्जलेट, रक्त, पीव आदि अप्रकृतिक पदार्थ आने पर मूत्र गंदला हो जाता है तथा मूत्र अधिक समय पड़ा रहने पर ये पदार्थ नीचे जम जाते

हैं तथा वैक्टीरिया की वृद्धि होने लगती है और सफेद तलछट पात्र के नीचे जमने लगता है।

(६) मूत्र उष्ण-रक्तमेह, कालमेह, ज्वर, पांडु समझें। (१०) मूत्र में स्निग्धता-पिच्छिलता-अन्न जीण न होने का परिणाम है। वृक्क की दुवेलता तथा मूत्र में एलब्युमिन होने पर मूत्र में स्निग्धता-पिच्छिलता पाई जाती है।

मूत्रों के घटकों की प्राकृत मात्रा

क्रम	, द्रव्य ्	-	भाग							
9	जल .	* *	४८. ४.०	1	- 1211-21			· ·		१४.५०
2	यूरिया		४७.६६	표	आदि		(i)			३३७%
ġ	यूरिक एसिड		०.७४		द्रव अ		(Organic)	atus/		०.७४,
8	हिप्यूरिक एसिड		o·7X	34		मेन्द्रिय.	253	語	इपू	৽ ২ৼ
ሂ	क्रीएटिनिन (Creatinine)		०.५४	,	अम्ल	部	9	प्रव्य	,	०'२५-
દ્	सोडियमक्लोराइह (नमक)		१२:२५	j -			-		·	
_ ৩. ফ	फरिकारिक एसिड		3.00-	1		•				` वे२ ∙२४ ३ ∙० ०
្ន	सल्पयूरिक एसिड (गन्धक)		₹*०० /	ļ					•	₹.००
. 3 ·	केल्शियम (चूना)		०.५५	İ				'atto	-	٠٠ ٦٧٠
90	मेंगनेशियम		० २५	표	-		Si	3		॰ ईंग्र
99	एमोनिया	•	०.७४	.	आदि	h	gar	हुमा करते	५ ४	४७.०
વર	पोटासियम - '	•	4.07	25	स्र	TE	Or	ico		० ७५
१३	सोडियम		३.०४	; [되다	निरिन्दिय	(Inorganic)	र्भ		8°6¥
48	व लोरीन		9.00							ं १.०● १५० ●

डा॰ गणेशचन्द्रदेव गर्मा, प्रवक्ता द्रव्य गुण विभाग गोहाटी आयु॰ महाविद्यालय, गोहाटी—१४



ిల్లోకి ఇస్ట్రు ల్లోని ల్లోని ల్లోని ల్లోని ల్లోని కట్ట్రికి ల్లోని ల్లోని ల్లోని ల్లోని ఇస్టు ల్లోని ల్లో

आयुर्वेदीय शास्त्रीय मूटा परीक्षा तथा आधुनिक पाण्चात्य वैद्यक की मूटा परीक्षा पुस्तकों में सर्वत्र पढ़ने को मिलता है, परन्तु अनुभव के गाँधार पर मूटा परीक्षा की यथार्थता की प्रतीति जो मुझे हुई है उसे ही इस लेख में व्यक्त किया जाता है—

- (१) स्यस्य मनुष्य की मूत्र परीक्षा—स्वस्य मनुष्य का मूत्र कांच के ग्लास में रखने पर वह वादामी रङ्ग का • मालूम होता है, जिवकि मूत्र विसर्जन के समय वह जलवत सफेद दिखाई पड़ता है। पात्र में रखे हुए उपयुक्ति मूत्र में तैल वूँद टपकाने से वह मूत्र की पूरी सतह पर फैल जाती है। मूल में विशिष्ट गंध होती है परन्तु दुर्गन्य नहीं।
- (२) रुग्ण व्यक्ति के मूत्र को पात्र में रखने से उसका

 रिज्ञ कभी गहरा पीला तो फभी सरसों के तैन के सहज
 ललाई लिये पीला अथवा जलवत शीतल और सफेद होता
 है। मूत्र भरे पात्र में तैल वूंद टपकाने से वह बूंद मूल
 की सतह पर ज्यों की त्यों वनी रहती है; फैलती नहीं; वह
 मूल की सतह के नीचे भी कभी कभी चली जाती है।
 मूल की सतह पर तैल वूंद का ज्यों की त्यों बना रहना
 कण्टसाध्य रोग का प्रतीक है और उसका मूल की सतह
 के नीचे चला जाना ख़थवा तैल बूंद का मूल में डूव जाना
 असाध्य रोग का प्रतीक है।
- (३) हल्दी के सहश गहरे पीले रंग का मू न कामला रोग का प्रतीक है। ऐसा मू न यकृत की विकृति का भी साक्षी है। गहरे पीले रंग का मू न खून के लाल कणों के क्षय का द्योतक है। मू न के गहरे पीले रंग से उतकृष्ट रक्तहीनता (एनिमिया) सिद्ध होती है। मून के गहरे पीले रंग से यह पता चल जाता है कि पिताशय की विकृति

के कारणं पित्त बहुत अधिक मात्रा में खून में मिल चुका है। रक्त कणों का क्षय प्रारम्म होने से उनका आकार वृत्ताकार न होकर अर्थं चन्द्राकार हो चुका है।

- (४) किंचिद् पीला रक्ताभ सरसों के तैल के सहस रंग वार्ला गरम मून कुंपित पित्त का एवं पित्तज प्रमेह का प्रतीक है।
- (१) मूबा का रंग जलवत सफेंद्र हो तथा स्पर्श में कम गरम लगे और बार बार अधिक मात्रा में मूबा विस-जैन हो तो वह उदकमेह वा बहुमू वा रोग का प्रतीक है।
- (६) मूटा स्पर्श में बिल्कुल जलवत शीतल हो, उसका रंग क्वेत वा मधु पुष्प के रंग का हो, उसकी गंध मधुर हो तो वह शीतमेह का द्योतक है और मधुमेह की प्रारम्भिक अवस्था का प्रतीक है।
- (७) ईख के रस के सहश हरितमा लिए अथवा फीके वादामी रंग का मधुर गंध वाला बजनवार मूल इक्षमेह वा शर्करामेह का प्रतीक है। इस मूल में तैल की बूंद स्थिर रहती है अथवा मूल में हुव जाती है।
- (न) मून का रंग स्थाम काभा लिये हुये गहरा लाल तीन्न गंधी हो तो वह कुपितु वायु वा वातन मेह के पूर्वरूप का प्रतीक है। ज्वर की हालत में ऐसा मूच वातज ज्वर का प्रतीक है।
- (६) मून का बूंद बूंद होना, फटी घार से मूज विसर्जन होना, बारीक धार से मूज होना, रुक रुककर मूज होना अश्मरी का प्रतीक है।
- (१०) पतली घार से मूत्र विसर्जन देर तक होना, मूत्र मार्ग की सुजाकजन्य संकीर्णता का प्रतीक है।
 - , (१९) पूययुक्त पीताभा वाला लालिमायुक्त; जो जलन

THE TOUTE FRANCE IN

के साथ उतरता हो तो पूयमेह (सुजाक) वा उष्णवात का प्रतीक है।

- (१२) जिस मूत्र को कांच के पात्र में रखने से, उसके पेंदे में पूय संचित हो तो यह मूत्र वृक्कों में क्रण वा कारवंकिल उत्पन्न होने का प्रतीक है। यूत्र में पूय (पस) के कण भिलना जीर्ण सुजाक का प्रतीक है।
- (१३) मूत्र का रंग जामुनफल के सहण वा स्याही के सहण काला हो तो वह कालमेह का प्रतीक है। वह जबरावस्था में जीणं अन्तर्दाह ज्वर को सिद्ध करता है, क्योंकि अन्तर्दाह ज्वर में ज्वर के वेग से दग्ध स्थाम वर्ण रक्त कण पेणाव के साथ साथ वाहर निकलने लगते हैं।
- (१४) पेशाव से मीठी गन्ध जाना, पेशाव विसर्जन के स्यान में चीटी लगना, मधुमेह वा शकरा मेह काप्रतीक है।
- १५) मूत्र विसर्जन करने पर मूत्र स्थान में सफेद 'रंग का आरीय तत्व जमना यक्तत विकार तथा पाचन मिक्त की कमी का प्रतीक है। सफेद रंग का क्षारीय तत्व . सम्लक्षार (Acidity) निर्माण होने का भी प्रतीक है।
 - (१६) मूत्र पाता में रखे हुए मूत्र में लार की तरह रंग रहित तार सहश तत्व की उपस्थित लालामेह का प्रतीक है, अति स्त्री सहवास का प्रतीक है।
 - (१७) मूत्र पात्र में रखे हुए मूत्र में वीर्य के सफेद कणों की उपस्थिति शुक्रमेह का प्रतीक है।
- (१८) सफेद राख सा घुला हुआ मूत्र का रंग हो तो वह गुक्राश्मरीकारक, गुक्र सिक्ताओं का प्रतीक है, जो गुक्राश्मरी न वनकर वायु के अनुलोम होने से सुखपूर्वक मूत्रागय से बाहर निकल रहे हैं। सफेद सिक्ताओं की भूत्र पात्र में उपस्थिति वस्तिजन्य अश्मरी के निर्माण की पूर्वकप है।
- ्रे (२०) मूत्र पात्र में पेशाव के साथ सिक्तावत विजा-तीय तत्वों की उपस्थिति सिक्ताश्मरी की प्रतीक है। मूत्र के साथ सिक्ताओं का विसर्जन वृक्कों में सिक्ताश्मरी बनना सिद्ध करता है। मूत्र के साथ लाल सिक्ताओं का जाना वृक्काश्मरी का प्रारम्भिक रूप है।

फुछ अनुभूत रसायनिक मूल परीक्षण-

(१) मूत्र में प्रायः बहुत तरह के क्षार अम्ल (१) मूत्र में घुले होते हैं। इनकी परीक्षा जिटमस पेपर को मूत्र, में डालकर की जाती है। जाल जिटमस पेपर मझ में टालने से यदि वह नीला हो जाय तो पेणाव में कारीय तत्व अधिक है। यदि पेशाव में नीले रंग का

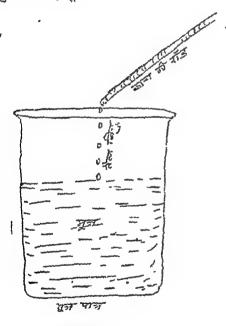
लिटमसं नेपर डाला जाय और उसके डालने पर उसका रंग लाल होजाय तो यह समझना चाहिये कि मुत्रके साथ अम्लीय तत्व जा रहे हैं। मूत्र को परख़नली में तिहाई हिस्से तक भरकर, उसे स्त्रिट लेम्प पर गरम करें तो तूरन्त मृत्र में धुँघलापन के साथ गाढ़।मन आ जायगा। फिर उस परखननी में एसिटिक एसिड की ५ वूँदें टपकायी जाय और यदि मृत में धुंघलापन सफ़ेदी और गाढ़ापन सामान्य बने रहें तो सम-झनाचाहिये कि मूत्र में एलव्यूमन नामक तत्व की उपस्थिति है। घुँघलापन समाप्त हो जाय तो फास्फेट की उपस्थित समझनी चाहिए। परखनली के मूत्र में गन्धक का चूर्ण ढालें। यदि गन्धक पर्खनली की पेंदी में बैठ जाय तो मल में पित्त की उपस्थिति समझें। परखनली में मूत्र की १ इञ्च तक भरकर गरम करें। फिर उसे ठण्डाकर उसमें दो वूँद टिक्चर खायकम डालें; उसके बाद समान न ओजोनिक ईथर डालें। दोनों तत्वों के मिलने के स्थान पर नीलवर्ण की आभा का निर्मा हो जाय तो मूत्र में रक्त कणों की उपस्थिति है और हरी आभा निर्माण हो जाय तो पूय की उपस्थिति है। पेशाव में शंक रा की माता सेक्रोमीटर से नापते हैं।

मूल की सूक्ष्म अणु दर्शनात्मक परीक्षा-सूक्ष्माणु दर्शक यन्त्र (माइक्रोस्कोप नामक यन्त्र) की नीचि मूत्र की तलछट के तरल तत्व की बूंद को कांच की संलाइड (पट्टिका) पर टपकाकर उसमें स्वेत रक्त कणों की, लाल रक्त कणों की, फास्फेट सेल, शुक्राणु प्याणु, गोनोकोकस के रोगाणु देखे जाते हैं। प्रमेह पीडिका कार्विकल हीने पर पी खिका के पूय को मधुं मेही के मूहा की तल छट की वूंद को कांच के स्लाईड में डालकर प्रमेह पीडिकाकारक रोगाणु(स्टाफाईल) कोकस पायोजिनेस औरियस का निदान किया जाता है। मूत्र की तलछट की बूँद की स्लाईड पर टपकाकर सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा देखने से सिक्ताओं की सूक्ष्म स्वरूप का भी पता चलता है। लालकण की सूक्ष्म सिक्तार्ये हैं तो समझना चाहिए कि उनका आगमन सीधे वृक्क से हुआ है और वह यह सिद्ध करता है कि वृक्क में विकृति है। वहां सिक्तायें निर्माण होने का क्रम सूक्ष्म रूप से प्रारम्भ हो चुका है। यदि सूक्ष्म सिक्तायें पाई जांय तो वह वस्ति में निर्माण हो रही हैं। उनका आगमन वृतर्कों से नहीं है। विकृति वस्ति में है।

> —प्राणाचार्य पं॰ हर्पुत्त मिश्र बायु,वृ., पेंशनवाडा, रामपुर

स्य परीक्षा से पाधिपाधिपाति अधिप ज्ञानः डा. यणवीव बिह्न शस्त्री

आयुर्वेद शास्त्रों में मूत्र परीक्षण की अनेक प्रक्रियायें लिखी हैं। उनका विस्तार से वर्णन न करते हुए एक अनुभूत परीक्षण जोकि रोगी के जीवन मरण के दुरूह अरिष्ट ज्ञान को सरलता से वतला सकें, जिससे मृत्यु का काल सुगमता से विदित हों जाय तथा साधनरहित स्थान में भी जिस विधि का उपयोग हो सके, ऐसी सरल मू हा परीक्षण प्रक्रिया को प्रस्तृत कर रहा हूं।



चिवा---२२

तैल से पेशाब परोक्षण सरसों, सोंहा या तिली के तैल को परीक्षण कार्य में प्रयोग करना चाहिए, अभाव में मूंगफली का तैल भी ले सकते हैं।

प्रातःकाल का मूल न हो तो किसी समय का पेशाब लेकर किसी पाल में भर निश्चल व निवीत स्थान पर रख दें जिसने लहरों न पैदा हों, एक पतली सींक या तिनके से तैल की एक बंद मूल में डालकर परीक्षण करों।

- (क) यदि तैलिबन्दु स्वाभाविक² रूप में मूत्रे के ऊपर फैल जाय तो रोग शीघ्र ठीक हो जायगा।
- (ख) यदि तैल की स्वाभाविकता परिवर्तित होकर
 तैल का फैलाव विभिन्न दणाओं में हो तथा उसमें लाल,
 पीले या खेत तिरिमरे दीखें तथा साभा परिवर्तन हो जाय
 तो वातादि दोपों के प्रकीप से रोग की उग्रता या सीम्यता
 का वोध होता है।
- (ग) यदि तैल विन्दु उसी स्थान पर विन्दु रूप में ही वना रहे व इधर उधर न फैंने तो रोग की क्ष्टिसाध्यता जाननी चाहिए और रोग निवारण के लिए दिन्य भीप-धियों का प्रयोग तथा अनेक उपचार करते हुए रोगी की जीवन रक्षा करनी चाहिये।
- (घ) यदि तैल बिन्दु पेशाय के तल भाग में बैठ जाय और किसी प्रकार का फैलाव न हो, नहीं तैल बिन्दु के बोकार में लम्बाई, चौड़ाई या नुकीलापन प्रकट हो तब

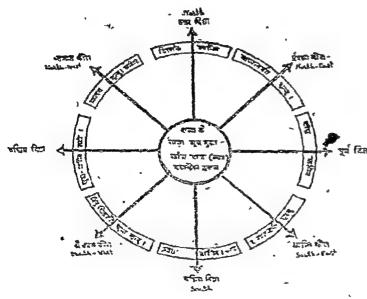
१ — गुणेन दापयेतीनिबन्दुपनु लायपात् । विकासिनं तीलम्याणु मूत्रेसाध्यः स रोगी न विकासितं चेल् । स्यात्कण्ट-साध्यस्तह्नगेत्वसाध्योनागाणुँ नैवकृतापरीक्षा ॥

२-पूर्वांगांववंते विन्दुर्यंदाशीत्रं सुखी भवेत् । दक्षिणाशां ज्वरोज्ञेयस्तथारोग्यं क्रमाद् भवेत् ।। जत्तरस्यां यदाविन्दोः प्रसरः संप्रजायते । बरोगिता तदा नूनं पुरुषस्यं न संशयः ॥-योग रत्नाः [मूत्र ११-१२)

रोगी असाध्य है और उसकी शीघ्र मृत्यु हो जायगी, अप-यश व प्रतिष्ठा की रक्षा हेतु ऐसे रोगी की चिकित्सा प्रत्या-ख्याय करके करे। रोगी को सान्त्वना देते रहें।

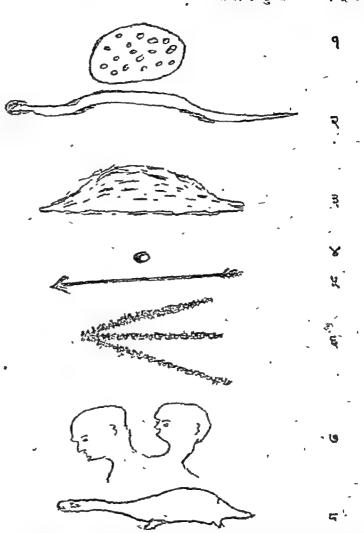
(ङ) यदि तैल विन्दु मूत्र पूर्ण पात्र के मध्य तक डूवे और बूंद में कोई विकार नहीं आवे तो रोगी की मृत्यु ६ सास के भीतर हो जायगी, चौथाई या तीन चौथाई हुवे तो उसी आधार पर रोगी की मृत्यु का पूर्व ज्ञान करलें।

तैलिवन्दुप्रसार के अन्यरूप¹—इसी प्रकार मूत्र पूर्णपात्र में तैलिबन्दु के विविध प्रकार के प्रसार का परीक्षण कर रोग की साध्यादाध्यता का निर्णय करे, मूत्र में तैलिबन्दु ढालने से यदि वरुणदिशा में फैलाव हो तो सुख और आरोग्य की प्राप्ति होती है, ईशान दिशा में फैलने से एक मास में ही मृत्यु हो जाती है। इसी प्रकार आग्नेयी दिशा में प्रसार हो तो भी पूर्ववत् अरिष्ट लक्षण जाते। नैऋत्य दिशा में तैल की बूँद के प्रसार व छिद्रयुक्त होने से निश्चित ही मृत्यु होती है। वायव्य दिशा में विन्दु के प्रसार से निश्चित मरण जानना चाहिए।



चित्र सं—२३ : रोग साध्यासाध्यता निर्देशक तैल विन्दु ृद्दारा मूत्र परीक्षणार्च निर्देश पट्ट

बन्य आकृति बनने से जसाध्य² लक्षण—मूत्र में तेल विन्दु की आकृति हल, कछुआ, भैंसा जैशा कण्डी का समूह, शिर हीन धड़, शरीर का कोई भाग, शस्त्र, तलवार, मूशल, पट्टिंग, वाण, लाठी, तिराहा, चौराहा तथा विन्दु हप देख कर रोग को असाध्य समझे, चिकित्सा न करे।
— शेवांश १८ठ ७ देखें।



चित्र २४ — तैल बिन्दु परीक्षा में प्राप्त कुछ विश्वकियाँ
[१] चालनी सहश विन्दु (प्रेतदोष सूचक) [२] सर्पाकार(वातदोप सूचक) [३] छत्राकार (पित्तदोप सूचक)
[४]: मुक्ताकार (कफदोषसूचक) [४] सरसहश (असाध्य)
[६] विषयदर्शन (असाध्य) [७) मस्तकद्वय (भूतदोप)
[६] कूर्मसहश (असाध्य)

¹ वारुण्यांत्रसरेद्विन्दुःसुखारोग्यं तदाविशेत् । ऐशान्यांवर्धतेविन्दुध्युवंमासेन नश्यति । वाग्नेय्यां तु तथा ज्ञेयं, नैफ्ट्रत्यां प्रसरेद् यदि ।। छिद्रितश्च भवेतपश्चाद्ध्युवंमरणमेवच । वायव्यां प्रसरेद्विन्दुः सुध्यापि विनश्यति ।। यो. र. ॥ १ हणं पूर्मं सैरिशांकारसंयुतम् । करं भण्डलंबापि शिरोहीननरं तथा । गात्रः खण्डंच शान्तंच खङ्कं मुगल पट्टिशम् ॥ धरं च लगुउं चैव तथैव विचतुष्पयम् । विन्दुम्पं नरोद्द्या न कुर्वीत क्षियां ववचित् ॥- यो. र. मृ. १३ से १७ तक



ष्ठा० जगदीशचन्द्र असावा बी०ए०, ए०एम०बी० एस०, गोल्ड मेडेलिस्ट रीड्र क्रिया गारीर—ल०ह०राज०आयु० कालेज, पीलीभीत, सदस्य-आयु एवं यूनानी सकाय एवं एकेडेमिक कौसिल, कानपुर वि०वि०, कानपुर।

आयुर्वेद विज्ञान में रोग निदान एवं रोगी परीक्षा का वर्णन संहिता ग्रंथों तथा तदुपरांत अन्य ग्रंथकारों ने स्रति विस्तार से किया है।

रोगी परीक्षा विधि के सम्बन्ध में-

- दर्शन स्पर्शन प्रश्ने परीक्षेताम रोगिनाम् ।
- रे. रोगोक्रांत शरीरस्य स्थानान्यंग्टी परीक्षयेत ।
 नाड़ी मूतं मलं जिह्नां शब्द स्पर्शे हशाकृती ।।
 सादि उदाहरणों में रोगी परीक्षा की विधियों का
 उल्लेख किया गया है। परीक्षण विषयों में नाड़ी परीक्षा
 के बाद ही मूत्र का उल्लेख किया गया है।

योग चिन्तामणि में मूत्र परीक्षा का महत्व इस प्रकार कहा गया है—

नाड्या भूतस्य जिह्वायां लक्षणं यो न विद्यते । मारयत्याशु वै जन्तून सर्वद्यो न यशो लभेत ।।

संहिता ग्रन्थों में यद्यपि मूत्र परीक्षा का उल्लेख नहीं मिलता है परन्तु रोग लक्षणों में (प्रमेह-रक्तपित्त कामला आदि में) मूत्र का वर्ण-स्वरूप-सांद्रता आदि मूत्र की भौतिक परीक्षा कही गई है। लघुत्रयों में मूत्र परीक्षा का पूर्णाश में उल्लेख नहीं किया गया परन्तु उत्तर काल में योग रत्नाकार में मूत्र परीक्षा का विस्तार से उल्लेख किया है। इस प्रकार प्राचीन काल से ही आयुर्वेद में मूत्र परीक्षा का महत्व समझा गयां-समय के साथ साथ परीक्षण विधि एवं नव्य अन्वेषणों के आधार पर मूत्र परीक्षा विधि में परिवर्तन एवं परिवर्धन होते गये।

इस आलेख में मूत्र परीक्षा का प्राच्य एवं अर्वाच्य परीक्षा विधि का समन्वयात्मक निरूपण अभीष्ट है।

मूत्र संग्रह—परीक्षा के अनुसार ही मूत्र ग्रहण किया जाता है। स्वच्छ कांच पात्र में २५ घंटे का मूत्र संग्रह कर उसमें से कुछ अंश ग्रहण करना चाहिए। मधुमेह में परीक्षार्थ मूत्र भोजन के २-३ घण्टे के पश्चात् ग्रहण करना चाहिए। धातु-एल्ब्यूसिन की परीक्षा प्रातः कालीन मूत्र में करनी चाहिए।

मूत्र में तीन प्रकार की परीक्षायें की जाती हैं-

- १. भौतिक परीक्षा
- २. रसायनिक परीक्षा
- ३. सूक्ष्म दर्शक यंत्र परीक्षा

(१) भौतिक परीक्षा—

इस परीक्षा में मूत्र की मात्रा-वर्ण-गंध-आपेक्षिक गुरुता साद्र ता तथा प्रक्षेप आदि की परीक्षा की जाती है।

मात्रा—सामन्यतया मूत्र की मात्रा ७०० से १४०० मि ली. प्रति दिन होती है। यह मात्रा तरल पदार्थों के सेवन पर निर्भर करती है। दिवा काल में रात्रि की अपेक्षा अधिक मात्रा में मूत्र का उत्सर्ग होता है। मात्रा का माप २ भागों में किया जाता है—

- (१) प्रातः प से रावि १० वजे तक
- (२) रात्रि १० से प्राप्तः म बजे तक

TEN KINE TO THE REST OF THE PERSON OF THE PE

पूर्ण मात्रा ५० औंस होने पर दिवस मात्रा ३७ औस तथो रात्रि मात्रा १३ औंस होनी चाहिए।

भोजन तथा पेय सेवन के बाद, णीत काल में मूत्र की मात्रा में स्वाभाविक वृद्धि हो जाती है। इसके विपरीत उपवास, एवं उच्च काल में माला में स्वाभाविक ह्नास हो जाता है। वैकृत रूप मधुमेह, उदक मेह तथा वृक्क कार्य में सुटि होने पर मूल की माला में वृद्धि होती हैं। अत्यधिक स्वेद प्रवृति, ज्वर, अतिसार, अति वंमन, रक्त चाप की न्यूनता होने पर, एवं हृदयावसाद की अवस्था में मूल की मात्रा अल्प हो जाती है।

माता के अनुसार रोग निदान आयुर्वेद ग्रन्थों में स्पष्ट देखने को मिलता है। उंदक मेह प्रकरण मूत्र की माता में यृद्धि-सोमरोग में भी मूत्र की मात्राधिक्य होता है। मूत इन्छ में मूत्र की माता अल्प हो जाती है।

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविल मूत्रता। अच्छं वहुसितं शीतं निर्गन्यमुदकोपमम् ॥ मेहन्युदक मेहेन। " " " ।। — च. नि. वर्णे एवं पारवर्शकता—

मूत्र के सामान्य वर्ण में विविधता होती है। मूत्र गत यूरो क्रोम एवं यूरो एरीथीन नामक रंजक द्रव्यों के कारण मूत्र का वर्ण होता है। मूत्र का सामान्य वर्ण प्रायः भूसे के समान होता है। मूत्र का विवर्ण होना विकृति अथवा मूत्रगत असामान्य द्रव्यों के कारण होता है।

रक्त वर्णता—सूत्र में रक्त होने पर
गहरा भूरा— मेथ हीमोग्लोवीन के होने पर
पीत या पीताभहरित—पित्त होने पर
नारङ्गी वर्ण—यूरी विलीनोजिन होने पर
धूसर कृष्ण—मेलेनीन होने पर
दुधिया—कायल होने पर
पीताभ गदला—पूर्य होने पर

शौषि द्रव्य भी प्रायः मूत्र के वर्ण में अन्तर उत्पन्न कर देते हैं यया सेन्टोनीन, मैपाक्रीन तथा पिलोकारपीन के कारण मूल पीत वर्ण का, मीयायलीन ब्लू के कारण मूत्र नील वर्ण का, फाइसोफिनिक एसिड रिघ्यूविन एवं सेना के हारा मूल धूंसर रक्त वर्ण का, एवं पायरेडियम तथा कार्योलिक एसिड से मूल कृष्णाम हरित वर्ण हो जाता है।

आयुर्वेद विज्ञान में मूल की वर्ण परीक्षा का अत्यधिक
महत्त्र है। दोषानुमार मूत्र के वर्ण का उल्लेख कियागया है--

वातेन पांडुरं मूत्रं रक्तं नीलश्च पित्ततः।
रक्तमेव भवेद्रक्ताद्ध वलं फेनिलः कुफात ॥ (भा-प्र.)
वातं च पाण्डुर मूतं सफेन कफ रोगिणः।
रक्त वर्णं भवेत्पित्ते द्वन्दजं मिश्रितं भवेत्।।
सन्निपाति च कृष्णं स्या एतन्मूतस्य लक्षणम्।।
(योग रत्नाकर)

वात दोष के कारण मूत्र पांडुर वर्ण, पित्त दोष के कारण रक्त पीत वर्ण, रक्त के कारण रक्त वर्ण का, धवल एवं फेनिल कफ दोप के कारण होता है। दो दोपों का मूत्र मिलित वर्ण वाला एव सिन्निपात (तीनों दोपों) के कारण मूत्र का वर्ण ध्याम होता है। दोषों के अतिरिक्त व्याध्यानुसार भी मूत्र के वर्ण का उल्लेख किया गया है। नील मेह, कालमेह हिरद्रमेह मिलिटा मेह, रस मोह में नामानुसार ही मूत्र वर्ण होता है। कामला में मूल की पीत वर्णता पाई जाती है।

पाएदर्शकता—'

सचःत्यक्त मूल सामान्य रूप से पूर्ण पारदर्शक होता है। पूय, जीवाणु तथा फास्फोट होने पर मूल पारभासिक हो जाता है। फिल्टर पेपर से छान कर भी यदि पारभा-सिकता बनी रहती है तब निष्चय ही मूल में जीवाणुंओं की उपस्थित होती है।

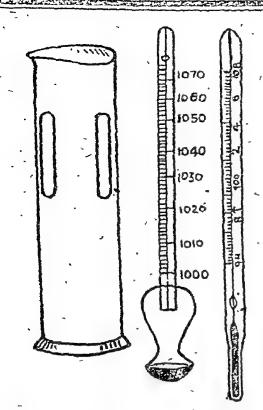
आयुर्वेद निदान में पारशंकता के आधार पर भी व्याधि के लक्षण वताये गये है। वाग्भट्ट नि॰ स्थान में —

अच्छं वह सितं ''' लाला तन्तुयुक्तं मूत्रं लालामीहेन पिच्छिलं ॥ वा. नि. १७-७,८,६, १०, ११,१२ में कफज प्रमेहों में मूत्र की पारदशंकता आदि 'का आधार मानकर ही लक्षणावली प्रस्तुत की है। जिज्ञासु जन प्रथ का अनुशीलन कर यह ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

वापेक्षिक घनत्व---

वापेक्षिक घनत्व मूत्र में विलेय कणों की मात्रा पर . निर्भर करता है। इसका माप यूरिनोमीटर यंत्र के द्वारा किया जाता है (चित्र सं. २४)

इस यंत्र पर १००० से १००० तक चिन्ह अङ्कित होते हैं तथा एक जार में मूत्र लेकर इस यन्त्र को इस प्रकार हुवाते हैं कि यन्त्र जार के मध्य में रहे। नेत्र को मूत्र के ऊपरी तल की अक्ष में रखकर यन्त्र पर गणना ली जाती है। यही मूत्र का आपेक्षिक घनत्व होता है।



चित्र २५-आपेक्षिकघनत्व का माप यन्त्र

सावधानी — आपेक्षिक घनत्व का माप कमरे के • तापक्रम पर किया जाना चाहिए। मूत्र पात्र स्वच्छ हो किसी प्रकार का विसंक्रामक पदार्थ पात्र में न लगा हो।

यान मूल पाल में भली भांति तैरता रहना चाहिये।
यदि मूल की मात्रा अल्प हो तो उसमें समभाग स्तृत जल
मिलाकर गणना के अन्तिम दो अङ्क दिगुण कर दें।

सामान्यतः मूत्र का बा घ १०१४-१०२४ होता है इस पर कई प्रकार के हेतुक प्रभाव डालते हैं -यथा-ताप- क्रम, परिश्रम, जल का सेवन, स्वेद प्रवृति आदि । वैकृत अवस्था में निम्न रोगों में आ घ में वृद्धि हो जाती है - खाईकोसूरिया, वृक्क शोथ, तीव ज्वर, जीणं शिरा पूर्णता (Passive Venous Congestion) तथा द्रवाशापहरण (Dehydration) आदि।

सा. घ. निम्नांकित रोगों में घटता है— उदकमें ह, जीर्ण वृक्क रोग

आयुर्वेदीय बाङ्गमय में आ. घ. का महत्व योग रत्ना-कर में विणित तैन विन्दु परीक्षा द्वारा दर्शाया गया है। मूद की प्रति किया (Reaction of urine)—

इसका ज्ञान ph दर्शक यन्त्र हारां किया जाता है। शामान्य मूत्र का ph ३-४ से ७ तक होता है। सामान्यू मूत्र की प्रतिक्रिया उदासीन होती है परन्तु यह ईवत् अम्लीय से ईसत् क्षारीय तक हो सकती है।

शाकाहार मूत्र को क्षारीयता एवं मांसाहार वम्लीयता प्रदान करता है परिश्रम के पश्चात दुग्धाम्ल (Lactic acid) की उत्पत्ति अधिक होने से मूत्र अम्लीय हो जाता है। मूत्र की प्रतिक्रिया वस्तुतः शरीरगत रक्त की प्रतिक्रिया की सूचक होती है। वैकारिक हिट से Acidosis तथा Alkolosis पृथक २ व्याधियों का लक्षण होता है। वायुर्वेद निदान में "क्षार मेह" में मूत्र का क्षारीय होना प्रतिक्रिया परीक्षा का उदाहरण है।

सद्यः त्यक्त सामान्य मूत्र निगंद्य होता है परन्तु कालांतर में एमोनिया की गंध आने लगती है। यल पूय आदि का मिश्रण होने पर तीज दुगंध, एसिटोन होने पर मधुर मदिरा सहश गंध तथा उड़नशील द्रव्यों के कारण विशिष्ट गंध होती है। आयुर्वेद रोग निदान में मूत्र की गन्ध का उल्लेख किया गया है। यथा—

"मूत्रे वस्त गन्धत्व मूत्र कृष्ठ ज्वरोऽहितः" तथा—
"विडगंध मूत्र येत कृष्ठात विड् विघाते विनिदिशेत"
माधव निदान के इन उदाहरणों से मूत्र गंध का
निदान में उपयोग सिद्धं होता है।
मूत्र तल्खर परीक्षा—

सद्यः त्यक्त पूत्र पूर्ण रूप से स्वच्छ होता है। कुछ देर तक रखे रहने पर उसमें म्लैं जिमक 'पदार्थ उत्पन्न हो जाता है जो कि त्ली में बैठ जाता है। यदि आ० घ॰ अधिक होता है तंब यह पदार्थ मध्य भाग या ऊपरी तल पर बना रहता है।

सामान्य मूत्र में यूरेट, फास्फेट अथवा यूरिक एसिट का तलछट पाया जा सकता है। फास्फेट का तलछट खेत वर्ण का क्षारीय मूत्र में मिलता है। अम्लीकरण के पश्चात् (Acetic acid मिलने पर) यह लुप्त हो जाते हैं।

यूरेट तथा यूरिक एसिड का तलछट ईपत् किपल वर्ण का होता है विशेष कर मूत्र की प्रतिक्रिया तीन अम्लीय होती है। यह तलछट गर्मा करने पर अथवा क्षार मिलाने पर लुप्त हो जाता है। यद्यपि इन कणों का विशेष महत्व नहीं होता तथापि शरीर में जब प्योरीन (Purin) का विच्छेदन होने लगता है जैसा कि Myelopooliferative Disonders में पाया जाता है तब इन कणों की उपस्थिति नैदानिक एष्टि से महत्वपूर्ण हो जाती है। वैका-रिक अवस्था में थे कृण वृतक श्रुल अथवा मूत्रावरोध उत्पन्न कर देते हैं।

तलछ्ट की अणुवीक्षण यंत्र से परीक्षा कर मूत्र गत कणों की प्रकृति का सही सही निदान किया जाता है।

आयुर्वेद विज्ञात में सिक्तामेह तथा अश्मरी रोग के अन्तर्गत मूत्र गत कणों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। २ सूत्र की जैन रासायनिक परीक्षा—

(Bio-chemical examination of Urine)

मूत्र के परम्परागत रसायनिक परीक्षणों के स्थान पर अब व्यवसायिक प्रतिष्ठानों द्वारा निमित प्रतिकारक निर्ति तथा प्रतिकारक पट्टिकानों को प्रयोग किया जाने तगा है थतः इनके प्रयोग से पूर्व इनका सम्यक् घटक ज्ञान तथा जनका कार्य क्षेत्र का ज्ञान कर लेना आवण्यक होता है।

मूत्र में प्रायः अधोलिखित जैव रसायनिक परीक्षाएं

की जाती हैं—

होटीन टेस्ट - Albumin, Euglobin, Proteose, Nucleo proteins तथा यदा कदा Mucin मून में पाई जाती है। मुख्य रूप से Albumin का ही उत्सर्ग होता है। प्रोटीन निम्न अवस्था में विशेष रूप से मूत्र में उत्सर्ग होती है-

१. स्वेदाधिक्य, २. वृक्क जलामयता, ३. हृदय एवं यकृत में रक्तावरोध (Cardiac & Hepatic । Venous Stasis), ४. रासायनिक विद यथा संखिया, पारद, शीशा बादि, ५. गर्भावस्थाजन्य विष, ६. कामला, ७. वृक्क शोथजन्य रोग। = रक्त के रोग यथा स्कर्वी, परप्यूरा और गम्भीर हक्ताल्पता।

प्रोटीन की मूत्र में उपस्थित तीव्र गति से तन्तुओं के दूटने से सम्बद्ध होती है अतः पूयमयता, न्यूमोनियां की. अन्तिम अवस्था, गम्भीर अग्निद्यक्षण, गर्भाषय व्रण, यक्तत का सड़न के कारण गलना में भी मूत्र में प्रोटीन मिलती है।

परीक्षाएं—मूत्र को एसिटिक एसिड की कुछ वूँव निला कर अम्लीय कर लेते हैं। परीक्षण निलका में २/३ भाग लेकर उसके ऊपने २ से. मी. भाग को अग्नि पर गर्म करें। एक पन प्रलेप प्रकट होता है ऊप्ना से प्रोटीन का स्कन्दन होता है। यह प्रक्षेप एंक्ड्यूमिन क्षयवा फास्फेट की विद्यमानता का सूचक होता है। एगिटिक एसिड भिलाने पर फास्फेटजन्य धुंधलापन विलीन हो जाता है। जबकि एल्ड्यूमिन करन नहीं होता।

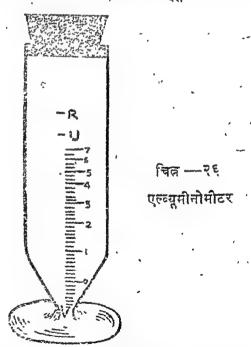
परीक्षण निलका में सांद्र णोरकाम्ल २ मि. लि. लेते हैं तथा सावधानीपूर्वक निलका की प्राचीर के सहारे मूत्र डालते हैं। दोनों के संयोग स्थल पर एक मुदिकाकार रचना बनती है। यह रचना एल्ट्यूमिन नाइट्रेट की होती है।

GIRL PRINCER

एक परीक्षण निलंका में १ मि. लि. मूत्र लेकर उसमें १०% Salicyl Sulphonic acid बूद बूद करके मिलाया जाता है एक बादल जैसा जिसकी कृष्ण पृष्ठ भूमि १८ दशार्या जा सकता है मूत्र में प्रोटीन होने की सुचना देता है। प्रक्षेप की घनता अल्ब्यूमिन की प्रतिशत मात्रा का बनुमानिक बोध भी कराती है।

Reagen Strip—Tetra bromo phenol blue नामक प्रतिकारक से बनी होती है। मूत्र में डुबोने पर प्रोटीन की उपस्थित में पीले से विभिन्न आभा वाले हरित वर्ण की हो जाती हैं। परीक्षा सित संवेदनशील है। तथापि पुष्टि हेतु अन्य परीक्षाएं भी आवश्यक होती हैं। पूज में एल्ट्यूलिन का प्रतिशत साप—

यह परीक्षा एल्ब्यूभी नोमीटर नामक यन्त्र से की जाती है। यन्त्र की रचना साधारण णीशे के ट्यूव के समान



होती जो १ से ६ तक अंगाङ्कित होती है तथा इनके छपर U तथा R के चिन्ह होते हैं।

प्रयोग विधि-नंदले मूत्र को फिल्टर कर लेना चाहिए। प्रतिक्रिया कारीय होने पर उसमें एसेटिक एसिड की कुछ बूँद मिला देनी चाहिये।

(Esbach's reagent) भर लेते हैं। यन्त्र का मुख कार्क से बन्द करके उसे ऊपर नीचे कर मिला लेते हैं तथा स्टेन्ड में २४ घन्टे को खड़ा कर देते हैं। तदुपरान्त तल में संचित प्रक्षेप की रीटिंग लेकर उसको १० से भाग कर देते है। यही एल्ब्यूमिन की प्रतिशत होती है।

सूद में शर्कश का परीक्षण — सामान्य एव में अति सूक्ष्म माला में शर्करा पायी जाती है जिसका परीक्षण परम्परागृत विधियों से नहीं हो पाता है। यूलगत सर्करा की उपस्थिति वृक्क प्रणालियों की पुन: शोषण क्षमता के अभाव की परिचायक होती है। मूंत शक्रा ग्लूकोज, दुग्ध-शर्करा (लेक्टोज) तथा ग्लक्टोज आदि मोनोसेक्राइड के रूप में पाई जाती है। लेक्टोज स्तनपान कराने वाली महिलाओं के मूत, फल शकरा अधिक फलों का सेवन करने से तथा ग्लूंकोज का निष्का-

वैनडिक्ट टैस्ट-वेनेटिक्ट विलयन ६ मिली. एक परीक्षण नलिका में लेकर उसमें न बूंद पूत्र मिलाकर २ मिनट तक उवालकर ठण्डा कर लेते हैं। शर्करा की उप-स्थिति में ईषत हरित से लेकर सघन रक्तवर्ण प्रक्षेप आता है। वर्ण के द्वारा शर्करा की मात्रा का भी अनुमान हो जाता है।

सन धातु पाक के विकार के कारण होता है।

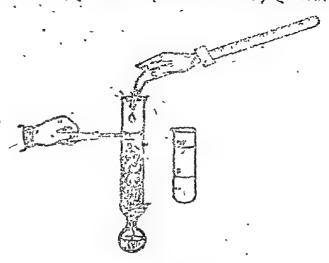
ईपत हरित वर्ण . १ से ५% हरित प्रक्षेप १ से १% पीत प्रक्षेप .१ से २% रक्त प्रक्षेप २ या अधिक %

अस्पतालीय परीक्षण-वेनेडिनेट विलयन का ही छपान्तर होता है। सम्पूर्ण घटक एक वटी के रूप में घनी-भूत होते हैं तथा आवश्यक ताप वटी के मूत्र के सम्पर्क में **बाने पर उत्पन्न होता है। वर्ण परिवर्तन ऊपर वर्णित** परीक्षा के अनुसार ही होता है। परीक्षण नलिका में २ बूंद मूत्र तथा १० वृंद जल लेकर उसमें १ वटी डाली जाती है।

Clinistix—वटी के स्थान पर Reagent Strip का प्रयोग किया जाता है। प्रयोग के दस सेकिंड के पश्चात् संम्बद्ध चार्ट से वर्ण का मिलान किया जाता है।

Fehling Solution test—फेहलिंग विलयन ए तथा बी दो प्रकार के होते हैं। दोनों विलयन समभाग एक परीक्षण नलिका में तथा दोनों की सिम्मिलत माला

मूत्र का धनत्व १००५ कर, लेना चाहिये। यन्त्र में की समान माना में मून दूसरी परीक्षण निका में लेक ्यू चिन्ह तक मूल तथा आर चिन्ह तक एसवेक विलयन . गर्म करके मिला देते हैं। हरित पीत या रक्तवृर्ण प्रक्षेप भू गर्करा का चौतक होता है। फेहलिंग विलयन अधिक जी हाने परस्वयं ही अपचित (कम असर वाला) हो जाता है।



चित्र---रे७ शर्करा की प्रतिणत मात्रा का ज्ञान करना

्मूत शर्करा का प्रतिशत माप—इसकी माप े मीटर न-मक यन्त्र से की जाती है। Carwardi Saccharometer इस हेत् ग्रयोग किया जाता इस यन्त्र में एक फेहलिंग जार होता है जिस पर F F2 तथा DF के चिन्ह अङ्कित होते हैं तथा एक वा कित पिपेट होता है। इस पर D तथा DU के नि तथा एक अंशकित पैमाना होता है। साथ ही एक क्र ्रिवल एवं एक विलोढक भी होता है। (ऊपर चिल्ल २७ 🕻

प्रयोग-फेहलिंग जार में F1 चिन्ह तक फेहा विलयन A, F2 चिन्ह तक फेहलिंग विलयन B DF तक जल मिलाकर कुलं द्रव की क्रुसविल में डा कर गर्म करते हैं।

अंशिकत पिपेट में U चिन्ह तक मूत्र तथा चिन्ह तक परिश्रुत जल लेकर मिलाकर गर्म हो रहे। वल में बूंद बूंद कर मिलाते हैं। विलोदन से मिलाते जाते जहां अवकरण होकर वर्ण परिवर्तन तथा प्रक्षेप आता अंशक्तित पिपेट पर गणना कर लेते हैं। यही भू शकरा की प्रतिशत गाता होती है।

ंमूल में मधुर रस तथा शकरा की उपस्यिति परीक्षा-आयुर्वेद विज्ञान में मधुर रस के परीक्षण पिपीलिका आदि को प्रिय होने से मूल पर चींटे र्च. ाव भाती हो सब उसमें शर्करा होने का अनुमान लगाया ाता है।

••••••पट पद पिपीलिकादीनां अभीष्टतम् •••••
-—अ०स०स० १८

[त्र में दीहोन घाडीज को परीक्षा-

मधुमेह की चिरकालीन अवस्था, दीर्घकालीन उप-ास अथवा चिरकालीन वमन प्रवृत्ति में एसीटो एसिटिक (सिंड या एसीटोन का उत्सर्ग होता है। यदकदा Hy-Iro-butyric acid भी मूल में पाया जाता है।

वस्तुतः शकरा तत्व का सम्यक् धातु पाक न होने से गिरोर में वसा तत्व (Fat) का धातु पाक भी वाधित हो गिता है, अत. वसा धातु पाक के अन्तरिम यौगिक लिया में प्रकट होने लगते हैं।

परीक्षा Rotheras Nitroprusside test

्राहिये। १० मिली. मूल को एमोनियम सल्फेट कणो के शिरा संतृष्त कर लेते हैं। इसमे ३ बूँद Strong so-ium Nitroprusside का घोल एवं २ मि.ली. trong Ammonia निलंति है। एक गहरा परमेंगनेट लर प्रकट होता है।

Acetest — उपरोक्त द्रव्यों की विटका होती है।
न विटापर एक बूंद मूल डालते हैं। २० सैकिण्ड के
द वटी का भी उपरोक्त वर्ण हो जाता है। गोली के वर्ण
ो Maker's chai के साथ मिलाकर मूल में
नीटोन की माला का जान हो जाता है।

शगत विसा की परीक्षा-

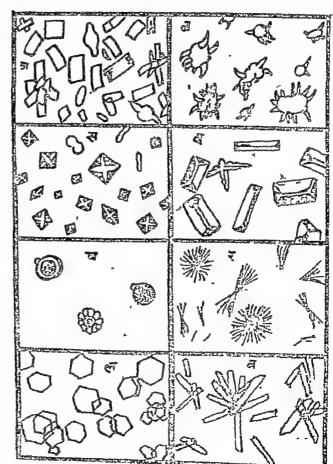
मूत्र में पित्त प्रायः कामला विशेष कर अवरोधक 'मला में पाया जाता है। सद्यः त्यक्त मूत्र में पित्त इण तथा पित्त रंजक द्रव्य दोनों होते हैं परन्तु बाद में 'बल रंजक द्रव्य ही रह जाते हैं। मूत्र का वर्ण हरिताभ 'त होता है। परीक्षा निम्न प्रकार की जाती है—

' Hay's sulpher test—मूत्र को परीक्षण नका में लेकर उसके ऊपर गंधक चूर्ण छिटक देते हैं। —'र गंधक के कण तल में वैटने लगे तब मूत्र में पित्त उपस्थिति समझी जाती है। पित्त लवण के कारण तल का तनाव (surface tension) घट जाता

है। अतः गन्धक के कृण तली में बैठने लगते हैं।

Methylene blue test—एक परीक्षण निका
में कुछ बूंद मिथायलीन ब्लू लेकर उसकी गिरा दे जिससे
कि कुछ बंग निका की प्राचीरों से लगा रहे। इस





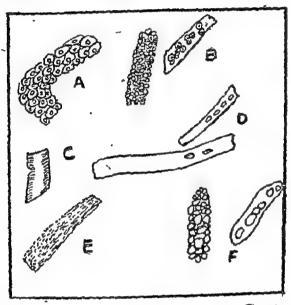
चित्र--- २६

मूत्र के कणीय पदार्थों का सूक्ष्मदर्श के यंत्र द्वारा दर्शन अ—यूरिक एसिड व-एमोनियम यूरेट स—कैलसियम आक्जेलेट द—एमोनियम या मैग-नीशियम फास्फेट य—ल्यूसि र—टायरोसिन ल—सिस्टिन व—स्टिलर फास्फेट।

TEN SINT IEMASERIE

निलका में २ मिली । मूत्र मिला दें, हरित वर्ण आता है।

Nitric acid test - एक फिल्टर पेपर से मूल की छानकर उस पेपर पर ९ बूँव Fuming nitric acid डाले, कई प्रकार के वर्ण प्रकट होते हैं। यथा - हिर्ति, नील, धूसर, किपल, रक्त तथा नील आदि और . अन्त में वर्ण हरा हो जाता है।



चित्र २० — वृक्क निकाओं में प्रक्षेप (Castes) अ. आवरक तन्तु प्रक्षेप [कास्ट] व. रक्त प्रक्षेप [कास्ट] स. वैक्सी कास्ट द हायनाइन कास्ट य. कणीय कास्ट र. मेदन कास्ट .

मुत्रगत रक्त परीक्षा—

अधी रक्तिपत्त में मूत्र में रक्त का उत्सर्ग होता है।
कुछ ऐमी भी अवस्थाएँ होती हैं जहां रक्त रंजक द्रव्य
(Haemoglobin) का ही स्नाव होता है। अल्प
संख्या में रक्त के लोहित कण (R.B.C) वृक्क शूल में तथा
जीवाणु जन्य एन्डो कारडाइटिन में पाये जाते हैं। वहुसंख्यक लोहित कण मूल को रक्त वर्णता प्रदान करते हैं
तथा पान के तल में अविक्षिप्त हो जाते हैं।

परीक्षा - परीक्षण निलका में १ मिली॰ मूत्र लेते हैं, इसमें ३ वूंद टिचर गायकम मिला दें, एक सफेद गंदला-पन प्रकट होता है। इसमें १ मिली॰ ओजोनिक ईयर मिलाते हैं। दोनों के संयोग स्थल पर नीका वर्ण होता है।

Reagent strip or Haemastix को सद्यः त्यक्त मूल में डुवाया जाता है। ३० सैंकिड पश्चात् वर्ण परिवर्तन होकर नीला हो जाता है।

Occultest-वटी हारा भी रक्त प्ररीक्षा होती है।
मुक्ष्मत प्रथ की प्ररोक्षा —

पूयजनक जीवाणु का मूल मार्ग में उपसर्ग होने पर मूले में पूय पाया जाता है।

परीक्षा — टिचर गायकम मिलाने से हरित वर्णकास्टिक पुटाश मिलाने से धुँधला रज्जू जैसा प्रक्षेप आता है। सुक्ष्म दर्शक यंत्र परीक्षा —

साधारण मूत में प्राप्त अवक्षेप अथवा मूत्र को सेंट्री-प्यूगल मशीन द्वारा केन्द्रीभूत करके प्राप्त अवक्षेप की १ बूंद कांच पटिका पर रखकर कवरिस्लप से ढककर सूक्ष्म दर्शक यन्त्र के प्रथम कम शक्ति तथा बाद में अधिक शक्ति में देखते हैं। (चित्र—२६, २६, ३०)

तीन प्रकार की रजनायें दृष्टिगोचर होती हैं—
1. Cell 2. Crystals 3. Cast

Cells—रक्त के लोहित कण, श्वेत कण, पूय कोप त्या आवरक कोच (Epithelial cells) पाये जाते हैं। आवरक कोप Columnar, Trasitional तथा Squamunc भेद से तीन प्रकार के होते है। कभी कभी मूल में शुक्राणु (Sermatazoa) भी पाये जाते हैं।

Crystals—मूल की प्रतिकिया के अनुसार होते हैं। अम्लीय प्रतिक्रिया में — प्रतिक एसिड कई आकार के होते हैं। वर्ण पीला, लाल होता है। चतुष्कोण प्रायः दो शिर वाले होते हैं। यूरेट्स प्रायः गुलाबी या ईंट के वर्ण वाले होते हैं, छोटे छोटे गोल वाने जैसे समूह में मिलते हैं।

कैल्शियम बानजेलेट - चूतु कोण आकृति वाले तथा कर्ण रेखा (Diagonal line) वाले होते हैं। यदकदा सिस्टीन, जेन्यीन तथा ल्युसिन के कण भी पाये जाते हैं।

ं क्षारीय प्रतिक्रिया में — फास्फेट-खेत वर्ण के होते हैं। ये कण तीन आकृतियों में हिन्टगोचर होते हैं।

बमोरफस फास्फेट — सूक्ष्म एवेत दाने जैसे होते हैं। द्रिपिल फास्फेट — मध्य भाग में उठे हुए लिफाफे के आकार के एवेत स्फट होते हैं।

स्टैलरफास्फेट — सफेद लम्बे स्फट झुंड रूप में फैले हैं। समीनियम यूरेट्स — काँटेदार ग़ोल स्फट होते हैं।

Casts—यून में अनेक रोगों में लम्बी या बेलना-कार रचनाएँ पाई जाती हैं जिन्हें कास्ट्स कहते हैं। ये चार प्रकार की होती है।

पृष्ठ ५२ का गेपांश-

वृदक का जाचूपण जीवद्वीलण (Aspiration Biopsy)—सर्वत्रथम सिरांतर्गत वृदकानिन्द चिलाण (Intravenous Pylography) के द्वारा दिकृत वृदक का पता लगाकर, वृदक का कुछ हिस्सा निकाल कर उसका परीक्षण किया जाता है। इस आंधिक परीक्षण से सम्पूर्ण वृदक्यत विकृति का पता लग जाने के कारण अपवृदकता, मधुमेहज मुत्सक जाग्रता आदि अनेक वृदक विकारों के निदान में इसका वहुत उपयोग होता है।

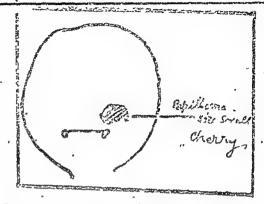
गवीनी शलाकाकरण (Ureteric catheterisation)—प्रत्येक गवीनी के शलाका डासकर उसमें लागा हुआ सूत्र स्वतन्त्रातमा एकत्र कर उसका परीक्षण मिह, जीदाणु इत्यादि के लिए तथा वृक्क की कार्यक्षमता जानने के लिए भी किया जाता है।

वर्णविस्तिवीक्षण (Chromocystoscopy)— वस्तिवीक्षण यन्त्र से वस्ति तथा गनीनियों के द्वारों का सूक्ष्म निरीक्षण किया जाता है और उसके पण्चात् खिरा द्वारा कोई रंजक (Indigocarmine) दिया जाता है और गनीनी के द्वारों का सूक्ष्म निरीक्षण किया जाता है जिससे उत्सर्जित होने का समय और उसका गहरापन



가 갸 갸 가 ⊁ ⊁ ★ ★ ★ चित्र — ३१

मूत्र रोगों की परीक्षा विधियाँ



चित्र संख्या ३२--मूत्रागय में परीक्षण के परिणाम को लिखने का उचित ढड्ग यथा ऊपर मूत्रा-गय केंअर्बुद का लेखन किया है।

मालूम किया जाता है। बच्छे गहरेपन के साथ रंजक का गों प्र उत्सर्जित होना वृक्क की कार्यक्षमता का सुचक तथा रंजक का उत्सर्ग विलम्ब से कम गहरापन लिये होना वृक्क को निष्क्रियता का सुचक है। अनेक बार वृक्का-श्मरी, वृक्कार्बुद बादि विरुत्तरों में विकृत वृक्कोछेदन (Nephrectomy) अधिक श्रेयण्कर है, पर दूसरे वृक्क की कार्यक्षमता का पता लगाये विना यह गस्तकर्म नहीं किया जा सकता। अतः वृक्कों की कार्यक्षमता की जान-कारी के लिये यह परीक्षण किया जाता है।

वृक्कों की क्षमता का प्रथक-प्रथक आकलन—उप-रोक्त उत्सर्जन एक्सरे चिल्लाण या उपयुंक्त रंजन उत्सर्जन — द्वारा किया जा सकता है। जहां एक वृक्क के रोगप्रस्त होने का भय हो वहां शस्त्रकर्म करने के पूर्व दूसरे वृक्क की दक्षता का पूर्ण बोध कर लेना बहुत आवश्यक है।

—पृष्ठ ४० का शेषांश—

मूत्रवह संस्थान (रचना एवं क्रिया शरीर)

का यह भाग मूत्रपथ संकोचनी पेशी (Sphincter Urethrae) के द्वारा बावृत रहता है जिसके कारण यह बत्य-धिक संकुचित होता है।

(३) Sponey Usethra— यह जिल्ला के Corpus Spongiorsum दान में रहने, वाला १२ से० मी८ से १६ से० मी० तच्या शान होता है जो मूत्रपय के कलामय सानं के सन्तिन सान से प्रारम्भ होता है तथा शिलन मुण्ड पर स्थित बहिसू तथय द्वार पर समाप्त होता है। मूत्रपय के इस भाग मे Bulbo usethrai Gends बाकर खुनती

है। इस भाग में मूत्रपथ की चौड़ाई हर जगह समान होती है फेवल शिशन मुण्ड में यह कुछ विस्तृत हो जाता है और पुनः संकुचित होकर शिषान मुण्ड के ऊर्ध्व भाग (Aut-Part) पर एक छिद्र के रूप में खुल जाता है। इस छिद्र को वहिर्मू त्रहार कहते हैं।

स्त्रियों में मूत्रपथ की लम्बाई पुरुषों की अपेक्षा बहुत कम होती है।.साधारणतथा स्त्रियों में इसकी लम्बाई ४ से॰ मी॰ के लगभग होती है।

आशुनिक सूत्र परीक्षा का नैवानिक सहत्यपरक विवोचन

डा॰ णिवनारायण गुप्ता एम॰डी॰ [आयु॰], एफ॰आई॰ए एच॰पी॰एस॰ व्याख्याता—श्री जो॰ शं॰ आयुर्वेद महाविद्यालय, निडियाद ।

मूल जलीयांश और कितिपय घन द्रव्यों का मिश्रण है। इनमें से किसी की भी माला सामान्य से अधिक होना विकृति द्योतक है। मूल में ये विकृतियां चार स्तरों पर आ सकती हैं—

- शाहार द्वारा अधिक माला में लिए गये किसी द्रव्य विशेष का महास्रोतस् में आचूपण अधिक होना।
- २. कोपीय स्तर पर चयापचय (मेटाबोलिज्म) के समय किसी द्रव्य का अधिक उत्पादन होना ।
- ३. वृक्क स्तर पर ग्लोमेरूलर जिस्यंदन एवं ट्युट्यूलर पुन-शोषण में व्यवधान के कारण किसी द्रव्य का सामान्य से अधिक माला में कलेक्टिंग ट्यूट्युल्स में आ जाना।
- ४. अधः मूलमागं, गवीनियां, बस्ति एवं मूल प्रसेक में कुछ • द्रव्यों का मूल में मिल जाना।

इस प्रकार देखा जाय तो महास्रोत्तस से लेकर कोषीय स्तर पर एवं वहां से सम्पूर्ण मूलवह संस्थान की विकृतियों का ज्ञान कराने में मूल-परीक्षा सहायक हो सकती है। प्रमेह में उपस्थित आविलता के संदर्भ में सुश्रुत के टीका-कार गयदास का कथन है कि यह आदिलता दूष्यादयवों की मूल में उपस्थिति के कारण होती है। इस कथन के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि आविलता के अतिरिक्त अन्य विकृतियां भी दूष्यांशो या दोषों को उपस्थिति के कारण ही होती है। सामान्यतः कुछ द्रव्य मूंच में अनुपस्थित ही होते हैं, उनकी उपस्थिति विकार सूचक होती है। इसी प्रकार कुछ द्रव्य एक सामान्य निश्चत प्रगाण में उपस्थित होते हैं उनकी. माला कम या अधिक होना भी विकार घोतक होता है।

योग रत्नांकर में अष्टिविद्य रोगी परीक्षा के सन्तर्गत मूत्र-परीक्षा का विस्तार से वर्णन मिलता है। यह मूत्र परीक्षा मुख्यतः दो प्रकार से वर्णित है। प्रथम—पंचेन्द्रिय द्वारा दोपानुसार दुष्टि की परीक्षा जो मुख्यतः वर्ण एवं स्पर्श पर जाधारित है। दूसरे—तैल विन्दु द्वारा साध्यासाध्यता परक परीक्षा। इन परीक्षाओं में कुछ कमियां रह जाती हैं यथा—मूत्रगत रस एवं दृष्यांशों की उपस्थिति का जान। यदि हम आधुनिक मूत परीक्षा को समाविष्ट करते हुए मूत्र परीक्षा करे तो न केवल ये किमयाँ दूर हो सकती हैं अपितु संप्राप्ति घटकों का अधिक विस्तृत ज्ञान संभव हो कर चिकित्सा— सौकर्य सम्पन्त होगा एवं शास्त्र समृद्धि बढ़ेगी। आधुनिक मूल परीक्षा द्वारा हम अपनी नैवानिक पढ़ित की पुष्टि कर सकते हैं। परीक्षा विधियां चिकित्सा जगत में विदित हैं, साथ हो हमारा उद्देश्य उनके नैदानिक महत्त्व को पितपादित करना है। द्वतः विस्तारभय से विधियों की चर्चा में न उतरते हुए हम उनके भायुर्वेद- परक नैदानिक महत्व पर ही विसर्श करना उद्वित समझते हैं।

भौतिक परीक्षा-

इसके अन्तर्गत मूत्र के भीतिक गुणों की अपेक्षा की जाती है और ये विधियां इतनी सरल हैं कि कोई भी चिकित्सक २-३ मिनट में सभी परीक्षायें सम्पन्न कर सकता है।

मात्रा—पूत्र की मात्रा आयुर्वेद मत से चार अञ्जली मानी गई है। यह माता जहिनिश काल में कई कारणों से बढ़घट सकती है—यथा जलपान की राशि, शीत उप्ण काल आदि। आधुनिक मत से लामान्यतः यह. १००० मि. ली. से १६०० मि. ली. होती है। प्रमेह का मुख्य लक्षण प्रभूत मूचता बताया है अतः प्रमेह में यह मात्रा बढ़ी हुई रहती हैं।

वर्ण - सूत्र का प्राकृत वर्ण पीताभ होता है, किन्तु फुछ औपधियों के सेवन से या असामान्य रंजक द्रव्यों की उपस्थिति वर्ण परिवर्तन कर देती है। आयुर्वेद सत से दोपोनुसार निम्न वर्ण या आकृति हो सकती है—

वात-पाण्डुर वर्ण

कफ--फेन युक्त

पित्त-रक्त दर्ग या अतिपीत वर्ण

त्रिदोप--कृष्णान

ं थाष्ट्रनिक मत से रक्त की उपस्थिति के कारक मूत्र का , नण रक्त, कृष्णांभ रक्त या धूआभ हो जाहा है। पित्त को उपस्थित उसे अत्यन्त पीत या पीताम हरित बना देती है।

गन्ध-मूत्र की प्राकृत गन्ध सर्वविदित है। अप्रा-कृत गन्ध निम्नलिखित हो सकती है-

मधुर गन्य—यह एसीटोन की उपस्थित के कारण होती_है।

शववत् गन्ध-पूयमे ह में पूय के सड़ने के कारण होती है।

मलवत गन्य---पुरीय के मूत्र में मिश्रण के कारण साती है।

स्वच्छता एवं पारदिशकता—सामान्य एवं ताजा मूत्र स्वच्छ होता है। रक्त, पूय श्लेप्मा जीवाणुओं आदि की उपस्थित उसे आविल बनाते हैं। आयुर्वेदमत स दूष्यों के अवयवों के कारण यह आविलता उत्पन्न होती हैं। उन् दूष्यावयवों को रासायनिक एवं सूक्ष्मदर्शी परीक्षाओं से विनिश्चय किया जा सकता है।

सापेक्ष घनत्व जैसा पहले निर्देश किया जा चुका है कि मूत्र में जलीयांश की मुख्य माला के अतिरिक्त कुछ घन द्रव्य होते हैं। जल का घनत्व एक होने से, मूत्र का घनत्व एक से जितना अधिक होगा यन द्रव्यों की उतनी ही अधिक उपस्थित का द्योतक होगा। सामान्यतः यह १.०१७ से १.०२० के बीच होता है। उदक मेह में यह कम हो जाता है क्योंकि उसमें जलीयांश अधिक होता है घन द्रव्य अल्प। मधुमें ह में यह बढ़ जाता है क्योंकि मूत्र में शक्तरा आदि घन द्रव्यों का प्रमाण अधिक हो जाता है ज्वर में जलीयांश कम होने से सापेक्ष घनत्व बढ़ता है। व्योंकि वृक्क की निस्यंदन किया विकृति होने के कारण घन द्रव्यों का प्रमाण बढ़ जाता है। संक्षेपतः मूत्र में गुक, पिच्छित, सान्द्र गुणों की अधिकता सापेक्ष चनत्व को बढ़ाती है और ये गुण उसमें उपस्थित कई द्रव्यों के कारण संभव है।

रासायनिक परीक्षा-

इसमें रसायनिक विधियों से मूत्र में उपस्थित अप्राकृत द्रव्यों की परीक्षा की जाती है।

एल्ब्युमिन या प्रोटीन्म—प्रोटीन, (जो कि आयुर्वेदीय हिस्तिण से मांसधातु के अवयव हैं) रक्त में वृदक मेंनिर्द्यदित होने से मूच में उपस्थित नहीं होती हैं परन्तु अनप्रयस्त द्वारा अधिक व्यायाम् करने से तथा गमावस्मा में

ये मूत्र में उपस्थित हो सकते हैं। वैकारिक अवस्थाओं में पांडु, जीर्ण हृद्रोग, वृक्क सिरागत उच्चदाव, वृक्क शोथ, पारद विषमयता, वृक्क गत अर्वुद या यक्ष्मा में मूत्रमार्ग गत शोथ में मूत्र में दृष्टिगोचर होते हैं। ७०

शंकरा—रक्तगत १=० मि. ग्रा. प्रति १०० मि. ली. शकरा होने पर वृक्क में निस्पंदित होने पर संपूर्ण शर्करा वृक्क निलकाओं से पुर्नाणोपित हो जाती है जतः मूत्र में अनुपस्थित होती है। परन्तु रक्त में अधिक मात्रा होने पर (हाइपर ग्लाइसोमिया) एवं पुनर्गोपण की प्रक्रिया में वाधा होने पर यह मूंच में जपस्थित होती है। आयुर्वेद में क्षीद्र मेह, ईश्च मेह तथा शीतमेह में मूल का रस मधुर बताया है। यह रसजान इस रासायनिक परीक्षा से जात किया जा सकता है। कुछ अवस्थाओं में यथा गर्भावस्था, तील मान-सिक आधात एवं संज्ञाहरण आदि में भी मूल में शकरा पाई जाती है।

शोध परिणामों से यह आभास मिलता है कि शर्करा.
गुण साधम्यांनुसार कफ वर्ग का द्रव्य है (गुप्ता आदि
१६-१)। चरक मत से मधुर रस युक्त ओज का मूत्र
द्वारा निष्क्रमण मधुमेह में विणित है और गुण साधम्यानुसार ओज भी कफवर्गीय द्रव्य है। अतः मूत्रगत शर्क्रा
ओज या कफ के क्षय को प्रदिश्ति करती है।

एसीटोन — एटीटोन मेद बातु का घटक है-। जब शरीर को उर्जा प्रदान करने में शर्करा असमयं होती है तब मेद का विघटन करके गरीर उर्जा प्राप्त करता है। मेद के विघटन के फलस्वरूप एसीटोन का निर्माण होता है और रक्त में इनकी मात्रा बढ़ने पर यह मूत्र मार्ग से वाहर आने लगते हैं। मधुमेह की तीब्रावस्था एवं दीधं-कालीन अनशन में ऐसा होता है। इन्सुलीन की कमी के कारण ग्लुकोज कोपाओं में प्रविष्ट नहीं हो पाता, फलतः उर्जा प्राप्ति के लिये निरुपयोगी हो जाता है और ऐसी स्थिति में यकृत मेद धानु का विघटन आरम्भ करता है। आयुर्वेद में भी प्रमेह में मेद धानु में गैयिल्य बताया है जो इसी विघटन का द्योतक प्रतीत होता है।

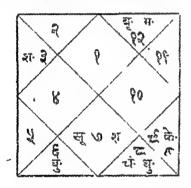
पित्तरंजक द्रव्य एवं पित्त लवण—ये याकृतपित्त के ही घटक होते हैं और इनकी मूत्र में उपस्थित रक्त में याकृत पित्त की वृद्धि का ज्ञान एवं कामला का निदान करने में सहायक होती है।

—शियांश पूष्ठ ७२ पर देखें।



मूत्र प्रणाली में दोपों की उत्पत्ति होने पर आरम्भ में मूत्रकुच्छ्र आदि के लक्षण प्रतीत होते हैं। तद् विषयक ज्यो-तिर्विद आचार्यों ने निम्न घोषणा की है —

जन्म काले यदा यस्पस्मरे भवति भास्करिः। राहुर्दं व्टः प्रकुरते मूत्रकृच्छ्रादिकां रुजम्॥



चित्र सं० २३

अर्थात् जिस प्राणी की जन्म कुण्डली के सप्तम स्थान
में शनि हो और राहु की हिल्ट हो उसको मूत्रकृच्छ्र आदि
रोगों की उत्पत्ति संभव हो जाती है। यद्यपि उपरोक्त
श्लोक हमारे पूज्य ज्योतिविद्द मनीपियों ने रचा है, हमारी
हिल्ट में यह अबूरा एवं संकेत मात्र ही है। वयोंकि सप्तम
स्थान के अतिरिक्त गुरदों एवं रोग का कारक छटा स्थान,
सप्तम स्थान में अन्य ग्रहों का योग इस स्थान पर आने
वाली हिल्ट्यां, वलावल आदि की पूर्णतया उपेक्षा कर दी
गई है जिने में उचित नहीं मानता। सप्तम स्थान से मूत्राशय, मूलकुच्छ्र रोगों की संभावना है यह तो नहीं है किनु
इस तथा ऐसी अन्य कुण्डलियों में जहां सप्तम स्थान मे
स्यं दोपकारी है, यदि वहां चन्द्र बुध जैसा सौम्य ग्रह होता

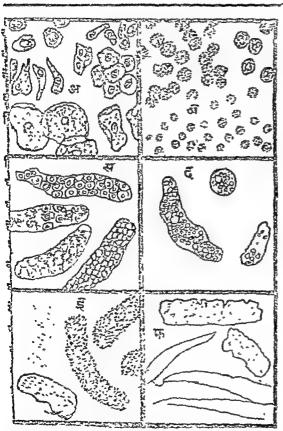
तथा इस कुण्डली में द्वादशभाव में मंगल जैसा कर सप्तम स्थान पर हानिकारी दृष्टि, डाल रहा है वह न होत विलक्त लग्न में भी सौम्य ग्रह होता तो फिर इस श्लोक विणत मूत्रकुच्छ प्रकृरते के स्थान में सामान्यरोगोत्पत्ति अल काल ही क्यों अत्यल्प काल के लिये ही संभव रहती औ उसका सामान्य उपचार होकर रोग शमन हो जाता। य हमने विशिष्ट रूप से इस क्षडली का चयन किया है इस रोग की विभीषिका समझाने में सरल बनती है। ह यहाँ सभी तवप्रहों की स्थिति देकर पर्यावलीकन की चे की है। शनि के साथ मूर्य रोग की वृद्धि एवं कु। कार है, मंगल की द्वादशे स्थिति सप्तम स्थान पर मारकर अथवा गांठ या आपरेशन की स्थिति तक पहुँचाता है अपना सहयोग देता है, केतु उदर विकारों को जन्म दे है तो बुध गुरदे रोग की संभावना देता है, मंगल की हा पाकर गुरदे की क्रिया में हानिकारी प्रभाव देरहा है। ब स्वयं पष्ठेश गुरदा रोगकारी है-उच्च स्थिति में शनि के को अवरोधात्मक गति देकर केन्द्रीय योग दे रहा है। -भी मुलायाय का नाशकारी प्रभाव संकेत दे रहा है। अं हमें इन दोनों स्थानों का सम्यक विचार करना चाहिए मूत्रवह संस्थान के उपरोक्त चित्र से भी यह स्पष्ट अती होता है कि गुरदों की मुत्राशय के सारम्भिक स्रोत अ स्वीकार करने चाहिए। इन्हें मूत्र प्रणालिओं से 📄 हुआ है । माता पिता के संस्कार सन्तान में होना ,1944 है ही। इस प्रवार हम यदि यह चाहते है कि इस ज क्ण्डली के बाधार पर गुरदे या मुलाणय मंस्थान के रे की संभावना की वास्तिनिक स्थिति का ज्ञान हमें उपल हो तो रोगकारी स्थान का कारकत्व, शहाँ मिल ेली

सुखा रोगा गिकिट्स

स्थित अं शात्मक भाव, चिनत स्थित नवांशात्मक स्थिति, इत्य ग्रहीं की स्थितियाँ एवं उनकी दृष्टियाँ, अयान्तं दृष्याँ भावाधिपति स्थिति, उन पर सौम्याभीम्य दृष्टियाँ वनावन आदि सब वातों का पूरा विवेशन करना उपयुक्त होगा। इन सब स्थितियों का अनुकूल प्रतिपूजता का समाकनन प्रमक-प्रपक्त करना होगा। तत्पश्चात महादशा अन्तर्वेशाओं आदि के सहयोग में ग्रह गोचर के परिमाण पर मध्यदृष्टि रखकर फतादेश करते समय पूर्ण परिपाक करना होगा तव ही हमारा प्रयत्न सार्थक सिद्ध होगा । मान गह की स्थिति को बाधार मानकर चाहे हम मानसागरी, वृहज्जानक, लबु पाराणरीय, दीवं वृहदपाराधारीय ग्रंथों से फिलिलार्थ करें चाहे भृगुसंहिता हो अथवा अवींचीन गण्यमान्य प्रश्चित लेखकों की रचनायें हों इस दृष्टि से ये सभी ग्रंथ अधूरे माने जायेगे। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के सुयोग रहते हुए जातक को कारक के स्थान में मारक बन जाते हैं और मारक कारक बन जाते हैं। (जाने पृष्ठ ७३ पर)

ह माधुनिक मूत्र परीक्षा का नैदानिक महत्वपरक विवेचन

🖹 पृष्ठ ७० का रोषांश 🧩



चित्र २४— मूट के कार्यनिक द्रव्यों का सूक्त दर्शन

- वृक्त निकार्ये, मूत्राध्य, मूत्रगदीनी, सूप प्रसेक

गिलका या गोनि से निष्कामित इपीवीनियन सैल।

- पृथ या रत्तकण स-कादरक तन्तु [अपर] या पृथ [बीच में] या रक्त [नीन] के कास्ट्स ।

- भेदज कास्ट ८ - क्षणीय सास्ट फ - वेंगजी सास्ट [ज्यर], हायसाइत कास्ट [नीचे] सूक्ष्मवर्शी परीक्षा - यह बहुत महत्वपूर्ण परीक्षा है इसके द्वारा विभिन्न कोप समूह (कास्ट्स), रक्तकण, पूय, स्फटिक (क्रिस्टल्स) बादि की उपस्थित का ज्ञान होता है।

हाइलाइन कास्ट्स की निरन्तर उपस्विति नेफोस्क्ले-रोसिस के कारण होती है। ७२

वेनसी कास्ट्स - वृद्ध वृक्क शोथ, एवं वृषक के एमा-इलाइड रोगों में उपस्थित होती है।

फित्रिनस कास्ट्स—तीत वृक्क शीय में प्रायः देखी जाती है।

फेटी कास्ट्स—ग्लोमेखलर नेफाटटिस में उपस्थित होती है।

ब्लड कास्ट्स-वृबक्षगत रक्तस्राव में पाई जाती हैं। ल्यूकोसाइट कास्ट्स-वृक्षगत पाक की अवस्या में ये उपस्थित होती है।

पस सेल्स—अल्प संख्या में ये सायान्यन: उपस्थित होते हैं पर अधिक संख्या सूत्र में नार्गगन णोथ एवं पाक की अवस्था के द्योतक हैं।

रेवत कण-मूत्रमार्गं में कहीं भी रहत साव होने पर ये मूत्र में उपस्थित होते हैं।

स्फटिक विभिन्न यूरिक एसिड, बानसेलेट्स एवं फास्फेट्स खादि के स्फटिकों की मूत्र में अत्यक्षिक इप-स्थिति बश्मरी एवं शकेरा रोग या सिक्तामेह की संभावना व्यक्त करती है।

- हा. शिवनारायण गुप्ता एम. ही. (आयु.) एफ. लाइ. ए. एच. पी. एस. व्याच्याता-श्री. जो. गं. आयुर्वेद भंहाविद्यालय, निष्याट ।

THE PURITIES CHI

ज्योविद आचार्यों ने सप्तम स्थान में भान की स्थिति एवं उस पर राहु की दृष्टियात्र से मूत्राशय के रोगों की



चित्र सं०३५ मूत्राशय रोग प्रदर्शिका अन्य कुंण्डली

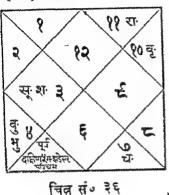
उत्पत्ति की सम्भावनायें प्रगट की थीं जिस पर हम पूर्व अपनी टिप्पणी कर चुके हैं। अब हम यहां अपने अनुभव से एक ऐसी कुण्डली प्रस्तुत कर रहे हैं जिसमें सप्तम स्थान में न शनि है और राहु की हिष्ट के स्थान में राहु स्वयं स्थित है। इस कुण्डली में सप्तमें सूर्य एवं शुक्र भी अब स्थित हैं। सप्तमें शनि की स्थित के स्थान में सप्तम भवन पर शनि की पूर्ण हिष्ट विराजमान है। केतु लग्न में स्थित होकर मूत्राशय संस्थान पर हिष्टिपात कर रहा है तो मंगल गुरु का बल और शनि का हिष्टिवल लेकर सातर्वे घर मूत्र संस्थान के कारक भवन पर त्रिगुणात्मक हिष्टिपात कर रहा है। इस प्रकार इन ग्रहों की स्थितियाँ एवं हिष्टियाँ मूलाशय के मूलाकृच्छ आदि रोगों की उत्पत्ति और उससे जातक के शरीर सुख, भौतिक सुख से वंचित करने के योग प्रदान कर रहे हैं। इन स्थितियों का विश्लेष्ण निम्न प्रकार होगा—

मूत्रशय संस्थान का स्वामी शुक्त स्वयं अपने घर में घर में विराजमान होने से शुभ चिह्न हुआ, राहु मिल का सहयोग गिलना भी श्रेयस्कर है, यह मूलाशय रोगों की निवृति दे रहा था कि अपने घर में ग्रह युद्ध आरम्भ हो गया। युद्ध झंझट झगड़े में विजय किसी की भी हो हानि दोनों ओर की होती है। बलशाली शुक्र पर सूर्य का घातक आघात प्रारम्भ हुआ तब सहयोगी राहु केतु शनि ने सूर्य पर प्रहार आरम्भ किये। परिणाम यह निकला कि राहु केतु की अनायस शीन्नगामी गति को मंद्रगामी शनि ने उनकी अनुकूल प्रगति को रोककर मंदा कर दिशा। इस युद्ध में जो ऊष्मा-आतप विकीण हुआ उसके अभ मूताशय में

स्यापित होगर्ये। इस रोगकारी स्थिति को मंगल ग्रह का अनिष्टकारी हानिकारी मंगल का सहयोग और शनि की करूती भयंकर रूप ले गई— उसने सूर्य को सहयोग प्रदान किया। इस प्रकार एक और ग्रहों का अधिपति सुर्य, ग्रहों में राज्य सेनापति मंगल, राज्यपुटा शनि तथा इन सवको प्राप्त आध्यारिमक गुरुवल, दूसरी ओर शुक्र राह केत् रह गये। सहायक केतु भी अपनी मूलप्रकृति के कारण मंगल के समान नारक बल ले वैठा। परिणाम स्पष्ट होगया कि मूलाशय के रोगों की उत्पत्ति संभव होंगी चूं कि गुक्त अपने घर में बैठा जड़ रहा था इसलिये उसने मूलाशय की चिकित्सा करके सुरक्षा प्रदान की । दैत्याचार्य शुक के पास संजीवनी शक्ति विद्यमान थी जो आजतक शक्त (वीयं) के रूप में मानव प्राणी जगत में ही नहीं पशुपक्षी,स्थावर जंगम सवमें विद्यमान है। गुरु द्वादशो स्थित होकर देव गुरु होने के नाते विवेकशील होकर सप्तम स्थान एवं चतुर्थ स्थान पर उच्च हिष्टियात योग से भौतिक सुखों से विश्वित करने करने की स्थिति में है। यह तब ही संभव होगा जबिक शिष्तांन पर क़ूर दृष्टि पड़े । यहाँ मंगल और शनि दोनों का योग पाने में यह सफल होगया।

वण्ठम भाव को अर्वाचीन ज्योतिविदों द्वारा गुरदे का कारक स्वीकार किया गया, यद्यपि पूर्ण घारणा संशक्त ताकिक शिवत रखती थी, उनकी दृष्टि में भेद उपभेद रहा किन्तु उन महानुशानों ने कारण को ही कार्य मान लिया। यह तो सभी स्वीकार करते हैं कि जन्म कुण्डली में छठा स्थान रोग कारक है, उस स्थान से सम्बन्धित गुदें एवं हिन्यां अथवा पाँचवे स्थान से उदर एवं उदर सम्दन्धी हृदय रोग भी तो देखे जाते हैं। एक ही भाव एक ही राणि से भिन्न भिन्न पचासों कारकत्व लेकर निजंय किया जाता है। अतः छठा भाग वृक्क स्थान भिन्न कारणों से भ्रष्ट हो जाय तो मुत्राशय पर थी उसका प्रभाव वन पड़ेगा। इसी की पुष्टि में हम निम्न कुण्डली (पृष्ठ ७४ चित्र ३६) उपस्थित कर रहे हैं—

इस कुण्डली में सिंह, मंगल, केतु है, उस पर राहू की पूर्ण हिष्ट अपना कुप्रभाव डाल रही है, पण्ठेश भी शनि-राहु से पीड़ित है, ये सब परिस्थितियां गुरदे की अण्टता की द्योतक हैं। जब रोगी से पूंछा गया तो उसने बताया कि गुरदे के पूर्व-दक्षिण भाग में कीय बताया है, दहीं शनि राहू की इस कुण्डली में हिल्ट है और सूर्य भी पूर्व दिशा का स्वामी है, वहीं वह अपने छठे भवन में अंशगत हिल्ट-पात कर रहा है। यह मूत्राशय का रोगी नहीं था, उसके



सप्तमेश विकोणस्य है, परम्परागत भाव से गुरदे का मूत्राणय सम्बन्ध उसे पीड़ा पहुंचा रहा है। मूत्राशय स्वतन्त्र रूप से विकृत नहीं था।

मानव शरीर की रोग घारक स्थिति पूर्ण अध्ययन करने के लिये हमें कुण्डली के द्वादण भवनों एवं नव पहों और साम्प्रतिक आविष्कृत हर्पल नेपचुन प्लूटो ढादश पहों की स्थिति का पर्यावलोकन उपयोगी रहता है। जिससे रोग की स्थाई-अस्थाई स्थिति एवं मारक स्थिति प्राप्ति में पतनी,

पुत्र, भ्रातादिक अन्य आश्रितों के कुयोग विद्यमान हैं, सभी विचारणीय श्रेणी में आ जाते हैं। मूत्र संस्थान के रोग किन अन्य मूलभूत कारणों से संगव है। अतः हम यहाँ अपने पाठकों एवं ज्योतिष अध्यासियों के निमित्त निम्न सामिग्री प्रस्तुत कर रहे हैं—

- (१) ग्रहों के कारकत्व दौप त् आयुर्वेदीय वात, पित्त, कफं विदोधों के आधार पर मूत्र संस्थान पर अपने अपने गुणों के अनुसार प्रभाव पड़ता है। वातकारक ग्रह मूत्र संस्थान में वात कुपित करते हैं, पित्तकारक ग्रह पित्तदोप उत्पन्न करते हैं और कफकारक ग्रह कफंदोप उत्पन्न करते हैं यथा बुध, ग्रानि ग्रह वातकारी प्रदाता है। गुरु, शुक्र कफकारी रोग दाता वन जाते हैं। मंगल पित्तकारी मूत्र संस्थान के रोग देते हैं। सूर्य उल्लाता-दाता ग्रह है। बुध ग्रह शौझगामी अनायास फल प्रदाता है तो शनि ग्रह दीर्घ-गामी, दीर्घ प्रभावी ग्रह है। राहू शनिवत् तथा कदाचित् बुधवत् एवं केतु मंगल अथवा ववचित् गुरुवत् प्रभावी वन जाता है।
 - (२) ग्रहों की गितयां: सूर्य चन्द्रमा को छोड़ अन्य सभी ग्रह कभी कभी अपनी निश्चित अवधि के पश्चात् सामान्य गित को छोड़कर वक्री गिति धारण करने लग जाते हैं। रोगों की चानू अवस्था में ग्रहों की वक्र गित — आगे पृष्ठ ७५ पर

मुत्र परीक्षा से साध्यासाध्यत्व एवं व्यरिप्ट ज्ञान

साध्ये लक्षण —तैन विन्दु के प्रसार की आकृति यदि हंस, कारण्डपक्षी, तालाव, कमल, हाथी, चंवर, छन, तोरण, प्रासाद आदि परिपूर्ण दीखते हों तो रोगी जीघ्र बारोग्य लाभ करता है।

यन्य रोगों का ज्ञान - जब तैल बिन्दु का प्रसार चलनी² के समान अनेक बिन्दुओं व छिद्रों से युक्त हो तो फुल दोप जाना जाता है। इसमें प्रेत दोप लिखा है।

यदि वह आकृति नराकार हो अथवा दो शिर वाली हो तो रोगी में भूतदोप जाने, इमका भूतिव्यावत उपचार करे। नैल की बूंद सर्पाकार हो जाय तो वात दोए, छनाकर 💥 पृष्ठ ६० का भेवांश 💥

होने से पित्त दोप और मोती के समान होने से कफ दोष

विशेष ज्ञातव्य—मेरे अनुभूत पीछे लिखे परीक्षण को छोड़कर अन्य आचायों द्वारा विणित उक्त मूत्र परी- क्षण के सारे लक्षण दुस्ह एवं दुविज्ञेय हैं। जिस प्रकार नाड़ीज्ञान व्हुत अनुभव व साधना से होता है उसी प्रकार मूत्र प्रमृत तैल विन्दु की आकृतिओं का ज्ञान थी अभ्यास अनुभव से ही जाना जा सकता है। इसके लिए प्रयत्न, साधना व अनुभव चाहिए।

- वैद्यगंज डा रणवीर सिंह, णास्त्री पी एच डी॰ अध्यक्ष-जिला वैद्यस्था, आगरा।

¹ हंमकारण्ड ताड्गां कमलं गज चामरम् । छतं तोरणं हम्थं मुपूर्णे हुक्वेत यदि । बारोग्यता ध्रुवंज्ञेया तटा कुर्यात् प्रतिक्रियाम् ॥ गो. र. मत्र परिता ॥

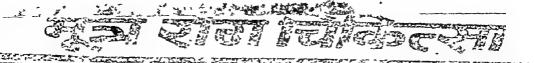
संचरण के कारण रोग की प्रवृत्ति एवं वृद्धि में व्यवधान की संभावनाय होने लगती है। इनकी यह स्थिति उस समय और वढ जाती है जबकि जन्म कुण्डली में निर्दिष्ट यह त्रक्र गति पर हों। इस समय रोग पर सावधानी से नियंत्रण कर लिया जाय यही बुद्धिमानी है, लापरवाही न बरती जाय अन्यया उसके दूरगामी प्रतिकृत परिणाम भोगने को रोगी और उसके परिचारक तत्पर रहें। प्रहों की संचरण गति में प्रहों का अस्तकाल भी आता है, गुरु गुक्त के उदय अस्तकाल से तो सामान्य जन भी परिचित हैं। उदयकाल में प्रह सचेष्ट रहते हैं और अस्तकाल में पराभवी बन जाते हैं।

- (३) राणियों का तात्विक विचार—ज्योतिष णास्त्रीय पद्धति के अनुसार समस्त द्वादश राणियों को चार विशागों विभाजित किया गया है। प्रथा—
- अग्नि तत्व कारक राशियाँ--(१) मेप राशि (२) सिंह राशि (३) धनु राशि ।
- २. पृथ्वी तत्व कारक राशियाँ-(१) वृषक राशि (२) कन्या राशि (३) मकर राशि ।
- ३. वायु तत्व कारक राशियाँ--(१) मिथुनराशि (२) तुला रोशि (३) कुंभ रोशि ।
- ४. जलीय तस्य कारक राशियाँ--(१) कर्कराशि (२)वृश्चिक राशि (३) मीन राशि ।
- पुष्ठ विद्वानों ने आकाणीय तत्व को पृथ्वी—वायु तत्व
 के अधीन स्वीकार किया है। कुछ जल एवं वायु के अधीन स्वीकार करते हैं।

मूत्राशय सम्बन्धी मूत्रकृष्ण, बादि रोगों के लिए जन्म लग्न राणि, सप्तम राशि तुला एवं जन्म कुण्डलों के सातवें स्थान की राशि धीर उनके अधिपति की राशि इत्यादि वातों को मध्य दृष्टि रखकर विचार करना चाहिए। इस विधि के द्वारा मूलकृष्ण, के ६, मूलाधात के १६, अण्मरी के पांचों भेदों के साथ वृक्क सम्बन्धी रोगों का निदान संभव है। इन्ही राशियों के आधार पर मूल संस्थान संबन्धी सभी रोगों के कारकत्व का विभाजन निम्न प्रकार होगा—

(१) मेप राशि—अपने साग दूषित अग्नि तत्वों का समन्वय प्राप्त कर मूत्र संस्थानों पर ग्रंथि एवं पीड़ा—ददं की सुजनात्मक राशि वन जायेगी। इसमें मस्तिष्क की-सन्मुख भाग की शिराओं में उद्देलन होकर मूत्र संस्थान पर प्रभाव होगा।

- (२) वृप राशि—अपने साय दूपित पृथ्वीं तत्वों का भार-अर्धभार प्राप्त करके प्रारम्भ में पाचन किया जनित दोषों की अव्यवस्था उत्पन्त होगी। तत्पश्चात् मूत्र रोगों उत्पत्ति में सहायक सिद्ध होगी।
- (३) निथुन राशि—अपने साथ दूपित वायु तत्वों का समीकरण कर शरीरस्थ शक्ति प्रवाह में अव्यवस्था उत्पन्न कर मूत्र संस्थान के रोगों की संभावना प्रदान करेगी।
- (४) कर्क राशि अपने साथ दूपित जल तत्वीय आंशिक ऊष्मां का समन्वय कर सामाणय संस्थान में व्यवधान उत्पन्न कर मूजवह संस्थान में रोगों की उत्पत्ति अ करेगी।
- (१) सिह—अपने साथ दूषित अग्नि तत्वों को ग्रहण कर रक्त विकृति द्वारा सूजन की उत्पत्ति करती है, पश्चात् मूच्च संस्थान के नस नाड़ी केन्द्रों में ऊर्जा हीनता से थयावह दुष्परिणाम उत्पन्न करती है।
- (६) कन्या राणि—अप्तने साथ भूमिस्य वायुकारक आकर्षक तत्त्रों को समाहित कर मूझ संश्यान के गुरहे आदि रोगों में व्यवधान उत्पन्न कर सूत्राणय सम्बन्धी विधिन्न रोगों की उत्पत्ति में सहायक होती है।
- (७) तुला राणि—अपने साथ वायच्य कुषित दोषों का समाहार कर नेवजन (Bitrogen) की अधिकता के कारण मूत्र संस्थान के बीयं दोषों को उत्पन्न कर मूत्र संस्थानवह रोगों में विधिष्ट रोगों की उत्पन्त करती है (इन दोषों में किञ्चित सहयोग मस्तिष्क स्नायविक जाल का भी रहता है)। अतः यह राणि सामान्य असंतुलित होते ही शरीरस्थ मूत्र संस्थान पर विशेष प्रभाव डालती है और असामान्य स्थितवण तो पौष्पग्रन्थ पर विशेष असंतुलन उत्पन्न कर काम श्वना को प्रभावित करती है।
- (=) वृश्चिक राधि—अपने साथ कुपित जलीय तस्वों की ऊष्मा का संवरण करके मस्तिष्कीय कोपों का सहयोग पाकर मूत्रसंस्थान के वस्ति मार्ग,मूत्रोत्सर्ग क्रिया पर प्रभारी योग वन जाती है। कुयोग से प्रथि एवं विपजन्य ग्रंथि वना देती है।
- (६) धनुराशि—यह राशि अपने साथ कुपित उप्मा प्रवाही तत्त्वों को ग्रहण कर सामान्यतः गरीर के किसी भी अङ्ग पर क्षयकारी प्रभाव उत्पन्न कर देती है। रक्त क्रिया में दोप उत्पन्न कर मूद्र संस्थान पर ममृन्तिक घासक सिद्ध हो जाती है।



- (१०) मकर राशि—यह अपने साथ भूमि के गंभीर तत्त्व को आत्मसात् करके रक्त संचार क्रिया में विप दोषों की उत्पत्ति करके मूत्र संस्थान प्रणाली पर हानिकारी प्रभाव उत्पन्न करती है।
- (११) कुंभ राशि यह अपने, साथ वायु तत्त्वों के कुंपित दोपों को ग्रहण कर मूत्राशय, वृक्क संस्थानों की संधियों पर दुष्प्रभाव उत्पन्न करती है। इन स्थानों में पोली गाँठ बना सकती है।
- (१२) मीन राशि यह अपने साथ जल तत्वीय दोपों को कुपितकर मूत्र संस्थानों में जल संग्रह कर अनेक. प्रकार के रोगों की उत्पत्ति कर देती है। इसमें वायु तत्वीय राशियों एवं ग्रहों का प्रभाव त्वरित गति से प्राप्त होता है।
- (४) भवनों का कारकत्व-मूत्र संस्थान रोगों की उत्पत्ति के निमित्त हम जन्म कुंडली के प्रथम, चतुर्थ, पष्ठम एवं सप्तम स्थानों को इनका कारक मानेंगे। लग्न भाव कुंडली का प्रथम केन्द्र है, शरीर भी माना जाता है। इसमें यदि कूर ग्रहों की स्थिति हो, शतु प्रहों की स्थिति हो, निर्वेल अंशों के ग्रह हों अथवा जन्मकालीन निर्वेल राणि अथवा भाव हो तो ये सव परिस्थितियाँ प्रतिक्लता प्रदान करने वाली हैं। इसंस्थान में व्यवस्थित क्रूर ग्रह सप्तम भवन पर सीधी हिंद्द दीप उत्पत्ति कारक वन जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि ये ग्रह मूत्र संस्थान पर रोग-कारक स्थिति की सम्भावना प्रगट करते हैं, कूर ग्रहों में मदि मंगल अथवा केतु की स्थिति हो तब तो उस अङ्ग-नस नाडी केन्द्र को भ्रष्ट कर ही देते हैं, यदि अन्य सह-कारी योग प्राप्त हों तो नण्ट भी कर सकते है। इसी प्रकार चतुर्थं स्थान चन्द्रीय कारकत्व भी अ शगत उदर एवं जलीयकारक ग्रह भवन होने से तीसरे केन्द्र स्थान सप्तम भाव पर कृपित हिष्ट रखने से वह भी भयावह स्थिति प्रगट कर देता है तत्पश्चात् पष्ठ स्थान वृत्रक संस्थान का विशिष्ट भाव होने से यूत्र रोगों की उत्पत्ति में सहयोग प्रदान करता ही है, सप्तम स्थान वस्ति - मूत्राणय का कारक स्थान होने से वह ग्रह राशि की स्थिति एवं दृष्टि भेदों के कारण निवंलतावश वस्ति कारक रोगों की उत्पत्ति प्रदान करेगा ही। यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात है कि जब विन्हीं स्वानीं पर सबल एवं क्रूर कह शनि. गंगल, राहु केतु आदि अपनी इष्टियां डाल रहे हों तो सम्पूर्ण कुण्डली के सम्पूर्ण प्रहों की स्थिति एवं इष्टियाँ इन भवनों के

कारक मूल संस्थान रोगों पर अपना कुटिल प्रभाव बनाये रखने में सक्षम रहेंगी। कभी कभी ऐसी संभावनायें अनुभव में आती है जब लग्न एवं सप्तम स्थान में ग्रहों की मूल संस्थान को मारकत्व प्रदान करने वाले ग्रहों की स्थित वा ष्टिंग्ट नहीं होती किन्तु अप्यम एवं द्वादण भाव स्थित ग्रह होते हैं अथवा अन्य प्रकार से ये भाव बिगड़ जाते हैं तो इन भावों के कारकत्व अथवा इनकी आधारीय मान्यता—अप्यम एवं द्वादण भाव-चुरे माने जाने के कारण मूल सस्थान के लिये हानिकारी, बन जाते हैं, इसमें फलित ज्योतिष का मूल सिद्धान्त कारगर द्विन्गोचर होता है अर्थात अवन सप्तम भवन का मारक स्थान होजाता है और द्वादण भाव सप्तम स्थान से छठा भाव-रोगकारी हानिजब बन जाता है। इसलिये हमें सप्तम स्थान की हानिकारम स्थित के अभाव में आठवें बारहेवें भाव पर अवश्य ही विचार करना समीचीन होगा।

(५) ग्रहों का धातु वर्गीय गुण-जैसा सर्वविदित है कि आयुर्वेदिक उपचार का आधार वात, पित्त, कफादि सम असम धार्तु हैं। इनमें ने किसी भी गुंण का असन्तुलन होने पर शरीर में किसी न किसी प्रकार की ज्याधि रोग का उपद्रव दृश्यमान हो आयगा । इसी आधार पर विकृत वातकारक ग्रह मूल मंस्थान में भी वातदीय कुपित करते हैं, विकृत कफकारक ग्रह कफ दोप से रोग उत्पन्न करते हैं और कुपित पित्तकारक ग्रह पित्त दोषों से सूत्र संस्थान में उपद्रव उत्पन्न करते रहते हैं। रवि मंगल पिलकारक ग्रह माने गये हैं। इनसे अङ्ग प्रत्यङ्गों में जलन, सुजन आदि के उपमर्ग प्रतीत होने लगते हैं। चन्द्रमा श्लेष्म-कारक ग्रह स्वीकार किया गया है। वह अपनी विकृत अवस्था में मूत बाधा उत्पन्न कर सकता है। णुक्र ग्रह कफकारी उपद्रवों को उत्पन्न करके दीर्थ से सम्बन्धित मूबाणय के रोग उत्पन्न कर देता है और बुध, शनि राहू केतु वातकारी उपद्रवों की संभावनायें उद्भूत करते हैं। एक क्षेत्रीय विकारी. ग्रह होने पर भी उनकी सब भांति सर्वेत्र समान सामञ्जस्यता नहीं है। बुध सहसा अल्पकाल के लिए उपद्रव करेगा, सनि दीर्घकालीन वायु नेगों को कुपित करेगा और उनके स्थाई परिणाम शेय जीवन के लिये हानिकारी सिद्ध होंगे। राहु अगर अकेला होगा तो उस विकृत वायु रोगों को उन्नत कक्षा तक पहुंचा देगा वौर वन्य ग्रहों का जब प्रभाव होने लगेगा तो तसम

Tal You fallances

प्रभाव में आत्मसात कर लेगा। और चेतु की दशा ही विचित्र है, वह वायु दीषों की विकृति से यथासम्भव इस संस्थान को नष्ट-भ्रप्ट करने की चेष्टा करेगा। सामान्यतः गृह समधातुवर्गीय स्वीकार किया जाता है किन्तु जन बुध शनि सादि ग्रहों की दृष्टियां इस पर पड़ने लगती हैं तो वह अपनी सीम्यता त्याग कर वात, पिल, कफकारक दोषों, रोगों की उत्पत्ति में सहयोग देने लगता है और यदि मारक अशुभ स्थानों में बैठा हो तो वह भी शेष जीवन के कल्याण हेत् आध्यात्मिक स्वरुप से मूलावह संस्थानों को समाप्त करने की चेप्टा करेगा। इसी प्रकार दूषित गुक्त अपना कफकारी प्रभाव छोड़ बैठता है जब उस पर सूर्य या मंगल जैसे पित्तकारक ग्रहों की दिष्टियां, सान्तिध्य का वर्चस्व इिटगोचर होने लगता है। शुभ ग्रह अपना कारकत्व गुण छोड़ वैठा, वह अंशगत अवश्य ही सामञ्जस्यंता के साथ मूत्राशय में वीर्यगत दोषों की उत्पत्ति कर देगा।

- (६) राणियों का दिशा तोध जन्म गुण्डली अथवा आकाश को चार अथवा आठ दिशाओं में वर्गीकृत किया गया है, अन्तः हिन्द से उसके और भी अधिक उपभेद संभ्व हैं। इसी आधार पर मानव जरीर को भी दिशाओं में विभक्त किया जा सकता है। जन्म कुण्डली में मूटा संस्थानयह रोगों के निदान और उपचारार्थ इसी विधि का आथय लेना आवश्यक है। इससे हमें निश्चित स्थान - के अङ्ग-भंग गुटि खादि का वीध हो संकेगा। जैसे यकृत गुरदे के दो भाग हैं अर्थात् शरीर के दायें तथा वायें भाग में अवस्थित है, मूत्र प्रणालियां भी दायें-वायें आज में अद-स्थित हैं। इसी प्रकार वस्ति मूत्राणय को भी हम दो या चार भागों में बांट सकते हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण भाग माना दायां-दायां पर्याप्त नहीं हैं। इस निर्णय के उपरांत हम कह सर्केंगे कि गुरदे या मूलाशय के कौन से भाग दूपित अवस्था को प्राप्त हैं। इसकी तुलना लाप शरीर के चित्र (ऐक्सरे) से कर के देख लीजिये बल्कि जो ज्योतिर्विद अपने विशेष अनुभव को प्राप्त हैं वे ग्रह की दैनिक चालीं के परितंन से गृह भी वता सकेंगे कि नष्ट या घ्रष्ट अनुभाग किस तारीख को ठीक हो जायगा, या नहीं होगा।
 - (७) ग्रहों का भोग्यकाल—सामान्यतया सूर्य एक राशि पर गह गोचर रियति के अनुसार एक मास, चन्द्रमा .

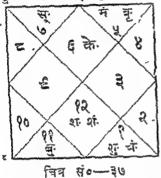
लगभग सवा दो दिन, मंगल लगभग डेड़ मास, बुध एक मास, गुरु तेरहमास, शुक्र एक मास, शनि ढाई वर्ष, राह-केतु अठारह मास स्थित रहते हैं। इनमें भी कभी कभी विक्षेप संभव होजाता है, जिन्का बाधार सूक्ष्म गणित है, विधान है। इन ग्रहों में सूर्य पहले पांच दिन, फलदायी माना गया है। चन्द्रमा राशि की अंतिम तीन घटिकाओं पर विभिष्ट फलाश्रयी घोषित किया गया है। मंगल आरम्भ के आठदिन और जन उसका काल ४५ दिन से अधिक होता है तव इसमें भी वृद्धि हो जाती है। बुध सब दिनों में प्रभावीं रहता है किन्तु वह दोनों प्रकार के फल देता रहता है। इसिलियें इस पर सदैव ध्यान देते रहना चाहिए कि वह कव करवट बदतता है। मूत्र संस्थान जैसे विषम रोगों में चिकित्सक एवं अभिभावक सभी को साव-धान रहने की आवश्यकता है। गुरु अपनी युक्ति के दो मास प्रभाव रखता है। गुक्र अपने एक मास के काल में मध्य के सात दिन अपना विशेष प्रभाव रखते हैं। शनिदेव अपनी संचरण राशि के अंतिम सात महीने दोषपूर्ण कुप्रभावी मारक स्थिति से दुलती झाड़ जाते है। राहुकेतु अंतिम दो मास अधुमकारी क्षयी फल पहुंचाते है। अधुभ फलदायिनी स्थिति इन ग्रहों की विकृति से ही भाष्त होगी। अन्यथा वे रोग को दूर करने की स्थिति में पहुँचा देते हैं। यह निर्णय स्वानुभूति से ज्योतिपी ही करेगा।

- (७) ग्रहों की गति विधियां सूर्य चन्द्रमा के अति-रिक्त मंगल, बुध, मुक्त गानि जैसा ऊपर संकेत दिया गया है है बक्तीगति धारण करते रहते हैं। उनके फलाफल निर्णय के विषय में सामान्य स्पष्टीकरण कियां जा चुका है।
- (द) संधिगंत स्थिति—जिन रोगियों जनम लगन,
 पण्टम संप्तम अप्ठम भाव संधिगत हों—भाव नण्ट होचुके
 हों, या अन्य कोई भाव संधिगत-या नण्ट भाव, या भाव
 बृद्धि को प्राप्त हुए हैं उनके फलादेश को अवज्ञा सामान्य
 नियमों के आधीन समझ कर नहीं की जानी चाहिए)
 इनका प्रभाव मूत्र संस्थान वह रोगों के समान शरीरस्थ
 सभी कुटिल रोगों पर पड़ेगा । संधिगत भाव के समान
 राशि-नक्षत्र एवं ग्रहों की स्त्रितियाँ भी संधि को प्राप्त
 होती रहती है । संधिगत स्थितियाँ प्रायः प्रतिकृतता प्रदान
 करती हैं । अनेक बार अन्यत्र वाणत योग-कुयोग अपना
 प्रभाव डालने में रह जाते हैं किन्तु ये योग अपना अप्रत्यक्षकारी प्रभाव डालते रहते हैं ।

Harin Theory

सूत्रकुच्छ -

आयुर्वेदीय ग्रन्थ निघण्टु के मूत्राशय अध्याय के अन्त-गंत मूत्रकृष्ठ रोग की निदान व्यवस्था के कारणों में व्यायाम-परिश्रमाधित्य, तीक्ष्ण औषिधयों एवं नद्यमांसादि स्क पदार्थों का सेवन प्रमुखतया वताया है। इसकी ज्यो-तिप वर्गीय निदान व्यवस्था जानने हेतु जन्म कुण्डली और उसके भावों के माध्यम से सहज समझने के लिये एक जदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—



मूत्रकृष्णु रोगी की जन्म कुण्डली

शाइये, जुमरोक्त कुण्डली के अध्यमन से हम मूलकुण्छ रोग की संभावना पर विचार करें। सर्व प्रथम देखिये लग्नेश छटं स्थान में वैठकर रोग का कारक वन गया, लग्न में हेतु का वैठना भी शुभ नहीं रहा। सप्तम मारक भाव से र्गान राहु की लग्न पर इिट्यात भी दोषपूर्ण है। इस प्रकार जातक का स्वास्थ्य अच्छा नहीं खेगा। अब दूसरे भवन भीयन आदि के कारक पर देखते है तो वहाँ ग्रहों का अधिपति मूर्य अपनी कप्णता चत्रता का वर्त्रस्व बढ़ा रहा है एक पाद इप्टि से वहां कटुना प्रदान कर रहा है। यद्यपि मध्रता के प्रतीक गुरुका सहयोग ले रहा है। णुक्र पूर्ण-हिष्ट से अम्ल रस भोज्य पदार्थों में प्रदान कर रहा है और चन्द्रमा दार का प्रतीक पूर्ण रिष्ट डाल रहा है। इससे प्रतीत होता है कि जातक अवण्य ही मद्यमांस एक कट्-तीकंग नमकीन भोज्य पदार्थों का रुचिकारी होगा। शनि राह की तिपाद अंशात्मक हिण्ट 'कपाय रसीं की छोर संकेत देकर हमारी धारणा की परिपृष्टि कर रहा है। इस जातक के तृतीय में यृश्चिक राजि साहस और उद्दण्डना की प्रतीक स्वयं है, उस पर उसके स्वामी त्तीयेण की हिटड और डाएमे स्थिति अंत्यन्त साहस एव हिसक प्रवृति प्रदान करती है। गुरु वी योग कारक स्थिति साहस में पागलपन

जैसी चरम सीमा पर पहुंचा देने वाला है। यदि तृतीयेण मंगल के स्थान में अन्य ग्रह द्वादण— भाव में होता और उस पर दृष्टि न होती तो जातन जातक साहस एवं क्रिया-शीलता से हीन आलसी बन जाता। इस तृतीयेण मंगल की स्थित भणवह होकर—अपराध जधन्यता के कारण कारावास अथवा मृत्यु दंड का भोगी भी हो सकता है। इन कुशोगों को मध्य दृष्टि रखकर लग्न एवं सप्तम स्थान के शनि राहु की स्थिति समक्ष रखते है, ये सब योग कुथोग मूलाण्य सम्बन्धी मूत्रकृच्छ रोग की संभावनायें और उससे नाड़ी केन्द्र की विक्षिप्ता तथा गुरदे के रोगों की ओर संकेत कर रहे हैं।

अव् यहाँ यूंत्रकृष्ण् एवं मूत्राशय के भेद - उप भेदों पर ज्योतिय सम्बन्धी दिचार प्रस्तुत कर रहे हैं। मूलकृष्ण के निम्न क उपभेदें प्रमुख हप के माने गये हैं वर्षात् (१) वात जन्य (२) पित्त जन्य (६) कुफ जन्य (४) सित्रपात जन्य (४) शल्य (६) पुरीय जन्य (७) अश्मरी जन्य (६) शुक्रज मूलकृष्ण ।

१. वात जन्य मूत्रक्रच्छू-आयुर्वेदिक लक्षण-प्रायः इस रोग में जांघ, उरु की सन्वियों में पीड़ा होती है। मूत्रा-एय-एवं मूत्रे निद्रय में दर्व होता है, इत कारण मूत्र भी घोड़ा शोड़ा उत्तरता है। हाय की नाड़ी देन्द्रने से विदित होता है कि पात दोपी यति प्राप्त हो रही हैं। ज्योतिष के फलित बाधार पर जन्मकु उर्ली हो या वर्ष कुण्डेली उनमें बुध शनि की स्विति कीण होकर छठे आठवें बारहर्वे भाव में होगी तथा शनिमंगल राहुकेतु की मारक हण्टियां एवं ग्रहों की बलावल कीणता सप्तम स्थान पर होगी। सभी दोपों में बंधात्मक स्थितियां भी विचारणीय हैं।

े. पित्त जन्य पूत्रकृष्ट्रं — आयुर्वेदिक लक्षण—इसमें प्रायः मूत्र का रंग रक्ताभ, पीला कण्ड से उत्तरने वाला होता है। इस पित्ताप्रही रोग निदान में जन्य पित्त दोषों के साथ नाड़ी की गति पित्त प्रकृति की प्रदिशिका होती है।

३. कफ जन्य मूत्रकृष्ण आयुर्वेद मतेन इसके लक्षण-प्रताशय एवं शिष्टन में भारीपन प्रतीत होता है, सूजन हो जाती है, सूत्र में विकनापन होता है। सूत्रवितवर्ण का होता है एवं नाड़ी कफ प्रधान ज्योतिप के आधार पर मूलतः शुक्र गह की विकृति होगी। भले ही शुक्र स्वगृही अथवा उच्च का वयों न हो उस पर फ़रूर गृह सूर्य, मंगन शनि की युति अथवा हिंट अवस्य होगी। शनि शुक्र यद्यि मित्र हैं तथापि शनि अपनी नैसर्गिक प्रतिभा को तिला-ज्जिल पूरी तरह नहीं दे सकेगा । सूर्य की युति अथवा हिन्द शुक्र के वल को बलात् कीण करती है। सूर्य शुक्र परस्पर शश्चपक्षीय सम्बन्ध भी तो रखते हैं। शनि गर्ह दीर्घगामी फलित : दान करता है अतः मूत्र संस्थान के कफ जन्य रोगों की उत्पत्ति करके सहज भाव से मूत्र उत्तरने सें कठिनाई प्रदान करेगा।

४. संनिपातज मूत्रकृष्ण आयुर्वेद के मतानुसार इस रोग में सन्निपात सम्बन्धी लक्षण प्रतीत होते हैं। यह मूत्रकृष्ण कर्ट साध्य होता है। इस रोग में रोगी पीड़ित होकर सन्निपात जैसी स्थिति को प्राप्त हो जाता है। ज्योतिष वर्गीय लक्षणों में हमारी ज्यवस्था निम्न प्रकार है। पछ सप्तम स्थान एवं गुरु शुक्त ग्रहों का वर्चस्व हीन वली रहता है। इससे सूत्र सस्थान के कारक ग्रह एवं भवन दोनों निवंलता को प्राप्त होते पाये गये हैं। उपरोक्त कुयोग भी समाविष्ट होते हैं जिससे सूत्रकृष्ण योग को सम्प्राप्त होती है। इन सब कारणों के अतिरिक्त चन्द्र एवं कक राशि तथा लख स्थान की निवंलता स्थय प्राप्त होती है। इन सब कारणों के अतिरिक्त चन्द्र एवं कक राशि तथा लख स्थान की निवंलता स्थय प्राप्त होती है। इन सब कारणों के निवंलता स्थय प्राप्त होती है। इन सब कारणों के निवंलता स्थय प्राप्त स्थान की निवंलता स्थय होती है। प्रायः सप्तम स्थान में शनि राहु की स्थिति लग्न स्थान पर पूर्ण हिट्ट होने के नाते मन मानस में असन्तुलन हो जाता है। चन्द्र हीन वली, शनि राहु केतु हारा युति वा हिट्ट से सन्निपात की स्थित उत्पन्न करेगा।

प्र शल्यज मूत्रकृष्ण्—अायुर्वेद सिद्धांतानुसार शल्यज रोग के लक्षण इस प्रकार कहे हैं। उदरादि की शल्य क्रिया में ससावधानी अथवा किसी प्रकार से चीट पहुंचने पर मूत्रकृष्ण् रोग की संशावना हो जाती है। ज्योतिपवर्गीय लक्षणों में जन्म कृण्डली के निदान में हमें केवछ सप्तम स्थान का ही सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना खावश्यक है। इस स्थान पर मंगल का पूर्णतयां कृष्रभाव रहेगा। सप्तम स्थान और शुक की अवनित कारक स्थिति मङ्गल के साथ जरूरी है। यदि उस पर केंतु की युत हिन्द है तो इस स्थिति में मूत्रकृष्ण् रोगी के प्राणान्त का भय है। ऐसी सम्भावना होने पर रोगी की सायु स्थिति विचारणीय है— रोगी अल्पायु, मध्यमायु, दीर्घायु है। महादणा के अन्तर्गत दशाओं का समीकरण कर लेना भी उचित रहेगा। मङ्गल शल्य क्रिया में मारक बन सकता है।

६. गुरीपज मूत्रकृच्छ्— आयुर्वेद के अनुसार इसके लक्षण मलावरोध, वातणूल एवं अफरा से मूत्रकृच्छ्

उत्पन्न हो जाता है। ज्योतिय वर्गीय निदान हेतु उसके लक्षण निम्न प्रकार होंगे— सर्व प्रथम पञ्चमस्थान की विकृति आवश्यक है। बुध यह की स्थिति पर गंभीर चितन आवश्यक है। तात्पर्य यह है कि पंचम स्थान उदर का कारक भवन है, उस पर बुध के कारक वायु दोप प्रकृपित होने सूर्य का सहयोग मलावरोध करता हुआ मूत्र अव-रोधात्मक सृष्टि शनि का योग पाकर दिगुणित रूप से उभरने लगता है। इस स्थिति के साथ छठे सातवें घर के गहों का बलाबल एवं अन्य परिस्थितियों का निदान परमावश्यक है। इसमें सूर्य मलावरोध, बुध वात प्रकोप, मङ्गल आदि मूत्रवाधा उत्पन्न करते हैं।

ए. वश्मरी जन्य—ज्योतिष फलित सिद्धांतों के आधार पर सप्तम स्थान, सप्तमेश, लग्नेश आदि तो हैं ही। जन्म कुण्डली में शुक्त को साथ या चन्द्रमा की युति मङ्गल को साथ होने से अक्मरीजन्य मूत्रकृच्छ्र दी संशावना देती हैं। मङ्गल-भौम-भूमिपुत्र मूत्रनली में छोटे छोटे दुकड़ों की ब्यवस्था का कारक बन जाता है। अन्य शनि का योग दीघं कालीन रोग की स्थिति का प्रदर्शक होता है, राहु अपने स्वभाव को अनुसार स्थान की अस्पष्टता प्रगट करता है कि बह किस स्थान में अवस्थित है। ग्रह एवं भावों की अनुसार स्थित जानने की चेण्टा करनी चाहिये।

, प. णुक्रज मूत्रकृष्ण इसका व्याधार आहार-विहा**र** विचार विशेष रूप से माना गया है। मूत्र मार्ग में शक के व्यवधान होने पर इस रोग में पीड़ा उत्पन्न होती है। इस रोग में त्रिदोषों में वातकफ भ्रष्ट कारक योग होते हैं। ज्योतिप वर्गीय कारण एवं लक्षणों में लग्न लग्नेश से आहार-विहार आदि की क्रियाओं का मार्ग दर्शन मिलता है। गुरु की स्थिति एवं भ्रष्टता विवेक को नष्ट कर देती है। सप्तम स्थान, वुध, शुक्र ग्रहों की स्थिति इस रोग के लिए अवलोकनीय रहती है। मूत्रकारक एवं वालकारक ग्रह दोनों इस रोग में अवरोधात्मक प्रसंग उपस्थित करते हैं। मूत्र संस्थान का कारक ग्रह शुक्र है ही। वह शुक्र ग्रह दीयं का प्रतीक भी किन्हीं कारणों स्थितियों, परिस्थि-तियों के कारण भ्रष्ट अथवा दूपित हो जाग तो इस क्षेत्र में पीड़ा पहुँचावेगा ही। दूसरी ओर वुध वातकारक ग्रह माना गया है। यह दूपित होने पर अपनी प्रतिक्रिया में ्रव्यवधान उपस्थित कर देता है। इस प्रकार वृध, श्रुक्त दोनों ही पूत्र संस्थान में शुक्रजं पीड़ाकारक बन जाते हैं। शुक्र

THE STATE SELECTION OF THE

मुध के जानि राहू ग्रह नैसिंगिक रूप से भिन्न क्षेत्रीय हैं।
तव इनका कार्य मिन्न के कार्य में सहायता. पहुँचाना है
अर्थात् रोगी की रोग वृद्धि एवं दीर्घकालीन बना देना है।
इन ग्रहों भवनों पर सूर्य मंगल के प्रभाव वीर्य को पीड़ित
करना उनका स्वभाव है और णिन को अवरोध प्रदान
करना उसका निजी स्वभाव है। इस प्रकार जातक णुक्रम
मूत्रकृच्छ्र रोग से पीड़ित बनेगा — ऐसा निणंय कर लेना
चाहिये।

• ६. पथरी शर्कराजन्य मूत्रकृष्ण् — पिल से पकने वाली और वायु वेग से शृष्क होने वाली पथरी कफ से वध न पावे। इस स्थिति में यह पथरी कण मूत्र मार्ग में रेत के समान झरने लगें तव यह शर्करा कहलाती है। इस शर्करा योग से हृदय में कम्पन, पीड़ा, मन्दान्नि, कीख शूल प्रभृति रोगी की उत्पत्ति आयुर्वेद के अनुसार लक्षण बताये हैं।

ज्योतिष वर्गीय मत—इस मूत्रकृच्छ्र के लिये लग्न, पट्टम भाव-भावेश के अतिरिक्त पंचम नवम् स्थान और उनके अधिपतियों का निर्णय करना चाहिए। यदि इन स्थानों पर पीड़ाकारक मङ्गल एवं चन्द्र, नृष्ठ, शनि आदि शहों के द्वारा इन भवनों को णियिलता प्राप्त हो गई है तो हृदय में पीड़ा, कम्पन, दुधा शूल, मन्दाग्नि जैसे रोगों की उत्पत्ति सम्भव होकर सप्तम स्थान की प्रष्टता उसके योगों के कारण पथरी शर्कराजन्य मूत्रकृच्छ्र रोग की उत्पत्ति करेंगे ही।

मुलाबात---

आगुर्वेदीय मतेन मूत्राघात रोग के बारह भेव कहे गये हैं। [१] वात कुण्डलिका, [२] अष्ठीला, [३] वात पस्ति, [४] मूत्रातीत, [४] मूत्रजठर, [६] मूत्रीत्सर्ग, [७] मूत्रक्षय, [६] मूत्र प्रन्थि, [६] मूत्र शुक्त, [१०] उप्ण वात, [१९] मूत्रसाद, [१२] विड् विधात।

(१) वात नुण्डलिका मूत्राघात—आयुर्वेदीय लक्षण— इसमें मल भूत्रादि वेगों के रुकने से वायु प्रकुपित हो जाती है तब मूत्राध्य में पीड़ा उत्पन्न होने लगती है। वायु वेग मूत्रगति को जलटने में समर्थ होकर कुन्डलाकार गति से मूत्राध्य में मूत्र विचरण करने लगता है। इस प्रकार मूत्र उतरने में वाधा हो जाती है।

ज्योतिपवर्गीय मत से-सामान्यतः मूत्राधात के समस्त वारह भेदों में बुध, शनि और मङ्गल ग्रहों की विकृति

बावश्यक है। सूत्रादि गति में वाधा डालने वाला ग्रह भी शनि होता है। उसे अपने मित्र बुध ग्रहे का सहयोग जब मिल जाता है तब बात कुण्डलिका रोग की सम्भावना की वृद्धि करता है। इसका कारण यह है कि एक और से मङ्गल ग्रह अपती हठ योगिता के बल से स्वस्थ पुरुष को पेशाब करने की इच्छा में किसी भी कारणवश रोकने की प्रवृत्ति उत्पन्न कर देता है तब मूत्राशय में रुके हुये मूत्र की गति बदल कर उलटी हो जाती है। नीचे की जगह ऊपर उठने लगती है। इस गति का कारण एक ओर वृध का सहंयोगं होता. है ती दूसरी ओर मञ्जल, मनि का । वुध की प्रवृत्ति क्रियाशीलता में अनायास विप-रीतता देकर मूल रोकने की स्थिति वन जाती है। वुध स्वयं भी तो वातकारक ग्रह है और गर्नि भी वातकारक वुध का सहयोग देकर अवरोधक प्रतिरोधक स्वभावः से उनटे हुए को रोककर धक्का देने पर उतारू हो जाता है। परिणामतः मञ्जल की पूर्वावस्था से भीम कारकत्व कुण्डला-कार स्थिति अपने रूप की नैसिंगकता प्रदान करता है।. इस प्रकार वात कुन्डलिका मूलाघात की उत्पत्ति वन जाती है। मुलाशय के मुलाधात के अन्तर्गत सभी द्वादशी भेदों में जन्म कुन्डली के सातवे स्थान का समुचित अध्य-यन करना समीचीन होगा। उपरोक्त लाक्षणिकं वर्णन हुआ है रोगी जातक की इन ग्रहों की रिधित से रोग की उत्पत्ति बीर उससे कितनी हानि होगी यह सप्तम स्थान की राशि तथा लग्न-लग्नेश, सप्तमेश और इन क्षेत्रों पर मित्र शत्र की हिष्टियां, अपान्तर हिप्टियां, कारक मारकत्त्व ग्रंहों आदि का भी अनुशीलन करना चाहिए। ये नियम सभी मूत्रस्थान की उपरोगों में मान्य होंगे।

(२) अण्टीला मूत्राघात-विस्त एवं गुदा में वायु हारा अफरा हो वायु रुके और चंचल पत्थर की पिडी प्रगट होकर पीड़ा हो ये आयुर्वेदिक लक्षण हैं। यह भी सामान्यतः वातकुंटलिका के समान ही रोग है।

ज्योतिप आधार निदान - वायु प्रकोपकारी वुध, शनि ग्रहों की विधिप्तदधा होने पर अञ्डीला मूत्राघात की उत्पत्ति हो जाती है। जातंक के सन्तम स्थान पर जब वुध का प्रकोप दृष्टिगोचर. हो, शन्नु क्षेत्रीय वुध हो, अंग हीन दुवंल हो शनि दारा दृषित् हो, राहु केतु असहयोग करें और पीड़ा दायक मङ्गल अपना प्रभाव डालें तो इस रोगी के रोग में वृद्धि होजाय। बुध पर शनि की अवरोधक

हिं । ये तीनों ग्रह स्वयं पीड़ाकारक वन जाते हैं। इस अवस्था में मात्र के तु की हिंदि हो तब भयंकर पीड़ा की संभावनायें वन जाती हैं। पर चन्द्र गुष्ट जैसे सौन्य ग्रहों का सहयोग हो तो पीड़ा में न्यूनता रहती है। यह नियम भी इन सभी द्वादश उपभेदों के लिए ग्राह्य है।

(३) बात बस्ति मूत्राघात-शारीरिक अन्य रोग जन्य मूत्र बाधा हो तब मूत्राशय द्वार प्रकृपित वायु द्वारा अवरुद्ध हो जाय परिणामतः सूत्राशय में पीड़ा से मूत्र रुके। इस प्रकार का लाक्षणिकं निदान आयुर्वेदिक शास्त्र वेत्ताओं ने किया है।

ज्योतिविद हिण्ट से वात वस्ति रोग की लाक्षणिक स्थिति इस प्रकार होगी। सामान्यतः सप्तम स्थान को मूत्र संस्थान का अधिकारी/भाव माना जाता है किन्तु ; प्रत्येक जातक या रोगी के विभिन्न गृह और उनके अधि-्पति संभव होंगे । सप्तमेश यदि वुध गुक्र, शनि ग्रह हुए ुत्व तो वस्ति के रोगों की उत्पत्ति कारक प्राकृतिक स्वरूपेण ये स्वतः ही हो जायेंगे और यदि यहां मेष या ः वृश्चिक राशि हुई अथवा अन्य कोई उग्र रांशियाँ धनु सदृश हुई तो अपने सप्तमेश के अनुसार वे प्रतिफल प्रदान करेंगे। जैसे मेप, वृश्चिकाधिपति मंजूल या सिंह राशि अधिपति सर्य सप्तमेश होगया तो मूत्राशय संस्थान को लिये हानिकारी प्रभाव अवश्य होगा। ये दोनों ग्रह इस क्षेत्र को अग्निमय बना देंगे। यह नियम समस्त द्वादश उपभेदों के निमित्त ग्राह्य है। अब वातवस्ति रोग की संभावना हेतु उपरोक्त कथन को मध्य दृष्टि रखकर बुध शनि ग्रहों की स्थिति, इण्टि, योग, सहयोग, वियोग का ध्यान रखना भी, आदश्यक है। मङ्गल शनि, राहुंको सहयोग से मूत्राणय संस्थान में नाधा उत्पत्ति के स्पष्ट लक्षण प्रदिशात करते हैं।

(४) मूत्रातीत मूत्राघात - परिरिधतिवश पर्याप्त समय तक नूत्र रोक रखने के पश्चात् जब मूत्र उद्सगं किया जाता है तब कभी कभी मूत्र एकदम या जल्दी नहीं उत्तरता विक शनैः शमैः उत्तरता है। यह सामान्य कण्टसाध्य होता है, ऐसा आयुर्वेद शास्त्रों का अभिमत है।

फिलित ज्योतिष के अनुसार इसके लाक्षणिक निदान में यह कहना समीचीन होगा कि सप्तम स्थान में मङ्गल की स्थित हो या दृष्टि हो, चन्द्रमा लग्न स्थान में अव-

स्थित हो, शनि दशम भाव में विराजमान होकर चन्द्र मंगल ग्रहों पर दिष्टिपात करता हो केन्द्रीय स्थिति हो तो इस रोग भी संभावना दन जासी है। यदि मङ्गल ग्रह की शत्रु पक्षीय स्थिति हो और क्रूर ग्रह सूर्य की हिन्द प्राप्त हो आरंभ में मूत्र अवरुद्धता की स्थिति भी वन जाय किन्तु चन्द्र की. अनुकूल म्थिति मूत्रवाघा हरने में सहायता अवश्य प्रदान करेगी, क्योंकि चन्द्रमा स्वयं जलीय ग्रह है। मूल वाधा उत्पन्न करने में जहां शनि मङ्गल अथवा सूर्य की आवश्य-कता रहती है वहीं सीम्य ग्रह बुध, गुरु शुक्र संचालन गति प्रदान कर्ता बन जाते. हैं। इनमें भी बुध की दशा तो बहुत निराली है। इन बुद्ध शीमान् जी का पता नहीं स्वगृही हैं कितु बक़ी होगए उदय के स्थान में अस्तस्थिति प्राप्त हो गये। और तो ये प्रायः सूर्यं के साथ रहते हैं, समीप रहना तो इनका धर्म है ही, ये दिदादश योग ही बनाते हैं। इस से दूर योग तो विवाबेगे ही नहीं। इसलिए-इनका स्वभाव विचित्र है, अनु-कुलता में प्रतिकृतता एवं प्रतिकृतता में अनुकृतता प्रदान करने में चूकते नहीं। वे यह नहीं सोचेंगे कि यह भेरा स्थान है, मिल देश में वैठा हूं, अंगों को दूपित क्यों करें। इसलिये ज्योतिविदों को अन्य ग्रहों की अपेक्षा इस ग्रह का फलादेश सादधानी से करना चाहिए। सूर्य के सहचर होकर स्वयं लुप्त हो जाते हैं। संपूर्ण फलित हेत् उपरोक्त विचारों की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।

THE FULL OF THE

(४) मूल जठर मूलाघात- आयुर्वेदीय लक्षणों के अनु-सार इस उपरोग में मूलवेग रोकने पर कृषित अपानः वायु वस्ति प्रदेश में पीड़ा उत्पन्न कर देती है, पेट भी ः कभी-२ फूल जाता है। ज्योतिष मान्यता के आधार पर हमें सर्व प्रथम रोगी की जन्म कुन्डली के पांचवे घर पर हिष्टिपात करना चाहिए। इस उपरोग में पांचवां एवं सातवां दोनों घर अनिष्टकारी प्रभाव से ग्रसित होने चाहिए। सप्तम स्थान व उसके अधिपति की निर्वशता आवश्यक है, उस पर वुध ग्रहं के अनिष्टकारी प्रकीप होंगे। यह बुर्ध मंगल से भी दूषित होगा। जैसे द्वादश भाव में म गल स्थित होकर छठे, सातवे दोनों स्यानों पर अपना कूर प्रभाव रखेगा। छठे भाव में पञ्चमेश बध पड़ा हो तो जदरभावेश बुध हित्त भाव से अपने उदर स्थान के रोगों की ओर स केत देता है। पंचमेण छठे स्थान उटर रोगदाता और पांचवे से छठा उसका मारक स्यान हुआ। उस पर मंगल की दृष्टि पड़ी। यह तिविध

पोग सिद्ध हुआ। उधर द्वादशस्य मंगल सप्तम भाव पर भी अपना पूर्ण मारक दिष्टिपात कर रहा है। इस प्रकार पंचम सप्तम दोनों स्थान भ्रष्ट हो गए, मंगल उदरे पीडा, बुध अफरा प्रधान हो गया। इन स्थितियों में अन्य शत्रु क्षेत्रीय प्रभावकारी योग हो, शनि, राहु, के तु कर् ग्रहों के प्रभाव सप्तम स्थान पर ही तो मल मूल स्थान के गुद्ध स्थानों पर प्रभाव बन ही जावेगा। यह स्वीकार करना ही होगा।

(६) मूल जठर मूलाघात-प्रवृत्तं हुआ मूल विस्त या णिश्न के किसी भाग में रुक जाय, जोर लगा-कर मूत्र उतारने में कष्ट हो तो मूत्र जटर रोगकी उत्पत्ति आयुर्वेद मतेन मानी जायगी। इस रोग फी निमित्त ज्योतिषमतेन धारणा यह है कि पूर्ववत् वुछ प्रह की स्थिति, इंग्टि, बलावल, सप्तम भाव को आधार मान कर करेंगे। सामान्यतः प्राकृतिक रूप से चन्द्रमा का इस शरीर पर प्रधान लक्य होने से जलीय स्थिति से मूत वनना और उसका निकास है किन्तु जव मंगल मनि का योग बनता है तो हठपूर्वक रुकना, जोर लगाकर निक-लना और पीड़ा देना इसके प्रतीक वन जाते हैं। अन्य गुरु जैसे सौम्य प्रहों के प्रभाव से रोग में शिथिलता वरतने लगती है। अवरोधक क्रियां में बाधां बनकर रोगी के अनुकूल स्थिति बन सकेगी। अतः सप्तम भाव की स्थिति मूर-अमूर प्रहों की स्थिति इंग्टि तथा शन्य योगों का बहुविधि चिन्तन करना लाभकारी है।

(७) सूरक्षय - आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति के अनु-सार परिश्रम की अधिकता से रूक्षता प्राप्त चरिर अपूत्रा-शय में पित्तात्मक वायु का प्रकोप करके रोगी को वेदना प्रदान करता है।

ज्योतिप सिद्धान्त से हम इस प्रकार निर्णय करें गे— सत्तम स्थान पर मंगर्ज की युध पर पूर्ण दृष्टि हो, केतु, प्रानि या सूर्य का प्रभाव या दृष्टि हो। केतु मंगर एकाकी अयवा सहयोगी वनकर शरीर में अधिक परिश्रम के योग धनाकर रूक्षता प्रदान करें गे। लग्न-सप्तम स्थान में मेप, सिह, वृश्चिक बादि राशियों मे से कोई एक हो और उप-रोक्त ग्रहों का प्रभाव हों तो मुत्रक्षय रोग की सम्भावना प्रकट होती है। मेप, वृश्चिक राशियां मंगर के अधीन है। यह अन्निकारक तत्व के साथ पीड़ाकारी ग्रह भी है। यदि उसे किसी प्रकार शनि, राहु का संयोग हो तो वह

अनायास दीर्घकालीन रोग प्रदान करेगा। केतु को मंगत या क्षीण हानिकारी दुध का सहयोग भिले तो दिगुण भाव से पीड़ाकारी वन जायगा। अतः सप्तम भाव, भावेग, राशियां, ग्रहादि का समीचीन विचार श्रेयस्कर रहता है। इससे रोग की पूर्णता, अपूर्णता, अंगात्मक ढङ्ग से विदित होती है।

(=) मूत्र ग्रन्थि—मूत्राशय के मुख पर यदाकदा गांठ वन जाती है। ऐसा आयुर्वेदीय मत है। ज्योतिष वर्गीय परिपेक्ष्य में हमारी धारणा यह है-मूत्राशय सम्बन्धी सभी रोगों में जैसाकि ऊपर वर्णन किया है कि सप्तम स्थान की भ्रष्टता प्रमुख कारण है, लान विचार भी आवश्यक है ही। मंगस की लग्न चतुर्थ, सप्तम सचवा द्वादश मान स्थिति, क्रूर शत्रुपक्षीय हिन्द मूत्राशय शेयेन केन प्रका-रेण प्रन्थि की उत्पत्ति प्रदान कर सकती है। बुध, भनि ग्रहों का प्रकोप रोग की स्थिति का आभास कराता है। यदि सप्तमेश स्वग्रही हों, मंगल वृष्ठ ग्रहों से शत्रु पक्षीय भावना प्राप्त हो अथवा सप्तम भाव पर शनि केतु की दिष्टि या ओग हो तो रोगी की भयावह स्थिति ,वन जायेगी। तात्पर्य यह है कि यलावन के अनुसार रोगी पीडित होता है और यह तो सभी उपरोगों में समझ लेना चाहिये कि गोचर ग्रह विपरीत स्थिति में अनुकूलता भी प्रदान कर सकते है और सम्पूर्ण निर्णय करने में हमें दशाओं की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

(६) युन मुक्त-अयुर्वेदिक लक्षण— कदाचित संभा'
वना यह पाई जाती है कि सभी प्रसंग की उग्रता व्यग्रता
मूत्र किया रोक ली जाती है तो परिणामतः आदि या अन्त
मे वीर्य स्थान घ्रष्ट होकर उपर उठ जाता है। इस प्रकार
स्त्री प्रसङ्घ के पूर्व अथवा वाद मं वीर्य निरसरण होता है।
ज्योतिय विधान के अनुसार इस अयस्या प्राप्ति के कारण
भाव जग्न स्थान, सप्तम स्थान प्रमुख हैं। ग्रहों में चन्द्रमा,
मंगल, बुध, गुढ, शुक्र एक और हैं और इनके कुप्रभावी धानि,
राहू केतु आदि ग्रह कारक माने जावेंगे। काम प्रवृत्ति उत्तेजित करने हेतु लग्न एवं सप्तम भाव पर विभेषतः, चंद्र-मंग्रल,
गुढ्, शुक्र योगकारी वर्नेगे। मन में संकल्प चद्र द्वारा
मञ्जल द्वारा उदीप्ति एवं क्रियाकीचता, गुक्त शुक्र द्वारा
प्रवृत्ति इसके कारक बनते हैं। इन स्थानों पर भान आदि
ग्रहों की अवरोधारमक श्लिति वनने पर गोचर ग्रहों का
सहयोग पाकर उत्तेगित भावना में चन्द्र द्वारा प्रवाहित

मूल को सूर्य की अवरुद्ध करने वाली स्थित से स्तीसंग प्रकृति में वाधा पाकर शुक्र अन्यस्थिति के अनुसार मूला-श्य रोगोत्पित वन जायेगी। प्रवाह के रोकने की दूपित प्रवृत्ति पथरी रोग में भी परिणित हो जाती है। अतः प्रमुख्तः नवयुवकों को स्त्री प्रसङ्ग के पूर्व-पश्चात् सावधानी वरतने की आवश्यकता है। उत्तेजित मादक द्रव्यों का सेवन इस रोग में सहायक वन जाता है। इससे कामांध प्रवृत्ति वनकर मूलोत्सर्ग किया की उपेक्षा करने से मूला-श्य को भारी कीयत उठानी पड़ती है। पष्ठम स्थानीय वृतक एवं सप्तम स्थानीय मूलाशय पर ही प्रभाव नहीं बनता अपितु मानसिक उन्माद अथवा वाणी के अवसाद प्राप्त होते हैं। चन्द्र मन पर प्रहार करता है, मस्तिष्क प्रभावी होजाता है, द्वितीय भाव कारक शुंक विगड़ने से वाणी प्रहार हो जाता है। संक्षेप में इतना ही संकेत यहां दिया जा रहा है।

(१०) उष्णवात — व्यायामाधिवय या घूप में अधिक चलने से आमाशय में प्रकुपित दोपों की प्राप्ति होने पर वांत पित्त दोनों का प्रभाव होकर वस्ति, अंडकोष एवं गुदादि में पीड़ा होने लगती है। इसमें हल्दी या रक्ताभ वर्ण का मुत्र कष्ट से प्रवाहित होता है।

ज्योतिष वर्गीय सिद्धान्तों के आधार पर उष्णवात उपरोग की इस प्रकार व्यवस्था देंगे। इस रोग में सुयं, बुधं आदि प्रहों की प्रधानता रहती है। सूर्य मञ्जल के सहयोग पित्तकारी रोगों की उत्पत्ति करते है और बुध शनि ग्रह वातकारी ग्रह माने जाते है। इसलिये सूर्य मङ्गल बुद्ध शनि आदि के प्रशांव से जैसा इस दिपय में ऊपर अनेक बार सिद्धान्त स्थापित किया गया है, इस रोग की अभिवृद्धि होगी। इस रोग में वृध के साथ सूर्य हो और उधर मंगल शनि का शीग या हिन्द योग संप्राप्त हो तो इस रोग की श्रीवृद्धि और भी बढ़ जाती है। रोगी की कुण्डली में इन योगों के साथ सप्तम संथान भी विकृत होगा। शनि के कुप्रभाव से मूत्र निस्सरण .क्रिया में वाघा उत्पन्न हो जाती है, केतु लग्न, तीसरे या सातवें भाव में रहे तो इस रोग की विभीषिका और वहेगी। सभी रोगों में पण्ठ, अष्ठम, द्वादश भावीं के स्वामियों के सहयोग पर विचार भी होना चाहिए। ये स्थान भ्रष्टता प्रदान करते हैं। (११) मूत्रसाद- बायुर्वेदीय पक्ष से वायु प्रकोप द्वारा

पित्त एवं कॅफ भी दोष पूर्ण वन जायें तो इससे मून दाह युक्त, लाल, सफेद गाड़ा मूत्र चतरने लगता है।

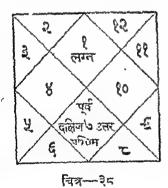
फलित ज्योतिप सिद्धान्त हमें मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। अर्थात् मंगल, बुध, शुक्ष इन तीनों ग्रहों का समान या तारतम्यभाव से सप्तम भाव का प्रभावित होना आवश्यक ्है। इस- दुराग्रही स्थिति में शनि की स्थिति अथवा हब्द-यात्मक प्रभाव का सहयोग हो, शत्रु भाव एवं अंशात्मक हीनता प्रगट हो तो दीर्घकालीन रोग की स्थित वन जाती है। सूर्य की सप्तमें मंगल पर ,हिष्ट पीड़ादायक है, सूर्य शनि का संघर्ष हो जाय तो सब योग समन्वयता से इवंसा-त्मक स्थिति मूत्राशय की इस उपरोग के माध्यम से बन जाय । इनमें ऐसे भी सुयोग वनते हैं जब अकेला सूर्य बुध तथा शुक्र पर संयोगी प्रभाव डालकर वात एवं कफ जनित रोगों का दमनकारी बन जाता है। केतु की स्थिति या दृष्टि मारकत्व प्रदान करती है किन्तु यदि उस भाव का वह स्वामी हो, वहाँ विकोण या उच्च अंश ताश्यात्मक हो तो इस प्रकार स्वगृही, मूल त्रिकोण या उच्चर।शिग होने से वह रक्षात्मक प्रवृत्ति धारण करेगा। इस प्रका क्योगों की स्थिति में कुप्रभावी राशिया प्रहों की -स्थिति प्रतिकूलता, रोगोत्पत्ति में अवश्य ही वाधक वनेगी इस प्रकार के सिद्धान्त सर्वत्र स्वीकार करना चाहिए इनकी उपेक्षा फलितादेश को असत्य सिद्ध कर देगी।

(१४) विड् विघात मुकाषात-आयुर्वेदीय मतेन शत्यं एक्स एवं दुवेलेन्द्रिय रोगी का मल वायु से प्रकृपित होक उदावर्त को प्राप्त हो तव मल के कारण मूत्र मार्ग म्रण्ट को प्राप्त हो जाय तो मृत्र प्रवाह कष्टकारी हो जाता है

ज्योतिष मतानुसार इस उपयोग में रोगी की कुण्डा में लग्न स्थान, पण्ठम स्थान एवं सप्तम तीनों स्थानों ब अध्ययन करना चाहिए। उपरोक्त वर्णन में संदर्भवश ः तत्र प्रकुश्च डाला गया है—वस्तुतः लग्न स्थान दोप पू होने पर स्वास्थ्य पर प्रमुख रूप से प्रभाव हो जाता हम तो लग्न स्थान से मस्तिष्क प्रगति भीदेखकर रो स्थापना करते हैं—मानसिक असंतुलन से रोग तो वन जाते हैं, वृद्धि फ्रंश से 'विनाश काले विपरीत बुद्धि' : पुष्टि करते हैं। जोर रोग रोगेश पर पूर्व प्रकाश डा चुके हैं। सप्तम भाव की विकृति से कितने भयञ्कर परिणा निकलते हैं यह मूत्र संस्थान के समस्त रोगों में मूत्रकृष्ट एवं मूत्राणय सम्बन्धी उपरोगों पर विश्वद विचार दे ह है। विड् विद्यात हेतु यहाँ और स्पष्ट करदें कि शरीर की इसता, परिश्रमाधिक्य योग सूर्य सह भीम में संपन्न होता है शुक्र सप्तम स्थान का कारक ग्रह भी इनके द्वारा शुक्कता प्राप्त करता है, तब ही सप्तम स्थाने कर ग्रहों की स्थित मंगली कुण्डली बना देती है। इस प्रकार सप्तम स्थान की श्रण्टता भिन्न भिन्न रोग प्रदाता होजाती है। हमने मूनाधात या मून संस्थान रोगों में कई स्थानो पर बुध, शांत के हानिकारी योग एवं इिट्यों वात दोषों को अनायास प्रकृषित करने वाली, त्वरित एवं सन्दगामी प्रभाव डालने वाली बताया है, यह युक्ति यहां इस उपरोग में भी पुष्टिदवाता है, ये योग मारक स्थिति में पहुँचा सकती है। मंगल, गुक्र योगों के कारण यदि अवस्था आयु निश्शेष की संभावना हो तो निश्चय ही इस रोग के कारण प्राणान्त सम्भव है।

48

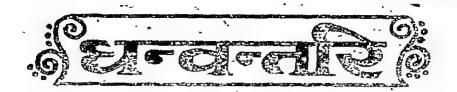
मूत्र संस्थान के मूत्र इच्छू एवं मूत्र शय सम्बन्धों रोगों के विदाद विवेचन के साथ हम निम्न स्पन्टीकरण करके । कुछ महत्वपूर्ण अभिज्ञान और प्रकट करना चाहते हैं जिसके द्वारा इन रोगों के चिकित्सक ज्योतिर्विदों को यह । ज्ञान भी उपलब्ध हो सकेगा, कि ज्ञिना एक्सरे चित्र की पहायता लिये, रोगी के वृक्ष या मूत्र संस्थान के किस भाग । पर रोग का प्रभाव है । सप्तम भाव को चार भागों । में बांट कर इसका हमें ज्योतिप के माध्यम से स्पष्ट ज्ञान हो जायेगा । इसका उदाहरण हम प्रस्तुत कर रहे हैं—



सर्थात् पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर । कुण्डली में गामान्य नक्को के समान उत्तर, दक्षिण,पश्चिम,पूर्व दिशायें हीं होतीं । यहां सप्तम मान के उत्तर मान में पूर्व दिशा हेगी, दक्षिण भाग में पश्चिम इत्यादि । बाईं तरफ

दक्षिण और दाईं जोर उत्तर। इसका कारण यह है कि हमारा आकाश भी इस प्रकार विभाजित है, स्योदय की-ओर पूर्व, सूर्यास्त की और पश्चिम । अब देखिये लग्न में स्थिति किसी गृह की सम्पूर्ण होटि सप्तम भागे पर पड़ती है। वह उसके पूर्व भाग पर पूरा प्रभाव ढालेगी, तीसरे भनन स्थित ग्रह की दृष्टि दक्षिण पूर्व क्षेत्र पर प्रभाव हालेगी, चौथे भवन स्थित ग्रह की इंब्टि सप्तम भाव के डक्षिण पूर्व भाग पर प्रभाव रक्षेगी । इसी प्रकार पञ्चम भवन स्थित ग्रह की सातवें भवन के आवे भाग पर प्रभाव डालेगी। इसी प्रकार द्वादण भवन की पूर्ण दृष्टि : दक्षिण पंश्चिम भाग पर, दसर्वे ग्यारहवें स्थान में स्थित ग्रहीं की हिन्टयों का प्रभाव सातवें घर के उत्तर भाग में प्रभाव होगा। इस प्रकार हम , मूत्राणय में स्थित , व्याधि की स्थिति का निदान कर सकते हैं। राह कें तु की दृष्टियां कुछ विद्वान विशिष्टों के भाधार पर उलटा कम ही रखना चाहिये। अन्य वक्त ग्रहों की स्थिति जिस स्थान पर वह ग्रह अवस्थित रहता है, मूलतः वही समझा जावेगा उसका फल भले ही विवारणीय है।

- ज्योतिर्विद् वाचार्य निर्विकार गुप्त साहित्य रत्न, शिक्षा विशार्द ३६०/१० सुन्दर विलास, सजमेर ।



UPSICIONE IN THE PROPERTY OF T

सूत्र-रोग

(हिलीय खण्ड)

EPIGETICIANG FINES

मूत्रकृष्छ अर्थात पेशांब करने में जो कष्ट होता है उसे मूलकृष्ठ्र रोग कहते हैं। रोग पैदा किस प्रकार होता है, इसका वर्णन नीचे किया जाता है। निदान—

अति व्यायाम से, तीक्ष्ण औषिधयों के सेवन से, रूखें अन्न पानों से, मद्य पीने से, मैं युन से, नृत्य से, तेज चलने से तथा घोड़े आदि की पीठ पर सवारी करने से, आनूप जीवों का मांस खाने से, मछली खाने से, अध्यशन (भोजन पर भोजन करने) से अजीर्ण से इन कारणों से मनुष्यों को खाठ प्रकार का मूत्रकृष्ठ्र रोग हो जाता है।

सम्प्राप्ति — अपने अपने कारणों से कुपित हुये दो दोप अलग अलग या मिलकर वस्ति में कुपित होकर जब मूत्र मार्ग को पीड़ित करते हैं तब कठिनता से मूल आता है। लंक्षण-

आयुर्वेदशों ने सूत्रकृच्छ्र निम्नलिखित आठ प्रकार का माना है—(१) वातज (२) पित्तज (३) कफज (४) सन्निपातज (४) शल्यज (६) पुरीपज (७) अष्मरीज

(=) गुक्रज। इनके पृथक पृथक लक्षण नीचे लिखे जाते हैं-

वातजमूत्रकृष्ठू — वंक्षण, विम्त तथा लिङ्ग में तीव पीड़ा होती है। मूत्र थोड़ा-थोड़ा तथा वार वार आता है।

पितान मूलत्रकुच्छ्र में पीला-पीला रक्त से मिला हुआ, पीड़ा युक्त तथा कठिनता से बार-बार आता है।

कफज मूत्रकृष्कु में लिंग और वरित में भारीपन तथा शोथ (सूजन) होता है तथा मूत्र पिष्छिलता युक्त होता है। तिदोपज मूत्र कृष्ठु में सभी दोपों के कुपित होने से सभी रूप रोग में प्रकंट होते हैं। ऐसा मूलकृच्छू रोग कष्ट साध्य है। '

शल्यज मूत्रकृ च्छ्र—मूत्रवाही स्रोतों के शल्य से सत या अभिहत हो जाने पर उस आघात से भी मूतकृ च्छ्र रोग हो जाता है। इसमें अत्यन्त पीड़ा होती है। इसके लक्षण वातज मूत्रकृ च्छ्र के समान होते हैं।

पुरीपज मूलकृच्छ्— मल के रक जाने से वायु विगुण होकर आञ्मान (अफरा) तथा वातश्ल को करता है तथा मूत्र को रोक देता है।

अभ्मरीज मूद्रकृच्छ्र—अ्ष्यरी अर्थात प्यरी के ही जाने से मूत्र कष्ट के साथ आता है।

शुक्रज मूत्रकृच्छ्र—वीर्य के दोषों से मूत्र मार्ग के उप-हत होने पर विधारण किया हुआ वीर्य मूत्रकृच्छ्र रोग को उत्पन्न कर देता है। उसमें वीर्य के साथ-साथ कठिनता से मूत्र आता है। वस्ति और लिंग में शूल होता रहता है।

अश्मरी के अतिरिक्त शकरा भी मूत्रकृष्ठ्र उत्पन्न करती है, जिसका वर्णन नीचे किया जाता है।

वश्मरी तथा शर्करा दोनों रोगों की उत्पत्ति के कारण तथा लक्षण एक समान ही हैं। अश्मरी पित्त से पकृती हुई सौर नायु से सुखाई जाती हुई कफ के सन्धान से निमुक्त हुई २ अर्थात् पृथक हुई २ क्षरण करती हुई अर्थात टूट-फूट कर पृथक होती हुई शर्करा कहाती है। सारांश यह है कि पथरी जब टूटकर चूर्ण रूप हो जाती है और मूत्र के साथ मूत्र मार्ग से निकलती है तो उसे शर्करा रोग कहते हैं। इस शर्करा से हृदय में पीड़ा होती है, कंपन होता है, पेट में शूल होता है तथा जठरान्नि मन्द होजाती है तथा मूच्छा होती है और भगञ्जर मूलकृष्ठ्य होजाता है। मूजकृष्ट्य जिल्लिसा—

वातज मूत्रकृच्छू में अभ्यंग, स्नेह निरुह वस्ति देना, पसीना निकालना, उपनाह, उत्तर वस्ति देना, सेंक अर्थात औपधियों के नवाय से सिचन करना तथा शालपणी आदि वात-नाशक दवाओं से सिद्ध किये हुए रसों को वातिक मूत्रकृच्छू में देना चाहिए।

गिलोय, सोंठ, अमलतास, असगन्ध, गोखरू, इनमें से प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर मिला २ तोला लेकर जल ३२ तोला डाल कर क्वायं करे। जब बाठ तोला भेष रहे तो उतार छानकर पियें। इससे वातज मूलकृच्छ्र नण्ट होता है।

पित्तज मूत्रकृष्कु में जल का सिचन, अवगाहन, शीत द्रव्यों का लेप वस्ति तथा दूध आदि पीना तथा विरेचन (जुलाव) देना, मुननका, विदारीकन्द, गन्ने का रस इनसे पकाकर घी पिलाना। कुशा की जड़, कास की जड़, शर (पतेल) की जड़ दर्भ की जड़ तथा गन्ने की जड़ को समभाग लेकर क्वाथ कर पिलावें। इससे पित्तज मूलकुष्कु नष्ट होता है तथा यस्ति की शुद्धि होती है। इसे तृण पंच-मूल क्वाथ कहते हैं। इसी तृण पंचमूल के साथ गोदुम्ध का क्षीर पाक बना उस दूध को पीने-से लिंग से निकलता हुआ खून बन्द होजाता है।

शतावर, कास की जड़, कुशा की जड़, गोखरू, विदारीकन्द की जड़, गन्ने की जड़ तथा कसेरू इन सबको समभाग लेकर क्वाथ कर उसमें शहद और मिश्री मिला-कर पीने से पैत्तिक मूशकुन्छ नष्ट होता है।

हरीतक्यादि क्वाथ—हरड़, गोखरू वड़ा, अमलतास का गूदा, पाषाण भेद, धमासा प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर दवाय कर शहद मिलाकर पिलावें तो दाह, पीड़ा तथा विवन्ध सहित सूत्रकृष्ठ को नष्ट करता है।

खीरे के बीज, भुलहठी, दावहत्दी समभाग लेकर पीसकर चावलों के घोषे पानी से पीने से पित्तज मूत्रकृष्ण् नष्ट होता है।

नामला स्वरस तथा ईख का रस शहद मिलाकर पीने से रक्तयुक्त मूत्रकृच्छ नष्ट होता है। दाख और मिश्री सम-भाग लेकर दही के पानी के साथ मिलाकर खाने से पिक्तज मूत्रकृष्ठ नष्ट होता है।

नारियल के जल में गुड़ तथा धनियां का चूण मिला-कर पीने दाह सहित मूलकृष्ठ्र तथा रक्तपित्त रोग नत्ट होता है।

कफज मूत्र क्रच्छू में — यवसारादि क्षार तथा उच्ण, तीक्ष्ण अन्नपान करना चाहिए। स्वेद देना, जो का अन्न खाना, वमन तथा निरूह वस्ति देना, तक्र पिलाना, तिक्त तथा कालीमिर्च बादि से पकाये हुए तेल सेवन कराना तथा वस्ति देना ये सभी वार्ते लाभ प्हुँचाती हैं। छोटी इलायची के चूणं को गौमूत्र से, सुरा से या केले के रस से देने से कफज मूत्रकृष्छ् नष्ट होता है। चावलों के जल के साथ प्रवाल भर्म देने से कफज मूत्रकृष्ठ अच्छा होता है।

विदोपज मूत्र कृच्छ्र में सब किया रोगी का बल देख कर करें। यदि कफ की अधिकता हो तो पहले वक्रन करावे, पित्त की अधिकता हो तो पहले विरेचन देवे, यदि वात की अधिकता हो तो पहले वस्ति देवे। (१) बड़ी कटेली, पृष्ण पणीं, पाठा, मुलहठी, इन्द्र जी का क्वाय पीने से सन्तिपातज मूलकृष्ण नष्ट होता है। (२) णतांवरी की जड़ का वेवाय खांड़ और शहद मिलाकर पीने से त्रिदोपज मूलकृष्ण नष्ट होता है। (३) कुछ-२ गरम दूध में गुड़ मिलाकर यथेष्ठ पीने से सभी मूल कृष्ण में लाभ होता है। इससे शकरा रोग बीर वात रोग भी नष्ट होते हैं।

शहयज (अभिधातज) मूत्र कृच्छू में वातज मूत्रकृच्छू के समान क्रिया करे। पञ्च वस्कल अर्थात् वरगद, पीपल, गूलर, पिलखन और वेंत की छाल प्रत्येक समभाग लेकर पीस लें और चिकनी मिट्टी उसके समभाग ले सबको जल में पीसकर शरम कर लेप करें तो अभिघातज मूत्र कृच्छू में लाम होता है। (२) घी और खांड़ यिलाकर मन्य वनाकर पियें। (३) पकाये हुए दूध में आधा भाग खांड़ मिलाकर पीयें। आमले के स्वरस में या ईख के रस में शहद मिलाने से अभिघातन मूत्रकृच्छू ठीक होता है।

शुक्रज मूलक च्छ्र में शिलाजीत में शहद, दूव, खांड़ और घी मिलाकर पीने से या शहद में निलाकर शिलाजीत जीत चाटने से लाभ होता है। (२) तृणपंचमूल के क्वाय से पकाये हुए गीघृत को पीने से शुक्रज मूत्रक च्छ्र नष्ट होता है। आयुर्वेद के प्रसिद्ध प्रन्थ योग रत्नाकर में लिखा है कि बीवें के दीप की शुद्धि के लिये यौवन मदोन्मत्ता स्त्री के साथ गैथून करे तो यह दोष दूर हो जाता है।

पुरीवज मूत्र कृच्छ की चिकित्सा स्वेद देना, पाचक, सारक, वायु निस्सारक चूर्ण खिलाना, तेल मलकर सैकना, वस्ति देना इन उपायों से लाभ होता है। गोखक के बीजों के नवाथ में यवक्षार मिलाकर पीने से पुरीपज मूत्रकृच्छ शीझ ही ठीक हो जाता है।

अग्मरी मूलकृच्छ में स्वेद खादि वातनाशक क्रियायें करनी चाहिए। पापाण भेद का नवाथ पिलावें। (२) छोटी इलायचीं, दन्ती की जड़, मुलहठी, पापाण भेद, रेणुका के बीज, गोखरू, वासा, एरण्ड मूल. इन सबको समभाग लेकर ववाथ करे। इस ववाथ में शिलाजीत व खांड़ मिलाकर पीने से अण्मरी युक्त मूल कृच्छ अच्छा होता है।

जगर विशेष चिकित्सा का वर्णन किया गया है नीचे

सामान्य किकित्सा का वर्णन किया जा रहा है, जो हर

- (१) गोखरू, अमलतास का गूदा, दमें की जड़, कास की जड़, जवासा, पित्तपापड़ा, और हरड़ का क्वाय शहद मिलाने से अश्मरी और मूत्रक्रच्छ के संसाध्य रोगी भी ठीक हो जाते हैं।
- (२) पाषाण भेद, निसोत, हरड़, जवासा, गोखरू, पुण्कर मूल. ढाक के बीज, सिघाड़े के बीज तथा ककड़ी के बीजों का क्वाथ पीने से रुका हुआ मूत्र सुगमता से हो जाता है।
- (३) गोखरू का पंचाङ्ग लेकर ववाय बनाकर खांड तथा णहद मिलाकर पीने से मूत्रकुच्छ तथा उष्ण वातरोग दूर होता है।
- (४) छोटी इलायची के बीज, पाषाणभेद, शिलाजीत, पीपल प्रत्येक द्रव्य समभाग ले चूर्ण करे। इस चूर्ण को चावलों के पानी में घोलकर र्विये या इस चूर्ण को गुड़ मिलाकर खायें तो असाध्य मूत्रकृष्छ भी ठीक हो जाता है।
- (५) अङ्कोल का क्षार तथा तिल का क्षार संमभाग लेकर शहद में मिलाकर चाटे और ऊपर से दही का पानी पिये तो मूत्र की रुकावट दूर होती है, मूत्र खुल कर आता है।
- (६) यवक्षार में सम भाग खांह मिलांकर पिलांने से भी सभी मूत्रकुच्छ अच्छे हो जाते हैं। या यवक्षार युक्त छाछ को यथेष्ठ पीवे तो मूत्रकुच्छ तथा अध्मरी दोनों नृष्ट होते हैं। या यवक्षार १ माणा, पेठे का रस ४ तींने, खांड १ तोले मिलांकर पीने से मूत्रकुच्छ नष्ट हो जाता है।
- (७) छोटी इलायची के बीजों का चूर्ण आमला स्वरसं में मिलाकर पीने से मूत्रकृच्छू में आराम होता है। अथवा छोटी इलायची के बीज और गोखरू का चूर्ण शहद में चाटने से मूत्रकृच्छ नष्ट हो जाता है।
- (न) पिडखनूर, आमले के बीजों की गिरी, पीपल, शिलाजीत, छोटी इलायची के बीज, मुलहठी, पाषाण भेद, सफेद चन्दन, ककड़ी के बीज, धिनयां समभाग लेकर चूर्ण कर समभाग खांड मिलाकर चावलों के पानी से सेवन करे तो अंगों का दाह लिंग का दाह, गुदा, वंकण तथा वीर्य के दाह को नष्ट करता है, तथा शकरा और अदमरी के घूल को नष्ट करता है और बलकारक है।

CHANGE STREET, THE STREET,

- (ह) गोक्षुराद्य गुग्गुल के प्रयोग करने से प्रमेह, प्रदर मूलकुच्छ्र, मूलवात, अश्मरी तथा सभी प्रकार के वीर्य दोप तथा सभी प्रकार के वात रोग नष्ट होते हैं।
- (१०) गोखरू को बीज, मूली, विड लवण, ककड़ी के बीज इल सबको समभाग लेकर कांजी से पीस कर वस्ति के स्थान पर लेप करें तो जीझ मून को निकाल देते हैं या चूहे की विष्ठा को जल में पीस कुछ गरम कर वस्ति पर लेप करे या ढाक के फूल उवालकर उसके पानी की जल धारा बस्ति पर हालें और फूलों में कलमी शोरा मिला पीस गरम कर वस्ति स्थान पर लेप करे या केवल गरम पानी की धारा वस्ति पर डाले या बमामार्ग के पनी व कलमी शोरा मिलाकर पीस कर वस्ति स्थान पर लेप करे या मूलेन्द्रय के मुख को छिद्र में कपूर लगाने से मुश्राइच्छ नष्ट होता है और पेशाब साफ आने लगती है।
- (११) चन्द्रकला रस—मून मूत्रकुच्छ्र नष्ट करने में चमत्कारी प्रभाव रखता है। मूत्रकुच्छ्र को अतिरिक्त सब प्रकार को पित्तरोग, अन्दर वाहर को महादाह, ज्वर को महाताप, भ्रम, मूच्छा, रज का अतिचाव, घोर रक्त प्रदर रक्तिपत्त को नष्ट करता है। उसको ग्रीष्मकालों तथा शरद काल में जब पित्त कुपित होता है तब खायें तो विभेष लाभ करना है।
 - (१२) रस सिन्दूर में यवसार, खांड़ और तक्र मिला-कर पीने से सभी प्रकार के मूत्रकृच्छ शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।
 - (१३) चूने के पानी में तिल का तेल और शकर मिताकर पीने से कप्ट साध्य मूत्रकृच्छ्र मिट जाता है।
- (१४) लहसुन को पीसकर पेड़ू पर लेप करने से मूत्र - जतर जाता है। तीव्र मूत्रल है।
- (१५) मूत्र दाह मिटाने एवं पेणाव साफ लाने के लिए वंणलोचन, छोटी इलायची के बीज, शीतल चीनी समभाग लेकर चूर्ण बना ३-३ माशे दूध की लस्सी से लें।
- (१६) पुटासियम एसीटास १४ ग्रेन, टि॰ सिल्ला ९० मिनिम, टि॰ डिल्टिनिस ४ मि॰, स्प्रिट ईयरिस नाइट्रोसाई २० मि॰, परिश्रुत जल १ शींस ऐसी १-१ मात्रा ३-३ घण्टा बाद दें। इससे पेशाव साफ उत्तरने लगता है तथा पेशाय की जलन मिट जाती है।
 - (१७) पेणाव खोलने के लिए गोलक रा। तोला,

लेकर दो कप पानी में औटावें। जब आधा कम पानी भेप रहे तब उतार छान लें और ४ रत्ती कलमी शोरा व ६ माशा मधु मिला पीवें तो पेशाव खुलकर हो जाता है।

- (१८) बरगद के पत्ते पानी में उदाल कर पीने से पैशाव हो जायेगा।
- (१६) कलमी शोरा, यवकार, जीरा सफेद, रेवन्द ' चीनी, कवाब चीनी, छोटी इलायची के बीज १-१ तोले, मिश्री ६ तोले लेकर ३-३ माशा ३-३ घण्टे वाद दूध की लस्सी से प्रयोग करें। इससे पेशाव व दस्त खुलकर आने लगते हैं। मूत्राशय की पथरी, पुराना सुजाक, पेंशाब की जलन, पेशाव का वूंद-२ जलन के साथ आना, पेशाब की एकावट आदि दूर होती है।
- (२०) पौरुष ग्रन्थि (प्रोस्टेट ग्रन्थि) शोध के कारण -पेशाव खुलकर न होता हो तो दुग्ध प्रोटीन का इन्जेक्शन लगायें ।
- ं (२१) यवसार, अपामार्ग क्षार, तिल क्षार, कलंमी शोरा, नौसादर, पुननंवा क्षार २-२ रत्ती मिला गोखरू नवाय प्रतोले में घोलकर पिलायें। इससे रुका हुआ पेगाब आने लगता है। पयरी गलकर निकल जाती है। वृक्षणूल मिट जाता है।
- (२२) काले विच्छू को क्तर कर गुड़ में गोली बना-कर देने से पथरी गलकर मूल द्वारा निकल जाती है और वृष्क्यूल तो तत्काल ही बन्द हो जाता है।
- (२३) ए॰ त्री॰ एम॰ रिसर्च इन्स्टीट्यूट बायलोजीकल हापुड़ का मूत्रल इन्जेक्शन रुके हुये पेशाब को आधे
 घण्टे के अन्दर खोल देता है। जीण वृक्क शोथ (नेफराइटिस) तथा वृद्धोत्कवं परलाभप्रद है। वृक्कों तथा मूत्राशय
 में आई स्जन को समाप्त कर मलोत्सिकाओं को क्रियाशील
 बनाता है। रक्त में मिले दूपित पदार्थ मूत्र द्वारा शरीर के
 बाहर निकल जाते हैं। मूत्र रोग तथा वृक्करोगों में यह
 अत्यन्त सफल सिद्ध इंजेक्शन है। इसके प्रयोग से मूलाशय
 तथा वृक्कों से अश्मरी (पथरी) छोटे छोटे दुकड़ों में दूट
 कर (पेशाव अधिक होने से) मूत्र के साथ बाहर निकल
 जाती है। र सी. सी. का इंजेक्शन नितम्ब प्रदेश की
 मांस पेशी में लगाना चाहिये। रुका हुना पेशाव यदि
 इंजेक्शन देने के आधा घण्टा के अन्दर न हो तो दूसरा

- शेपांश पुष्ठ हे४ पर देखें।



वैद्य श्री गुनराज शर्मा मिश्र, आयुर्वेदाचार्य, आयु॰ शिरोमणि (श्रीनंका), आयु॰वाच॰ (श्रीलंका)
नई शुक्रवाडी, नागपुर-२

淡水淡

मृत्रकृष्ठ और अष्मरी दोनों का चोली दामन का सम्बन्ध है। दोनों भाई बहिन है। सामान्यतः निदान भी दोनों का एक सा ही है स्थान और वेदना का स्थरूप भी एक समान है। प्रायशः मृह्नकुच्छ और अण्मरी का सन्यय्व्यतिरेक सम्बन्ध है। संख्या भेद से मृह्नकुच्छ अष्टिनिध और अण्मरी चतुिध मानी है। चरक और सुश्रुत इसमें भेद रखते हैं। चरक की मान्यता है कि यह तिदोध के संपर्क के दिना नहीं होती, अतः एक ही प्रकार की है कि सुश्रुत ने दोपों के तारतम्य भेद से तीन प्रकार भीर शृकाण्यमरी ऐसे चार भेद माने है। तदनुसाह ही लक्षण स्वरूप और चिकित्सा के प्रकार दिये है। सुश्रुत ने अष्टमरी को न केयल कष्टसाध्य माना है अपितु दाक्षण और मृत्यु माना है। जैसे कि—-

अरमधी नाध्यो व्याधित्तेत प्रतिभी मतः।
तयः। भैवनः साध्यः प्रनुद्धः छेदसहंति॥
इसी प्रकार अण्टांग हृदय ने भी सुश्रुत की मान्यता
को स्वीकार किया है और उपयुंक्त क्लोक को ज्यों का
त्यों उद्ध्व किया है। भावप्रकाश वात, पित्त और कफ
भेद से तीन प्रकार और शुक से चीथी प्रकार की अण्मरी
मानता है। प्रायः सभी अश्मरियां कफ के संयोग से ही
ही तीती हैं। और सभी दरकास चिकित्सा के जभाव में
यमोषम (मृत्युकर्त्ता) होती हैं—

वात वित्त भफ्ते, स्तिमहचतुर्थी शुक्तमा गता । भागः श्लेष्मागयाः तर्वा अदमर्थः स्युगंमीयमाः ।। कहने का तात्पर्य यह है कि महर्णि अग्निवेश के कार्य-काल में भी अग्मरी कण्टसाध्य ही समझी गई है किन्तु यमोपम और अन्तक प्रतिम नहीं ममझी गई है। महर्णि अग्निवेश ने दो प्रकार की विशेष चिकित्सा का उल्लेख किया है जो कि उस् समय होती थी। जैरो कि - चरक चिकित्सा स्थान अ. २६ श्लोक ६० ऐ कहा है—

पीरबाज्य बर्छ निगदं रथेत हवे च वा तीव्रवयेन सामात्। तैः कर्जरा छच्यवदेऽस्परी तु ताम्येन्न वेच्छ्रत्वशिहुद्धरेत्तास्।

अर्थात् अन्य चिकित्साओं के प्रयोग से सफलता मिनने में असफलता प्रतीत होती हो तो निगद नाम का मद पी कर अप्रमरी का रोगी शोघ्र गति से चलने वाले रथ अथवा घोडे की सवारी करके चलें। तीत वेग से चलने वाली सवारी का मूलाशय, मूलनिका पर जो झटका लगसा है उससे अश्मरी और शकरा च्युत हो जाती है और वाहर निकल जाती है दिन्तु यह भी ध्यान रहे कि न नेवल तीन गति से चलने वाली सवारी इसमें फार्यकारी है अपित् निगट नामक नदा भी जतना ही प्रभावी है और उसके नशे में जब बाहन पर बैठकर वह चलता है तब उसे किसी प्रकार का विचार नहीं रहता है खूब तेज दौड़ाता है। तीव गति से चलने में हवा का प्रेशर और सवारी का सटका तथा क्षार गुगधर्मी निगद मद्य का क्षरण क्रम उसमें विशेष महायक होते है। ऐसा ज्ञात होना है कि यह चिकित्सा बहुत प्रभावी फलप्रद थी। यदि इससे अश्मरी गिरती नहीं है तरे शत्य विशेषत्र से उसे निकलया देना चाहिये यह म्हाप अग्निलेश का निर्णय है। किन्तु दुर्भाग्य है कि सम्प्रति साधनाभाव और परम्परा के न रहने से यह चिकित्सा लुप्त हो गई है। इसी प्रकार महपि अग्निवेश के अनुभव मे निम्निनिखित प्रयोग भी उतना ही प्रभावी है। जिसके विषय से भी यही लिखा है कि अन्य किसी चिकित्सा से लाभ व हो तो इसका प्रयोग करें। जैसा कि-एवं न चेत् शाल्यति शस्य युंजन्दात्

सुनां पुरायां अपुकासनं दा। विह्नंग सांसानि च वृह्णाय वस्तीहम सुकांस यज्ञीवनार्थम् ।

शुद्धस्य नृप्तस्य च पृष्यधोगैः

शियानुक्ताः गगदाः विवेताः ।

—चरक चिकित्सा अ. २६ श्लोक ७१-७२

तात्पर्य यह है कि बहुत प्रकार की शास्त्र में कही

THE ENICHE WILL

हुई चिकित्साओं से गुक्रज अप्रमरीजन्य मूलकृष्णु में लाभ नहीं मिलता है तो पुरानी मिंदरा अथवा मधुकासव पिलाना चाहिये और रोगी को वृहण करने के लिये पिक्षयों का मांस खिलाना चाहिए। गुक्राशय के शोधनार्थ उत्तर वस्ति का प्रयोग करना चाहिए। गुक्राशय गुद्धि के प्रश्चात् वाजीकरण औषधियों से रोगी को पुष्ट और तृष्त करके उसकी अत्यन्त प्रिय और अनुकूल रमणी से मैथुन करने के लिए कहना चाहिए। यह प्रयोग अप्रमरी के पातन के लिए प्रभावी और अन्ययं थे ऐसा प्रतीत होता है। किन्तु आज इनका व्यवहार नहीं होता है।

अब में मूलकुच्छ और अध्मरी की उस चिकित्सा का जिकर करना चाहता हूं जिसे रात दिन अपनी व्यवस्था में रोगियों पर प्रयुक्त करता रहता हूं। जैसाकि शास्त्रीय उल्लेख है कि नवीन रोग और श्रद्धावान् रोगी हो तो अवश्य लाभ होता है। साथ ही यह भी अनुभव में आया है कि महिलाओं के अश्मरी पातन में शीघ्र और सहज सफलता मिलती है। चरकोक्तं निम्नलिखित "कार्पास मूलादि प्रयोग" कुछ संशोधन परिवर्धनं के साथ कालेज के अस्पताल में अयुक्त होता है जिसका परिणाम बहुत ही लाभप्रद है जैसे कि- कपास का मूल, अडूसा का मूल, पाषाण भेद, वला का मूल, स्थिरादि वर्ग की औपधें, छोटा पचमूल, सरिवन, पिठिवन, छोटी कटेरी, वड़ी कटेरी, इनंके मूल. गोखरू, कुलत्थी, खरब्जा का छिलका, खर-वूजा के बीज, गवेधुका का मूल, भवेत पुनर्नवा मूल, इन्द्रायण मूल, काली पुनर्नवा मूल, शतावरी, गुडवेल और असनपंणीं इन सब द्रव्यों को समान भाग लेकर (बहुकल्पं सम्पन्नं योग्यमीषधम्) के सिद्धान्तानुसार नवाय, दूध या घृत पडड़ पानीय के रूप में वातज अध्मरीजन्य मूत्रकृच्छ नधा हिदोपन गौर त्रिदोपनन्य मूत्रकृच्छ्र में क्रमणः प्रयोग करें। ववाथ, दूष, घृत तथा पड्गपानीय के प्रयोग के समय २-२ ग्राम शुद्ध शिलाजीत, २-२ ग्राम कलमी शोरा मिलाकर प्रयोग करें। दिन में ३ वार । यह प्रयोग दश सप्ताह में पूर्ण लाभ करता है। याज तक सैंकड़ों रोगियों पर इसका प्रयोग हो चुका है। जयपुर के कवि शिरोमणि श्री कृष्ण-रामजी भट्ट अपनी सिद्ध भैपज मणिमाला में लिखते हैं कि-

चलदलतरूमूल छल्लजात कपायः

लवण गुड सहायो मात्रया पीतमात्रः।

हुड़ निविड़मूलं दुःसहं कुिष्णूलम् समयति यदि शंका मित्र दत्वा परीक्यः।

यह प्रयोग भयञ्कर गुरदे के रोग में जादू का काम करता है। वृक्काइमरी में इसका सतत् प्रयोग किया गया है। जितना कम परिश्रम साध्य प्रयोग है उतने ही कम समय में तत्काल रोग को शान्तकर रोगी को सुखी बना देता है।

प्रयोग—पीयन के मूल की छाल ताजी २ तोला को प पाव पानी में डालकर कवाय बनाना एक छटांक शेप रहने पर आधा तोला सेंधा नमक और एक तोला गुड़ का प्रतिवाप देकर छानकर रोगी को पिला देना। कविराज स्वयं लिखते हैं कि हे मिल्ल, देकर परीक्षा की जिये।

मूलकुच्छ वृक्काश्मरी मू अपिडगत गर्करा, वृक्कभूल, वृक्कदाह, एवं मूत्राशय के संमस्त विकारों में सद्य:फल-दायी वीरतवीदि कपाय (सुश्रुतोक्त कुछ परिवधित) - वीर-तरू, नीले फूल का पियांवासा, लाल फूल का पियांवासा, पीले फूल का पिवांवासा, बांदा, दमें मूल, नरसर, शर,कुणा की जड़, कांस की जड़, पापाण भेद, अरती मूल, ईख की जड़, सफेद आक की जड़, स्योनाक की जड़, नीलोफर् हुलंहुत, गोखरू, शतावर. क्पास की जड़, कुलथी, खर्बूजा का छिलका इन सबको जौ कुटकर मिलाकर. ४-४ तोले. की माला को कपायार्थ अठगुने पानी में रात को भिगोदेगा अण्टमांश शेप रहने पर छानकर ६ रती गुढ शिलाजीत, र रती हजरुलयहुद भस्म तथा ६ रत्ती खेतपपैटी मिला-कर पिलाना, इसी प्रकार रात को देना। सुवह १० वर्ज और गाम को ५ बजे 'त्रिविकम रस' रस रत्न समुख्योक्त 9 रत्ती से २ रत्ती तक की माला में शहद में देकर ऊपर से विजौरा निम्वू की जड़ ६ माशा के शीत कंपाय-में विलावें। विजीरा निम्बू के शीत कपाय के अभाव में हरड़, बहेड़ा पापाण भेद, घमासां धनियां गोखंरू, ककड़ी-के बीज, कुलत्यी और खंरबूंजा के छिलका को ,कपाय हैं।

भोजन है वाद लुरोको (इस नाम से डिसेन कम्पनी हैदराबाद की टेबलेट मिलती है। सर्वथा आयुर्वेद की है। र गोली जोर र गोली अश्मरीहर (पधरीना) बैद्यनाथ की खिलाकर अश्वगन्धारिष्ट के चम्मच, दशम लारिष्ट के चम्मच मिलाकर वरावर पानी मिलाकर पिलावें। यह चिकित्सा सफल है। इसका दश संप्ताह का प्रयोग है। यदि इससे पथरी नष्ट नहीं होती तो आप्रेशन ही एकमात्र उपाय है।

गृत्रकृष्ण-लक्षण एवं विकिला

वैश्ववर पं॰ अनन्त नारायण ठाकुर भृतपूर्व आयुर्वेद चिकित्ना अधिकारी, देवगढ़ (देवास) म प्र०

व्यायामतीक्षणीधण्हक्षमद्य

प्रसञ्जनित्यद्वत पृष्ठ यानात् । सानूपनांसाद्यमनाद्जीर्णात्स्यू-

मू त्रकृष्णाणि नृणां तथाऽष्टी ॥

प्रथड-मल्लाः स्वैः कुषितानिदानैः,

सर्वेऽपत्रा कोपमुपेत्य वरतो।

मूबस्य मार्गं परिपीडयन्ति

यदा तदा मूत्रयतीहकुच्छात्॥

(च०चि०अ० २६)

बहुत व्यायाम करने से, मिर्च और राई आदि तीक्षण औप इ बहुत खाने से, क्झान्न खाने से, मिदरा बहुत पीने से, नित्य घोड़े व ऊँट आदि पर सवार होकर बड़े वेग से दौड़ाने पर, जल के समीप रहने वाले जीवों का मांस खाने से, एकबार का भोजन पचे धिना फिर दूसरी वार भोजन करने से, अजीण रहने पर मनुष्यों के आठ, प्रकार के मूद्रकुच्छ् हो जाते है। बातादि दोष अपने अपने कारणों से प्रयक्त-प्रथक था सब एक साथ मिलकर जब मूत्राजय में कुपित हो जाते हे, तट मूत्र के मार्ग में पीड़ा उत्पत्न कर तेते हैं। उस मनुष्य का पेशाब बड़े कट्ट से उत्तरता है। इस रोग को "मूद्रकुच्छ्," कहते हैं। मुद्रकुच्छ्, रोगों के प्रकार—

अप्टिवितिदोधै:पृषक् तीणि सिन्तिपासेनैकः, शत्यज रुरोपज गुक्रजारमरीजानीत्येकैकानि ॥

इस प्रकार आठ प्रकार के होते हैं-

(१) वातज म् त्रकृच्छ्, (२) पित्तज मू त्रकृच्छ्, (३) कफज मू तकृच्छ्, (४) सन्निपातज या तिदोषज मू त्रकृच्छ्, (१) शस्यज मू तकृच्छ्, (६) पुरीषज मू त्रकृच्छ्, गूच्छ्, (७) अश्मरीज मू तकृच्छ्, (८) शुक्रज मू तकृच्छ्

सव इनकी प्रयक-प्रथक चिकित्सा व लक्षण लिखते हैं-

वातज म् प्रकृ च्छ्रस्य लक्षणमाह्—

तीवातिरण्वडक्षणवस्तभेढ़े,

स्वल्पं मुहुम् त्रयतीह वातात् ॥,

अथित् पेट् म्तायय शौर लिंग में तीव पीड़ा, बार बार व थोड़ा घोड़ा मृत्न उतरना, ये बात जनित कृच्छ्र के सक्षण हूँ।

चिकित्मा वातज मू मक् छू में अभ्यङ्ग (मालिश), स्नेहपान, निष्ह वस्ति, स्वेद, उत्तर वस्ति सथा सेकना एवं सरिदन प्रमृति वातशामक औपधों द्वारा सिद्ध किये गये मांग का सेवन करना चाहिए। यह सामान्य चिकित्सा है। विशेष योग निम्नानुसार है—

बमृता नगरं द्यात्री-वाजिगन्धात्रिकण्टकात् । प्रतिवेद्धाननोगानैः सण्नुजो मूलकृच्छ्वात् ॥ वर्षात् गुर्चं, सोंठ, आंवला, असगन्ध और गोखरू, इन्हें २-२ तोला नेकर इनका क्वाथ कर पीने से वेदनान् युक्त वातज मूत्रकृष्कु भी दृर हो जाता है।

रिक्तज मूलके च्छ्स्य लक्षणं—
 पीतं सरक्त सरुजं सर्दाहं

म् च्छ्रं मुहुम् त्रयतीह पित्तात्।।

कर्थात् ित्त समूत्रक्र्च्युमें मूत्र कारङ्गलाल व पीला हो जाता है तथा दाद व कष्ट के साथ बार बार मूत्र उत्तरता है।

चिकित्सा--

सेकावगाहाः शिशिरा प्रदेहा

ग्रीष्मो विधिवंस्तिपयोविकाराः।

द्राक्षाविदारीधुरसैषु तैश्च

इन्हें पु पित्तप्रभवेषु कार्याः ॥

अर्थात् पित्तजन्य मूलकृ न्छु में जीतल जल या अन्य गीतल प्रत्यों से परिपेक करना चाहिये तथा शीतल जल में बैठना, जीतल प्रत्येप करना और ग्रीप्मऋतुचर्यानुसार आहार विहार करना चाहिए। वस्ति देना तथा दूध के पदार्थ खाना, मुनदका खाना, विदारीकन्द, गन्ने का रस पीना तथा घृत का रोवन करना चाहिए।

अन्य योगाः यथा गुड़ामलक प्रयोग-गुड़ के साथ समभाग आंबले का चूर्ण खाने से वीयं बढ़ता है और

atal similares.

यकायट दूर होती है और इससे रक्तपित, दाह, शूल तथा मूत्रक च्छू नष्ट हो जाता है।

एवरि बीजादि प्रयोग —ककृड़ी के वीज, मुलेठी व शक्हत्दी, इनको चूर्ण कर चावल के घोवन के साथ पीने ने पद मूलकृष्ण दूर होता है।

३. क्याज मूहाकृच्छ्र लक्षण—

वस्तेः सलिगत्य गुरुत्व शोथौ,

गू गंस पिच्छं कफमू श क् चछे, ॥

क्षयति कफज मूल कुछ, में लिङ्गत मूत्राशय में भारीपन तथा शोय हो जाता है और मूल चिकना व सफेद हो जाता है।

चिकित्सा--

क्षारोज्णतीक्णोषधमन्तपानंस्वेदोयवाननं वमनं विरुहाः तक्रं सितकोपधसिद्धतैता-भ्यङगपानं कफमूत्र कृच्छे, १

कफज मूत्र कृष्छ्र में क्षार, गरम, तीक्ष्ण और कटु अन्नपान, स्वेद कराना, यव की पथ्य देना, यमन, निरूह वस्ति तथा तिक्त औषधों के साथ सिद्ध किये गये तैन की मालिश तथा पान कराना चाहिए।

मूलेणसुरया वाऽपि कदली स्वरसेन वा ।

कफ मूत्र कृष्छ्र विनाशायण्लक्ष्णं पिष्ठा त्रुटि पिवेत्।।

कफ मूत्र कृष्छ्र विनाशायण्लक्ष्णं पिष्ठा त्रुटि पिवेत्।।

कफ मूत्र कृष्छ्र दूर करने के लिए छोटी इलांधची

को गोमूल, शराव या कदली स्वरस के साथ पीसकर
पीता चाहिए।

"म्बदंप्ट्रा विश्वतीयं दा कफ क क्छ विनाशनम् ॥"

रोखम् और सींठ का क्वाथपीने से कफज मूल क च्छ चूर हो जाता है।

तण्डुलधावनेन प्रवाल चूर्ण पिवेत् कफ मूलकच्छे,। प्रवाल भस्म को चावल के बोवन के साथ पीने से कफ्मूतकुच्छ, दूर होता है।

४. विदोषण वा सिन्नपातज क् च्छ्रस्य लक्षणं— सर्वाणि रूपाणि तु सन्निपाता - द्वरन्ति तत्कृष्ठ्रतमं हि कृच्छ्रम्।

उपरोक्त कहे हुए बातज, पित्तज व कफज तीनों सूत्रकृष्णों के लक्षण जब एक साथ मिलते हैं तो यह सन्तिपानज मूत्रकृष्ण होता है। इसमें तीनों दोपों के लक्षण होते हैं यत: इसे तिदीपज भी कहते हैं। यह कष्ट साह्य होता है। चिकित्सा— त्रिदोषजन्य मूत्रकृष्ठ्र में प्रथम वाषु को अपने स्थान पर लाकर प्रकृतिस्थ करना पाहिए। तदनन्तर यह परीक्षा करे कि तीनों (वात, पित्त और कफ) में से किमकी बाहुल्पता है। यदि कफाधिक्य हो तो वमन, पित्ताधिक्य में जिन्न और बाताधिक्य में स्नेहन वित्त देना चाहिए। इस प्रकार पूर्ण का में निदान करके ही चिकित्सा करनी चाहिए, अन्यथा यह कप्टसाव्य मूत- कृष्ठ्र असाव्य हो जाता है।

वृहती धावनी पाठा-यह्टीमधुक्रिलङ्गकाः।
पावनीयो वृहत्यादिः कृष्ट्रदोपत्रयापहः।।
यर्थात् छोटी तथा बडी कटेरी, पाढा (पाठा), मुलेठी
सौर इन्द्रयव, इस बृहत्यादि पाचनीय गणं के सेवन से
त्रिदोपजन्य मूलकृष्ठ, दूर हो जाता है।

¥. शल्यज मूत्रक्टरूम्य लक्षणं—

मूल व हिनी नाड़ियों में सलाई चलाने से घाव होने पर या बीर किसी प्रकार लगने पर मूत्र कुच्छ, हो जाता है। यह शल्यज मृत्र कुच्छ, बड़ा कारट दायक होता है। इसके उपरोक्त वातज मूलकुच्छ, के समान लक्षण होते हैं। इसे अभिघातज भी कहने हैं। इसमें सद्योत्रण के समान चिकित्सा करनी चाहिये तथा वात्र शामकं उपचार करना चाहिए।

मधुर, खट्टे तथा नमकीन और स्निग्ध, आहार तथा मालिण और स्नेहयुक्त वस्ति देनी चाहिए और बात-शामक गण का सेवन करना चाहिए। तथां—असगन्ध, खरैटी, कन्धी, गगेरन, दशमूल, सोंठ, नख, नखी, और रासना ये वातनाशक गण है।

ससगन्ध के बनाय तथा कल्म के साथ चतुर्गुण दूध में सिद्ध किया गया घृत बात को नष्ट करने बाला, बीर्य तथा मांस को बढ़ाता है।

६. पुरीषज मूत्रकृच्छ्स्य लक्षणं—

मल का वेग रोकने से वायु कुपित हो जाता है तथा पेट फूलता है और पेट में वातणूल होता है। भूत्र में रका वट हो जाती है। ये लक्षण 'पुरीयज मूत्रक्रच्छू' के हैं।

विकित्सा—मलजन्य मूत्रहुच्छ में स्वेदन और पूर्ण किया अर्थात् फलवर्ति या विरेत्रन चूर्ण का प्रयोग करना

— रोवांशा पृष्ठ १०० पर

मेला मिणा चिर्वातात्वान विकि

स्वकृच्छ्ता

वैद्य रामदत्त शास्त्री योगुर्वेदाचार्य एम०ए०, राज॰ औषधालय, शोधासर (चूरू) राज०

में यहाँ अवसरीजन्य मूत्रकृष्ण्य से पीड़ित उपचार किये गये ४ रोगियों का विवरण देना चाहूंगा। इन सभी प्रयोगों के साथ दिन में ३ बार दो-दो सिस्टोन गोलियां (हिमालय) पानी के साथ सेवन करवाईं तथा भोजनोत्तर चंदनासव दोनों समय ३० मिली. समान जल के साथ दिया गया —



(१) रोगी नान - चेतराम जाट ग्राम मुरड़ाकिया

वय - ११ वर्ष-कृषक - कई महिनों से दुर्धर्ष मुत्रकृच्छता

से पीड़ित पा वारम्बार यह शिकायत होती रहती थी

उपचारवश कभी कम कभी ज्यादा। यह मेरे पास रस्त

११ तजे पहुँचा बड़ी भारी वेदना से पीड़ित यां अवरुद्धता

तथा कृच्छता को देखते हुए कैथीटर का प्रयोग किया गया

मूत्र उतरा शांति मिली। मूत्रावतरण के पश्चात् मैंने प्रयोग,

नं. १ प्रातः सायं तथा सिस्टोन, चन्दनासय का योग

दिया। यह प्रयोग २५ दिन तक चला।कोई अधिक शिका
यत न हुई। किन्तु १ दिन सायं वैसी हो असद्ध वेदना से

युक्त होकर आया,पेशाव वन्द था। कैथीटर का पुनः प्रयोग

किय गया — वेदना, कृच्छता और प्रोस्टेट वृद्धिको देखते

हुए भी अप्रमरी निर्हरण हितु शत्य त्रिकित्सा के लिए

सुजानगढ़ शस्पताल जाने की सलाह यो गई। साथं रोगी

अस्पताल पहुंचा। प्रातः लाप्नरेशन के लिये कहा गया।
रात्रि में दीगई चन्दनासवादि लेकर विश्वास करने लगा
-िक 9२ बजे लचुशंका हुई और एक प्रवल वेग के साथ
कुछ ठोस वस्तु सी मूत्र मार्ग से बाहर आई प्रतीत हुई।
टाचें के प्रकाश से देखा गया तो वहां एक मेंगनी के आकार,
की कोई चीज है। उसे ले प्रातः डावटर सहाव को दिखाई
तो कहा कि अब आपके आपरेशन की जरूरत नहीं है।

- (२) रोगी—तेजाराम मेघवाल वय १ वर्ष, ग्रामशोभासर—श्वास कास से भी पीछित यह रोगी भी कई
 दिनों से मूत्रकृच्छ्रता से ग्रस्त था। इसका नसवन्दी आपरेशन भी १ वर्ष पहले हो चुका था, रातिवन शिक्ष्यत करता रहता कि पेडू भारी रहता है वर्ष बना रहता है,
 पेशाय कच्ट से होता है— इसे प्रयोग नं. २ तहत् व्यवस्था
 पूर्वक २० दिन दिया गया, एक दिन असहा वेदना से
 ग्रसित हो जाने पर यह भी अस्पताल गया डाक्टर ने एदरारे
 के लिए कहा एक्सरे लेने पश्चात् पाया गया कि चावल
 जैसी-अश्मरी अवस्थित है। आपरेशन के लिए कहा गया तो
 श्वाल्य क्रिया भी तेजाराम ने नहीं करवाया। शीपभ वही
 पूर्ववत् चालू रखी। एक सप्ताह प्रश्वात् उसके बाश्चर्य का
 ठिकाना न रहा कि वही चावल वरावर अश्मरी उसके
 मूत्र मार्ग से सवेग बाहर आई।
- (३) रुग्णा जानकी देवी जाट ग्राम— सासामी—वय ४० वर्ष । कई दिनों से कृच्छता से पीड़ित—उसे प्रयोग नो. ३ दिया गया क्योंकि यहाँ मतीरे श्रावण से लेकर आग्रिवन कार्तिक तक बहुतायत से होते हैं । इसे भी सिस्टोन और चन्दनासव दिया गया । इसके महिने में करीव ४ बार मुद्ग (मूंग) के समान अश्मरियां मूल मार्ग से बाहर बाई और व्याधि से सुटकारा मिला ।
- (४) रोगी किशोर सिंह वर्ण १६ वर्ष ग्राम शोशा-सर प्रयोग नं ४ के साथ औपधि व्यवस्था पूर्ववत् रखी गई। २० दिन में ही आशातीत सफलता मिली। अध्मरी

an in the cit.

चने बरावर मूत्रमार्ग के जिश्नाग्र भाग में आकर फंस गई। रोगी वड़ी वेदना महसूस करने लगा। अश्मरी ग्राह्म थी अतः संदंग के द्वारा इसका निर्हरण कर दिया।

अन्तरी वड़ी हो जाने पर शाल्य क्रिया द्वारा ही इसका अन्तिम उपचार है। यह वृतक गठीनी मूताशय कहीं भी हो सकती है और मूत्रकृत्छता उत्पन्न कर देती है।

इसके लिए सर्व सुलभ सफल ५ प्रयोग को कि पूर्ण परीक्षित हैं निम्नांकित हैं —

पवसार ६ ग्राम, पिसी मिश्री ६ ग्राम मिलाकर
 प्रातः सायप्-अनुपात ठंडा जल ।

२— १ ग्राम कलमी शोरा या (ग्वेतपर्यटी) ४ ग्राम बड़ी इलायची के दाने पिसे हुए शीतन जल के साथ ।

३—मतीरा (तरवूज) के अन्दर की गिरी का जल ३०० ग्राम, जीरा र ग्राम, मिश्री ६ ग्राम मिला पिलावें।

४ — खरीटी की जड़ २० ग्राम, २०० ग्राम पानी में भीटाकर छान कर अवशेष में ५० ग्राम प्रातः सार्य पीवें।

५—ववूल की नरम पत्तिया, गोखरू १०-१० ग्राम पीस कर २० ग्राम मिश्री मिला १०० ग्राम पानीमें पीवें।

कई शास्त्रीय योग भी हैं जिनमें निम्नांकित २ योगं सर्व विदित आशुफलप्रद है—

- (१) मूबकुण्छान्तक रस—इसमे केवल शुद्ध पारद तथा शुद्ध गन्धक और यवक्षार मात्र तीन औषधियाँ हैं। इनको वरावर की मात्रा में नेकर पहते पारद गन्धक की कज्जली बना लेनी चाहिए। फिर यवक्षार मिला खरल करके रख लेना चाहिए। इसकी मात्रा - से ३ मिली ग्राम तक है। अनुपान शीतल जल या तक।
- (२) कुशावलेह कुश, कास, खन, ईख, सरकण्डे की जड़ प्रत्येक १००-१०० ग्राम लेकर कूट लेनी चाहिए फिर इन्हें १०, किली पानी में डालकर औटावें २ किली ग्रेप रहने पर छान लिया जावे, तदनन्तर इसमें १०० ग्राम चीनी मिला बवलेह योग्य चासनी बना लें। इसमें मुलेठी, ककड़ी के बीज, कुम्हेडा के बीच, खीरे के बीज, बंशलीचन, आमले, तेजपात, इलायची, नायकेशर, बरुणछान, गिलोय, प्रियंगुकूल सभी ६-६ ग्राम लेकर पीसछान, यह प्रत्येक द्रव्य मिला देवें। यह कुणावलेह उत्तम मूत्रल है—इसकी मात्रा १६ हे २० ग्राम तक है। अनुपान ठंडा जल।

इसके सेवन करने से सभी तरह के मूत्रकृष्ण, अण्मरी, मूत्राचात और प्रमेह भी नष्ट हो जाते हैं।

🤊 शेषांश पुष्ठ घदं का 🔊

इं जेक्शन तुरन्त ही देना चाहिये।

- (२४) होमिगोपैथी की लाइकोपोटियम नाम की दबा पथरों को गलाकर निकाल देती है। वृत्यक्षूल को नष्ट कर पेशाव साफ लाती है। कैन्यरिस भी महान उप योगी दवा है। पेशाव की जलन शान्त कर मूत्र साफ लाती है। पथरी को भी गलाकर निकाल देती है।
- (२१) श्री वैद्यनाथ बायुर्वेद भवन लि॰ झांसी का मूत्रल पाउंडर रुके हुए मूब को खोलता है। हैंजा मूत्रकुच्छ्र, मूटाघात बादि बीमारियो में रुके हुए मूत्र को खोल कर आराम पहुंचाता है।
- (६) डाबर (डा. एस. के. वर्मान) प्रा. लि. का "यूरात्का" रक्त में क्षार का परियाण ठीक रखकर मूत्र की बढ़ी हुई एसिड को कम कर एवं मूत्र की मात्रा को बढ़ाकर मूत्राशय सम्बन्धी दोप, शोथ, जलोदर तथा अन्य मूत्र सम्बन्धी दोषों को ठीक करता है। जी मिचलाना, वमन में लाभन्नद है।

फतेहगढ़ सिखलाई सेन्टर के श्री गुरदयाल सिंह की दर्द गुर्दा (वृक्कणूल) शुरू होगया जिससे परेशान रहने लगे। दवा भी काफी की नगर लाभ नहीं हुआ। हमारे पास १०-७-५१ को आये। हमने उनकी ऊपर लिखे हुए योग नं० १ व २१ का प्रयोग कराया जिससे वे १०-१२ दिनों मे विल्कुल ठीक हो गये और . अभी तक ठीक हैं। तबसे उनको दर्द का दौरा नहीं पड़ा। योग नं० १ की दवाओं में पापाण भेद व बरने की छाल और मिलवाई थी।

पथ्य—पुराना लाल शाली चावल, मूंग, खांड़ गाय ना दूघ, तक, दही, पेठा, परवल, ककड़ी के बीज, खजूर, न रियल, चौलाई, आमला, घी. सावूदाना हितकारी हैं।

अपथ्य—मद्य, श्रम मैंघुन, हाथी, ऊँट, घोड़ा, साइ-किल की सवारी, विरुद्ध भोजन, विपम भोजन, पान, मछली, मांस, नमक, अदरख, तेल, तिलकुट, हींग, तिल, सरसों, उड़द, करारे, अति तीक्षण द्रन्य, लालिमचं, विदाही पदार्थ, रुझ, अम्ल द्रव्य, गरम मसाला, चाय, जाम की खटाई, अचार आदि अपथ्य हैं। इन्हें सेवन न करे।

—वैद्य दरवारीलाल अध्युर्वेद भिपक्, अग्रोक मैपज्य भवन, फतेहगढ जिला फर्रुखावाद (उ॰ प्र॰)



हा॰ विजयकुमार वार्ष्णेय, कटरा वाजार, सहावर टाउन [एटा] उ०प्र॰

सम्ाप्ति—मून मार्ग में संकोच, क्षोम या दाह उत्पन्न होकर मूत्र त्याग करते समय रोगी को कष्ट हो सो उसे . मुत्राधात कहते हैं।

कारण--

- (१) अधिक व्यायाम करना ।
- (२) तीक्ष्ण,व उच्च अन्तपान अधिक करना।
- () शीझ गमन व सवारी का अधिक प्रयोग।
- (४) झानूपज व पशु पक्षीं मांस का अधिक सेवन
- (१) अध्यशन सादि।

अपने-अपने कारणों से प्रकृषित वातादि दोप पृथक-पृथक या एक साथ जल वस्ति में पहुंच कर मूत्र मार्ग से संकोच दवाव या कीभ आदि उत्पन्न करते हैं तब मूल त्याग करते समय रोगी को नष्ट होता है। इसी को मूला-घात कहते हैं।

मल मूबादि के वेगों को रोकने से रक्षादि पदार्थों के सेवन आदि से कृषित हुए दोष (विशेषतया वात) वात कुण्डलिका आदि १३ प्रकार के मूलाघात को उत्पन्न करता है—

- (१) वातकुण्डलिका—कुपित हुआ वस्ति में रहने वाला वायु मूत्र में प्रविष्ट होकर कुण्डलाकार संचार करतां है। वस्ति में पीड़ा मूत्र त्याग थोड़ी-थोड़ी माता में पीड़ा के साथ वात की विकृति के काग्ण वस्ति मुख संको-चनी पेशी संकुचित हो जाती है मूत्र-त्याग नहीं हो पाता और संकोच कम होने पर-मूत्र त्याग होने लगता है। इस अवस्था को आजकल (Spasmodic stricture) कहा जाता है।
 - (२) वातवस्ति (Retension of Urme)-वेग को

रोकने से वस्ति स्थित प्रकुपित वायु वस्ति के मुख में अव-रोध उत्पन्न कर देता है। इससे मूत्र त्याग पूर्णत्या अव-रुद्ध हो जाता है तथा वस्ति और कुक्षि प्रदेश में तीन पीड़ा होती है और इस कुक्षि साध्य व्याधि को वात वस्ति कहते हैं। इस अवस्था में पूर्णत्या मूत्र का अवरोध कुछ काल के लिए हो जाता है तब इसे पूर्ण मूत्रावरोध कहते हैं।

- (३), मूत्र जठर-मूत त्याग न करने से वस्ति में स्थित वासु प्रकुपित होकर पेट को फुला देती है और नाभि के निम्न प्रदेश में तीन्न आध्यमान को उत्पन्न कर देता है। इस वस्ति में मून भरा रहता है तथा वस्ति अधिक विस्तृत हो जातो है और पेड़ में अधिक उभरी हुई प्रतीत होती है। बतः इसमें पेट फूल जाता है, मूद्र त्याग पूणंत्या अवस्ट हो जाता है। इसे चिन्ह की इंग्टि से Distended bladder तथा लक्षण की होंग्ट से Complete Retention of Urine कह सकते हैं।
- (४) मूलक्षय (Anurea or Suppression of urine)— एक प्रकृति तथा थके हुए वस्ति में स्थित पित्त तथा वायु प्रकृपित होकर मूलक्षय एवं दाह उत्पन्न करते हैं। इस अवस्था में जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, मूल का बाना कम हो जाता है, वस्ति रिक्त रहती है, मूल त्याग की इन्छा रहती है। वस्ति में मूल रहने पर भी मूल नहीं निकलता जीर रिक्त वस्ति में दाह तथा पीड़ा होती है। ये तीज वृक्क शोय तथा आंजिक्यात में विभेष रूप से देखने को मिलता है।
- (५) मूत्र यन्य (Enlargement of Prostrate or Tumour of the bladder)—बस्ति मुख के अन्दर् अथमरी के समान गोल स्थिर तथा छोटी प्रन्थि को मूल प्रन्थि कहते हैं। सापेक्ष निदान का निश्चय वकरी के दूध की गन्ध से होती है।

सूचा शंगा सिकिट्सा

- (६) उब्जवात ज्यायाम, अत्यधिक पद याला तथा धूप में वायु के द्वारा गुदा में वाह उत्पन्न करता है और मूत्र मार्ग द्वारा हरिद्रा वर्ण रक्त मिश्चित मूत्र या केवल रक्त का ही स्नाव करता है और बहुत कठिनता से वार-बार मूल त्याग होता है। यह अनस्था सामान्य मूत्रामय कला जोच (Cystitis) या मूत्रप्रसेक गोथ (Urethritis) के कारण उत्पन्न होती है या गोथ पूर्यमेह (Gonor-rbcea) या अन्य दूसरे संक्रमणों के द्वारा भी हो सकता है। प्राचीन वैद्य पूर्यमेह का उष्णवात से ही ग्रहण करते हैं।
- (७) मूलसाद—पित्त की विशेषता होने पर मूत्र त्याग में विशेष रूप से दाह मूत्र का वर्ण पीला-लाल अथवा गोरोलन के समान होता है तथा कफ की अधिकता में शंख के वर्ण के समान त्रिदोषज में मिश्रित वर्ण मिलता है। जल की कमी रहने से मूल गाढ़ा रहना है। इसलिए मूल त्यान में कब्ट रहता है। इसे अल्प मूलता (Scanty urination) कह सकते हैं।
- (म) वस्ति कुण्डल (Atonic condition of the biadder)—आवात लादि से वस्ति अपने स्थान से उठकर गर्म के समान प्रतीत होता है। इस अवस्था में वस्ति से शून्य स्पन्दन तथा वाह, मूल वृंद-शूंद तथा वस्ति पर दवाब डालने पर धारा रूप में निकलता है। शरीर जकड़ जाता है तथा ऐंडन समान पीड़ा होती है। ये व्याधि शस्त्र अथवा दिप से वृझे हुए शस्त्र के समान पीड़ादायक है। इसमें वायु की प्रवलता होती है।
- (६) अच्छीला वर्णन कुमित वागु वस्ति तथा गुदा में आध्यमान उत्पन्न करते हुए अच्छीला के समान चल एवं उभरी ग्रन्थि को पैदा कर देता है जिसे अच्छीला कहते हैं। मल-मूत्र त्याग में अवरोध तथा पीड़ा होती है। ये अवस्था आजकल Tumour of the bladder or enlaged Prostate में मिलती है।
- (१०) म्वातीत (Incontinuence of urine)—
 जधिक रामय तक मूल रोकने से मूज त्याग करने पर मूल जल्दी नहीं उत्तरता और यदि उत्तरता भी है तो बहुत धीरे-धीरे। इसी को मूजातीत कहते हैं।
- (११) मूत्रोत्सङ्घ (Stricture of urethra)—मूत्र त्याग करते हुये मनुष्य का मूल वस्ति, शिश्वनाल या शिश्वमणि में रक जाता है या रक्तयुक्त मूलायाल या धीरे-धीरे कभी-कभी अल्प मात्रा यें पौड़ा या विना वैदना

- के भी निकलता है। इस दुष्ट वायुजनय अवस्था को मूत्रोत्सङ्ग कहते हैं।
- (१२) मूजा विड विद्यात (Recto-vesical fistula)—जद वायु विलोम होकर मूजमार्ग में पहुंच जाता है तो मन से युक्त या मन की गन्य वाले मूज की पीड़ा के साथा त्याग करता है। इस अवस्था को विड् विद्यात कहते हैं। भगंदर होने पर गल का कुछ हिंसाग मूजाय में जा सकता है। ऐसी स्थिति में मूझ में मल के दुकड़े तथा गन्ध मिलती है या पुरीष गन्धवत् मूज त्याग होता है। ये अवस्था Recto vesical fistula में देखने को मिलती है।
- (१३) मून गुक्र मून का वेग रहते हुए मैथून करते हुए पुष्क का वागु प्रकृषित हो जाता है। इसके हारा प्रवृद्ध अपने स्थान से हटा गुक्र मून त्याग के पूर्व या पश्चात निकलता है, ये चूने के पानी के समान होता है, इसे मून गुक्र कहते हैं। मून त्याग में जुन्छता नहीं होती, शुक्र ग्रन्थित होने पर कुन्छता पैदा होता है।

विभेदक बक्षण— इस रोग में पूर्णतया अवरोध हो जाता है (Retention of urine)। मूल का त्याग बूं द-वूंद करके विना पीड़ा के हो जांता है। वस्ति मूल से भर जाती है परन्तु रिक्त नहीं होती है। जश्रि मूलकुन्छ में मूल का अवरोध नहीं होता है परन्तु पीड़ा, बेदना और दाह (जलन) के साथ मूल का, त्याग होता है। मूलाधात में वेदना मूल के अवरोध या रुकने के कारण होती है। कभी-कभी मूलावसाद की भी एक, अवस्था याई जाती है। आधुनिक विज्ञान इस रोग की मूलअवृत्ति का अवरोध (Obsuructed Micturition) मानती है।

म् जाघात व म् जाकृन्छ दोनों ही रोग में मूटा करते समय कष्ट होता है। अतः दोनों में भेद जानना अत्यन्त आवश्यक है—

भेद

म्हाकृन्छ

इसमें मूश का अवरोध कम समय तक रहता है। इसमें मूल त्यागते समय अधिक पोड़ा होती है। इसके मूश में स्कायट नहीं आती है।

म् शावात

इसमें मूज का अवरोध अधिक समय तक रहता है। इसमें मूज त्यागते समय साधारण पीड़ा होती है। इसमें मूज बूंद-बूंद करके आता है। साध्यासाध्यता--

वस्ति का मुख श्लेष्मा से अवरुद्ध हो गया हो तथा ् जिसमें पित्त की अधिकता हो तो वह असाध्य, जिसमें नेकर कांजी २ तोला, सैंधव लवण ४ रत्ती के साधा वस्ति मुख कफ अवरुद्धन हो और जिसमें ऐंडन युक्त पीड़ा म होती है वह साध्य होता है किन्तु फुण्डलीकृत बसाध्य 'होता है तथा वस्ति के कृण्डलीभूत होने पर प्यास म्च्छीं तथा ग्वास ये लक्षण उत्पन्न होते हैं। चिकित्सा—

चिकित्सा सूत्र-

दोवानुसार चिकित्सा करें-मू शल चिकित्सा करें। उत्तर वस्ति व वस्ति कमं, स्निग्ध विरेचन, विषम भेदों की चिकित्सा कारणानुसार करें।

- (१) गोक्षरादि क्वाथ-गोखरू के पत्ते, फल और 'जड को समप्रमाण में मिश्रित कर २ तोला लेकर,:३२ तीला पानी में [क्वियत कुरें, १/४ भाग शेप रहने पर छानकर १ तोला महद तथा २ तोला मर्करा मिलाकर देते हैं।
 - (२) दशम्ल नवाथ- बेल की छाल, खम्भारी,पाढल, सोनापाठा, अरनी, गोखरू, छोटी कटेरी, वड़ी कटेरी, पिठवन, सरिवन, रास्ता, पीपर, पीपरामूल, कूठ, सोंठ, चिरायता, नागरमोथा, खरैटी, गुरुच, सुगधवाला, दाख, जवासा और सोया, इन ृसबों का क्वाण वनाकर शुद्ध-शिलाजतु २ रती तथा १ तोला गर्फरा मिश्रित कर पीने को दें।
 - (३) कृष्माण्ड स्वरस—कोहंड़े के फल को पीसकर उसका ४ तीला स्वरस निकाल कर उसमें ४ रत्ती यव-क्षार तथा १ तोला पुराना गुड़ मिलाकर पीने को दें।
 - (४) विम्वीमूल लेप-विम्वी (डिण्डोरी-कुन्दरी) लती की जड़ को काञ्जी के साथ पीसकर नामि प्रदेश से वस्ति पर्यन्तु भाग पर लेप करायें, लाभ होता है।
 - (प्र) मुल्टि योग—अशोक के बीज के चूर्ण को २ 🗸

माशे लेकर शीतल जल के साथ पीने से लाभ होता है।

- (६) रस सिन्दूर—रस सिन्दूर आधी रत्ती से १ रसी मिश्रित कर प्रयोग करें, लाभ होता है।
- (७) वीरतवादिगण-वीरतर (शर की जड़) नील तथा पीत पुष्पं वालां, पियावासा, दर्भं, घांदा, नरसल, गुनं, काश, कुश, पावाणभेद, ईख की जड़, सोनापाठा, कटसरैया, सूयवितं का भेड, अगस्त्य की छाल, अरणी. नीलोफर, गोलक नवाथ विधिसे इनके प्रयोग से विशेष लाभ होता है।
- (म) उशीरादि चूर्ण-खस, तगर, सोंठ, शीतल-चीनी, लाल चन्दन, श्वेत चन्दन, लींग, पिपराम्ल, पिप्पली, छोटी इलायची, नागकेण्र, मोंया, मुलेठी, कपूर, वंशलीचन, तेजपात ये प्रत्येक २-२ तोला और १६ तोला काली अगर लेकर चूर्ण कर लें। ३ से ६ माशे शीतन जल से अनुपान करने से लाभ होता है।
- (६) शुद्ध शिलाजीत १ माशा, दशमूल क्वाथ = तोला चीनी २ तोला मिलाकर पानी से प्रयोग करने से लाभ होता है।
- (१०) श्रद्ध शिलाजीत १ माशा को चीनी .२ तोला की चाशनीं में पकाकर सेवन से लाभ होता है।
- (१) श्रुद्ध शिलाजीत १ माणा को वीरतवंदि क्वाध न तोलां और मधु २ तोला को मिलाकर प्रयोग करनें से विशेष लाग होता है।

पथ्य - पुराने लाल चावल, दुग्ध, दही, परवल, खजूर, ककड़ी, नारियल का कच्चा फल, पेठा, अद्रक आदि ।

अपध्य-देशकाल तथा सातम्य विरुद्ध मोजन, ज्यायाम, अधिक पदयात्रा, शीत में सोना, रूक्ष, विदाही, पदार्थों का सेवन, मैथून, संधारणीय वेगों का धारण करना वर्जित है।

ELEDINATION OF C

आयुर्वेदाचार्य विरिन्धिलाल शास्त्री, भिषपत्न, आयुर्वेद वाचस्पति (एम.एस.सी.ए.), आयु वृह० (डी.एस.सी.ए.) श्री माहेश्वरी आयुर्वेदीय दातव्य औपधालय, इस्लामपुर (झुन्झुनू) राजस्थान ।

इस रोग की उत्पत्ति भी वाल, वृद्ध, स्त्री, पुरुषों की हैर लायु में हो सकती है। मूत्र रुक-रक कर दाना, न्यून होना, गरम-गरम जलता हुआ हाना, दाह के साथ पीड़ा होना, बूद-बूद पेशाय का उतरना, दाह जीर जलन के साथ, उसे मूत्रकृत्छ, कहते हैं। वैसे इसका निदान इस प्रकार है—

व्यायाम तीवणीपध एक्समच

प्रसंग नृत्यद्भुत पृष्ठयानात् ।

· क्षानूपमत्स्याध्यणनाद जीर्णात्स

मूत्रकुच्छ्राणि नृणामिह्यण्टो ॥

अर्थात् अधिक व्यायाम से, अधिक तीक्ष्ण औविधि के सेवन से, रूखे अन्न पान से, मद्य से, अधिक मेथुन से, अधिक तेज चलने से, घोड़ा आदि की सवारी, ज्यादा सवारी करने से, नृत्य से, आनूप जीवों के मांस भक्षणों से, अध्यशन अजीर्ण पर भोजन करने से मूत्रकृच्छ्र होता है। यह आठ प्रकार का है। इसके लक्षण भेद से विशेष विश्वद लेख होगा। अतः में इसकी अनुभूत चिकित्सा हो लिखकर समाप्त कर देता हूं। चिकित्सा स्वानुभूत लिख रहा हं—

स्वप्नमेहजन्य मूत्रकृच्छ्र में कवावचीनी (शीतल मिरच) १ तोला की, प्रसुराक कर पीसकर ३-३ घण्टे से शहद में चटाचेंगे तो विशेष व शीघ्र फायदा होगा। अन्य मूत्रकृच्छ्र नाशक योग—

- (१) यदक्षार पपड़ी १ तोला, निम्दू रस १ छटांक तथा शहद आधी छटांक मिश्रण कर २-२ घण्टे से १-१ तोला लेते रहने से जूल सहित मूत्रनच्छ दूर होता है।
- (२) छोटी ऐला चुर्ण यवक्षार देशी मिलाकर १-१ माशा रोजाना ४-४ बार दिन में देने से ठीक रहता है।
 - (३) त्रिदोपज हो चाहे वातदोपज व अन्य पित्त कफ दोपज और अभिघातजन्य दोप, मूत्रकृच्छ्रता में गोधुर का पंचांग दूध में उवाल कर दोनों समय ठंडा कर पीने माल से ही दूर होता है।
 - (४) गोक्षुरादि चूर्ण मिश्री मिला मधु से चाटकर ऊपर से जल पीने माश से मूहाकृच्छ ठीक होता है।
 - (५) चन्दन सफेद व मिधी घोटकर पीने माश से दाहयुक्त मूलकुच्छ, ठीक होता है।
 - (६) वैसे पंचतृण कुशकासोशरोदर्भी इक्षुश्वेती जड़ गंगाकर मिश्री या चीनी मिलाकर पीने से भी फायदा होता है।
 - (७) श्वेत पपंटी मूत्रावरोध एवं मूत्र कुच्छूता में विशेष उपयोगी है।

तरल पदार्थी द्ध, मठ्ठा, फलों-रस इत्यादि पथ्य हैं।

💥 मुत्रावात 💥

- (२) डेल्कामारा६ × एकोनाइट६ × शक्ति-यदि भीग जाने पर रोग हो तो।
 - (३) चिमाफिला३०-रोग पुराना होने पर दें।
 - (४) वेलाडोना Q दें।

वायोकेमिक —केलि म्यूरियेटिकम ३ X दें। ऐलोवैधिक औपधियां —

१. नस द्वारा ५% ग्लूकोज चढावें। साथ में हिमा-

💥 पुष्ठ १०१ का शेषांश 💥

- लय ड्रग की 'सिस्टोन' की २ टिकिया दिन में ३ वार दें।
- ेर. वृक्क प्रदेश पर कर्षिग ग्लार्स लगाने से भी मूत्र आ जाता है।
- ३. पायरीडियम (वार्नर हिन्दुस्थान)की १-१ टिकिया सावश्यकतानुसार देने से मूत्र आ जाता है।

—हा॰ जिवपूजन सिंह कुश्वाह एम•ए॰ १३/४०, हजारी बगला, कानपुर

अवार्ष पं. शितकुत्तार वं हा प्रारंगी, आयु बृह.

మ్మైం మ్మైం మ్మాం మ్మా



मूत्रावरोध (Retension of urine) सामान्यतः श्वसनक ज्वर, आमवातिक ज्वर, मन्यर ज्वर। इन रोगों में शारीरिक उत्ताप की वृद्धि हो जाने पर मूत्रावरोध हो जाता है। इसके अतिरिक्त ज्वरावस्था में शराव, विवनाइन, सोमल (संखिया मिश्रित) औषधियों के अतियोग से वृवक कार्य में शिषिलता होना वृक्क प्रदाह भूतकाल में सुजाक द्यादि रोग हो जाने पर पुनः मूत्रमार्ग में प्रदाह हो जाना, उदर कृमि का प्रकोप, साक्षेप, हिस्टेरिया, सगर्मा वस्या, मल अथवा वायु के दवाव से मूत्रावरोध होना आदि कारणों द्वारा मूत्रावरोध हो जाता है। इस उपद्रव का उपचार करते समय मूल कारण को दर करने का भी प्रयत्न करना चाहिए।

यदि मल या वायु का दवाव हो तो उसे दूर करना चाहिए। यदि उदर कृमि के कारण हो तो उन्हें कृमिष्न औपिधयों द्वारा दूर करना चाहिए। शराब, विवनाइन, सोमरस आदि मिश्रित औपधों के अतियोग से हुआ हो तो उन्हें भी बन्द करा देना चाहिए। विवनाइन का अतियोग होने पर निद्रानाशक रक्त दबाव वृद्धि, घयराहट, मूत्रा-वरोध और मृतदाह उत्पन्त हो जाते हैं।

वृत्क प्रदाह अधिक हो तो मूत्र विरेचन नहीं दे कर स्वेद द्वारा रक्ष्त में से विप निकाल कर देना उचित होता है। मूत्राशय में भरा हुआ मूत्र रवर की नली के द्वारा निकाल देना समीचीन होता है। फिर आवश्यकतानुसार सौम्य, प्रदाहनाशक, मूत्र जनन औपधें दी जा सकती हैं। मूत्रावरोधनाशक चिकित्सा विधि (सरल परीक्षित)—

खस की जड़, गोखरू, जवासा, अनन्त मूल, खीरे के वीजों की गिरी, ककड़ी के बीजों की गिरी, शीतल चीनी और वरने की छाल, इन सवको समान भाग मिलाकर उसमें से १ तोला लेकर चटनी की भांति पीसकर गरम किए हए १० तोला जल में छान रोगी को पिला देवें। आवश्यकतानुसार 9-१ घण्टे के अन्तर पर इसी प्रकार इसे २-३ बार दिया जाना चाहिए। इस प्रकार करने से मूत्रदाह एवं मूत्रावरोध का कप्ट दूर होकर पेशाब जुल-कर आ जाता है और ज्वर भी कम हो जाता है। गोखरू २ तोला को कूचल कर एक पाव जल में क्वाय बना चतु-थाँग मेच रहने पर ४ रत्ती शिलाजीत या यवकार क्वाय में मिलाकर पिलाने से अथवा अनन्तमूल की चाय वनाकर पिलाने से उष्णता शमन होकुर मूत्र साफ आ जाता है। शोरा और नौसादर ३-३ मारो २० तोले जल में डाल फिर इस जल में दोहरा मुद्ध स्वच्छ वस्त [भगी-कर नामि के नीचे वस्ति स्थान पर रखने के आध धण्टे के मध्य पेशाव खुलकर उतर आता है। इस प्रकार से ही जिकनी पोता मिट्टी अथवा पीजी मिट्टी कुट पानी में आदे की भांति पतली लपनी सी बना, इसको बस्ति स्थान पर एक अ गुल मोटा लेप कर ऊपर से ऊनी कपड़ा लपेट देने

के आध चण्टे के मध्य पेशाव अच्छी प्रकार से आ जाता है। इसके अतिरिक्त पानी की चरफ कूटकर वस्त्र मे पोटली बना उसके वस्ति स्थान पर १५-२० मिनट तक फेरते रहने से भी पेगान बहुत अच्छे प्रकार से आ जाता है। साथ ही पेशाव के समय मूलेन्द्रिय का दांह आदि कव्ट भी दूर हो जाते हैं। यदि सुजाक रोग का होना हेतु हो तो चन्दन का तैन २ बूद बताशे मे भरकर देना उचित होता है अथवा सफेद चन्दन को चकले •

पर पानी मे घिसकर पिलाने से भी मूत्रेन्द्रिय प्रदाह शात

होकर मूत्र खुनकर था जाता है।

यदि शामवात रोग के हेतु से मूत्रावरीय हो तो प्रस्वेद अधिक आता है। उसके स्वेद मे एक प्रकार की दूर्गंन्ध आती है। ऐसा होने पर यवक्षाण, केले का कार, त्ण पचमूल के नवाथ मे मिलाकर देना थावश्यक होता है अथवा टेस् के फूलों के दवाथ मे शोरा कलमी ३ माशे मिला गरम-गरम जल मे वस्त्र होगाडोवकर वस्ति स्थान को बार बार सेकने से भी गीत से जकड़ने के कारण रुका पेशाय आधा घरटे के मध्य अवस्य उतर आता है। यदा-कदा म्त्रावरोध का उपद्रव अतीव कष्टकारी भय दूर तथा सत्काल प्राणहरण करने वाला दखा जाता है।

म्तावरोध होने पर तत्काल सावधानीपूर्वक उपयुक्ति लिखित उपचारों में से स्थिति अनुसार उपचार करना परमाश्यक है। आगा है चिकिन्सक बन्ध्र मेरे सूप-रीक्षित एवं स्वानुभूत प्रयोगों ने कवश्य लाभ प्राप्त कर मत्रावरोध वाले रोगियो के प्राप्त रक्षक वर्नेगे।

शास्त्रों में मुत्र का अवरोध होने से निम्नलिखित उपद्रवीं का हो जाना बतलाया गया है -नाभेरधस्तादाध्मान जनयेतीत्र वेदनम् ।

तन्म् न जठरं विद्याद् गुद वस्ति निरोधनम् ॥

-अाय्वेंद वृहस्पति आचार्य शी गिवकुमार वैद्य शास्त्री शिव चिकित्मात्य रावतपाडा, आगरा

पृष्ठ ६२ का शेपाश

चाहिए। अभ्यञ्ज तथा वस्ति देना चाहिए। एक अन्य योग इस प्रकार है, यथा-

नवार्थं गोक्षर वीजस्य विकार युत विवेत्। मूनहृत्त्वुं गॅहुज्ज्ञ्च पीत. शीघ्र विनाशयेत्।। अर्थात् गोक्षर का बनाय, यवाखार मिलाकर पीने से शीघ्र साराम मिलता है।

अश्मरीज मूत्रकुच्छम्य लक्षण-

अग्मरी हेतु सा पूर्व मूत्रकुच्छ्मुदाहरेत् ॥ वर्णात् जिन्हें अश्मरी रोग हो और मूत्रकृच्छ, हो जाय तब उसे अश्मरीजन्य मूत्रकृत्छ्र कहते हैं। इस रोग फे उत्पन्न होने पर बातज तथा कफज मूत्रकृच्छ् के समान

निकित्सा करनी चाहिए। तथा एक जन्य योग यहां देतेहैं-तक्रेण युक्तं शितिमारकस्य

बीजं पिवेत् कुच्छ विनाश हेतो ।

शितिवार के बीज का चूर्ण मट्ठे मे मिलाकर पीनें से यह दूर हो जाता है। म्लान म्लान स्वाप्त स्व स्वाप्त स्वाप्त स्व

वातादि दोषों के प्रकोप से जब वीयें में विकार ना जाता है तथा वीयं मूत्रमागं से निकलने लगता है तब मूत वीर्य के साथ कटट से निकलता है तथा मूत्राशय व मूत्र-मार्ग मे पीटा होती है। इसे मुक्कज मूत्रकुच्छ की संज्ञा दी गई है। इसमे शिलाजीत की मधु के साथ चाटने से यह रोग दूर हो जाता है।

छोटो इलायची, भूनी हीन और घृत के साथ द्ध पीने से मून तथा शुक्र के दीव शीघ ही नष्ट हो जाते है। कषायोडित बलामूल-"साधितोऽशेष कुन्छ जित"

अर्थात् कन्धी (वला) की जड का काढ़ा पीने से सब प्रकार के मूत्रकृच्छ दूर हो जाते हैं।

सव बाठ प्रकार के मूत्रकृत्लु को दूर करने के निम्न-विखित योग दिये जाते हैं—

१—लोह भस्म (बलानुसार) ५ रत्ती से २ मार्गा तक गहद हे साथ खूब मदंन कर खाने से मूत्राघात तथा दारुण मूत्रकृरछ, भी दूर हो जाता है।

र-गोवरू, एरण्ड म्ल, शतावर या कुश, काण, शर, उशीर और ईख की जड़ इन सनको समभाग मिला-कर पीने से दारुण मूत्रक्वन्छ, मूत्राघात आदि दूर होते हैं।

३--गोखरू, बमलतास का गूदा, दर्भमूल, घमासा, हरड, इन सबको समभाग लेकर ४ तीले का नवाथ करें तथा वनानुसार प्रातः पीने से अपमरी गौर भयदूर मूत्र-कुच्छ, भी दूर हो जाता है। तीव वेस मे आवश्यकतानु-सार २-२ घण्टे से नवाय पिलावें।

इस प्रकार हमने आठों प्रकार के मूत्रकुरळ, रोगो के लक्षण स्पष्ट कर इनकी प्रथक प्रथक चिकित्सा का दर्णन किया है। साथ ही सम्मिलित मूत्रकृष्ठ्र और सभी प्रकार के मृतकुच्छ्रो की चिकित्मा का वेर्णन किया है।

్ల్లు బ్లోకి
मूत्राघात, मूत्रनाण, मूत्र न बनना, आंग्ल भोषा में 'Anuria & uriné Supression' कहते हैं। इसमें रोग़ी को मूत्र उत्तरना बन्द हो जाता है। आयुर्वेदिक भौषधियां—

मूलाघात रोग में दोयों का विचार करके उसकी उम्रता के अनुसार मूत्रकृच्छ्र हर योगों का प्रयोग करना चाहिए तथा वस्ति, उत्तरवस्ति व एरण्ड तैल विरेचन देना चाहिए।

• १—कल्कमेर्वाहबीजानामक्षमातं सगैन्वनम् । धान्याम्लयुक्तं धीत्वैव मूत्राघाताद्विमुच्यते ॥ (भैषज्य रत्नावली, ३५ मूत्राघात चिकित्सा प्रकरणम्) ककड़ी के बीजों को ३ तोले भर लेकर पानी के साथ पत्थर पर पीसकर कल्क बना लेवें तथा इस कल्क को ४ तोले भर कांजी में मिश्रित करके ४ माशे भर सैंधव लवण चूणं डालकर पीने से मूत्राघात रोग से मनुष्य मुक्त हो जाता है।

२ - कोहड़े (सीताफल) के फल को पीसकर उसका ४ तोले भर स्वरस निकाल के छानकर उसमें ४ रत्ती यवक्षार (जवाखार) तथा १ तोले भर पुराना गुड़ मिली- कर पीने से मूलाघात; मूल गर्करा व अग्मरी रोग नष्ट हो जाता है। (भै० र० घलोक ३)

३—गोखल के पत्ते, फल बीर बड़ की समप्रमाण में.

पिधित कर २ तोले भर लेकर २ तोले पानी में क्वित करके चौयाई क्षेप रहने पर छानकर १ तोले भर शहद तथा २ तोले भर शकरा (चीनी) मिलाकर पीने से मूत्रा- घात रोग नष्ट होता है। (भै॰ र॰, रलोक ॰)

४—दिग्वी (कुन्दरी) लंता की जड़ को कांजी के

साथ पीसकर नाभि प्रदेश से वस्ति पर्य-त भाग पर लेप कर देने से मूत्राघात नष्ट होता है। (भी. र., श्लोक ६)

४—मूत्र के रुक जाने पर णिश्न के छिद्र में २ रती कर्यू र को महीन पीस कर प्रविष्ट करना चाहिए।

(मैं० र०, क्लोक ७)

६ अशोक के बीजों के चूर्ण को २ माशे भर लेकर शीतल जल के साथ पीने से मूत्राचात नष्ट होता है। ... (भै० र०, श्लोक ८)

७—शुद्ध शिलाजीत ४ रत्ती भर लेकर आधा तोले भर शहद तथा आधा तोले, भर शक्रेरा के साथ मिश्रित कर सेवन करने से मूत्र जठर और मूत्रातीत रोग, निष्ट होता है। (भै० र०, श्लो॰ १४)

तैलादि की मालिश, स्तेह्पान, जुलाब, वस्तिकमें, स्वेदन, जलक़ीड़ा, उत्तर वस्ति, पुराने लाल चावल, मठ्ठा, दुग्ध, दही, उड़द की दाल का यूप, पुराने सीताफल का शाक, परवल का शाक हरड़, अदरक, ये सब मूलाघात में हितकारी हैं।

ब्यायाम, अधिक मार्ग चलना, शीत में सोना, वैठना, भ्रमण करना, एक्ष भोजन, मैथून, मूत्राघात में वर्जित हैं।

प- मूनी के पत्तों के आधा सेर स्वरस में रे माशे कलमी शोरा मिलाकर पिलाने से शीझ ही पेशाव होने लगता है। (चिकित्सा चन्द्रोदय, सातवां भाग) होसियोपैथिक के प्राथं—

(१) कैन्छेन्स २ × इसकी सर्वोत्तम औपिध है।

के आध बण्टे के मध्य पेशाव अच्छी प्रकार से खूलकर सा जाता है। इसके सितिरिक्त पानी की बरफ कूटकर बस्त्र में पोटली बना उसके वस्ति स्थान पर १५-२० मिनट तक फेरते रहने से भी पेपाब बहुत अच्छे प्रकार से आ जाता है। साथ ही पेशाब के समय मूत्रेन्द्रिय का बाह आदि कच्ट भी दूर हो जाते हैं। यदि सुजाक रोग़ का होना हेतु हो तो चन्दन का तैल २ बूंद बताशे में भरकर देना उचित होता है अथवा सफेद चन्दन को चकले । पर पानी में घसकर पिलाने से भी मूत्रेन्द्रिय प्रदाह शांत होकर मूत्र खुनकर सा जाता है।

यदि शामनात रोग के हेतु से मुनावरीय हो तो प्रस्वेद शिक्षक बाता है। उसके स्वेद में एक प्रकार की दुर्गन्ध बाती है। ऐसा होने पर यवझार, केले का छार, तृण पंचमूल के क्वाथ में मिलाकार देना आवश्यक होता है अथवा टेसू के फूलों के दबाथ में शोरा कलमी ३ माशे मिला गरम-गरम जल में वस्त्र छोगाडोवकर वस्ति स्थान को बार वार सेकने से भी शीत से जकड़ने के कारण रुका पेशाव शाद्या घन्टे के मध्य अवस्य उत्तर जाता है। यदा-कदा मूत्रावरीय का उपद्रव अतीच कप्टकारी भयद्भर तथा सत्काल प्राणहरण करने वाला देखा जाता है।

मूत्रावरोध होने पर तत्काल सावधानीपूर्वक उपयुं क्त लिखित उपचारों में से स्थित अनुसार उपचार करना परमाध्यक है। आजा है विकित्सक बन्धु मेरे सुपरिक्षित एवं स्वानुभूत प्रयोगों ने अवज्य लाभ प्राप्त कर, मूत्रावरोध वाले रोगियों के प्राप्त सकक बनेंगे।

शास्त्रों में मूत का अवरोध होने से निम्नलिखित ं उपद्रवीं का हो जाना वतलाया गया है -

नाभेरधस्तादाष्टमानं जनयेत्तीव वेदनम् । तन्मूत्र जठरं विद्याद् गुद यस्ति निरोधनम् ॥ —आयुर्वेद वृहस्पति आचार्यं श्री शिवकुमार वैद्य शास्त्री शिव चिकित्सालय रावतपाड़ा, आगरा

※ पृष्ठं ६२ का श्रीपांश ※

चाहिए। अभ्यङ्ग तथा वस्ति देना चाहिए। एक अन्य योग इस प्रकार है, यथा—

नवार्य गोक्षुर बीनस्य य्वक्षार युतं विवेत्। मूत्रकृष्ठ्यं शकुष्णञ्च पीतः शोधं विनाशयेत्।। अयत् गोक्षुर का न्वाय, यवाखार पिलाकर पीने से-शीध्र साराम मिलता है। अग्मरीन पूत्रकृच्छ्रस्य नक्षणं—
 अग्मरी हेतु सा पूर्वं मूत्रक्रच्छमुदाहरेत्।।

अर्थात् जिन्हें अवमरी रोग हो और मूत्रकृष्छ् हो जाय तब उसे अवमरीजन्य मूत्रकृष्छ् कहते हैं। इस रोग के उत्पन्न होने पर वातज तथा कफज मूत्रकृष्छ् के समात विकित्सा करनी चाहिए। तथा एक अन्य योग यहां देते हैं—

तक्रेण युक्तं शितिमारकस्य

बीजं पिबेत् कृच्छ विनाश हेती।

शितिवार के बीज का चूर्ण मट्ठे में मिलाकर पीने से यह दूर हो जाता है।

मुक्ति मूनकृन्छ्स्य लक्षणं—

वातादि दोर्थों के प्रकोप से उस वीयं में विकार का जाता है तथा वीयं मूत्रमाणं से निकलने लगता है तब मूत्र वीयं के साथ कट्ट से निकलता है तथा मूत्राणय व मूत्रभाणं में पीड़ा होती है। इसे शुक्तक मूत्रकृत्छू की संज्ञा दी गई है। इसमें जिलाजीत को मधु के साथ बाटने से यह रोग दूर हो बाता है।

छोटो इलायची, मुनी हींग और घृत के साथ दूध पीने से मूत्र तथा शुक्र के दोप शीझ ही नष्ट हो जाते हैं।

कपायोडित वलामूल—"साधितोऽशेष कृत्छृजित" अर्थात् कन्धी (वला) की जड़ का काहा पीने से सब प्रकार के मूत्रकृत्छ दूर हो जाते हैं।

सव बाठ प्रकार के मूत्रकृष्ण को दूर करने के निम्न-विखित योग दिये जाते हैं—

- लोह भस्म (वलानुसार) ५ रती से २ माशा तक शहद के साथ खूद मदेन कर खाने से मूत्राघात तथा दोरुण मूत्रकृष्ट, भी दूर हो जाता है।

२ गोवरू, एरण्ड मूल, जतावर या कुश, काण, शर, उशीर और ईख की जड़ इन सबको समभाग मिला-कर पीने से दारुण मूत्रकुन्छ, मूत्राधात आदि दूर होते हैं।

रे—गोखरू, अमलतास का गूदा, दर्भमूल, धमासा, हरड़, इन सबको समधाग लेकर ४ तीले का क्वाय करें तथा बलानुसार प्रातः पीने से अश्मरी और भयद्धर मूत्र-कृष्ण, भी दूर हो जाता है। तीन वेग में आवश्यकतानु-सार २-२ घण्टे से क्याथ पिलावें।

इस प्रकार हमने आठों प्रकार के मूत्रकृत्छ रोगों के लक्षण स्पट कर इनकी प्रथक प्रथक चिकित्सा का वर्णन किया है। साथ ही सम्मिलित मूत्रकृत्छ और सभी प्रकार के मूत्रकृत्छों की चिकित्सा का वर्णन किया है।

मूत्राघात, मूत्रनाश, मूत्र न बनना, आंग्ल भाषा में 'Anuria & uriné Supression' कहते हैं। इसमें रोगी को मूत्र उत्तरना बन्द हो जाता है। आयूर्वेदिक औष्धियां—

मूत्राघात रोग में दोयों का विचार करके उसकी उग्रता के अनुसार मूत्रकृष्ठ हर योगों का प्रयोग करना चाहिए तथा वस्ति, उत्तरवस्ति व एरण्ड तैल विरेचन देना चाहिए।

१—कल्कमेर्वाहबीजानामक्षमातं ससैन्यवम् । धान्याम्लयुक्तं पीत्वैव मूत्राघाताद्विमुच्यते ॥ (भैषज्य रत्नावली, ३५ मूत्राघात चिकित्सा प्रकरणम्) ककड़ी के बीजों को २ तोले भर लेकर पानी के साथ पत्थर पर पीसकर कल्क बना लेवें तथा इस कल्क को ४ तोले भर कांजी में मिश्रित करके ४ माशे भर सैंधव लवण चूणें हालकर पीने से मूत्राघात रोग से मनुष्य मुक्त हो जाता है।

२ -- कोहड़े (सीताफल) के फल को पीसकर उसका ४ तोले भर स्वरस निकाल के छानकर उसमें ४ रत्ती यवक्षार (जगाखार) तथा १ तोले भर पुराना गुड़ मिली-. कर पीने से मूलाघात; मूल शर्करा व अश्मरी रोग नष्ट हो जाता है। (भै० र० श्लोक ३)

३—गोखरू के पत्ते, फल और वड़ को समप्रमाण में.

मिथित कर २ तोले भर लेकर ३७ तोले पानी में कवित करके चौयाई शेष रहने पर छानकर १ तोले भर णहद तथा २ तोले भर णकरा (चीनी) मिलाकर पीने से मूत्रा- घात रोग नष्ट होता है।

४—बिस्बी (कृत्दरी) लता की जड़ को कांजी के

साथ पीसकर नामि प्रदेश ते वस्ति पर्यन्त भाग पर लेप कर देने से मूत्राघात नष्ट होता है। (भी. र., श्लोक ६)

४—मूत्र के रक जाने पर शिश्न के छिद्र में २ रती कर्पूर को महीन पीस कर प्रविष्ट करना चाहिए।

(मैं० र०, इलोक ७)

५ — अशोक के बीजों के चूर्ण को २ माशे भर लेकर शीतल जल के साथ पीने रो मूत्राघात नष्ट होता है। ... (भै० र०, श्लोक ५)

७— गुद्ध शिलाजीत ४ रती भर लेकर आधा तीले भर शहद तथा आधा तीले, भर शकेरा के साथ मिश्रित कर सेवन करने से मूत्र जठर और मूत्रातीत रोग, निष्ट होता है। (भै० र०, श्लो॰ १४)

तैलादि की मालिश, स्नेह्पान, जुलाब, वस्तिकमं, स्वेदन, जलक़ीड़ा, उत्तार वस्ति, पुराने लाल चायल, मठ्ठा, दुग्ध, दही, उड़द की दाल का यूप, पुराने सीताफल का शाक, परवल का शाक हरड़, अदरक, ये सब मूलाघात में हितकारी हैं।

व्यायाम, अधिक गार्ग चलना, शीत में सोना, वैठना, भ्रमण करना, रूक्ष भोजन, मैयून, मूत्राघात में वर्जित हैं।

५— मूली के पत्तों के आधा सेर स्वरस में ३ माणे कलमी जोरा मिलाकर पिलाने से जीव्र ही पेशाव होने लगता है। (चिकित्सा चन्द्रोंदय, सातवां भाग) होसियोपैथिक जैन्दियां—

(१) कैन्येरिस ३ × इसकी सर्वोत्तम औपधि है।

—शेपांश पृष्ठ ६५ पर देखें।

कृतिः तिश्वस्य (विशेषसम्पादक)



यूरीभिया (Uraemia)—इस शब्द की ब्युत्पत्ति
यूरी, और ईिमया प्रव्द से मिलकर हुई है। यूरी से अभिप्रायः यूरिया तथा ईिमया, रक्त के लिए प्रयुक्त है। मूत्र
के लिए यूरीन शब्द अंग्रेजी में प्रयुक्त है क्योंकि मूत्र में
यूरिया काणी मात्रा में निकलता है। इसलिए मूत्रस्थ
यूरिया का रक्त में अधिक मात्रा में मिलना, यूरीमिया या
मूत्र की रक्त में विषायस्था या मृत्र विषमयता कहा जाता
है जिसका अभिश्राय शरीर की उस अवस्था से है जिसमें
स्वस्थ अवस्था में मन्न से निकलने वाले पदायं बाहर न
निकल कर शरीर में ही इक जाते हैं। वृक्क का मुख्य
कार्य गरीर के लिए अयोग्य पदार्थों को शरीर से बाहर
निकालना है, वृक्क के कार्य में गड़बड़ी व वृक्क के किसी
भी रोग में वृक्क की निष्क्रिता होने से दूषित पदार्थ मृत्र—
से न निक्ल कर जब रक्त में मिलते रहते हैं तो यह विष
युक्त अवस्था ही मूत्र विषमयता (यूरीमिया) कहलाती है।

कारण-

- (१) साजकल वृक्क की निष्क्रियता से होने गले बहुत से लक्षणों में इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। मूत्र में नज्ञजनीय पदार्थों का (यूरिया, यूरिकाम्ल, क्रेटी-नीन) अवरोध हो जाता है। वृक्कों का एक प्रधान कार्य भोजन तथा धातुओं के प्रोटीन पदार्थों के नाइट्रोजन और कार्वन के पाचन से छत्पन्न (Non Protein nitrogen) मल को जो रक्त में संचित होता रहता है, शरीर से वाहर निकालना है। मत्र से निकलने वाले नवजन की दैनिक मात्रा १८ ग्राम होती है, जिसमें से १५.४ ग्राम तो केवल यूरिया द्वारा शरीर से निकलता है। मूच द्वारा प्रतिदिन ३३ ग्राम यूरिया रक्त में से निक्तलता है। साधारणतः रुधिर में २० मिलीग्राम प्रतिशतक या वृक्कों में ५० मिली-प्राम प्रतिशत यूरिया भी होता है। यदि यह वढ कर ७० प्रतिशत हो जाय तो वह वृवक के राण होने का लक्षण है। १२ ॰ मि॰ ली॰ प्रतिशत हो जाय तो मूद्र विष संचार (uraemia) का सूचक होता है।
 - (२) वृक्कों का यह कार्य है कि शरीर में बढ़ें हुए अम्लों को मूथ द्वारा वाहर करते रहे, जिससे रक्त में अम्ल द्रव्यों की वृद्धि नहीं हो सकती। भोजन से प्राप्त होने वाले सोडियम, पोटेशियम, कैल्शियम, मैगनेशियम आदि रक्त को झारीय प्रकृति का बनाये रखते है। पर वृक्कों में Soda bicarb के विलीन न होने के कारण रक्त में उसके स्तर के गिर जाने से उसमें सोडियम, कैल्शियम की मात्रा कम हो जाने से तथा शरीर के जलीयांश के अधिक काधिक वाहर निकल जाने से (Dehydration) तथा पोटेशियम सल्फेट और फास्केट के रक्त में अधिक रक्त जाने से रक्त में विषमयता होने से मूल विषमयता कहते हैं।
 - (३) जीर्ण वृतकरोग, मधुमें ह जिनत वृदकरोग तया

्जीण वृक्काशय शोथ (Pyelonephritis) के हि उपद्रव रूप में भी यूरीमिया होता है।

- ्र (४) रक्त भार की वृद्धि से तथा मूत्रमार्ग में अवरोध तथा पौरुष ग्रन्थि वृद्धि से भी यह रोग होता है।
- (५) हृदय दौर्वत्य के उपद्रव रूप में तथा बहुम व्रता आदि में शरीर का अधिक जलीयांश निकल जाने से भी मूत्र विषमयता हो जाती है।

यह मूल विष्मांचार का रोग किसी विष-विशेष से होता है या अनेक स्वाभाविक एवं अस्वाभाविक आमद्रव्यों (Metabolites) की वृद्धि से भी होता है यह नहीं कहा जा सकता। इसलिए यूरीमिया शब्द एक अस्पष्ट शब्द है, जिसमें बहुत से लक्षणों का समावेश है जो कि रक्त की अवस्था पर तथा मस्तिष्क की रक्त वाहिनियों की अवस्था पर निर्भर करता है।

लक्षण-

वड़ी आयु के व्यक्तियों में पांडुता के साथ रक्त भार वृद्धि के लक्षण हों, विशेषतः राजि को मूल अधिक आता हो तथा १०० सी. सी. रक्त में २०० मि. ग्रा से अधिक यूरिया रहता हो जिससे मूल में यूरिया की मात्रा कम हो, मूल का आपेक्षिक भार कम हो तथा मूल में एल्ब्युमिन रवतकण, श्वेत कण जाते हों तो वृक्करोग का सन्देह करना चाहिए क्योंकि वृक्क जब तक अपने कार्यं को सुव्यस्थित रखते हैं तब तक शरीर के लिए अयोग्य पदार्थों का शरीर से निरन्तर निस्सरण होता रहता है पर वृक्क के रुग्ण होने से शरीर के दूषित पदार्थों को मूल द्वारा निस्सरण न होकर रक्ती में विलीन होकर विषमयता के लक्षण प्रगट होने लगते हैं।

(१) अन्न मार्ग पर दुष्प्रभाव—मूत्र विषमयता के प्रारम्भिक लक्षण बहुधा अन्नारुचि होना है क्योंकि आमाशय श्लेष्मकला के Oxyntic सैलों में यूरिया के द्वारा विश्लष्ट हो जाने से वहां जो अमोनिया उत्पन्न होता है उससे आमाशय का अम्ल क्षीण हो जाता है जिससे आगे चल कर जब क्षुधा घट जाती है तो शरीर की मांसक तु दृटने लगती है, क्षुधानाश के कारण तथा शरीर के प्रोटीन्स के खचे होते जाने से कृशता और निर्वेकता के लक्षण होते हैं। अते: धकावट यूरीमिया का सूचक लक्षण होता है। अम्लोन्सर्प (Acidosis) के कारण ग्लानि, मानसिक अवसाद

या औदासीन्य होता है और अन्त मार्ग पर विषमयता का दुष्प्रभाव होने से पहले अजीर्ण, अरुचि, वमन, अफारा, मलवन्ध आदि लक्षण होते हैं। रोग के बढ़ने पर प्रातः कालीन वमन के लक्षण भी होते हैं। जिल्ला शुष्क व मुख्यां और मुख से श्वास छोड़ने पर मुश्रवत् गन्ध आती है और मुख में धातु का स्वाद रहता है। आमाशय तथा आन्त्र की शिकायत जैसे तृपा, अरुचि, उत्वलेश, वमन तथा प्रायः हृदय के ऊपर ददं रहता है और अन्त में तीन्न अतिसार व असाध्य अतिसार (uraemic enteritis) का दौरा हो कर मृत्यु होजाती है। वृद्ध व्यक्तियों में कभी-कभी असाध्य वमन व अतिसार का आक्रमण हो तो अजीर्ण का सन्देह न करके वृक्क रोग का ही सन्देह करना चाहिए क्योंकि छोटी आत व बड़ी आतों में शोथ तथा यूरीमियाजनित वर्ण (uraemic ulcerative colitis) के कारण होने वाला अतिसार ही मारक होता है।

(२: मितिष्क पर दुष्प्रभाव-मस्तिष्क पर मूत्र-विषमयता का दुष्प्रभाव होने से तन्द्रालुता या तन्द्राव उदासीनता का लक्षण रहता है। रोगी को निद्रां प्रबंजता से दवा लेती है जिससे वह पहले ही खुरीटे लेने लगता है परन्तु शीघ्र ही नींद ट्ट भी जाती है और इस प्रकार रात में कई गार नींद आती है और टूट जाती है अयवा रोगी दिन में तन्द्रालु तथा रात को उन्निद्रा (Insomnia) रहता है या गोघ्र ही नींद आती है और फिर वह भीघ्र ही दूट भी जाती है जो मस्तिष्क के पोपण की न्यूनता को सूचित करती है। मस्तिष्क के पोषण में न्यूनता वाने से स्मृतिनाश, एक्। ग्रता की न्यूनता, आवेश, वेचैनी, क्रोध आदि मानसिक दुर्वेलता के लक्षण होते हैं। मेटाबो-लाइटों के इक जाने के कारण तन्द्रा, मुच्छी, मोह सन्यास की क्रमिक अवस्था को रोगी प्राप्त होने लगता है। संज्ञा-वाही नाड़ियों के अवरुढ़ होने से मूर्च्छा होती है। आचार्य सुश्रुत ने मूच्छी के लक्षण लिखते हुआ कहा है-

संजावहास्तु नाड़ीपु पिशिस्वनिलादिभिः। तमोऽभ्युपैति सहसा सुखदुखन्यपोहकृत्।। मोहो मूर्च्युंति तां आहुः

(३) नाड़ी मण्डल पर दुष्प्रभाव - रक्त में के लिसयम के न्यून हो जाने से अथवा बहुत सम्भवतः पोटासियम की वृद्धि से नाड़ी मण्डल पर दुष्प्रभाव से हाथ-पांच की अंगुलियों

मुख्य सेवा चिकित्सा

में स्ताम 'Cramp), कम्प, पेशियों में निपीलिका संचार (Tmitchia पिपीलिका संचारिमवाङ्ग-पू) तथा आक्षेप (Tetany), आखाओं में दर्द तथा आक्षेप (Convulsion) के लक्षण होते हैं। नाडियों पर दुष्पभाव से नाडी सूल (Neuralgia) हो सकता है। मन्तिष्क नाडी का पोषण न होने में शिरोध्रम तथा कर्ण दोप (Tannitis) के लक्षण होते हैं।

- (४) रक्त भार वृद्धि—इस रोग में रक्त भार वड़ा रहता तथा वही कई खरावियों का कारण होता है। रक्त- स्नाव के कारण हो नेत्र विकार, हृदय तथा मस्तिष्क विकारों की वृद्धि होती है। रक्त भार के कारण निरन्तर सिरदर्श वना रहता है। रक्त भार के चढ़ने से भी आक्षेप हो सकते हैं। पैरों में सुप्ति, वाह, वेदना और चमचमाहट के लक्षण होते हैं। वाम हृदय में रक्तभार वृद्धि जनित अतिवृद्धि होने के वाद जब कभी शक्ति से अधिक श्रम किया जाता है तो हृदयदौर्वस्य के लक्षण हो जाते हैं।
- (५) श्वसन संस्थान—श्वसन केन्द्र पर रक्त की अम्लीयता (Acidosis) का दुष्प्रभाव होकर यूरीमिया के कारण श्वास काठिन्य भी हो जाता है। इसके कारण रोगी को श्वास का सहसा होने वाला साक्रमण रात में होता है। रोगी श्वास लेने के लिए विस्तर पर बैठ जाता है परन्तु इसमें किसी प्रकार की नीलिमा नहीं होती तथा श्वास में प्राय: अस्पष्ट शब्द रहता है जो कभी सतत रहता है और कभी कभी कई सप्ताह तक। हिनका होती है या Chyne Stoke श्वास कई सप्ताह तक। हिनका होती है या Chyne Stoke श्वास कई सप्ताह तक। हिनका होती है या Chyne डिप्ट्रेस क्वास (Uraem'c Asthama) कहते हैं जो डायाफाम की मांसपेणी पर इस विपमयता का प्रभाव होने से होता है।
 - (६) रक्तवाहिनियों पर ढुण्णभाव-शरीर की समस्त रक्तवाहिनियों के कठोर होते जाने के कारण मांस और मेद दोनों कीण हो जाते हैं जिसमे शरीर कृश होता जाता है। मस्तिष्क तथा शरीर दोनों की कार्य शक्ति क्षीण होती है जिससे शीध्र थकावट होने का लक्षण हो जाता है तथा मानसिक मन्दता का एक्षण भी हो जाना है।
 - (७) पश्चिम दृष्टिपटल की रक्तवाहिनियों में सीणता के हो जाने से दृष्टिमन्दता का लक्षण भी होता है।
 - (०) तिचा पर दुष्प्रभाव—वृक्क रोग में त्वचा

सम्बन्धी शिकायते उपद्रव रूप में हो जाती हैं। त्यचा नाड़ियों के विक्षोभ से कण्ह, पामा, कोढ, विस्फोट, शीत पित्त, एन्जीमा आदि हो जाते हैं जो साधारण औए धियों से ठीक नहीं होते हैं। ये टांगों पर विशेष दीखते हैं। त्यचा शुक्त और यटियाने रंग की हो जाती है।

- (६) अतिकय रक्ताल्पना हो जाती है जिसका कारण अस्थि मज्जा के ऊपर विर्धेला प्रभाव है। मूत्रविप के कारण रक्तांवरोधना पर किसी प्रभाव से रक्तभार वंढ जाने तथा धमनी रोग के हो जाने से नासिका, दन्त, मांस, अन्नयागं, क्वास सागं, मूत्र मागं, त्वचा आदि से रक्त साव (Purpura तथा Petichiac) भी हो जाता है। वड़ी खायु में मस्तिष्क में रक्त साव होकर मृत्यु हो जाती है।
- (१०) रक्त में कैल्सियम और सोहियम के कम होज़ाने तथा पोटासियम के वढ़ जाने से हृदय-मांस के कार्य में क्षति हो जाती है, उसकी नियमित गति में विषमता आजाती है, अस्थियों में मृद्ता और शुष्कता का उपद्रव हो सकता है।

संक्षेपतः: चिरत्यायी वृक्क रोग के कारण धमनी रोग के हो जाने तथा रक्त में कुछ रासायनिक द्रव्यों के जमा हो जाने से उपरोक्त लक्षण होते हैं। निदान—

रोग की पहिचान—वृज्य की प्रारम्भिक निष्क्रियता को एक या दोनों वृक्कों की क्षमता योग्यता परीक्षणों से तथा मूत्र एवं रक्त में यूरिया की परीक्षा से रोग निर्णय किया जा सकता है—१२०-१५० मिलीग्राम प्रतिशतक रक्त यूरिया का होना रोग का निर्णय कर देता है । मूत्र में एल्ट्युमिन के साथ किसी भी प्रकार के छिलके (Casis) का होना वृक्क की विष्ठति व क्षति के सूचक हैं।

यूरिया की मात्रा को देखकर यूरीमिया का निदान किया जाता है जोकि दिना लेबोरेटरी के सम्भव नहीं। अतः यूरिया रोग के निदान के लिए आधुनिक पैथोटोजी की सहायता लेना नितान्त आवश्यक है क्योंकि मस्तिष्क और हुढ़ाहिनी संस्थान के अन्य रोगों में भी ये लक्षण मिलते हैं जोकि यूरीमिया में-पाथे जा सकते हैं। अतः धिंद रोगी को कम मात्रा में पेशाव उतरे और इसका विशिष्ट गुरुत्व कम हो तो इस रोग का सन्देह हो जाना चाहिए। तब मूत्र और रक्त में यूरिया की मात्रा का परीक्षण कर

स्वारोग चिकित्सा

इस रोग का निर्णय किया जाता है रक्त यूरिया के लिए रक्त परीक्षण नितान्त आवश्यक है। यद्यपि मूत्र में व रक्त में यूरिया का परीक्षण करना विक्वतिविज्ञान विशेषज्ञ का विषय है तथा आवश्यकता पड़ने पर रुग्ण को उन्हीं के पास भेजा जाता है तथापि पाठकों की सामान्य जानकारी के लिए यह यूरिया परीक्षण विधि का विवेचन प्रासंगिक है—

ं वृक्क की क्षमता का निर्धारण—सर्व प्रथम वृक्क के संतोषजनक-कार्य की जानकारी के लिए वृक्कों की क्षमता का सामान्य परीक्षण करते हैं। एतदर्थ वृक्क की मूत्र निर्माण की क्षमता को देखते हैं—१ मिनट में वृक्क ध्रमती गुच्छों में से १२० मि. लि. मूत्र छनता है। अतः कुल मूत्र निर्माम २४ घण्टे में १५०० मि.लि मूत्र निकलता है। यदि अधिक तरल पदार्थ खिलाने से मात्रा वढ़ जाती है तो वृक्कों का कार्य सन्तोपजनक मानते हैं।

यूरिया उरसर्ग परीक्षण—स्वस्थ व्यक्ति के वृक्क प्रति
मिनिट १ सी.सी. मूत्र छानते हैं। १ मिनिट में जो धमनी
गुच्छों से जो १२० मि.लि मूत्र छनता है उसमें से ५४
मि. लि. विलीन होजाता है। इससे पता लगता है कि वृक्क
१ मिनिट में ५४ सी सी. रक्त से यूरिया का उत्सर्ग करता
है। इसे वृक्क की यूरिया उत्सर्ग सामध्य नहते है। आदर्श
सामध्य—जिसमें वृक्क १ मिनिट में २ सी.सी. या इससे
अधिक मूत्र बना लेते है यह ६० प्रतिशत सामध्य है। यह
सामध्य यदि ४० या २० रह जाय तो वृक्क रुग्ण माने
जाते हैं।

परीक्षणं विधि—प्रातः रोगी को २ गिलास जल पिलाया जाता है, एक घण्टे बाद वह मूत्र त्याग करता है तो उसका मूत्र एकत (नमूना नं. १) किया जाता है। साथ ही रक्तयूरिया आकलन के लिए रक्त भी लिया जाता है। साथ फिर २ गिलास जल पिलाया जाता है और १ घण्टे बाद मूत्र त्याग करता है और फिर मूत्र जांच के लिये (नमूना नं० २) लिया जाता है तथा रक्त यूरिया की जांच के लिए रक्त भी लिया जाता है। जब मूत्र का उत्सर्ग २ मि. लि. या अधिक प्रति मिनिट होता है तो निम्निल लिया जाता है —

मूत्र आहित × मूत्र का यूरिया सान्द्रण सम यूरिया सान्द्रण

सायान्य रक्त यूरिया की मात्रा प्रत्येक १०० मि.लि. 'रक्त में ११-४० मि.पा. होती है। ६० मि.लि. ग्रा. यूरिया प्रति १०० मि.लि. रक्त से अधिक होने पर वृक्क का कार्य सन्तोपजनक नहीं है एवं वृक्क क्षति का द्योतक है।

तीव मूत्र विषमयता (Acute uraemia) — कभी-२ तीव उपसर्गों से खयवा भारी घातुओं के उपयोग और उनकी विषायता तथा इन्ट्रावीनस पायलोग्राफी व तीव वृषक भोथ एवं गवीनियों के अवरोधस्वरूप वृष्क की गुण्छिकाओं से मूत्र की माना कम छनने से अमूबता (Suppression of urine) होकर अल्पमूत्रीय तीव मूत्र-विषमयता हो जाती है तथा ज्यों ज्यों वृषकों में आधात वहता है त्यों त्यों रोग के लक्षण तीव गित से बढ़ते हैं—

वृक्त शरीर के मलों को विसर्जित करने वाले प्रमुख यन्त्र हैं। अतः वृक्तों की क्रियांशीलता में कमी आने से दूषित पदार्थों के रक्त में मिलने से रक्त वाहिनियों में परिवर्तन होता है। वाहिनी की भित्त में अपजनन अन्य परिवर्तनों के पीछे इन मांस स्तर में अतिवृद्धि होने से वाहिनियां मोदी हो जाती हैं तथा रक्तचाप बढ़ जाता है तथा घीरे-घीरे रक्तचाप बढ़ता है तो वृक्कों की छानने की क्रिया बढ़ती है पर वृक्त रुद्ध होने के कारण मल पटार्थों का उत्सर्ग नहीं कर पाते हैं और रक्तता के साथ दौर्यल्य, स्नायुपेशी विद्यति, रक्तसाव के लक्षण होते हैं। सायुर्वेद की हिण्ट से सर्वाङ्ग शोय, अग्निमान्द्य, अरोचक, ध्रम, मूच्छी, संन्यास, प्रमेह और वातव्याधियों का 'एक साथ प्रकीप होता है—

गुदे (वृत्कयो) हृदि शिरसि [अंसे पृष्ठे ममँसु चौत्यिताः। सोपद्रवा दुर्वासाग्नेरातुराः परिवर्णयेत ॥

जव तक वृक्कों की क्रिया से साधारण गड़वड़ी रहती है कोई लक्षण नहीं मिलते पर घीरे घीरे गड़वड़ी की बढ़ी हुई अवस्था होने पर रक्तचाप गढ़ जाता है. और वही इन सब खरावियों का कत्तां होता है। वृक्क क्रिया का पतन (Renal Failure) कहीं घीरे घीरे और कहीं द्रुतगित से हुआ करता है। कभी वृक्क क्रियाधाल विना लक्षणों के भी वर्षों तक चलता रहता है जिसे गुण्त पूरी- मीया कहते हैं तथा कभी कभी वृवक क्रियाधात वड़ी तेजी से होता है।

वृद्ध के बहुत से रोगों में शिर दर्दे होता है निशेषतः जिसकी समाप्ति यूरीमिया में होती है तथा इसका प्रमुख् कारण रक्तचाप वृद्धि पाया जाता है। बड़ी आयु में प्रायः शिर दर्द का रहना, नींद का न आना, तुरन्त जग जाना, व रात में कई बार निद्धा आना और जगजाना वृद्धशोथ के ही कारण होता है जिसमें यूरीमिया ही प्रमुख कारण बनता है। रक्तकाब होने लगता है—नकसीर होना प्राथमिक नक्षण है तथा मस्तिष्क का रक्तकाब प्रायः मृत्यु का कारण बनता है।

चोट लगजाने से कटी हुई ऊतकों का नतंजन भी वृषकों द्वारा हो छनता है। यदि वृषक पहले से ही रुग्ण हों तो यूरिया की मात्रा प्रतिदिन ४० से १०० मि. ग्रा. तक बढ़ती है। इसी प्रकार सीरम पोटाणियम प मि.ली. २९ प्रति लिटर तक वढ़ता है तो हृदय की क्रिया पर आधात होता है और हृदय की गति विषम होजाती है।

श्वासावरोध-पहले यह केवल श्रम से होता है, इसके साथ वामाक्षेपक कोष्ठ असिवृद्धि भी होती है तथा फेफड़ों में भी होने से श्वास कष्ट बढ़ जाता है। अम्लोरकर्ष की वृद्धि से ग्लानि और मनोवि भ्रम बढ़ता है स्मृतिभ्रंश तथा स्वभाव में चिड़चिड़ापन होजाता है, श्रम, चनकर आना नथा नाना प्रकार की नवं-वेदनायें होती हैं। एल्ब्युमिन्यूरिया के कारण रेटिना में शोथ, पेपीलायटिस, अग्नि की ज्वाला के समान रक्तमाव, अपजनन का छोत्र श्वेत रहता है, घमनियों में भी परिवर्तन हिंदगोंचर होता है। रोगी काम कग्ता रहता है तथापि शारीरिक और मानसिक शक्ति कम हो जाती है, मांसपेशियों तथा त्वचा के निचले तन्तुओं में क्षीणता होने लगती है।

जीणं मूत्रविषमयता (Chronic uraemia) जब वृत्क की किया या बनावट के विकार के कारण यह विगड़ जाता है तब शरीर के निकले नत्रजनीय पदार्थ को शरीर से बाहर करना, अम्लीय पदार्थ, अधिक शर्करा को रक्त में से बाहर करना, उचित मात्रा में लवणों को शरीर में रखना आदि वृद्ध के सामान्य स्वाभाविक कार्यों में गड़- गड़ी होने लग जाती है। जब गड़बड़ी साधारण होती है तो

कोई उपद्रव नहीं होते पर मूत्र की संक्रेन्द्रण की शक्ति घटती जाती है और बहुत मात्रा में मूत्र त्याग होने लगता है जिसका विशेष घनत्व १०१० से १०१२ तक ही रहतां है पर रात में यह संकेन्द्रण कम हो जाने से रोगी रात में कई बार मूत्र त्याग करता है तथा मूत्र की परीक्षा करने पर इसमें एल्ट्युमिन पाया जाता है. रक्तचाप बढ़ा हुआ रहता है जो धीरे-धीरे बढ़तां रहता है जिससे बुक्कों में खरावी रहती है। कई प्रकार के मेटावीलाइट संचित होकर रोग की वृद्धि करने लगते हैं जिसके कारण-क्ष्मानाश, मुखपाक, अतिसार, वमन, काश्यं, दौवंत्य आदि लक्षण प्रारम्भ में होते हैं पर रोग की लाक्षणिक चिकित्सां से ही रोगी को यत्किञ्चत स्वास्थ्य लाभ होते रहने से रोगी व चिकित्सक का घ्यान इस ओर नहीं जाता है और धीरे-धीरे मूत्र के विकातीय पदार्थ रक्त में मिलंकर जीणं विषमयता (Chromic uraemia) बनता है। जीण मूत्र विष्मयता में हृदय की बड़ा आघात लगता है जिसका मुख्य कारण रक्तचाप वृद्धि तथा गौण कारण रक्तक्षय व अन्य उपसर्ग हैं।

रक्त दाव के कारण हृदय और मस्तिष्क, में भी विकार उत्पन्न होते हैं। हृदय निपात (Heart Failure) की सम्भावना बढ़ जाती है। रक्तक्षय व हृदयघात, यृरिया आदि मेटावोलाइटों के एक जाने के कारण रोगी को क्षीण करते जाते एवं संज्ञाताही नाड़ियां अवरुद्ध होने लगती हैं और रोगी मानसिक अवसाद औदासीन्य, शंकालुता, मोह, मूच्छी को प्राप्त होता है।

संक्षेप में इस रोग के प्रमुख कारणों में अति रक्तदाव तथा मेटावोलाइटों के संचय के कारण अन्नमार्ग, श्वसन संस्थान, रक्तवाहिनियों तथा त्वचा और नाड़ी मण्डल, मस्तिष्क पर जो दुष्प्रभाव पड़ता है उनका विस्तृत वर्णन पीछे लक्षणों में हम कर आये हैं। अन्य ग्रन्थकारों के मत—

यूरीमिया के निम्न भेद किये जाते हैं

ह्दय नैर्वेल्यता जनित मूत्र विषमयता—तीन्न अतिसार अति वमन, हृदयदीर्वल्य आदि वृदकों का साथ न मिले तो वृत्कों का कार्य वन्द (Nitrogen retention) हो जाता है। इस अवस्था को Pre-renal uraemia

युमा योगा चितिन्द्रमा

कहते हैं तथा पौरुष ग्रंथि वृद्धि, वृदक की अस्मरी व गर्भा-, शय के कैंसर के कारण मूत्रमार्ग के अवरोध होकर जो मूत्रविषमगंता होती है उसे Post-renal uraemia कहते हैं, यह जबस्था असाध्य ही समझी जाती है।

कुछ विद्वान वास्तविक (Genuine) और प्रावेगी (Convulsive) भेद से दो प्रकार का मानते हैं। वास्त-विक यूरी भिया में गस्तिष्क, महास्रोतीय तथा हृदय-फुफ्फु-सीय, विकारजन्य लक्षण होते हैं तथा प्रावेगी यूरी मिया वास्त-विक यूरी भिया से अलग होता है। यह वृक्कों की क्रिया असफलता व नाइट्रोजन युक्त द्रव्यों के संचय पर निर्धर नहीं करता बिक रक्तक्षय वृद्धि और मस्तिष्क शोथ के कारण होता है जिससे अपस्मार की तरह प्रवेग (झटके) साते हैं तथा रोगी गहन तन्द्रा में हुव जाता है। जिल्ला-

यदि यूरीमिया की चिकित्सा सम्यग् निदान कर हढ़ता से रोग के लक्षणों व चिन्हों को ध्यान में रखते हुए की जाय तो सफलता सम्भव है, पर खासकर यदि गुच्छ-नलकीय शोफ के कारण यूरीमिया हो तो वह असाध्य ही याना जाता है। किन्तु यदि कहीं गूत्र मार्ग में अवरोध हो तो मूत्रमार्ग की बाधाओं को दूर करना ही इसकी चिकित्सा है। वायुर्वेद के मूत्राधात में मूत्र प्रवर्तक योग इस रोग में लाभदायक हैं। यूरीमिया की प्रारम्भ में वही चिकित्सा है जो इन्दरस्टीशयल वृक्क शोथ की है। विपैत पदार्थों को मूत्र द्वारा बाहर निकाल देना या वहीं नष्ट कर देना चाहिए। इस रोग के कई लक्षण रोगी को वड़ा कष्ट देते हैं। अजीण, अनिद्रा, हिक्का, श्वास कुच्छूता, मूत्राधात, रक्त-चाप वृद्धि आदि के लक्षणानुसार चिकित्सा व्यवस्था की जाती है।

लक्षणानुसार चिफित्सा—

(१) अजीर्ण — यूरीमिया की स्थिति में रोगी कुछ भी पना नहीं पाता, विपाक्तता के कारण भूख भी नहीं लगती तथा जो भी खाना दिया जाय, वमन करके सतट देता है। अन्नाक्षि द वमन के लिए मुख से पानी न देकर ५ प्रतिशत हैक्सट्रोज सहित नारमस सैनाइन को ४-६ शोंस की मात्रा में चार-चार घन्टे के बाद गुदामार्ग द्वारा देना चाहिए या ९० प्रतिशत ख्तुकोज के नार्मल संनाइन के घोल को शिरामार्ग द्वारा देने से भी अन्नाक्ष्त्र और

वमन के लक्षण गान्त होते हैं। १ औस जल में १ ड्राम ग्लूकोज मिलाकर ऐसे २ झाँस जल के पिलाने से भी वमन गान्त हो जाती है।

आयुर्वेद में — यवसार ४ रती शीसल जल से यां गोसु-रादि वनाथ से देने का विधान है। मधुर सार (सोडा वाई कार्व), नौसादर, कलमीशोरा २-२ रत्ती अथवा श्वेत पर्यटी गुरूच्यादि अर्क व गोक्षुरादि बवाथ से देने से भी उषद्रव शान्त हो जाते हैं। आरग्वधादि अवसेह भी उत्तम लाभदायक है।

(२) रक्त में मूटा विषमयता को पूर करने के लिए स्वेद देना चाहिए। इसके लिए शरीर पर गरम सेक और गरम वाष्प देनी चाहिए। आचार्य चरक स्वेद की उपयोग्धाता के सन्दर्भ में लिखते हैं—अग्निदीप्ति मार्वंबं त्वस्प्रसादं भक्तश्रद्धा स्रोतसोनिर्मलत्वम्। कुर्यात् स्वेदो जाङ्ये-यतन्त्यापहारमुस्तव्धात् सन्धींश्चेष्टमत्थाश्रुचास्य।।

अतः इस रोग में स्वेद का वड़ा महत्व है, फ़ैंबल इसिलये नहीं कि स्वेदन से यूरिया पसीने से निकल जाता है विक्त वृदक को भी उत्तेजना मिलती है और वृक्कों के कार्य में सुधार होता है। गरम पानी की वस्तियां भी दी जा सकती हैं पर तीन्न विरेचन नहीं देना चाहिए वर्यों कि इससे रोगी को निर्वलता आती हैं।

पाईलोकारपीन को भी स्वेद के लिये बरतते हैं पर इसे अधिक देर तक नहीं बरतना चाहिये। क्योंकि यह अवसाद करती है। वृक्क पुरुषों में रक्तभाराधिक्य हो तो रक्त मोक्षण करके (१/२ से १ पाइन्ट). रक्त निकालना चाहिए, वक्षतें रक्त न्यूनता न.हो। शिरामोक्षण व विरेचन से जो गारीरिक दुर्जनता होती है वह ग्लूकोज सैलाइन देने से पूर्ति हो जाती है। रक्त यूरिया के बदले तथा हीमोग्लोकिन घटने से उत्पन्न पाण्डुता (Anaemia) के लिए Vitamin B12 दिया जाता है तथा रक्तस्राय के लिए Vitamin C 200mg दिया जाता है। आयुव्वेद के मुक्ता, प्रवाल, अकीक पिष्टी के योग रक्तस्राव की अवस्था में लाभदायक रहते हैं। रक्तदान (Blood Transfusion) भी सामयिक लाभ करता है।

शायुर्वेद के - शिलाजित्वादि सीह का गोक्षुरादि क्वाय से देने का विधान है। सवंतोशद्र वटी (स्वणं, रोप्य, अम्नक, स्वणंमाक्षिक गन्धक, शिलाजीत समभाग वरुण क्वाण की भावना देकर गोली वनावे) को गोक्षुर के स्वाय से देते हैं।

- (३) अनिद्रता, व्याकुलता, श्रीरशूल, श्रिक्तमाराधिक आदि उपद्रवों को दूर करने के लिए Ismelin or Aldomet सादि का प्रयोग विशेष लाभदायक माना जाता है। आयुर्वेद के वृहद वात चिन्तामणि रस, चिन्तामणि चतु-मुंख रस व कृष्ण चतुर्मुख रस के प्रयोग उक्त उपद्रवों को शान्त कर वलवृद्धि भी करते हैं।
- (४) श्वासकृष्ट्रता के लिए, जो रक्त में क्षार की न्यूनता से होती है, सोडा बाई कार्व ३ ग्राम रोज, तब तक दिया जाता है जब तक कि मृत्र की अम्लीयता न रहे तथा कोई शामक औषधि लार्जे किटल आदि देते हैं।

आयुर्वेद में सितोपनादि चूर्ण 9 माशा में अश्रक भस्म 9 रती, यवझार २ रती देने से इस कष्ट की निवृत्ति होती है तथा छाती पर महानारायण तैन मदन कर स्वेदन देना भी नाभदायक है।

(५) हिनका मूत्र विषमयता का भयद्भूर लक्षण है। सावसीजन देने से या Chlorpromazine 50 mg, की माना में व Promazine Hydrochloride ५० मिली. माना में दिन में तीन बार देने से यह ठीक होती है।

वायुर्वेद में स्वणंभस्म, मुक्ता, लौह, ताम्र भस्म समभाग (१-१ रती) को महु से चटाकर ऊपर से विजीरा नीतृ का रस ने काला नमक और मधु मिलाकर पिसाने से हिएका का सद्य: शमन होता है। मयूर चन्द्रिका मस्म भी मधु से दिना लामदायक है। इलायची चूर्ण लीर मिश्री मिलाकर व यवक्षार मिश्री मिलाकर खिलाकर ऊपर से गरम जन पिलाने से सद्य हिक्का शान्त होती है।

- (६) मूत्र विषमयतां जनित छल्ली (Tetgmy) और स्नम्ब (Cramp) रोग के लिए Calcium Gluconate का ९ प्रतिगत घोल ९ -२० ची.सी. की माला में गिरा द्वारा दिया जाता है तथा विटामिन 'डी' का प्रयोग करते हैं।
- (७) त्वचा पर होने वाली कण्डु को Engotamine आधा निली. की मात्रा में देते हैं। पुननेवा गुग्गुल तथा वारोग्यवधिनी बटी का प्रयोग लाम करता है।
- (=) नुप्तावरोध की स्थिति यूरीमिया में रहती ही है तयां मूत्रल दर्धों के प्रयोग करने आवश्यक रहते हैं, पर इन रोग में पारदीयं मूत्रल योगों का प्रयोग करने से वृक्कों की बढ़ा नुकसान पहुँचता है। मृत्रल योगों में गेली-

पैथी में लैसिक्स और आयुर्वेद में श्वेत पर्वटी प्रशस्त योग है। गोक्षुरादि गुग्गृल, गोक्षुरादि क्वाथ, तृण पंचमूल क्वाथ व धान्य पञ्चक क्वाथ के प्रयोग भी हितंकर हैं।

- (१) मूत्रावरोध की स्थित में अम्लोत्कर्प तथा यूरिया वृद्धि की स्थिति घातक होती है। उसके लिए स्वस्थ गोलर लैक्टेट सौल्यूशन का प्रयोग किया जाता है। इसके एक लिटर तरल के देने से ३४० मिलि. ५ प्रतिशतक सोडियम फार्वोनेट यनता है जो अम्लोत्कर्प को निष्क्रिय कर देता है।
- (१०) जलाभाव (Dehydration) के कारण वृक्षों की क्रिया असफल होकर यूरीिमया उत्पन्न हो गया हो तो ऐसी अवस्था में सिरामार्ग से ड्रिप विधि द्वारा तरलों के उपयोग से यूरीिमया से रोगी मुक्त हो जाता है। जलाभाव की हर स्थिति में सैनाइन य ग्लूकोज सैलाइन का प्रयोग रोगी को जीवनदान देता है। रोग के भीषण सक्षणों के वचने के लिए रोगी को खतरे से बाहर करने के लिए आधुनिक अस्पतालों में रोग के लक्षणों की स्थिति के अनुसार अधीलिखित प्रयोग सैलाइन के माध्यम से रोगी पर किये जाते हैं—

यूरीमिया में सिरा द्वारा तरल बटकों का प्रयोग प्रयोगशाना द्वारा निम्न परीक्षणों का ज्ञान कर तदनुसार प्रयोग किया जाता है—

- (१) रक्त में बलीराइड और सोडियम की कमी में— नार्मल सोडियम क्लोराइड सैलाइन.।
- (२) अम्लोत्कर्ष की वृद्धि रोकने हेतु स्विस्य मोलर सोडियम लैक्टेट की बोतल चढ़ाना।
- (३) अल्ब्युमिन की कभी दूर करने हेतु—रक्ताधान । या प्लाज्मा व सीरम अल्व्युमिन चढ़ाना।
 - () गूत्रराधि वड़ाने व यूरिया निर्हरण हेतु— हिस्टिल वाटर में १ प्रतिगत ग्लूकोन चढ़ाना ।

उपरोक्त तरल घटकों को प्रतिदिन १ से २ लिटर तक जिरामार्ग से ड्रिंप विधि द्वारा दिया जाता है जिससे मूत्र मात्रा की वृद्धि होकर रुकी हुई नाइट्रोजन युक्त उपद्रवों की तीव्रता घट जाती है। रोगी को तीव्र वयन व तीव्र अतिसार के बाद मुच्छां आ जावे तो ग्लूकोज सैलाइन की वोतल चढ़ाना जीवनदान का काम करती है जो सोडियम की कमी को दूर कर अमृत का काम करती है।

— योपांग पृष्ठं १'२४ पर देखें।

म्यक्च्छ्, स्जाक और अध्मरी पर अनुभूतयोग

आचार्य श्री रघुवीरणरण शर्मा आयुर्वेद वृह. (डी.एस-सी.ए.) डी १४० भजनपुरा, दिल्ली-५३

(१) केन्यारिस ३०×१ दिन में ४ माता । अनुपान पानी से।

लाभ—मूत्राघात, मूत्र छच्छू और पथरी को निष्ट करता है परन्तु छोटी हो।

- (२) हजरलयहूद दूसरा नाम बेर पत्थर। इसको इमामदस्ता में कूट लो। फिर घीग्वार के पट्टे में या मूली के रस में मिलाकर मिट्टी के कुत्हड़ में रख कर कड़ों की आग से फू क लो। २-३ वार में भस्म वन जायेगी। फिर शीशी में भर कर रख लो। इसमें से ४ रत्ती खीर २ रत्ती यवक्षार या नौसादर मिला कर दिन में २-३ वार पानी से लें, छोटी पथरी कुछ दिनों में गलकर निकल जायेगी । पदि पानी के वजाय गोखरू के काढ़े से सेवन करें तो खिक लाभ होगा।
 - (३) आयोवाण वटी, सिद्ध भैषज्यमणिम्ला— भानुभागमयो वाणं सर्ज सागर भागिकम्। कृत्वापेहर तैलेन वटी वन्धयमाषकीम्।।

१२ भाग कीड़िया लोवान, ४ भाग सफेद राल—इन दोनों का सूक्ष्म चूर्ण कर के चन्दन के तेल में घोट कर १-१ माशे की गोली बना शीशी में रख लो। मात्रा—१ गोली २-३ वार दिन में शर्वत मीठा अनार के साथ।

लाभ — सूजाक, मूत्रकृच्छ, पेणाव में जलन में लाभ करता है।

(४) स्तम्भन चूर्ण अकरकरा २० माथे तुख्मरीहा २० माथे, मिश्री २७ माथे।

मात्रा और अनुपान—माला । माशे अनुपान पानी से प्रातः सायम् । गुण-स्वप्न प्रमेह, लाला प्रमेह, शुक्र प्रमेह, और शीझपतन में लाभ होता है। यदि रात को मैथुन से पूर्व सेवन करें तो शोध वीर्यपात नहीं होता।

(५) कपूर वटी कपूर १ तीला, त्रिफला म तोला, पुराना गुड़ तीन वर्ष का ६ तीला। पहिले त्रिफला का कपड़छन चूर्ण करलें। वाद में कपूर को चूर्ण में मिलाकर खरल में मदन कर लो। जब कपूर विलक्षल मिल जाय

तव उसमें गुड़ को मिलाकर खरल में घोट कर ६-६ रत्ती की गोली बनाकर शीशी में भरकर रख लें।

मात्रां भीर अनुपान—् १-१ गोली जल के साथ प्रातः सायम् सेवन करे। यह स्वप्न प्रमेह की उत्तम औपिध है।

पथ्य — गुड़, तेल, खटाई, ब्रह्मचारी रहें। आभा खुणें — सिद्ध भैपज मणिमाला —

- (६) वबूल की उत्तम छाल, ववूल का गींद, वबूल के फूल और ववूल की कच्ची फली इनका चूर्ण वनां कर रखलें। में इसमें ववूल की पत्ती भी मिलाता हूं। मात्रा— ३ माशे। अनुपान जल ताजा प्रातः सायम्। इससे प्रमेह और स्वप्न प्रमेह में लाभ होता है। यदि पूयमेह (सुजाक) में देना हो तो दूध की लस्सी के साथ दें।
- (७) जामुन की मींग का चूर्ण करके रखलो। मात्रा २ माशे अनुपान जल से। इसंसे मधुमेह में लाभ होता है और अंतिसार में भी।
- (न) माजूफल, पपरिया कत्था, असली वंशलोचन और छोटी इलायची के बीज प्रत्येक १-१ तोला। इन सबका चूर्ण करके इसमें २॥ तोला चन्दन का तेल मिला कर रखलें। मात्रा १॥ माशे प्रातः सायं। अनुपान गर्मियों में चीनी का शर्वत और जाड़ों में कन्चे दूध से लें।

गुण- सुजाक में अच्छा लाभ करता है। मूत्र कव्ट से आना, जलन होना और प्यास शरीर की दाह को णांत करता है।

- (६) १ तोला सफेद चन्दन का बुरादा रात को पानी में भिगो दो। सबेरे उस में २ तो॰ चीनी मिलाकर पीवें। इससे मूल कुच्छ, में लाभ होता है साथ ही पिपासा और दाह को भी नष्ट करता है। यदि इसमें १ वृद चन्दन का तेल मिला दें तो अधिक लाभ होता है।
- (१०) खरवूजे के छिलके का क्षार, यवक्षार, तिल का क्षार और अर्कक्षार इनको मिला घोटकर शीशी में रखलें।

मात्रा-४-६ रत्ती अनुपान गोखरू का काढ़ा अभाव

स्वा शेवा शिक्टरमा

में ताजा पानी प्रातः सायम् । गुण मूत्रकृष्ठ, वात गुल्म सौर अश्मरी में अनुभूत है । पुनश्च-वात गुल्म में दशमूल का क्वाय आवश्यक है ।

(१९) गोक्षुरादि चूर्ण-गोखरू छोटे, आमला और गिलोय तीनों १-९ तोला। इनका सूक्ष चूर्ण करके रखलें ! माश्रा—३ माश्रे। अनुपान ताजा पानी प्रातः सायं ! गुण-स्वप्न प्रमेह की अन्यर्थ औपिध।

(१२) गोखरू, ताल मखाना, सफेद मूसली, कवांच के बीज, खरैटी के बीज, खतिबला, कंघी के बीज हरेक समभाग। इनका सूक्ष्म चूर्ण करके रखलें। (शाङ्किषर)

माता-४ मात्रे । अनुपान दूध प्रातः सायं । यदि इसमें १ रत्ती बङ्ग भस्म भी मिलालें तो अधिक लाभ होगा ।

गुण—वल वीयंवर्धक है। प्रमेह को दूर करता है।
स्वप्त प्रमेह में भी लाभ करता है। पुनश्च—अधिक रित के निमित्त रात को सोते समय उप्ण दूध से लेना चाहिए। चूर्णमिवंपयसानिशिषेयं यस्यगृहे शतभ्रमदामस्ति।

—शाङ्गंधर।

(१३) ववूल की कच्ची फली का चूर्ण और मिश्री या चीनी समभाग मिलाकर शीशी में रखलें। माला-४ माशे। अनुपान जल प्रातः सायं दो नार-इससे प्रमेह में लाभ होता है। शुक्र तारल्य (वीर्य का पतला होना) और थोड़ी सी उन्लेजना पर जिनका वीर्य स्नाव होता है उनके लिये महोपधि है।

(१४) गूलर के कच्चे फलों को मुखाकर चूर्ण करलें।

माता—दो माणे। इसमें १ रती उत्तम लोह शस्म
मिलालें। अनुपान मधु अभाव में पानी प्रातः सायम्। यह
उदंक मेह (मूत्र का अधिक आना) की उत्तम औषधि है।

(१५) बिल्व पत्र का रस २ तोला में मधु मिला-कर सेवन से मधुमेह में, इक्षुमेह में और शीतमेह में अच्छा लाभ होता है। वेल के पत्तों में पानी के छींटे देने पड़ते हैं तब रस निकलता है।

(१६) गुडमार वूटी प्रसिद्ध है इसका चूर्ण १॥ माशे पानी से प्रातः सायं दोनों समय। इसके सेवन से २-३ विन थें निश्चित ही शर्करा कम हो जाती है।

पुनश्च-में गुड़मार और जामुन की गिरी दोनों को मिलाकर देता हूं, रोग दवा रहता है। इसके अतिरिक्त

केले का रस भी शर्करा कम करता है।

- (१७) ज्यम्बोलिनम् ३० × होमियोपैथिक है इसकी दिन में २-३ माना के सेवन से भी लाभ होता है।
- (१८) नेट्रमसल्फ ६× नेट्रम फास ६× वायोकैमिक प्रतिदिन एक को प्रातः व दूसरी शाम को कुछ महीनों तक सेवन से मधुमेह में काफी लाभ होता है।
- (१६) धाती रसायन (स्वयं आविष्कृत)-पके आमलों का रस ५ सेर, शहद ३ सेर, धाय के फूल ६० तोला इनको मिलाकर चीनी के पाल में या मिट्टी के चिकने पाल में जैसे दूध चलाने की चलावनी में भर कर मुख बन्द कपड़ मिट्टी करके उसमें एक महीना रखदें या जमीन में दाव दें। एक मास बाद छानकर बीतल में रख लें।

मात्रा—१॥ तोला, समान भाग जल मिलाकर भोजन के बाद दोनों समय लें।

गुण—रसायन है। कफमेह, पित्तमेह, मधुमेह, प्रदर, रक्त प्रदर, अम्लिप्त, पांडु रोग, कामला, शुक्रतारल्य (वीर्यं स्नाव) सुबको दूर करता है। यह प्रयोग मेरा आवि-ण्कृत है, मैंने बहुत वर्ता है उत्तम योग है।

- (२०) आमले का रस २ सेर निकाल कर किसी मिट्टी के पात्र में या चीनी के पात्र में रख दें। कुछ देर वाद आमलकी सत्त्र नीचे बैठ जायेगा तब रस को पृथक् कर दें। जितना रस हो उसमें दूनी चीनी मिलाकर शर्वत वना लें यथा आमले का शर्वत वन गया। नीचे बैठा सत्व को छाया में सुखाकर शीशी में रखलें। यह भी मेरा आविष्कार है। २ रती तिवज्ज १ तोला शर्वत में मिला कर प्रातः सायं चाटे। यह कफ प्रमेह दोनों में लाभ करेगा। इसी प्रकार आमले के सत्व में भी तिवज्ज या अकेली वंग लें। सत्व १ माशा बज्ज या तिवज्ज २ रती शहद से प्रातः सायं सेवन करें। यह सवं प्रकार के प्रमेहों में लाभ करेगा।
- (२१) मांजिष्ठ प्रमेहों में और हारिद्र प्रमेह में नवा-यस लोह ४ रत्ती मधु और घी से चटाकर ऊपर से गिलीय काढ़ा पिलावें प्रातः सायं निश्चित लाभ होगा। उक्त दोनों प्रमेहों में विफंला का या नीम का या गिलोय का हिम कपाय भी नवायसलोह का अनुपान उचित रहेगा।



वायुर्वेद में वहुमूत्र नाम का कोई प्रथक रोग नहीं है। आयुर्वेद में विणत उदकमेह शीतमेही वहुमूत रोग का ्प्रतीक है। बहुत मादा में जलवत बारबार मूत्र विसर्जन होना ही बहुमूत्र कहाता है। उदक्रमोह की भी यही स्थिति होती है। आयुनिक चिकित्सा विज्ञान की भाषा में इसे Polyuria कहते है। यह रोग प्रायः प्रौढ़ों और वृद्धों को अधिकतर होता है। यह रोग मधुमेही को भी होता है। दूसरे णव्दों में उदकमोही और णीतमोही को प्रायः मध्मेह हो ही जाता है। मध्मेही को होने वाला बहुमूत्र आयुर्वेद के शीतमोह के अन्तर्गत आजाता है। विना शर्करा स्नाम के जब बहुमूल होता है, तब वह उदफमेह के अन्तर्गत आजाता है। जब वह शकरायुक्त हो जाता है और मूत्र की स्वाभाविक ऊष्मा कम हो जाती है तथा मूत का गुरुत्व कम अयवा, जलवत हो जाता है, तब वह गीतमेह का रूप धारण कर लेता है। वहमूत्र के रोगी को शर्करामेह, शीत-मेह, इक्षुमेह, मधुमेह होजाने की सम्भावना रहती है। वहुमूत्र में शर्करास्नाव की स्थिति कायम होजाने पर उसे आयुनिक पाश्चात्य चिकित्साविद् Glycosuria अथवा Dibeties Melitus कहते हैं । बहुमूल में विशिष्ट गुरुता Specific gravity) जलवत होने से तैलकी वूंद मूत्र पात में छोड़ने से वह मूत्र के पूरे सतह पर फैल जाती है, न स्थिर रहती और न डूबती है । मधुमेह(Dibeties वां Glycosuria) में मूत्र का विशिष्ट गुकरव (Specific gravity) प्रायः बद्ध, जाता है, परिणामर्तः तैल वूंद मूत्र की सतह पर छोड़ने से वह स्थिर रहता है, फैलता नही । असाध्य मध्में हुमें वह वृद मूल की ऊपरी सतह से नीचे चली जाती है। बहुमूत्र में मूत्र दिसर्जन की हाजत बार बार होती हैं। मूत्रका वेग आने पर रुकता

नहीं। शीघतापूर्वक मूत्र विसर्जन की व्यवस्था यदि नहीं हो सकी तो मूत्र के वेग को कितना भी रोको, मूत्र बाहर निकल ही पड़ता हैं और कपड़ा आई हो जाता है। युवा-वस्था में होने वाले बहुमूत्र में रोगी मूत्र के वेग को कुछ हद तक रोक सकता है. परन्तु ६० वर्ण से ऊपर के वृद्धों में बहुमूल की हालत में, मूल का वेग रोकना संभव नहीं रहता। बहुमूत्र के वृद्ध रोगियों की यह स्थित बड़ी दय-नीय होती है। पौरुप प्रंथी और मूलाणय ग्रीवा के स्नायु तंतुओं में भीथिल्य आने से मूत्रातिवेगी बहुमूत्र दयनीय स्थिति कायम हो जाती है। विशुद्ध उदकमेही (बहुमूत्र रोगी) को मूलातिवेगी दशा में भी मूल के साथ शकरा का साव नहीं होता। बहुमूत्र रोगी की मूत्र के साथ जहां शकरा जाने लगती है, वहां वह मधुमेह का रूप धारण कर लेता है तथा बहुमूल गौड़ व्याधी हो जाती है तथा शर्करा कां स्नाव प्रधान व्याधि वन जाता है। रक्त शर्करा एवं मूत्र शकेरा की स्थिति कायम होते ही उदकमेह (वहु-मूत्र) की स्थित बदल कर शीतमेह की स्थित आजाती है, और मही स्थिति मधुमेह में परिणत हो जाती है। इसलिए उदक्मेह (बहुमूत्र) होते ही उसकी तुरन्त रोकने वाली चिकित्सा करनी चाहिए।

विशेष सूचना—स्तियों को भी बहुमूत रोग होता है, स्तियों की मूत्र के साथ ही शकरा हाव होता है। स्त्रियों के बहुमूत्र को सोम रोग की संज्ञा आयुर्वेद में दी गयी है। वैद्यगण स्त्रियों के बहुमूत्र को सोम रोग कहते हैं। बहुमूत्र के सामान्य संक्षण—

प्रायः उदकमेह (बहुमूत्र) में प्रत्येक घण्टे दो घण्टे के अन्तर से बार बार अधिक माला में जलसहण मूत्र विसर्जन होता है। मूल जलवत सफोद शीतल और निगंन्ध होता

ZDI ZIGII ITIIGDEZII

है। मूत्रातिवेगी बहुमूत्र में सूत्र की ऊर्णा कम हो जाती है। मूत्र कुछ पीला किन्तु वार वार न रकने वाले वेग के साथ होता है। परन्तु मूत्र विसर्जन के समय जितने वेग से मूत्र को हाजत होती है, उतने वेग से मूत्र मूत्रमागं से नही निकलता। मूल फूटे हुए वर्तन में रखे जल की तरह चुने लगता है। यह स्थित बहुमूत्र रोगी को मैथुन शक्ति के हास की प्रतीक है। वहुमूत्र रोगी को मूत्र विसर्जन में कोई वाधा और किट नहीं होता। वहुमूत्र के कारण बाहार के पोपक तत्व, जलत्व, जलक्ष्य में शरीर से वाहर निकलने लगते हैं, जिससे बहुमूत्र रोगी का शारीरिक वल कीण होने लगता है। वहुमूत्र रोगी की मस्तिष्क की समृत प्रंथी (Pituitary gland) और वृक्तो में भी विकृति आ जाती है। इसी विकृति के कारण ही बहुमूत्र होता है।

बहुमूत्र रोगी की चिकित्सा मे प्रारंभिक रेचनकर्म-

सवं प्रथम बहुमूच रोगी को विशुद्ध एरण्ड तैल (Pure castor oil) ५ तोला को १ पान गरम दूध में डालकर, उस दूध को प्रातः सुखोण्ण पिलावें। जब विरेचन हो चुके तब गेहूं की दिलया को गो दुग्ध में बनी यवागू सेवन करावें। इसके बाद नीचे लिखी औप-धियो का प्रयोग करें। एरण्ड तैल की ५ तोला मात्रा सबल स्त्री पुरुषों के लिये है। निवंल व्यक्ति को २ तो० से ३ तोला तक की मात्रा उपगुक्त है। चहुसूत्र की सफल अनुसूत औषधि योजना—

- (१) घृतपक्य हरिद्रा चूर्ण १ माशा-| तविकया पीली हरताल मस्म १ रत्ती प्रातः सायं मबु और घृतः से चटावें।
- (२) अर्जु नत्वक् चूर्ण १ माशा + बजाध्रक भस्म सहस्रपुटी १ रत्ती नित्य प्रातः सार्थ मधु से चटावें।
- (३) बबूल की कोमल गुष्क फिलयों का चूर्ण १ मांशे बबूल पत्र चूर्ण १ माशा, लोह भस्म (जलतर) १ रती सबकी १ मात्रा बनाकर प्रातः सार्य मधु से चटावें। इससे बहुमूद (उदकमेह-शीठमेह) इक्षुमेह मधुमेह सिटते हैं।
- (४) हर्षु लक्ष्णजमेहारि वटी—वकायन (महानिम्ब) के वीज की मीगी का चूर्ण २ तीला, वबूल की कोमन फ्ली का बुष्क चूर्ण २ तीला, काली मिर्न का चूर्ण २ तीला, स्वर्ण माक्षिक भस्म २ तीला, सूर्यताणी लोह जिलाजीत ४ तीला, बरियारी की जड का चूर्ण द तीला,

सवका मिश्रण बनाकर घृत और गहद से सान कर एक-एक माग्ने के बटक बनाले। एक से २ बटक प्रात: साय गाय के गरम दूध से सेवन करें तो १ द दिन में बहुमूत्र, श्रीत मेह, इसुमेह मे राहत सिलती है। दशो प्रकार के फफजप्रमेह इसके सेवन से निटते हैं। ३ माह के सेवन से स्थायी लाभ होता है।

(५) हवुंल बित मूत्रांतक वटी—बिरयारी (खरेंटी) की जड़ की त्वचा का चूर्ण ४ तो॰, बीजबंद लाल ४ तो॰, बीज बन्द (काला वा स्याम) ४ तोला बकायन के बीज का चूर्ण ४ तो॰, शुद्ध कुचला चूर्ण ४ तो॰, सूर्यंतापी शुद्ध लौह शिलाजीत ४ तो॰, कांतलीह मस्म (हिंगुल-योगेन जारित ६० पुटी जलतर ५ तोला, बंग भस्म (तविकया हरताल योगेन जारित १० पुटी जलतर) २ तो., नागभस्म तिलपणीं के स्वरस योगेन जारित हरित वर्ण २ तो॰ (सहस्त्रपुटी अन्नक २ तो॰। सब औपिधयों को खरल मे डालकर मेथी के प्त्रों के स्वरस की भावना देकर आधा माणे की वटी बना ले। माला १ से २ वटी प्रातः साथं मधु मिश्रित सुखोष्ण गो दुग्ध के अनुपान से सेवन करें।

गुण—इसके सेवन से उदकमेह और समस्त कफजमेह तथा बहुमूत्र नि संदेह दूर होते हैं। यह मधुमेह में शकरा के साथ को रोकता है। रक्त की अस्वाभाविक वढी हुई पर्करा को भी कम करता है। स्त्रियों के सोम रोग पर भी लाभकारी है।

- (६) सपंगंधा चूर्ण २ रत्ती, सहलपुटी अश्रक भरम ९ रत्ती, शुद्ध कुचला १ रत्ती सवको मिलाकर १ मात्रा वनालें। प्रातः सायं अमृतास्वरस १। तो०, मधु ६ माशा में मिलावहुमून रोगी (उदकमेही) को घटावें तो बहुमूत्र का वेग ७२ घण्टे मे थम जाता है। ९ से ३ माह तक सेवन करते रहने से स्थायी लाभ होता है। यह योग युवा, प्रौढ़, वृद्ध स्त्री पुष्प सबके लिये उपयोगी है। कफज प्रमेह, मधुमेह, स्त्रियो के सोम रोग मे मी लाभ करता है।
- (७) जामुन की छाल का चूणं १ माशा धृतपक्व हरिद्रा चूणं १ माशा - प्रचाल पंजामृत ,२ रत्ती, प्रातः सायं मधु से चाटने से वहुंमून का वेग बार बार नहीं आता। कुछ दिन समातार सेवन करने से वहुमून रोग स्थाई रूप से बाराम हो जाता है।



निर्देशक—डा. सत्यपाल गुप्ता, प्रवक्ता—ललित हरि राज. आयु. कालेज, पीलीभीत (उ प्र.) लेखक—डा. विजयकुमार वार्ष्णय, कटरा बाजार, सहावर टाउन (एटा) उ.प्र.

धाइलेसिस (Dialysis) का शाव्दिक क्षयं किसी भी द्रव का शुद्धिकरण करना है। यह द्रव जिसकी शुद्ध करना हैं और जो लगातार गतिशील है उसकी जल या घुलन-शील पदार्थ-से किसी पतली झिल्ली के द्वारा प्रथक करना।

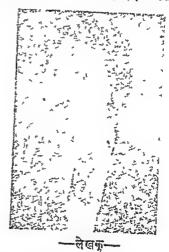
होने पर वृक्कावसाद (Renal failure) की अवस्था में किया जाता है। जब भौषधि चिकित्सा से वृक्क की भूत्र निर्माण प्रक्रिया नहीं सुधरती है तो रक्त की विपमयता को दूर करने के लिए डाइलैसिस का प्रयोग करते है। ये दो प्रकार का होता है --

- (৭) ক্লবিদ বৃদ্ধ (Heamodialysis)
- (२) उदरावरण कलान्तगंत (Peritoneal dialysis)
- (१) प्रायः उस समय करते हैं जब रक्त में यूरिया की मात्रा 300-400 mg,/100c.c. से अधिक हो जाती है।
- (२) यदि सीरम में पोटाशियम मात्रा बढ़कर 6.5 MEq/L (सामान्य मात्रा 3.5-5.0 MEq/L) हो जाय अथवा सीरम में बाईकार्बोनेट की मात्रा 13 MEq/L से कम हो जाये।

आमतीर पर डाइलैंसिस मूर्च्छा (fits stupor), सर्वाङ्ग णोय, संन्यास बादि लक्षण शुरू होने से पहले कर देना चाहिए।

(१) कृतिम वृनक द्वारा हीमोडाइलैंसिस या एक्स्ट्रा-कार्पोनल डाइलैंसिस—

इस विधि में जिस यन्त्र का प्रयोग यूक्क कार्य की तरह निस्यन्दन के जिए करते है उसको कुत्रिम वृक्क कहते हैं। इसका सिद्धान्त है कि इस यन्त्र में लगी हुई सेलोफेन ट्यूब के हारा रक्त का विषमयताजन्य पदार्थ वर्थां वर्थांत् रक्तगठ यूरिया आदि जोकि अग्निप्रक्रिया. (Metabolism) के हारा उत्पन्न दूषित पदार्थों को कालापन को छोड़कर पानी में छन जाते है अर्थात् रोगी का रक्त निकाओं में परिश्रमण करता हुआ Rinsing fluid के सम्पर्क में आकर सेलोफेन ट्यूव की झिल्ली के हारा परासरणक्रिया (Osmosis action) से इस प्रव में रक्त का विष छन जाता है। यहां पर रक्त के विष अर्थ Metabolites से है।



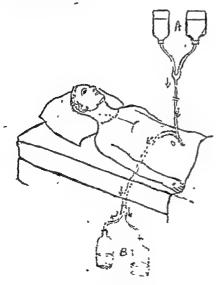
यह प्रक्षालक द्रव (Rinsing fluid) जल, ग्लूकोज एवं इलैक्ट्रोलाइट से मिलकर बनता है। यह रक्त की परासरण प्रक्रिया रक्तगत यूरिया एवं Electrolytes की सान्द्रता पर निर्भर करती है।

जैसे—यदि रक्तगत यूरिया अधिक है और प्रक्षालक में यूरिया नहीं है तो यूरिया रक्त से प्रथक होकर प्रक्षा-लक द्रव में या जाता है। जबकि सीरम सोहियम की सान्द्रता एवं विद्यावक द्रव की सान्द्रता सामान्य मात्र है

HIN RUN WELDERU

तो सोडिय रक्त से नहीं छनेगा। ये ध्यान रहे कि प्रक्षा-सक की सांद्रता का बना रहना। इस कार्य प्रणाली में अत्यन्त क्षावश्यक है कि प्रक्षालक द्रव रक्त में वापिस नहीं जाये i

इसके लिए प्रक्षालक द्रव प्लाज्मा की अपेक्षाकृत अधिक शक्ति वाला (Hypertonic) होना चाहिए। इसके अतिरिक्त इस द्रव में ग्लूकोज की सान्द्रता अधिक रहे। यह यन्त्र इस प्रकार का निर्मित हो जोकि पायरोजन प्रतिक्तिं। रक्त स्कन्दन, रक्तस्राव (Thrombosis) और Heamolysis आदि उपद्रव न कर सके। रक्त स्कन्दन Heparinization से रोका जा सकना है। परन्तु रक्त-स्राव बहुत भयञ्कर उपद्रव है जोकि स्थानिक हैपाराइजे-शन से रोका जा सकता है।



चित्र सं॰—३६ डाइलैसिस पर रखा रोगी

ये गुद्ध रण्त इन सेलोफेन निलकाओं से भ्रमण करता हुआ गुद्ध होकर सिरा में वापिस आ जाता है। इस हीमो-डाइलैसिस के प्रभाव से १२-२४ घण्टे के अन्तर्गत रोगी को कोई यूरीमिक लक्षण नहीं होते हैं।

(२) उदरावरण कला तगत (Peritoneal) डाइल सिस—
यह विधि बहुत ही लाभदायक एवं साघारण है।
इसका प्रयोग रवतज मूत्र विषमयता (Ureamia) की
प्रारम्भिक अवस्था में मूलविष (Mitrogen metabo-

Ittes) को शरीर से वाहर निकालने के लिए करते हैं। परन्तु यह विधि उनत Heamodialysis की अपेक्षाकृत कम प्रभावशाली होती है।

इसको विशेष साधनों (तकनीकी ज्ञान) एवं केन्द्र की आवश्यकता नहीं पड़ती और आधिक दृष्टि ते भी अस्प-व्यय होता है। इसमें उदरावरण कला ही दाइलैसिस हेतु कला का कार्य करती है।

विधि—सर्वप्रथम रोगी को उत्तान स्थिति में लिटा-कर मूलाणय को कैथीटर से खाली करके रोगी के उदर को, उदरशन्य किया की तरह बाल खादि साफ करके विसंकामक विलयन से साफ करे। फिर नामि और भगास्य (Pubic bone) के मध्य रेखा (Line alba) के नीले १/३ भाग पर छोटासा (आधा सैन्टोमीटर) भेदन फर्म स्थानीय संजाहरण करके करना चाहिए जिससे ब्रीह-यन्त्र (Trocar and canula) उदरावरण गुहा में जा सके। एक पौलीयीन ट्यूव जो ३५ सैन्टीमीटर लम्बी तथा व्यास में ०.३ एमएम. हो एवं इसके अन्तिम सिरे १० सैन्टीमीटर लम्बाई में अनेकों छित्र हों वह उदरावरण गुहा में डाल दी जाती है।

डाडलैसिस प्रारम्भ करते, से पहले उदावरण गुहां को दो लीटर डाडलैसिस हेतु द्रव को ११ या १४ नं॰ गाँज की २॥ इत्य लम्बी सूची से बेधन कर्म (Puncturing) करके भर दें। फिर सूची मिकाल कर वेधन स्थान को धननी संदंण से फैलाकर उस छिद्र में एक कैनूला था. स्टिलेट डील दें। यदि वार-वार डाइलैसिस की आवश्य कता पड़े तो टेनकोफ (Tenckhoff) नाम का कैथीटर प्रयोग में लागे।

उदरगुहा में ढाइलैसिस द्रव हालने से पहले थोड़ा
गरम कर लें जिससे उदरावरण गुहा से द्रव शीझ निकलता है! दो लीटर द्रव का उदरावरण गुहा में डालना
और उससे निकालना Single Exchange कहलाता है।
कुछ विशिष्ट रोगों में जैसे संकोचक हृदयावसाद, श्वसनक
की व्याधियां, पानी वदलना बोदि रोगों में एक लीटर
द्रव प्रयोग में लाया जाता है।

द्रव को उदरावरण गुहा में भरने का समय १० मिनट लगना चाहिए और गुहा में द्रव रुकने का समय ३०-४५ मिनट रहता है और उदरावरण गुहा से द्रव निकलने का समय १०-३० गिनट होता है अर्थात् एक पूरा बदलाव होने में १-१।। घन्टा लगता है। यदि बद-भाव १२-३६ घंटा तक बीच में कई बार करना चाहिये। यामतौर पर १२-२४ बदनाव (२४-४० लीटर द्रव से) किये जाते हैं। ३६ घण्टे से अधिक करने पर शोथ एवं उदरावरण कला शोथ की सम्भावना रहती है। यदि और अधिक ढाइलैंसिस की आवश्यकता हो तो दो या तीन दिन का अन्तर देकर करें।

कभी-कभी उदरावरण गुहा में वेधन करने पर उदरा-वरण गुहा में रवत के थवक एकतित हो जाते हैं और कैथीटर के मुख को अवरुद्ध करके डाइलैंसिस हेतु द्रव को निकालने में अवरोध उत्पन्न करते है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये कुछ चिकित्सक इस द्रव में १००-१००० यूनिट हैपरीन मिला देते हैं। यदि तीन बदलाव के डपरान्न लालिमा युवत द्रव नहीं निकले तो हैपरीन नहीं मिलागे। यह निष्कासित द्रव बिल्कुन साफ एवं रङ्गहीन होता है। कभी-कभी यह पीला और रक्तयुवत हो सकता है। जब कैथीटर या पीलीयीन निका को निकालें तो एन्टीबायोटिक मरहम लगाकर विसंक्रमित पट्टी बांधें। योड़ा द्रव का इल से स्रवण (Oozing) हो सकता है। उसकी चिन्ता न करें।

कभी-कभी ड्रेनेज बहुत धीमा एवं वूंद-वूंद करके हो सकता है तब के थीटर की ओर हाथ से उदर पर दबाव दें। साथ ही रोगी को करवट दिलायें और रोगी को सिर की ओर से उठायें तो निकलने वाला बहाव बढ़ जाता है। इस प्रक्रिया को करते समय रोगी का नियमित मार नाड़ी और रक्तचाप नोट करना चाहिये जिससे रोगी जलाधिक्यता (Over hydration) और Volume deplation में नहीं जाये। इसके अतिरक्त प्रतिदिन सीरम, इलैक्ट्रोलाइट्स, रक्तगत यूरिया फ्रिटेनिन और शकरा की मात्रा का परीक्षण कराएं। साथ ही डाइलैसिस से निकले द्रव का रंजन (culture) करना चाहिये। कभी-कभी रोगी को औपधि (Anubiotic etc.) देते हैं वह भी डाइलैसिस के द्रव के साथ निकल जाती है। उपद्रव

(१) साधारण ज़पद्रव के रूप में उदर में कष्ट एवं भारीपन, श्वासकष्ट हो सकते हैं।

- (२) द्रव का स्रवण वेद्यन स्थान से हो सकता हैं। जोकि नि:संक्रमित वन्धन या दबाव से रोका जा सकता है।
- (३) कभी-कभी तीव उदरशूल-द्रव के उदरावरण गृहा में द्रव भरते समय और निकलते समय हो सकता है। इसके लिए २% प्रोकेन सोलूशन ५ मिली. कैयीटर के द्वारा वाल देते हैं।
- (४) कभी-कभी आन्त्र, मूलाशय या वृहद धमनी या सिरा को क्षति हो सकती है।
 - (५) उदरावरण कला शोय ५% तक हो सकती है।
- (६) फुंपफुस शोथ सम्बन्धी उपद्रव हो सकते हैं जैसे Atelectasis and Hydrothorax.
- (७) कभी कभी रक्त में पानी की कमी (Volume depletion) के कारण हृत्स्पन्दन .(tachycardia) हो सकता है और रोगी को रक्तचापाधिक्य, हृदयावसाद और वृक्क कार्यावसाद हो सकता है।
- (=) कभी-कभी शर्कराधिक्यताजन्य संन्यास (Hyperglycaemic Hyperosmolal coma)हो सकता है।
- (१) हृदय रोगी के लिए डाइलैसिस करने से पहले डिजीटैलिस गौपिंघ देना वन्य कर हैं।
- (१०) वागस नर्व की उत्तोजना से हृदय का भयञ्कर Bradyarrhythmia हो सकती है।
- (१९) मधुमेह रोगी को गर्कराधिवयता (Hypergly-caemia) उत्पन्न हो सकता है।
- (१२) ढाइलैसिय शारीरिक असन्तुलन के लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। जैसे-शिरःगूल, आक्षेप, मूच्छी, अरुचि वमन, मानसिक चिन्ता आदि।

उपरोक्त उपद्रव हीमोडाइलैसिस में भी मिल सकते हैं। उदरावरण कलान्तर्गत डाइलैसिस हेतु द्रव—

<u> </u>				
घोल (विलयन)	G/L	MEQ/L	MOSM/L	
सोडियम (१)	₹.0₹	१३२	937	
कैल्सियम (२)	0.00	ર. પ્	9,5	
र्मेग्नीसियम (३)	৫,০ই	٩.५	۰.5	
क्लोराइड-	भू.भू१	₹.33	P 33	
लैक्टेट (४)	₹.9२	३४.०	३५.०	
हैक्ट्रोज[९.५%](५)	१४.००		9. Xe	
योग		र७११	₹.87€	

—शेपांश पृष्ठ १२६ पर देखें।

[9] द्रवापहरण (Dehydration)—तीत वितसार, प्रवाहिका, वर्मन, अतिरवेदन आदि कारणों से गरीर से अधिक भाग मे जलीयांण का निहंरण हो जाता है जिससे भूव माना घट जाती है।

[२] जनर—सामान्यतः जनर में मूत्र की राशि कम ही रहती है भौर् यदि उचित मात्रा में जल सेवन न हो तो मूत्र की राशि और भी कम हो जाती है।

[६] हृदय की दुवंलता—विशोपतः हृदय के दक्षि-णाई की अंसंतुलित (Decompensated) स्थिति में सूत्र की राशि वहुत कम होती है! इसके अतिरिक्त रक्त-चाप और यकुदाल्युदर में भी मूत्र की राशि घट जातीहै।

[४] वृक्क शोय तथा मूत्र विषमयता स्नादि रोगों का एक लक्षण कल्पमूबता भी है। अतः अल्प मूत्रता के लक्षणों के आधार पर प्रमुख रोग का निदान कर उसकी चिकित्सा करने से सल्पमूत्रता स्वतः दूर हो जाती है।

सल्प मूत्रता की सीमा—स्वस्थ मनुष्य की दिन—रात की मूत्र राणि १४०० मिली या १।। लीटर लगभग होता है, पर जल की मात्रा वहुत कम करने पर भी ७०० मि. ली. से कम भूत्र नहीं बनता। इसलिये ७०० मिली. से भी कम मूत्र राणि प्रतिदिन (२४ घंटे) की हो तो उसे सल्पमूत्रता कह सकते है। निहान—

अल्पमूत्रता के लक्षण मूत्राघात व अमूत्रता या मूत्र

विवन्ध से सम्बन्धित होते हैं। पौरुप ग्रन्थि वृद्धि और वृदक णोय व वृक्क विकारों में भी अल्पमूत्रता के लक्षण होते हैं। अल्पमूत्रता की स्थिति में नूव मागें में सलाई (कैयीटर) डालकर देखना चाहिये। क्योंकि किसी रोग को कारण यदि मूत्र का अवरोध हुआ होगा तो कैयीटर डालने से काफी मूत्र निकल आता है, क्योंकि यह वास्तिविक अल्पमूतता न होकर अवरोधजन्य होती है।

चिक्तित्सा-

रोग के कारण के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये। यदि अतिसार आदि कारणों से भारीर के द्रवापहरण के कारण रोग हुआ हो तो पानी में ग्लूकोज मिलाकर व निम्बू का भवंत बनाकर पिलाना चाहिये। रोग की उप्रा-वस्या में जिरा द्वारा नामंत सलाइन चढ़ाने से तत्काल लाभ होता हैं। जबराबस्था में संजीवनी वटी, तिभुवन कीति रस को अमृता सत्व से देने से स्वेद तथा मूत्र द्वारा दोष निर्हरण होता तथा मूत्र प्रवृत्ति भी होती है।

वायुर्वेदीय मूत्र योग—(१) ह्वेत पर्पंटी १ माशा में मिश्री १ माशा, यवसार १ माशा में मिश्री १ माशा ठंडे पानी से देने से जल्पमूत्रता दूर हो जाती है। घारोण्ण दूध या दुग्ध की लस्सी, गन्ने का रस तथा सन्तरे का रस, निम्बू का शर्वत पीना लाभदायक है। गोक्षुरादिं गुग्गुल का प्रयोग भी स्मरणीय है।

कारण-

तेपां मेदोमुत्र कफावहम् ॥१॥

वन्तपान कियामातं, यत्प्रायस्तत्प्रवर्तकम् ।
स्याद्यम्ललवण स्निग्ध गुरुपिच्छिल शीतलम् ॥२॥
नवधान्य सूरानूपमांसे इक्षुगुडेगोरसम् ।
एक स्थानासनरतिः शयनं विधिवर्जितम् ॥३॥
—वा वि व व १०

वाग्भट्टाचार्यं ने प्रमेह रोग होने का कारण निम्नोक्त वताया है—मधुर द्रव्य, अम्लगुण युक्त द्रव्य, लवण पदार्थं, हिनग्ध गुण युक्त द्रव्य, गुरु गुण वाले द्रव्य, पिन्धिल और शीत गुण वाले पदार्थों का अति सेवन, नया धान, सुरा, आंतूप देश के प्राणी का मांस का अति सेवन, इक्षु या इक्षु-रस का अधिक सेवन, गुड़, दुग्ध, घृत, गोरस, मठ्ठा, तेल वि॰ हिनग्ध-गुरु आहार का अति सेवन, एक ही रथान पर या आसन पर लोटना, अर्थात् व्यायाम आदि का अभाव याने कि आरामदायक, वैभवयुक्त जीवन वनाने की क्रिया, दिवास्वाप (दिन में सोना) और रात्रि के समय जागना, प्रकृति के नियम के विरुद्ध आहार-विहार करना ये सर्वे प्रक्रिया (अन्न, पान, क्रिया) वसा, मूत्र, और कफ ये तीनों को दूपित करता है। और "प्रमेह रोग" उत्पन्न करता है। आधुनिक चिकित्सक उसे "हायेविटिज्" कहते हैं।

सामान्य लक्षण -

सामान्य लक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता.। — वा. नि प्रमेह रोग का सामान्य लक्षण वताते हुए वाग्भट्ट ने "प्रभूत काविल मूत्रता" शब्द प्रयोग किया है। वर्यात् पेशाव अधिक होता है और आविल युक्त गंदा दूपित (सफेद रङ्ग का) पेशाव होता है।

मूत्राशय से उतरकर दारबार पेशाव मूत्रनली द्वारा वाहर निकलता है। इसिंद्धए स्वभाव से ही शरीर में रुकावट हो आती है। बाद में जैसा प्रमेह हो वैसे ही चिहन हो जाते है। अगर फफज प्रमेह होगा तो उसके लक्षण उससे मिल जायेंगे। वातज प्रमेह होगा तो उसमें प्रमेह की प्रारम्भिक अवस्था यही होती है। प्रमेह में शरीर की धातु पेशाव के साथ निकलती है। प्रकेंडय—

पूर्वं रूप उसे कहते हैं जो रोग के पहले हो, रोग पैदा होने के पहले जो चिह्न होते हैं उन्हें ही "पूर्व रूप" कहते हैं। वुखार होने से पहले जैसे शरीर गर्म होने लगता है। पेट में दर्द होने से पहले जैसे शामाशय कठोर होने लगता लगता है। उसी तरह के चिह्न प्रमेह रोग से पहले भी होते है। पूर्व रूप देखकर ही किसी भी रोग का अनुमान सहज में ही किया जाता है—

"तेषान्तु पूर्वेरूपाणि, हस्तपादतलदाहः स्निग्ध पिच्छिल गुरुता, गात्राणां मधुर गुक्रमूत्रना तन्द्र सादः पिप्रासा, दुग्धक्रच, श्वास कास तालु गल जिह्ना दन्तेषु मतोत्पत्ति जटिलीभावः केशानां वृद्धिश्च नखानां। तत्र आविलं प्रभूत मूत्रनक्षणाः सर्वे एवं प्रमेहा। सर्व एव दीष समुत्था सह पिडिकाभिः। —सु० नि०

प्रमेह रोग के पूर्व रूप ये हैं—हथे ली और तलवे गरम रहने लगते हैं। इनीर में कुछ चिकनापन, गाड़ापन और धारीपन होने लगता है। मून मधुर और सफेद होने लगता है। आंखें झपी सी रहने लगती हैं। शरीर में थकावट भी मालूम होने लगती है। प्यास अधिक लगती THE STATE FRANCE WE

है। सांस में वदव् और तालु गला, जिह्ना, दांत इनमें मैल जमने लगते हैं। वाल मिलन और उलझे हुए से होने लगते हैं। अंगुलियों के नाखून जल्दी बढ़ना, पेशाव का गंदला और अधिक होना ये प्रमेह के खाम जिह्न है। घनघोर वृष्टि के आने से पहले जैसे वायु का तूफान उठने लगता है ठीक उसी तरह प्रमेह के पहले ये लक्षण पैदा होने लगता है। यह जरूरी नहीं कि सारे चिह्न एक साथ ही पैदा हा जांय और एक ही रोगी को जाय! इन चिह्नों में से २-४ चिह्न ही प्रमेह के परिचायक होने लगते हैं। प्रमेह रोग को सेद—

प्रमेह के मुख्य तीन प्रकार हैं—(१) वातज प्रमेह, (२) पित्तज प्रमेह. (३) कफज प्रमेह।

वातादि तीन दोषों और मेद मांस आदि धातुओं फी विशेषता और संयोग की विशेषता से मूत्र या पेशाव के रंग विशेष में जा फर्क होता है उसीसे प्रमेहों के वीस [२॰] भेद बताये हैं।

वातज प्रमेह के भेद चार।
पित्तज प्रमेह के भेद छ:।
कफज प्रमेह के भेद दश।
कफज प्रमेह की सम्प्राध्ति—

वस्तिमाश्चित्य कुरुते प्रमेहान् दुषितः कफः । दूषतित्वा वायुवलेद स्वेद मोदो रेसाभिपम् ॥ [वा. नि. अ. १०]

उपरोक्त कारण से शरीरस्थ प्रकुषित कफ मूत्राशय में रहकर क्लेद, स्वेद, वसा, रसधातु और मांस धातु को दूषित करता है और वे 'कफज प्रमेह' के अन्तर्गत उदक्रमेह आदि दस प्रकार के प्रमेह पैदा करता है। पित्तज प्रमेह की सम्प्राप्त --

्षित्तं रक्तमपि क्षीणे कफादौ मूत्रं संश्रयम्।। , अधिक गरम, चरपरे पदार्थों के खाने से जब पित्त कुपित हो जाता है तब वह कफादि धातुओं का क्षय कर देता है। उनके दूपित होने पर पित्त पेणाबगत रस, रक्तादि धातु, क्लेद, स्वेद, वसा आदि को दूपित करके सारमेह आदि छ: 'पित्तज प्रमेह' पैदा करता है। वातज प्रमेह की सम्प्राप्त—

धातून वस्तिमुपानीय तस्झयेऽपिच मारुतः॥

जब शरीर में कफ और पित्त कींग हो जाते हैं, तब वायु कुपित हो उठता है और फिर वह (प्रकुपित वात) रसादि धातु, वसा, मज्जा, लसीका और ओज इनको खींचकर पेशाद की थैली पर ला घेरता है। फिर वे पेशाय द्वारा वरावर निकल जाते हैं और वसामेह आदि चार प्रकार के प्रमेह पैदा करता है।

कफज प्रमेह के भेद-(दश)

१. उदकप्रमेह, २. इक्षुमेह, ३. सांद्र प्रमेह, ४. सुरा प्रमेह, ४. विष्ट प्रमेह, ६. शुक्र प्रमेह, ७. सिक्ता प्रमेह, ६. शीत प्रमेह, ६. शनै: प्रमेह, १०. लाला प्रमेह। पित्तज प्रमेह के भेद — (छ:)

- १. साह प्रमेह, २. नील प्रमेह, ३. काल प्रमेह, ४. हरिद्र प्रमेह, ४. मंजिष्ठ प्रमेह, ६. रक्त प्रमेह। वातज प्रमेह के भेद—(चार)
- १. वसा प्रमेह, २. मज्जा प्रमेह, ३. क्षीद्र प्रमेह, ४. हस्ति प्रमेह।

प्रमेह में सामान्य लक्षण एक ही फिर भेद दयों ?

दोपदूष्याविशेणेऽपि तत्संयोगविशेषतः ।

मूत्रवर्णादि भेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते ॥ —वा. नि.
दोप और दुष्य में फर्क नहीं फिर भी ये दोप और
दूष्य के अपने अपने विशेष संयोग से मूत्र का रङ्ग, गन्ध
स्वाद, स्पर्श आदि में जो फर्क मालूम होता है इससे ये
सभी भेद पाये जाते हैं।

प्रमेह के नाम	दोषादि प्रकार	. सामान्य लक्षण	
(१) इक्षुमेह	कफज प्रमेह	इक्षुरस समान, मधुर, अतिप्रमाण,	सुखसाघ्य, (उत्तम
(२) उदकमेह	कफज प्रमेह	शीत, श्वेतवर्णं युक्त, निगन्ध, जल समान, गंदला पिच्छिल मूल प्रवृति ।	चिकित्सा से) सुखसाध्य
(३) सांन्द्रमेह	कफज प्रमेह	दर्दी का पेशान रात्रि भर रखने से घट्ट सा हो जाता है।	मुखसाम्य

स्या रोगा चिवित्रस्या

प्रमोह के नाम	दोषादि प्रकार	सामान्य लक्षण	
(४) सुरामेह्	कफज प्रमेह	सुरा तुल्य पेशाव और रात्रीभर पेशाव को रखने के से (दर्दी का पेशाव) ऊपर से पतला और नीचे घट्ट, मिटियाला रङ्ग जैसा होता है।	. सुखसाघ्य
(४) पिष्टमेह	कपाज प्रमेह	चावलों के घोवन जैसा, श्वेत, अति प्रमाण में होता है। ददों में रोमहर्ण लक्षण मिलते हैं।	सुखसाध्य
(६) शुक्रमेह	कफज प्रमेह	वीर्यं समान या शुक्र के साथ मूचप्रवृत्ति ।	सुखसाघ्य
(७) सिक्ताप्रमेह	कफज प्रमेह	पेशाव के साथ क्वेत वालू, दर्दसह मूत्रप्रवृत्ति ।	सुखसाध्य
(क) शीतमेह	कफज प्रमेह	मधुर, शीत, अति प्रमाणे में मूत्र प्रवृत्ति समय रोमहर्ण, शीत लगना।	सुखसाध्य ः
(६) शनैमेह ड	.कफज प्रमेह ·	शनैमेही धीरे धीरे पर मिकदार में कम मूतता है। े (रुक-रुक कर कम पेशाव प्रवृत्ति)	सुखसाध्य
(१०) लालामेह	्रकफज प्रमेह	लालातन्तु समान, पिच्छिल पेशाव प्रवृत्ति	सुखसाध्य
(११) क्षारमेह	पित्तज प्रमेह	पेशाव का रस, गंध, स्वाद और स्पर्श (सव) क्षारयुक्त (खारी जल समान)।	कण्टसाध्य
(१२) नीलमेह	पित्तज प्रमेह	''नीलाभं'' नीले रंग का पेणाव, अधिक प्रमाण में, पेणाव करने के जगह पर नीले रङ्ग का अस्थिर दाग।	कष्टसाघ्य
(१३) कालमेह	पित्तज प्रमुह	काजल समान मूत्रप्रवृत्ति ।	कष्टसाच्य
(१४) हारिद्रमेह	पित्तज प्रमेह	कटू, हरिद्रा जैसा, दाहयुक्त, पीतवर्ण का पेशाब होता है।	ं कष्टसाध्य
(१४) मंजिप्डमोह	वित्तज प्रमोह	मजीठ के पानी जीसा रङ्ग,वदवू युक्त पेशाव होता है।	क्टसाध्य
(१६) रक्तमेह	पित्तज प्रमोह	रोगी का पेशाव लाल वर्ण का, गर्म, खाराश युक्त, दाहद्युक्त और बदवू युक्त होता है।	कष्टसाध्य
, (१७) वसामोह	्वातग-प्रमोह	वसायुक्त या ''वसां' का ही पेशाव होता है।	ससाघ्य
(१८) मज्जामोह	वातज प्रमोह	मज्जायुक्त या "मज्जा" का ही पेशाव होता है। लेकिन वारवार होता है।	असाध्य
(१६) हस्तिमोह	वातज भ्रमेह	मदमस्त हाथी के मद जैसा वेगिवहीन, सिसका युनत पर मिकदार में ज्यादा मूतता है। पेशाव विवन्ध वाला होता है।	्वसाध्य
(२०) क्षौद्रमेह	वातज प्रमह	दूसरा नाम "मधुमेह"। पेशाव शहद के रङ्ग का, मधुर, क्षीला और रूखा होता है।	असाध्यं ————————————————————————————————————

साध्यासाध्यत्व में फर्क न्यों ?

साध्ययाच्य परित्यंज्या, मेहास्तेनैव तद्भवाः । समासम क्रिय तया, महात्यय तयाऽपि च ॥

वितासि. श. १०] चपरोक्त कफल दस प्रमेह सुख-्साध्य, पित्तन छः प्रमेह कप्टसाध्य और वातज चार प्रमेह असाध्य वताये हैं।

कफज प्रमेह उसलिए साध्य हैं कि केवल मेद आदि
धातुओं के दूपित होने से होता है। कर्पण रूप एक क्रिया
से ही नाण हो जाते हैं यांनी इसकी औपित क्रिया समान
है। ये केवल एक कफ को ठीक करने से आराम हो जाते

सुरा शोगा सिक्टिसा

हैं। किसी को घटाना और किसी को बढ़ाना नहीं पड़ता। कफज दस प्रमेह में दोष और दूष्य एक ही होने से साध्य है।

पित्तल प्रमेह इस कारण से कष्टसाध्य है कि ये कफ आदि सीम्य धानुओं के क्षय होने पर, मेद आदि दूपित होने से होते हैं। इनकी औपिध क्रिया कफल प्रमेहों की तरह समान नहीं, असमान है। ये मधुर और रूखी आदि विषम क्रिया से नाश होते हैं। विषम इसलिए कि शीतल और मधुर पदार्थ पित्त को शान्त करते हैं। पर मेद को बढ़ाते हैं। उधर गरम और कदु पदार्थ मेद को नाश करते हैं, पर पित्त को बढ़ाते हैं। इसलिए पित्तल छः प्रमेहों में मधुर और रूखी एवं असमान चिकित्सा करते हैं वयोंकि मधुर से पित्त शान्त होता है और रुक्षता से मेद आदि बढ़ने नहीं पाते। इस तरह दोप दृष्य की विषम क्रिया हो जाने से पित्तल प्रमेह कष्टसाध्य है।

वातज प्रमेह को असाध्य वताते हुए कहा है कि वातज प्रमेह सारी धातुओं के क्षय होने से होते हैं। वायु मज्जा आदि गम्भीर घातुओं को आकर्षण करने से पीडित करता है। वातज प्रमेह में सारी घातुयें क्षय होती हैं और उनकी चिकित्सा विषम है इसीसे वातज प्रमेह अमाध्य समझे जाते हैं। प्रमेह में घातुयें पतली होकर पेशाव में मिलकर वाहर गिरने लगती हैं। इससे प्रमेह रोगी विन-दिन कम-जोर होने लगेगा और रोगी कृश होता चला जायेगा। इसलिए वातज चार प्रमेहों को असाध्य वताया है। प्रमेह रोग में उपद्रव—

बाचार्य वाग्भट्ट ने कफ्ज प्रमेहों के उपद्रव के बारे में लिखा है कि अन्न का अच्छी तरह में पाचन न होना, (अविपाक), अरुचि (भोजन के प्रति अरुचि), वमन, निद्रा खांसी, जुकाम, ये सब कफ्ज प्रमेह के उपद्रव है। उसके अलावा भी पेशाव और शरीर पर मिल्ख्यां बैठती हैं। अङ्ग गौरवता, शिरःश्ल बादि उपद्रव मिलते हैं।

पित्तज प्रमेह के उपद्रव में मूत्राशय और मूत्रेन्द्रिय में तोदवत् वेदना, अण्डकोधों में तीय वेदना, ज्वर, दाह, तृथा, सम्ल उद्गार, मूच्छी (वेहोशी) बादि मुख्य हैं। नेत्र, दस्त और मूत्र आदि पीतवर्णयुक्त होते हैं।

वातज प्रमेह के उपद्रव में उदावर्त, कम्प, उरःशूल, हृत्यूल, निद्रानाश, सारे शरीर में शूल, ज्वास, कास, गला सुख जाना आदि मुख्य हैं।

जो प्रमेह सुखसाध्य होता है वे भी उपद्रव सहित होने से कष्टसाध्य बनता है। आचार्यों का मत है कि यदि प्रमेह रोग के होते ही इलाज न करने से सब तरह के प्रमेह समय पाकर 'मधुमेह' (Diabeties Mellitus) बनता है और जब मधुमेह हो जाते हैं तब असाध्य हो जाते हैं।

प्रमेह के अरिस्ट जक्षण--

जिस प्रमेह रोगी में सव लक्षण हों, जिसके पेशाब के साथ बहुत सा वीर्यं जाता हो और जो पिडिकाओं से पीड़ित हो उस प्रमेह रोगी में जीने की सम्भावना कम, रहती है।

जो प्रमेही मूच्छां, वमन, ज्वर, खांसी, विसपं और गुरुता या भारीपन से युक्त हो, वह असाध्य है अर्थात् जनको आराम नहीं मिलता।

मधुमेही मनुष्य से पैदा हुए प्रमेही का प्रमेह बीज के दोष के कारण साध्य नहीं होता। यानी उसका प्रमेह असाध्य ही है। वयों कि जो विकार जिसके परम्परा से आते हैं वे कभी आराम पा नहीं सकता।

प्रमेह रोग में वताये गये उपद्रवों के साथ शराविका द दस प्रमेह पिडिकाओं में से कोई पिडिका हो और रोग ने शरीर में वास कर लिया हो तो प्रमेह रोगी का आराम होना असम्भव है। क्योंकि आचार्यों ने कहा है कि—

मुच्छांछिदि ज्वर श्वास कासापसपै गौरवैः। उपद्रवैरुपेतोयः प्रमेही दुष्प्रतिक्रियः ॥ प्रमेह और रक्तपित्त में क्या फर्क ?

उपरोक्त वताये हुये प्रमेह रोग के पूर्व रूप के लक्षण के विना हारिद्र वर्ण का पेशाव या रवत वर्ण का पेशाव होता है, वहीं 'रक्तपित्त' समझना चाहिए।

- वैद्य श्री जगदीण. के. पुरोहित बी.एस.ए एम. धराद (बनासकांठा) उ. गु.

हिल्ला प्रियोह्न हिल्ला है। वैद्य बनवारी लालगोड़ भिष, आयु. बृह.

वैद्य श्री बनवारीलाल गौड़ राजस्थानी परम्परा के सुयोग्य स्नातक हैं। आपने १६६६ में भिष्याचार्य एवं १६७४ में आयुर्वेद वृहस्पति में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया। प्रथम श्रेणी में संस्कृत में एम०ए० किया। आप गुलाबी नगरी जयपुर में राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान में सेवारत ख्याति प्राप्त चिकित्सक एवं सुप्रसिद्ध विद्वान लेखक हैं। गत २ वर्षों में ही आपके द्वारा लिखित ५ पुस्तके तथा २७ शोध-पत्र-प्रकाशित हो चुके हैं। हाल ही में राजस्थान के स्वास्थ्य एवं आयुर्वेद मन्त्री द्वारा आपको आपके उल्लेखनीय लेखन कार्य हेतु सम्मानित किया गया है। आपका यह लेख पठनीय एवं मननीय है।

—गिरिद्यारीलाल मिश्र (विशेष-सम्पादक)



सामान्यतया गरीर को या मन को दुःख देने वाले भाव को रोग कहा जाता है। "विकारोदुखःमेव च" में यही अभिव्यवित प्रस्फुटित होती है। लेकिन सभी विकारों को एकमात दुःख संज्ञा से ही सम्बोधित कर लेने मात्र से इस तन्त्र के प्रमुख प्रयोजन 'धातुसाम्य क्रिया' की पूर्ति नहीं हो पाती। इसलिये रोगों का अनेक प्रकार से विभाजन करके वर्णन किया है तथा तदनुष्ट्य ही चिकित्सा-वर्णन करके शास्त्र को एक व्यवस्थित स्वरूप दिया है। रोगों के इस विभाजन क्रम में जिन माम दण्हों का उपयोग किया है वे हैं—

रजा, वर्ण समुत्यान, स्थान, बाकृति एवं नाम इत्यादि। इन्हीं मापदण्डों को ध्यान में रखते हुए "प्रमोह" संज्ञा का विश्लेषण-करें तो जात होगा कि इस संज्ञा में रुजा वर्ण समुत्यान और स्थान इन चारों का ही हैनुत्व है। जव चिकित्सा की जाती है तो प्रमोह के चिकित्सा-सूत्र में प्राधान्येन "समुत्यान" और "स्थान" की ओर विशेषेण ध्यान दिया गया है। अतः स्थान इष्ट्या और समुत्यान इष्ट्या प्रमोह की क्या स्थिति है यह विश्लेषण योग्य है। यह विश्वद्धल्पेण शास्त्रीय विषय है, ऐसे विषयों का विश्लेपण विश्वप्र दिशोपांकों में होना आवश्यक है।

इस प्रसङ्घ में सर्वप्रथम स्थान का क्या धरिष्ठाय है

यह ज्ञेय है—जीयािक स्पष्ट है अथवा जो स्थान सर्वाधिक रोग-ग्रस्त है वही प्रहीत होगा। स्थान शब्द की व्याख्या करते हुए आचार्य चक्रपाणि कहते हैं कि—'स्थानभेदा आमाशयादयो रसादयश्च'। इस व्याख्या के अनुरूप प्रमोह में स्थान का निर्धारण करते हैं तो जपर्युक्त व्याख्या के दोनों ही वाक्य काम में आ जाते हैं वर्यात् 'आमार्ययादयः' के अनुसार 'बस्ति' तथा 'रसादयः' के अनुसार 'मेद' दोनों ही प्रमोह के 'स्थान' मान लिये जाते हैं। इससे यह संशय हो जाता है कि 'बस्ति रोग' है धथवा मेदो रोग। प्रसेह मेदो-रोग हैं बस्ति रोग नहीं—

यद्यपि आगे उपशीर्णकों में सम्पूर्ण विषय को क्रमवद्ध प्रस्तुत किया जा रहा है फिर भी यहां यह कह देना उप-युक्त है कि प्रमेह मेदो रोग है "वस्ति रोग" नहीं। ब्रस्ति रोग नहीं है यह कह देने पर अनेक शंकायें एक साथ उप-स्थित हो जाती हैं, जिनमें मुख्य यह है कि प्रमेह की अभि-व्यक्ति ही वस्ति और वस्ति स्थित मुत्र के द्वारा होती है, इसीलिये लोकिक व्यवहार में भी इसका 'मूत्ररोग' संगा से सम्बोधित किया जाता है। इस शंका का निवारण आगे के वर्णन से हो जायगा। यहां तो इतना कह देना ही पर्याप्त है कि संहिताओं में 'वस्ति-रोग' बौर 'मूत्ररोग'

मुञा रोगा चिकिहरा।

एक ही बात है क्योंकि बस्ति रोगके अन्तर्गत मूत्रकृष्णु, मूत्रा-घात आदि मूत्ररोगों का ही वर्णन है। कहीं पर भी बस्ति रोगों में प्रमेह का उल्लेख नहीं है। मेदल रोगों में प्रमेह का स्पाटतः उल्लेख है तथा चिकित्सा में भी मेदोरोग-चिकित्सा से प्रमेह चिकित्सा सम्पन्न हो जाती है जबकि मूत्र रोग चिकित्सा सूत्र से प्रमेह में कोई लाभ नहीं होता। अतः प्रमेह को मेदोरोग ही माना जाता है, मूत्र-रोग नहीं लेकिन मूत्र में अभिव्यक्ति होने से ब्यंवहार में इसे मूत्र-रोग भी कह दिया जाता है।

इस सम्पूर्ण प्रसङ्ग को निम्न उपशीर्णकों के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है— •

प्रमेह ज्युत्पत्ति एवं परिमापा—

प्र + मिह क्षरणे + करणे घत् । प्रकर्णेणमोहित क्षरित त्रीयिदिरनेन इति । रोग विशेषः । तत् पर्यायः मोहः, मूत्र-दोषः इति राज निघण्टु । बहुमूत्रताः इति हेमचन्द्रः ।

(शब्दकल्प द्रुम)

इसे यों भी स्पष्ट किया जाता है कि प्रकर्णेण प्रभूतें प्रमुरं वारम्वारम् वा मेहित मूत्रत्यागं करोति यस्मिन् गोगे स प्रमेहः। अर्थात् जिसमें अधिक मात्रा में या वारवार मूत्रत्याग होता हो वह रोग प्रमेह है। आचार्यं वाग्मट ने इस मूत्र की अप्रवृत्ति को मूत्रकृष्ट और मूत्राघात माना है तथा अति प्रवृत्ति को प्रमेह । वाग्मट के इस वाक्य से यह स्पष्ट होता है कि प्रमेह में मूत्र की अतिप्रवृत्ति होती है। लेकिन सान्द्रमेह, पिष्टमह एवं शनैः मेह में मूत्र की अतिप्रवृत्ति की व्याख्यायों की जा सकती है कि मूत्र के माध्यम से दोशों की अति प्रवृत्ति तथा वार वार मूत्र की प्रवृत्ति होना ही अतिप्रवृत्ति है। यह सभी को स्वीकार्य है कि प्रमेह में शरीरस्थ क्लेद (ज्समें अनेक घटक मौजूद रहते हैं) मूत्र से वहिभूत होता है। आचार्य सुश्रुत भी मूत्र की अति प्रवृत्ति होता है। आचार्य सुश्रुत भी मूत्र की अति प्रवृत्ति होता है। आचार्य सुश्रुत भी मूत्र की अति प्रवृत्ति होता है। आचार्य सुश्रुत भी मूत्र की अति प्रवृत्ति को प्रमेह मानते हैं।

२. प्रमेह की उत्पत्ति में मृत्र का दायित्व-

उपर्युंक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रमेह में मूल उपेण विकृति बस्ति में नहीं होती। लेकिन प्रमेह के निवान, सम्प्राप्ति, लक्षण एवं चिकित्सा आदि में एक भी प्रसंग ऐसा नहीं है जिसमें बस्ति या मूत्र 'को अलग करके देखा जा सके। अतः यहां उन प्रसंगों को संक्षेप में उल्लेख किया जा रहा है जिनमें बस्ति या मूत्र को प्रमेह से सम्पृक्त करके देखा जाता है तथा सम्भवतः इसी सम्पृक्तता के कारण प्रमेह को मूत्र रोग कहने की पर-म्परा सी चल पड़ी है। यथा—

(क) प्रमेंह के दोप—प्रमेह में कफ, पिला और वायु इन तीनों की दुष्टि का निर्देश है। इन तीनों में प्राधान्येन कफ की विकृति होना अनिवाय है। कफ में बहु द्रवत्व होगा तभी प्रमेह होगा अन्यथा प्रमेह न होकर अन्य ही कोई रोग होगा। कफ के गुण-धर्मों को देखने पर पता चलता है कि उसमें द्रवत्व गुण नहीं है, पिन्छिलत्व अवश्य है। अतः प्रमेह के विशिष्ट हेतुओं के सेवन करने पर श्लेष्मा में पिन्छिलत्व के माध्यम से अभिवृद्ध होने वाला द्रवत्व ही प्रमेहजनक है। यह पिन्छिलत्व एवं द्रवत्व शरीरस्थ क्लेट में भी होता है।

(ख। प्रमेह के दूष्य—प्रमेह के विशिष्ट दोप कफ में बहुद्रवन्व एवं दूष्यों का क्लेदरव ही प्राधान्येन निर्देश्य हैं। मेट, रक्त, शुक, अम्बु, तसा, लसीका, मज्जा, रस, ओज एवं मांस ये सब दूष्य हैं। इनका क्लेदरव ही प्रमेह में मूत्र-मार्ग से क्षरित होता है।

(ग) दोष-दूष्य संमूच्छंना मूत्र के दायित्व का वर्णन करने के सन्दर्भ में दोष-दूष्य संमूच्छंना का संक्षिप्त उल्लेख आवश्यक हैं—

जब निवान, दोप, एवं दूष्य ये तीनों ही प्रमेह जनक होते हैं तो सबसे पहले अभिवृद्ध तद्रूप प्रलेख्मा शरीर में विमृत होता है तथा विसपित होता हुआ वह मेद से मिश्री-भूत होता है। यह मिश्रीभूत स्वरूप शरीर के क्लेद एवं

१. इति विस्तरक्षः प्रोक्ता रोगा मूत्राप्रवृत्तिजाः । निदान लक्षणैस्टर्वं वक्ष्यन्तेऽति प्रवृत्तिजाः ॥ (अ हः नि. ६/४०)

र किचिच्चाभ्यधिकं मूत्रं तं प्रमेहिणमादिशेत् । प्रवृत्तं मूत्रमत्यर्थं तं प्रमेहिणमादिशेत् । (सु. नि. ६/२२, ६/२३)

३. बहुद्रवः ग्लेप्मा दोषविशोपः । (च नि. ४/६)

नवत्व प्रतेषमा होग्रातिकार दनि नवतन गत र को प्रवेशकारी

TA PION FERENCE IN

मांस से संसृष्ट होता है तथा मूत्रक्य में परिणत होता है।

इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में यह स्पष्ट है कि विकृत क्लेद और मेट मूत्र में परिणत होने की स्थिति में वस्ति में गमन करते हैं, अतः वस्ति भी प्रमावित होती है। लेकिन बस्ति के प्रमावित होने मात्र से ही तो इसे वस्ति एोग नहीं कह सकते। हृद्गुल्म और वस्ति गुल्म इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। जिनमें विकृति का मूल महास्रोतस् में रहता है तथा उसे ध्यान में रखकर की गई चिकित्सा से ही लाभ होता है। इसीलिये हृद्गुल्म की हृद्रोगों में तथा वस्तिगुल्म की दस्ति रोगों में गणना नहीं की है। उसी तरह से उद्भव एवं चिकित्स्य स्थल मेदोवह स्रोतस् होने के कारण प्रमेह

सुर्श्रुत एवं वाग्भट भी दोष-दूष्य संमूच्छ ना कम में वस्ति के महत्व को उल्लिखित करते हैं, लेकिन उनके वर्णन से भी स्पष्ट है कि वे वस्ति को व्यक्ति स्थल या प्रभावित क्षेत्र ही मानते हैं। उद्भवस्थल वस्ति के रूप में उन्हें भी स्वीकृत नहीं।

् (घ) प्रमेह का प्रधान लक्षण मूत्रातिवृद्धि मूत्र की वृद्धि या अतिप्रवृत्ति को प्रमेह का प्रधान लक्षण माना गया है। अतः ऐसी स्थिति में मूत्र या मूत्रवह स्रोतस् में, विकृति नहीं मानी जाय यह कैसे हो सकता है। क्यों कि स्रोतिस् की दृष्टि के लक्षणों में स्पष्टतः कहा गया है कि --

'अतिप्रवृत्ति सङ्गी वा''' ''' (च. वि. ५/२४)
यहां अतिप्रवृत्ति स्रोतस् में अभिवाहित होने वाले रसादि
की मानी गई है। दे अतः मूलवह स्रोतस् में अभिवाहित
होने वाले मूत्र की अविप्रवृत्ति मूत्रवहस्रोतस् की विकृति
को सूचित करती है। अंतः मूत्रवह स्रोतस् की विकृति
जिस रोग में हो वह मूत्र-रोग क्यों गहीं होगा ? इसका
उत्तर ''हां' में देने से पहले प्रमेह में स्रोतोद्दिक के प्रकरण
को देखना होगा।

३. प्रमेह -में स्रोतोदुष्टि—

ऊपेर दीप-दूष्य संमूच्छंना प्रकरेण में यह कहा गया

है कि प्रमेह में मेदोवह स्रोतो दुष्टि एवं सूत्रवहस्रोतोदुष्टि दोनों ही होती हैं। लेकिन दुष्टिप्रकार में भिन्नता होने से प्रमेह रोग के प्रति उत्तरदायित्व भी दोनों का भिन्न २ है। प्रमेह में स्रोतो दुष्टि प्रकरण को निम्नानुसार वणित किया जा सकता है—

(अ) मेदोवह स्रोतोद्धि — अन्यायाम, दिवास्वप्न तथा मेद को वढ़ाने वासे पदार्थों का सेवन तथा वारुणी का अत्यधिक सेवन करने पर मेदोवह स्रोतस् दूषित हो जाते हैं।

उपयुं कत स्रोतो दुष्टि प्रकरण को प्रमेह के हेतु कों, में घटित करें तो दोनों में साम्य है अर्थात् मेदो दुष्टि के हेतु प्रमेहोत्पादक भी होते हैं। अन्य हेतुओं से उत्पत्न प्रमेह की सम्प्राप्ति में भी मेद की दुष्टि को स्वीकृत किया है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रमेह में मेदो वहदुष्टि निश्चित रूप से होती है। मेदो वहस्रोतस् का मूल वृक्क और वपावहन को कहा गया है। प्रमेह में वृक्कों की विकृति का होना तथा मेदिस्वयों में प्रमेह की आधिनयेन उत्पत्ति होना भी इसी बात की पृष्टि करते हैं।

यहां वृक्क विकृति का तात्पर्यं उससे होने वाले कार्यं में विकृति होना है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक विज्ञान में रदत के छनने से मूल की उत्पत्ति होना माना है। अतः मूत्र में प्राप्त होने वाले तत्त्व पहले रक्त में स्थित रहते हैं। इस प्रसङ्ग की आचार्यों के इस वाक्य से—'शरीरक्लिदं पुनदू पयन् मूत्रत्वेन परिणम्यति' से तुलना की जा यकती है। साथ ही मूत्र के कार्यं 'विक्ति-पूरण विक्लेदकृत्यूत्रम्' को भी उद्धृत किया जा सफता है। जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि शरीरस्थ क्लेद का नियन्त्रण वृक्क के माध्यम से मूत्र के हारा होता है। लेकिन यहां इतना याद रखना चाहिये कि हम सामञ्जस्म भले हो किसी भी वाक्य का अन्य वाक्य से कर दें, लेकिन चिकित्सा सूत्र में मेदोवहस्त्रोतस् की विकृति का अपाकरण ही आयुर्वेदीय चिकित्सा का वैशिष्ट्य है तथा यही एक

^{9.} च. नि. ६। ६

२. वितप्रवृत्तिरित्यादिना सामान्येन स्रोतोदुष्टि लक्षणमाहुः अतिप्रवृत्तिरिह स्रोतोवाह्यस्य रसादेवीद्वव्याः । (च. वि. ४।२४ पर जुकपाणि)

३. अग्यायामाद्वितस्वप्तान्मेद्यान्। चातिभक्षणात् । मेदोवाहीनि दूष्यन्ति वारुणाध्याति सेवनात् ॥ (ज. वि. १११६)

an alon fallocan

प्रमुख काधार है जिसके कारण प्रमेह का अधिष्ठान मेदो-वह स्रोतस् को निःसन्देह कहा जा सकता है।

(त) मूत्रवह स्रोतोदुष्टि—मूत्र के वेग से युक्त व्यक्ति यदि कुछ खाये या स्ती-सेवन करे अथवा मूत्र के वेग को राके तो मूत्रवहस्रोतस् दृषित होते हैं।

मूननहस्रोतोदुष्टि के इन संक्षिण्त हेतुओं को देखकर प्रमेह-परक कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। लेकिन मून इस्रोतोदुष्टि के लक्षणों से अवस्य ही सहयोग प्राप्त हो मकता है। यया—अतिमृष्ट अयवा अतिवद्ध, अल्प-अल्प अयवा वार-वार, वहल (गाढ़ा) एवं शूल सहित सूव स्थाग करते हुए देखकर यह कहा जा सकता है कि इसके मूनवहस्रोतस् दृष्ति हो गये हैं।

प्रमेह में मूल की सितप्रदृति प्रधान लक्षण है। अतः मूलनहस्रोतोदृष्टि से इसका साम्य देखते हुए यह कहा जा मकता है कि प्रमेह में मूलवहस्रोतस् भी दूषित होते हैं। सालोद्धिर परक निष्कर्ष -

प्रमेह की सम्प्राप्ति को देखकर यह कहा जा सकता है कि प्रमेह का अधिण्ठान मेदोवह स्रोतस् तथा सभी प्रमेहों में मेदोबुण्टि अवश्य होती है। विकिन प्रमेह की अभिन्यक्ति मूत्र मे होती है। परिणामस्वरूप मूत्रवहस्रोतस भी दूपित होते हैं। सतः निष्कर्ष रूप में यही कहा जाएगा कि प्रमेह में मूत्रवहस्रोतस् की दुष्टि मेदोवह स्रोतोदुष्टि के कारण होती है। चरक संहिता में कहा भी है कि स्रोतस् दूपित होकर दूपरे स्रोतस् को दूपित करते हैं। प्रमेह में स्रोतोदुष्टि का यही प्रकार स्पष्ट दिखाई देता है। अमेह में स्रोतोदुष्टि का वही प्रकार स्पष्ट दिखाई देता है। अमेह में स्रोतोदुष्टि सा वही प्रकार स्पष्ट दिखाई देता है। स्रोत को बाद में दूपित

होने वाले मूत्रबहल्गेतस् के आधार पर मूत्ररोग कहना गलत तो नही है, पर इसे मूत्ररोग की अपेक्षा मूत्रदोप कहां जाय तो अधिक उचित होगा। सम्भवतः मूत्र के इसी विक्कृत स्वरूप के कारण इसे मूत्ररोग (व्यवहार में) कहा जाने लगा है।

पुत्र के स्थल्प ज्ञान से प्रमेह ज्ञान —,

यद्यपि उत्पर के प्रसङ्गों में यह स्पण्ट किया है कि प्रमेह मेदोरोग है मूत्र रोग नहीं। तथापि मूत्र रोग मानने में यह युक्ति भी दी जा सकती है कि प्रमेह के ज्ञान में सर्वाधिक महत्त्व मूत्र के स्वरूप का है। मूत्र के वर्ण, स्वरूप, रस, गन्ध आदि को देखकर प्रमेह का ज्ञान एवं प्रमेह के भेद किये जाते हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

- (क) जल के समान, इस्तु के समान, घन या प्रसन्न भाग आदि लक्षण युक्त मूत्र को देखकर कफज प्रमोह जाने जाते हैं। इसी तरह पित्तज और कफज प्रमोह का स्वरूप प्रथक्शः निर्दिष्ट है।
- (ख) प्रमेह के पूर्वरूप में कहा गया है कि उस व्यक्ति के मूत्र पर चीटियां लग जाती हैं।
 - (ग) हारिद्रवर्ण और रुधिर युक्त मूत्र का त्याग करने वाले व्यक्ति में यदि प्रमोह के पूर्वरूप का इतिहास नहीं प्राप्त होता है तो प्रमोह नहीं होता अपितु उसे रक्त-पित्त का प्रकोप मानना चाहिंए।

इस प्रकार के अन्य अनेक उदाहरण भी दिये जा सकते हैं जिनसे यह सिद्ध हो सकता है कि प्रमेह में इ.मून विकृति होती है। लेकिन इसी आधार पर इसे मूनरोग कहेगे तो फिर रक्तिपत्त के उपयुक्त 'हारिद्रवर्णम्'''आदि

१. अतिमृष्टमितवर्द्धं " " मूत्रवहान्यस्य स्रोतांसि दुण्टानीति विद्यात् । (च. वि. १।८ ।) अतिमृष्टं व अतिवद्धं वेति विकस्पेन बोद्धव्यम्, अतिसृष्टातिबद्धयोरेकत्रा संभवात् । अल्पाल्पं वा तथा भीक्ष्णं वेति च विकल्पः । (चक्रपाणि)

२. साध्यास्तु में दो यदि नाति दुष्टम् । (ब. हं. नि. १०१४१)

^{···} भ दोनाऽतिदुण्टिमत्यनेनैतज्ज्ञापयति, सर्दमे हेषु मे दोदुष्टिरवर्ष्यं भाविनीति · · · · (अरुणदत्त)

३. स्रोतांसि स्रोतांस्येव · · · · (च. वि. ११६)

स्रोतांति घातवश्च दुण्टाः प्रत्यासन्नानि स्रोतांसि धात्वन्तराणि च स्वदोप संक्रान्त्या दूषयन्तीत्यर्थः। (चक्रपाणि)

४. ।क) वर्ण रसं स्पर्णमथापि गन्धं, यथास्वदोधं भजते प्रमेहः । (च. चि ६।१२)

⁽ख) मृत्रवर्णादिभेदेन भेदी मेहेपु कल्प्यते । (अ. ह. नि. १०।=)

लक्षण भी रक्तिपत्त को मूलरोग कहलवाने के लिए पर्याप्त होंगे। इस प्रसंग में एक वात का और ध्यान देना चाहिए कि स्वेद, मूत्र, पुरीष आदि ऐसे मल हैं जिनमें शरीर की अनेक बिक्नित्यों के परिणाम प्राप्त होते हैं अर्थात् शरीर में कोई भी विक्नित हो तो उससे उत्सृष्ट विष या त्याज्य तत्त्व इन्हीं मलों के हारा विह्मू त होते हैं। अतः शरीर में होने वाली किसी भी विक्नित के कारण मूत्र भी दूषित होगा ही, तो ध्या.हम उसे भी मूत्र रोग कह देंगे। और तो और ज्वर रोग में ही मूत्र में दोष या विक्नित हिण्टगोचर होती है, पर हम उसे मूत्ररोग नहीं कहते।

प्रमोह को मूत्ररोग नहीं मानने में एक युक्त और दी जा सकती है—मूत्ररोग और प्रमोह की चिकित्सा में पार्थक्य। यथा—

प्रवेह एवं सूत्ररोग को चिकित्सा में भिन्नता

प्रमोह की चिकित्सा में कहा गया है कि दो तरह के प्रमोही होते हैं, एक स्थूल और दूसरे कुण। स्थूल में संगोधन और कुण में सन्तर्ण करना चाहिये। इसके अतिरिक्त प्रमोह चिकित्सा के प्रसङ्ग में यह स्पष्ट निर्देश है कि कफ, क्लेद और मेद को बढ़ाने वाले हेतुओं का त्याग करना चाहिये।

इसी प्रसङ्ग में मोदोवहस्रोतोदुष्टि के चिकित्सा प्रसंग
को देखें तो वहां कहा गया है कि विविधाशितपीतीय
क्ष्याय में कहे गये क्रम का सेवन किया जाय (च. वि.
४।२७)। अष्टीनिन्दितीय में गुरु एवं अपतर्पण द्रव्यों के
प्रयोग का निर्देश है (च. सू.२१।२०।२८)। विविधाशितपीतीय अध्यायुः में मोदोरोगोंने प्रमोह का प्राधान्येन निर्देश
है (च. सू २५।१४) तथा वहां पर चिकित्सा भी एक
जैसी ही कही गई है। मूलवहस्रोतस् की विकृति में मूत्रकृच्छ

में निर्दिष्ट क्रिया करने का उल्लेख है (च. वि. ४१२८।)।

बतः दोनों की चिकित्सा—प्रक्रियायें भी भिन्न है। प्रमेह में मूल हेतु मेदोधातु की या मेदोवह स्रोतस् की दुष्टि का अपाकरण करने पर मूबदोष का विनिवर्तन हो जाता है। जबकि मूत्रवह स्रोतस् की दुष्टि के दूर करने में मूब साक्षात् रूप से प्रभावित होता है। उपसंहाद—

- १. प्रमोह मेदोज रोग है।
- २. यह मूत्ररोग न होकर मूत्रदोष है।
- ३. प्राधान्येन में दोवहस्रोतस् दूषित होते हैं तथा बाद में ये ही स्रोतस् मूतवह स्रोतस् को विकृत करते हैं। अतः लोक-न्यवहारं में इसी आधार पर इन्हें मूत्र-रोग कहा जाता है।
- ४. प्रमेह का अधिष्ठान में दोवह स्रोतस् है जब कि अभि-व्यक्ति का स्थान मूलवह स्रोतस है।
- ४. प्रमेह में मूत्र प्रभावित हुये विना नहीं रहता।
- ६. प्रमेह की चिकित्सा मेदोवह स्रोतोदुष्टिकी चिकित्सा से साम्य रखती है।
- ७. मूत्र शरीरस्थ मलों का या त्याज्य तत्वों के उत्सर्धन का माध्यम है। अतः मे दोवह स्रोतस् में दुष्टि होने पर त्याज्य तत्वों को त्यागने के आधार पर ही इसे मूलरोग नहीं कहा जा सकता।
- दः बस्ति रोगों में प्रमेह की गणना नहीं है जविक मेदोज रोगों में प्रमेह की गणना है।

--वैद्य श्री बंनवारी लाल गौड़ भिष्गाचारं, थायुर्वेद-बृहस्पति; एम. ए., द्विप्लोमा इन जर्मन मौलिक सिद्धान्त विभाग राष्ट्रीय थायुर्वेद संस्थान, जयपुर (राजस्थान)

भूत्र विषमयता

जिनको वृक्क रोग के साथ हृदय रोग भी हो विशेष-कर वृद्ध पुरुषों में, उन्हें अधिक माला में सिरा द्वारा तरल देना भी खतरनाक है क्योंकि अधिक तरल को सहन करना दुवंल हृदय के वश को वात नहीं है।

पथ्य चिकित्सा—रोगी को पूर्णतः विश्राम देना चाहिए। १० कप दुग्ध दिन में ६-४ बार, स्वल्प बिस्कुट,

o पृष्ठ १०८ का शेषांश क

थोड़ी रोटी फल के साथ दिया जा सकता है। कम प्रोटीन वाला धोजन देना चाहिये। इससे रक्त में सल्फेट भी घट जाता है। मध्यम प्रोटीन भोजन देना अच्छा रहता है।

प्रातःकाल—रोटी या टोस्ट २ बॉस, मक्खन या घी आधा औस, मधु आधा औंस, दुंग्च व चाय ४-४ बॉस। —आगे पृष्ठ १२६ पर मध्यान्ह—रोटी ३ औंस, हरी सन्जी, फल, आलू २-२ बोंस, मक्खन या घी आधा औंस ।

सायङ्काख — रोटी या टोस्ट, आलू, हरी सब्जी ३-३ श्रोंस, फल ४ श्रोंस, मक्खन आधा श्रोंस तथा दिन भर में चीनी कुल २ श्रोंस। १-१॥ मास तक यही भोजन व्यवस्था दी जाती है। इसके बाद रोगी के बलानुसार भोजन में धृत, चीनी कार्बीज कुछ श्रीर बढ़ा दिया जाता है।

दिन- भर में ३ लिटर तक जल अवश्य पिलाना चाहिए। मूत्रं अधिक आ रहा हो तो रोगी को लवण भी ६-७ ग्राम दैनिक मात्रा देना चाहिए। रक्तभाराधिक्य की स्थित में नमक का प्रयोग अधिक मात्रा में नहीं किया जा सकता। पर रक्त भार को घटाने की अधिक औप-धियां भी नहीं देनी चाहिए क्योंकि इससे ब्रुक्कों को रक्त और भी कम मिलता है।

रोग तीय रूप में हो, रक्त में यूरिया १०० मिली. प्रतिशत से अधिक हो तो पानी दिन में १॥-२ लिटर से अधिक नहीं देना चाहिए तथा प्रत्येक बार जल में ग्लूकोज मिलाकर देना चाहिए। कुछ मनखन भी देना चाहिए। जब वृक्क मूत्र सम्बन्धी मलों को निकालने में अस-मणें हो गये हों, मूत्र की मात्रा कम हो, यूरिया की निकासी कम हो तो अन्य आहार बन्द करके ने छटांक उबले चावल चीनी के साथ दिन में तीन दार देने चाहिए और मृदु विरेचक औपधियों द्वारा अथवा वस्तियों के द्वारा आंतों के रास्ते से मलों को निकालने का प्रयास करना चाहिए। आयुर्वेद की पंचकमं चिकित्सा यहां, प्रयोग करनी चाहिए।

आयुर्वेद में — सर्वतोभद्र रस, तारके म्वर रस, शिलाजि-त्वादि लौह, गोक्षुरादि क्वाथ, गोक्षुरादि गुग्गुल, पुनर्नवा-मण्हर, पुनर्नवारिण्ट, लौहासव सादि प्रशस्त योग है।

बाधुनिक चिकित्सा विज्ञान द्वारा—कृतिम वृंदक व Renal Tranplautation की चिकित्सा अभी तंक परीक्षणाद्यीन हैं। वैसे-कई प्रयोग सफल भी हुए हैं। कृतिम वृदक द्वारा ढाइलैंसिस चिकित्सा के सप्ताह में १-२ वार् १०-१२ घंटे लेने से २॥-२॥ वर्ष और जीवित रह सकता है पर यह चिकित्सा वही महिगी है।

💺 डायलैसिस 🖏 .

🗣 शेवांश पृष्ठ १६३ का 🗳

आयुर्वेद मत ही डाइंलीसस—

प्राचीन एवं आधुनिकं चिकित्सा विज्ञान के सिद्धान्तों का समन्वय एवं गहन अध्ययन करें तो आयुर्वेद के विधिष्ट सिद्धान्त आधुनिक जगत में शतप्रतिशत सही उत-रते हैं, क्योंकि, आधुनिक चिकित्साकों को आयुर्वेद के सिद्धांत एवं जड़ी बूटियों का पूर्ण ज्ञान नहीं होता है। ज़बिक प्राची-नतम् वैद्यों को आधुनिक शरीर रचना एवं सम्प्राप्त (वैथो-लाजी) का ज्ञान नहीं होता है और नहीं वनस्पति विज्ञान विशेषज्ञों की सहायता ही ली जा सकती है। इसलिये आयुर्वेद में अन्वेषण नहीं हो पाते हैं। अत्वै निम्न तथ्यों हारा हाइलेसिस की प्रक्रिया को आयुर्वेद सिद्धान्तों से पूर्ण-तया समन्वय कर सकते हैं।

प्राचीन वैदिक युग में गौमूल का धारीरिक रोगों को नष्ट करने के लिए एवं यक्तत की किया सुधारने के लिए विनष्टीकरण एवं रक्त निर्माण प्रक्रिया के लिये (detoxication and Heamopoitic action) लम्बे समय से प्रयोग किया जाता रहा है। प्राचीनतम आयुर्वे-दिक ग्रन्थों में गौ मूत्र को विभिन्न प्रकार की व्याधियों का शमन करने के लिए नवाथ में जल के स्थान पर गौ मूल का प्रयोग किया गया है अर्थात् आधुनिक विज्ञान में जिस प्रकार से Mannitol औषधि renal failure के रोगी की एवं भरीर से दूंपीविष (Toxaemia or Septiceamia) को दूर करने के लिए देते हैं। यह औपिध भी यूरिया बादि (मूत्र) से बनाई जाती है। जत्रिक गौमूत्र भी आयु-र्वेदिक मैनीटॉल व्याधियों में विभिन्न प्रकार के क्वाथों के साय देने पर शरीर से दूषीविष आदि भयङ्कर ज्यावियों को दूर करता है। इस आयुर्वेदिक मैनीटाल के द्वारा मूत्र निर्माण प्रक्रिया सुधरती है। रक्तगत यूरिया एवं रक्तगत क्रेटीनित का स्तर सामान्य अवस्या में आता है और रोगी पूर्ण स्वस्य हो जाता है। इसके अतिरिक्त वृक्क कार्या-वसाद रोग में पंचतृणमूल विश्व गौमूत वादि चिकित्सा से रोगी लाभान्वित होता है।

डा॰ (श्रीमती) शोभा मीबार—डिमांसट्रेटर, डा॰ जयराम यादव—लेक्चरार डा॰ यशदत्त शुक्ल—रीडर, प्रो॰ पी॰सी॰ जैन—स्नातकोत्तर शारीर विभाग राजकीय आयुर्वेदिक कालेज, लख्नक।

STEED FOR STEED
आयुर्वेद का दिषम पुरुष दोष धातु मल मूलक है। दोप साम्यावस्था में रहकर देह का धारण और विभिन्न कारणों से दूषित होकर अन्य संघटक द्रव्यों धातु एवं मल को दूषित करके व्याधि उत्पन्न करने के कारण होते हैं।

जिन परिस्थितियों के कारण दोषों की अवस्था साम्यावस्था से विपमावस्था को प्राप्त होती है वह उसके निदान हैं। दूषित दोप प्रकोपक कारणों से दूषित होकर किस प्रकार द्रव्यों की प्रभावित कर रोगोत्पत्ति करते हैं, इस सम्पूर्ण प्रक्रियां की संप्राप्ति की संज्ञा दी गयी है.

प्रमेह रोग मूत्रजन्य व्याधि है जिनमें विभिन्न कारणों से दोप विकृत दोषों के प्रभाववधा मूत्र की मात्रा और प्रवृत्ति में वृद्धि हो जाती है। प्रमेह शब्द प्र उपसगेपूर्व कि मिह—क्षरणे धातु से घं प्रत्यय करके बनता है। (प्र—मिह—घ) इसका तात्पर्य है विकृत मूत्र का त्याग करना। इस कथन की पुष्टि आचार्यों ने प्रमेह के लक्षण का वर्णन करते हुए "सामान्य लक्षणं तेषां प्रभूताबिल मूतता" शब्दों द्वारा की है। महिष् चरक ने इनको त्रियोष के प्रकृपित होने के कारण उत्पन्न होने वाली व्याधि कहा है और इसके २० भेद भी उनकी सहिता में विणत हैं। प्रमेह महिष् सुश्रुत के अनुसार सहज और अपथ्य कारण-जन्य प्रकार का बताया गया है। सहज प्रमेह की उत्पत्ति माता के बीज दोप के कारण होती है और अपथ्य आहार विहार सेवन से अहिताहोजन्य प्रमेह रोगियों का विभेद करते हुए सुश्रुत ने कहा है कि सहज प्रमेह से

पीड़ित रोगी कृश, रूक्ष, थोड़ा खाने वाला होता है जबिक इसके विपरीत अहिताहार जन्य प्रमेह का रोगी अधिकांशतः स्थूल, अधिक खाने वाला, स्निग्ध, लेटने-बैठने, सुख अनु-भवी होते हैं। स्त्रियों के सम्बन्ध में आचार्य चरक का मत है कि जिन स्त्रियों में नियमित रूप से रजोदशंन होता है उन्हें प्रायः प्रमेह और जिन स्त्रियों का शरीर मासिक धर्म के कारण नियमित रूप से शुद्ध नहीं हो पाता उन्हें प्रमेह की संभावना रहतीं है।

प्रमोह यद्यपि त्रिदोष के प्रकृषित होने के कारण उत्पन्न होने वाली व्याधि है। किंतु तीनों में कफ दोप प्रधान होता हैं। श्लेष्मा उचित निदान उपस्थित होने पर कुपित होकर शिथिलता के कारण शीझ शरीर में फैलता है और मेद के साथ मिलकरे उसे दूपित करता है। विकृत हुका कफ मांस के अधिक घट जाने से मेद के साथ मिलकर शरीर क्लेद और मेद के साथ सम्बद्ध होता है और कंफ मांस से दूषित होने के कारण मांस में विभिन्न प्रकार की विक्र-तियां यथा शराविका कच्छपिका पिडका आदि उत्पन्न होती हैं। इसके पश्चात यह शरीरस्थ क्लेद को द्षित करके मुत्र को दूषित कर देता है। वंक्षण प्रदेश और बस्ति से उत्पन्न होने वाले मूत्रवहस्रोतसों के भेद और क्लेद से भरे हुए भारी मुख को प्राप्तः कर वह एक जाता है। तत्प-श्चात प्रकृति विकृति रूप प्रमे ही और उनकी असाध्यता या स्थिरता को उत्पन्न करता है। प्रमोह रोग के हेतु प्रकोपक कफ, में दु, मांस, अरीरस्य क्लेद, रस, वसा, लसिका और

La Kidilaledekii

ओज आचार्य करक ने इस संघटकों की प्रमोह के दूष्यों के अन्तर्गत कहा है।

सामान्य रूप से यह रोग समाज के उस वर्ग में प्रमुखता से पाया जाता है। जो शारीरिक अम से विमुख होंकर सम्यन्नता का जीवन व्यतीत करते हैं। यह लोग अधिकतर मुख आसनीं पर वैठकर आराम प्रदान करने वाली सामग्रियों का उपभोग करते हैं तथा कक मेद वर्धक .पीठिटक द्रव्यों का प्रधानता से प्रहण करते हैं। इनका जीदन सुखाल्यागय होता है। महर्षि 'चरक ने प्रमेह रोग ं का निदोन वर्णन कंरते हुए गुदगुदे विस्तर पर वेष्टा रहित स्थिति में पड़े रहना, अधिक स्वप्न अर्थात सोना, ग्राम्य जल जन्तुओं तया थानूप मांस का तेवन, दुग्ध का सेवन, नवीन अन्त तथा वर्षा जल का सेवन, गुड़ या उसकी विकृति शर्करा से बने हुए पदार्थी का अधिक माता में प्रयोग करते हैं जिसके कारण उनमें अत्याधिक या वार-बार गंदले मूत्र त्याग की प्रवृत्ति हों जाती है। दंघि और दुख के विकारों का भी समावेश इनमें किया है। वाग्भट ने दिघ शब्द के स्थान पर गो रस शब्द का प्रयोग किया है यह सभी निदानं कफवर्षंक हैं, और इसी कारण प्रमेह की उत्पत्ति करते हैं। ग्राम्य एवं आनूप से आचार्यं चरक का मन्तव्य दकरे एवं मछली भैंस सुअर आदि का सांसं सम्मि-लित किया जा सकता है। साचायों के अनुसार यद्यपि प्रमेह में प्रमुख रूप से कफ दोप की ही विकृति होती है, किन्तू बात भीर पित्त भी प्रमेह चल्पन करने के हेतु होते हैं।

कफ से १ श्रकार के प्रमेह, नित्त से छः प्रकार के तथा बात से चार प्रकार के होते हैं। सुश्रुतानुसार उन असपान एवं विहार का सेवन जो मेद, मूत्र एवं कफ की उत्पत्ति करता है प्रमेह के हेतु हैं। इसके अन्तर्गत आचार्य मधुड, अन्ल, लवण, स्निग्ध, शुक्र, पिच्छित, शीतल, नबीन धान्य, सुरा, आनूप, मांस ईख गुड़ दिध (गोरस) आदि, एक ही स्थान पर बैठे रहना, दिवास्वप्न एवं विधि रहित शयन प्रमेह का कारण है। सुश्रुत ने हो केफ से उत्पन्न होने वाले १० प्रमेहों को साध्य, पित्त से उत्पन्न ६ प्रमेहों को याप्य और चार वाल जनित प्रमेहों को आसाध्य कहा है।

चरक ने प्रमें ह की साध्यासाध्यका से संबंधित इसी प्रकार का विवेचन प्रस्तुत किया है, इन्होंने क्ष्म पित्त वाल से उत्पन्न प्रमें ह की क्रमशः समक्रिय, विषम क्रिया और महात्यय कहा है। समक्रिय से तात्पर्य है कि क्षमोत्पादक द्रव्यों के सेवन से क्षम की वृद्धि होती है जीर इस रोग के दूष्य भी चूँकि कफ के समान धर्मी हैं इसिलये साध्य व्याधि होती है। पित्तज प्रमें ह में दोप और दूष्य दोनों की चिकित्सा मिन्न होने के कारण याच्य होता है। वात-जन्य प्रमें ह धातुओं का हास अतिशीधना से होता है। उसकी पूर्ति उतनी ही शीधना से करने वाले द्रव्यों का लभाव होने के कारण इसे असाध्य कहा गया है।

वात पित एवं श्लेष्मा से उत्पन्न होने वाले विभिन्न प्रमेहों की सम्प्राप्ति हिभिन्न आयुर्वेदीय आचार्यों के अनुसार निम्न तालिकावत है—

संहितायें	सामान्य संग्राप्ति
चरक-	कुपित वात, पित्त और कफ दोप मुत्राशय में जाकर मूल को दूपित कर अपने लक्षण वाले वातज, पित्तज, कफज प्रमेहीं को उत्पन्न करते हैं।
सुश्रुत—	प्रमें होत्पादक आहार विहार का सेवन करने वाले पुरुप के अपरिपक्त (आमावस्था) अवस्था में ही वात, पित और कफ मेंद्र एवं वसा के साथ मिलकर मूचवाही स्रोतों के आश्रय से नीचे की ओर आकर विह्त मुख का काश्रय लेकर जब बाहर निकलने लगते हैं तब प्रमेहों की उत्पत्ति होती है।
माधव निदान—	गुदगुदे बिस्तरे पर निश्चेष्ट आराम से पड़े रहना, सुखपूर्वक अधिक सोना, दही का सेवन, जाय्य, जल कंन्तु तथा आनूप प्राणियों के मांस रस का सेवन, दुग्ध सेवन, नवीन अन्न तथा नवीन वर्पाजल, गुड़ (या शर्करा) के बने पदार्थ तथा अन्य सम्पूर्ण कफवर्धक पदार्थों का सेवन करना प्रमेह का उत्पादक हेतु है।
सप्टांग हृदय—	शरीर के कलेद, स्वेद, में दस, बता और मांस को दूषित करके वस्ति में लाकर स्वयं आकर प्रश्ने हों को उत्पन्त करता है।

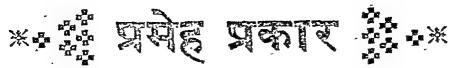
आधुनिक काल में वैज्ञानिकों ने भी प्रमेह के कारणों में अधिक कार्बोहाइड्रेट और वसायुक्त आहार का ग्रहण करना, अल्प शारीरिक परिश्रम को सम्मिलत किया है उसके अनुसार अन्याशय (Pancreas) से निकलने वाले इन्सुलिन नामक हारमोन को रक्त मिश्रित कार्बी-हाइड्रेट से कोण को शक्ति की प्राप्ति का उल्लेख किया है। विभिन्न कारणों से जब अग्याशय के कोषों का नाश हो जाता है तब Insulin की उत्पत्ति कम हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में खूकीज की माला रक्त में बढ़ जाती है और प्रमेह की उत्पत्ति होती है।

प्रमेह की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दो प्रकार के विचार आधिनक काल में उपलब्ध हैं, जिनके आधार पर यह माना जाता है कि यह व्याधि आनुवंशिक कारणों से एवं जन्म के पश्चात विभिन्न कारणों से उत्पन्न हो सकती है। आज भी प्रमेह को दो त्रह का मानते हैं। जिसके प्रथम प्रकार में रक्त एवं मूल में शकरा की वृद्धि हो जाती है किन्तु शर्करा की माला में अन्तर नहीं पड़ता है। द्वितीय प्रकार में मूल की माला बढ़ जाती है। किन्तु उसका आपेक्षिक घनत्व कम होकर १००६ के मध्य हो जाता है। आयुर्वेद ने इसे उदकमेह की संज्ञा दी है। इस अवस्था में विसर्जित होने वाले क्लो-राइड की माला में कमी हो जाती है। सामान्य रूप में मनुष्य प्रतिदिन ४-५ लीटर मूल विसर्जित करता है। Diabeties Incipidus की अवस्था में भूत्र की माता कई गुना वृद्धि कौर तृष्णा भी तीव हो जाती है। यह अवस्था पीयूष ग्रन्थि या Hypothalanus के अर्बुद की अवस्था में होती है। क्योंकि इस समय पीयूप ग्रन्थि के हारमोन में न्यूनता हो जाती है। इस हारमोन की कमी हाइपोर्यलगों न्यूरोहाइपोफिसियल इकाई के नष्ट होनें के कारण होती है जिसके कारण वृक्काणु (Nephrons) कें दूरस्य से समीपस्यं लहरदार नलिकाओं से जल का पुनः शोपण मन्द पड़ जाता है। सामान्य रूप से १५० लीटर द्रव नित्य प्रति ग्लोमेरूलसं फिल्ट्रेट के रूप में 'निकलता और इसमें से १५० लीटर पुनः गोपित हो जाता है। इस मवस्या में अधिकतम मूल की मात्रा ३० लीटर उत्पन्न होती है। इसका १५% पृष्ठ पीयूष के हारमोन डारा

पुर्तशोषित हो जाता है। यह अवस्था शरीर के तापक्रम नियन्त्रण प्रक्रिया में विकृति के कारण भी उत्पन्न हो सकती है। प्रमुखं रूप से इस अवस्था में उत्पन्न प्रमुख कारण पश्चाद पीयूष ग्रन्थि का विकार ही है।

दूसरी अवस्था अर्थात् Diabeties mellitus की प्रमुख रूप से Pancreas की विकृति से उत्पन्न होती है। क्यों कि इस अवस्था में रस रक्त में परिश्रमित होने वाला ग्लूकोज पूर्णरूपे से शक्ति रूप में प्रतिवित्त होकर शरीर के कोषों को लाभान्वित नहीं कर पाता और रक्त में शकरा की मात्रा बढ़ जाती है। आध्निक काल में प्रमेह मूत्र में ग्लूकोज की उपस्थिति अग्न्याशय (Pancreas) को विकृति पीयूप , प्रनिथ (Pituitary), अधिवृदक अवट्रका आदि स्रोत, ग्रन्थियों से निकलने वाले स्राव की विषमता, आहार, अनशन, अधिक भोजन और वसा एवं कार्वोहाइ-ड्रेट का अधिक मात्रा में ग्रहण करना आदि । आहारजन्य विषमताओं ग्लाइकोजिनेलाइसिस एवं वृक्कीय कारणों से उत्पन्न होते हैं। शरीर में वसा कार्बोहाइड्रेट के घातु विकृति के कारण प्रमेह की उत्पत्ति होती है। अगन्या-शय से इन्सुंलिन की उत्पत्ति उन्हीं कोषों से होती है। यह तत्व इन कीपों के कणोंके रूप में स्थित रहता है और आव-श्यकतानुसार रक्त में उसकी प्रविद्धि होती है।

अधितक काल में इन्सुलिन से सम्बन्धित पूर्ण रासायिनक ज्ञान की प्राप्ति हो चुकी है। इन्सुलिन धर्करा
एवं वसा के शरीर द्वारा उपभोग में ती सहायक होती
है साथ ही यह प्रोटीन के अधिक विखण्डन को रोकता
है। इन्सुलिन के कारण धर्करा का उपयोग रक्त में ही
नहीं हो जाता है। उनके रक्तों में प्रविद्ध होने की गति
बढ़ जाती है। यह पेशियों और यक्त के कोषों में ग्लाइकोजन संग्रह में भी सहायता करता है। इन्सुलिन के
प्रभाव के कारण पेशियों में की शकरा ग्लाइकोजन के क्पे
में प्रविद्धि की माना वढ़ जाती है। इन्सुलिन वसा धातु
पाक में भी सहायक होता है। यह शरीर में वसा निर्माण
प्रक्रिया को तीन करता है। शरीर में पांच अन्तःसानी
ग्रन्थियां जिनका प्रमेह जिनत तत्नों पर कोई प्रभाव नहीं
होता। 'Insulin, Pepsin' और HCI नामक Enzymes
के द्वारा नष्ट हो। जाता है।



कवि॰ श्री गिरिधारीलाल मिश्र ए.,एम.वी-एस.

लघ्यक्ष-केदारमल स्मारक धर्मार्थ बायुर्वेदिक हास्पीटल, तेजपुर [असम]

साध्या कफोत्या देश पित्तजा पड्यास्या न साध्या पवनात्त्वतुष्कं ।।

प्रमेह कफज १०, पित्तज ६ और वातज ४। इस प्रकार कुल २० तरह के होते हैं। जिनका नामकरण विभिन्न आचार्यानुसार निम्न तालिका में दर्शाया गया है—

प्रमेह: भेद: तातिका:

					* * * * * * * * * * * * * * * * * * * *
दोप	संख्या	चरकोक्त भेद	सुत्रुतोक्त भेद	वाग्महोक्त भेद	्वांधुनिक मतानुसार
कफज	. 9	उदक्तमे ह	उदकमो ह	उदकमो ह	Diabetes Insipidus.
					or Polyuria.
90	?	रसमोह	इक्षुवालिकामेह	इक्षुमेह	Glycosuria
•	ź	सान्द्रमेह	सान्द्रमोह	सान्द्रमोह	Phosphaturia
	४	सान्द्र प्रसादमेह	सुरांमोह	सुरामेह	Acetonuria
	` ¥	गुक्ल मोह	पिष्टमोह	पिप्टमोह	Chyluria
	٤	णुक्रमोह	शुक्तमोह	शु क्रमेह	Spermatorrhea
	હ	1 सकर्तीमोह	सिकताभोह	सिकतामोह	Oxaluria
	4	शमैं में ह	श नै में ह	शनैमेंह	S2
·	E	लालामोहं 🖁		लालामोह	
	. १०	शीतमेह		शीतमोह	
		•	लंदणमिह		Chloride
	, ,		फेनमोह		Pneumaturie
वित्तज	98	ं क्षारमेह	त्रारमेह	ेक्षारमेह	. Alkalineuria
Emse	१२	· कालमोह		कालमोह	Melanuria
	93	नीलमोहः	• नीलमैह	नीलमेह	Indicanuria
7	, १४	लोहितमेह	शोणितमीह	णोणितमोह.	Haematuria
, ,	१५	मांजिष्ठमेह	मांजिष्डमोह	माँजिप्ठमेह	Urobilinuria
<i>,</i>	9 €	हारिद्रमेह	हारिद्रमेह	हारिद्रमेह	Haemoglobinuria
	~	• •	अम्लमोह,		
वातज	৭৬	वसामोह	वसाम ह	वसामें ह्	Lipuria
٠,٨	१८ .	मज्जामोह		- मज्जमोह	
<i>;</i> • •	.·	हस्तिम ह	हस्तिम ह	हस्तिमें ह	Polyuria
	२०	मधुमें ह	क्षीद्रमें ह	- मधुमह -	Diabetes Mellitus
		ه مين د ماند دريان د استان دريان د دريان د دريان د دري د دريان د استان د استان دريان د دريان	संविम ह		



मूत्राघाताः प्रमे हाश्च घुक दोपास्तर्णैव च ।

मूत्रदोषाश्च ये वापि बस्ति स्थाने भवन्तिहि ॥

—योगरत्नाकर प्रमे हाधिकार

अर्थात् मूत्राघात, प्रमेह, वीर्यं दोप, मूत्रदोप ये सभी वस्ति स्थान के रोग है, प्रमेहों के जन्म दाता-क्रफःसिपत्त-प्रवनश्च दोषा मेदोऽस्त्रशुक्ताम्बु वसा ससीकाः । मज्जा रसीजः पिशितं च दूष्याः प्रमेहिणां विश्वतिरेवमेहाः । वात पित्ता क्रफ नाम के तीन दोष

हैं। ये दोष में द, रक्त, तीय वसा वलेद लसीका मज्जा रस, बीज और मास ये दूष्य हैं। इनको बात पिन और कफ नाम के दोष द्वित करके प्रमेहों को करते है।

दोप—शरीर दूपणाद्दोषा घातवो देह घारणात् शाङ्गंधर संहिता। ये शरीर के शिर हृदय फुफ्फुस यकृत् वृक्क (गुर्वा) आदि सभी अङ्गों को दूषित करके रोग जत्यन्न करते हैं अतः इनका नाम दोध है और ये ही शरीर को घारण करते हैं अर्थात् शरीर की स्थिति को कायम रखते हैं अतः इनका नाम घातु भी है। जब भी मनुष्य प्रकृति नियमों का उल ह्वन करता है, भिथ्या आहार विहार करता है तभी उसको दण्ड देने को जा पहुंचते हैं। फिर भी मुख्य घातु रस रक्त मांस में द मिथ्य मज्जा और वीयं हैं। इनमें भी संसार बातु नाम से जीयं को ही जानता है सितिरिक्त इनके अप्टम धातु ओज है। आयुर्वेद में इसको जीवन के रूप में स्वीकार किया है "तन्ना-शान्नाविनश्यति" अर्थात् ओज़ के नाथ होने पर मनुप्य

का भी नाश हो जाता है अर्थात् मरण निश्चित है। ओज सैकडों वर्षों से आज तक विवाद का विषय रहा है। सश्रत चरक अप्टांग संग्रह वाग्भट्ट के टीकाकारों के भी विभिन्न मत रहे है। वर्तमान काल के उभय पक्षीय वैद्यक ज्ञाता वन में भटकते रहे हैं। एक विद्वान ने इसको प्लाज्मा सिद्ध करने का प्रयास किया था किन्तु प्लाज्मा शरीर को नण्ट नहीं करता औज करता है तन्ना-शन्ता विनश्यति । कुछों का मत है कि एत्ब्यूमिन ही झोज है परन्तु इसमें कुछ सत्यांश संभव है सर्वाशे में नहीं । मैंने भी लगभग १५ वर्ष पूर्व थोज वया है? शीर्पक लेख सचिम आयूर्वेद कलकत्ता में छपवाया था। उसकी विद्वानों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की थी परन्तु अब मुझे स्वयं याद नहीं है कि मैंने क्या सिद्ध किया या हां इतना अवश्य याद है कि एल्ब्यूमिन के पक्ष मे नहीं था। सुश्रुत ने इसको प्राणों का आधार माना है "प्राणायतनमुत्तमम्" मु.सू. १५।२२। .प्रभेह का पूर्वरूप-

दन्तादीनां मलाह्यत्वं प्राग् छपं पाणिपादयोः । दाहश्चिनकणता देहे तृड् स्वाद् वास्यं च नायते ॥ दांतों आदि मे मैल, हाथ पांवों में जलन, शरीर चिकना मुख का स्वाद मीठा यह पूर्व छप हैं। सुश्रुत ने लिखा है कि— तेपांतु पूर्व छपाणि—हस्त पाद तलदाहः हिनग्ध

.पिन्छिल गुरुता गावाणां मद्युर शुक्र मूत्रता तन्द्रा सादः। पिपासा दुर्गन्धण्य श्वासः तालु गल लिह्ना दन्तेषु मलोत्पत्ति- जिटलीभावः केशनां वृद्धिश्च नखानाम् । सु नि.६।४ । हाथ पांव के तलुओं में जलन, शारीर के अंगों में चिकनापन, पिन्छिलता और भारीपन, पेशाव मीठा और सफेस, तन्द्रा गनूबगी, थकावट प्यास, शारीर पर दुगंन्ध, काम करने में हांफना, तालु गला जीभ और दांतों में मैल की उत्पत्ति केशों का आपस में अटकना, और नाखूनों की वृद्धि ।

प्रमोह के सामान्य लक्षण जो सर्व वीसों प्रमोह में होते हैं-

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविल मूत्रता । — योग रत्नाकर
अर्थात् मूत्र का अधिक आना और वह कुछ गदला भी
हो। कफ जन्य प्रमेहों की संख्या दस है उनके लक्षण ये हैं—
अच्छं बहुसितं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम् ।
मेहमुदकमेहेन किञ्चिदाविल पिच्छिलम् । १
इक्षोरसिमवात्यर्थमधुरश्चेक्षुमेहतः । २
सान्द्रीभवेत् पर्युं सितं सान्द्रमेहेन मेहित । ३
सुरागेही सुरातुल्यमुपर्यच्छमधोघनम् । ४
सह्च्ट रोमा पिच्टेन पिच्टवदं बहुलं सितम् । ५
श्रुक्तामं श्रुक्तमिश्रं श्रुक्तमेही प्रमेहित । ६
मूर्ताणून्सिकता मेही सिक्तताक्ष्रिणोमलाम् । ७
शीत मेही सुवहशो मधुरं भृशशीतलम् । ५
शनैः शनैः शनैः शनैमेही मन्दमन्दं प्रमेहित । ६
लाला तन्तु युतं मूत्रे लालामेहेनमेहित । १०

उदकरोह में पूत्र स्वच्छ, माला में अधिक, सफेद, शीतल, गन्ध रहित जल के समान किन्तु कुछ गंदला और पिच्छिल होता है। गंदला भी है पिच्छिल भी है फिर भी स्वच्छ है। आश्चर्य है इक्षुरोह में ईख के रस के समान मिठास होता है, सान्द्र मेह में सूत्र को रख देने पर गाढ़ा हो जाता है। सुरामे ही की यह पहचान है कि ऊपर स्वच्छ रहता है और नीचे का भाग गाढ़ा। पिष्टमोह में मूत्र त्याग के समय रोमांच होता है और पिष्ठी के समान होता है। शुक्रमे ह में वीर्य पेशाब के साथ आता है या अकेला भी आजाता है। सिकता शब्द ही बता रहा है कि छोटे कण पथरी के रहते हैं। सुश्रुत में लिखा है कि इसमें मूत्रत्याग के समय दर्द भी होता है—सर्फ सिकतानुविद्ध सिकतामे ही। शीतमेह में भूत्र अधिक शीतल होता है और सूत्र का स्वाद मीठा रहता है। शर्न मेंही एक एक कर मूतता है। जैसे मनुष्य के मुख

से लार टपकती है वैसे पेणाव में लार सी आती है। विलाल तन्तु युतं मूवं लाला मेहेन मेहित। जिसके मूत्र के साथ लार जैसे टपके वह लालामेह है। विलाक ६ अमेह —

गन्धवर्णं रसस्पर्शे क्षारेण क्षारतोयवत्। नील मेहेन नीलाभं कालमेही. मसीनिभम्॥ हारिद्रमेही कटुकं हरिद्रासन्तिभम् दहत्। विस्नं मंजिष्ठमेहेनमंजिष्ठा सलिलोपमम् ॥ पित्तमुष्णं सलवणं रक्तभम् रक्त मेहृहः॥

कार मेही का मूत्र गन्ध में वर्ण में रस में छूने खारी पानी के समान हो वह क्षारमेह है। नीलमेही का मूत्र नील वर्ण का होता है और काल मेही का मूत्र काली स्याही जैसा होता है। हरिद्रामेही का मूत्र स्वाद में कड़वा और रंग में हरिद्रा के समान पीला होता है और जलन के साथ होना। मंजिष्टा प्रमेह में मजीठ पानी या काढा कुछ कत्या जैसा रंग होता है। रक्त प्रमेह में मूत्र कुछ गरम होता है स्वाद में नमकीन होता है और वर्ण में रक्त के समान लाल होता है। ये छः प्रमेह पिना के हो गये। अब वात के सुनो

वसा में ही वसामिश्रं वसामं मूत्रथेन मुहुः।
मज्जामं मज्जिमश्रं वा मज्जमे ही मुहुमुँ हुः।।
कषायं मधुरं रूक्षं क्षौद्रमे हं वदेव् वुधः।
हस्तीमता इवाजस्र मूलं वेग विवर्जितम्।।
सलसीकं विवर्द्धंच हस्तमे ही प्रमे हिता।

—आयुर्वेद विज्ञान (चरक)

वसामे ही वसा मिश्रित या वसा के समान मूत्र करता है।

शुद्ध मांसभवः स्नेहः सा वसा परिकीतिता।

—शाङ्गिधर संहिता।
शुद्ध मांस से स्नेह निकलता है उसका नाम वसा है।
इसका वर्ण कुछ लाल होता है मज्जा के प्रमेह में मूल
मज्जामिश्रित उतरता है, मज्जा के समान उसका वर्ण होता.
है। मज्जा चर्जी को कहते हैं। इसका रंग घी के समान, ही
होता है। सूजर की चर्जी का ही पहले प्रयोग करते थे।
सौद्रमेह में जिसका प्रसिद्ध नाम मधुमेह है जिसको डाईविटीज कहते हैं इसमें मूल का स्वाद कसैला होता है जैसा
हरं का या आमले का होता है। साथ ही यह मीठा भी होता

है पर रूक्ष होता है हस्तीमें ही निरन्तर लगातार मूत्र करता रहता है। इसमें लसीका भी मिली रहती है। अब र हमने बीसों प्रकार के प्रमेहों को लिंख दिया है। साह्य, याप्य और शसाह्य पर विचार

्साघ्याः कफोत्या दश**्पित्तजाः पट्** याप्या न साध्याः पवनाच्चतुष्कः ।

समितियत्याद विषमितियत्वान् महात्वयत्वा च यथाक्रमंते।
कफ जन्य दस प्रमेह साध्य हैं, क्योंकि दोष कफ और
दूष्य में व आदि की चिकित्सा समान है। जैसे कट् और
तिक्त (कड़वे) द्रव्यों से दोष और दूष्य दोनों का ही नाश
होता है। अतः कफजन्य साध्य हैं। पित्त के छः प्रमेह
गाप्य हैं, इनकी चिकित्सा में विषमता है। जिन मधुर
सादि द्रव्यों से पित्त का नाश होता है उन्हीं से दूष्यों
की वृद्धि होती है। इसके विपरीत जिनसे दूष्यों का नाश
होता है उन्हीं से पित्त की वृद्धि होती है। इसी कारण
याप्य है। वायु के चार प्रमेह असाध्य हैं क्योंकि ये
गंभीर घातुओं का नाश करते हैं। वायु की गित शीध्र है
अतः रोगी का शीध्र नाश करते हैं।

धात्ववकर्णकादाशु कारित्वाच्च महात्मसिकत्वात् । —आयुर्वेद विज्ञान सुश्रुत

इस तरह पित्तज प्रमेह की चिकित्सा में तिक्त और केषाय रस वाले बच्यों से ही चिकित्सा हो सकती है। किन्तु वातमेहों में इससे भी अधिक कठिनाई है। यथा मधुर तथा स्निग्ध द्रच्यों से वायु का शमन होता है पर मेद आदि द्रच्यों की वृद्धि होती है। यदि तिक्त (कड़वे) तथा कषाय रस द्रच्यों का प्रयोग होता है तो वायु की वृद्धि होवी। सुश्रुत के कथन से ज्ञात होता है कि मधुमेह का जन्मदाता मेद धातु है। 'मधुमेहातिस्थौल्यातिस्थेद प्रमु-त्योमेदोदोषजा:। सु०सू० २४/१२। परन्तु चरक संहिता के टीकाकार चक्रपाणिदत्त ने मधुमेह शब्द से सर्व प्रमेहों का ग्रहण किया है— 'मधुमेह शब्दः सर्वप्रमेह मधुमेह विशेषे च वर्तते, यथा तृण शब्दः सर्वतृणे तृणविशेषे च वर्तते।

नामों में भिन्नता—चरक, सुन्नुत, वाग्मट्ट ने २० तरह के ही प्रमे ह लिखे हैं किन्तु नामों में बन्तर है जैसे—सुश्रुत मे सुराग ह, पिष्टमें ह, फेनमें ह, लवणमें ह हैं। इन चारों के स्थान पर चरक में सान्द्रमें ह, शुक्रमें ह, शीतमह और नालामें ह चार हैं। इनमें सुश्रुत के सुराम ह और चरक के सुन्द्रमें ह में समानता है। सुश्रुत के पिष्ट-

मह कौर चरक के शुक्रम ह में भी समानता है। सुश्रुत के लवणम हे और फेनम ह इन दोनों की चरक के लालाम ह और शीतम ह में समानता नहीं है। मुझे सुश्रुत के लवणम हे के स्थान पर लालाम ह उत्तम जचता है। इसमें लार सी टपकती है, पिन्छिल मी है अर्थात् चिपचिटाहट भी है। होगी या तो वीय को प्रमेह समझता है या फिर इसको लवणम ह और फेनम ह का तो ज्ञान ही नहीं होता। कफजन्य दस प्रमेहों में इसुम ह और शीतम ह, इनमें काफी समानता है। ये दोनों मधूर है। पित्तप्रम हों में भी मुश्रुत के अम्लम ह के स्थान पर चरक और वाग्भट्ट ने फालम ह लिखा है। स्पष्टीकरण—

(१) उटकमे ह—पुराने वृवकशोथ से धमनी दाद्यं के कारण रक्तभार बढ़ जाने से, ग्रन्थिकवृक्क से और मस्तिष्कगत पिच्युटरी ग्रन्थि की विकृति से होता है। पिच्युटरी से होने वाले उदकमें ह को डायिबटीज इन्सिं पीस्स कहते हैं। कफ के प्रमेहों में इक्षुमें ह और शीतमें होनों में शकरा जाती है। इसके भी वातकफज भेद चरक ने दो भेद माने हैं। धातुक्षय से वातजन्य और पंण से कफजन्य—

हष्ट्वा प्रमेहं मधुरं सिपच्छं मधूपमम् स्याद् हिंदिविद्यो विचारः। क्षीणे दोपेष्वनिलात्मकः रयात्

> संतर्पणाद्वाकफ संभवः स्यात् ॥ -—चरक प्रमेह चिकित्सा

- (२) सिकतामेह में मूत्र के साथ छोटे-छोटे पथरी कण निकलते हैं।
- (३) शनैमें ह में यूत्र मार्ग सिकता (बालू) से रुव रहता है। मूनेत्र युक्तः सिकता प्रमोहः।
- (Y) सान्द्रमेह में किसी पात्र में मूत्र को रखने [‡] थोड़ी देर में गाढ़ा हो जाता है-

यस्य पर्यं पितं मूतं सान्द्रीभवति भाजने । · (चरक प्रमेहाधिकार

मूत्र में पूय या फेब्रिन उपस्थित होने से मूत्र गार होता है। पूययुक्त मूत्र का वर्ण श्येत और फेब्रिनयुक्त म् का वर्ण किंपित् रक्तवर्ण होता है। सुश्रुत टीका घाणकर

(५) माञ्जिष्ठमेह और हारिद्रक्तमेह पाण्डु आ रोगों में होते हैं।

- (६) वित्तप्रमोह में कालमोह को घाणेकर जी ने Brown and black urines लिखा है। इसमें भूत्र का कृष्ण वर्ण होने के कारणों में एक पुराना कामला रोग भी है।

 घाणेकर
- (७) नीलमेह— इसको सुश्रुत टीकाकार घाणेकर जी ने इन्डिकन्यूरिया (Indicanuria) लिखा है। इसमें मूत्र में इन्डिक नाम का पदार्थ रहता है। आंत्र मे या आंगेतर शारीर के अन्य हिस्से में अलब्यूमिन के सड़ने से यह द्रव्य मूत्र में आ जाता है जैसे पुराना कब्ज, अतिसार प्रवाहिका, आंत्रशोथ, खांसी, राजयक्षमा की तृतीयानस्या आदि। नीलमेह में मूत्र थोड़ी देर बाद में नीला हो जाता है।

सर्व एव प्रभेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः।
मधुमेहत्वमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति हि॥
— सुनि.६/२६

यदि आरम्भ से ही प्रमेह की चिकित्सा न की जाये तो कुछ समय बाद ये सभी प्रमेह मधुमेह मे परिवर्तित हो जाते हैं और तब असाध्य बन जाते हैं। यह लेख असज्जत है, क्योंकि प्रत्येक प्रमेह के निदान और संप्राप्ति भिन्न-भिन्न हें। एक सज्जन विद्वांन कहते हैं कि प्रमेह में मधुर तता रहती है और शरीर भी प्रमेह मे मधुर रहता है। मतः सभी प्रमेह मधुमेह हैं। तब प्रक्षन है तो क्या सभी गमेहों की चिकित्सा परित्याग करके मधुमेह की ही चिकित्सा परित्याग करके मधुमेह की ही चिकत्सा करनी चाहिए। यह तो ऐसी बात है कि विश्व-चिका में वमन होता है छतः जहां भी वमन हो वही विश्व-चिका में वमन होता है छतः जहां भी वमन हो वही विश्व-चिका है। चरक संहिता में हदवल ने एक बात बड़ी छिया कही है। यदि प्रमेह के पूर्वरूपों में हस्तपाद में शह आदि लक्षण न हों और मूत्र हारिव्र वर्ण या रक्त वर्ण तो वह प्रमेह नहीं है। बल्कि पित्त तथा रक्त की शकति है।

हारिद्र वर्णं स रुधिरं च मूत्रं-

॰ विना प्रमेहस्य हि पूर्वरूपै:।

यो मूत्र येलं नवदेत् प्रमेहं

रक्तस्य पित्तस्य हि स प्रकोपः॥

—चरक प्रमेह चि॰ स्थान

वात प्रमेहों की असाध्यता का स्पष्ट उल्लेख— कृत्स्नं गरीरं निष्पीड्य मेदामच्या वसायुतः।

बद्यः प्रक्रमतेवायुस्तेनामाव्यास्तु वातजाः॥-सु॰नि०६/२३ वातप्रमेहों का वास्तविक कारण यह है कि वायु समस्त शरीर को निचोड़ कर मेद मुज्जा और वसा को वस्ति द्वारा शरीर से निकाल देता है। यहां पर अनुक्त ओज का भी प्रहण करना चाहिए।

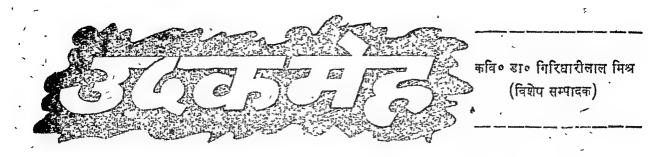
प्रमेहों के उपद्रज-

मिंद्रक्षेपसर्पणमालस्यं मासोपचयः प्रतिश्यायः शैथित्यारोचक विपाकाः कफप्रसेकच्छिदि निद्रा कास श्वासश्चेति श्लेष्मजानामुपद्रवाः । वृषणयोरवदेरणं वस्ति मृदो
मेढ्तोदो हृदिश्लमम्लोका ज्वरातिसारारोचकाश्च वमधुः
परिधूमायनं दाहो मूच्छि पिपासा निद्रानाणः पांढु रोगः
पौतविण्मूल नेत्रत्वं चेति पैत्तिकानाम् । हृद्ग्रहो लौल्यनिद्रा
स्तंभः कम्पः शूलवद्ध पुरीपत्वं चेति वातजानाम् । एवमेतेविश्रतिः प्रमेहाः व्याख्याताः । — मु. नि. ६/१४

प्रमेहों के उपद्रव—मिनखयों का , धरीर या मूत्र पर वैठना, सालस्य, स्थूलता, प्रतिश्याय (जुकाम), शिथिलता, भोजन में अरुचि, अपचन, कफ का जान, वमन, निद्रा का अधिक आना खांसी और श्वास, ये कफज प्रमेह के उप-द्रव हैं। अण्ड कोषों में फूटने की सी पीड़ा, हृदय में शूल, वस्ति मे फाड़ने जैसा दर्द, खट्टी हकार का , आना, ज्वर, अतिसार, अरुचि, वमन, जलन के साथ उकार, दाह, मूर्च्छी- प्यास, निद्रानाथ, पांडुरोग, मलमूत्र तथा नेत्रो का पीलापन, ये पित्त प्रमेह के लक्षण है। हृदय का जकड़ना, नीद का न आना, शरीर का अकड़ा सा रहना, कांपना, शूल और मलावरोध (दस्त साफ न होना), ये वातजन्य प्रमेहों के उपद्रव हैं।

वनतव्य जैसे क्षय रोग हरेक अङ्ग मे हो सकता है परन्तु होता है प्रायः फुफ्फुस में ही और अङ्गों में तो विरला ही होता है ऐसे ही प्रमेंह भी कफजन्य ही होते हैं। दूसरा नंवर पैत्तिक का और मधुमेह को छोड़कर अन्य तीन वांतजन्य तो बहुत ही कम होते हैं।

—धी रघुवीरशरण शर्मा वैद्य रत्न, आयुर्वेदाचार्य डी.एस.सी.ए. डी-१४०, भजनपुरा, दिल्ली-४३



मूत्र की राणि निरन्तर बढ़ती हो, परन्तु मूत्र में न तो शर्करा आती हो और न ही एल्ल्युमिन आती हो, पर मूत्र का आपेक्षिक गुरुत्व कम हो तो उसे उदकमेह समझनां चाहिए। बहुमूत्रता प्रमुख लक्षण होने के कारण इसे पौलीयूरिया भी कहते हैं।

हष्टव्य है-

अच्छं बहु सिंतं शीतं निर्गेन्धमुदकोपमम्। ्र ध्लेष्मकोपान्नरो मूत्रमुदमेही प्रमेहति ।। —चरक ्अच्छं-स्वच्छ, बहु-वहुतसा, मात्रा में अधिक, सितं - रङ्ग रहित या दिन में १०-२० पाइन्ट तक, शीतं-ठण्हा, शीतले, निर्गेन्धं-श्वेत वर्णं जलवत्, चदकोपमंम् जल जैसा रङ्ग, गन्धरहित, कोपान्नरो-कफ प्रकोप से प्रसित व्यक्ति, मूत्रं उदकमेही प्रमेहति - मूत्र त्यागता है।

आचार्यं सुश्रुत ने - तत्र श्वेतमवेदनमुदक सहश-मुदकमेही मेहति-श्वेतवेदना रहित जल के समान मूत्र त्यागता है-कहा है। निदान -

अतः मूत्र की राशि के बढ़ने से रोगी बार-वार् मूतता है और प्यास ज्यादा लंगने से बार बार पानी पीता है तथा रोगी दिनानुदिन कृश व क्षीण होता जांता है। सूत्र का आपेक्षिक गुरुत्व कम हो जाता है-१००२ से १००% तक रहता है। यदि रोग मृदु हो तो मूत्र की मात्रा तथा प्यास अधिक होना ही लक्षण होता है, परन्तु रोग की तीवावस्था में त्वचा की शुष्कता, कृशता, क्ष्माधिवय, कभी मलवन्ध, कभी अतिसार आदि मनुमेह के लक्षण हो जाते हैं। इसीलिए इसे Diabetis Insipidus कहा गया है। वात .प्रकोप के कारण कभी कभी वातिक लक्षण जैसे कि-स्वभाव में चिड्चिड्ापन, अनिद्रा, शिरः-शल. कमर ने प्रत्यावतित क्रियायें कम नोना. मांसपेशियों में विवीतिका संचार (विवीतिकोपसर्पणं अंगेष्) होता है। निदान चातुर्य—

प्रारंभिक अवस्थामें इस रोग का भ्रम चिरकालीन इन्टरस्टीशियल वृक्कपोथ से हो जाता है तथा रोग की तीवावस्था में मध्मेह की भ्रम हो जाता है। परन्तु रोगी की बड़ी आयु, मूत्र में एलब्युमिन का नाममात्र होना, हृदय तथा रक्तवाहिनियों के लक्षणों का अभाव तथा मुन में शकरा का अभाव इसका भेदं कर देते हैं। जैसे-एमी-लोयड वृक्क में एलन्युमिन आता है, मधंमेह में मूव में शकरा आती है तथा वृक्क रोगों जैसे हाइड्रोनेफोसिस और पौली-सिस्टिक में अर्बुद का प्रतीत होना आदि लक्षण इसमें नहीं मिलते तथा मूल का आपेक्षिक गुरुत्व कम १००२ १००५ रहने से इसंका निश्चित निदान हो जाता है।

रोग के कारण- यह रोग पुरुषों की अपेक्षा खियों में अधिक होता है। यह रोग प्रायः वचपन और मध्यम वय के प्रारम्भ में होता है। पीयूप प्रनिय के पश्चिम खण्ड (Posterior lobe of the pituitary) की विकृति के कारण उसका स्नाव कम होना प्रमुख कारण है। मस्तिष्क पर आधात लगने, अर्बुद, सिफलिस और मस्तिष्कावरण शोथ में चीट लगने से ऐसा होता है।

विशेष-मबुमेह का सीधा सम्बन्ध क्लोमग्रंथि के स्नाव से है जिसका उदकमेह से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसकी उत्पत्ति का मुख्य कारण पिच्युटरी के पश्चिम खण्ड के स्राव का कम होना है।

उदकमेह के भेद-

स्यायी और अस्थायी दो तरह का होता है-

(१) स्वायी उदकमेह-पुराने वृदकशोथ से धमनी काठिन्य के कारण रक्तभार बढ़ जाने से ग्रन्थिकवृक्क (Cystic kidney) से और मस्तिप्कगत पिच्युटरी (Pituitary) की विकृति से होता है।

eza civi. Tenade en

(२) अस्थायी उदकमेह—जल, चाय, कोका, कॉफी तथा बन्य शीतलपेय अधिक मात्रा में पीने से, हृदयशूल, अपस्मार, अपतन्त्रक अर्धावभेदक इत्यादि के आवेग के पश्चात् भय तथा मानसिक आधात या उत्तेजना से होता है।

हिण्टन्य—इसका मृदुक्प कई वर्षों तक चलता रहता है पर तीनावस्या में—मस्तिष्क में अर्जुद होने पर इसकी वृद्धि मी घता से होती है, थकान या तन्द्रा होकर जो पीछे निद्रा में बदल जाती है-मृत्यु हो जाती है। इसमें साक्षेप होते भी हैं और नहीं भी होते अथवा क्षय रोग या निमोनिया होने से मृत्यु होती है।

जिन पदार्थों के खाने या पीने से मूत्र की मात्रा बढ़ें उनको नहीं देना चाहिए जैसे चौर, कापी, कोको, शीतपेय (Coid drinks) तथा नमक । परन्तु जितना पानी रोगी सुगमता से पी सके कम नहीं करना चाहिए । पीयूप ग्रंथि (Pitnitary) के पश्चिम खण्ड का इन्जेंक्शन देना चाहिए अथवा पीट्र सीनटेनेट का तैल बना इन्जेंक्शन देना चाभ-दायक है—यह मूत्र संग्राहक है। अवदुप्रन्थि का साव देना भी लाभवायक है।

आयुर्वेद का सोमरोग —सोमरोग नाम से वर्णित रोग का उदकमेंह से समन्वय कर सकते हैं —

प्रसन्ता विमला, शीता निर्गन्धा नीरजाः सिता। स्रवन्ति चाति मात्रं ताः सा न शक्नोति दुवेला॥

तथा सोम रोग के पुराना होने से मूत्रातिसार 'सोम-रोगे चिरं जाते यदामूत्रमतिस्रवेत्' होता है एवं सोमरोग नाशक चिकित्सा से इस रोग में लाभ होता है—

- (१) सुश्रुत का पारिजात कपाय हारसिगार की पत्तियों का क्वाथ अत्यन्त लाभदायक है।
 - (२) केले का उपयोग घी और चीनी के साथ प्रशस्त है।
- (३) जामुन की गुठली के चूर्ण का प्रयोग भी लाभ-दायक है मूत्र की मात्रा कम होजाती है।
 - (४) गूलर का चुणं ठिचय अनुपान से उत्तम है।
- (५) सामान्यतः सोमनाय रस,सोनेश्वररस, तारकेश्वर रस, वसन्तकुसुर्माकर, हेमनाय रस, कस्तूरी भूषण, प्रमेह सेतू, पूर्णचन्द्र रस उत्तम योग है। चन्द्रप्रभावटी भी लाभ दायक है। कदल्यादिशृत का अनुपान भी उत्तम है। प्रेमह-मिहिर तैल का सर्वाङ्ग अस्यङ्ग करना चाहिए।

चदकमें ह में जपयोगी आयुर्वेदीय इञ्जेक्शन— गुडमार (प्रताप फार्मा) नान सिन्दूर(वुन्देलखण्ड), शिलाजीत तथा बसन्तकुसुमाकर, (मिश्रा, बुन्देलखण्ड) इञ्जेक्शन दें। आधुनिक चिकित्सा—

१—पिटयूटरी (वूट्म कम्पनी) एक एम्पुल की सूई नित्य मांस में लगावें।

२—द्राइनरजेनस (Trinerjex) इञ्जेनशन का प्रयोग भी इसमें बड़ा लाभदायक पाया गया है। १ इञ्जे-नशनों का कोसे है। पहले सप्ताह में तीन इञ्जेशन तथा दूसरे सप्ताह में २ इञ्जेनशन देने चाहिये। कमजोरी के लिए भी अन्य औषधि देने की जहरत नहीं।

३—निवंतता दूर करने के लिए बीकोजाइम एक इञ्जेक्शन २ सी. सी. लगाना चाहिए।

(४) जम्ब्बारिष्ट या जामूनासव व जाम्बोलन (Jombolan) की २-२ चम्मच जल मिलाकर दिन में २ वार भोजन के बाद देना चाहिये।

५- लिविवड एक्ट्रेक्ट आफ इरगट की १० से २० बूँद एक औंस जल में मिलाकर दें।

पथ्य—जी को कूटकर भूसी हटाकर त्रिफला क्राय में रात भर भिगोकर उसके बनाये हुए सत्तू बनाकर खिलाने से उदकम ही के लिए लाभप्रद हैं। डाभ (नारि॰ यल का पानी), परवल, गूलर, केले के फूल की सब्जी, करेला, कच्चा नारियल, अंकुरित जने और मेंथी शाक लाभदायक है। साठी चावल, सोवा तथा जी के बने योग्य पदार्थी का प्रयोग उत्तम है।

वपथ्य — मद्य, मठ्ठा, खट्टे पदार्थ, कांजी, ईख रस तथा मांस पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए। कांनीमिर्च, मूली, लहसुन, पूड़ी-कचौड़ी, प्याज-झालू उड्द की दाल का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

उदकमे हमें उपयोगी होमियोपैथिक दवाएं-

१—सिजिजियम जम्बोलिन Q

२—फास्फोरिक एसिड ६ या ३०

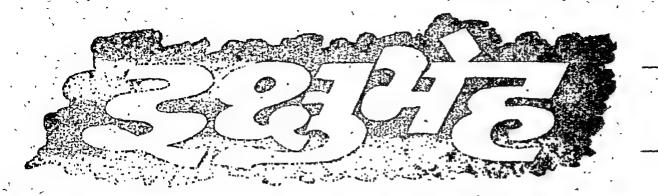
३-- यूरेनिवम नाइट्रिकम '६'

४—सनन्थिरस ६ या ३० शक्ति उदकमेह में उपयोगी वायोक्षेमिक दवाएं-

9 — कल्केरिया फास्फोरिकम ३ € ×

२ - फेरम फास्फोरिकम ६×

३—नेट्रम म्यूरियेटिकम १२×्



मूत्र में भर्करा होती है अतः शर्करायुक्त प्रमोह को ग्लायकोसूरिया (Giycosuria) कहते हैं। बायुर्वेद में शर्करायुक्त प्रमोह कफ और वात से पृथक्-पृथक् होते हैं। कफजन्य सन्तर्गण से और वातजन्य धातु क्षय से होता है यथा—

हण्टवा प्रमे हं मधुरं संपिच्छं

मधूपमं स्याद द्वित्रिधो प्रकारः।
क्षीरेषु दोपेष्विनलात्मकः स्यात्

सन्तर्पणाद्वा कफसम्भवः स्यात् ॥ (चरक प्रमेह चिकित्सा)

इस सन्तर्पण जन्य (कफज) इक्षुमेह को एलीमेन्टरी ग्लायकोसूरिया (Alimentary Glycosuria) कहते हैं। सन्तर्पण के अतिरिक्त अत्यधिक मानसिक और शारीरिक परिश्रम से,मस्तिष्कचात से, चृक्क की शर्करा चन्धन मर्यादा (Renal threshold) के कम होने से होने वाले इक्षुमेह को Renal Glycosuria कहते हैं। ज़रकाचार्य ने इक्षुमेह के निम्न लक्षण दिये हैं—

अत्यर्थमधुरं शीतं ईपत्पिच्छलमाविलम्। काण्डेक्षु रस संङ्काशं श्लेष्मकोपात् प्रमेहिति।। अत्यन्त मीठा, थोड़ा चिपचिपा और गंदला, गन्ने के रस जैसा मूत्र श्लेष्मा के प्रकोप से इक्षुमेह का रोगी करता है।

वृक्कजित मधुमेह (Renal Glycosuria)—आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार इक्षुमे ह को वृक्कजित मधुमेह
रोग माना जाता है। साधारणतः १०० सी. सी. रक्त में
जब तक णर्करा १७० १८० मिलिग्राम 'से ऊपर न हो
जाय वह वृक्कों में से मूत्र द्वारा वाहर नहीं निकलती। इसे
वृक्कों की साधारण णर्करा क्षमता (Renal Thresh
hold) कहते हैं परन्तु किसी किसी व्यक्ति में जन्म से ही

वृष्कों की शर्करा-क्षमता कम होती है अर्थात रक्त में १००-१३० मि. ग्रा. प्रतिशतक शर्करा होने पर भी उस व्यक्ति के सूत्र में शर्करा झाने लगती है। इसे वृक्कजनित मधुमेह (Rena) Glycosuria) कहते हैं।

ग्लूकोज परीक्षण न प्रातः खाली पेट रक्त का एक नमूना लेकर उसमें शक्रां का परीक्षण किया जाता है फिर ए० ग्राम ग्लूकोज २०० सी. सी. जल मिलाकर पिला दी जाती है तथा आधे-आधे घण्टे बाद रक्त के ४ नमूने ले लिये जाते हैं जिन में से प्रत्येक में से शक्रां की परीक्षा की जाती है। सार्धारणः खाली पेट लिये गये रक्त में ग्लूकोज ५०-१२० मि. ग्रा. प्रतिशतक होता है। १ घण्टे वाद लिये गये रक्त में यह मात्रा १८० मि. ग्रा. प्रतिशतक हो जाती है और २॥ घण्टे बाद यह फिर नार्मल हो जाती है। पर रोग की ती जावस्था में खाली पेट लिये गये नमूने में नार्मल नहीं होता तथा भोजन के बाद ३४० मि. लि. प्रतशतक से ऊपर हो जाती है और २॥ घण्टे बादभी २०० मि. लि. प्रतिशतक से ऊपर हो जाती है।

विशेष—जब मूत्र में थोड़ी शर्करा आती है पर रक्त में शर्करा का परिणाम साधारण मात्रा से अधिक न बढ़ें तब Glycosuria समझा जाता है चीसे मधुमेह में कार्बी-हाइट्रेट की मात्रा भोजन में बढ़ाने से शर्करा भी बढ़ती है पर इस रोग में भोजन में कार्बोहाईट्रेट की मात्रा बढ़ने. से भी मूत्र में शर्करा का परिमाण नहीं बढ़ता।

मूत परोक्षण — मूत्र परीक्षण विधि से मर्करा परीक्षण करने से •.१% (अत्यल्प) मिलती है। चिकित्सा—

साधारण अवस्था में चिकित्सा की कोई आवश्यकता.
नहीं रहती पथ्य पालन से ही रोगी स्वस्थ हो जाता है।
नीम के पत्र या छाल का वत्राय (सुश्रुत) या पाठा,
निमे के पत्र या छाल का विश्रास पुष्ठ १३६ पर देखें।

मुना शेवा चित्रिंद सा

सान्द्र मेह

विशेषं सम्पादक

'सान्द्री भवेत्पर्यु पितं सान्द्र मेहेन मेहित' तथा आचार्य चरक के शब्दों में—यंस्य पर्यु पितं मूत्रं सान्द्री भवति भाजने अर्थात् मूल थोड़ी देर तक रख देने से व रात भर रखने से मूल गाड़ा हो जाने को सान्द्रमेह कहते हैं। मूल में यह गाड़ापन फास्फेट्स की उपस्थिति से होता है।

फास्फेट तथा कैलिसयम और मैंगनीशियम के धारीय फास्फेट तथा कैलिसयम और मैंगनीशियम के पायित फास्फेट (Earthy Phosphates) के रूप में हमारे मूद्र से दिन भर में २॥ से ३॥ ग्राम की माद्रा में निकलते रहते हैं। इन्हीं के कारण मूत्र प्रायः गन्टला (Turbid) रहता है। जब ये लगातार मूत्र द्वारा निकलते रहें तथा मूत्र थोड़ी देर रहने पर निक्षिप्त हो जाय या मूत्र के प्रारम्भ व अन्त में अन्दर से ही मठे के रूप में अर्थात् पायित फास्फेट के रूप में वाहर आये तब इसे सान्द्रमेह या फास्फेटमेह (Phosphaturia) कहते हैं।

मूत्र की कारीय प्रतिक्रिया में — सोवियम हाइड्रोजन फास्फेट, कैल्सियम हाइड्रोजन फास्फेट तथा मैंगनेशियम हाइड्रोजन फास्फेट के रूप में तथा मूत्र की अम्लीय प्रतिक्रिय, हाइड्रोजन फास्फेट तथा कैल्सियम हाइड्रोजन फास्फेट के रूप में होते हैं।

क्षारीय मूल — कैल्सियम होइड्रोजन फास्फेट का व्येत वर्ण दूधिया रंग का निक्षेप काया करता है। प्रायः रोगी जब मूत्र के प्रारम्भ व अन्त में इस दूधिया रङ्ग के निक्षेप को देखता है तो इसे बीय लाव या मूत्र में पूय समझ कर अपर्थ ही चिन्तित हो उठता है।

मूल परीक्षा—एक टेस्ट ट्यूव में ३/४ भाग मूल भर इन मुनादीय (Spirit lamp) पर गरम की जिए, मूल में यदि सफेद रङ्ग का अवकोप उत्पंत्र होता है तब मूल में २-४ हूं द ग्लेसियल एसिटिक एसिड (Glacial acetic acid) डालिये। अवदोप यदि पुनः मूल में घुल जाता है तब फास्फेट का छोतक है। सूटमदर्शक यन्त्र (Microscope) द्वारा बम्लीय मूत्र में के लिससम हाइड्रोजन फास्फेट के स्फटिक सितारों के आकार में तथा अमोनियम, मैंगनेसियम के फास्फेट क्षारीय मूत्र में मूक्ष्म विखरे हुए दाने के आंकार में दिखते हैं।

कारण—(१) चिरकालीन अजीर्ण व सिट्जियों के अधिक प्रयोग से जाकों और फलों का आगें निक एसिड तो आवसीजन में मिल जाता है तथा Bases मूत्र में आकर उसे आरीय कर देते हैं जिससे के लिसयम फास्फेट नीचे बैठ जाते हैं और मूत्र में आते है।

- (२) नाड़ी मण्डल के Lecithin and Nuclain के पाचन से भी फास्फेट की निकासी होती है। इमीलिए नाड़ी रोग-जैसे नाड़ी दीवंल्य, मानसिक विपाद (Depression), उदासी, वेचैनी आदि रोगों में मूत्र-गत फास्फेट की मात्रा वढ़ जाती है तथा उन रोगों की चिकित्मा ही इसकी भी चिकित्सा है।
- (३) कृशता व जब शरीर का निर्माण (Metabolism) घटने लगे तथा जब शरीर में अम्ल का निर्माण दूषित हो तब फास्फेट अधिक मात्रा में मूत्र में आते हैं। विकित्ता—

कारण पर आधित है। सामान्यतः मूत्र को अम्ल रखना उत्तम है। इसके लिए अमोनियम क्लोराइड (नौसादर) या सोडियम एसिड फास्फेट देना चाहिए। भोजन में दूध, फल, अण्डें और मछली को छोड़ देना चाहिए तथा आलू व कौ लिस्यम जिसमें कम हो ऐसे भोजन की व्यवस्था करनी चाहिए। मूत्र को अम्लीय बनाने वाली बौपधियों से भी फास्फेट का बाना बन्द हो जाता है।

- (१) चन्द्र प्रभावटी—२-२ गोली दिन में '२-३ बार हल्दी के स्वरस से देने से आशातीत लाभ होता है।
- (२) वृहद वंगेष्वर रस, सोमेष्वर रस, मेहबज्र का प्रयोग भी अत्यन्त लाभदायक है।
- (३) श्वेत पर्पटी व नौसादर आदि के मूत्र प्रवर्तक योग तथा गोक्षुरादि गुग्गुल भी लाभदायक है।
- (४) मन्तपर्ण कपाय (सुश्रृत) तथा हस्दी, दारुहल्दी, विडङ्ग, नागरमोथा (चरक) का क्वाथ दें।
- (४) शिलाजीत के प्रयोग उत्तम लाभदायक हैं। शिलाजतु वटी व शिलाजीत, मण्डूर भस्म को मधु के अनुपान से देना लाभदायक है। रीगी को चिन्ता से मुक्त करना चाहिए।

asi viui filibeat

सान्द्रप्रसाह सह व सुरा भेह (एसिटोन मेह)

(विशेष-सम्पादक)

..य.चरक लिखते हैं-

यस्य सहत्यते मूल किन्तितिकिनित्प्रसीवित ।
सान्द्र प्रसादमेही तु तमाहुः श्लेष्मकोपतः ॥
श्लेष्मा के प्रकीप से होने वाला ऐसा प्रमेह जिसमें
मूत्र कुछ गाढ़ा और कुछ पतला आता है। आचार्य सुश्रुत
और वार्भट्ट ने सान्द्रप्रसादमेह को ही 'सुरामेह' नाम से
प्रतिपादित किया है। आचार्य सुश्रुत के शब्दों में सुरासुरा तुल्यं मेहित-सुरामेही-सुरा (शराव) जैसा मूत्र
विस्तित करता है। आचार्य वार्भट्ट ने इस और भी स्पष्ट

विसर्जित करता है। आचार्य वाग्मट्ट ने इस और भी स्पष्ट जिखा है— 'सुरामेही सुरातुल्यं उपयंच्छमधोषनम्' कि सुरामेही का मत्र यदि एक पात्र में करके रखा जाय तो ऊपर शाराव जैसा स्वच्छ और पतला द्रव रहता है तथा तीचे गाढ़ा या घनभूत द्रव रहता है। अतः चरक की सान्द्र (गाढ़ा) और प्रसाद (पतला) दोनों भाग मूत्र में होने से सान्द्र प्रसादमेह ही, सुश्रुत वाग्मटानुसार सुरातुल्य गन्ध के कारण सुरामेह कहा गया है। अतः सुरामेह बहुधा सान्द्रमेह (Phosphaturia) ही होगा, पर उसका

न तथा उसे सुरातुल्य गन्ध के विचार की दृष्टि से गन्ध का प्रमुख कारण मूल में पाया जाने वाला एसिटोन होने के कारण इसे Acetonuria कहा जाता है।

एसिटोन (Acetone)—यह स्तेह के अपूर्ण बोष-जनीकरण के कारण भूत्र में पाया जाता है। निम्न विकारों में इसकी मूत्र में उपस्थित इष्टब्य है—

(१) इक्षुमेह, (२) मूत्रविषमयता (Uraemia),
(३) अर्घावभेदक, (४) क्लोरोफामंविष, (५) प्रसृति
सन्तिपात तथा (६) शाकतत्व के सात्मीकरण में वाधाजनक विकार जैसे-आमाशयिक व्रण, आमाशय का कैंसर,
अञ्चलिका संकीच, अन्त्रावरीध, शोथक्षय, विषमज्वर,
उपदर्श, गंभविस्था का वमन, बाकक का अतिसार और

पुसिटोन परीक्षण, एक टेस्ट ट्यूव में .४ मिली. मुन लीजिय । इस मुन में अमीनियम सल्फेट (Ammo-

nium sulphate) इतना मिलाइये कि वह मूत्र में बौर अधिक न घुल सके तथा टेस्ट ट्यूव में नीचे बैटने लगे। इसकी सतृष्त विलयन (Saturated solution) कहते हैं। इस घोल में पंजन सोडियम नाइट्रो-प्रसाइड (Sodium Nitro-prusside) मिलाकर ठेस्ट ट्यूव को खूब हिलाइये। अब इसमें र मिली॰ लाइ-कर अमोनिया फोर्ट मिलाइये। मूत्र में एसिटोन रहने पर घोल का रङ्ग गहरा लाल Permangnate red) हो जायेगा।

कारण - भोजन में स्नेह पदार्थ घी, तैल बादि के ठीक से पचने से मूत्र में एसिटीन जाता है। यधुमें ह में यह अवस्था अवश्य मिलती है। चिकित्सा—

माचार्यं सुश्रुत ने इसमें नीम का कवाय व शाल्मली मूल (सेमल मूल) का कवाय देने का निर्देश देते हैं तथा चरकाचार्यं ने कदंव, शाल, अर्जुन, अर्जवायन समभागं लेकर २ तोला द्रव्य का यथाविधि कवाय बना मधु के साथ देना लाभदायक बताया है।

- (१) चन्द्रप्रभावटी, बसन्त कुसुमाकर रस, शिचा-जित्वादि वटी बादि योग इस रोग की चिकित्सा में प्रशस्त हैं।
- (२) एसिटोन के कारण ऊपर जिन रोगों का उल्लेख आया है उनकी यथोचित चिकित्सा करने से यह भी सामान्यावस्था में आ जाता है। एतद्दर्थं विस्तृत चिकित्सा का उल्लेख नहीं किया गया है। उदाहरणतः मधुमें ह में यह सुरातुल्य गन्ध भी एक विशिष्ट लक्षण हैं। बतः मधुमें ह में उपयोगी सभी औषध कल्प सुराम ह (Acetonuria) में भी स्वभावतः ही नाभदायक हैं।

※ पृष्ठ १३७ का शेषांग ※

विडंग, अर्जुन छाल, धमासा समभाग को २० प्राम लेकर क्वाथ बनाकर पिलाना (योग रत्नाकर) तथा जयन्ती कथाय (सुश्रुत)का प्रयोग उत्तम है। करेले के रस का पान सुबह-शाम २-२ चम्मच तथा शब्जी भाजी में करेले का प्रयोग इस अवस्था में अत्यन्त लाभदायक है। (१) शिला-जित्वादि वटी २-२ गोली करेले के रस से सम्ताह भर में ही रोग ठीक हो जाता है।

मूत्रा सीमा चिकित्सा

चित्र मेह गश्कल सेह

(विशेष-सम्पादक)

बाचायं भाविमध भावप्रकाश में लिखते हैं -

'संहृष्ट रोमा पिष्टेन पिष्टवद् बहुलं सितव्''

संह्र रोमा (रोंगटे खड़े होना) पिष्टेन पिष्टवर् (पिष्ट तण्डुलवत्-त्रावल के घोवन के समान) वहुलं (गाढ़ा) सितं (सफेद होता है अर्थात्-विष्टमेह में मूत का वर्ण चावल के घोरन के समान सफेद तथा अधिक मात्रा में होता है और मूत्र त्त्राग करते समय रोमांच (रोंगटे खड़े होना) होता है। इस प्रमेह में जो रोमाच होता है वह पिष्टिमिश्र सफेद वर्ण मूत्र देखने का परिणाम मालूम होता है। साचार्य चरक ने इसे -

शुक्लं पिण्टिनिभं मूत्रं अभीक्णं य प्रमेहित । पुक्षं कफ प्रकोपेन तमाहु शुक्लमेहिनम्।।

कहकर गुक्ल (सफेद),पिण्टिनिभं (पिसे हुए चावल की तरह सफेद) मूत्र मान कर गुक्लमेही तथा आचार्य सुश्रुत "पिण्टरस तुल्यं पिण्टिमेही" कह कर पिण्ट रस के समान मानकर पिण्ट मेही माना है। इस प्रकार का सफेद मूत्र एल्ट्यूमिन, पूय या काईल (Chyl) की उपस्थित से होता है। मूत्र में काईल (Chyl अन्त रस) म्लीमद कृमि केकारण साता है। ये कृमि सान्तस्थ रसवाहिनियों में अवस्थान करके रस प्रवाह को अवस्द्ध करते है जिससे मूत्रवहसंस्थान की रस वाहिनियां फूटती हैं तब रस मूत्र के साथ वाहर निकलता है। इसिलये इसको काईल्यूरिया (Chylur.a) कहने हैं।

काइल (Chyl) मूत्र में चर्बी (Fat वसा) आने लगती हैं। इसको (Chyl) कहते हैं जिससे मूत्र दूधिया हो जाता है श्लीपद (Filaria) अस्थिभान, मृदु वृक्क शोथ आदि में इसकी उपस्थित देखी जाती है।

काइल परीक्षण-टेस्ट ट्यूर्व में २ मि.लि. सूत्र डालिये इस मूत्र में २ मि. लि. ईथर (Ether) मिलाइये। काइल

रहने पर चर्वी ईथर में घुल जायेगी तथा मूत्र जलकत् हो जायेगा और ईथर मूत्र में मिल जायेगा। पर यदि मूत्र की सफेदी काडल के कारण नहीं है तब सफेदी गायब न होगी और ईथर मूत्र में न मिलकर मूत्र के ऊपर पड़ा रहेगा।

कार्ण-

उष्ण प्रदेशों में काइल्यूरिया-फाईलेरिया सैम्युमिस के काल होता है जोकि थोरिसक प्रणाली को रोक देता है। ग्रीत प्रदेशों में नई वृद्धि या प्रन्थियों का वढना भी इसका कारण है, वृक्क और मूत्राग्रय की रसायनियों पर (Lymphatic Vessles) घीछे से एट्ठ भाग पर दबाव पड़ने के कारण इनकी विदीर्णता मूत्र में होजाती है। फाइलेरिया में रात्रि मे जो सूत्र बाता है पूर्णतः क्वेल् होता है। दिन में हुये मूत्र में रक्ताणु घवेताणुओं के साथ इन कृमियों के भूग भी मिलते है। साधात लगने से अस्थि-पड़्ता होने से भी काईल्युरिया हो जाता है। इसमें मूत्र में एल्ट्यूमिन, स्नेह फाईन्नीन मी होती है। ल्यूकीमिया के साथ यह कम मिलता है।

यह रोग कभी मन्द कभी तीन अवस्था में रहते हुए कई दिन तक चलता रह सकता है। रोग के लगातार रहने पर थोड़ा स्वास्थ्य विगंड़ता है तथा रोगी धीरे धीरे अपने में अधिशय निवंसता और मानसिक निराशा अनुभव करता है।

चिकित्सा -

(१) पीने के पानी की उवाल कर ही पीना चाहिए
तथा रोगी की शक्ति को बनाये रखने के लिये पोपक भोजन
देना चाहिए। सान्द्रमें ह और पिट्टमें हु में लक्षण साम्यता
तथा चिकित्सा की बहुत साम्यता है। (२) सुश्रुत ने हरिद्रा
और दारुहरिद्रा कषाय तथा-(३) चरक ने दारु हत्वी,
विडंग, कत्या और धव का क्वांथ पिलाने का निर्देश दिया
है (४) मण्डूर भस्म मधु से ४ रत्ती की माता में निफला
कषाय से पीना अदभुत लाभदायक बताया है। (१) बसन्त
कुसुमाकर, प्रमेह चिन्तामणि, पूर्णचन्द्ररस महावंगेण्वर
वृहद वंगेश्वर, चन्द्र प्रभावटी आदि का प्रयोग प्रशस्त है।

- ह्या योगा चितिहरूत

सिकता मेह

(विशेष-सम्पादक)



आचार्य सुश्रुत के शब्दों में—
"सरजं सिकतानुविद्धं सिकताम ही"
अर्थात् मूत्र करते समय कव्ट हो तथा मूत्र में बालू विसे कण आवें तो सिकताम ह कहते हैं।
चरकाचार्य ने लिखा है—
,

मूर्लान्यूत्रगतान्दोषानणूनमें हित यो नरः।

सिकतामें हिनं विद्यान्नरं तं क्लेष्मकोषतः।।

अतः सिकृता के रूप में उपस्थित दोषों के अणुओं को भूत्र में सिकतामें ही साक्षात् देखता है तथा मूत्र त्याग के समय भी कष्ट की अनुभूति होती है। (मूत्रपथ की अक्ष्मरी जब पिस जाती है या जब अक्ष्मरी का बड़ा रूप न बनकर छोटे-छोटे कंणों के रूप में ही वह बनती है तो उसे अक्ष्मरी न कह कर सिकृतामें ह कहा जाता है। अक्ष्मरी में प्रमुख भाग औक्जेलेट्स का होने के कारण इसे आधुनिक वैज्ञानिकों की भाषा में ओक्जेलेटमें ह (Oxaluria) कहा जाता है।

बाक्जेलेट्स Oxalates)-साधारणतः रक्त कें प्रति ्लिटर में २३.-७७. मि. ग्रा. बोक्जेलिक ऐसिंह होता है। मूल में २४ घण्टे में २०-४७.५ मि लि. ग्रुद्ध आक्जेलिक एसिंड पाया जाता है परन्तु स्वस्थावन्था मे मूत्र के अन्दर इसके स्फटिक या किस्टल कभी नहीं बनते। उपवास करने पर भी मूत्र में कुछ आक्जेलिक एसिंड पाया जाता है। ओक्जेलेट का मूल में आना किसी लक्षण या रोग को सूचित नहीं करता विलक कईयों में कैलिसियम आक्जेलेट के स्फटिक वर्षों तक मूत्र द्वारा आते रहते हुए भी कोई कप्ट नहीं होता परन्तु इससे अश्मरी का रूप तथा उसकी उप-स्थित का पता वल जाता है।

परीक्षण—जोवजेलेट्स उद्रहरिकाम्ल मे घुलनणील तथा सिरकामूल में अघुलनणील है। कैल्सियम के साथ मिलने से इसके तुम्बलाकृति या अष्टमुखी स्फटिक (Caloxalate) अणुबीक्षण यन्त्र द्वारा मूल परीक्षण करने पर आसानी से पहचाने जा सकते हैं। कारण--

पत्र शाक व फल जैसे गोभी, टमाटर, गाजर, पालक प्याज, सेव, सन्तरा, आदि व खांड स्टाचं, चाय, कॉफी स्नेह पदार्थ आदि तथा अम्लपदार्थों के अति सेवन से यहंत की कार्यहीनता के कारण शांतों में भली प्रकार जीण न होनें से तथा वहां विदग्ध होकर आक्जेलिक एसिड की उत्पत्ति होती है।

लक्षण-

स्टार्च भोजनों को अजीणं से इसकी उत्पत्ति होकर यह रक्त में विलीन होकर रक्त द्वारा मूत्र में निकलता है और वहां कैंक्सियम के साथ मिलने से इसके स्फटिक वृक्क में जमा होने से वृक्काश्मरी का निर्माण होने लगता है तथा मुत्राशय और मुत्रमागं में क्षोभ होने लगता है। मूत्र बार बार आता है। शरीर में कृशता, किटशूल और शरीर सुस्त और थका हुआ सा लगता है। पैक्रियास के रोग तथा वृक्क शोथ में मानसिक उदासी, आंतों में शकरा के असामान्य निर्माण तथा तीव अजीणं से ये मूत्र मे आते हैं। चिकित्सा—

जिन भोजनों से आन्जेलेट अधिक मात्रा मे हो तथा कार्वोहाईट्रेट की अधिकता से आंतों में विदाधता उत्पन्न हो उन सब भोजनों को छोड देना चाहिए। उपरोक्त पत्र शाक कुछ फल, स्नेहो अण्डे आदि कार्वोहाइट्रेंट खण्ड, स्टार्च भोजनों की यादा कम कर देनी चाहिए। इसको स्फटिक वनने से रोकने के लिये मैगनेसिया देना चाहिए। अश्मरी को न वनने देने के लिये सीडियम बाईकार्वीनेट तथा अमी-नियम क्लोराईड (नीसादर) देकर मूत्र को तीव अम्ल रखना चाहिए जिससे इसके कण जमकर अध्मरी नहीं बना पार्वेगे तथा मूत्र को अम्ल करने से मूत्राधिक्य होकर मूत्र के साथ इनका निर्गमन हो जायेगा। द्व का सेवन भी करना चाहिये ताकि दूध मे विखमान कैल्सियम से मिलकर इसका कैल्सियम बीक्जलेट बन जाये जो अविलेय होने से शरीर में विलीन होकर पुरीय द्वारा आंतो से निकल जाता है। जल अधिक पीना चाहिए जिससे इसके स्फटिक मूत्र मे बैंटने नहीं पाते। प्रातः Mag Sulph १-२ ड्राम लेने से तथा पाचक औषधि सामुदादि चूणं, लवणभास्कर चूर्ण आदि के प्रयोग से मूल में इसके निकलने की आशंका नहीं रहती।

—शेवांश पृष्ठ १४५ पर देखें।



(विशेष-सम्पादक)

आचार्य चरक के शब्दों में—
शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा मुहर्मेहित यो नरः।
शुक्रमेहिमाहुस्तं पुरुषं क्लेंब्मकोपतः ॥

शुक्र (वीयं) के समान या शुक्र मिला बार बार मूत

त्याग शुक्रमोह कहलाता है।

वाचार्य श्रीकण्ठ ने शुक्रमेह में मूत्र को शुक्र जैसा हवेत और स्निन्ध तथा शुक्र धातु मिला हुआ स्वीकार किया है। अतः सारा ही मूत्र या तो शुक्र जैसा होता है या उसमें शुक्र (वीर्य) मिला हुआ रहने से शुक्रमेह (Spermatorrhoe) कहा गया है।

कारण—अति सहवास, अश्लील कामोत्तेजक नगन चित्र मय उपन्यास व सैन्स पित्रकार्ये पढ़ना, मैथुन के विषय में चिन्तन करते रहना, अत्यधिक सिनेमा देखना व अन्य हस्त मैथुनादि कुटेबों के फलस्वरूप तथा अधिक घुड़ सवारी व अधिक साईकिल पर घूमना आदि कारणों से वीय पतला होकर मूत्र के साथ आता रहता है।

अग्निमान्द्य, कपायित, उदरकृमि, निद्रा का अभाव, सुजाक, उपदंश आदि रोग मानसिक चिन्ता, अवसाद आदि कारण ही सहायक रूप में माने जाते हैं। स्वप्नदोप भी इसीका रूप है।

े टेन्टेक्स (Tentex) इस शति मेह (GLYCOSURIA)

(विशेप-सम्पादक)

चरकाचार्य एवं वाग्भट्ट ने ही इसे स्वीकार किया है।
सुश्रुताचार्य ने इसे नहीं दिया है—
अत्यर्थमधुरं शीतं मूबं महिति यो भृशम्।

अत्यर्थमञ्जूरं शीतं मूल महातया भृशम्। शीतमे हिनमाहुस्तं पुरुषं श्लेष्मकोपतः ॥ परीक्षण—रोगी के मूत्र का रङ्ग नीयैवत् देखकर ही आभास किया जा सकता है। मूत्र त्याग के प्रव्रात् रोगी को चक्कर आकर आंखों के सामने अधेरा छा जाता है।

वसुणीक्षय यन्त्र—हारा मूत्र परीक्षण करने से मूत्र में शुकाणु मिलते हैं। शुक्राणु का शिर का आकार सूक्ष्म वण्डाकार सा या लोभिया के आकार का होता है, लम्बी वाहु पर, जिसके हारा यह गति करता है, इसकी पूँछ रहती है इसकी लम्बाई पृइन्च का ६००वां भाग होती है।

चिकित्सा—आचार्यं सुझुत ने दूर्वा, शैवाल, पूर्ति करंज, कसेरक, केवटी मोथा, सेवार जलकुंभी कपाय का प्रयोग तथा चरकाचार्यं ने देवदार, मीठाकूठ, अगर और लाल चन्दन का कपाय तथा योगरत्नाकरकार ने न्यग्रो- ब धादि गण की औपधियां लिखी हैं।

विशेष—धातुक्षीणता व धातुदीर्वत्य की चिकित्सा करनी चाहिए। वसन्तकुसुमाकर रस, चन्द्रप्रभा वटी, वृहद वंगेश्वर, पूर्ण चन्द्र रस, शिलाजीत के योग, चरक कम्पनी की निओ (Neo tabs), हिमालय ड्रग की टेन्टेक्स (Tentex) इस रोग में लाभदायक है।

अर्थात् शीतमे ही (१) अत्यन्त मीठा और (२) ठण्डा तथा (३) बहुत सा मूत्र विसर्जन करता है। स्वभावतः मूत्र शरीर के रक्तताप के समान उप्ण होता है। पर जिन अवस्थाओं में Nitrogenous, पदार्थों की

न्त्रा राषा चितिकत्सा

बमोनिया बादि की उत्पत्ति अधिक होती है तो मूत्र शीतल हो जाता है। संभवतः इसी अवस्था को ध्यान में रखते हुए आचार्यों ने इस अवस्था का वर्णन किया है। शीतमें ह और इच्छुमें ह दोनों का समन्त्रय आधुनिक वैज्ञा-निक Glycosuria से देते हैं। दोनों में मधुरता का गुण समान होते हुए भी एक ठण्डा है और वार वार आता है तथा दूसरा न ठण्डा ही होता है और न बार वार ही आता है। यह कोई महत्वपूर्ण रोगं नहीं है, पर इक्षुमें ह तो वृक्क की साधारण शर्करा क्षमता घट जाने से होता है तथा शीतमें ह में वृक्क की शर्करा क्षमता (Renal thresh hold) तो ज्यों कि त्यों रहनी है, पर ख्लुकोज का शरीर में सात्मीकरण ठीक से नहीं होता। यह एक प्रकार से मधुमें ह का प्रारंभिक स्वरूप ही है।

चिकित्सा—ंचरक ने इसकी चिकित्सा में दारुहल्दी, अग्निमन्थ, त्रिफला और पाठा का क्वाथ देने का निर्देश दिया है। पाठा एवं गोक्षुरु क्वाथ तथा पाठा, गोक्षुरु, मूर्वा का क्वाथ (योग रत्नाकर) मधु से पिलायें। दायंक, माना है।

विशेष—शिलाजित्वादि वटी का करेले के रस के साथ प्रयोग उत्तम है। इक्षुमें ह में विणित औषघोपचार ही शीतमें ह में भी उपयोगी है।

क्ष्मिक्षिक क्षेत्रक (विशेष-संख्यातिक) स्थानक क्ष्मिक
यह प्रमोह सिकता (अश्मरीकण) के मूत्रमार्ग में कुछ अवरुद्ध होने कारण होता है। मूत्र Cal oxaletes के अवरुद्ध होने से ऐसा होना संभव हैं—'मूत्रोन युक्तः सिकता प्रमोही मन्देव मूत्रोण शनै प्रमोहः' अतः इसे सिकतामें ह (oxaluria) का ही एक भेद समझना चाहिए। आचार्य ने इसके लक्षणों में—'शनैः सकर्फ मृत्सनं' अर्थात् शनैमें ह का रोगी धीरे धीरे कफयुक्त और स्वच्छ मूत्र त्यागता है। आचार्य चरक भी—'मन्दे मन्दे अवेगं तु कुच्छूं यो मूत्रमें यच्छनैः, शनैमें हिनमाहुस्तं पुरुपं घलेष्मकोपतः' अर्थात् मन्द मन्द गति से बिना किसी वेग के, किन्तु कष्ट के साथ मूत्र त्याग को शनैमोह कहते हैं।

परीक्षण—सिकतामे हीवत्ं मूत परीक्षण करें। चिकित्सा—आचार्य सुश्रुत ने खदिर क्वाय तथा त्रिफला और गुहूची का कपाय तथा चरकाचार्य ने वच, उशीर, हरड़, गिलीय हैंका क्वाथ का प्रयोग लाभप्रद बताया है। हमारे विचार से इसे सिकताम ह की ही प्राथ-मिक स्थिति मानकर तद्वत् चिकित्सा करनी चाहिये।

लाला मेह

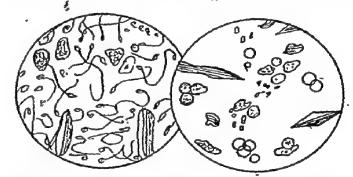
※※※※※※※※ (विशेष-सम्पादक) ※※※※※※※※※※※※※※

चरक के शब्दों में—

तन्तु बद्धमिवालालं पिन्छिलं य 'प्रमेहित । आलालमेहिनं विद्यात् तं नरं म्लेष्मकोपतः ॥

सर्थात् तार या सूत्र जैसे चिपचिपे तन्तुओं से युक्त मूत्र का उतरना आंलालमें ह का लक्षण कहा गया है। वाग्भट्ट 'लालातन्तुयुक्तं मूत्रं लालमें हेन पिस्छिलम्'

अर्थात् तार बंधने वाली लार जैसा मून आता है। अधिक कामाशक्त पुरुप के मूत्र मार्ग से स्निग्ध और



चित्र फ्रमांक ४० — अणुवीक्षण यंत्र द्वारा देखे गये वीर्य जीवाणु (वार्ये) एवं पौरुष प्रंथि स्नाव (दायें)

पिन्छिल मूत्र के रूप में यहत् दोप से शुक्रकीट ही शुक्र द्वन (Spermatid fluid prostatic or Semmal visical secretion) का स्नाव स्नवित होता रहता है तथा जब रोग का रूप ले लेता है तो विना कामासक्ति भी पौरुप ग्रन्थि और अन्य ग्रन्थियों का स्नाव मूत्र मार्ग से मूत्र के साथ वहता रहता है।

विशेष—आचार्य सुश्रुत ने लालामे ह का उल्लेख नहीं किया है। किन्तु लवणमे ह और फोनमे ह के रूप में कफज मेह के दो अन्य भेद माने गये हैं।

चिकित्सा— चरक ने वासा हरीतकी, चित्रक छाल, सप्तपणं छाल क्वाय मधु मिलाकर पीने का निर्देश दिया है। वकायन के बीज की मिगी २ माणा मधु से जाटना भी लाभदायक है (योगरत्नाफर)।

लिवण स्हि [विशेष-सम्पादक]

लवणमेह (Chlorideuria) - आचार्य सुश्रुत के अनुसार 'विशव लवण तुल्यं लवणमेही' लवण के घोल कि समाम विशद (पिन्छिल का उलटा) मूत्र का होना व मूत्रा में नमक (Chloride) की मात्रा अधिक आना लवणमें ही का लक्षण है।

क्लोराइड परीक्षा-मूत्र को फिल्टर पेपर से छानकर (एलव्युमिन हो तो गरम करके) टेस्ट ट्यूव में आधी इंच मूत्र डालें। अब इसमें एक बूंद Nitric acid डालें। इसके बाद Silver Nitrate का घोल मूत्र की मात्रा के वरावर मिलावें। यदि क्लोराइड होगा तो दूघिया सा हो जावेगा अथवा क्लोराइड के रहने पर मूत्र विलकुल साफ रहेगा।

सामान्यतः मूत्र से प्रतिदिन १२ से १५ ग्राम तक मूत्र द्वारा क्लोराइड का निस्सरण होत रहता है। आहार में लिये गये नमक के अनुसार इसकी मात्रा में परिवर्तन आता है। तीव्र आमवात, न्यूमोनियां, सस्तत ज्वर में इसकी मादा कम हो जाती है तथा शीत ज्वर, विषमज्वर आदि के शमन के बाद इसकी मात्रा बढ़ जाया करती है।

चिकित्सा-आचार्यं सुश्रत 'लवणमोहिनं पाठागुरु हरिद्रा कषायम्-पाठा, अगर, हरिद्रा का कषाय पीने का निर्देश दिया है।

भिन भिन्न अस्त्र अस्त्

लवणमेह तथा फैनमेह का वर्णन केवल सुश्रुत संहिता में ही उपलब्ध होता है। फेनमोह का लक्षण लिखते हुए आचार्य सुश्रुत लिखते है-

स्तोकं स्तोकं (थोड़ा-थोड़ा) सफेनं (झागदार) फेनमोही में हिति फेनमे ही का रोगी मूत्र त्यांग करता है तथा उसमें वायू की प्रधानता रहती है। अतः मूल मार्ग से मूल के साथ या उसके बिना भी वायु निकलती रहती. है इंसलिये इसकी वायम है या फेनम है कहा गया है। फारण--

(१) वस्ति का सम्बन्ध स्यूलान्त्र या मलाशय से होने के कारण अथवा वस्ति में वैसीलस कोलोकम्युनिस या

यिटनामक जीवाण के प्रविष्ट होने से मुत्र में वायु जत्पन्न होकर फेन के साथ उसका त्याग होता है।

- (२) कामला में भी मूत्र अधिक झागदार होता है तथा झाग देर तक रहता है।
- (३) मुलाशय के साथ मलाशय, गर्भाशय के कर्कट (Cancer) के साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध होने से या अष्ठीला, उण्डकें की विद्विध के कारण व मलाशयशोध (Proctitis) के कारण व आघात अभिघात प्रसव सादि से उत्पन्न हुए बस्ति मलाशय नाड़ी ज्ञण (Fistula) के कारण मुवाशय के साथ सम्बन्ध होने है कारण मुत्रमार्ग से वाय तथा कभी कभी वाय के साथ मल द्रव्य भी निक-लते रहते हैं।

(४ मुताशय के साथ स्थलान्त्र का सम्बन्ध होने में स्थलान्त्र दण्डाण् (B. coli Communis) का महत्वपूर्ण स्थान है। यह दण्डाणु स्थूलान्त्र के समान मनुष्यों के आन्त्र में रहता है तथा उसी के समान मुताशय में पहुंच कर उपसर्गं करता है और नायुम ह उत्पन्न करता है।

(१) वायुमें हूं को उत्पन्न करने वालों में दूसरे महत्त्व के जीवाणु प्रकिण्व (Yeasts) होते हैं। ये अधिकतर शर्करा में हियों में पाये जाते हैं। प्रकिण्व जन्य वायुमे ह मे मूत मे न पूय कोशाएं पायी जाती है और न अन्य कोई जीवाणु रहते हैं और स्वतन्वतया वायु न निकल कर मृत्र के साथ छोटे-छोटे बुलवुलों के रूप में उत्सर्गित होता है।

लक्षण---

मूत्र त्याग के समय मूत्र में झाग अधिक होते हैं तथा मूत्र के साथ व मूल के विना भी मूत्रमाग से वायु का निस्सरण होता है। तथा कभी कभी मृत्र विष्ठासम दुर्ग-निघत रहता है एवं रोग की उग्रावस्था में मूत्र मार्ग से मूल के साथ विष्ठा का भी निस्सरण होने लगता है। ऐसी स्थिति मलाशय या गर्भागय के कैसर में होती है।

चिकित्सा---

आचार्य सुश्रुत ने फेनम ही को त्रिफला, आरग्बध (अमलतास का गूदा) तथा मुनदका का दवाथ मधु मिला कर पीने का निर्देश दिया है। रोग के जो उपरोक्त कारण कहे गये हैं उन कारणों को दूर करना चाहिए। जिस रोग -के कारण इसकी उत्पत्ति हुई है उस अमुख रोग को दूर करने से यह स्वतः ही ठीक हो जाता है।

An eigh huidscen

क्षार मेह

क्षारम है (Alkaline urine) - सुश्रुताचार्य लिखते हैं - ''ल तक्षार प्रतिमं क्षारम ही' तथा चरकाचार्य के शब्दों में -

गन्धवर्ण रसस्पर्शेषथा क्षारस्तथाविवम्।
पित्तकोपान्नरोमूनं क्षारमेही प्रमेहति॥
अर्थात् क्षार मिले पानी का जो स्वरूप, गन्ध, रङ्ग और स्पर्शे होता है, ठीक वैसा ही क्षारमेही के मूत्र का हो जाता है।

कारण—बस्ति में अधिक देर तक मूत्र को रोक कर रखने से या मूलमार्ग के संकोचन से अधिक देर वस्ति में मूज के रहने से तथा पौरुष ग्रन्थि वृद्धि (Enlarged Prostate) व फोस्फेंट की अधिकता (Phophaturia) या पुराने वस्तिशोध (Cystitis) के कारण मूत्र क्षारीय हो जाता है।

कारीयता परीक्षण-लाल लिटमस्विपर(Red litmus Paper) मूल में डालने से नीला हो जाय तो मूल की प्रतिक्रिया क्षारीय समझनी चाहिए। चिकित्सा—

सुश्रुत ने त्रिफला कषाय पीने का निर्देश दिया है। चरक ने सभी पित्तज प्रमेहों में १० क्वाय तथा वाग्भट्ट ने क्वाय के ३ योग दिये हैं। चरक का - उशीर, लोध अर्जुन और चन्दन का कषाय मधु से देना लाभदायक है।

नील नेह

नील मह (Indican uria) — आचार्य चरक लिखते हैं —

चापपक्षतिमं मूनं अम्लंम हित यो नरः।
पित्तस्य परिकोपेणं तं विद्यान्नीलमेहितम्।।
चापपक्षी के पंख के रङ्ग के समान नीला रंग का
मूत्र नीलमेही को होता है। आचार्य सुश्रुत ने "सफेनमच्छ नीलं नीलमेही मेहित" लिखा है। सुश्रुत ने अम्ल होना स्वीकार नहीं किया बल्कि अलग से अम्लमेह माना है। आधुनिक चैज्ञानिक इसे Indicanuria कहते हैं—इसमें मूल में इण्डिकन नामक पदार्य उपस्थित रहता है, आन्त्र में या आन्त्रेंतर शरीर के अन्य हिस् सड़ने से यह द्रव्य मूत्र में आता है। सक्षण—

पुराना मलावरोध, आन्त्रावरोध, अतिसे। आन्द्रशोथ, फुफ्फुस शोथ,दुर्गन्ध युक्त खांसी तथा की तृतीय अवस्था में आन्त्र मूत्राशय सम्बन्धित दि के कारण मूत्र का रंग त्यागते समय प्राकृत और ही देर बाद नील हो जाता है व कभी कभी मूत्र त्यार समय भी नील होता है।

इण्डिकन की परीक्षा (Obermeyer's Test)-परी-क्षण नली में १०० सी सी. मृत्र तथा १० सी सी. आबर-में यर द्रव्य मिलाकर उसको खूब मिलाकर उसमें २ सी सी क्लोरोफार्म मिलावें । खूब मिल कर थोड़ी देर छोड़ देने से क्लोरोफार्म के स्तर नील वर्ण हो जायेंगें। नील वर्ण की गहराई से इण्डिकेन की मान्ना का अनुमान किया जाता है।

दूसरी विधि—एक से दो ट्यूब मूत २ सी. सी. में Hydrocloric Acid २ सी. सी. मिलावें। अब इसमें लाईकर कैल्सिम हाइपोफास्फेंट वृंद वृंद कर के तब तक डालें जब तक कि मूत्र का रंग नीला न बन जाय। इसके वाद उसमें क्लोरोंफार्म मिलाकर हिलाने से क्लोरो-फार्म का रंग बदल जायेगा।

चिकित्सा,—

वाचारं चरक ने खस, नागर मोथा, आमला और हरड़ का कपाय मधु मिलाकर पिलाने का निर्देश दिया है। आचार्य सुश्रुत सालसारादिगण के द्रव्यों का कपाय अथवा अध्वत्य (पीपल) की छाल का कपाय तथा आचार्य वाग्भट्ट ने लोग्राधादिगण के द्रव्यों का कपाय देने का निर्देश दिया है।

🖈 पृष्ठ १४१ का शेपांश 🛧

औपिधयों में — मेह बज्र वटी, बृहदवंगेश्वर रस, चन्द्र प्रभावटी, शुक्रमातृका वटी, गोक्षुरादि गुगुल, श्वेतपपंटी, यवक्षार टादि प्रयोग प्रणस्त हैं। निम्ब कपाय पान और चिवक कपाय (सुश्रुत) पाठा-मूर्वा गोक्षुरु का क्वाय (चरक) तथा दारुहल्दी, अरणी की छाल, त्रिफला, वच का कपाय मधु के साथ (योग रत्नाकर) उत्ताम प्रयोग माने गये हैं। ड्रील पह

[विशेष-सम्पादक]

मसीवर्णमजसं यो मूत्रमुण्णं प्रमेहित । पित्तस्य परिकोपेण गं विद्यातत्कामेहिनम् ॥ — चरक आचार्यं चरक इसे मूल काली स्याही के वर्ण वाला

बाचार्य चरक इसे मूल काली स्याही के वर्ण क

यर्थात् कालमेही का मूत्र स्याही (काली) के समान लिखकर चरक के लिखे हुए कालमूत्रता, उण्णमूत्रता और अजसमूत्रता में से पहले के दो लक्षणों को स्वीकार किया है तथा आचार्य सुश्रुत ने कालमेह का वर्णन नहीं किया है। सुश्रुत में कालमेह के स्थान में अम्लमेह का वर्णन मिलता है। किन्तु दोनों में समानता नहीं है। आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार कालमेह को ब्राउन एन्ड ब्लेक मूरिन्स (Brown and black urines) कहते हैं। सूत्र का काला वर्ण निम्न कारणों से उत्पन्न हुआ माना जाता है—

- (१) पुरानी कामला इसमें मूत्र के भीतर विलि-वर्डिन (Biliverdin) नामक रंजक द्रव्य उपस्थित होता है।
- (२) मूल में रक्त या रक्त के रंजक द्रव्यों की अधिक् मात्रा में उपस्थिति।
- (३) सूत्र में इन्डिकम तथा इन्डोल के उच्च श्रेणी के अपद्रव की अधिक राशि में उपस्थिति।
- (४) सूत्र में मेलानिन (Malanin) नामक रंजक की उपस्थिति के कारण यह प्रमें हु मेलान्यूरिया (Malanuria) कहलाता है और शरीर में मेलेनेटिक सार्कोमा (Malanotic sarcoma) एक प्रकार के घातक कैंसर होने से पैदा होता है।
- (५) मूत्र में होमोजेन्टिसिनिक एसिड (Haemogenticinic acid) की उपस्थिति से इसकी अल्केप्टो-न्यरिया (Alkaptonuria) कहते हैं।
- (६) कार्वोलिक एसिड का प्रयोग ज्ञण विशोधन के लिए करने से उसका शोधण रक्त में होकर कालमेह उत्पन्न होते हैं। उसे कार्वोलूरिया (Carboluria) कहते हैं।
- (७) सवाल, ख्यालिसासलेट, गैलिक एसिड तथा रिसोसिन इत्यादि पदार्थ के सेवन से भी कालमे ह उत्पन्न

होता है। इनमें कार्वीलूरिया, अल्केप्टोन्यूरिया और मेले-यूरिया में मूत्र त्यागने के थोड़ी देर के पश्चात्-सूत्र काला होता है।

चिकित्सा-

बाचार्य चरक ने उशीर, मुस्ता, आमलक, अभया के कपाय को मधु मिलाकर पीने का तथा आचार्य वाग्मट ने असनादि गण के द्रव्यों के नवार्थों से इसकी चिकित्सा करने का निर्देश दिया है। मूलतः जिन रोगों में यह लक्षण (मूत्र का काला वर्ण) होता है उनकी मूल चिकित्सा करने पर भी यह दीप दूर हो जाता है।

अम्लमेह

(Highly Acid Urine)

क्वि॰ डा॰ गिरिधारीलाल मिश्र ***********

अपनार्य सुश्रुत ने ही इसका उल्लेख किया है— 'अपन रसगन्धमम्लमेही'—मूत्र में छट्टी गन्ध आना और रस में भी उसका छट्टा होना। चटपटे अप्ल पदार्थों के अधिक सेवन से, आंहार में मांस-जातीय पदार्थों की प्रधानता तथा अल्पाम्लक (Hypoacidity), मधुमेह, जीणंज्वर, वृत्वकशोथ तथा अनशन काल में अम्लता (Acidity) की वृद्धि होती है। प्राकृत मूत्र की प्रतिक्रिया अम्ल होती है। अतः मूत्र में अम्लता होना सामान्य लक्षण है, पर अम्लता की मूत्रता में अतिश्रय वृद्धि (Highly acid urine, रोग-माना जाता है।

परीक्षण—मूत्रमें नीला लिटमस पेपर हालने पर लाल हो जाय तो मूत्र की प्रतिक्रिया अस्त समझनी चाहिए। अथवा उबले हुए मूत्र में सजिकाक्षार १ रत्ती हालने पर फेन बाने पर मूत्र को अस्तीय समझे। चिकित्सा—

क्षारीय द्रव्यों का उपयोग करना चाहिए। क्योंकि क्षारीयता अम्लतानाशक है। सुश्रुत ने न्यग्रोधादि गण कषाय से इसकी चिकित्सा करने का निर्देश दिया है।



[विशेष-सम्पादक]

रक्तमेह का अर्थ है-मूच में रक्त की उपस्थित । रक्त के गुणों में विस्नगन्ध, लवण रस का स्वाद तथा उज्जाता मुख्यहै, जिनका उल्लेख करते हुए आचार्य चरक लिखते हैं—

विस्रं लवणमुष्णं च रक्तं मेहतियोनरः। पित्तस्य परिकोपेण तं विचाद्रक्तमेहिनस्॥

विश्वं (आमगिन्ध), उष्णं (गरम) तथा लवणं (नम-कीन) रक्त की जो मूल के साथ त्यागता है उसे रक्तमेही कहते हैं। आचार्यं सुश्रुत 'शोणित प्रकाशं—शोणिमेही' अर्थात् मूल में रक्त का आना रक्तमेही कहुलाता है।

शंका और समाधान—रक्तिपत्त में भी मृत में रक्त आता है तथा रक्तिमेह में भी मृत में रक्त आता है जैसा कि आचार्य डल्हण ने शब्द्धा प्रकट की है—

शोणित प्रकाशञ्च मूर्वं रक्तिपित्तोऽपि भवति । ततः कोऽयं प्रमेह विषयः ।

आचार्य चरक का समाधान-

हारिद्र वण रुधिरं च मूत्रं

विना प्रमेहस्य हि पूर्वेरूपैः।

यो मूलयेतं न वदेत् प्रमेहं

रक्तस्य पित्तस्य हि स प्रकोपः ॥

—चरक प्रमेह चिकित्सा

अर्थात् अधोग रक्तिपत्त और रक्त प्रमेह में यही सन्तर है कि प्रमेह रोग के पूर्व उसके पूर्व रूप रोग में होंगे, किन्तु रक्तिपत्त में इन प्रमेहजन्य पूर्व रूपों का सभाव रहेगा।

लक्षण—जब रोगी के मूत्र में रक्त आता हो तो परीक्षा से निश्चय करना चाहिये कि रक्त मूत्र क्रेन से पहले आता है या मूत्र त्याग के पीछे आता हे भथवा रक्त मृत में पूर्णतः मिला हुआ आता है। या अधिक रक्त आता हो तो साधारणतः नेत्रों से देखने से ह मालूम हो जाता है। मूत्र का रङ्ग रक्त के कारण यूं। याला (Smoky) हो जाता है।

विशेष — स्तियों में मासिक ऋतुस्त्राव से इसमें . न हो जाय, एतदर्थ उनका मूत्रशलाका (Catheter) से मूत्र निकालना चाहिए।

सापेक्ष निवान—हारिद्रमेह और रक्तमेह दोनों में ्रक्त की उपस्थित होती है। अतः जब रक्त केवल रंज द्रव्य के रूप में उपस्थित होता है तब उसे हा रहि (Haemoglobinuria) कहते है। जिसमें .क्तकण की उपस्थित नहीं होती। पर जब मूत्र में रक्तकण की उपस्थित होती है तब रक्तमेह (Haematuria कहते हैं।

निदान साधन — सूक्ष्मदशँक यन्त्र से मूत्र की त छट की परीक्षा करके परीक्षण किया जा सकता है स्लाइड बनाकर देखने पर Pus cells स्पष्ट दीखेंगे। मूत्र में रक्त परीक्षा —

- (१) टेस्ट ट्यूव में ताजा मूत्र ३ इंची तक 'र उसमें कास्टिक सोडा का घोल मिलाकर क्षारीय [बना . अब इसको उवालने पर मूत्र की निचली सतह में लाल रङ्ग और ऊपरी भाग हरा सा हो तो मूल रक्त है।
- (२) टेस्ट ट्यूव में २ ग्रेन वेन्जिडीन (Benz dine powder) डालकर उसमें २ मिली॰ एसेटिए एसिड (Acetic acid) तथा २ सी.सी. हाइड्रोज परोक्साइड (Hydrogen peroxide) डालक खूव हिलाइये। अब उस घोल में १ बूँद मूत्र मिलाइये, मत्र का रङ्ग नीला हो जाने पर रक्त है।

(३) एक सोस्ते (Filter paper) पर थोड़ा हैसा वेन्जिडीन (Benzidine powder) रखकर उस पर थोड़ा वेरियम परीनसाइड रखकर इसके ऊपर एसिटिक एसिड (Acetic acid) १ बूंद डालिथे। इसके ऊपर २ बूंद मूत्र डालिए। यदि रङ्ग नीला हो जाय तो मूत्र में रक्त है।

क हेतुकी—

रक्त मूत्र पथ के किसी भी भाग के अभिघात अर्बुंद,

- ह १. वृक्क-तीव वृक्क शोथ, वृक्कावुँद, वृक्काश्मरी, है यहमा, रोधनलितांश [Infarct]।
- है २. गवीनी-- अग्मरी, अर्बुद [अंकुरावुद]।
- ि ३. मूत्रांशय मूत्राशय शोय, अश्मरी, अर्बुद, वैविपुटी, यक्ष्मा, विल्हाजिया रोग।
- य ४. मूत्रमार्ग-अश्मरी, विदरण और अंकुरार्दुद ।
- र थ. पुरस्थ-पौरुषप्रस्थिकी वृद्धि एवं पौरुषप्रस्थि ज्काकसर।

रक्तस्त्राव का संस्थान निर्धारण — मूत्रपथ के पूर्णतः है सन्वेषण के पश्चात् ही स्थान निर्धारित करना संभव है।



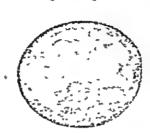
चित्र सं०--४१

इस तरह से मूत्र प्रसेक निलका पर आघात लगने से विदर होकर मूत्र में रक्त बाने लगता है।

आघात लगने के इतिवृत्त से कारण स्पष्ट हो जाता है।
न्यूल जो मूत्रपथ में अश्मरी की उपस्थिति के कारण होता है, रक्तमेह के साथ होता है, वेदनाहीन रक्तमेह वृक्क या
नित्राशय के अर्बुद से उत्पन्न होता है।

हैं [१] यदि रक्त सुर्ख रङ्ग का हो तथा मुख्यतः मूत्र करने के पहले आता हो, तब वह संभवतः मूलमार्ग व ौरुष ग्रन्थि पे आता है।

- [२] मूलमार्ग में किसी प्रकार का अर्बुंद व स्त्रियों में मूत्रमार्ग में मांसवृद्धि (मांसांकुर) में रक्त आता है। अवयव सम्बन्धी रक्तस्त्राव के मुख्य कारण—
- (१) तीव मूत्राशय शोय—इसके प्रारंभ में रक्तस्प्राव प्रायः कम होता है।



भूत्राशय में अनेक अश्मरियां

चित्र सं०—४२ भूगोली के के के के के

- (२) मूत्राशय में शर्करा या अश्मरी—मूलाशय में अश्मरी होने पर श्रम करने से रक्तस्त्राव अधिक होता है, मूत्रस्त्राव के पीछे अधिक होता है तथा इन्द्रियाप भाग में दर्द होता है।
 - (३) मूत्राशय का अर्वुद-विशेषतः पैपीलोमेटा में



मूत्राशय क अवुंद

चित्र सं०---४३

米米米米米米米

रक्तस्याव होता है जो मात्रा में अधिक होता है। कैसि-रस अर्युद में रक्तस्याव बीच बीच में कभी कम या अधिक रक्तकाव होता रहता है। अर्युद का फैलना, बढ़ना, शोथ या रक्त संचय का बढ़ना रक्तमेह को ज़रपन्न कर देता है।

- (४) पुरस्य वृद्धि—पौरुप ग्रन्थि की वृद्धि भी रक्त-मेह को उत्पन्न करती है। यह या तो रक्तसंचय से होती है अथवा बढ़ी हुई सिरा के फटने से होती है।
- (५) अन्य कारण—क्षय रोग, मूत्राशय के रोग, शरीर के प्रभावज रोग जैसे स्कर्वी; परप्युरा और शीस्टो समोा, हीमेरोबिया आदि कारण भी रक्तमेह में मिलते हैं। वृंक से रक्तस्राव के कारण—
- (६) शोय वृक्कशोय रोग के बढ़ने पर मूत्र में रक्त-स्राव आता है अथवा रक्तचाय वृद्धि के कारण नासा से भी

रक्तकाव होसकता है। वृक्क के क्षयरोग, वस्ति गोथ (Pyelitis) आदि कारणों से मूत्र में रवत आता है।

- (७) रवत वृद्धि—मृंदु रूप में रक्त वृद्धि होने पर मूत्र में एलब्युमिन आती है। किन्तु अतिशय रक्तवृद्धि होने से मूत्र में रक्त आने लगता है। वृद्ध शिराओं में श्राम्बोसिस होने से तीव रक्त वृद्धि हो जाती है। यह मुख्यतः स्ट्रैं प्टोकोकत संक्रमण के कारण होती है। जो रोगी ठीक प्रकार सवारी नहीं करता उसमें भी सहसा रक्तवृद्धि हो जाती है। इसी प्रकार उर्वस्थि के भग्न में प्रायः चलने के दूसरे दिन रक्षतवृद्धि हो जाती है जिसमें मूत्र में रक्तस्ताव और विक्शूल होती है जो कुछ दिनों विस्तर पर विश्वाम करने से शान्त हो जाती है।
- (न) वृक्ष का नीचे भाना—सम्भवतः वृक्ष में रवतः संचय होने से वृक्ष तथा उसकी वाहिनियां भी यदि नीचे उत्तर आवें तो मूल में रक्तस्राव होने लगता है।
- , (६) वृक्क की अध्मरी और शर्करा विशेषतः वृक्क शूल और मूल में रक्त आने का कारण ओक्जलेट्स की अध्मरी होती है।
- (१०) वृक्क की वृद्धि वृक्क की वस्ति की नई वृद्धि [पैपीलोमा, परनेफोमा] अथवा वृक्क के कैंसरं के कारण मूत्र में रक्त प्रायः विना दर्द के आता है।
- (११) वृक्काघात—वृक्क पर आघात लगने से, पीट के भार गिरने से वृक्कं विदीर्ण हो जाता है जिससे मूल में रक्त आता है।
- (१२) श्रीपिधयों के सेवन से रक्तस्राव—विशेषतः सैलीसिलेट, फिनोल तथा इससे वनी वस्तुओं-सल्फापी-रेडीन, सल्फाथाइजोल, हैक्जेमीन, कैन्थरीडीस, तारपीन तैल इनको खाने से भी मूल-में रक्त आ जाता है।
- (१३) अज्ञात हेतुक रक्तमेह [Essential haema-turia)—िबना किसी ज्ञात कारण के वृक्क से होने वाले रक्तस्राव के लिए इस शब्द को प्रयोग किया जाता है। रक्तस्राव अधिक या आवर्ती हो सकता है। प्रायः एक छोटा वाहिकार्युंद (Angioma) या अंकुरायुंद होता है।

अन्वेपण चिकित्सा से पूर्व पूर्णतः मूलप्थ परीक्षण अनिवार्य है। प्रथम सिस्टोस्कोपी हारा रक्तसाव का स्थान कात करना चाहिए। पूर्ण मूल परीक्षा हेतु मूलप्य के साधारण एक्सरे चिल्ल भी आवश्यक हैं।

चिद्धित्सा-

आचार्य सुश्रुत और वार्षट ने गुड्ची, तेंदू के फल की गुठली, गम्भारी और खजूर के फलों का कपाय मध्रु मिलाकर देने का निर्देश दिया है। सोंठ, अर्जुन, शिरीप छाल, छोटी इलायची और नील कमल का कपाय भी उपयोगी बताया गया है। लाल चन्दन, मध्रुयाब्टि, मुनक्का से सिद्ध क्षीर का प्रयोग उत्तम है। वृक्काश्मरी, अभि-घात क्षय आदि विविध कारणों से रक्तसाव की अवस्था उत्पन्न होती है। अतः रोगानुसार चिकित्सा करनी चाहिए।

[9] सिद्धामृत योग—श्वेत स्फटिका ३० ग्राम, स्वर्गंगैरिक १० ग्राम को तवे पर या छोटी लोहे की कड़ाही में भून लें। फिटकरी का जलीयांश जल जाने उखरल में डालकर खूव घोटकर शीशी में भर कर रखें ४ से ५ रती तक की माला में पानी से दें।

[२] सिद्धामृत मिश्रण—सिद्धामृत रस २ रत्ती बोलपर्पटी २ रती. प्रवाल पिष्टी २ रती, कहरवा नष्ट १ रती, मोती पिष्टी १ रती, लाक्षा वूर्ण आधा माशा १ माता। दूर्वा स्वरस मध्य के अनुपान से दें। रेग की अवस्थानुसार २-२ घण्टे वाद भी दे सकते हैं। रम्प मेह, रक्तप्रदर, रक्तार्श, नासागत रक्तस्राव को पहली ह माता बन्द करने में अमोघ है। बहुपरीक्षित स्वानुभू सफल प्रयोग है।

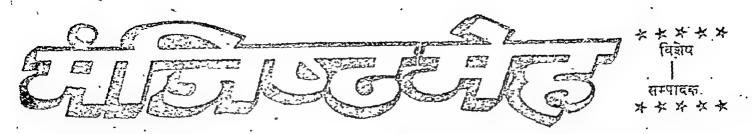
[३] बोलबद्ध रस (वृ०नि०र०]—-२-२ गोली : व पानी से देना लाभदायक है।

[४] चन्द्रकला रस (सि॰यो॰स॰)—२-२ गे ठण्डे पानी से एवं/या दाडिमावलेह से दें।

[४] उणीरासव-४-४ चम्मच दवा वरावर : से भोजन के वाद लाभदायक है।

एलोपेथिक औपधियां—(१) कैलिसयम सैण्डोज व विटामिन सी ५०० मि.ग्रा.-१० सी.सी. (१४१ रान्तर्र देना चाहिए। कई रोगियों पर हमारा अनुभूत है

() कैल्स क लैक्टेट की २० ग्रेन की पुड़िया ३ घण्टे बाद जल से देना भी लाभदायक है। आयुर्वेद अवाल, मुक्ता, अकीक आदि कैल्सियन योगों की तरह ये सफल योग हैं।



माचार्य चरक के शब्दों में—

मञ्जिष्ठोदकसंकाणं भृणं विसं प्रमेहति। पित्तस्य परिकोपस्तं विद्यान्माञ्जिष्ठमेहितम्॥

शर्यात सजीठ के कार्ड जैसे रंग का बत्यन्त विस्त (आम) गन्ध वाले मूत्र को मिन्जिएठमें ह बतलाया है। रक्तमें ह भीर मिन्जिएठमें ह में यही अन्तर है कि जहां रक्तमें ह में उच्छा, बिस्त, लवण रस वाला रक्त ही मूत्र में उत्तरता है वहां मंजिएठमें ह में मूत्र के साथ कुछ रक्त की वूं दें भी घुली हुई आती हैं जिससे यह न विशेष उण्ण होता है और न लवणयुक्त, आचार्य उल्हण ने रक्तमें हं और मंजिएठमें ह को रक्तियत्ता के समान माना है पर रक्तियत्ता में प्रमेह के पूर्वरूप लक्षणों का अभाव रहता है। मूत्र का इस प्रकार का पीठवणं. मूत्र में पित्त की उप- स्थिति व मूत्र में यूरोविलीन (Urobilin) की अधिकता से इसे यूरोवाईलीन्यूरिया (Urobilinuria) कहते हैं।

यूरोवाइलीन (Urobilin)—स्वस्य मूल में इसका सभाव रहता है परन्तु यकृत की सयोग्यता में या हीमो-लिटी रक्त न्यूनता में अधिक माना में आते हैं, जिससे मूल चमफता पीला या भूरा हो जाता है। यूरोवाइलीनोजन के फुछ देर पड़े रहने से यह उत्पन्न हो जाता है। जब रोग की विकृतावस्था में यूरोवाईलोजन अधिक माना में मून में आता है तब उसके साथ यूरोवाईलीन भी जाते हैं।

यूरीवाईलीन परीक्षा—एक देस्ट ट्यूब में १० मि.ली मूल लीजिये। इसमें २ मि.लि. केल्मियम क्लोराइड का फोल मिलाकर मूत्र को फिल्टर पेपर से छान नीजिये। इस प्रकार विलीकिवन (Bilirubin) जलग होजाता है। अब छने हुए मूत्र में लूगल की बायोडीन ४-६ वूँ द मिला- इयें। फिर जिक क्लोराइड का संतृष्त घोल १० मि. लि. मिलाकर दो घण्टे देस्ट ट्यूब को रख दीजिये। मूत्र में खिद यूरोवाईलीन होगा तब मूत्र में हरे रंग की बामा - (Greenish Fluoriscence) दिखलाई देंगी।

ज़क्षण-

में मूत्र का मजीठ के काढे के समान रंग होना व मूत्र

में यूरोवाईलीन व विलीक्विन पाया जाना, कामला, पांडु-रोग, यक्कद्दाल्युदर युक्त दुष्टि प्रमेह की ओर संकेत करते हैं। विषम ज्वर व कुछ दिनों विषम ज्वर के ठहर जाने में पांडु रोग होकर भी ऐसा हो जाता है, कामला सम्बन्धित निदान के लिए उपरोक्त मूल परीक्षा की जाती है। स्विकिटसा—

लाचार्य सुश्रुत एवं वा्मट्ट ने इसकी चिकित्सा मजीठ और चंन्दन के नवाथ से बतलाई है। चरक लोध्न नेत्रवाला दास्हरिद्रा धाय फूल का कपाय लेना बताते हैं। पंचतृण क्वाथ व कुशावलेह का प्रयोग भी उत्ताम है। यवोदक व वकरी का दूध पीने को दें। प्रवालिपिट, मुक्तापिटिट जहर-मोहरा पिटिट को गुडहल के शर्वत वं मथ से दें।



सुन्नत के शन्दों में—"सदाहं हरिद्रामं हरिद्रामेही" अर्थात्—दाहयुक्त हल्दी के समान पीला मून उत्तरने को हारिद्रमेह कहते हैं। जाचार्य वाग्मष्ट ने कुटकं क्पहं हरिद्रायुक्तमिव" लिखकर पीलापन, और कटुरसता को स्वीकार किया है। अतः रोगी दाह का अनुभव करता हुआ पीला पेशाव करता है। यह पीलापन मूत्र में विलीहिन तथा हीमोग्लोबिन के कारण होने से इसे Haemo-globinuria कहते हैं।

हीमोग्लोबीन-परीक्षण—रक्तमेह में जो विधि मूत्र में रक्त परीक्षा की दी है वहीं इसकी भी है।

हीमोग्लोबीन का मूत्र में आना-मलेरिया की उग्रावस्था में, मलेरिया में न्युनीन की वड़ी माला देने से हीमोलिटिक पांडुता तीव्र मूच्छा तथा तीव्र संक्रामक रोगों में बाता है। चिकित्सा—

सारन्वध (अमलतास) कपाय (सुश्रुत), मोया, हरड़ पुष्करमूल. खेत कुटजा छाल का क्वाय (चरक) देने का विधान है। मंजिष्ठमेह के सभी प्रयोग इसमें भी देते हैं।

THE FREDERIE

विशेष न आचार्य चरक के - 'रक्तस्य पित्तस्य हि स प्रकोपः सूत्र के अनुसार हरिद्रमें हैं, मञ्जिष्ठिमेह कालमें ह तथा रक्तमें ह वास्तव में रक्तपित्तं या रक्तमें हैं के ही विविध प्रकार व विभिन्न अवस्थाओं के विविध स्वरूप हैं।

ल्या सेह [विशेष-सम्पादक]

आचार्य सुश्रुत ने "वसा प्रकाशं वसामेही" लिखा है तथा आचार्य चरक के शब्दों में—

वसामिश्रं वसामं च मुहमुहित यो नरः। वसामे हमाहस्तं असाध्यं वातकोपतः॥

अर्थात् वसा(चर्नी) के रंग का या चर्ची खंसा वार वार मूत्र त्याग वसाम ह कहलाता है। मूल में पूय, एरुव्यूमिन तथा चर्ची की उपस्थित इसमें होती है। वसाम ह-चर्ची युक्त पदार्थ अधिक मात्रा में खाने से मधुम ह, वृक्क के चिर-कारी शोथ और पूयमय वृक्क । Pyo-nephrosis) में होता है। पिष्टम ह में भी मूत्र में बसा रहती है। इसे वसाम ह या लालायूरिया (Lipuria) कहते हैं।

आचार्य सुश्रुत ने अरणी और शीसम के क्वाय की प्रयोग करना बताया है।

विशेप मूल में पूय, एल्ब्यूमिन, वसा आदि के लक्षणों को देखकर तदनुसार विकित्सा करनी चाहिए।

सिंखा मेह [विमेष-सम्पादक]

मज्जामें ह—चरक के शब्दों में— मज्जानं सहमू विण मुहमें हित यो नरः। मज्जामें हिनमाहुस्तं असाध्यं वातकीपतः॥

जो बार वार मूत्र के साथ मज्जा को विसर्जितं करता है वही मंज्जामें ही है। मज्जा मिला या मज्जा जैसा मूत होना बंसामें ह का ही प्रकार है। आचार्य चरक और वारभट ने मज्जामें ह तथा आचार्य सुश्रुत ने सर्विम ह संज्ञां दी है। उसमें वसा के साथ रक्त का भी मिश्रण पाया जाता है। ऐसी अवस्था वृक्कविद्रिध, पुराना पूयमें ह तथा मूत्र संस्थान के यहमा में मिलती है।

चिकित्सा-

आचार्य सुश्रुत—"सिंपमें हिनं कुष्ठ कुटजपाठा हिंगु कटु-रोहिणी कल्प गुरुची, चित्रक क्यायेण पायतेत्" – कूठ, कुटज छाल, पाठा, हींग और कुटकी के कल्क को गिलोय और चित्रक के बवाथ से देने से सिंपमें ह व मञ्जामें ह ठीक होता है। आचार्य चरक – विफला, मूर्वा की जड़, सहिजन की छाल. नीम की छाल, मुनक्का और सोमल की जड़ की छाल का कथाय बनाकर मधु से देने का निर्देण देते हैं।

हरित सह [विशेष-सम्पादकं]

ఇ్డ్రిండ్లో బక్టింక్డింట్లో ఇక్కింట్లో ఇక్కింట్లో ఇక్కింట్లో ఇక్కింట్లో ఇక్కింట్లో ఇక్కింట్లో ఇక్కింట్లో ఇక్కిం

हस्तीमत्त इवाजस्रं भूवं क्षरति योभृशम् । हस्तिमेहिनमाहुस्तं असाध्यं वातकोपतः ॥ तथा आचार्यं वाग्भट-

सलसीकं विबद्धं च हस्तिमें ही प्रमें हति।

खर्थात्-लसीका सहित मचु रस युक्त बिना वेग के ही पागल हाथी जिस तरह धूं आधार पेशाब करता है वैसे ही हिस्तम ही करता है। आधुनिक वैज्ञानिक इसे मधुम है का ही लक्षण (Polyuria-बहुमूत्रता व Dibetes insipidus) उदकम है ही मानते हैं तथा कुछ विद्वानों के मत से यह एक प्रकार का मिथ्या मूतकुच्छ (False incontinuence of Urine) है जो सुपुम्नां स्थित म्त्रकेन्द्र के आधात तथा ग्रन्थि की वृद्धिके कारण पाया जाता है।

लक्षण—यह रोग युवंकों में होता है। मूल की माला दिन भर में ७-६ लिटर से भी ज्यादा हो जाती है तथा उसकी आपेक्षिक गुस्ता १.००६ के लगभग होती है। मूल के अधिक जाने से पिपासा अधिक वढ़ जाती है, स्वेद नण्ट, त्वचा गुष्क तथा मल विवन्ध रहता है। मधुमेह तथा जीर्ण वृक्क रोग से इसका भेद करना चाहिए जो सुगम है। चिकित्सा—

तिन्दुक, किंपत्थ, शिरीप, पलाश, पाठा, मूर्वा, धमासा का कपाय मधु मिश्रित करके पिलाना चाहिए। हाथी, घोड़ा, सूथर, गधा, और ऊँट की हड्डी का क्षार (हड्डी की भस्म) का प्रयोग उत्तम बतलायां गया है।

विशोप- उदकमें हवत् ही इसकी चिकित्सा करनी चाहिए अतः इसे उदकमें हु में ही विस्तार से देखें। 🐣

दिन्द्री विद्या है। एस. युस. कवि. बी. एस. प्रेमी एम. आई. एस. युस.

いるからいのうとうなるのできることできる

धन्वन्तरि के कृपालु एवं सहृदय पाठकों की सेवा में यहां एलब्युमिन मेह पर अपने अनुभूत विचारों के तहत कुछ प्रस्तृत करने पर प्रयास कर रहा हूं। यथोंकि प्रस्तुत प्रमेह के रोगियों पर आयुर्वेद में मूत्र एवं सिद्धान्त रूप में जो कुछ कहा गया है तदनुसार वर्तमान युग में क्रिया-त्मक रूप में नहीं हो, पा रहा है। आज के अधिकांश विद्वान् यही निणय नहीं कर पा रहे हैं कि प्रस्तुत एलव्यु-मिनमेह है बया ? वयों कि सुश्रुतानुयायी धन्वन्तरि समप्रदाय के आधुनिक आयुर्वेदिक चिकित्सक इसे स्वीकार नहीं करते। चरक संहिता में जिस लालामेह का वर्णन विद्यमान है. वह सुश्रुत संहिता में नहीं है। आचार्य स्भृत ने उसके स्थान पर लवणमेह का निरूपण किया किन्तु चरक के लालामेह और सुश्रुत लवणमेह का वस्तुत: परस्पर कोई भी सामंजस्य है ही नहीं। यदि सुश्रुत के बाधार पर लवणमेही की तलाश की जाय तो प्रायः निराशा ही हाथ लगेगी। किन्तु एलब्युमिनमेंही अथवा लालामोही रोगी प्रायः पर्याप्त मिलते रहते हैं। लालामोही के जो लक्षण आदि चरक प्रभृति महर्षियों ने कहे हैं, लगभग वे सभी कुछ अन्तर के साथ इस एलव्युमिनमोह अर्थात् एलव्युमिनूरिया में मिल जाते हैं। अतः इस सामञ्जस्य के आधार पर आयुर्वेद का, लालामोह ही आज का एल-च्युमिनमेह हो सकता है। आधुनिक आयुर्वेदिक कई विद्वानों ने लालामेह को ही एलब्युमिनमेह स्वीकार किया है। चुंकि आयुर्वेद और वर्तमान चिकित्सा विज्ञान के अपने हिन्दकोण में भिन्नता है अतः लालामेह और एल-न्युमिनमोह में भी सदनुसार कुछ भिन्नता के साथ उसको स्वीकार भी किया है। देश, काल, प्रकृति तथा देश सातस्य काल और काल सातम्य एवं चरकोक्त सातम्य के अनुसार उस पर विश्लेषणात्मक दृष्टि से आयुर्वेंद में पर्याप्त अव-काश है.।

आयुर्वेद में एलव्युमिनमोह—इसमें संदेह नहीं कि बाज वैज्ञानिक साधनों एवं अनुसंधानों ने रोग, रोग की उत्पत्ति, रोग के भेद, लक्षण, सम्प्राप्ति एवं प्रकारान्तर की जो सन्देहरहित जानकारी दी है, वह म्वयं में एक अभूतपूर्व स्वच्छ स्पष्टीकरण है। किन्तु आयुर्वेद ने जो सिद्धान्त, प्रक्रिया तथा प्रयोगात्मक निर्णय दिये हैं वे मील का पत्थर सिद्ध हुए। यह वात वर्वाचीन डाक्टरों एवं पाश्चात्य विज्ञानवेत्ताओं ने भी स्वीकारी है। वि:सं-देह आयुर्वेद तत्व वेत्ता महिपयों ने लाखों वर्ष पूर्व एलब्यु-मिन को जांच लिया था। फलतः जो लक्षण आदि उन्होंने दिये हैं वे आज के चिकित्सा विज्ञानियों के कथन के मुता-विक शतप्रतिशत नहीं हैं तो कम भी नहीं हैं। जैसे-चरक के अनुसार जिस मूत्र'में पिच्छिलता, तन्तुयुक्तता तथा लालारस समानता निश्चित रूप से विद्यमान हो, वह मूत्र उस प्रमेही का ही है जिसे एलव्युमिन मेह होता है। क्योंकि आधुनिक मत से जिस मूत्र में स्निग्धता, पिच्छिलतायुक्त तत्व पाये जाते हैं वे तत्व इस बात का प्रवल पुष्ट प्रमाण हैं कि उस मूत्र में एल व्युमिन स्पष्ट विद्यमान है और दव एलव्युमिन का होना सिद्ध हो गया तो निःसन्देह वह मूत्र एलव्युमिनयूरिया ही कहला सकता है, अन्य कुछ नहीं। चरक संहिता इसे लालांमें ह कहती. है। दोनों के संकेत एवं लक्षण समान लक्ष्य के हैं।

तीसरा सिद्धान्त—आयुर्वेदीय एवं व्याधुनिक चिकित्सा सिद्धान्तवादियों ने स्वीकारा है कि एलव्युमिनमें ही अथवा लालामें ही को जब पाण्डु रोग अथवा रक्ताल्पता का आक्रमण होता है तो उसके मूत्र में एलव्युमिन पाया जाता है। यक्त वृद्धियों के रोगियों में तथा लालामें ही की यक्त वृद्धि में मूत्र में एलब्युमिन अवश्य रहता है। ह्दय के रोगों से प्रस्त रोगी भी एलब्युमिन से युवत मूत्र त्याग करते हैं। यह बात अनेक बार मूत्र परीक्षण से

नुग रोगा गिकित्सा

स्पष्ट सिद्ध हो चुकी है। गिर्भणी नारियों के सूत्र में भी
यह पाया जाता है। कहने का तात्य यही है कि लालामेह
में एलब्युमिन का विद्यमान रहना दोनों ही चिकित्सातत्व
वेत्ताओं ने स्वीकारा है। यहां तक भी माना जा चुका है—
कि यदि मूत्र में एलब्यूमिन अधिक मात्रा में क्षरित हो
जाये तो गरीर में शोथ उत्पन्न हो सकता है। यूं तो
यूक्क की भी ऐसी कई अवस्थाएं पाई जाती हैं जिनमें एलब्यूमिन क्षरित होता है तो भी यह स्थित रोगानुसार
स्पष्ट करनी ही होती है। एलब्यूमिन में ह में भी ऐसी स्थित
में लक्षणान्तर आजाने पर रोग ज्ञान के प्रति व्यामोह हो
जाता है, किन्तु एलब्यूमिन में ह में अन्य लक्षणों के साथ
बहुमूत्रता एक स्पष्ट एवं अनिवायं लक्षण है जो इसको
वृक्क की विभिन्न स्थितियों से पृथक करता है।
सम्प्रारित एवं लक्षण—

आयुर्वेदिक सिद्धान्त के अनुसार स्वकीय कारणों से दूषित एवं कुपित वलेष्मा, बस्ति अर्थात् वृवक, गवीनी और मूलागय को दूषित रूप में आक्रांन्त करके शरीरस्य मेद-मांस और क्लेद अथवा जलीयांश को दुष्प्रभाव से प्रभावित करके एलब्यूमिनमें ह की जन्म देता है। इस प्रकार से यह भी स्पष्ट होता है कि यह प्रमेह कफज है। फलतः इस से पीड़ित रोगी में अपचन, अहिच और आनस्य पाया जाता-है। यदाकदा वमन भी हो जाता है। रोगी को निद्रा भी अधिक आती है और प्रतिश्याय, तथा काल से भी युक्त देखा जा सकता है। मांसोपचय भी प्रायः हो जाता है। इस रोगी के शरीर पर अथवा मूत्र पर कभी-कभी मिवखयां भी उपसर्पण कर जाती हैं। रोगी प्रायः थोड़ें से श्रम से भी घवड़ाने लगता है। मन उचाट रहता है। बहुमूल की शिकायत तो बनी ही रहती है। कई प्रकार के उपद्रव प्रायः बने ही रहते हैं। काम शक्ति का पूर्णतया हास हो जाता है, मानसिक रूप से हर समय पर्याप्त दुवेलता एवं निराशा का वातावरण वनाये रखता है। मूश्र सदा ही गंदला रहता है तथा रक्त की उपं-स्थिति होने से मूल का रङ्ग गहरा भूरा होता है। एल-व्यूमिन की मात्रा आयाँ अधिक रहती हैं। यदि मूत्र को पकाया जाए तो बह पककर ठोस पदार्थ वन जाता है। एलच्यूमिन प्रमेही के विशेष लक्षण--

(क) यह रोग जत्र अधिक बढ़ जाता है अथवा पुराना पड़ जाता है अथवा एलब्यूमिन बधिक क्षरित हो जाती है तब रोगी की दशा विशेष रूप से बिगड़-जाती है। रोगी के भरीर पर शांध हो जाता है, विशेषकर मुख शोथ अधिक पाया जाता है। पांडुता अथवा रक्तात्पता होती है। त्वचा का वर्ण पीत अथवा धूसराभ हो जाता है। हृदय में दुवंलता, हृदय में अवसाद, विना परिश्रम के धकावट प्राय: रहती है। अनेक बार हाई ब्लडप्रैंसर भी पाया गया है।

(ख) बाधुनिक चिकित्सा शास्त्रियों ने इस रोग में निम्नलिखित बातें भी विशेष रूप से निर्णीत की हैं—

१—तीव वृक्क शोथ।

२---मृदु वृंक्क शोथ।

-३--जीणंव्यक शोध।

प्रस्तुत एलव्यूमिन रोग में वृक्क की इन तीनों ही दशाओं का क्रमशः फलित होना भी पाया जाता है। और किसी एक स्थिति का भी उद्भव हो सकता है। चिकित्सा सत्र—

- (क) सर्वं प्रथम यह देखना चाहिये कि उन्त रोगी का वलावल क्या है ? रोगी की शारीरिक स्थिति कैसी है ? इत्यादि । यदि रोगी स्यूल एवं पूर्ण वलवान हो तो वमन विरेचन के द्वारा संशोधन करके शमन चिकित्सा आरम्भ कर दें। रोगी स्थूल तो हो किन्तु साथ में वह दुवंल भी हो तो दोप एवं दूष्य की स्थिति के अनुसार शोधन कमं को उचित प्रकार से करें तथा उंचित मात्रा में संतर्ण क्रिया भी करें। यदि रोगी कृश हो और साथ में दुवंल भी हो तो वहां पर दोप एवं दूष्यों की चाहे जो स्थिति क्यों न हो वहां संशोधन हिंगज न करा जाये अपितु युंहण चिकित्सा ही आरम्भ की जाये। यदि रोगी कृश हो किन्तु साथ में वलवान भी तो उसको प्रथम जरुरी संशोधन कराकर संतर्ण चिकित्सा प्रारम्भ कर दें।
- (ख) चूं कि एलव्यूमिन यूरिया को आयुर्वेदीय मत से कफल प्रमें ह ही माना गया है अतः उचित अवसर एवं समय पर लंबन, वमन, विरेचन आदि चिकित्सा विधाओं के द्वारा इसका समूल उन्मूलन केलिए उपक्रम किया जाये।
- (ग) कभी कभी यह प्रमोह किन्हीं कारणों से जीणें हो जाने पर वातोल्वण भी हो जाता है, अतः उस समय वातोल्वण कफ्ज एलव्युमिन प्रमोह में कफ नाशक प्रक्रिया प्रमुख रूप से की जानी चाहिए। एतदर्थ त्रिफला, पाठा, देवदार आदि कफवातहर द्रव्यों का यथाशक्य रूप में प्रमीग करें।

an eigh Alabert

- (घ) चूंकि एलब्यूमिन प्रमेह में बढ़ा हुआ जलीयांश-मेह, एवं कुफ ही रोग का प्रमुख मूल कारण होता है— सत: दोप, दूब्य, ऋतु, वल-काल खादि की विवेचना के साथ उक्त रोग की सारी स्थिति पर पूर्ण विचार करके उचित ठहरने पर यदि अपतपंण चिकित्सा की जाये तो निष्चय ही लाभ होता है।
- (ङ) सर्व प्रथम एलन्यूमिन की उपस्थिति सिद्ध हो जाये तो तत्काल रोगी पर नियंत्रण लागू कर देना चाहिए। नमक लालिम नं, तेल, खटाई, दही, उड़द की दाल, मिठाई आदि कफकारक द्रन्यों का परहेज पूरी शक्ति से किया जाए। दिवास्वाप, रान्नि जागरण, मैंथुन बादि का सर्वथा त्याग किया जाए।

एलब्यूमिन प्रमेह को समूल नव्ट करने के लिए कुछ सफल प्रयोग—

- (क) त्रिफला, गिलोय, यशद भस्म, शिलाजतु वंग भस्म, स्वर्णं माक्षिक भस्म, नाग भस्म, यृ०वंगेश्वर, अञ्चक भस्म आदि का प्रयोग किया जाए।
- (ख) निम्न द्रव्यों का यथायोग्य प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है। जैसे—गोखरू, जामुन, आम की गुठली, मुलसी, नीम गिलोय, मधु, दारुह्टरी, हट्दी, विजयसार, मंजीठ सतावर, अर्जुंन, सारिवा, लोध, आमलक, कींच कीकर का गोंद, फली आदि भटलातक, इत्यादि।
- (ग)—निम्न प्रकार से सर्वांगीण चिकित्सा की जानी चाहिए—

प्रातः काल तथा सायंकाल दो समय— मधुमे हान्तक रस २ रती, पुननंवामण्ड्र ४ रती, सतिगलोय ४ रती; १० रत्ती की माझा अनुपान या सहपान के लिए-पुननंवा-ण्टक क्वाय का सेवन आवश्यक है।

धोपहर को — चन्द्रनासव और पुनर्नवारिष्ट दोनों को एक तोला मिलाकर हुगुना पानी मिलाकर साथ में एक चन्द्रप्रभावटी की गोली सेवन करें।

रादि को भोजन आदि कुछ खाकर शयन से एक घंटा पूर्व अजमोदादि चूर्ण दो ग्राम की मात्रा में गरम पानी से सेवन करें।

ं फुछ विशेष प्रयोग---

एलव्यमिन प्रमेह को नष्ट करने के लिए निम्न सिद्ध भोगों का सेवन पूर्ण सफल सिद्ध हुआ है— १ लोहासव, '२. पुननंवासव, ३. चन्दनादि क्वाम, ४. हरीतवयादिनवाथ, ५ त्रिफला क्वाथ, ६ अमलतास क्वाथ, ७. शिवागुटिका, ५. मेहमुद्गर रस, ६ सर्वेश्वररंस,

महा प्रमेहान्तक रस—यह रस एलव्यूमिन प्रमेह की खास दवा है। साथ ही मधुमेह, वहुमूत्र, स्वप्नदोष, किन्हीं कारणों से बाई हुई भयानक नपु सकता, भवेत प्रदर कामशक्ति का अभाव, शारीरिक दुवंलता बादि का समूल विनाश करता है। एत प्रतिशत सफल योग है।

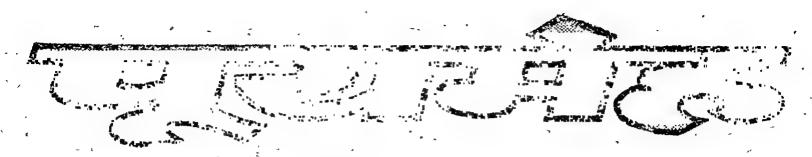
सेवन-विधि—इसकी एक एक गोली प्रातःसायं और रात्रि को णिलाजतु मिश्रित दूध के साथ लेने से मन चाहा लाम अवश्य होता है।

योग निर्माण विधि — १. सुवर्ण भस्म ६ ग्रामा २. वैकान्त भस्म ३ ग्रामा, ३. हीरक भस्म आधा ग्रामा, ४ शिलाजतु ४ ग्रामा, ४. अभ्रक भस्म ४ ग्रामा, ६. लोह-भस्म ४ ग्रामा, ७. मोतीपिप्टी २ ग्रामा, ८. पुनर्नवामंदूर ४ ग्रामा, ६. विवंग भस्म २ ग्रामा, १०. रजत भस्म । कुल योग ३०।। ग्रामा।

विधि उक्त सम्पूर्ण द्रव्यों को खरल में डालकर के सूखा ही घोट कर एक रूप करलें। फिर पलाशं (ढाक) के वीजों का तेल चीगुना डालकर इड़ मर्दन, करें। दो दिन तक घोटने के पश्चात् उसमें नीचे लिखे द्रव्यों का सूक्ष्मवूर्ण मिलाकर छोटें—

रै. केशर १ ग्रा०, २. छोटी इलायची १ ग्रा॰, रै. लोंग १ ग्रा॰, ४. छोटी पीपल २ ग्रा०, ४. सोंठ २ ग्रा॰, ६. वं ग्रोचन ४ ग्रा०, ७. जायफल २ ग्रा०, ६. जावित्री २ ग्रा०, ६. आमाहल्दी ६ ग्रा०, १०: झाह्मी स्वरस २००३ ४० ग्राम । उस्त द्रव्यों को मिलाकर बोटते घोटते गोली वनाने के योग्य हो -जाने पर ४-४ रत्ती की गोलियां वनालें और छाया में सुखा लें । बस योग तैयार है । यह प्रयोग इतना सफल है कि विगत चौदह वर्षों में किसीरोगी का निराशाजनक उत्तर प्राप्त नहीं हुआ है ।

— कवि श्री वी. एस. प्रेमी एम.ए.एम.एस., ए.एम.एस. तिब्बिया कालेज, करोल वाग, नई दिल्ली-४



कवि श्री रघुवीरशरण शर्मा वैद्य रत्न, आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद वृहस्पति (ही ०एस ० सी ०ए०), भजनपुरा ही-१५०, दिल्ली - ५३

श्राचीन ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं है। अविचीन के ं आयुर्वेद विज्ञान नामक ग्रंथ में इसको औपसर्गिक मेह, व्रणमेह और आगन्त्रकमेह नाम से लिखा है। यूनानी वैद्यक में इसका नाम सुजाक और अंग्रेजी में इस को गनो-रिया कहते हैं। इस रोग का जनक गोनोकोक्तस नाम का जीवाणुही इसी के नाम पर इस रोग का नाम गनो-रिया होगया है। इस जीवाणु को सवं प्रथम १८७६ ई० में नीसर नाम के जापानी विद्वान ने जाना था। तत्पश्चात् वूम नाम के विद्वान ने इस जीवाण का इस रोग से विशेष सम्बन्ध बताया था। यह जीवाणु वृत्ताकार होता है, - जोड़े में रहता है। निश्चल है, ग्राम निगोटिव है, स्पोर नहीं बनाता, पैरासाइट (परोपजीवी है)। इसका संचयकाल र दिन से = दिन तक का है और पूयमेही स्त्री पुरुप के समागम के समय स्त्री की योनि और पुरुषों के शिश्न में ्र प्रविष्ट होता है। प्रविष्ट होने के बाद ही तत्काल पूर्यमेह नहीं होता विलक सञ्चय काल में दो दिन से आठ दिन तक का समय लग जाता है। किन्तु धायुर्वेदे विज्ञान के लेखकों ने आठ दिन के स्थान पर सात दिन लिखे हैं -

आरम्य सङ्गमनिशां संख्यया या च सप्तमी। एतद्व्यवहिते काले प्रायशो जायते गदः॥

— आयुर्वेद विज्ञान।
प्रथमावस्था—पुरुषों के मूत्र मार्ग में घोध, शिएन में
शोध, मुद्रूक में शोध, वस्ति में शोध, और वीयशिय में
शोध होता है। शिश्न कण्डू, शिश्न में भारापन बीर तीत असह्य वेदना होती है। शिश्न का वार-जार उद्रेक होता.
है। मूत्रकृष्ठु मूलाघात मूत्रावरोध मूल का वर्णलाल, मूच

पूर्यम ह संक्रामक और भयंकर रोग है। आयुर्वेद के के साथ रक्त का आना, अथवा मूत्र प्रणाली में क्षत होने के कारण केवल रक्त ही आना। आरम्भ में पूर्य (मवाद) वेद विज्ञान नामक ग्रंथ में इसको औपसर्गिक मेह, पतला और चमकीला आता है, साथ में ज्वरादि लक्षण है और आगन्तुक मेह नाम से लिखा है। यूनानी भी होते हैं। यह अवस्था वड़ी ही भयंकर तथा कष्टप्रद में इसका नाम सुजाक और अंग्रेजी में इस को गनो- होती है। रोगी वेहद वेचन रहता है। भयंकर वेदना के कहते हैं। इस रोग का जनक गोनोकोकस नाम का कारण छटपटाता रहता है। वेदना इतनी असहा होती है जिए है। इसी के नाम पर इस रोग का नाम गनो- कि नींद भी नहीं आती। कुछ काल बाद मवाद गाढ़ा और पीला हो जाता है।

स्तियों के लक्षण—स्त्रियों की योनि में शोथ, मूत्र मार्ग गर्भाशय भगोष्ठ, डिम्ब प्रणाली और उदर कला में शोथ, (सूजन) हो जाता है। यदि स्त्री गर्भवती हो तो गर्मेस्राव और गर्भपात भी हो जाता है। कुछ काल वाद जीवाणु रक्त में प्रवेश करते हैं, तब सन्धियों (जोड़ों) में गीथ स्नायु शोथ हृदय में शोथ जीवाणु मयावस्था करते हैं।

पूय का दुष्प्रभाव और उपद्रव—यदि किसी प्रकार
यह पूय नेत्रों में लग जाय तो इसके विष से नेत्राभिष्यन्द
हो जाता है और कभी कभी अन्धापन भी हो जाता है।
इस पूय से यदि नासिका से स्पर्ण हो जाय तो नासिका में
शोथ हो जाता है। गुदा में लगने से गुदा में शोथ हो जाता
है। पूय से पीड़ित स्त्री चच्चा जनती है तो उसके शिशु को
जन्म जात नेत्राभिष्यन्द (आखों का दुखना) हो जाता है
और कभी कभी अन्धा भी हो जाता है। कारण यह है कि
स्त्री की योनि में पूय (मवाद) लिप्त रहता है। इसी मार्ग
से शिशु जन्म होता है, यदि प्रसद से पूर्व ही स्त्री की योनि
को निम्चपत्र (नीम की पत्ती) के वनाथ अथवा वोरिक,
एसिड को पानी में डालकर प्रकालन (धोना) कर दिया
जाय तो फिर नवजात शिशु के नेत्रभिष्यन्द और अन्धा-

-शिपांश पृष्ठ १६२ पर देखें।

डा॰ विजयकुमार वार्जीय वी॰ए०एम०एस० कटरा वाजार, सहावर-टाऊन (एटा) उ०प्र० डा॰ वीरेन्द्रकुमार सिंह वी एए एम० एस० रेलवे रोड, कासगंज (एटा) उ० प्र

कारण--

गोनोकोकस (Gonococcus) जीवाणु के मूत्र मार्ग में प्रवेश कर जाने के ४ से १० दिन के अन्दर श्लेब्मल-कला में शोथ हो जाता है जिससे वह रक्ताभ होकर सूख जाती है। यह रोग सम्भोग द्वारा होता है।

विकृति विज्ञान-इसका जीवाण सम्भोग के द्वारा जननांगों में प्रवेश करके वहां की ध्लैष्मिक कला में प्रदाह कर देता है। उसमें पूर्वोत्पत्ति हो जाती है। रोग धीरे घीरे पीछे की ओर मूल मार्ग में, वहां से पौरुप प्रनिथ, ततः शुक्राशय और अण्डकोष में फैलता जाता है, और वहां कभी कभी शोध तथा कभी कभी विद्रधि उत्पन्न कर देता है। स्त्रियों में योनि से गर्भाशय ग्रीवा तथा वहां से गर्भा-भय और फिर डिम्ब प्रणाली से डिम्ब ग्रन्थि में शोथ उत्पन्न करके रुग्णा की मृत्यु का कारण वन जाता है।

पुरुषों में संज्ञमण मूत्र मार्ग से मूत्राशय, वहां से मूत्र प्रणाली और मूत्र प्रणाली से वृक्कों में जाकर वहां शोध पैदा कर सकता है। यह रोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर होता जाता है परन्तु कभी कभी इसके जीवाणु रक्त द्वारा सन्धियों में जाकर सन्धिशोध उत्पन्न कर देते हैं और अतिविरल अवस्था में गति करते हुए Septicaemia उत्पन्न करके रोगी की मृत्यु का कारण वन सकते हैं। लक्षण-

णकाएक मूत्र त्याग में जलन होने लगती है तथा मूत्र मागं से साव निकलता है। स्त्रियों में योनि से साव निकलता है। किसी पूयमेह रोगी स्त्री या पुरुष से संसगं होने के २ से ६ दिन वाद यह लक्षण उत्पन्न होते हैं। मूत्र मार्ग से पूर्यमय स्नाव होता है । स्त्री की योनि से भी

स्त्राव होता है। वंक्षण की लसीका ग्रन्थियां बढ़ जाती हैं। यहां से संक्रमण मूत्राशय एवं वृक्क गवीनी की ओर साथ ही साथ वीर्य नली एवं ग्रन्थियों तक पहुँच सकता है। स्त्रियों में गर्भाशय, डिम्बप्रणाली, डिब ग्रन्थि एवं उदरा-वरण कला तक फैल सकता है। पीव आने के समय शिश्नाग्र रक्ताभ शोथंयुक्त होता है। पीव पहले प्रतला फिर वाद में गाढ़ा और पीताभ हो जाता है। तीवावस्था में ज्वर भी हो जाता है। मूत्र मार्ग की एलै जिमक क़ला वहुत सूज जाती है, वहां पर व्रण बन जाते हैं। यहां से रक्त एवं पस आता है, मूब त्यागते समय अत्यन्त पीड़ा होती है। जब शोथ के कारण मूत्र मार्ग बन्द हो जाय तो मूत्रावरोध हो जाता है। खपह्रब---

- (१) मूत्रप्रसेकनलिका संकोच (२) शिश्नाग्र-शोथ
- (३) शुक्राशय शोथ (४) उपाण्डु शोथ
- (५) मूत्राशय शोथ (६) वुक्क शोध

स्तियों में -(१) डिम्बप्रणाली शोथ

- (२) डिवाशय सह डिवप्रणाली शोथ
- (३) उदरावरण कला शोथ

स्त्री पुरुष दोनों में—(१) पूयमेहजनित नेत्राभिष्यन्द

(२) पूयमेहजनित सन्धिशोथ

निदान विनिश्चय —स्त्राव में पूयमेह जीवाणु का मिलना पूरमेह का निश्चयात्मक लक्षण है।

चिकित्सा-

शोकेन पैंसीलिन ६ लाख युनिट मांसान्तगंत प्रतिदिन एक सप्ताह तक दें।

-शेपांश पृष्ठ १६२ पर देवें।



कवि॰ श्री डा॰ गिरिधारी लाल मिश्र ए॰ एम॰ बी॰ एस॰ अधीक्षक —केदारमल में मोरियल आयुर्वेदिक धर्मार्थ हास्टीटल, तेजपुर (असम)

मधुमेह आहार चयापचय (Metabolism) सम्बन्धी चिरकारी विकृति (Chronic disorder) का परिणाम है। भोजन की पाचन क्रिया द्वारा एवेतसार (कार्वोहाइ- ड्रेट्स) जब ग्लूकोज बन कर रक्त में रक्त धर्करा की वृद्धि करता है तभी इन्सुलिन की कमी के कारण धर्करा पाचन न होकर मूत्रमार्ग द्वारा बहिगंमन होता रहता है। मूत्र में ग्लूकोज आने को ग्लूकोजमेह (Glycosuria) कहते हैं। वस्तुतः इसी लक्षण के कारण इसका नाम मधु- मेह पड़ा है।

मधुमेह की दो अवस्था हैं-

- (१) पहली अवस्था में मूत्र में शर्करा का बाहुल्य (Diabetis Malites) होता है।
- (२) दूसरी अवस्था में शर्करा की माला अल्प किंतु प्रचुर मात्रा में मूत्र का निक्षेप (Dlabetes insipidus) होकर शरीर खोखला हो जाता है।

हम प्रतिदिन शारीरिक शक्ति प्राप्ति के लिए थाहार के रूप में अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थों कां प्रयोग करते हैं जिनमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, स्नेह, विटामिन्स, जल व खिनज, लवण आदि प्रव्य हैं। इसमें कार्वोहाइड्रेट जातीय पदार्थों के पाचन से तीन प्रकार की शर्करा ग्लूकोज, गैल-क्टोज तथा फूक्टोज निमित होती है जिनमें ग्लूकोज का - परिमाण सबसे अधिक रहता है जिसका अन्याशय में पाचन होकर शरीर को ऊर्जा एवं शक्ति की प्राप्त होती है पर शक्तराजातीय (कार्वोहाइड्रेट्) तथा स्नेह पदार्थों के अधिक सेवन से अन्याशय को अधिक श्रम करना पड़ता है फलतः अन्याशय (Pencieas) में इन्सुलिन उत्पादन करने वाली कोशिकायें अर्थात् लैंगरहेंस की द्वीपिकाओं की वीटा कोशिकाएं (Betacells of is lets of Langerha-. ns) का ह्वास होने लगता है। जिससे इन्सुलिन निर्माण कम होने लगता है तथा इन्स्लिन की कमी के कारण रक्त शकरा का पाचन नहीं हो पाता। यद्यपि प्रारम्भिक वयस्था में वृक्क यथाशक्ति रक्त की अतिरिक्त शकरा को निकालने का प्रयतन करता है फिर भी रक्त में शर्करा का परिमाण स्वभाविक मात्रा (७०-१२० मि लि प्रतिशत) की अपेक्षा अधिक रहने लगता है तथा अग्न्यागय की वीटा सैल भी स्वयं को उत्ते जित कर इन्स्लीन अधिक वनाकर शकरा नियन्त्रण का प्रयास करती है किन्तु अधिक श्रम से उनकी मृत्यु (Attophy) होने लगती है तथा रक्तगत शकरा इतनी अधिक वर्षे जाती है कि मूत्र में आने लगती है। अतः रक्त शकंरा वृद्धि से रोगी के शरीर में 'माधुर्यं' इतना बढ़ जाता है कि उसके शरीर पर मिक्खयां बैठने लगती हैं। उसको अपना मुंह मीठा, श्वास की गन्ध्भी मीठी और यधुर मूल का उत्सर्ग करता है।

अगुर्वेद मनीषियों का एतद्विपयक ज्ञान गम्भीर था।
२० प्रकार के प्रमेहों के लक्षण एवं चिकित्सा का वर्णन उपलब्ध है। उन्हें मूत्र में शकरा आती है इतना ही ज्ञान न था अपितु प्रमुख लक्षणों तथा प्रारम्भिक लक्षणों में—
(१) बहुमूत्रता (मूत्रामाविलंभूरित्य भवति) तथा (२)
मूत्र की स्वच्छता (शूक्लता च मूत्रे) (३) तथा आपेक्षिक गुरुत्व १०३० से १०५० तक वाला (४) अति पिपासा, शुष्क जिह्वा (पिपासा तालु कण्ठ शोथ) कण्डू अङ्गमर्द, सिद्ध देदना, मूच्छी सन्यास के लक्षणों का भी अध्ययन किया था। धमेह की उचित चिकित्सा न करने पर मधुमेह में वदल जाताहै तथा मधुमेह की उचित चिकित्सा न करने पर

an Tellescall

प्रमेह पिहिकाएं निकल आती हैं जो सात प्रकार की वताई गई हैं तथा रोग के उपद्रव में दुष्ट ज़ण (Carbancle) मूच्छी, सन्यास के लक्षण होकर अन्त में रोगी यम-राज का प्रिय बन जाता है अतः आयुर्वेद में मधुमेह के कारण लक्षण चिकित्साक्रम, पथ्यापथ्य साध्यासाध्यता का विस्तृत विवेचन उपलब्ध है।

प्राचीन उद्धरण—मधुमेही रोगियों के प्राचीन उद्ध-रणों में सर्व प्रथम स्थान सर्वदेव पूज्य, विध्न विनाशक भगवान् गणेश जी को प्राप्त है जो उनकी ही सुप्रसिद्ध स्तुति के आद्य चरण में मङ्गलाचरित है—

गजाननं भूत गणादि सेवितम्, कपित्य जम्बूफल चोरु भक्षणम्।

संक्षिप्त व्याख्या—गजाननं-भगवान् शिव ने क्रोधा-वेश में गणेश जी का मस्तक त्रिशूल से काट हाला घा किर 'हाथी का सिर लंगाया' जिससे गजानन नाम की सार्थंकता के साथ प्राचीन काल की सजंरी की उत्कृष्टता भी प्रमाणित है।

भूतगणादि सेवितम् — कैलाश के समीप भूत स्थान, वर्तमान नाम "भूटान" है जहां भूत जाति का निवास था तथा भूतंगणों के अधिपति होने के कारण गणेश, गणपति गणादि सेवितम् — भूतगणों द्वारा सेवित थे।

कियता, ईख रस पान, तया गुड़ के अति सेवन के फल स्व-रूप उनकी पूजा में प्रसाद का प्रतीक (गुड़ के मोदक भोग लगता है) गुड़ और मोदक ही है अतः ध्लोक का द्वितीय चरण कित्थ जम्बू फल चारु भक्षणम् किपत्थ और जामुन (जो मधुमेह की उत्कृष्ट लीपिध है) को इच्छानुसार खाने उक्त विशेषण तथा उनकी पूजा में अपित नैवेद्य (गुड़ और मोदक) उन्हें मधुमेही होने की ओर इङ्गित करते हैं तो उनके शरीर की स्थूलता (पग खम्बा सा उदर पुष्ट है देख चन्द्रमा हांसि करे) तथा महाभारत को एक हो गति से लेखन कार्य—लेखकत्व जहां सन्देह की पुष्टि, करते हैं वहां ऋदि सिद्ध जैसी दो पत्नियों के होते हुये भी निःसन्तानत्व मधुमेहज नपुंसकता का द्योतक है। सञ्चित्त रोग के कारण—

(१) आनुवंशिता—यह रोग वंशपरम्परागत भी होता है। माता को होने से उसकी सन्तानों को भी हो सकता है पर कोई निश्चित नियम नहीं है। इसमें अनेक अपवाद भी मिलते हैं।

- (क) सामान्यतः आनुवंसिक मधुमेह अल्पायु में शुरू होता है तथा तीवगित से बढ़ता है तथा धीरे-धीरे कप्ट साध्य व घातक रूप धारण कर लेता है।
- (ख) जुडवां भाईयों में यदि एक को यधुमेह होता है तो दूसरे को भी प्रायः हो जाता है।
- (२) आयु—यह रोग ३० से ४० वर्ष की आयु में प्रारम्भ होने लगता है तथा रोग का घ्यान न दिया जाने तो ५० वर्ष की आयु तक में व्यक्ति को अच्छी तरह से आकांत कर लेता है। जानुवंशिक मधुमेह अल्पायु में गुरू होकर तीव्रता से बढ़ता है जबकि विपरीत आहार विहारादि दोपों से संबद्ध मधुमेह ५०-६० वर्ष की उन्न में ही सीम्बगति से बढ़ता है तथा आहार विहार पर नियन्त्रण होने से सुसाध्य होता है।
- (३) लिग-पहले अनुमानतः मधुमेह रोगियों में पुरुषों की संख्या २४ % तथा ित्त्रयों की २० % थी पर अब स्त्रियां पहले की वजाय कम परिश्रमी हैं। आजकल अति आहार, श्रम का अभाव, असाध्ये और वैभवयुक्त सुविधा सम्पन्न आधुनिक जीवन के कारण स्त्रियों में भी यह रोग पहिले की अप्रैक्षा अधिक फैल रहा है।
- (४) व्यवसायिक—प्रायः वैभवयुक्त, आलस्यमय जीवन व्यतीत करने वालों में तथा श्रम व व्यायाम व शारीरिक श्रम न करने वाले लोगों में विशेषतः मधुमेह पाया जाता है। दुकानदार, अध्यापक, वकील, उच्च अफीसर व बैठक का कार्य अधिक करने वाले तथा जिनकों मानसिक श्रम तो करना पड़ता है पर शारीरिक श्रम न करना पड़ता हो, उनको पहले स्थूलता ञाती है फिर मधुमेह हो जाता है। इसके विपरीत कठिन परिश्रम करने वाले मजदूरों, किसानों, पुलिस-सैनिकों आदि में यह रोग प्रायः नहीं होता है।
- (५) आहार—प्रचुर मात्रा में श्वेतसारीय खाद्य. पदार्थों का प्रयोग इसका मुख्य कारण है। चावल, गेहूं, ज्वार, आलू, शकरकन्द, सूरण आदि का अधिक प्रयोग, स्नेहयुक्त, डालडा आदि के बने मिष्ठान के अति सेवन से मधुमेह होता है।
 - (६) देश-अाज विश्व के विकासशील देश अमेरिका,

इंग्लैण्ड, जापान, यूरोप, चीन आदि राष्ट्रों के नागरिक इस रोग से विशेप आक्रान्त हैं। वताते हैं वहां के ६०% वृद्ध लोग इस रोग से आक्रान्त हैं। भारत में अधिक चावल खाने वाले लोगों में यह रोग अधिक है। आसाम-बंगाल, बिहार में यह रोग अन्य प्रांतों की अपेक्षा शिषक है। कारण यहां के लोगों का मछली और भात प्रमुख भोजन है तथा दोनों ही मधुमेह के प्रमुख कारण हैं। शाकाहा-रियों की अपेक्षा मांसाहारियों में इस रोग का उपद्रव अधिक तीव घातक होता है। चीनी की अपेक्षा गुड़ खाने वालों में यह रोग कम होता है। कारण गुड़ में क्षारीय लवण रहते हैं विटामिनों की न्यूनता से भी मधुमेह होता है।

- (७) स्यूलता एक स्वस्ण व्यक्ति के लिए जिसका कि शरीर भार ६०-६४ किलो हो उसे २००० से २२४० कैलोरी का भोजन पर्याप्त है पर शरीर को आवश्यकता से अधिक कैलोरी वाला भोजन निरन्तर चिरकाल से लेते रहने पर कार्बोहाइड्रेट के अधिक मात्रा में लेते रहने से उसका अंश वसा में परिवर्तित होकर वसामय प्रदेशों में बैठ जाता है जिससे शरीर में स्यूलता आ जाती है जो इस रोग का प्रमुख कारण वन जाती है।
- (५) अन्याशय अभिवात-अन्याशय (Pancrease) में कोई संक्रमण हो जाने से लग्न्याशय रस (Insulin) का पर्याप्त उत्पादन न हो तो कवींहाडढ़े द्स का पाचन न होने से मधुमेह का हो जाना स्पष्ट कारण है। शल्य-कर्म, दुर्घटना व कैसर आदि में अग्न्याशय का अधिकांश भाग काटकर निकाल दिया जाता है तथा Insuln उत्पादक कोशिकाय नष्ट हो जाती हैं जिससे मधूमेह हो जाता है। अग्न्याशय में क्रमशः तन्तु वृद्ध (Fibrosis) जैसा कि हीसो क्रोमेटोसिस में व उपदंश की तृतीयावस्था में होता है तथा क्रमशः रक्त आगमन में एकावट होना जैसाकि धमनी काटिन्य होने पर विशेषतः पैंक्रियास धमनी में होता है।
- (६) अधिवृक्क स्पाव की अधिकतां—अधिवृक्क ग्रन्थि के हारमीन की अधिकता होने पर यकृत में खूकोज का अधिक निर्माण होने लगता है। परिणामतः रक्त में इसकी मात्रा वढ़ जाती है जिससे मधुमेह हो जाता है।
 - (१०) सवदुकास्त्राव की अधिकता-अवदुहारमीन की

अधिकता से सभी कोशिकाओं की क्रियाशीलता बढ़ जाती है तथा इन्सुलिन की पूर्ति न होने पर रक्त में ग्लूकोज की मात्रा अधिक हो जाती है जिससे मधुमेह हो जाता है।

- (१९) पीयूषिकास्त्राव की . अधिकता अग्रपीयूपिका के अन्तःस्त्राव की अधिकता से भी मध्यमेह हो जाता है।
- (१२) मनः स्थिति मानसिक वलेश, शय, चिन्ता अशान्ति इत्यादि मानसिक अवस्थाओं, अधिवृदक (Adrenal) गलग्रन्थि (Thyroid) आदि ग्रन्थियों में क्षोभ उत्पन्न होने से क्षणिक मूत्रशकरा वृद्धि होकर भी अस्यायी मधुमेह होजाता है जो मन श्रान्त होने पर ठीक होजाता है अन्यथा स्थायी रूप ले नेता है।

लक्षण--

रोग का आरंभ इतने अज्ञात रूप से होता है कि बहुत समय तक तो इसका पता ही नहीं चलता कारण मूल में थोड़ी सी शकरा रहने पर सहसा पता चलना कठिन है। रोग बढ़ने पर निम्न सक्षण होते हैं—

- (१) बहुमूतता—रोगी को सर्वप्रथम बहुमूत्र की शिकायत होती है। दिन रात में बार बार तथा मात्रा में अधिक २४ घण्टे में २-३ लिटर या इतसे भी अधिक मूत्र आता है तथा रोग वृद्धि के अनुसार मूत्र की मात्रा में भी वृद्धि होती जाती है। रक्त में तथा Glomeruli से छने मूत्र में बढ़ी हुई णर्करा को निकालने के लिए गरीर में जल को तथा वृक्कों में से मूत्र को शरीर से अधिक मात्रा में निकालना पड़ता है। परिणामतः बार बार मूत्र का उत्सर्ग होता रहता है।
- (२) तृषाधिक्य—मूत्र के अधिक उत्सगं से उसके साथ पोटाणियम, कैलिसयम तथा वाई कार्वोनेट भी अधिक निकलते हैं तथा गरीर में जल की कमी होने से अधिक प्यास लगना भी स्वामानिक हैं, क्योंकि रोगी पानी पी पीकर निकले हुए जल की पूर्ति करता है। यतः रोगी जहां बार वार मूत्र त्याग करता है वहां वार वार पानी पौता रहता है। विश्रोपतः भोजन के १-२ प्रण्टे पृष्णात् तक पिपासा- भिक्य रहता है, क्योंकि उस समय रक्त गकरा की मात्रा में काफी वृद्धि होती है। रोग के अधिक बढ़ जाने पर जीम की क्यता भी बढ़ जाती है जिससे प्यास बरावर लगी रहती है।
 - (रं) क्षुधाधिक्य शरीरं में से मार्करा के अधिक

ED ED FORESTE

मात्रा में निकल जाने, ग्लूकोज का सदुपयोंग न होने के कारण रोगी जो कुछ खाता है उसका अधिकांश भाग एरीर में प्रयोग हुये विना ही बाहर निकल जाता है जिससे बहुत भूख लगती है तथा प्रचुर मात्रा में बाहर करने पर भी इन्सुलिन के अभाव में अधिकांश पोपक तत्वों का पाचन न होने से शकरा के रूप में मूत्र मार्ग से निकल कर अपन्यय होने से शक्ति या उष्णता के अभाव में दुवंलता के कारण रोगी को हमेशा भूख लगी रहती है।

- (४) दुवंलता अधिक आहार लेने पर भी मूत्र द्वारा शकरा का अधिक उत्सर्ग होने के कारण कार्वोहाइड्रेटं का चयापचय नहीं होता तथा शरीर को कार्वोज न मिलने के कारण अशक्ति बढ़ जाती है। शरीर में से शकरा और जल जैसे मृत्यवान द्रव्यों से शरीर से अधिक मात्रा में निकलते रहने से धातुओं पर अनेक दुष्प्रभाव पड़ते हैं जिससे रोगी स्वल्प श्रम करने से ही थक जाता है।
- (४) त्वचा की रूझता तथा निजंलीभवन—शरीर में जल के अधिक निकल जाने से जलहीनता के कारण त्वचा में रूझता तथा कठोरता या जाती है। त्वचा में से शुष्कता तथा उसका पोषण भलीभांति न होने से प्रमेह पिण्डिकाएं निकल वाती हैं जो घातक रूप लेने पर कारवंकल (Carbuncle) हो जाता है तथा मामूली सी चोट लगने पर भी शीघ ही पक जाती हैं तथा जल्दी अच्छी नहीं होती।
- (६) कब्ज निर्जलीभवन के कारण कोण्डबद्धता प्रायः बनी र हती है, क्योंकि आंतों की क्लैंब्सकला में शुक्तता आ जाती है जिससे कब्ज बनी रहती है।
- (७) गुह्याङ्ग कण्डू मूत्रगत शर्करा के मूत्र स्थान पर लगे रहने से यहां Monilia alsicans की वृद्धि होकर स्त्रियों में भगकण्डू तथा पुरुषों में शिश्नमुण्ड शोथ (Balanitis) का लक्षण पाया जाता है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में यह लक्षण विशेषतः पाया जाता है।
- (म) जंघानाड़ी शोध— पेशियों में कृशता और निर्व-लता आ जाने के कारण जंघा में नाड़ी शोध का लक्षण भी रहता है जिससे रागों में दर्द रहता है। विशेषतः रात को पांव में दर्द, दाह्, सुप्ति की प्रतीति होती है। पिण्डलियों में स्तम्भ, शूल तथा निर्वलता और अगक्ति ये लक्षण होते हैं जिससे विटामिन्स आदि से कोई लाभ नहीं होता।
 - (६) परावर्तनं की विकृति—रक्त में ग्लूकोज के रैतर

के एकाएक घटने बढ़ने से आंख के लैंस के परावर्त सूच-काओं (Refractive Indices) में अन्तर पड़ता रहता है। फलस्वरूप रोगी को कभी दूर की और कभी नजदीक की वस्तु स्पष्ट नहीं दिखाई देने से चश्मा बदलते रहना पड़ता है।

- (१०) मूत्र के आपेक्षिक गुरुत्व में वृद्धि—मधुमेह रोगी का मूत्र सामान्यतः स्वाभाविक मूत्र की अपेक्षा गाढ़ा एवं भारी होता है। स्वस्य मनुष्य के मूत्र का आपेक्षिक गुरुत्व-१००४ से १०३० तक होता है लेकिन इस रोग में वढ़ कर १०४० तक भी हो जाता है। मूत्र शकरा माला के अनुगत में उसके आपेक्षिक गुरुत्व की वृद्धि हो जाती है।
- (११) मधुरता—मधुमेह में मधुरता प्रमुख लक्षण वन जाता है। मूत्र में मधुरता व मधु गृन्ध के साथ रोगी को अपने मुंह का स्वाद भी मीठा लगता रहता है। निदान चात्रं—

मधुमेह रोग का आरंभ इतनें अज्ञात रूप में होता है। कि प्रारंभिक अंवस्था में पता चलना कठिन होता है। अतः चिकित्सक के पास रोगी अधिक पिपासा (४०%) अति अधिक (४०%) घटते हुये भार (४०%), कृशता (५०%), त्वचा पर पीडिकार्ये (१६%), हिन्यों में मगकण्डू (२०%), हाथ पांचों में शीतलता उप्पता (२०%), रक्तचाप वृद्धि (२०%), टांगों में दर्व (२०) आदि रोगों की धिकांयंत के कर आदे तो चिकित्सक को मधुमेह का अन्देह करना चाहिए तथा मूल परीक्षा द्वारा रोग निणंय कर उचित चिकित्सा व्यवस्था करनी चाहिये। यह एक ऐसा रोग है जिसके बारे में कोई भी रोगी स्पष्ट रूप से इस रोग को लेकर नहीं आता बर्टिक अन्य रोगों से इस रोग का पता चलता है।

मधुमेह हे उपद्रव—

[9] कारवंकल—मधुमेही को कारवंकल व्रण साधा-रणतया मांसल भाग जंघा-नितम्ब व पीठ पर होता है। यह व्रण वड़ा घातक होता है। वैसे मधुमेही रोगी को मामूली चोट लगने पर छोटा सा घाव भी तीव्र गति से बढ़ता है तथा औण्घोपचार से भी भोझ ठीक नहीं होता है। आयु-वेंद्र में यह प्रमेह पिड़िका के अन्तर्गत है तथा इस लेख में चिकित्सा क्रम में लिखित 'श्नेष्ठादि वटी' कार्वकल फोड़े में आणातीत सकल अनुभूत योग है।

[२] कोथ (गैग्रीन)-रक्त वाहिनियों के अपविकास (Degeneration) के कारण होता है जिसमें त्वचा के ज्ञान तन्तु में दोष उत्पन्न होकर संज्ञा णून्यता आकर त्वचा पर घव्वे वनकर अन्त में वहां सड़ान पैदा हो जाती है। अवसर वृद्ध मधुमेहियों की पैरों की अंगुलियों में यह विकार मिलता है।

[३] मधुमेहज नाड़ी रोग—नाड़ी शूल इस रोग का प्रारम्भिक उपद्रव है, जंघाओं की वात नाड़ियों में दर्द, वाह, सुसुित की श्तीति होती है। पिड़िलयों में स्तम्भशूल (Cramps) तया जंघा और पैरों में अशक्ति के लक्षण होते हैं। चेव्टानाही नाड़ियों में विकृति जाने पर ध्वज भंग (Impotency), सूत्राणय की विकृति, मधुमेह, प्रवाहिका जादि उपद्रव होते हैं। जो सथुमेह ठीक होने पर ठीक होते हैं।

[४] यधुमेहज वृत्तक विकृति (Diabet c Mephropathy)-वृद्धों के पोषण में कंमी आजाती है तथा मंदगित से
वृद्धपात होता है और बढता चला जाता है। मूत्रमें एलब्युमिन आती है जोप व रक्त भार बढ जाता है। इसमें मूत्रल
भीपिधयां चन्द्रप्रभावटी, श्वेतपर्पटी, गोक्षुरादि गुग्गुल हितकर हैं।

[१] मधुमेहज दिन्दोष-मधुमेही की दिन्द कमशः मंद हो तो मोतियानिन्द होता है। तथा प्रारम्भ में ही चिकित्सा करने से ठीक हो जाता है।

[६] धमनी काठिन्य (Atheros clerosis).—मधुमेही के द्वारा अधिकांश जलीयांस निकल जाने से सूक्ष्म धमनियों के मृदु अवयवों में स्यूर्लता आ जाने से , धमनी काठिन्य रोग हो जाता है तथां ५०% व्यक्तियों की मृत्यु ह्दय-मिस्तब्क धमनियों के काठिन्य से हृदयाधात होकर होती है।

[७] मधुमेही मुच्छां (Diabetic Coma)—मधुमेह रोग का सबसे घातक उपद्रव है। रक्त में शकरा की
वृद्धि के कारण बहुमूजता से शरीर मे जल की कभी हो
जाती है तथा बसा, घी, तैल का सही पाचन न होने से
रक्त में अम्लीयं प्रतिकिया जो एमिटोन (Acetone) के
रूप में मिलती है और श्वसन क्रिया बढ़ जाती है तथा
मस्तिष्क की क्रियाएं घट जाती है जिससे पहले निद्रा और

फिर मुर्च्छा होती है।

रीग निदान — मधुमेह, रोग के उपरोक्त हुंबिणित नारणों से इस रोग का सन्देह हो जाने पर निश्चय निर्दान के लिए तथा रोग की बढ़ी हुई स्थिति एवं चिकित्साक्रम निधारण करने के लिए रोगों का मूत्र और रक्त मे शकरा की उपस्थित का परीक्षण करना चाहिए। लेख विस्तार मय से यहाँ मूत्र परीक्षा की विधियां नहीं दी जा रही है पाठकों को इसी विशयक के प्रथम खण्ड में मूत्र परीक्षा प्रकरण में देखना चाहिए।

मधुभेह चिकित्सा सिद्धान्त—

मधुमेह आहार चयापचय विकृति का परिणाम, है अतः ''संक्षेपतः क्रियायोगो निदान परिवर्जनम्'' चिकित्सा- सिद्धान्तानुसार औषि व्यवस्था से विकृतियों को दूर करना तथा पथ्यमय आहार से विकृतियों, की सम्भावनाओं को दूर करना ये दोनों साथ-साथ होने पर ही रोग पर विजय प्राप्त की जा सकती है। मधुमेह के रोगी दो प्रकार के माने गये हैं—आचार्य चरक के शब्दों में—

स्यूल प्रमेही वलवान्तिहेके क्रशस्यैक परि दुर्वलश्च। सर्वृहणं तन्त्र कृशश्च कार्यं संशोधनं दोण वलाधिकस्य।।

अर्थात् मधुमेही रोगी दो प्रकार के होते हैं— १. स्थूल व बलवान्। २. कृश व दुवंत । चिकित्सा सूत्र -

- , (१) स्यूल व बलवान के लिए—संशोधन व शमन चिकित्सा।
- (२) क्रमकाय व दुवंनं के लिए संतर्पण एवं वृंहण चिकित्सा । सधमेह पर शफल प्रयोग—

१-वसन्तकुमुमाकर रस १ गोली (२ रत्ती), अमृता-सत्व ४ रत्ती, जामुन बीज खूर्ण, गुड़मार चूर्ण तथा अश्वत्थ (पीपल छाल) चूर्ण प्रत्येक द-द रत्ती १ मान्ना अनुपाम हरिद्रा स्वरस से चाटकर कपर से दूध पीवे। १ सप्ताह में नियन्त्रण। ४० दिन पर्याप्त।

'त-श्रेष्ठादि वटी (प्रमेह पिहिका पर सनुभूत योग)-त्रिफला ८० ग्राम, गुद्ध गन्वक ४० ग्राम कपूर, हत्दी, गुडमार, नीमछाल, गुग्गुल, आंवला, बंग भस्म २०-२०

the septial tells the

ग्राम लेकर गुडमार पत्न स्वरस, गूलर पत्न स्वरस (व छाल के क्वाथ की) की ७-७ भावना देकर ४-४ रत्ती की गोलियां वनावे। मात्रा ४ से = रत्ती दिन में २ बार गुड़ क्याथ से देने पर मधुमेह तथा तज्जन्य प्रमेह की पिडिका नाजक सफल प्रयोग है।

३-चन्द्रप्रभावटी का प्रयोग करेले स्वरस के साथ।
४-शिलाजित्वादि वटी। ४-तथा मधुमेहारि योग एवं
६-जम्बुकाद्यरिष्ट लौहासव फलाशपुष्पासव तीनों को समभाग मिलाकर ४-४ चम्मच बरावर पानी से भोजनोत्तर
सेवन मधुमेह नाशक एवं शक्तिवर्धक है।

💥 पृष्ठ १४४ का शेपांश 💥

होने की संभावना नहीं रहती। पुरुषों में नपुंसकता और स्त्रियों में वन्ध्यापन और दोनों में आमवात (गठिया) की उत्पत्ति का पूयमेह प्रवल कारण है। इसका उत्लेख सायुर्वेद विज्ञान में भी है—

बामवातादि रोगा घा ज्ञेयास्तेपास्तेपामुपदवाः।
— बायुर्वेद विज्ञान

सूचना—रोग पुराना होने पर मूत्र मार्ग कठोर और संकुचित हो जाढा है। इस कारण मूत्र त्याग के समय कष्ट प्रायः बना ही रहता है। कभी मूत्रावरोध भी होजाता है। मूल मार्ग कठोर या सख्त होने के कारण शिश्न में कुछ टेढ़ापन भी हो जाता है।

पुनरावर्तन - पूयमेह पुनरावर्तनशील रोग है। यह एक बार चले जाने के बाद भी महीनों और वर्षों वाद तक भी फिरफिर कर आक्रमण करता रहता है।

वक्तव्यं—गोनोकोक्तं नाम का जीवाणु गर्भस्राव और गर्भपात कराता है यह जानकर हमको सुश्रुत के एक लेख की याद आगई। उसमें लिखा है कि—

कृमि वाताभिघातैस्तुतदेवोपद्भतं फलम् । पतत्य कालोपि यथा तथास्माद्गर्मविच्युतिः ॥ — सु० नि० ८।९०

जैसे छिम (कीड़ा) वात आंधी अभिघात डंडा पत्यर आदि से विना पका फल सकाल में गिर जाता है वैसे ही कृमि जीवाणु बात विकार सिभघात चोट आदि कारणों से सकाल में गर्भ भी गिर जाता है।

सूचना—ऋग्वेद और अथवेंवेद में भी गर्मस्राव और . और गर्भपात करने वाले जीवाणुओं का वर्णन देखिए 'लेखक का संक्रामक रोग-प्रथम भाग पृष्ठ ५६ से ६२ तक ।' .

※ • वृष्ठ १४६ का भ्रेपांश ※

- २. स्ट्रेप्टोमाइसिन १ ग्राम प्रतिदिन दें ।
- मूत्र प्रसेक नलिका, योनि प्रदेश या शिश्नाग्न को
 पोटासियम पर्रमेंगनेट के पः प००० विलयन से घोवें।
- ४. फिटकरी के पानी से धोवें।
- ५. साथ में मूत्र प्रवर्तक औपिध दें जैसेिक लैंसिम्स आदि पूर्यमेह में शीतगुण मूत्रल औपिधयों के प्रयोग से जब मूत्र खुलकर अधिक मात्रा में आता है तव .यह जीवाणु बाहर निकल मूत्र मार्ग का शोथ शांत हो जाता है। आयुर्वेद चिकित्सा—
- (१) गोखरू २ तोला, हजरुत्यहूद २ तोला, इलाय्ची छोटी १ तोला, शीतलचीनी १ तोला, यवसार ६ माशा, शोरा कलमी ३ माशा सवको मिलाकर २ माशे की मात्रा में वरावर मिश्री के साथ दिन में ३-४ बार दूध की लस्सी के साथ देने से विशेष लाभ होता है।
- (२) सतिवरोजा, शीतलचीनी, इलायची, श्वेत राल, वंशलीचन सवको २-२ तीला, प्रवाल अस्म १ तीला मिलाकर २ माशे की मात्रा में वरावर, मिश्री के साथ दूध की लस्सी से दिन मे २-३ वार २-३ सप्ताह तक वें 14

ક વૃદ	ठ १७६ का	शेषांश 🌣	
उपस्थित लक्षण ·	चिकित्सा पूर्व काल आतुर सं.	चिकित्सा उपरांत आतुर सं.	प्रतिणत नाभ
 ष. मधुरास्यता ६. आधिल मुत्रता ७. हस्तपाद दाह ६. वृभुगाहिक्य ६. स्वेदाहिक्य १०. वॅर्मरोग १०. नपुंसकता १२. संधिणूल 	४ ६ ४ १ २ व ४ २	* * * * * * * * * * * * * * * * * * *	7 7 9 9 9 9 9 9 9 9 9 9 9 9 9 9 9 9 9 9

उपरोक्त आधार से कहा जा सकता है कि मँधुमेह में अश्रक सत्व भस्म का प्रयोग प्रभावात्मक है। आतुरों को लाभ हुआ। यह एक परीक्षणात्मक अध्ययन था। यदि इसे सुचार रूपेण विधिवत् किया जावे तो और भी सफलता मिल सकती है। अनुसंधानकर्त्ता इस पर ध्यान देकर प्रयत्न करे और अच्छे परिणाम प्राप्त करें तो आयुर्वेद की महान सेवा होगी।



वैद्य कवि वेदप्रकाश गुप्त वैद्य वाचस्पति, आयुर्वेदाचार्य, वी शाई एम् एस

कुछ वर्ष पूर्व विज्ञान भवन में विश्व के सिद्ध हस्त चिकित्सक — वैज्ञानिक मधुमेह रोग की सफल शतप्रतिशत चिकित्सा की खोज करने के लिए इकट्ठे हुए थे। पांच दिन की गोण्ठी का परिणाम यह निकला कि इस रोग का कारण ही किसी को ज्ञात नहीं हुआ। वैज्ञानिकों के समक्ष प्रशन था—

१ - रोग का कारण क्या है?

२—िक्स विधि से रोग-रोका जा सकता है ?

३—मधुमेह के दीर्घ कालीन उपद्रवों से किस प्रकार रोगी की रक्षा की जा सकती है?

४ - रोग होने पर क्या चिकित्सा सम्भव हो सकती है जिस से रोगी को स्वस्थ किया जा सके। पुनः रोग होने की सम्भावना न हो।

प्रोफेसर वासियोकोवा सोवियत वैज्ञानिक एवं चिकिर्तसक ने रूस में हो रहे मधुमेह अनुसंघान के फायं का विश्लेषण करते हुए अपने शोध पत्र में लिखा या कि मधु मेह रोग की स्थाई चिकित्सा अभी तक नहीं मिली। खाने की ओपिध क्लप्रोमईड (Chlopropamide) और इन्सुलीन (Insulin) इंजेक्शन के अनेक योगों का परीक्षण किया। इन सभी औपिधयों का प्रभाव मानव शरीर में १२ घण्टे से अधिक नहीं रहता। ओपिधयों के कुप्रभाव का अनुभव किया। इसके द्वारा मानद शरीर में औपिध की मात्रा सिधक होजाने पर मूर्च्छा स्वेदाधिक्य-कम्पन-अधिक भूख-अधिक-तृपा-मानसिक चिन्ता-अस्यिता शीतिपत्त जी मिचलाना-शिर: भूल-वमन-आनाह त्वक कण्डु आदि लक्षण हो जाते हैं।

इसी प्रकार अन्य गोध पत्नों में कहा गया या विश्व-

स्वास्थ्य संगठन (-W. H. O.) के प्रवक्ता छा० एव. बार. वेनरमैन ने अहा कि चायना (चीन) अफरीका सेंट्रल अमेरिका के वैज्ञानिकों ने दावा किया है कि उनके देण में मधुमेह को नियंद्रित करने की वनस्पतियां विद्यमान हैं। विश्व स्वास्थ्य उनके इस दावे का वैज्ञानिक परीक्षण करेगा तभी उसे सही समझेगा, स्वीकार करेगा। जितने भी शोध पत्र गोष्ठी में पढ़े गए राभी में यही शोध परिणाम था कि वर्तमान में जितनी भी एलोपैथी बौषधियां बनी हैं वह सभी मानव शरीर में विकार पैदा करती हैं।

डा॰ प्रो. के. जी. ऐम. एलवर्दी ने अपने लेख में लिखा था कि ५० वर्ष पूर्व इन्मुलिन के आविष्कार होने से मधुमेह रोगियों की आयु में वृद्धि तो हुई परन्तु इसके भयः द्धुर प्रिणामों से अभी तक मुक्ति नहीं मिल सकी। उपद्रव—विकार—प्रभाव—

शक्रा के अभाव से-

- (१) आंख-हिष्टमन्द, अन्धापन
- (२) वृक्क-वृक्क शोय
- (३) धमनियों-शिराओं के विकारों के कारण ह्दरोग, टांगों और वाजुओं में भून्यता

मानसिक चिन्ताओं, दुवंलता और हृदय स्पन्दन गति में दुवंलता शार्करा-अभाव से उत्पन्त उपद्रवों से वचने के लिए अनुसन्धान का परिणान—

मधुमेह अनुसन्धान केन्द्रों में शर्करा के अभाव से उ उत्पन्न विकारों को रोकने के लिए परीक्षण किए, उन परीक्षणों के आधार पर कहा है कि शर्करा तथा अन्य पदार्थ जो शक्रेरा रहित है उनके प्रयोग से शारीरिक शक्ति and the filles and the second

का हास होता है। जिसके कारण रोगी का शारीरिक. वल और मानसिक उत्साह दोनों का हास होने से रोगी दैनिकं कार्य करने में भी असमर्थ हो जाता है। इसलिए रोगी की शारीरिक शक्ति का रक्षण करने के लिए पाचन शक्ति की रक्षा करते हुए वनस्पतियों, फलों और खाद्य अन्न का सेवन करे। खाद्य अन्न तथा वनस्पतियों में किचित याता में गर्करा होती है जो वनस्पतियों में विद्य-मान तत्वों के साथ मिश्रित होने से शरीर में शीघ्र ही सात्मीकरण हो जाता है। किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंच पाती । यदि वनस्पति से शकरा निकाल कर प्रयोग की जाये तो उनसे पाचन शक्ति के विकृत होकर हानि पहुँचने की संभावना रहती है। चिकित्सकों ने रोगियों में ऐसी घारणा विठायी है कि शकरा वाले पदार्थों का सेवन न करें। गोली खाओ गर्करा पचाओं अन्यथा मृत्यु का दर खटखटाओ । जो आधुनिक चिकित्सक प्राकृतिक फलों में विद्यमान शर्करा को भी रोगी को हानिकारक समझते उनके रोगी दुर्वलता, शिथिलता, मांसपेशियों की शक्तिका हास, इप्टि दुवंलता, मुख का तेजहीन, रूप लावण्य कीण हो जाते हैं। इसकी रोकयाम के लिए मद्रास में डायबटीज रिसर्च सेंटर में अनेक परीक्षणों पश्चात निश्चय किया कि मधुमेही रोगी के स्वास्थ्य के लिए निशास्ता ६०%, पनीर (High protien) २०% कम स्नेहयुक्त पदार्थ २०% देना आवश्यक है। सोवियत संघ और अमेरिका में गाय के घी के प्रयोग की छूट दे दी है, विलक सोवियत संघ ने घोड़ी के दूध, दही, मक्खन, घी के प्रयोग करने का रोगियों को परामर्श दिया है। आयु-र्वेद के चरक और सुश्रुत ग्रन्थों में से वाल इण्डिया इन्स्टी-ट्यूट आफ मैडीकल साईसेज दिल्ली में मधुमेह अनुसन्धान केन्द्र ने सुश्रुत में वर्णित कारणों को वैज्ञानिक कारण ही वताया। उनकी सभी शङ्काओं का समाधान भी होता हवा प्रतीत होता देखा।

रोग का कारण-

मधुमेह शब्द ही रहस्यमयी है। मयु का निर्माण जैसे
मधु मक्बी पुष्पों के सार भाग मधुरता को लेती है अर्थात्
पुष्प रस को लेकर मधु मक्बी मधु का निर्माण करती है
जसी प्रकार से हमारे शरीर की धात्विग्न धातुओं का
निर्माण करते हुये सार भाग ओज बनाती है। ओज धातु
मधु के समान होता है, यही आचार्यों का मत है। मव
में माध्यं, कपाय रस बीर हक्षता होती है जो बात
प्रकोप का द्योतक है। यबुमेही रोग हक्ष बीर कपाय
लक्षण होने ते उसे वातिक प्रमेह कहा जाता है। मधुरता
बीज का लक्षण है। अतः ओज क्षय भी इसी कारण होता
है। ओज जय के कारण स्फूर्ति और घक्ति झीण हो जाती है।

'चरक निदान—'बोज: पुनर्मधूर स्वभावं तद् रौहयाद् वायुः कपायत्वेनाभि संसृज्य मूत्राश्चवाऽभिवहन मधुमेहं करोति' कफ मेद आदि के द्वारा आवरण वातप्रकोपक व्याधि है। अतः जो मानव मधुर रस, गुरु पदार्थ (तले हुये पदार्थ अधिक स्नेह्युक्त आहार) नवीन अन्तपान (नवीन अन्न श्लेष्मोत्पादक होते हैं), दिन में सोना (श्लेष्मोत्पादक), व्यायाम नहीं करना (शारीरिक परिश्रम विल्कुल नहीं करना), मल-मूत्र वेगों का रोकना आदि कारणों से कफ, पित्त, मांस मेद बढ़ जाते हैं। इन कारणों से पाचन शक्ति नष्ट हो जाती है। जब भोजन का पाक नहीं होता तब शरीर धीरे धीरे क्षीण हो जाता है और रसादि धातुओं का निर्माण नहीं होता।

सुश्रुत में इसका कारण— दिन में विना निद्रा, आलस्य से लेंटे रहना, ग्रीष्मकाल में अधिक माता में मार्वत, आइस्क्रीम, कोल्ड ड्रिंक के साथ दूध से बने हुये पदार्थ वर्षी, रवड़ी, कलाकन्द, रसगुल्ल आदि स्निष्ध और मध्रुर रस युक्त पदार्थों का निरन्तर सेवन करने वाले मानव को प्रमेह रोग हो जाता है जो कुछ काल के पश्चात इसी आहार-विहार के कारणों से मध्रुमेह हो जाता है। आयुर्वेद में मध्रुरता वाले मूलवर्ग में इक्षुमेह और मध्रुमेह हैं।

इसुमेह और मधुमेह में भेद

इक्षुमेह

मधमेह

मूत्र लक्षण

मूल अधिक मधुर, स्निग्ध, इक्षुरस समान होता है।

लक्षणों के अनुसार कफ दीपजन्य है।

मूल मधु के समान मधुर, कपाय रूझ पाण्डु या मधु वर्ण का होता है। लक्षणों के अनुसार वातज दोपजेंन्य है।

इक्ष्मेह

मधु में ह

परीक्षण

रसायनशाला परीक्षण में शर्करा मिलेगी।
- वाग्भट में मूत्रगत माधुर्य और रक्तगत माधुर्य होना आवश्यक।

रासायनिक परीक्षण फैलिंग सेल्युशन या अन्य कोई परीक्षण से शकरा मिलेगी।

आयुर्वेदीय परीक्षण

इक्षुमेह दीघंकालीन नहीं है-पथ्य करने से दूर हो जाता है

मूलगत माधुर्य में चीटियां मूत्र स्थान पर आती हैं। रक्तगत माधुर्य में मिनखयां त्वचा पर वैठती हैं।

बायुर्वेद में मधुमेही रोगी दो प्रकार के हैं जिनकी चिकित्सा भी दो प्रकार की है। आधुनिक चिकित्सक दोनों प्रकार के रोगियों की चिकित्सा में कोई भेद नहीं करते—
. भेद—मधुमेही रोगी १-स्थूल २-इश

स्थूल रोगी के रोग का कारण स्नेहयुक्त मधुर शाहार सादि। कृष रोग का कारण धातुक्षय। रोग रोक्ने की विधि —

स्थूल काय रोगी—जिन कारणों से रोग उत्पन्न हुआ हो उनको छोड़कर सुपाच्य क्षुधावर्धक बाहार करने से पुनः रोग नहीं होता।

कृश काय धातुक्षयजन्य मधुमेही रोगी वातनाशक, ओजवर्द्धक, वलवर्द्धक थाहार लेते रहने से उसे पुनः रोग नहीं होता। मधुमेही रोगी के लिये आहार एवं खाद्य पदार्थं—

- (१) साग-सञ्जी—मेंथी, करेला, ककोड़ा, आंवला, जामुन, हरिद्रा. निम्ब, पटोल, सृपारी, विभीतक, विल्ब, मंजीठ, यव, हरीतकी, पातगोभी, पालक, टमाटर, शलगम, सीतांफल, टिण्डा, लोकी, कच्चा केला, मूली, तोरई, वधुला, पेठा, गेहूं, दूछ. गाय का घी।
 - (२) दालें मूंग, मसूर, कुल्थी, चने, मटर, अरहर
- (३) फल—मुसम्मी, सन्तरा, जामुन, तरवूज, पपीता, ककड़ी, सेव अनार।
- (१) खुश्क फल (मेवा)—काजू, अंजीर, अखरोट, बादाम।
- चिकित्सा कम (स्यूल रोगी का)-
- (१) कालाजीरा और काले तिल समान भाग लेकर चुणं वनालें। माता १ छोटा चम्मच दूध से । काले तिल के

अभाव में सफेद जीरा कम लाम करता है परन्तु प्रयोग कर सकतें हैं।

- (२) दिल्व पत्र ५ से ७ तक कालीमरिच के ३-४ दाने दोनों को चवाकर खालें।
- (३) विवन्ध वाले रोगी रात्रि को त्रिफला चूर्ण गर्म जल से शीतकाल में ताजे जल से ग्रीप्म ऋतु में लें।
- (४) राति को विजयसार की लकड़ी को भिगो दें, प्रातः उसे निकाल कर दिन भर तृपा लगने पर उसे ही पीता रहे।
- (४) प्रातः भ्रमण करे, निम्ब के ४-४ कोंपल पत्र चवाकर उसका रस लें।
- (६) दुवंलता प्रतीत होने पर स्थूल एवं कृश शरीर वाले चन्द्रप्रभावटी २ गोली प्रातः, २ गोली गाम सेवन करे। अनुपान—दूध।

कृश शरीर वाले रोगी-

(१) शिखाजीत ४ रती--प्रातः दूध से, ४ रत्ती गाम दूध से।

यकृत विकार के कारण लोध्रासव ६ छोटे चम्मच वराबर का जल मिलाकर ।

धातुक्षीण के कारण मधुमेही रोगी
प्रातः और सायं मधु से लेकर दूध पीवे।
वसन्त कुसुमाकर रस १ रती [१२५ मिली॰ ग्राम]
मुक्ताशुक्ति भस्म ३ रती-[३७५ मिली॰ ग्राम]
विहार—मान्सिक शान्ति

बाहार-रतदार फल

रावि च्यवनश्राण अवलेंह १ वड़ा चम्मच लें। सामान्य अवस्था में पुनः रोग से बचने के लिए— आंवला भोजन के पश्चात् लें।

HEURICE FURNIEUR

गुडूची, क्षांवलो, विल्व पत्र, निम्ब पत्न का स्वरस, ववाय या भाक सरसों के तैल में पकाकर सेवन करें। उदर विकार की अवस्था में आरोग्यविद्या वटी राति की २ गोली जल से लें या प्रातः ? चम्मच हरिद्रा चूणं हूध से सेवनं करें। एवानुभूत स्वकृतिपत प्रयोग—

शिलाजीतारि रस — जमीक भरम १२४ ग्राम, वज्ञः भरम हरतालमारित १२४ मि ग्राम, प्रवाल विष्टी १२४ मि. ग्राम, स्वणंमाक्षिक १२४ मि. ग्राम, अञ्चल भरम (सहस्रपुटी)या डावर का नागाजुँनाश्च रस १२४ मि.ग्रा., शिलोजीत २४० मि. ग्राम - कुल माला १ ग्राम के लगभग मधु से प्रातः सायं देने से स्थूल एवं कुश रोगियों को वल मिलता है। अग्निवर्दंक यक्तत के विकारों में भी लाभ करता है।

मधु मिडिकायें—महामंजिल्हादि काढ़ा (प्रवाही) १ छोटे चम्मच, विंहबपत्र स्वरस १ छोटे चम्मच में मिलाकर दिन में दो बार १ ग्राम णिलाजित्वादि रस से दें। रात्रि को २ गोली आरोग्यविंद्धनी वटी जल से दें।

शिवागुटिका (चक्रदत्त रसायनधिकार) — र गोली दो बार कारवेल्लक (करेला) रस से।

सुरिका मूत्र शकरा, रक्त शकरा को कम करता है. दुवैलता को दूर कर ओज धातु बढ़ाता है, दीपन पाचन है। छत्य अनुसन्धान केन्द्रों के परीक्षित प्रयोग— खामनगर, अहमदावाद, गुजरात—

सप्त रक्षादि वटी—मात्रा-२-२ या १-३ या ४-४ टिकिया रोगी के वल कोष्ठ और मूत्र शकरा के सनुपात को क्यान में रखकर दें। लाभ करता है।

रक्त शक्री-मूल शक्री, जीणे ही या नवीन स्रोजवर्द्धक-यहत, अग्न्याशय, रक्त और मांसपेशियों पर एक साथ प्रभाव करता है। राज श्रायु विकि ् उदयपुर (राज ०)—

महुमेह कैपसूल — भोजन के पश्चात ५-५ ग्राम मैंथी चूर्ण के साथ प्रातः सायं। जीर्ण दुवेल ओजकीण रोगियों को शिवागुटिका भी कैप्सूल के साथ देते हैं। जामनगर केन्द्रीय अनुसन्धान केन्द्र —

प) मामज्जक घन सत्व—मात्रा १ से चार गोली पार जल से। रोग के वले के अनुसार अर्थात रक्त में ४ प्रतिशत शकरा होने पर ४ गोली तक देते हैं। प्रतिक्रिया—अति-सार आदि उपद्रव हो जाने की अवस्था में वन्द कर देते हैं।

- (२) सप्तरङ्गी घन सत्व—मात्रा १ से २ गोली २ बार जल से दें। यक्तत पर विशेष प्रभाव~मूत्र एवं रक्त शकरा दोनों कम करता है।
- (२) कारवेल्लक चूर्ण-माझा १ ग्राम दो बार जल से खाली पेट रक्त मूत्र धकंरा कम करता है।

विशेष—कोलेस्ट्रोल की वृद्धि को सामान्य करता है, आमदोप का पाचन होता है।

- (४) बीजक (विजयसार) बुरादा का क्वाथ, मात्रा २॥ तोला। रक्त शर्करा पर विशेष लाग करता है। स्यूल रोगियों की स्यूलता भी कम होती है।
- (४) गुड़ मार बूंटी-मात्रा ३ माशा दो बार जल से दें मूदातिसार कम करके रक्त व मूत्र शकरा की भी कम करता है।
- (६) मेंथी चुणे ३ माशा ३ वार जल से-वातदोप मेदधातु को नियन्त्रित करके रक्त शुर्फ रा को दूर करता है। वलवर्द्ध कहै। श्वेत प्रदर में योनि प्रक्षालन के लिए भी इसी क्वाय का प्रयोग करते हैं।
- (७) उदुम्बर चूर्ण-मात्रा ३ माशा ३ बार जल से वायुनागक, पाचक, रक्तशोधक, रोपण है। रक्त शर्करा कग करता है।
- (c) जामुन गुठली चूर्ण ३ माशा २ वार जल से। ज्झा सूत्रग्राही, कफ पिल दाह, रक्त शकरा नाशक है।
- (६) निम्ब--मात्रा ५ कोमल पत्ते-कृषि विष-नाशक हैं।
- (१०) राजस्थान में उत्पन्त घास के बीज-मूत्र और रक्त शर्क रा को वित्कुल दूर करता है।
- नोट—यह धास ऊंट के उदर विकार में राजस्थान वाले प्रयोग करते हैं। इस घास के बीज का प्रयोग पूना (महाराष्ट्र) में अनुसन्धान केन्द्र हारा किया जा रहा है।

— कवि॰ वैद्य वेदप्रकाश गुप्त वैद्य वाचस्पति आयुर्वेदाचार्य, वी.आई.एम.एस. ६ ई-सुम्लानगर, दिल्ली।

अक्षक सत्व अस्य का मधुमेह पर प्रशादात्मक प्रयोग

वैद्य वात्रस्पति ढा॰ गणनाथ बी॰ द्विवेदी वैद्यरत्न, वी॰ फार्म, एम॰ डी॰ (आयुर्वेद)

प्रमेह मूत्र रोगों के जन्तगंत बाने वाली व्याधि है तथा मधुमेह वातज प्रमेह की व्याधियों में से एक है। मधुमेह वर्तमान युग की भयञ्कर व्याधि है और सुरसा राक्षसी के मुख की भांति वढ़ती हो जाती है। सायुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में इसका वर्णन उपलब्ध है। साचार्य चरक ने 'प्रायः मधित्व मेहित' करके इस व्याधि को स्पष्ट प्रगट किया है। मधुमेह पर आयुर्वेद में काफी लिखा जा चुका है। अतः उसको पुनः लिखना पिष्ट पेषण ही होगा। अतः इस व्याधि को सारांग में लिखना ही इस केख में योग्य प्रतीत होगा। जिस व्याधि में बातुर प्रायः मधु के समान बारंबार मूल त्याग करता है उसे मधुमेह कहा जा सकता है। प्रायः सभी प्रमेह योग्य उपचार न करने पर मधुमेह में परिवर्तित हो जाते हैं।

आचार्य सुश्रुत इसे प्रथक व्याधि मानते हैं जिसमें मूत्र में, रक्त में शर्करा का बंश साने लगता है। स्वतन्त्र रोग मानते हुए आचार्य सुश्रुत ने इसकी प्रथक चिकित्सा लिखी है। वह उसे मातृंज पितृज प्रदत्त रोग मानते हैं। इसकी चिकित्सा छुच्छुसाध्य है।

मधुमेह दो कारणों से उत्पन्न होता है। एक धातु क्षय के कारण वायु के प्रकीप से होता है। दूसरा शरीर के स्रोतों के अवरोध के कारण।

व्याधि में, मूत्र में, रक्त में शर्करा की मात्रा बढ जाती है। चिकित्सा न करने पर शरीर की धमनी में एक्ता था जाती है। हृदय रोग हो जाता है। आतुर को अतित्पा, अतिक्षुधा लगती है। आतुर वारंवार मूल का त्याग करता है। आहार के अधिकांश माग से वृदक शर्करा को छानकर बाहर निकाल देता है। मूत्र में शर्करा की मात्रा वड़ जाती है। कभी कभी रक्त में भी अधिक हो जाती है। अन्य लक्षणों में नेत्र ज्योति में कमी, मंधियों में शूलं, रक्तचाप में वृद्धि, कभी कभी अति तीव्रता होने पर मुच्छीं, संन्यास तथा अन्त में मृत्यु भी संभावित होती हैं। मधुमेह के लक्षणों के सारांश को लिखें तो (१) तृषाधिक्य, (२) अतिसार, (३) ज्वर, (४) दाह, (५) दोवंल्य, (६) अग्निमांद्य, (७) उदावतं, (८) कंप, (६) नपुंसकता (१०) पींडिका प्रमेह, (११) हृद्ग्रह, (१२) शूल, (१३) अनिद्रा, (१४) शरीर क्षय आदि होते हैं।

मधुमेहं के जपदव - प्रमेह पिडिका, कारवंकल आदि सप्तभेद पिडिकार्ये, अन्धता, अङ्ग वैकृति ।

इस विश्व व्यापी महाव्याधि जो निरन्तर अपनी प्रगति पर है के वंशानुगत होने के कारण अकारण निर्दोष शिशु भी इससे ग्रसित होते हैं। इसके नाग के उपाय सर्वत्र हो रहे-हैं। विश्व की अनेकों चिकित्सा पद्धतियां इसके रोक-थाम हेतु प्रयत्नशील हैं। आयुर्वेद में भी इसकी चिकित्सा वर्णित है। अनेक स्थानों पर अनुसन्धान हो रहे हैं। आसुरों पर अनेक औषधियों का प्रयोग हो रहा है, आयु-वेदीय औषधियों में रसीषधियों का प्रयोग भी इस व्याधि के नाशार्ष होता है। अनेक योग हैं।

मुझे अपने स्नातकोत्तर सध्ययन काल में अध्यक सत्व भस्म का मधुमेह के रोगियों पर प्रयोग करने का सुअवसर मिला। मैंने स्वयं शास्त्रोक्त विधि से अध्यक सत्व भस्म निर्माण कर मधुमेहियों पर प्रयोग किया जो प्रायः सफल रहा। अभी भी उसमे आगे अनुसन्धानात्मक प्रयोग आव-श्यक है। मेरी प्रयोग विधि का वर्णन संक्षेप में अधी-लिखित है।

अध्यक सत्व भस्म का मधुमेह पर प्रयोग विवरण— अध्यक सत्व का विवरण लौहिसिद्धि तथा देहिसिद्धि हेतु अनेक प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध है। यथा रसाणंव, रसपद्धति, रस हृटयप्तंय, आयुर्वेद प्रकाण, ऋदि खण्ड, वादि खण्ड, रसेन्द्रपुराण, रस तरेनिणी, रसंरत्न समुच्चय, रसेन्द्र चिन्तामणि, रस रत्नाकर, रसकामधेनु, इन ग्रन्थों में से अध्यक सत्व पातन, सत्व भोधन, सत्व भस्मीकरण भस्म आदि का कान प्राप्त होता है। प्रयोगार्थं रसतरंगिणी में निर्दिष्ट विधि सरल होने के कारण. उसीके अनुसार अभ्रक सत्वपातन, सत्वशोधन, विशेष शोधन, सत्वमारण, भस्म अमृतिकरण आदि किया। अभ्रक स्त्वपातन—

रसतरंगिणी तरंग १० के श्लोक ६१ के अनुसार— पादांशं सौभाग्यरजः समेतंपिण्टं

> मूसत्या स्वरसेन सार्घम्। कोष्ठया निद्यायाध्रक मत्र गाडरवा-

हमापितं भुञ्चरी सत्वमच्छम् ।। इसके बनुसार कृष्णाध्रक लेकर उसके भार से आधा छ्वेत मूसली स्वरस तथां उससे आधां टंकण चूर्णं लिया गया। कृष्णाध्रक का चूर्णं करके उसमें योग्य प्रमाण में टंकण मिलाकर लौह खरल में मर्दन कियां गया। उसके बाद मूसली स्वरस में मर्दन करके उसकी चिक्रका बना-कर सुखाया गया। शुष्क होने पर मूखा में रखकर तीज्ञाग्नि में प्रसप्त कर अश्रक सत्व गोल, सूच्याकार, अनियमित आकार में मूषा के तल भाग से प्राप्त किया। अविणव्द किट्ट में से चुम्बक द्वारा लौह अंश एकत्र कर पुनः मूषा में डाल तीज्ञाग्नि पर प्रतप्त कर संपूर्णं सत्व प्राप्त किया गया।

अभ्रक सत्व शोधन-आधार रसतरङ्गिणी १०/११३ को अनुसार

निफला सलिल" निफला सलिलदेषु

निर्वापिणात् शुद्धिस्य। —र त. १०/११३ अध्रक सत्व कठिन या अतः उसे मृदु करने हेतु तथा शरीरोपयोगी वमाने हेतु शोधन आवश्यक होता है। अतः शास्त्रोक्त विधि अनुसार अध्रक सत्व को तीव्राग्ति पर प्रतप्त करके उसे विफला क्वाथ में निर्वापित किया गया। यह किया सात बार की नयी।

े लिफला क्वार लिदोपन्न है दीपन, पाचन है। मधुमेंह की उत्पत्ति में विकृति उदर विकार भी कारण है
तथा मधुमेंह लिदोपन्न न्याधि भी मानी गयी है। दूसरे
हिष्टिकोण से विचार करें तो तिफला क्वाय में लौह कणों
का विघटन होता है। सत्व मृदु होने में सहायक होता है।
विभेष श्रोधन शुद्ध अन्नक सत्व को विभेष शोधन
भन है जो रस सर्ज्जिणी को अनुसार त. १० को
४-१०६ को अनुसार किया गका। प्रथम अन्नक

सत्व को तीवाग्नि में प्रतप्त रक्तवर्ण के होने तक किया गया। उस प्रतप्त अर्ध्रक सत्व को कांजी में निर्वाणित किया गया। यह प्रक्रिया तव तक चालू रही जब तक अश्रक सत्व में भृंगुत्व नहीं आता। ७०-८० वार में वह भृंगु होने लगता है। उसकी लीह के दण्ड (इमाम दस्ते की मुसली) के द्वारा कूटा गया। इसी भांति अश्रक सत्व को पुनः प्रतप्त करके शुद्धं गोधृत में भूना गया। यह प्रक्रिया ३ वार की गई। आंवले के स्वरस में ३ वार मद्दैन किया गया। पुनर्नवा स्वरस की ३ भावना दी गयी। अन्त में ३ भावना कोंजी की दी गयी।

अभ्रक्ततव मारण—

विशोधितं व्योमसत्वं तदर्ध सूतगन्धकम् । निक्षिप्तं मर्ददोत्सत्व, काचकूपी गतं ततः ॥ —र.त. १०/१० म

इसं विधि के अनुसार शु॰ अभ्रक सत्व के अर्घाश कज्जली पारद | गन्धक समभाग लेकर उसके एक रूप होने तक भदेन किया। एक रूप होने पर त्रिफला क्वाथ की भावना देकर शुष्क होने तक मदेन किया गया। उसके बाद कूपीपक्व विधि अनुसार कूपी बनांकर उसमें रस विधिवत् पार्क किया गया। ४८ घण्टे के पाक के बाद स्वांग भीत होने पर कूपी तोड़कर अभ्रक सत्व सस्म तलस्य रूप में प्राप्त की गयी। उसका वर्ण कृष्ण था।

अपुनर्शव परीक्षा—तैयार अश्रक सत्वश्रस्म की अपुन-र्भव परीक्षा भी रस तंरिंगणी व २/५६ के अनुसार की गयी। समित्र पंचक हमातंः स्तिरितम्।

एक मूसा में मित्रपंचक डाल कर उसमें योग्य मात्रां में सत्व भस्म डाल कर २०० डि.से उष्णतापमान पर दो घण्टे रखा गया। स्वांग शीतल होने पर भस्म के मान वर्ण, संगठन आदि में परिवर्तंन नहीं हुआ अतः भस्म योग्य सिद्ध हुई।

जपृतीहरण--

ं भस्म को शरीरोपयोगी वनाने तथा सात्मीकरण हेतुं प्रक्रिया भी रस तरिष्ट्रणीत. १०/७६ के अनुसार दी गई। मृताभ्रसवित ' ' ' ' ' योजयेत्।

सत्व भस्म के समभाग गोघृत लेकर कढ़ाई में डाल कर नीचे अग्नि दी गयी। कछ काल में उस पास स्थित द्रव अग्नि प्रज्वलित होगयी हो और स्वमेव शांत हो गयी ती पांत स्थित भिम्म को एक कर उस पर विधान रखकर तीव्र अग्नि दो घण्टे दी गई। स्वांग शीत होने पर वस्त्वपूत कर सुरक्षित मंग्रह किया गया।

 अभ्रक्त सत्व मस्म वंग वर्ण-कृष्णाभ रक्त, स्पर्ण-स्निग्ध रस-मधुर, कपाय, गेध-लोह् गन्धी था ।

अभ्रक सत्व भस्म का प्रयोग मधुमेही पर निम्नांकित विधि अनुसार किया गया—रस णास्त्रीय ग्रंथों में सत्व को भस्म से १० गुना गुणकारी कहा है यथा व्योम्नो दशंगुणं सत्वै। (रसाणंव)। अभ्रक सत्व को रसराज सुन्दर में रोग नाशक सिद्ध भेषज कहा है। अभ्रक भस्म तथा अभ्रक सत्व भस्म का प्रयोग प्रमेह नाशक मधुमेह नाशक नहा है। अतः इसका प्रयोग मधुमेह के आतुरों पर किया गया।

इस हेतु १३ आतुरों का चयन किया गया जिन में १ बालक, २ युवक, ७ प्रौढ़, ३ वृद्ध । व्यवसाय के अनु-सार श्रमिक २, व्यापारी २, अधिकारी वर्ग ३, शिक्षक १, , लिपिक २, बालक १, अवकाश प्राप्त सैनिक १ था।

इन आतुरों में ११ उपद्रव रहित थे। दो आतुरों में यमुख शोथ, संशोथ, अधितदीर्वत्य, मूत्र में शर्करा की अति मात्रा तथा एसीटोन की मात्रा भी उपस्थित थी।

👇 प्रयोग से पूर्व आतुरों का लाक्षणिक विवरण

	उपस्थित लक्षण	मातुर स	तंख्या	प्रतिशत
٩.	बहुमूत्रता	, १३		900,0
₹.,	दो र्बल्य	8		₹0.5
₹.	पिंपासाधि न य	¥		३८.५
٧,	मुखशोप	ą		3.55
¥.	मधुरास्यता	8		३०.८
₹.	आविस मूत्रता	Ó	~	४६.२
e.	हस्तपाद दाह	8		३८.७
ፍ.	अति थुघा	¥ ·		३८.४
8.	स्वेदाधिनय	२		98.8
ξο.	संधिण्ल	২		92.8
99.	चर्मरोग -	q		50.0
92.	नपुंसकता	ų		'३८.५
				Marine Control or State

बातुरों पर बीपिधं प्रयोग काल १४ दिन से ६२ दिन तक रहा।

प्रयोग मात्रा - आधी रत्ती प्रातः सायं एक मात्रा सामान्य रूपेण कुल बातुरों में वलावल व्याधिवल अनुसार २ रत्ती प्रतिदिन।

सहणान-शुद्ध गोघृत, चाय का एक चम्मच । अनुपान-गिलोय स्वरस निम्ब स्वरस आवश्यकतानु-सार ।

अपथ्य---उप्ण, तीक्ष्ण, गरिष्ठ भोजन, दिवास्वयन । कफ वर्धक साहार, नमक सादि ।

आतुरों का दैनिक पथ्यादि क्रम प्रातः जनपान शर्करा , रहित दूध दिलया । मध्याह्न—रोटी, दाल सब्जी, सायं रात्रि–रोटी, दाल; सब्जी ।

दाल में-मूंग, कुलथी, चना, पुराना (साठी), अन्न पुराना। चने जी का सत्।

शाक में — करेला, चने के पत्ते साग, ताजे आंवले की चटनी।

फल में-पियाता, जामुन, खीरा ककड़ी, नींबूके साथ दें। रात्रि में-विरेचन हेतु आवश्यकतानुसार विफला चूर्णं नमक के स्थान पर सेंधव का प्रयोग किया गया।

प्रयोगो परान्त लक्षणिक लाभ पाया गया । ४ आतुरों में मूत्रगत शकरा औषधि सेवन के उपरांत सामान्य पायी गयी। कुछ आतुरों जिनमें रक्त शकरा थी वह भी सामान्य पायी गयी। अ'तुर जो वालक था जिसे वंशानुगत व्याधि थी और वह पथ्यापथ्य से नहीं रह सका अतः उस पर कोई विशेष लाभ नहीं पाया गया।

प्रयोगोपरांत लक्षणिक लाभ सूची -

उपस्थितलक्षण	चिकित्सा	चिकित्सा	प्रतिशत	
-	पूर्व काल	उपरांत	लाभ	
	आतुर सं.	आतुर सं∘		
१. बहुमूत्रेता	93	१०	હ ફ. દ	
· २. दौवंल्य	4	8	છ.∘ફ્ર	
३. विवासाधि व य	ሂ	x	इंद १,	
४. मुल शोय	, 2 ,	₹ 1	23.0	
,	. — ग्रेपांश पृष्ठ १६२ पर देखें।			

दि दिन्ती पूर्ण सफलाचीकासा कवि.बी.एस.प्रेमी एम.आई.एस.एस.

अग्निस्थायी पारद के अनुसन्धानकर्ता किवराज श्री बी॰ एस॰ प्रेमी रसणास्त्र के ममैज विद्वान हैं। 'धन्वन्तरि-चिकित्सा विशेषांक' के ? भागों का आपने सफल सम्पादन किया है। आपकी प्राणवन्त लेखनी का चमत्कार प्रस्तुत विशेषांक में—'एलब्युमिनिमेहः लालामेह तथा मधुमेह लेखों के रूप में प्रस्तुत है।

-विशेष सम्पादक।

सर्व प्रथम मधुमेह से पौड़ित रोगी के मूत्र एवं मल की परीक्षा कर लेनी चाहिए, जिससे चीनी की मात्रा का सही ज्ञान हो सके। तदनन्तर रोगी के आहार-विहार पर नेग एवं दोप विरोधी व्यवस्था-पत्र देना वाहिए। झाराम से बैठना, सोना, दही दूध सभी प्रकार के मांस अवीन अन्तों से बने हुए सभी प्रकार के खाद्य-पदार्थ तथा मुख्य रूप से गृहं, शक्कर, बादि सभी मनुर पदार्थ सर्वथा बन्द कर देने चाहिए। मैथुन भी त्याज्य है। सभी प्रकार के कफकारक, पदार्थ निश्चित रूप से वन्द कर देने चाहिए । इक्षण एवं अपतर्पण विधान परमावश्यक है। मध्-मेह की बढ़ी हुई स्थिति में रोगी का बलानल देखकर कफ नाशक औपधि एवं द्रव्यों का प्रयोग किया जाना चाहिए। दोष, दृष्य एवं रोग की स्थिति को समझकर आवश्यकता नुसार स्नेहन, वृहण और शमन चिकित्सा की जाती है। वसंतक्षुमाकर रस, शिलाजतु,वृहद वंगेश्वर,स्वर्ण माक्षिक पन्मु, प्रवाल भस्म, वंग भस्म, यशद भस्म, नाग भस्म, त्रिफला चुणें, जामून की गुठली का चूणें आदि। गिलोय, आमलक स्वरस, हरिटा चूर्ण, स्वरस आदि का प्रयोग किया जाता है। शिलाजतु को शालसारादिगण की औप-धियों से पांच बार भावना देकर सेवन करना चाहिए।

शिलाजतु कल्प मधुमेही को यदि शिलाजतु का कल्प विवान कराया जाए तो निस्सन्देह पूर्णं रूपेण स्थायी रूप से मधुमेह ठीक होजाता है। ४ रती शिलाजतु, १ रती नाग भस्म पिलाकर फीके गौ-दुन्ध के साथ सेवन कराना प्रारंभ करें। प्रतिदित ४-४ रती शिलाजतु की मात्रा बढ़ाते चलें, एक मास तक ऐसा करें। तत्पश्चात महीने के अन्त में जो

मात्रा होती है, वही अर्थात १४ माशा की माता अब आगे भ प्रतिदिन देते चलें। ऐसा पूरे दस मास तक सेवन करावें। / तत्पश्चात इसको घटाना प्रारम्भ करें। जिस प्रकार ४ रती से बढ़ाना प्रारम्भ किया या ठीक उसी अनुपात से घटाना भी प्रारम्भ करें। जब घटाते-घटाते एक मांगा पर पहुंच जावें, तो फिर यही मात्रा स्थिर निश्चित मान कर दस दिन तक लगातार देते रहें। अन्त में बिल्कुल बन्द कर दें। यह विधान मधुमेह का स्थायी रूप से विनाश कर देता है और रोगी दीर्घ जीवन प्राप्त करता है। इस कल्प में नाग भस्म का प्रथम दिन जो मान है वही सदा रहता है, उसको बढ़ाया नहीं जाता। क्योंकि अधिक नाग भस्म की सेवन हानि करता है। इस अवधि में रोगी को पीने के लिए पानी जामुन की ताजीछाल कुट कर भीतल जल में डाल दें। वस इसी पानी की पीने के लिए देना चाहिए। इस अवधि में मधुर रस, गरिष्ठ खाद्य पदार्थ तथा स्रोतो-रोधी पदार्थों का सेवन सर्वया विजत है। धुंबाँ, धूल, घूप क्रोध आदि से भी वचना चाहिए। यह कल्प योग्य-अनुभवी चिकित्सक की देखरेख में ही किया जानं। चाहिए।

मधुमेह में उपयोगी योग आवश्यकतानुसार मध मेह में विभिन्न प्रयोग लाभदायक रहते हैं। यथा—गुड़मार चूर्ण, 'हरिद्राचूर्ण' शिवागुटिका, स्वर्णमाक्षिक घरम, आम्र चूर्ण तथा स्वरस, यशद भस्म, मेघनाद रस, वंगाष्टक चन्द्र प्रभावटी, अर्जुन क्वाय नेयग्रीधादि चूर्ण, विजयसार का जल, वायविडंग आदि। मधुमेह की शास्त्रों में मुख्य औषि वसन्तकुसुमाकर रस है।

मधुमेहान्तक रस-शिलाजतुसत्व प्रतोला, त्रिवंग-

नुस रोग सिकिट्सा

भस्म २।। तोला, लोह्भस्म हजारपुटी २।। तोला, स्वर्णभस्म ७ माशा, स्वर्णमाक्षिक भस्म ३ तोला, हल्दी ६ तोला, बहेडा गिरी ४ तोला, जामुन गुठली ४ तोला, गुडमार चूर्ण ४ तोला करेले का छिलका ताजा ४ तोला।

विधि—पहले काण्टिक द्रव्यों को घोट कर एक क्ष्य करतें, फिर सभी भरमें डालकर खूब मर्दन करें। फिर ४० तोला ताला करेला का स्वरस डालकर खूब घुटाई करें। गोली बनने योग्य होने पर ६० तोला जामलक स्वरस ताला डालकर खूब रगड़ा करें। गोली बनने योग्य हो जाने पर हरिद्रा ववाथ डालकर खूब घुटाई करें। अन्त में ४-४ रत्ती की गोलिं बनाकर खूब घुटाई करें। अन्त में ४-४ रत्ती की गोलिं बनाकर छाया में सुखा लें। प्रतिदिन प्रातः, सायं और रात्रि को सोते समय एक एक गोली करेला के पानी के साथ अथवा जामुन के रस या पानी के साथ, या आंवल के रस के साथ अथवा फीके गोदुग्ध के साथ सेवन करनी चाहिए। १२० दिन तक सेवन करने से स्थायी लाभ हो जाता है। पूर्णसफल है। सधुभेह नाजक सन्य सफल प्रयोग—

(१) मधुमेहारि नं.१-शृद्ध पारद १ तो, शुद्ध गंधक १ तीला, लोहभरम शतपुटी ६ माशा, अश्रक मस्म शतपुटी ६ माशा, नाग भस्म ४ माशा सुवर्णभस्म ४ माशा, मोतीपिट्टी ६ माशा, हीरक शस्म ४ माशा। भूणेयोग-४ तीला ६ माशा।

निर्माण-विधि—गंधक और पारंद की स्रतिक्ष्मण करुजली तैयार करें। फिर अन्य द्रव्यों को उसमें डालकर १२ घंटे तक गनैः गनैः गुष्क ही रगड़ाई करें। फिर १८-तीला ताजा भतावरी का स्वरस डालकर भावना देवें। गोलियां बनाने योग्य होजाने पर दो दो रत्ती की गोलियां बना कर्ष्टाया में सुखालें। १-१ गोली प्रातः सायं, और रात्रि को फीके गोड़ग्ध के साथ सेवन करे।

विशेष-निर्देश — इस , रस के सेवन काल में खटाई, मधुर पदार्थ तथा मोटापा बढ़ाने वाले पदार्थ सवैधा त्याज्य हैं। एक नास तक सेवन करने के पण्चात बालू वावल तथा मधुर फलों का प्रयोग सप्ताह में केवल दो बार कर सकते हैं। तीन मास तक सेवन करने के बाद विशेष रूप से चीनी सादि यित मधुर पदार्थ को त्यागकर सब कुछ था सकते हैं किन्तु सप्ताह में एक दिन का उप-बास करना नितान्त आवण्यक है किन्तु चार मास पर्यन्त सेवन करने से स्थाई लाभ होता हैं।

(२) मधुमेहारि नं २-वङ्गभस्म, कांतलोहमस्म. १-१ तो., पारव भम्म ६माशा,मोती पिष्टी, ६माणा, सुवर्ण भस्म ६ माशा, दालचीनी वृर्ण, छोटी इलायची वृर्ण, नागकेशर तीनों १-१ ताला। पूर्ण योग-७ तीला ६ माणा।

निर्माण विधि—सभी द्रग्यों को खरल में डालकर एक घण्टा तक सुखा ही रगडें। फिर १५ तोला घी कुर्वार का गूदा डालकर बढ़िया चुटाई करें। गोली बनने योग्य हो जाने पर १-१ माशा की गोलियां बना लें तथा सुखा कर रख लें।

सेवन विधि—१-१ गोली प्रातः सायं ताजा पानी से खावें। मोजन में फीका दूध और चावल के अतिरिक्त सभी विजित हैं एक सौ वीस दिन पर्यंत सेवन करने से असाध्य से भी असाध्य मधुमेह समूल नष्ट होता है। इसके अतिरिक्त गृहुमून गुक्र-शय स्वप्नदोप तथा प्रमेह भी वष्ट होजाता है।

(२) मधुमेहान्तक रस—घुद्ध पारद २ तीला, गुद्ध गन्धक ४ तीला, गतपुटी लोहभस्म, शतपुटी सभ्रक भस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक १-१ तो.। पूर्ण योग १० तो.।

निर्माण विधि—सर्वत्रथम पारद और गन्धक की उत्तम कज्जली बना लें, फिर अन्य इच्यों को भी मिला दें। धांगरा ताजा के बीस तोला स्वरंस की पहली भावना देवें। दूसरी भावना बीस तोले हुलहुल के ताजे स्वरंस की देवें। तीसरी भावना ताजा ब्राह्मी के स्वरंस की देकर एक गोला वना लें और उसकी धूप में धुखाकर सम्पृट में बन्द करके क्रमणः सात बार कंपरीटी करें। प्रत्येक के सूख जाने पर अगली कपरीटी की जाये। अन्त में २ सेर उपलों की आंच में पका तेवें। पूर्ण णीतल होने पर निकालें और पीराकर शोधी में रख लें। मात्रा ३ रत्ती की है, प्रातः तथा सायं एवं रात्रि को सोते समय पानी से खावें। यह रस चार मास में पूर्ण एवं स्यायी लाभ करता है। किन्तु इसके सेवन काल में समस्त परहेजों के साथ साथ दिन का सोना और रात्रि को जागना तथा श्रमण, नणे आदि सबंधा विजत है, अन्यथा लाभ नहीं होगा। व

(४) मधुमेह गजकेशरी—सुवर्ण भस्त ४ माशा, रजत भस्म ४ माशा, बद्ध भस्म ६ माशा, नाग भस्म ७ माशा, पारद भस्म = माशा, हिगुल भत्म ६ माशा। पूर्ण योग ३ तोले ३ माशा।

न्य रोवा सिंबिह्समा

निर्माण विधि—सभी द्रव्यों को खरल में डांलकर गोरी ट्रेंग्स्या ही मर्दन करके १२ तोले ताजा आंवला म मे १ माणा हल्दी मिलाकर खरल में पड़े द्रव्यों माथा मिश्रित कर खूब मर्दन करें। गोली बनाकर सुखाकर रख लें। गोली ३ रत्ती की होनी चाहिये। यह रस प्रातः सायं और राद्रि को १-१ गोली आंवले के ताजे रस २ तोला में १ चम्मच शहद मिलाकर उसके साथ सेवन करें। आंवले के रस के अभाव में आंवले का शीत क्याय लिया जा सकता है। उपद्रवीं से युक्त पुराने मधुमें इपर यह रस अधिक सफल है। चार मास तक सेवन करने से स्थायी लाभ हो जाता है।

(५) मधुमेह रिपु स्वर्ण भस्म, रजत भस्म, अभ्रक भस्म, पारद भस्म प्रत्येक २-२ माशा, कान्तलोह भस्म, ताम्र भस्म, मोती पिण्टी, नाग भस्म, शंख भस्म प्रत्येक ४-४ माशा, वंग भस्म, शुद्ध गन्धक ६-६ माशे। पूर्ण योग ३ तीले ४ माशे।

निर्माण विधि—सभी द्रव्यों को खरल के हवाले करके १३ तोले चित्रक का ताजा स्वरस अथवा २६ तोले चित्रक का ववाथ डालकर खूब दृढ़ मर्दन करें। अन्त में चार चार रत्ती की गोलियां बनालें। १-१ गोली प्रातः सायं फीके गोदुग्ध के साथ सेवन करने से चार मास में पैतृक मधुमेह स्थायी रूप से नष्ट होता है और इसके अतिरिक्त सभी प्रकार के उपद्रव युक्त मचुमेह, मधुमेह की पिडिकायें, बहुमूल, पाण्डु रोग, रक्त की कमी, क्षय, श्वास, कास, मोतियाबिन्दु, हाथ पैरों का दाह रोग तथा अन्य सभी प्रकार के प्रमेह शत प्रतिशत नष्ट हो जाते हैं, अचूक है। अति मैथुनजन्य अप सकता पर यह रस रामवाण है।

(६) मधुमेह संहारी—पारद, सुवर्ण एवं रजतभस्म, णतपुटी लीहभस्म, ताम्र भस्म रक्तवर्ण, नागभस्म रक्तवर्ण, वैक्रान्त भस्म, अभ्रक भस्म शतपुटी, शुद्ध मनःशिला, शुद्ध गन्धक प्रत्येक ३-३ ग्राम । पूर्ण योग—३० ग्रान ।

निर्माण विधि — प्रथम सभी द्रव्यों को खरल में डाल कर एकरूप कर लें। फिरड्योड़े अर्थात् " ५ ग्राम त्रिफला क्वाय की उत्तम भावना देकर १-१ ग्राम की गोलियां वनाकर छांया में सुद्याकर भाराव सम्पुट में बद्द करके " १ सेर उपलों की अग्नि देवें। स्त्रतः जीतल होने पर निकाल कर पुनः खरल में घोटें और फिर चन्दन का पानी

दुगुना डालकर खूब युटाई करके १-१ ग्रांम की गोलियां बनाकर छाया में सुखाकर गराब सम्पुट में बन्द करके ५ सेर उपलों की अग्नि देवें। अन्त में पुन: खरन में घोट-कर १५ ग्राम जिकला जल, १५ ग्राम खस का पानी, १५ ग्राम चन्दन का पानी मिलाकर घोटकर ३-३ रत्ती की गोलियां बनाकर सुखाकर रख लें।

सेवन विधि-१-१ गोली प्रातः सायं शुद्ध मधु के साथ मिलाकर खावें। उपद्रवों के साथ यदि रोग अधिक वढ़ा हुआ हो, तो १ गोली दोपहर बाद सेवन करें। शाम वाली गोली रात को मोते समय ही सेवन करें। चार मास पर्यन्त इस रस का सेवन करना श्रेयस्कर होता है। इक्ष-मेह, उदकमेह, शुक्रमेह, क्षयजन्य प्रमेह, भयद्धर भवास रोग, शिरोदाह, शुक्र की कमी, स्वप्नदोष, शारीरिक दुर्व-लता, बहुमूल, रालिमूत्र, अङ्गों में आई हुई अशक्तता, रकत की कमी, पाचन शक्ति का अभाव, पुराना कब्ज, पुरानी खांसी, अम्ल पित्त, रक्त पित्त, आधाशीशी का दर्द, नया मोतिया विन्दु, श्वेत प्रदर और दोनों ही प्रकार की ववासीर को निश्चय ही समूल नष्ट करता है। यदि मस्तिष्क का कार्य करने वाला व्यक्ति इसकी १ मात्रा चन्दन या खस के शर्वत के साथ लेवें, तो आठ घण्टे तक विमाग में तरोताजगी और दिल में हुए बना रहता है। परन्तु ऐसे लोगों को वीडी, सिगरेट आदि नहीं पीनी चाहिए अन्यथा लाभ न होगा।

(६) पारद भस्म निर्माण विधि - शुद्ध पारद और शुद्ध नीसादर दोनों को घोटकर इमक यन्त्र में उड़ायें। जब पारद का उड़ना ठहर जाने, उसकी खरल में डालकर उससे दुगुना शीतल दूध छालकर घोटें। जब पारद चांदी की भांति चमकने लगे, तो निकाल कर घो ले और गोली वना लें। फिर उस गोली को आधा सेर शुद्ध सैन्धव लवण में दवाकर सम्पृट क्र दें। यदि पारद १ तोला हो तो ५ सेर उपलों की बांच देवें। स्वांग शीतल होने पर गोली को निकाल कर पीसकर रख लें। अति प्रवेत स्निग्ध यह शस्म होती है। यदि पारद १ तोला से अधिक हो तो नमक १ सेर लगेगा और उपले १० सर लगेंगे।

- क़ि श्री वी॰ एस॰ प्रेमी एम.ए,एम एस. ए २/= तिव्विया कालेज, करीत वाग, नई दिल्ली-४०

Harie ***

हा शिवपूजन सिंह कुशवाह एम. ए., साहित्यालंकार, कानपुर।

पय्यि—(संस्कृत) मधुमेह, क्षौद्रमेह, (आंग्ल) हाय-वीटीज मेलिट्स (Diabetes Mellitus)।

सामान्य लक्षण-मूत्र का अधिक मात्रा में आना, मूत्र का गंदला आना!

वहुमूत्रता Polyuria)—सामान्यतः मनुष्य २४ घंटे में ४० औस मूत्र त्यागता है जिसमें २७ औस दिन में और १३ औस रात्रि में । यह औसत मान्ना है अतः इस प्राकृत मान्ना से मूत्र का अधिक त्याग वहुमूत्रता मानी जायेगी। यह अवस्या कई कारणों से हो सकती है। वात संस्थान की विकृति, घबड़ाहट, शीताधिवय. अधिक जल का सेवन गर्वत चाय, काफी, मद्य आदि मूत्रल पेयों का सेवन तथा पोषण ग्रंथि का विकार (Diabetes Insipidus), मधुमेह, जीणं-वृक्ष संन्यास, सूत्र शकरा जैसे-इक्षुमेह शीतमेह आदि में भी मुत्राधिवय हो जाता है।

इस रोग में मूत्र का स्वाद मीठा होता है। इस रोग में मूत्र इतना मीठा होता है कि उसे कुत्ते चाटने लगते हैं। इस रोग में मूत्र पर चीटिया लगने लगती हैं।

् अन्य लक्षण — अधिक भूख, घोर तृष्णा, दांतों पर मैल जमना, रोगी का गला और तालु सदा सूखे रहते हैं। इसकाः कारण अधिक प्यास है, केश अधिक वढ़ना, विवन्ध रहना. हांपना, शिर में भारीपन, जीभ रूखी एवं लाल, शरीर पहले निकना फिर रूक्ष रहना, निवंलता बढ़ना, घृत आदि स्नेह से रोग वढ़ना।

तीवावस्था में — मूच्छी, संन्यास, तन्द्रा, मृत्यु । उपद्रव — अतिसार, शोध, नपुंसकता, वृद्धणोध, राज-यक्ष्मा, संन्यास, मृत्यु ।

कुछ डाक्टरों का विचार है कि यह रोग मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दुओं को अधिक -होता है क्यों कि हिन्दू लोग ज्यादातर स्टाचीं भोजन ही करते हैं। यहूदी लोगों को भी यह रोग अधिक होता है, क्यों कि धनी होने के कारण जनका भोजन भी मदीप होता है। यह रोग प्रायः अधेड़

उम्र के पश्चात् होता है। बचापन में बहुत कम होता है। भारतवर्ष में नवयुवकों को भी यह रोग बहुत कम होता है। परन्तु यूरोप आदि में अधिक लोगों को होता है। यह तीन मधुमेह होता । पुरुषों की अपेक्षा यह रोग स्तियों को कम होता है। परन्तु गर्भावस्था में स्त्रियों कों प्राय: मधुमेह हो जाता है। मधुमेह के रोगी के सिर में दर्द होता है और शरीर में सुस्ती रहती है। किसी २ के शरीर में कभी यहां कभी वहां दर्द होता रहता है।

मधुमेह का रोगी मधुमेह से नहीं मरता। ऐसे रोगियों की मृत्यु प्रायः प्रमेह-पीड़िका (कारवकल), क्षयरोग, दस्त की वीमारी के कारण होती है। मधुमेह में मोतियाविद प्रायः हो सकता है। इस रोग में कान की झिल्ली प्रायः सुख जाती है जिसके कारण वहरापन हो जाता है तथा दांतों में ददें हुआ करता है।

आवर्वे दिक चिकित्सा

9. सर्वोत्तम औषधि शिलाजतु (शिलाजीत) है।
छुष्णवर्णं, भारी, स्निग्ध, रेती आदि रहित गोमूत्र गधवाला
हो वह उत्तम है। इस शिलाजीत को शाल्सारादिगण से
भावना देकर वमनादि से शरीर का शोधन करके प्रात:काल पीवें। [सुश्रुत संहिता, चिकित्सा स्थानम् अ० ९३
श्लोक १० से ९६ तक]

२. मधुसूदन वटी ३ ग्रा., ग्रु. शिलाजीत २ ग्रा., यह १ मात्रा है। नीम छाल तथा गुड़मारबूटी का क्वाय ८० ग्राम से मटबाह्न में लें।

३: चन्द्रप्रभा वटी, हल्दी का चूर्ण, आंवले का रस व शहद से खाने से मूत्र में चीनी जाना वन्द हो जाती है।

४. गुड़मार नामक वूटी ३ माशे की मात्रा में खाने से मूत्र में शक्कर जाना बन्द हो जाती है।

४. त्यग्रोधादि चूर्ण मधुमेह की उत्तम क्षीपि है। ६. बंग भस्म १ रत्ती, शिलाजीत ३ रत्ती, स्वणमाक्षिक

An aldi falazett

भस्म १ रत्ती, मोती की सीप की भस्म २ रत्ती, जामुन की गुठली का चूर्ण ३ माशे इन सबकी शहद के साथ चाटने से लाभ होता है।

, ७. ६ साशे जामुन की गुठली का चूर्ण शहद के साथ चाटने से मूत्र में चीनी जाना बन्द हो जाता है।

द. हेमनाथ रस (सुवर्ण युक्त) (वैद्यनाथ, डाबर आदि) बहुमूत्र में शीघ्र लाभ करता है।

ह. मधुमहारि (वैद्यनाष) गुड़मार वृटी के साथ अन्य गुणकारी औषिवयों तथा स्वर्ण भस्म मिलाकर करेला के स्वरस में तैयार किया जाता है। यथानाम तथा गुण भौपिव है। मधुमेहारि २ ग्रेन + न्यग्रोधादि चूर्ण दग्रा. यह १ मात्रा है। विजयसार के क्वाथ के साथ सायं ५ वजे लें। (न्यग्रो-धादि चूर्ण बनाने की विधि आगे पृष्ठ १७५ पर देखें)

इस चूण की मात्रा ६ माशे की है। शहद के साथ चाटकर त्रिफला का क्वाय पीवें। ३३०-४० दिन सेवन करने से बीसों प्रकार के प्रमेह, प्रमेह पिड़िकायें नष्ट होती हैं।

१०. वसन्त कुसुमाकररस १ माणे सत गिलोय १ माणे गुड़मार चूण २ माणे, इनको मिलाकर म माशे कर लें। बिल्वपत्र स्वरस २तो. १ मात्रा भिला प्रातःसायं सेवन करें।

११. स्वर्णं अस्म १ तो., वंगभस्म ३ तो., चांदी भस्म २ तो., णीणा भस्म ३ तो., स्रो की अस्म ४ तो., मोती भस्म ४ तो., अञ्चल भस्म ४ तो., कांतलोह भस्म ३ तो., अम्बर भस्म १ तो। सभी औषधियों को लेकर गौदुग्ध,गर्ने का रस, अदूसे का रस, लाक्षा रस, सुगन्धवाला का ववाय केले की जड़ का रस, प्वेत कमल के पुष्प का रस, मालती पुष्प स्वरस इन दसों औषधियों की ७-७ भावनायें कस्तूरी ३ माणा डालकर मिला और सुखाकर टिकिया वनालें। मधु व घृतं के साथ १ रत्ती से २ रत्ती तक सेदन करें। यह बहुमूत्र व मधुमेह की रामवाण औषधि है।

१२. मकरव्य १रती तथा काली जामुन के बीज का चूर्ण १माशे शहद के साथ सेवन करने से मूत्र में चीनी जाना कम होता है। काले जामुन का फल इस योग में लाभप्रद है।

१३. तिल १ या २ तोले वरावर गुड़ मिलकर खाने से मूत्रमेह में लाभ होता है। तिलों में मूत्र कम करने की अद्भुत शक्ति है।

'१४. छुहारे सूखे अच्छे लेकर उनके दुकड़े करके गुठली निकाल दें। ३-४ दुकड़े लेकर मुख में चूसने का अभ्यास रक्षें। दिन रात में ५-१० बार चुसते रहिए। १४. हरी गिलोय का रस ४० ग्रा शहद ६ ग्रा. पापा-णभेद ६ ग्रा. तीनों को मिला धीने से मबुमेह दूर होता है।

१६. जामुन की गुठली, १२ ग्रा., अहिकेन १ ग्रा., दोनों को जल के साथ घोटकर ३२ गोलियां बनालें और छाया में सुखाकर शीशी में भर लें। -२ गोली प्रातः साम जल के साथ सेवन करें।

(७. गुड़मार शीतलचीनी (कवावचीनी) असगंध और शंखाहुली प्रत्येक समभाग लेकर कूट पीसकर चूर्ण बनातें। प्रातः सायं १-३ ग्रा. ताजे जल के साथ लें।

१८. गुड़मार १ तो., जामुन बीज १ तो., कालीमिर्च ३ माशे, चूर्ण कर ३ माशे जल के साथ सेवन करें।

१६. सेमर मूसली चूर्ण ६ माशे, मधु ६ मांगे, चन्द्र-प्रभावटी (भैषज्यरत्नावली) १ माशे प्रातः सायं लें।

२०. पांच वेल । विल्ब) के पत्तों को मुख में चवाकर । १ मिनट दिन में दो बार चूसें। गूलरे की तरकारी खायें।

२१. बिंदारीकन्द का चूर्ण २ ग्रा., शतावरी चूर्ण १ ग्रा., केला पका एक, इन्हें खाकर ऊपर से दूध पी लें। दो दिन में बहुमूत्र ठीक हो जायेगा।

२२. ताजा करेले का रस निकालकर प्रया, प्रति-दिन पीने से मधुमेह दूर होता है।

े २३. रात को २५ गा. चने दूध में भिगो दें। प्रातः उठकर चवा-बचाकर (देर लगाकर) खायें।

देश कैथ के फल के गूदे को छायां में सुखा लो और कूटकर बारीक चूर्ण बना लो। इस चूर्ण को ६ माशे तक नित्य प्रातः सायं प्रयोग करें।

२४. मेंथी के दाने ५० ग्रा. लेकर रात्रि में चीनी मिट्टी फे पात्र में पानी डालकर रख दें और प्रात: उस मेंथी को हाथ से मसलकर उसका पानी पीनें।

२६. बहुमूत में मेंथीके पत्तों का रस पपाव तक पीवें। पेटेण्ट आयुर्वेदिक इञ्जेक्शन—

१. शिलाजीत (बुन्देलखंड आयुर्वेदिक, झांसी, सिद्धि फार्मेसी, लिलतपुर। जी. ए. मिश्रा, झांसी)-१ से २ एम॰ एन॰ मांसपेशी।

२. प्रमेह केशरी (जी ए ए मिश्रा, झांसी)-मांसपेशी में लगावें।

३. गुड़मार (प्रताप फार्मा, देहरादून) — २ मि॰ लि॰ दिन में एक या दो वार मासपेणी में लगावें।

नुवा रोगा चितिःसा

मधुमेह के लिए होम्योवैधिक चिहित्सा—

सिजिवियम जम्बोलिन Q, २ × — यह मधुमेह की सर्वोत्तम औषधि है। यह जामून से बनती है।

अन्य औषियां-क्रियोजूट ३०, ऐसिड ग्सेटिकम ३०, टेरिविन्धना ३, हेलोनियस Q, सिकेलि ३ , सेफलेण्ड्रा इंडिका Q, आर्निका ३०, कैन्थरिस ३, एनफाल्फा Q, ऐसिडफास २×, ३, इन्नेशिया ३, लक्षणानुसार दें।

बायोकैषिन चिक्तिला-

कैलीम्यूर ३×, कल्केरिया फास ३×, फेरमफास ६ ×, नेट्मसल्फ २००, नेट्रमफास लक्षणानुसार दें। मधुमेह में ग्रयोग होने वासी पटेण्ट गोलिशं—

१. टीलवुटामिण्डन (इण्डन) टेबलेट—४-८ टेबलेट प्रतिदिन और बाद में १ टिकिया प्रतिदिन।

२. टौलवुटामाइड (बोम्बे टेबलेट)--पहले ४ से द् गोलियां प्रतिदिन दें, बाद में २-२ गोली दें।

३. टोलरिविजन (हिमालय) — २-२ गोली दिन में १ बार दें।

४. रिविजन (हिमालय) २-२ गोली दिन में ३ बार।

५. इनवेनील (होचस्ट) — पहले दिन-५ म, दूसरे दिन ३-४, तृतीय दिन २-३, चतुर्थ दिन तथा बाद में १ टिकिया प्रात: सार्य भोजन के बाद थोड़े पानी या दुग्छ के साथ।

,६. रेस्टिनान (होचस्ट) - २-२ टिकिया दिन में ३ वार

७. डायविनस (ड्यूनेवस फाइजर)-१०० मिग्रा. को ४-६ गोलियां ्र ३ दिन दें। जलपान के बाद १ गोली दें। े द. यूनिटोलविड (यूनीकैंम)— मुखमार्ग से व्यवहार करने के लिए ४ गा. की टिकिया।

्. यूनी-माइक्लीन-विना चीनी मधुमेह के रोगियों में मीठा स्वाद लाने के लिए (सैक्लेमैंट सोडियम - सेक्रीन)।

१०, टील्बुटामाइड (झंडू) १/२ ग्रा., टील्बुटामाइड की गोली। मुख मार्ग से दें।

११. त्रिवंगशिला (झंडु)-मुखमार्ग से दें।

१२. डाइवेसुलीन (कलकता कैंगीकल)—प्रयम दिन ५ से = गोली, दूसरे दिन ३-४, तृतीय दिन २ और दाद में १/२ से १ गोली दें।

१३. सैक्लेसैक (कलकत्ता केमिकलं)-विधिपतानुसार।
१४. अल्कामाइड (अलेम्बिक)-विधिपतानुसार दें।
१४. अल्कामाइड वी (अलेम्बिक)

१६. डायोरिन (ओपिल फार्मा) विधिपत्रानुसार १७. डायविटामाइड (स्टैम्पिड कं.)—विधिपत्रानुसार १८. डी: डाइवेटिल (इंडियन ड्रग)-विधिपत्रानुसार दें १६ एमुराल (बलेम्बिक)-भध्य मेह में खाद्यपेय बीठा

करने के लिए है।

२०. डायविमाइड (इंडियन हेल्य कलकत्ता)—३-४ टिकिया प्रतिदिन दें।

२१. डाइविनोल (वंगाल केमिकल)— :- टिकिया प्रतिदिन सेवन करें।

२२. पान मिलिटस ग्लोब्यूल्स (कोण्डीनेण्टल) — प्रारम्भ में ४ दें, बाद में --२ भोजन के बाद दें।

२३ आरटोसिन (नोल)-१ से २ गोली बूत्रगत शकरा के अनुसार दें।

२४. नैडिसान (नौल)— १-२ गोली रोगानुसार हैं। २४. फिनोविनील (बंगाल कैमिकल)— १-२ गोली दें। हानिरहित टेबलेट हैं।

२६. डी. वी आई. (यू. एस. वी.-५० से ९०० मि.-ग्रा. नित्य देते हैं।

२७. पैक्किपैटिन (ऐंग्लोफोन्च)-द-१२ गोली नित्य दें २८. इम्प्रूमिल ई्व(थेराम्युटिक)--विधिपतानुसार दें। २६. एग्नेक्सा (डेज)-चीनी के स्थान पर २ टिकियां दें

यष्ट्रमेह थें प्रयोग होने वाने एलोपैधिक-पेटेण्ड इ जेएसन बूट्स कम्पनी —

१. इन्सुलीन (साधारण)—४०व ८० यूनिट प्रति सी.सी. की गक्तियों में यह ५ व ९० सी.सी. की वायलों में मिलता है। इसका प्रभाव शीप्र होता है।

२. इन्सुलीन, ग्लोविनविङ्क — यह ४० व ६० यूनिट प्रति सी. सी. की शक्तियों में और ५ सी.सी के वायलों में मिलता है। इसका प्रभाव धीरे २ होता है।

३. इन्सुलीन, प्रोटामिनज़िक-४० यूनिट प्रति सी.सी की शक्ति में ५ व १० सी.सी. वायत में ।

४. इन्सुलीन जिंक सस्पेशन-४० यूनिट प्रति सी.सी. की शक्ति में यह १० शीशी के वायल में निलता है।

४. बाइमोफिन या एन. पी. एच. इन्सुलीन—४० यूनिट प्रति सी.सी की शक्ति में ९० सी. सी. के वायल में मिलता है।

मधुमेह एवं शुक्त-दोर्बल्य पर अमोध ... इप्रहारिकिशिक्तिश्री कि. बुजीबहारी लॉल मिश्र

यह लेख दो वर्ष पूर्व धन्वन्तिर के जरा व्याधि चिकित्सांक में प्रकाशित हुआ था। इसको पढ़ने के पश्चात अनेक पाठकों के पत्र हमें इस रस को बनाकर भेजने के आगृह सहित प्राप्त हुए थे जिनसे प्रभावित एवं उत्साहित होकर हमने इसे बनाना प्रारम्भ किया। यद्यपि इसमें उल्लिखित सम्पूर्ण गुण तो इस रस में देखने में नहीं आये लेकिन आजकल के इस युग में यह सर्वाधिक गुणप्रद योग है। इसे प्रयोग करने के पश्चात अनेकों प्रशासापत भी हमें प्राप्त हुए हैं। इस योग की निर्माण विधि में अप्राप्य द्रव्य अवश्य छोड़ दिये गये यथा पारद में उपर्वुध (चित्रक) के तेल की भावना लगाना, सम्पूर्ण योग में गोटुग्ध (शंकायुक्त होने के कारण) तथा गोधापटी एवं मुर्गी के अण्डा की भावना देना। इसके अतिरिक्त इस रस की सेवन विधि में गोली को कपूर मिलाकर सेवन करने का उल्लेख है। इसके स्थान पर अन्त में हमने सम्पूर्ण योग में ही कपूर मिला दिया जिससे प्रयोगकर्ता को कठिनाई न रहे तथा सुन्दरता की हिष्ट से गोलियों पर स्वर्ण वंग का आवरण चढ़ा दिया है। साथ ही स्वर्णवंग सभी प्रकार के धातु रोगों की सुप्रसिद्ध उत्तम औषधि भी है। इस परिवर्तन से इस रस की उपयोगिता और भी बढ़ गई है।

हमने यह अनुभव किया है कि यह प्रमदेशांकुश रस खुश्की अधिक करता है तथा उसका निवा-रण इसके सेवन काल में दुग्ध का अधिक प्रयोग करके किया जा सकता है। इस रस की सेवन विधि में लिखा है कि इसके सेवन काल में यदि प्रयोगकर्ता के पास यदि स्त्री न हो तो उसका वीर्य नेश्रों से निकलता है तथा उसे अन्या बना देता है। यह वर्णन हमें अतिश्योवितपूर्ण प्रतीत होता है। हो सकता है कि इसके सेवनकाल में प्रयोगकर्ता उत्तेजना अधिक होने पर उसे सहन न कर पाये और अगम्या से ही संभोग कर बैठे। यह भी तो समाज में प्रचलित उक्तियों के अनुसार एक प्रकार का अन्धापन हो है। तथा इसी कारण से इसका सेवन स्त्री के पास न होने पर विजत किया गया हो। मधुमें हरोगियों को इस रस के साथ न्यग्रोधादि चूर्ण का भी सेवन सवश्य कराना चाहिए जिससे उसे उपयुक्त जाभ मिल सके।

अाशा है कि इस लेख से पाठक लामान्वित होंगे इसी आशा के साथ धन्वन्ति में इसे पुनः प्रकाशित किया जा रहा है। जो सज्जन इस "प्रमदेभांकुश रस" को मंगाना चाहें वह 'निर्मल आयुर्वेद संस्थान, फूज्जा नगर, मथुरा-४" को आदेश पत्र भेजकर मंगा सकते हैं। —सम्पादक-'धन्वन्तिर'

शुद्ध या हिंगुनोत्य पारे को एक महीने तक धतूरे के तेल में फिर १० दिन तक उपवुंध (चित्रक) के तेल में इस प्रकार पाक करें कि २४ घण्टे में कुल ४ तोले ही तेल जले। इस पारद का आठवां भाग कटकवेधी सीने के पत्त तथा पारद के समान मात्रा में शुद्ध गन्धक डालकर इतना घोटें कि अच्छी कज्जली वन जावे। इस कज्जली को सूखी ७ कपरीटी की हुई शोशी में रख वालुका यन्त्र में

more many and the same and the same

'9२ प्रहर की आंच हैं। इतनी अग्नि कि गन्यक उड़ जावे तथा शीशी की गदेन पर सिन्दूर कल्प एकतित हो जावे। स्वांग शीतल होने पर निकाल लें।

इस सिन्दूर को तीन दिन तक पोस्त के छिलके के ववाथ में मद्रेन करें। फिर तीन दिन विजया के क्वाथ में, फिर एक दिन जायफल के तेल में मद्रेन करें। फिर ताल मखाने के बीजों के क्वाथ में एक दिन मद्रेन करके विदारी-कृन्द के रस में घोट गोला वनालें।

इस गोले को भूमि में दो अंगुल मिट्टी से दबा दें। इसके ऊपर दो सरने कण्डे रख आग दे दें जिससे उक्त गोले का मृदु स्वेदन हो जाने। जन सन ठण्डा हो जाय तद उस गोले को निकाल पाँछ कर इसमे दो भाग अञ्चक · भरम, वैकान्त भरम, चलेली के फूल और लवंग डालकर घोटें। नाग भस्म ३ भाग रजत भस्म, कान्त लीह भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, शुद्ध वत्सनाभ, केशर, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत तथा वंग भस्म २-२ भाग, अफीम ्और स्वर्ण भस्म १/२-१/२ भाग डालकर मदैन करें। फिर तीन् घण्टे,तक शंख पृष्पी के फूलों के स्वरस में घोटों। इस प्रकार मर्दित रस में ३-३ भावनायें विदारी कन्द, जिफला, वासा, पान, बला (खरेंटी), सैमर का मूसला, कींच की जड़, गींदुग्ध, गीधापदी (गीह का पैर), केले की जड़, सोया, माषपणीं, मुद्गपणीं, अजवायन, गोखरू, मुण्डो, यंब्टी मधु (मुनेठी), हस्तिकणं पलाश (न मिलने पर साधारण पलाण) के स्वरस, लज्जालु एवं मुर्गी के अण्डा की ३-३ भावना दें। फिर उसका गोला बना लें। इस गोले को कपड़े में वांध कर दोलायन्त्र जिसमें खसखस या पोस्त के छिलके का काढ़ा भरा हो, लटकादें। दिन भर स्वेदन करें, फिर समुद्र सोख के तेल की दो भावनायें हैं, फिर धतुरे के बीज के तेल की, विजया के बीजों और जायफल के तेल की २-२ भावना देकर गोला बना लें। इसे कपड़े में वांध भूधर यन्त्र मे रख पूर्ववत् २ कण्डों की आग देकर पकार्ये। स्वांग शीतल होने पर निकाल लें। इस गोले को अब खस, अगर और कस्तुरी के जल केवड़ा, हारसिंगार और कमंल के फूलों के रस की १-१ भावना दें और घोट सुखाकर रख ले।

ं इस रस की दो वल्लकी (६ रसी) माता है। इसे १॥ रसीं कपूर, लींग, मिश्री और मधु के साथ सेवन करें। ऊपर से तूध पियें। खट्टी चीजेंन खावें।

- यह प्रमदेशांकुश रस त्रिदोषनाशक है। यह स्त्रियों के गर्व को चूर कर देता है, वणीकरण करता और बहुत अधिक स्तम्भन करता है। यह पुरुषों के मेढ़ को बराबर उत्थित रखता है। वह शीघ्र गिरता नहीं तथा स्त्रियों को और समीप ला देता है। यदि किसी नवोड़ा से एक गार सम्भोग हो जाये तो वह निश्चला आजन्म दासी हो हो जाती है। अनेक प्रकार से सम्भोग करने पर भी तेज और वल बिल्कुल नष्ट नहीं होता। यदि इसका सेवन कर्ता स्त्री सम्भोग न करे तो उसका वीर्य नेत्रों से निकलता और उसे अन्धा कर देता है (पर अभी तक इसका दुष्त्रभाव किसी को हिष्टगोचर नहीं हुआ)। इस रस को सेवन करने वाले व्यक्ति के अंगों में शिथिलता नहीं आती। कमर में हटने जैसी पीड़ा नहीं होती एवं बुढ़ापे में कमर नहीं झकती। उसकी कान्ति स्वर्ण जैसी आभा वाली हो जाती है। उसके पन प्रकार के प्रमेहों का नाण हो जाता है। नष्ट वीर्य पुचप भी इसके सेवन से स्त्री सम्भोग में समर्थ होता है। नपुंसक भी थोड़े के समान मैथुन कमं में समर्थ हो जाता है।

यदि इस रस को कोई स्त्री ले तो वह कुमारी तुल्य शरीर वाली होती है, उसे एक जवान व्यक्ति भी पूर्ण तृष्ति देने में समर्थं नहीं होता। इसके सेवन से महिलाओं के गर्भाशय के वात कफजन्य रोग दूर हो जाते हैं। उपर्बुध चित्रक नहीं मल्लातक है—

उपर्वु ध शब्द का अर्थ टीकाकार ने चित्रक किया है और पारद को दस दिन तक उक्त तेल मे पकाने का विधान किया है (दशाऽहानि तैले तथोपर्वु धस्य)। किन्तु चित्रक को अन्ति पर्यायवाची मात्र होने से उपर्वु ध का अर्थ कर देना दो हिट्यों से उचित नहीं प्रतीत होता। एक तो चित्रक में बीजाभाव होने से तेल ही नहीं निकल्ता। चित्रक मूल क्वाथ से यदि तेल बना भी लिया जाय तो चित्रक को वाजीकरण अपिधियों में गणना नहीं है। संस्कारित पारद को पुनः चित्रक तैल से संस्कार की भी अन्वरयकता नहीं। इसके विपरीत भल्लातक को जिसका एक नाम अन्तिका भी है। उपर्वु ध (अन्ति) का अर्थ माना जाय तो समस्या का समाधान हो जाता है, व्योंकि भल्लातक में पर्याप्त तैल निकलता है तथा अत्यन्त णुक्रवर्धक रसायन है। वृन्द का कथन है—

तैलं भल्लातकानान्तु पिवेदुमासं यथावलम् । सर्वोपद्रवनिर्मुक्तो जीवेद्वपंशतं हृद्वः ॥

अर्थात् कोई व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुरूप यदि भल्लातक तैल का एक मास सेवन करे तो वह सम्पूर्ण व्याधियों से मुक्त हो, हड़ एवं शतं जीवी होता है। बाजी-करणाधिकार में शोदल की जिक्त प्रसिद्ध ही है—

भरलातकैश्च चतुर्भिश्च गोदुग्धस्याढकं श्रुतम्। पीतं करोति वृपतां सुजीगुस्यापि देहिनः॥

an alor levery

,महर्षि चरक के मतानुसार भरकातक कफज, शुक्रदोप को नष्ट करता है। शुक्रल होने से ही भरकातक मेधा-युष्यवर्धक भी कहा गया है। अतः पारद को चित्रक में नहीं भरकातक तृज में पकाने से उसमें भरकातक के गुणों का समावेश होता है। गोधांत्रि गोटुग्ध नहीं मूसली है—

इसी प्रकार गोठांऽग्रि शब्द का अयं टीकाकार ने गोढुग्ध किस बाधार पर किया है, यह कुछ समझ में नहीं आता है। दैसे सस्कृत में गोधा नाम गोह (एक नेवले की बाकृति का जीव विशेष) का है और अंध्रि का शाब्दिंक अर्थ पैर है। इसी आधार पर कुछ वैद्यो का मत है कि इसमें गोह का पैर डालना चाहिए जो कि उपयुक्त, नहीं है। वास्तव में गोधापदी (गोह के पैर की बाकृति की) ऐक जड़ी विशेष होती है जिसे सस्कृत मे मूसली पर्याय से भी जाना जाता है। राजनिष्ठ ने मूसली के निम्न पर्यायवाची नामो का उल्लेख किया है—

मूसली तालमूली च सुवहा ताल पत्रिका।
गोधापदी हेनपुष्पी भूताली दीर्घकन्द्रिका।।
अतः संस्कृत में गोधांत्रि और गोधापदी समानार्थक
शब्द है। गोधापदी मूसली को कहते हैं जोिक अत्यन्त
धातुवर्धक, 'वृष्य एवं रतायन मानी गई है। श्याम और
धनेत भेद से वह दो प्रकार की होती है। श्यामा मूसली
को रसायनी कहा गया है। वृष्य निष्य रत्नाकर में उसके
गुणों का निर्देश निष्म हप से किया गया है—

मूसली महुरा वृष्या धातुवृद्धिकरी गुरु: ।
तिवता पुष्टिवलकरी पिच्छिलाना श्लेष्मला मता ।।
रसायनी शीतला च पित्त दाहहरी मता ।
कृष्णाधिक गुणा प्रोक्ता श्वेता चाल्पगुणा मता ।।
इसके अनुसार श्यामा मूसली को रसायन एवं वाजीकरण प्रयोग में लेना चाहिए । यहाँ 'गोधांध्रि' से तात्पर्यं
। श्यामा मूसली से है, गोदुर्ग्य से नहीं ।

ं लज्जालु एवं मुर्गी के वण्डे की शावना गलत है-

इस रस के मूल संस्कृत पाठ में लज्जालु एवं मुर्गी
' के अण्डे की भावना का दर्णन नहीं है किन्तु हिन्दी टीका में
' उपर्युवत पदार्थों की भावना का निर्देश गलत हैं।

र प्रमदेभांकुश रस और मधुमेह—

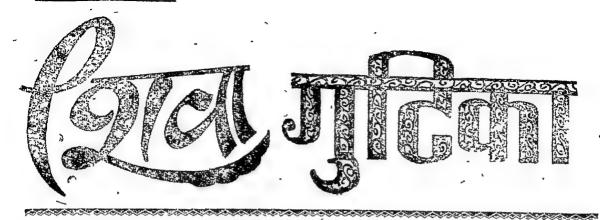
यह निविनाद सिद्ध है कि किसी प्रकार से वीयंक्षय

हो जाना ही सभी प्रकार के प्रमेहों का मूलभूत कारण है और उनका समय पर यथे क उपचार न करना उन्हें मधुमेह के रूप में परिणत करना है। अतः वीयं नर्गक बौपधियां चाहे वह का को पिधि हों या रसा दिस अवश्य लेगी
चाहिये। बाधु निक मतानुसार इन्स् लिन की कमी होने पर
यह रोग होना है अतः इन्स् लिन का सूची वेध इसमें दिया
जाता है जिससे रोग समूल नष्ट तो नहीं होता केवल
कित्वत काल के लिये दवा रहता है। हमारे आयुर्वेद में
भी चरका चायं ने वीयं अय होने पर नकमद मृगमदादि का
सेवन कराने का विधान किया है। इससे चमत्कृत लाम
भी होता है। इसी एिट कोण से रस चिकित्सकों ने शिव
वीयं पारद की भूरि भूरि प्रशंसा की है। सुसंस्कृत पारद
के सेवन से मनुष्य रोगमुक्त हो सकता है, भोगी हो
सकता है और इस असार-संसार से मुक्त भी हो सकता है।

मधुमेही के लिये प्रमदेशांकुश का अनुपान—यद्यपि
यह रस वाजीकरण अधिकार का है तथापि न्यग्रोधादि
चूर्ण के साथ इस रस का सेवन कराने से मूल शकरा एवं
रक्तगत शकरा दोनों में यथेण्ठ लाभ होता देखा गया है।
इस रस की शास्त्रीय मात्रा ६ रसी की लिखी है किन्तु
मधुमेही को ३ रसी प्रातः, ३ रसी सायं, ६ ग्राम न्यग्रोधादि चूर्ण के साथ गोहुन्ध से सेवन करने से अच्छा लाभ
होता है। शारीरिक हण्टि से स्वस्थ बलीव पुरुषों को
शीतकाल में यह रस ६ रसी तक भी दिया गया है और
आणातीत लाभ हुआ है।

न्यग्रोधादि चूणं के घटक—वड़, गूलर, पीपल की छाल, स्योनाक, अमलतास, विजयसार, आम, कैथ, जामुन, चिरोंजी, अर्जुन, धव, मेढ़ासिगी, दन्ती, चीता, अरहर, करंज, जिफला, इन्द्रजव और शुद्ध भिलावा, ये सब समान भाग लेकर वस्त्रपूत चुणं बनावें। तीन तीन माशा प्रातः सायं लेकर ऊपर से त्रिफला का क्वाथ पीने से अंकेले यह घृणं ही सभी प्रकार के प्रमेह, प्रमेह पिक्किं, भूतकुन्छ बादि रोग अच्छा कर मूत्र शुद्ध लाता है। प्रमदेगांकुश के मिल जाने से इसमें अचिन्त्य शवित का प्रादुर्भाव हो जाता है।

—कवि श्री व्रजविहारी मिश्र वैद्य एम.ए. (द्वय) आयु.रत्न मन्त्री-प्रादेशिक आयुर्वेद सम्मेलन, उ० प्र० पो० विन्दकी (फतेहपुर) उ.प्र.



शिवायुटिकेति रसायन युक्त चिरिशेन गणपतये शिव-क्रदनविनिगंता यात्मान्नाम्ना तस्मिन्छिया गुटिका ।

- चकदत्त रसावनाधिकार १६०

गणेशजी के मधुमेह रोग नाशायं शिवजी द्वारा आदि-ग्कृत शिवागुटिका एक शिखाजीत प्रधान योग है जिसका हम विगत ६ वर्षों से मधुमेह रोगियों पर सफलतापूर्वक प्रयोग कर रहे हैं। निर्माण-विधि सहित प्रस्तुत है—

सन्दर्भ ग्रन्थ—चक्रदत्त रसायनाधिकार १६७-१७० घटक—गुद्ध भिलाजीत (सूर्यतापा या अग्नितापी ६४० ग्राम ।

भावना द्रव्य-शिफला, दशमूल, गुडूची, बला, पटो-लपञ्चाग, मध्यण्टि, गोमूत्र और गोदुग्ध-

वताथ द्रव्य—काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा विदारीकन्द, क्षीरिवदारी, मतावरी, द्राक्षा, ऋदि-वृद्धि, ऋपभक, जटांमासी, मुण्डी, सफेद जीरा, स्याहजीरा, ज्ञाल-पर्णी, पृश्तपर्णी, रास्ना, पृष्करमूल, चितक, दन्ती, गज-पिप्पली, इन्द्र जी, चन्य, नागरमोथा कुटकी काकड़ासिंगी पाठा २६ द्रव्य ४०-४० ग्राम २५ ×४० — कुल १०१२० ग्राम।

मिश्रणायं द्रव्य—सौठ, पिप्पली, कालीमिर्च, काफड़ा-सिगी, बावला ५ द्रव्यों का चुणं ६०-६० ग्राम, विदारी कन्द ६० ग्रा०, तालीसपत्र चुणं १६० ग्रा०, मिश्री चूणं ६४० ग्रा०, घी १६० ग्रा०, शहद ३२० ग्रा०, तिलतं ल ६० मि. लि., वंशलोचन, दालचीनी नागकेशर, तेजपात, छोटी इलायची प्रत्येक २०-२० ग्राम।

निर्माण प्रक्रिया—शिवागृष्टिका का मूल उपादन सुरं-ताफी शिलाजीत है अतः इसकी शुद्धा पर योग की गुण-कारिता आधारित है अतः शिलाजीत का शोधन स्वयं को ही शास्त्रीय विधान से करना चाहिए। एतदथं यहां शिला-जीत शोधन विधि प्रस्तुत है—सूर्यंतापी शिलाजीत ग्रीष्म श्रम्तु में सुविधाजनक निर्माणीय है अतः इस प्रयोग को ग्रीष्मश्रम्तु में वनाने का विधान है पर आवश्यकतानुसार् किसी भी श्रम्तु में सूर्यंतापी व अग्नितापी शिलाजीत से वनाया जा सकता है। हम्ने दोनों ही प्रकार शोधन कर निर्माण किया है—

सूर्यंतापी शिलाजीत —शिलाजीत के १ किलो पत्थर का जोकुट चूरा करावें। १०० ग्राम विफला को ४० लिटर पानी में क्वाय बनावें तथा चतुर्यांण १० लि. पानी वच जाने पर क्वाय को छानकर उसमें १ किलो शिलाजीत पत्थर का जौकुट चूरा मिलाकर २४ घंटे तक किंगो वें। फिर चूल्हे पर चढ़ा कर २-३ उफान आने तक उवालें तथा अंच्छी तरह घोलकर चूल्हे से नीचे उतार कर रखतें। श्रांतल होने पर जल नितर जाय तब ऊपर से साफ नितरे हुए शिलाजीत जल को छान लें तथा कड़ाही या कलईदार टोपिया में डालकर ऊपर से पतले वस्त्र से वांधकर रोज सूर्यं को तेज धूप में रखे तथा दूसरे दिन सुबह दूध की तरह उपर आये हुए शिलाजीत को कलछी से अलग कः अलग वर्तन में सुखा लें। इस तरह जब तक शिलाजीत के मलाई आवें उसे उतारते रहें और सुखाते रहें। यही सूर्यं तापी शिलाजीत है।

सिनतापी शिलाजीत— शीतकाल व वर्षाऋतु में सूर्यं जापी शिलाजीत सूर्यं की तेज घूप के अभाव में बनाना कठिन रहता है अतः अग्नितापी विधि से शुद्ध करना चाहिए। शिलाजीत पत्थर के १ किलो चूरे को तिफला के (५०० ग्राम विकला को ४० लिटर पानी में क्वाय बना कर १० लिटर पानी बचाकर क्वाय छानकर) क्वाय में मिलाकर २४ घण्टे भिगो कर फिर २-३ उफान दिलाकर उपरोक्त विधि से नितार कर इस नितरे हुए शिलाजीत जल को कड़ाही में औटाने से रवड़ी जैसा गाढ़ा हो जाय तब कड़ाही को चूल्हे से नीचे उतार ले तथा ठण्डा होने दें। इस प्रकार १ किलो शिलाजीत पत्थर में ७०० ग्राम शुद्ध शिलाजीत बनता है।

निर्माण-गुद्ध शिलाजीत ६४० ग्राम ।

भावना—उपरोक्त भावना द्रव्यों की रै-रे मांवना देनी चाहिए। भावना द्रव्यों में जिनका स्वरस मिले उनका स्वरस ही लेना चाहिए। बन्यथा भावना द्रव्य को ६४० ग्राम लेकर चतुर्गुण जल यें-पकाकर चतुर्थाश शेप रहने पर, क्वाथ को छावकर रे-रे वार रे-रे दिन तिफला, दशमूल, गुरुची, वला, पटोल पंचाङ्ग, मध्युष्टी, गोमूत्र की भावना देकर फिर गो हुन्छ की १ भावना १ दिन दें।

क्वाथ द्रव्य भावना—उपरोक्त नवाय द्रव्य रें हैं जिनकी माला ४०-४० ग्राम है तथा उनसे ७ दिन ७ भाव-नाएं दी जाती हैं बत: रू × ४ = १.१२० ÷ ७ = १६० ग्राम संयति क्वाथ द्रव्यों को जौकुट कर मिलाकर उसके १६० ग्राम में १४० मि.लि. पानी में क्वाथ प्रकाकर १६० मिलि क्वाथ शेप रखकर छानकर उसकी १ भावना १ दिन दें। इस प्रकार ७ भावना ७ दिन तक दें।

मिश्रणार्थ द्रव्य—मिश्रणार्थ द्रव्यों को उनके वजन के अनुसार मिलाकर खरल में भली भांति घुटाई करें तथा गोली वनाने योग्य होने पर १-१ माशा की गोलियां वना कर सुखा लें। फिर कांच भांड में चमेली के फूल विछाकर इस पर गोलियों की परत (बीच-बीच में चमेली के फूल खकर) लगाकर शीशी में सुरक्षित रखें। शिलाजीत णिंतः नहीं सुखता लतः ये गोलियां कुछ गोली सी चिपकी ई रहती हैं पर इनमें इतनी चिकनाहट होती है कि गसानी से ससग अलग हो जाती हैं।

जपयोग--मधुमेह में आद्या-आद्या ग्राम की २-२ विषयां प्रातः सार्य करेले के स्वरस व द्ध अनुपान से दें। १ सप्ताह में मूल शर्करा-तथा रक्त शर्करा का नियन्त्रण हो जाता है तथा ७ सप्ताह तक इस का प्रयोग करना पर्याप्त है। आवश्यकतानुसार अधिक दिन भी दे संकते हैं।

मधुमेहज नपुंसकता में — शिवागुटिका को स्वर्णवंग में रगड़ने से स्वर्ण वंग स्वर्णगोल्ड जैसी सुनहरी हो जाती है। २-२ गोलियां सुवह शाम दूध से लेना नपुंसकता नाशक है।

मधुमेह और शिलाजीत—मधुमेह की णिलाजीत चर्मत्कारी महौपिध मानी जाती है। आचार्य वाग्भट्ट के शब्दों मेंमधुमेहत्वमापन्नो भिपग्भिः परिवर्जितः।
शिलाजतु तुलामन्यात् प्रमेहति पुननैवः।।

अर्थात् वैद्यों द्वारा परित्याग असाध्य समझा हुआ मघुमें हरोगी भी यदि उचित मात्रा में नियमानुसार एक तुला (४०० तोला) शिलाजीत का सेवन कर ले तो वह निश्चय ही मधुमेह रोग से मुक्त होकर नवजीवन प्राप्त कर सकता है और यह कथन शिवागुटिका के प्रयोग से अक्षरशः सत्य सिद्ध है। यह शिलाजीत प्रधान योग है जिसमें दीपन पाचन वृहण द्रव्यों का मिश्रण है जो मध् मेह, अति स्यूलता तथा नपुंसकता के लिए सर्वोत्तम उपादान हैं। योग की प्रशंसा में तो इसे सर्व रोग नाशक परम अद्भुत रसायन, वल कारक, वृष्य, कान्तिकर, यणकर, सन्तानकर, मेघा, स्मृति वर्धाक मुनिगण द्वारा भक्षणीय वताया है तथा जिलाजीत के साथ जिन जीवनीयगणों से निर्मित हुआ है मधुमेही में इन्सुलिन (Insulin) की पूर्ति करते हुए स्थूलता का शोपण करते हुए वृहण, पौरुप प्रदाता योग है। सुकुमार व्यक्तियों और कामी पुरुषों के लिए भी समान रूप में हितकारी निरापद योग है।

हम विगत ६ वर्षों से मधुमेह रोगियों पर सफलता पूर्वंक प्रयोग कर रहे हैं तथा चिकित्सकों द्वारा परित्यक्त तथा जीवन से निराश रोगी भी जीवनदान प्राप्त कररहे हैं।

विशेषं -- भरीर का हल्का शोधन व त्रिफला चूर्ण से सामान्य विरेचन लेकर ही इसका प्रयोग गुरू करना चाहिए। रसायन गुण लाभार्थ दीर्घकाल तक प्रयोग करना चाहिए।

निषेध — कुलथी का प्रयोग विल्कुल न करें क्योंकि कुलथी अश्मभेदक होने के कारण शिलाजीत सेवियों के लिये हानिकर है। विदाही, गुरु भोजन, तेज धूप अति-व्यायाम, मन उद्विग्न होना आदि से वचना चाहिए। *

HORDING TUIL

वैद्य श्री जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव, अरौल(कानपूर) उ० प्र०।

ं घटक	, वैद्य सहच	र र.सा.सं.	र.र.स.
१. स्वर्ण भ	ास्म १ 'त	ो. २ तो.	२ तो.
२. रजतः	परम २ तं	ो. २ तो.	×
३. वङ्ग १	रम	ो. ३ तो.	३ तो.
४. शीशा	भस्म ३ त	ो. ३ तो.	. ×
ु ४. कान्तल	ीहभस्म ३ तं	ो. ३ तो.	३ तो.
-६, अभ्रक	भस्म ४ त	ो. ४ तो.	२ तो.
७. प्रवाल	पिण्टी ४ तं	ो. ४ तो.	४ तो.
द. मुक्तारि	कटी ४ त	ो. ४ तो.	४ तो.
६. अम्बर	१ ती	t. ×	×
१०. कस्तूरी	। ३म	ा. ३ मा.	३ मा
११. रससि	दूर ×	×	·×

भावना द्रव्य और उनकी ७-७ भावना—१. गोदुग्ध, २. गन्ने का रस, ३ अर्डूसे का रस, ४. लाक्षारस, ४. सुगन्धवाला का नवाथ, ६. केले के जड़ की रस, ७. घवेत कमल पुष्प रस, ६. घवेत चन्दन नवाथ, १०. हरिद्रा स्वरस। —वैद्य सहचर

१- पूर्वोक्त, ६-केले के फूल का रस, १०-कस्तूरी की भावना - र.सा.सं.।

१-३, ५-७ पूर्वोक्त, ३-हरिद्रा स्वरस, ५-छोटे खस, १०-वड उशीर, ११-कस्त्री—र र स ।

विवेचन—र. सा. सं. में 'चन्द्र' णव्द है जिससे आनन्दी टीकाकार रजत प्रहण करते 'रजत हेमनी हय' यो. र. 'अहि' से नाग भम्म और कान्तक से कान्त लौह भस्म, जदीच्य से बाला या नेत्रवाला का प्रवाथ, मालती से जाती (यो र —जातिः प्रवेतः सुगन्धि पूष्पा प्रायः श्रावण सासतः पूष्पति)। णा.सं. में रजत, नाग और अम्बर नहीं

है। र. र. स में अम्बर, नाग बीर रजत नहीं है। हीरक - युक्त योग में हीरक के कारण निर्माण कठिन एवं वहुमूल्य है। स्वर्ण की मात्रा वै. सं. के अतिरियत सभी में दूनी है इसंतरह सभी का मूल्य बढ़ जाता है किसी में केसर जल की भी भावना है। केसर कामोरोजक है जिसकी आव-श्यकता मधुमेह में प्रतीत नहीं होती। मधुमेही के हृदयावसाद . में आवश्यंकता पड़ सकती है और तब हीरक सीर कस्त्री जल की भावना भी उचित है। वैद्य सहचर में स्वर्ण की मात्रा आधी है। रजत, नाग और अम्बर भी है इसलिए अन्यों के अनुपात में मूल्य कम हो गया है। कस्त्री भी वे माशे की मात्रा खोल दी गई है अन्यों में मात्रा का उल्लेख नहीं। जतः अनेक प्रकार से विचार करने पर हम वै.स. के प्रयोग के अनुमोदन करते हैं। यह लेखक का अनेक बार का अनुभूत है। वै. स. ७७ अप्रैल के संस्करण में भावना के प ही द्रव्य लिखे हैं। २ द्रव्य आचार्य जी से पुछे जा सकते हैं। आचार्य जी ने मूंगा भस्म और मोती भस्म लिखा है हम दोनों की पिप्टी मिलाते हैं। यह भी उनसे पूछा जा सकता है। वै.स. का वसन्त कुसुमाकर का प्रयोग शंका रहित, निर्माण में सरल ओर अनुभूत भी है। गुण वर्धन के लिये येलपत्र स्वरस, करेला स्वरस, गुड़मार स्वरस, पलास स्वरंस, सप्तरंगी स्वरस में से कुछ की या किसी एक की भावना बढ़ाई जा सकती है। यह प्रयोग रोग निवारण करता है तब अन्य प्रयोग पर विचार कर ही निर्माण करें। आगे हम लाचायें जी के शब्दों में कुछ पंक्तियां दे रहे हैं-

रोगानुसार गनुपान योजना

१. प्रमेह —हर्न्दी स्वरस ६ माशे - वाल सेमल मूल चूर्ण १ माशा, मध ३ माशे।

मुख रोग चिकित्स

२. अम्लिपत्ति—स्वर्ण पाक्षिक भस्म २ रत्ती, निम्बु वरस ६० वृदं - मिश्री २ माशे ।

३ अम्लिपत्त-चन्दन का धासा १ मा. २ मा मिश्री।

४. अम्लिपत्ति—वासा स्वरस् २ माणे + मधु २ गणे + मिश्री २ माणे ।

५. रक्तिपत्त-अम्लिपत्त के समान।

६. अणवित, अपूष्टि—चातुर्जात चूर्ण २ माशे | मधु १ माशे, दूस २४० ग्राम ।

७. छटि-वृद्धिन्नंश- शंखपुष्प्री स्वरस १ तोले, मध्य १ मागे।

द्र. व्यवाय, शोप, शुक्रहानि — घृत ३ माशा, मघु २ माशा, मिंश्री २ माशा।

वहुमूत्र-मध्मेह--गूलर फल स्वरस १ तोले,
 या जम्ब बीज चूर्ण २ माशा या गुड्मार चूर्ण २ माशा ।

१०. वाजीकरणार्थ — सेशर चूर्ण २ रती + विवंग भस्म २ रती + मद्यु २ माशा, दूध २६० ग्राम ।

११. व्वास-सोमकल्प ३ रत्ती | मधु १ माया.।

१२. क्षय—स्वर्ण वसन्त मालती १/२ रत्ती + हदंती
फल चूर्ण २ रत्ती + गुग्गुल शुद्ध २ रत्ती + मधु २ माशे।

१३. (ब) प्रमेह—ताल मखाना चूर्ण १ माणा, जायफल चर्ण २ रती - निश्ची २ माणा।

(व) प्रमेंह-हल्दी चूर्ण ३ रत्ती + आंवला चूर्ण ४ रत्ती

१४ मधुमेह आदि — मधु कवच | वसन्त कुसुमाकर रस १ रत्ती, गिलोय सत्त २ रत्ती, गुड़मार चूर्ण २ रत्ती, करेला बीज चूर्ण २ रत्ती । सबको खरल कर १ कवच में, ऐसे १ कवच प्रातः तथा १ सार्यं दें।

१५. प्रदर-नारी मधुमेह—इसके अनुयोग के रूप में चरक बम्बई का फीमेलसैक्स दें या त्यूकोल कैपसुल (निर्मंत बायुक्संस्थान) का दें। स्थानीय प्रकालन भी करें, पिचु भी धारण करें।

वसन्त कुसुमाकर रस की २-३ मात्रायें गुडमार के अनु-पान से दी गई। केवल ७ रोगियो पर प्रयोग किया गया। ये रोगी १-६-७ वर्षों में इन्ह्यूलिन लेते थे, न लेने पर मूच्छी हो जाती थी। इन रोगियों पर प्रयोग करने से लाभ हुआ, इन्हिलन यू लेना बन्द हो गया। धीरे बीरे रोगी थपनी स्वामाविक स्थिति में सा गये।

योग मिश्रण-- १ वसन्त कुसुमाकर १ माशा, २ गिलोयसत्त ३-माशा, ३. गुड़मार चूर्ण २ माशा, मिश्रित

मात्रायें बाठ । अनुपान — विल्वपन स्वरस २ तोले, आम के कोमल लाल पत्तों का स्वरस २ तोले मिलाकर सेवन करना चाहिए । समय — प्रातः सार्यः ।

लाभ—इससे मयद्धर से भयद्धर मधुमेह जिसमें इन्स्यूजिन इत्यादि के इन्जेक्शन से लाभ नहीं होता। वहां पर उनत मिश्रण मूत्र की माना को कम कर शकरा का आना रोक देता है तथा शक्ति बढ़ोंकर रोगी की स्वस्थ कर देता है।

लबुमेही के प्रधान प्रधान लक्षण-

प्रयम--- १. मूत्र मे शर्करा थी प्राप्ति १-२ प्रतिशत ।

२. मूत्र राणि मे वृद्धि।

३. सूत्र का आवित्रस्य ।

४. अल्प प्यास ।

५. दुवंलता।

हितीय-१. मूत्राधिक्य । २. सूपा ।

३. मूत्र में शक रा १-४%

४. दुर्वेलता। ५. कण्हा

६. सर्वाङ्ग-मदं, सन्धि वेदना ।

७. भोजन-मामांक्षा तीन्।

तृतीय-१. मर्करा४-५% २. तृपा।

३. सुद्या ४. मांस दीर्वल्य।

कान्तिहीनता, दृष्टिहीनता ।

६. सन्धि, जानु कटि-वेदना। ७. मूच्छी।

बसन्त कुसमानर रस

पूर्ण शास्त्रोक्त विधि से निर्मित बसन्त ★
 कुसुमाकर रस मधुमेह एवं सभी प्रमेही, नपुँस- ★

¥ कता, शीघ्र पतन बादि विकारों की अत्युत्तम ¥

¥ औषि है। मूल्य — १० ग्राम १७५), १-१ रती ★
 ▼ एक माह को ६० गोली १३२)

* * निर्मत अयुर्वेह संस्थान,

३४-बी कृष्णानगर, सथुरा ।

·※:☆☆☆ *

本本※★☆

राजवैद्य कविराज गंडित हरिवल्लभ मन्तृलाल सिलाकारी शास्त्री जी आयुर्वेद के उद्भट् विद्वान् हैं, वृद्धावस्था में भी आप मां भारती की सेवा में तल्लीन हैं। आप समाजसेवी कर्मठ व्यक्ति हैं। स्थानीय ैसंस्थाओं के संरक्षक एवं अध्यक्ष हैं। यह लेख आपने ही भिजवाया है। लेख उत्तम, पठनीय एवं अनु-करणीय है। आशा है कि पाठक इससे लाभान्वित होंगे। —गिरिधारीलाल मिश्र (विशेष सम्पादक-'धन्वन्त्रि')

यदि मध्मेह के रोगी योग चिकित्सा का अनुकरण करें तो निश्चित मधुमेह रोग से शीघ्र मुक्ति हो जावेगी। योग चिकित्सा-

- १. प्रातः सुर्ये उदय के पूर्व उठना।
- २. ऊषापान, तांवे के वर्तन में रखा हुआ पानी पीना।
- ३. शौच आदि से निवृत होकर,
- ४. बासन करना व प्राणायाम फरना । योग के किसी अनु-भवी योगी गुरू के मागंदरान में योग करना, सीखना मध्मेह रोग निवारण आसन व क्रियायें -
- [9] लघु घांछ प्रक्षालन ६ गिलास पानी से १५ दिन प्रातः
- [२] कुन्जल किय (वमन घोती)
- ३ जल नेती।
- [४] (१) पवन मुक्तासन समूह (२) शशांकासन (३) सुप्त बज्जासन (४) योग मुद्रा (५) पश्चिमोत्तानासन
 - (६) उत्तानपादासन (७) सर्वांगासन (८) हलासन
 - (६) मत्यसासन (मत्स्यासन) (१०) यकरासन (१९)
 - मृजंगासन (१२) धनुरासन (१३) मयूराहन (१४) शीर्पासन (१५) शवासन ।

आसन आसानी से बाराम से करना, जल्दी-जल्दी नहीं करना । हाईव्लडग्रेसर् वाले व्यक्ति सावधानी से योग के अनुभवी गुरु के निर्देशन में हल्के आसन करें।

[४] प्राणायान-(१) उद्य्यान बन्ध (२) अनिसार .किया (३) न्योली का भी अभ्यास करें (४) अनुलोम विलोम प्राणावाम (५) भ्रामरी प्राणावाम (६) ध्यान

अजपानाप (७) योग निद्रा । इस क्रम से आसन प्राणायाम मादि क्रियाओं के अभ्यास ते शीझ मधुमें हरोग ठीक होता है। भोजन का निशेप ध्यान रखें --

वर्जित - बालू, चावल, चीनी, गरिष्ठ पदार्थ, मीठा, अन्डे, मदिरा आदि।

सेवनीय साहार-दूध, मठा, दही, जब, चना की रोटी, दलिया सब्जी लौकी, त्रोई, परवल, मैंजी, करेला आदि स्पाच्य। साथ ही अपने शरीर में अनेक प्रकार की शक्तियां हैं कित् अज्ञान के कारण उनका उपयोग नहीं हो पाता, यदि जीवन को योगभय जीवन ननाले तो भारीरिक सुख, मानसिक शांति आध्यात्मिक उन्नति शीघ्र हो सकेगी।

- 9 शंख प्रक्षालन इसके करने से छोटी आंत' एवं वड़ी औत के अन्दर जो मल भरा एवं चिपका रहता है उसे साफ करती है। तथा पेनक्रिया ज पर प्रभाव डालता है।
- २. कुन्जल किया-इसके करने से पिताशय की सफाई होगी। अल्सर के रोगियों को विशेष लाभदायक है।
- ३. जल नेती के करने से सयन समय सिर दर्द. जुकांम, नेत्र रोग, वस्तर बाना, तनाव रहना, अनिद्रा आदि रोगों में विशेष लाम होता है।

् ४. क्षाणन पवन गुदतासन इस आसन समूह के करने से सम्पूर्ण प्रधीर का हल्का व्यायाम हो जाता है। इसके करने मे अन्य आतन करने की क्षमता बढ़ती है। इस भाषन को सभी आयु के व्यक्ति अभ्यास के लिये कर सकते हैं।

THE FIRE FRANCE OF THE

थ. भ्रामरी प्राणायाम—शारीरिक, मानसिक, तनाव को दूर करने में पूर्ण समर्थ है। सिर दर्द में एवं हाई ब्लडप्रेंशर में विशेष लाभ होता है।

६ ध्यान एवं अजपाजाव—ध्यान से शरीर एवं मने कें सभी प्रकार के रोग दूर होते हैं। ध्यान एक उच्च साधना है। इस साधना से मनुष्य कें अन्दर अनेक प्रकार की शक्तियां जाग्रत होती हैं। मनुष्य ध्यान के द्वारा सब कुछ प्राप्त कर सकता है।

७. योग निद्रा—इस फ्रिया से मनुष्य अपने अन्दर चेतना को 'जाग्रत करता है। तथा मनको विकारों से दूर कर आत्म शक्ति बढ़ती है।

नोट—उपरोक्त सभी क्रियायें किसी योग्य गुरू के मागं दर्शन में सीखने से ही लाभ होगा। अन्यथा गलत करने से हानि भी हो सकती है।

[१] वज्रासन

विधि — आसन पर सामने की ओर पैर फैलाकर बैठ जायें। बाँया पैर घुटने पर मोड़कर जङ्घा के पास ले जायें। ऐसा करने से पैर थोड़ा उठ जायगा। बाएं हाथ से उसे उठाकर वाएं नितम्ब के नीचे ले जाइए। घुटना जमीन पर



चित्र सं. -- ४ ४

था जायगा। एड़ी शरीर से सटी होगी। पीछे पैर का पंजा ऊपर की ओर जायगा। इसी तरह दूसरे पैर की भी स्थिति वनाइए। दोनों घुटने आपस में सटे रहेंगे, पैर के तलवे अलग-अलग रहेंगे। अब दोनों हाथों को घुटनों पर रखकर बैठ जाईए यही बज्जासन है। इस आसन पर बैठे

हुए मत्स्यासन की भांति होजाने को सुप्त वज्रासन कहते हैं।

भोजन के बाद तुरन्त बज्जासन करने से पाचन संस्थान ठीक रहते हैं। आमाशय, गर्भाशय के रक्त विकारों को ठीक करता है।

सुप्त वज्रासन—कटज को दूर, करता है। शारीर और मस्तिष्क में रक्त संचार समान रखने के लिये यह उपयुक्त



चित्र सं.---४५

आसन है। श्वास, अस्थमा एवं लो ब्लंडप्रेसर में भी लाभदायक है।

[२] शशांकासन

यह आसन वज्रासन में किया जाता है। इस आसन के अभ्यास से क्रोध चिड़चिड़ापन दूर होता है, मनोविकार



चित्र सं. - ४६

अनिद्रा, चिन्ता, तनाव, अशान्ति रोग को दूर करता है। इस आसन में मुद्रा एवं प्राणायाम भी किया जाता है।

[३] पश्चिमोत्तानांसन आसन

विधि — आसन पर चित्त लेट जाइये । हाथों को सिर के पीछे ले जाइए। अब बिना सहारा लिए या झटका



चित्र सं.---४७

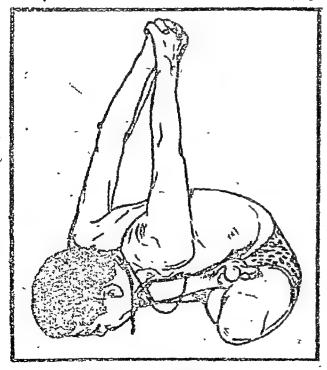
THE RULE STATE OF THE

,ये धीरे-धीरे धीरे धड़ को उठाइये। साथ ही हाथों की भी
'ठाते हुए पैरों पर भुक जाइये। माथा घुटनों से लगा
ोजिये। हाथों से पैरों के अंगूठे पकड़ लीजिये। ध्यान
रहे कि आगे भुकते समय घुटने जमीन से उठने न पायें।
इस अवस्था में यथासम्भव २-४ सेकेण्ड रहिए, फिर अंगूठे
को छोड़कर पूर्ववत् चित्त लेट जाइए। ऐसा धीरे-धीरे
करना चाहिए। आगे भुकते समय सांस निकालना, तथा
पीछे भुकते समय खींचना चाहिए। ऐसा तीन चार बार
कीजिए। (देखिये चित्र ४७)

पेट की बढ़ी चर्वी को कम करता है। कमर, पीठ मस्तिष्क की ग्रन्थियों को बलवान बनाता है। तथा इस आसन का सीधा प्रभाव पैन्क्रियाज पर पड़ता है। इससी मधुमेह दूर होता है।

[४] योग मुद्रा

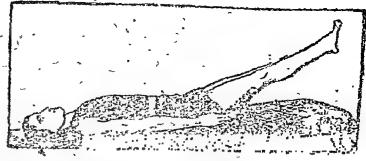
उदार विकार को दूर करना, रीढ़ को मजबूत अवनाना, चेहरे की कान्ति बढ़ाना, अस्थमा एवं लो ब्लड



• चित्र सं • ४५—योग मुद्रा

प्रसर में लाभदायक। इस योग मुद्रा से मणि पूरक चक्र प्रमावित होता है। (हाई ब्लड प्रेसर में नहीं करें)

[४] उत्तानपादासन

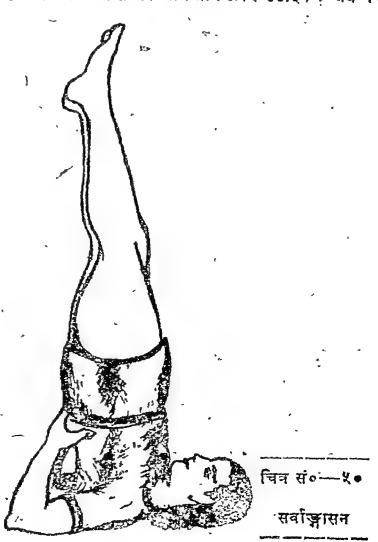


चित्र सं० ४६ - उत्तान्पादांस्न

पेद, कमर, सीना, मुख, नेत्र आदि रोग दूर करता है।

[६] सर्वागासन

विधि—स्वच्छ बिंस्तरे पर पीट के बल लेट जाइये। हाथ बगल में रहें और पैर सीधे। बदन को ढीला छोड़ दें। अब दोनों पैरों को घीरे-घीरे ऊपर खठाइये। जब पैर



Asi Signi Eligacali

समीन से ३० का कोण बनाने लगें तब वहां पर पांच सेकिन्ड के लिये रुकिये। अब पैरों को फिर उठाइये और जब ६० का कोण बनने लगें तब फिर १ सेकिन्ड के लिये रुकिये। इसी प्रकार जब ६० का कोण पैर बनाने लगें तो फिर १ सेकिन्ड के लिये रुकिये। अब पैरों को बिल्कुल सीधा रखते हुए सिर की ओर उन्हें लाइए, यहां तक कि वे १२० का कोण बनाने लगें। इस अवस्था में पैरों को ऊपर की ओर ले जायें जहां तक सम्भव हो पैर और घड़ दोनों को एक सीध में रखें और घड़ को दोनों हाथों से सहारा दें। यही सर्वांगासन है। अब आप उसी क्रम से उन जगहों पर रुकते हुए वापस जायें और अपनी प्रवावस्था में हो जायें। चित्र नं. १० देखिए।

सर्वाङ्गासन के बाद उतनी ही देर तक शवासन करके शरीर की आराम देना चाहिये जितनी देर तक सर्वांगासन किया गया है।

सर्वागासन को पहिले हिन आद्या मिनट में आरम्भ करके और प्रत्येक सप्ताह आधा-आद्या मिनट वढ़ाते हुये धीरे-धीरे ६ से १२ मिनट तक किया जा सकता है।

आसनों में श्रेष्ठ आसन है। मासिक, धर्म, ब्रह्मचर्य, मधुमेह, हाइड्रोसिल, हर्निया, दमा में लाभदायक है। इससे शरीर का समुचित विकास होता है। मानसिक्त रोग दूर होते हैं तथा इस आसन से पैन्क्रियाज एवं थाइ-राइड ग्रन्थि पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

[७] हलासन

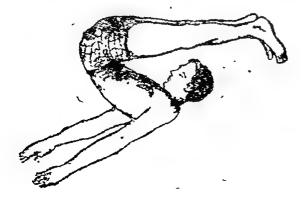
विधि -- आसन पर पीठ के बल लेट जाइये। दोनों

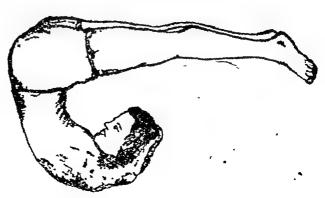
हाथ वगल में होंगे। अब सर्वागासन की तरह दोनों पैरों को साथ साथ और सीधा रखते हुये ऊपर की ओर २०,६०. १०० और १२० के कोणों पर रोकते हुये उठाइये यहां तक कि पैर के पन्ते जमीन को छूने लगें। तत्पश्चात् पैरों को थोड़ा और आगे बढ़ाइये। ऐसा करने से कमर का भाग ठीक सिर के ऊपर लांगे आर उंगलियां मिली होंगी, तथा हुड़ी कण्ठ के गढ़े में अच्छी तरह जम जायेगी। पूर्वावस्था में आने के लिए पहले हाथों को सिर से हटाइनर सीधे जमीन पर लाना चाहिए और पैरों को जिस प्रकार धीरे घीरे रोकते हुए लाया गया था उसी प्रकार वापस ने जाना चाहिए।

आरम्भ में इस आसन को उतना ही करना चा जितना आसानी से किया जा सके। जबरदस्ती भूंत से भी नहीं करनी चाहिये। (चित देखिये) यकृत और प्लीहा की बढ़ी हुई अवस्था में यह आसन नहीं करना चाहिये।

लाभ - शरीर की सभी नाड़ियां और अङ्ग प्रत्यङ्ग सवल वनते हैं। पीठ और पेट की पेशियां मजबूत होती हैं। कब्ज दूर होता है। यकृत और प्लीहा के सभी रोग चले जाते हैं।

इस आसन के अध्यास से पैन्क्रियाज, याइरायड, पैरा याइरायड ग्रन्थ पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इसलिये इस आसन को चीनी मार आसन भी कहते हैं। मधुमेह के लिए श्रेप्ठ आसन है। ववासीर, मोटापा, साईटिका में लाभदायक है।





वित्र सं १ ५ ९, ५२ - हलासन की दो विधियां

gal d'ul faléaceul

[द] मत्स्यासन

विधि—आसन पर पैरों को फैलाकर बैठ जाइये। दोनों हाथ जमीन पर वगल में रहें फिर दोनों पैरों को मोड़कर पद्मासन लगाइये। दोनों जांधे जमीन से सटे रहेंगे। अब कोहनियों को पीछे की ओर जमीन पर वगल में लाइये और शरीर को पीछे की ओर मुकाइये। भार कोहनी पर होगा। ऐसा करने से सारा धड़ जमीन पर आ जायगा, हाथ पर वजन देकर सिर को पीठ की तरफ



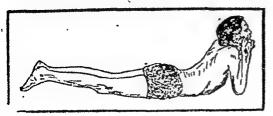
चित्र सं० ५३--मत्स्यासन

जितना पीछे ने जा सकें ने जाइये । अब समूचे बड़ का बोझ सिर पर होगा । अब दोनों हक्ष्यों से पैरों के बंयूठों को पर्कांड़िये । कोहनी जमीन पर ही रखें । यह मत्स्यासन है । देखिये चित्र । पूर्वावस्था में आने के लिए घड़ का भार कोहनी पर देकर उठ जायें और घीरे से सीचे बैठ जाइये ।

यह आसन सर्वागासन का पूरक है इसनिये सर्वागासन करने के बाद इसे जरूर करना चाहिये। ऐसा करने से पूरा पूरा लाभ होता है। पर जितनी देर तक सर्वागासन किया जाय, उसका चौथाई समय ही इस आसन के करने में देना चाहिये। इस आसन से मनुष्य जल पर मछली की तरह तैरता रह सकता है।

ईसीनोफीलिया, दमा, श्वास, उदर विकारों को ठीक करता है। मेश्दण्ड को बलवान बनाता है।

[१] मकरासन साईटका, स्लिवडिक्स में लाभप्रद।



चित्र सं० ३४

[१०] भुजंगासन

विधि—पैर फैलाकर मुंह के बल पट लेट जाइये। शरीर ढीला छोड़ दीजिये। टांगें सटी हों और तलने बाहर की तरफ दिखाई देते हों। घुटने और जांघें जमीन से भी सटी हों। हाथ कुंहनी तक धड़ से सट़ा हो और हथेलियां कन्धों के नीचे जमीन से लगी हुई हों। अब



चित्र ४१-भुजङ्गासन

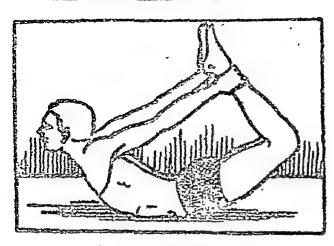
ठुड्डी को उठाते हुये सिर को पीछे ले जाइये। ठुड्डी को इस तरह उठाइये कि उसका और नाक का सिरा दोनों जमीन को खुते हुए कपर उठें। सिर को काफी दूर पिछि ले जाने के बाद उसे उसी अवस्था में रखते हये पीठ की मांस पिशियों को सिकोड़ते हुये सीने को ऊपर उठाइये। उस वक्त नाभि तक का भाग जमीन से लगा रहेगा और धड़ का शेप भाग हथेलियों के सहारे जमीन पर रहकर पीछे भी तना रहेगा। कुछ क्षणों एक सिर और पीठ को पीछे की ओर तनी हुई अवस्था में रखने के बाद रीढ को नीचे लाइये। पहले कमर के नीचे, फिर कमर और जन्त में गर्दन की [मांसपेशियों को धीरे-धीरे भुकाते हये पूर्वं की पट अवस्था में सा जाइये। आसुन करते समय सांस की गति स्वाभाविक रखनी चातिये। इस आसन को ५ सेकिन्ड से 9 मिनट या अधिक से अधिक ३ मिनट तक कर सकते हैं। तीन वार भी यह आसन किया जा सकता है। इस आसन को सर्पासन भी कह सकते हैं। चित्र ४४ देखिये।

मासिक धर्मं, कब्ज, दमा, साईटिका, गुर्दो, हृदय को लामकारी।

[१९] घनुरासन

विधि-भुजंग और शलभासन के योग से धेनुरासन् बनता है। पेट के बल आसन पर लेट जाइये; पैरों को

मुग्र राजा चिकित्सा



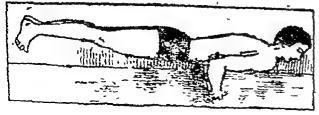
चित्र १६—धनुरासन

घुटनों से मोड़ लें। फिर दायें वायें वाले पोरों को दखनों से क्रमशः दांयें और वायें हाथ से पकड़ लें। अब धीरे-धीरे छाती को निकालते हुये, सिर को ऊपर उठायें। हाथों को ऊपर की तरफ उठाते हुये पैरों को तान दें। बागे और पीछे शरीर को तानकर इस प्रकार बनाइये कि सारे शरीर का भार कमर और पेट पर आ जाय और शेय धरीर जमीन से उठा रहे। इस स्थिति में ५ सेकिन्ड से १ मिनट तक रहना चाहिए। लगातार तीन वार यह बासन किया जा सकता है।

भुजा, सीना, मेरुदन्ड को वलशाली वनाता है। पाचन क्रिया को ठोक करता है।

[१२] मयूरासन

विधि — आसन पर घुटने के बिल लेट जाइये। दोनों घाहों को मिलाइये और हथेलियों को मजबूती से जमीन पर रिखिये। उंगलियों का रख पैरों की तरफ रहे। सारे शरीर को बाहुओं और आमाशय को कुहनियों से लगाइये। अब दौरों को घीरे-घीरे पीछे की तरफ फैलाकर अंगुठों को जमीन पर टेकिये। सांस खींचकर दोनों पावों को एक साथ पृथ्वों से ऊपर उठाने की कोशिश कीजिये।



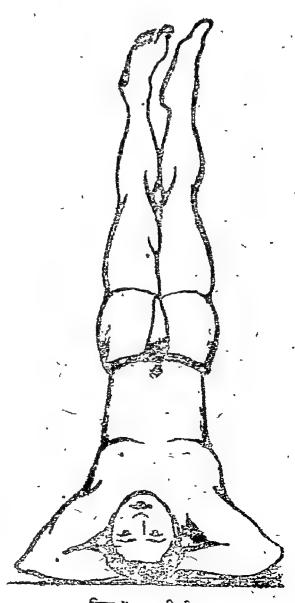
चित्र ५७ - मंयूरासन

सिर और पैर एक सतह में रहने चाहिये और शरीर पृथ्वी के समानान्तर। इस अवस्था में १ सेकिन्ड तक रहने के बाद-अंगूठों को पृथ्वी से लगाकर सांस बाहर निकाल दीजिये।

यह आसन कठिन आसन है। युवावर्ग के लिये विशेष लाभकारी है। सम्पूर्ण शरीर को बलणाली बनाता है। मधुमेह रोगियों को रामवाण सासन है।

[१३] शीर्पासन

विधि—किसी दीवार के पास जमीन पर दो फ़ीट लम्बी और र फीट चौड़ी कम्बल आदि की मुलायम गही



चित्र ४८-शीर्वासन

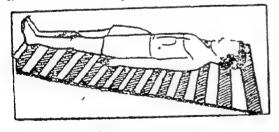
मुझा रोगा चिविहरमा

बिछावें। मोटे कपड़ें की पांच सात तह की हुई गही भी ्ठीक रहेगी । अब हायों को कोहिनियों तक अर्थात् बांह का अगला भाग गद्दी पर रखे और घुटने जमीन पर टेक जायें साम्ने दीवार होगी। अब एक हाथ की उंगलियां दूसरे हाय की उंगलियों में फसाकर दोनों हथेलियो को बांध लें और आगे को सिर झुकाकर उसे गद्दी पर इस तरह ले आयें कि सिर का पिछला भाग हथे लियों मे या जाय। तत्पश्चात् सिर के बल शरीर का बोझ डालकर धड़ को ऊपर उठावें। धीरे-धीरे टौगों को ऊपर ले जायें यहां तक कि शरीर सीधातन जाय और ऊपर से नीचे तक एक-सरल रेखा सी वन जाय। ऐसा करने में दीवार की सहा-यता ली जा सकती है। अन्त मे धीरे-धीरे टांगों को नीचे ले आकर पहली स्थिति में आ जाये किर थोडी देर के लिए एकदम सीघे खड़ें रहें। [तत्पश्चात् जितनी देर तक शीर्षा-सन किया है उससे कुछ अधिक देर तक (परन्तु आधा घंटा से अधिक नहीं) शवासन करें।

'यह सभी आसनों का राजा आसन है। इसके करने से स्मरण शक्ति बढ़ती है। नाड़ी संस्थान और रक्त संचार को सन्तुलित रखना एवं मनोबल बढ़ाना, मन के सभी भय को दूर करना।

*[१३] शवासन

विधि-अासन पर चित्त लेट जाइये । टांगों को एक दूसरे से मिलाकर सीवे फैलाइये । एड़ियां मिली रहे और



चित्र १६ — शवासन

पंजे खुले रहें। हाथ जमीन पर यड़ से सटे रहे। बांखें वन्द या अध्युली रिखये। अब सिर से पैर तक की सारी मांसपेशियों और स्नायुकों को एकदम ढीला छोड़कर शव समान बन जाइये। सांस स्वभावतः चलती रहेगी।

नासनो के बाद सब नासन नवश्य करना, इससे रक्त

संचार एवं भवास गित को सामान्य होता है। यह कभी भी किया जा सकता है। इसके करने से भारीर और मन के सभी अंगों का तनाव कम हो जाता है। जब तनाव कम हो जाता है तो भय, बशान्ति, चिन्ता दूर होती है। इससे भारीर और मन की धकावट दूर करके व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है।

[११] प्राणायाम



चित्र ६०-प्राणायाम



चित्र ६१--न्योली

उड्डियान बन्ध—उदर के अवयवों को ठीक करता
 है। जठराग्नि को प्रज्वित कर जीवन गिवत को उदर
 निचले भाग को सिर की ओर कथ्वं मुखी करता है।

[१६] अग्निसार

२. इस किया के करने से पेट में जो विजानीय पदार्थ होते हैं, वह अग्निसार मे जल जाते हैं।

[१७] न्योली

यह क्रिया वड़ी कठिन एवं दीर्घ अभ्यास से आती है। इसके करने से वड़ी आंत छोटी आंत लीवर किडनी आदि पेट से सम्बन्धित सभी बीमारी ठीक होती हैं।

[१=] अनुलोम विराम

प्राणायाम् से रक्तशोधन होता है. फेफड़ें मजबृत होते हैं। हृदय मस्तिष्क में शुद्ध रक्त भेजता है. अनिद्रा श्वास, मानसिक रोगों में लाभ करता है।

क्षण स्वाधियों में प्रयोग

डा. चैतन्यस्वरूप दाधीच बी.एस-सी., बी.एड., आयुर्वेदरत्न, एम.एस-सी.(ए), डी.एस-सी,(ए), 'पाण्डुंरोग विशेपज्ञ' श्री मारुती चिकित्सालय, कोटा (राजस्थान)

सन्दर्भ-शाङ्गिधर संरिता (खण्ड २, अ० ६), प्रकरण-मूत्रज व्याधियां निर्माण बटक--

घटक द्रव्य	नव्य तील	रस	. गुण	वीर्य	विपाक	प्रभाव
गोक्षुर	११२० ग्रा.	मधुर	गुरु, स्निग्ध	शीत	मघुंर	वात पित्त शामक, मूत्रल, बल्य
<u>शुद्धं गुग्गुल</u>	२८० ग्रा.	कटु, तिक्त	अतिलघु विशंद	, उच्म	कटुं	बिदोषशामक, विशेष रूप से वात
		कषाय, मधुर	्तीक्ष्ण, सर			कफ हर, योगवाद्दी।
गु ण्ठी	४० ग्रा.	कटु	लघु, दीपन	उच्च	मधुर	कफ वातनाशक
कासीमिर्च	. ,,	कटु	- लघु, तीक्ण	उच्ज	कटु	कफवातनाशक, मूत्रल
पिष्पली	"	कट्ट्	लघु, तीक्ष्ण	अनुष्ण	मघुर	वातकफनाशक, दीपन, पाचन,
•						मूतल । योगवाही
हरीतकी	,,	मधुर, अम्ल	लघु, रूस,	उच्ज	र्मघुर	त्रिदोपनाशक, अनुलीमन
		कटु,तिक्त,कपाय	तसर -			
. बहेड़ा	** .	कपाय	ं लघु, रूक्ष	उज्ज	मधुर	़ कफपित्तनाशक
मांवला	23	कटु,तिक्त,कषाय	ा, लघु, रूक्ष · «	मीत	मधुर	तिदोषनाशक, मूत्रल, दाहनाशक
~ *	,	मधुर, अम्ल	-		ž.	
मुस्तक	. 11	कटू,तिक्त,कपार	ग लघु, रूक्ष	शीत	कटु	कफ्पित्तनाशक, मूत्रल

निर्माण प्रक्रिया— सर्वप्रथम गोक्षुर का ६ गुने पानी
में दवाथ विधि से क्वाथ करें। आधा जल शेष रहने पर
उतार लें। फिर छानकर पुनः क्वाथ करें। आधा पानी
शोप रहने पर शुद्ध किया गुग्गुल उपर्यु क्त प्रमाण में मिलाकर पकावें। जब गुड़पाक सम गाड़ा हो जावे, तब अन्य
सव उपरोक्त घटक उपर्यु क्त प्रमाण में लेकर कुट, पीस
महीन चूर्ण बना उपर्यु क्त गुग्गुल की चाशनी में मिलालें,
वदनन्तर २४० मि. ग्रा. (२-२ रत्ती) की गोलियां बनालें।

रोगोपयोग--

हन्यात् प्रमेहं कुच्छं च प्रदरं मूताघातकम् । वातास्त्रं वातरोगांश्चशुक्रदोषं तथाऽश्मरीन् ॥—७/८८ मूत्रज व्याधियों में गोक्षुरादि गुग्गुल के प्रयोगकी वैज्ञानिक पुष्टि—

इस योग का प्रथम एवं प्रमुख घटक गोक्षुर है जो मूल संस्थानगत व्याधियों पर कार्य करने वाली अति प्रच-लित बनौषधि है। गोक्षुर स्वतन्त्र अथवा अनुपान अथवा

स्य रोग चितिष्टरग

के रूप में मूत्रकुच्छ, मूत्राघात, शोथ, सुजाक, अश्मरी, क्रमेह आदि मूत्र संस्थानगत रोगों पर प्रयुक्त किया । ता है। यह प्रभाव में उत्तम वस्ति शोधक एवं मूत्रल । चरक संहिता में दस मूत्र विरेचक औषधियों में ोक्षुर की प्रधानता सवंतोपादेयता एवं सर्व सुलभता - पष्ट परिलक्षित होती है। सभी प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में भी गोक्षुर का वर्णन मूत्र संस्थानगत व्याधियों यथा मूत्राघात मूत्रकुच्छ, अश्मरी आदि के प्रवलतम शत्रु के रूप में मिलता है। जैसे—

भूतं श्वदंण्ट्रा स्वरसेन सिद्धं।

क्षीरेण चौषाष्ट गुणेन पेयम्।। —च॰सं॰

त्रिकण्टकस्य बीजानां चूणं माक्षिक संयुतम्।
अविक्षीरेण सप्ताहम् पीतश्मरी पालनम्॥ — सु॰सं॰
गोक्षुरः शीतलः स्वादुवंलकृत वस्ति शोधनः।

भधुरो दीपनी वृष्योः पुष्टिदः चाण्मरी हरः॥

प्रमेह श्वास कासार्गं कृच्छ हृद्रोग वातनुत्॥

—भा॰ प्र॰

इसी प्रकार-

पापन के अरि राम जिमि अन्धकार के भानु ।

मूत्रकृष्ठ तब जगत में अरि गोक्षुर हि मानु ।।

इसी प्रकार कोढ़ल, राजनिघण्टु आदि में गोक्षुर का

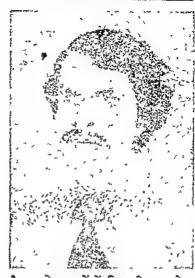
वर्णन मूत्राधात एवं तत्सम्बन्धी रोगों पर अव्ययं बताया

गया है जो लेखक के चिकित्सा सम्बन्धी प्रत्यक्ष प्रमाणों

एवं अनुभवों द्वारा स्पष्ट है ।

प्रसिद्ध वनस्पति विशेषक कर्नल चीपड़ा और के. एल. दे के मतामुसार यह मूल सम्बन्धी रोग तथा सुजाक, पश्री, नपुँसकता, अनैच्छिक बीर्य साव, सन्प्रिवात पर बहुत उपयोगी माना गया है। रस्, गुण, वीर्य विपाक कपर सूची में स्पष्टतः निर्देशित किये गये हैं।

दितीय घटक गुगुल है जो रस में मधुर होने के कारण वात को तथा तिक्त होने के कारण कफ को नष्ट करता है। किन्तु कपाय गुणयुक्त होने के कारण तथा सारक होने से पित्तच्न भी है। अर्थात् गुण एप्ट्या यह त्रिटोपच्न है। गुगुल की सर्वाधिक विशेषता इसमें विशय, सर तथा आणुकारी गुण के कारण होतो है। गरीर में क्लेंद रूप में संचित जो कफ एवं वायु दोप होते हैं चनका छेदन करके सर गुण के कारण अनुलोमन करता है। इसकी गति बहुत नुक्ष्म अर्थात् भी घ्र प्रसरणशील



होती है और इसके अणुओं में विकासी गुण होता है। यतः इसके सेवन से शीघ व्याधि शान्त होती है। यह योगवाही होने के कारण मुख्य औषधि की क्रियाशनित को बढ़ाकर अपना कार्य करता है। गुणुल के योगवाही, आशुकारी विकासी होने के कारण उसके साथ में जो दूसरी औपिधा का योग होता है वे भी साहचर्य बल से शीघ ही शरीर के गूढ़ अज़ों में पहुँचकर शोघन रोपण कार्य करती हैं। जिन वानस्पतिक द्रव्यों में सूक्ष्म प्रसरणशील गति नहीं होती वे भी गुणुल की सहायता से आशु एवं पूर्ण रूपेण कार्यक्षम होती हैं। अतः स्पष्ट सिद्ध होता है कि यहां गुणुल गोक्षर के गुणों को घारण करते हुये तथा अपने निज मुख्य गुणधामं द्वारा उपरोक्त व्याधियों का शामन करने में महत्वपूर्ण कार्य करती है। अध्मरी, सुजाक पर इसका प्रयोग सर्वप्रसिद्ध है।

तृतीय घटक त्रिकुटा (सोंठ, मिर्चा, पीपल) है। मुख्य के से अतिदीपक, कफ, प्रमेहनाशक व मूत्रल है। इसमें कालीमिर्चा प्रभाव में प्रभावी होने के कारण तथा तीक्ष्णता-वश इसका उत्तेजक प्रभाव आन्त्र एवं मूत्र संस्थान की श्लेष्मल कला पर पड़ता है जिससे मूत्र की मात्रा बढ़ जाती है तथा आमाशयिक रस की वृद्धि होने से पाचन किया सुघरती है तथा वायु का शमन व अनुलोमन होता है। अतः मूत्रकुच्छ, मूत्राघात प्रेमेहनाशक है। पीपल योगवाही होने के कारण सहयोगी शौपिघयों का गुण धारण करती हुई निजी धामवण मूत्र विकार नाशक है। चतुर्थ घटक त्रिफला (हरीतकी, वहेड़ा, आंवला) है

जो पित्त तथा कफनाशक एवं प्रमेहहर है। इसमें हरी-तकी एवं आमलकी विशेष रूप से अपने निजी गुण धर्म वश मूल संस्थान पर कार्यकारी वनीयधियां हैं।

पंचम घटक मुस्तक है जो रस में कटु, तिक्त, कपाय है। गुण में लघु, रूक्ष होने व वीर्य में शीत तथा प्रभाव में कफ पित्तनाशक तथा मूलजनन गुणों है युक्त है

उपरोक्त गुण इष्ट्या विवेचन से स्पष्ट परिलक्षित हैं कि गोक्षुरादि गुग्गुल योग का मूत्र संस्थानगत रोगियों पर प्रयोग अन्यर्थ है जो हमारे निजी चिकित्सकीय अनुभव से भी स्पष्ट हैं—

गोक्षुरादि गुग्गुल के मूत्रज न्याधियों पर अनुभवजन्य गुणधर्म —

- (१) मूत्रकृष्ठ—"मूत्रकृष्ठ सद्यः कृष्ठामूत्रपेदवस्तिरोधकृत ।। अर्थात् वह रोग जिसमें रुग्ण कण्टपूर्वंक
 मूत्र विसर्जन करता तथा वस्तिरोध होता है। यह विकार
 मूत्रमागं का है। इसमें मूत्रोत्पत्ता तो होती है परन्तु
 गवीनी, मूत्राध्यं, पौरुप ग्रन्थि या मूत्र प्रसेक निक्का में
 जीणं त्रण, त्रण शोथ या मूत्र प्रसेक निक्का का संकोच
 आदि इन्द्रिय विकृति रूप कारणों में सं कोई भी एक होने
 पर मूत्र दाह्युक्त पीला, लाल और दुर्गन्धयुक्त आता है,
 कभी कभी अरमरी, सिकता या शकरा हेतु से मूत्रोत्सर्ग
 में कण्ट होता है, आदि पर गोक्षरादि गुग्गुल् को चन्दनासव या गोक्षुर कपाय में यवझार मिलाकर उसके साथदेना अप्रतिम लाभदायक होता है।
- (२) मूत्राघात मूत्राघात में कितने ही प्रकार के समान इन्द्रियजन्य विकृति के हेतु होते हैं, परन्तु मुख्यतः इस विकार में मूत्रोत्पत्ति कम होती है। वृक्क की भिन्न भिन्न कारणों से होने वाली विकृति ही मूत्राघात का हेतु और इस विकृति का परिणाम समस्त शरीर पर होकर मूत्राघात के कण्टसाध्य प्रकार उत्पन्न होते हैं। इन सबके मूत्र में अवस्थित वस्तु स्थिति यह है कि मूत्र मात्रा में कम उत्पन्न होता और मूत्र द्वारा शरीर में वाहर जाने वाला कार और विष शरीर में ही रह जाता है। इस परिस्थित पर गोल रादि गुग्गुल का उत्तम उपयोग होता है। यह मूत्रल-होने से इसका असर मूत्र पिण्डों पर होकर मूत्र पिण्ड के दाह, शोथ आदि विकार कम हो बाते हैं और ज्याधि शोद्य शमन हो बाती है।

विशेष अनुभव—गोक्ष रादि गुगुल ४ रती | भेवेत पर्णटी २ रती, गोक्ष रयुक्त तृण पंचमूल कपाय से देना साथ ही भोजनोत्तर चन्दनासव की व्यवस्था विशेष फलप्रद सिद्ध हुई है।

- (३) मूत्राशय की अश्मरी—तरणोभेपजें: साध्यः प्रवृद्ध श्टेल्महंति। अर्थात्—अश्मरी रोग नया होने पर अस्त्रकोषधि से ठीक हो जाता है। परन्तु जीणें होने पर अस्त्रकर्म करना हो इण्ट है। नवीन रोग में, मूत्राशय में
 अश्मरी की (शकरा और सिकता) उपस्थित होने पर
 मानसिक अस्त्रस्थता, सन्धि-सन्धि में पीड़ा, अपान वायु
 की युद्धि न होने पर उदर में अफरा आना, कम्प आदि
 लक्षण उत्पन्न होते हैं। उस पर यह गोक्ष रादि गुग्गुल,
 गोक्ष रादि कपाय और दशमूलारिष्ट के साथ दिन में ३
 समय देते रहने और भोजन के प्रारम्भ में हिंग्वाष्टक
 चूर्ण सेवन कराने से छोटे-छोटे पत्थर और रेती निकल
 कर रोग दूर हो जाता है अथवा तृण पञ्चमूल कपाय
 या यवक्षार युक्त कुलयी ववाय के साथ गोक्ष रादि गुग्गुल
 का उपयोग लाभदायक सिद्ध होता है।
- (४) प्रयमेह—सुजाक (प्रयमेह) जिसमें मूत्र के साथ प्रय जाता है, मूत्र त्याग के समय असहा जलन व पीड़ा होती है, लिंग पर शोय आ जाता है एवं खुजली जलती है आदि लक्षणों के प्रारम्भ होते ही गोक्षुरादि गुग्गुल की दो वो गोली दिन में तीन बार चन्दनासन के साथ देने है तीन या चार दिन में ही सत्वर लाग हो जाता है। ऐसा लेखक का अनुभव है एवं रोग वढ़ भी नहीं पाता। जीर्णावस्था में पथ्यपालनसह दीर्घकाल तक सेवन कराने पर लाभ अवश्य होता है। गोक्षुरादि गुग्गुल सुजाक के विष को नष्ट करने में विशेष व्यवहृत होती है। बहुत से सुजाक के रोगियों को वायु विकार भी होता है, उस अवस्था में यह विशेष लाभदायक सिद्ध हो जाती है।
- (५) शुकमेह या ऐलबुमिनमेह—अन्त रस का पूर्ण परिपाक न होने पर जीण आमदोय के संचय के कारण अधिक शकरा, द्विदल अन्त एवं पिष्टमय पदार्थों के बति सेवन से शरीर में क्लेद बहुलता होने पर प्रमेह की उत्पत्ति हो जाती है। अधिक समय तक प्रमेह रहने के कारण बहुत से रोगियों के शरीर में ददं रहने लगता है या बहुत अधिक इड़कल व मानसिक संताप होता है। ऐसी अवस्था में तथा विशेषतः वातज प्रमेह में इसका प्रयोग विशेष

—शेयांश पृष्ठं १६६ पर देखें।



वैद्य वेदप्रकाश गुप्त लायुर्वेद जगत के जाने माने चिकित्संक एवं पंत्रकार हैं। लायुर्वेद विकास के स्वास्थ्य प्रश्नोत्तरी के माध्यम से आपकी चिकित्सा व्यवस्था से भारत के कोने-कोने से निराण रोगी लायुवेद चिकित्सा से लाभान्वित होते रहते हैं। अजिल भारतीय आयुर्वेद पत्रकार संघ के प्रधान पन्त्री व संयोजक रहे हैं तथा आयुर्वेद समाचार सेवा के सम्पादक हैं। आपने वड़े रोचक ढड़्न से 'आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की मधुमेह रोग पर असफलता, पर प्रकाश डालते हुये अपने अनुभूत योगों से युक्त अनुभवात्मक लेख प्रेषित किया है जिसके लिये धन्यवाद के पात्र हैं।

—विशेष सम्पादक 'धन्यन्तर'

स्त्रियों में सन्तानोत्पादक अंगों से सम्बन्धित मूत्रो-त्पादक संस्थान में पाये जाने वाले रोगों और उनके उपचार—

(१) मूत्र का रुक-रुककर आना मूलावरोध-

- १. इसमें मूत्राशय में मूत्र भरा हुआ रहता है, परन्तु वूंद बूंद और थोड़ा थोड़ा निकलता है, ऐसी अवस्था में मूत्राश्मरी का अनुमान सहज में लगाया जाता है। परन्तु स्त्रियों में गर्माशय जो मूत्राशय के ऊपर होता है उसमें अबुँद-गर्भाशय में रक्त संचय आदि निकारों में मूत्राशय या मूत्रमार्ग परं दवाव पड़ने से मूत्राशय पर दवाव पड़ने से होता है। गर्भावस्था में भी मूत्राशय पर दवाव पड़ने से होता है।
- २. मूत्रनिका में मांसन पिड़िका विद्रिधि, अपमरी और मूत्रमार्ग का संकीर्ण होना।
 - 3. शस्त्रकर्म मूत्रनलिका में शल्यकर्म के पश्चात।
- ४. वातनाड़ी मानसिक अभ्यास, शोक, क्रोध, भय, योपापस्मार (हिस्टेरिया)।

उपचार — मूत्रावरोध उत्पन्न होने पर रवर की नितका (कैथीटर) को मूत्रमार्ग में प्रविष्ट करके मूत्रविस्त से तुरन्त निकाले। उसके पश्चात् रोग के कारणों के अनु-सार चिकित्सा करें। मानसिक विकारों में निद्रा लाने वाली जोपिंधयों का प्रयोग करके चिकित्सा करें। (२) मूत्रिकुच्छ (Disuria), मूत्र त्याग करने में वेदना मूत्र त्याग करते समय तीव्र शूल होना रीग का ल है। अनेक रोगों में पूयमेंह (सुजाक), अश्मरी (पथरी कृमि, मूत्र प्रन्थि का प्रदाह, गंभीशय की विकृति, वृष

रोग निदान एवं चिकित्सा के विचार से दो प्रका का है—

रोग, आंत्र विकारों में भी होता है।

- मूत्र प्रवृत्ति में कष्ट—मूत्र प्रवृत्ति के विचार ही वेदना
- भूत प्रवृत्ति के समय वेंद्रना—मूत्र निका से मृ त्याग के साथ साथ वेंद्रना होती है।

मूत्र प्रवृत्ति के विचार से ही वेदना का कारण मूत्र शय अर्वुद या मूत्राश्मरी है।

मूल प्रवृत्ति छे समय वेदना के कारण मूल मार्ग निक् में भोथ या लण है। मूलाशय शोथ, बातर्व क्षय चिकित् करवाने पर जब उत्पन्न हो जाये जैसे रेडियम थैरा चिकित्सा।

प्रथम वार नवयुवितयों में पुरुष समागम से इन्द्री आघात द्वारा जिसे हनीमून सिस्टाइटिस कहते हैं।

भगशोय-मूल निलका में मांसज पिड़िका होने भी मूत्र प्रवृत्ति में वेदना होती है।

रोग के कारणों का विचार करते हुये चिकित्सा करें

न्य रोगा चिकित्सा

वृक्क विकार में मूत्रकृष्ठ के समय वमन और अति-सार की प्रवृत्ति होती है। यह वेदना वृक्कों से उठकर विस्त या जननेन्द्रिय तक जाती है। इसमें गोक्षुर गुग्गुल के साथ पवक्षार मिलाकर उठण जल से हैं। उठणवात पूर्यमेह (मूत्रनिक्का व्रण) में चन्दन का तैल चीनी में १० वृद डालकर हैं। उत्पर से जीतल जल पिलायें।

अनुभूत- मूयाश्मरी (वस्ति में) चनक सार, मूली सार, यवक्षार, श्वेत पर्पटी समान भाग लेकर रूगा की सायु वल को देखते हुये १ माज्ञा से ३ माज्ञा तक शर्वत वजूरी सचवा दूध में चार गुना जल मिलाकर दिन में ३ बार हैं।

मैथुन से उत्पन्न हुये मूत्रकुच्छ में चन्द्रप्रभावटी आयु, बल के अनुसार १ से २ गोली गोक्षुर क्वाथ से । व्रण का गोधन करके रोपण औपधि देने से ही लाभ होता है। वृक्तास्मरी में संगयहूद या हजरतजहूर या वेर पत्थर को गिसकर गोक्षुर क्वाथ से दें।

३) मूत्राघात --

पौष्प ग्रन्थि के शोध के कारण मूत्र वस्ति में संचित ोता रहता है। मूत्र निलका पर दबाव पड़ने से मूत्र गहर नहीं बाता। पेड़ में मूत्र भरने से तीज़ वेदना होने गिती है।

डएचार-नमक न दें।

शुद्ध शिलाजीत ४ रती मधु से देकर दशमूल स्वाय तोला तक पिलायें। चन्दनासव ७ चम्मच भोजन के श्वात जल मिलाकर-दें। कर्पूर को पीसकर मूत्रमागं डालने से मूत्र निकलने लगता है। गोक्षुर न्वाय एक ती मिली • सधु मिलाकर दो वार दिन में दें।

- गं ४) मूत्र प्रवृत्ति की अधिकता तथा शय्या मूत्र—

 द्म र सूत्र कम मात्रा में वार वार आता है। प्राकृतावस्था में

 द्र मीवस्था के आरम्भे और अन्तिम काल में स्वाभाविक है।
- 'त ।) मूत्र प्रवृत्ति वेग की 'रोकने में असमर्थता, मूत्र स्वयम्

 ि ही प्रवृत्त होता है। उसके कारण—
- र्द १. मूत्र संस्थान के अङ्गों की विकृति और सुपुम्ना ।। एड के रोगों में होती है।
- २. वालिकाओं-वालकों में सूत्र-कृमियों के कारण भ सावतित क्रिया के कारण रात्रि में निद्रा के समय

सनिच्छा से स्वप्न में हो जाता है।

- ३. योनि भ्रंश की स्थिति में ऐसा अधिक होता है।
- ४. प्रसवोत्तर-प्रसव के तुरन्त पश्चात या कुछ काल के पश्चात होता है।
- रे. मुत्राशय शोध या क्षोभ—मूत्र त्याग करने की इन्छा जब स्त्री को होती है तो मुत्राशय की केन्द्रीय नाड़ी संस्थान का नियन्त्रण हट जाता है। मुत्रमार्ग संकोच करने वाली मांसपेशियों की क्षिया बारम्भ होती है। मुत्राशय शोथ या क्षोभ में यह क्रिया बहुत तीन्न गति से होने लगती है जिससे किसी भी प्रकार से रोकने पर भी मूत्र निकलने लग जाता है।

६. बहुत देर तक मूत्र त्यागने की इच्छा (वेगधारण) करने से भी मूत्र नहीं रुकतां अर्थात मूत्र रोकने में अस-मर्थंता हो जाती है।

जपचार-जिस रोग के कारण मूल प्रवृत्ति की अधि-कता होती है, उसकी चिकित्सा करें।

विशेष—अधिक घृत, अम्लरस, नया घान (चावल-गेहूं), मधुर पेय-अजीर्ण (भूख नहीं होने पर भी) भोजन करना। चाय कॉफी हानिकारक हैं।

शंख पुष्पी, जटामांसी, नाह्मी, वच के क्वाय से चन्द्र प्रभा वटी भी लाभ करती है। बला तैल की उत्तरवस्ति दें। सुपारी पाक प्रांतः सायम् दूध से दें।

(६) मूत्रनलिका मांसज पिढ़िका-

मूत्रमार्ग के स्त्री के वाह्य छिद्र पर श्लीष्टिमक कला से आवृत रक्तवर्ण की पीड़िका होती है। इसके कारण वेदना मूलमार्ग में होती है। मूत्रकृत्छ और मूलाघात एक या दोनों समय होते रहते हैं। योनिमार्ग से रक्तलाव मूलावरोध मेथुन में असहा पीड़ा-लक्षण होते हैं।

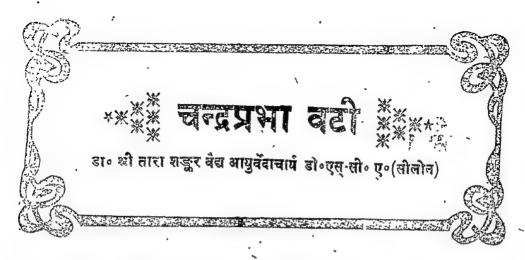
उपचार - शल्य क्रिया हारा पिड़िका को निकाल दे।. उसके पश्चात शोधन-रोपण क्रिया करें।

सोमरोग-जलप्रदर-

वास्तव में चरकोवतं परिभाषा के अनुसार प्रदर इसे नहीं कह सकते।

रंजः प्रदीर्यते यस्यात् प्रदरस्तेन कथ्यते । 'सक्षण-(१) मुत्रमार्ग की विकृति।'

(२) जलीय स्नाव-यह साव स्वच्छ, शीतल और --- शेपांश पृष्ठ १६६ पर देखें।



बरास कपूर, वालबच या मीठा बच, नागर मोथा, चिरायता, नीम के पेड़ पर की गुरुच, देवदारू का बुरादा, हल्दी, अतीस, दारू हल्दी, पीपरामूल, चित्ता, धनियां (नैपाली धनियां या तुम्बुरु), हर्रा, बहेरा, आमला, चव्य विड़्ङ्गः गजपीपर, सोंठ लाल (काली), पीपर बड़ी, स्वणं माक्षिकभस्म, यवकार, सज्जीखार, सैधानमक, सोञ्चर या काला नमक, विड् नमक प्रत्येक ४-४ ग्राम। निशोय, जमालगोटा की जड़, तेजपत्ता, दालचीनी, इलायची बड़ी, वंशलोचन प्रत्येक १६-१६ ग्राम। लोह भस्म (कांत लोह भस्म) ३२ ग्राम, मिश्री (तालिमश्री, अभाव में बड़े-बड़ें कणों वाली चमकदार ध्वेत मिश्री) ६४ ग्राम, शिलाजतु (शुद्ध सूर्यंतापी) ९० माम, शुद्ध गुग्गुलु ९२ म् ग्राम। निर्माण प्रक्रिया—

वंशलोचन को अत्यन्त महीन पीसकर कपड़छन कर को । हरं, वहेड़ा, आंवला को महीन चुण का काढा (इसकी पिट्ठी फेकें नहीं) बनाकर उसमें पहले मिश्री घोल लें । थोड़ें घोल में कपूर महीन घोटकर पूरे घोल में मिला हें । तत्पश्चात शिलाजीत चूण और गुग्गुल भलीमांति घोल कर एकरस करलें । यदि शिलाजीत और गुग्गुल भीले हों तो उसी प्रकार घोल लें । गुरुच का पानी में बनाया हुआ स्वरस भी इसी में डाल दें । तीनों नमक भी इसी में भली भांति घोल वें । तत्पश्चात् इस घोल में स्वर्ण माझिक भस्म, लौह भस्म तथा वंशलोचन चूर्ण एवं शेप चीजों का महीन कपड़छन चूर्ण और उक्त विकला की पिट्ठी भली-भांति मिला लें । घोल कम पड़ने पर यथोचित जल मिला-कर खूब घुटाई करें । घुटाई करने में कुछ कठिनाई हो या

किंठनाई न हो तो भी शुद्ध पृत तिनक तिनक मात्र (चिकनाई आने पर या भलीभांति कृटे जाने योग्य मात्रा) में डालकर गुग्गुलु के योगों की भांति खूब कुटाई करें। मृद्ध प्रसक्षण सुन्दर गोली बनाने योग्य द्रव्य तैयार होजाने पर चार-चार रती (१/४ ग्राम) की सुन्दर गोली बना खूब सुखाकर सुरक्षित रख लें। याद रखें घी केवल गोली बनाने या सुविधापूर्वक कुटाई करने के लिए यथासम्भव कम से कम डालिये। अधिक छोड़ने पर गोली बनाने एवं सूखने में कठनाई होगी।

शास्त्रीय दृष्टि से प्रमाय-

प्रमेह मूतकुच्छ, मूताघात, अश्मरी, विवन्ध, आनाह, शूल, मूत्रसंस्थान की गंधि और अर्बुद, अण्डवृद्धि, पांडु, कामला, हेलीमक, अन्त्रवृद्धि, कढ़िशूल, श्वास-कास, विच-चिका कुष्ठ, अर्था, खुजली, प्लीहावृद्धि, भगन्दर, दन्तरोग, नेत्ररोग, बातंवदोप शुक्रदोप मन्दाग्नि, अरुचि एवं दुष्ट वात पित्त कफ को नष्ट करती है। सर्व रोग प्रणाशिनी है। वल्य, वृष्य और रसायन है।

अनुपान रोगानुसार अनुपान दें। सामान्य अनुपान मघुया जल है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण अथवा अनुभव सात गुणधर्म-

मूत्र संस्थान एवं प्रजनन संस्थान के रोगों का सम्बन्ध मस्तिष्क सहित वात संस्थान से भी है। चन्द्रप्रभावटी के घटक न कपूर न स्वर्ण मासिक, लोह शिलाजीत और गुगगुलु तीनों संस्थानों पर जत्तम कार्यं करते हैं। परिणामतः यहं वटी प्रमेह एवं मूत्रकृच्छू जैसे परस्पर विरोधी रोगों पर काम करती है। क्योंकि यह वातनाड़ियों पर प्रभाव ढालकर उक्त संस्थाओं की गति विधि को नियन्तित

एवं सन्तुलित करती है। उन्हें वलवान भी वनाती है। वसन्त कुसुमाकर रस जैसी बहुमूल्य औपिध के अभाव में यह अर्थाभाव से ग्रस्त रोगी का अन्छा सम्बल है। इसमें स्वास्थ्य और शक्ति दोनों समाहित हैं। मैं स्वयं व्यक्ति-गत रूप से व्यवहार करता हूं। पर एक वार में ४-६ वटिका जल से ही निगलवाता हूं। प्रातः सायं ऐसा करता हं । वृद्धावस्था के लिए उत्तम रसायन है । थकावट, सुस्ती **आदि को भी दूर करती है।** याद रखें यह मूत्र संस्थान और प्रजनन संस्थान पर अधिक काम करती है। प्रमेह से दुष्ट रक्त प्रमेह पिडिका या मधुमेह युक्त व्रण पर भी काम करती है। परम्परा या संयोग से भले ही अन्य संस्थानों पर काम करे वह उल्लेखनीय नहीं है। शरीर रचना से उत्पन्न दोषों पर यह प्रशावकारी नहीं है। बात कफज रोगों पर विशेष प्रभावकारी है। संसर्गज रोगों पर · लाभ नहीं करती है। इसके साथ अन्य औपिध का मिश्रण आवश्यक है। ग्रुण बृद्धि के लिए तत्तद् रोग नाशक वविपरीत गुण वाली औषिधयों का योग हो सकता है। समगुण वाली कोई अन्य औपिध नहीं है।

नोट - आशु लाभकारी नहीं है। इसके प्रयोग से निश्चय ही स्थायी लाभ होता है। पूर्वापर अन्य औषित्र के प्रयोग की स्थावश्यकता नहीं। मलशुद्धि का भी ह्यान रखना चाहिये। कोण्ठबद्धता की स्थिति में रोग में कम लाभ करती है। यद्यपि यह उसमें भी कुछ लाभ करती है। यह विशेष शामक और अनुलोमन है। इसमें स्निग्ध गुण विशेष है। हमने तीन चार सी रोगियों पर प्रयोग किया है अच्छा पाया है। ग्रीष्म ऋतु में बहुत कम व्यवहार करता हूं। शीत देश काल और वात प्रकृति के लिये हितकर है। पित्त प्रकृति और नये औपस्मिक रोगों के लिये हानिकारक है इयोंकि उष्ण है। मूत्रातिसार और पिण्डकोद्देष्टन एवं अङ्गमर्द में विशेष हितकारी है।

ं 🏰 शेपांश पृष्ठ १६२ का 🥻

विशेष लामप्रद होता है। शुक्रदोप जैसा कि शुक्रसाव,
मूल में शुक्र जांना अर्थात् शुक्रमेह अथवा यल्युमिन जाना
आदि पर यह प्रभावशाली है। इन रोगों के साथ ऐसे
रोगी जो साथ में पेशाव में जलन की शिकायत लेकर आते
हैं। ऐसे रोगियों को हम गोक्ष्रादि गुंगुल चन्दनासव के
अन्य तत्सम्बन्धी औषधि के साथ लेने की सलाह देते हैं

जिससे मूत्र जलन तो समाप्त होती हो हैं साथ ही धातुगत किप्ता शांत होकर मूत्र रोगशमन में सहायता मितती है।

(६) शिश्नमुण्ड शोथ—सुजाक यो गर्म पदार्थी के अति सेवन से उत्पन्न ऊष्मा या अन्य कारणों से शिश्न मुण्ड पर शोध (Balanitis) हो जाता है, ऐसी अवस्था में हम गोक्षुरादि गुग्गुल के सेवन से लाभ प्राप्त करते हैं।

गोक्षुरादि के अन्य रोग सम्बन्धी प्रयोग यथा प्रदर, बातरोग, बातरकत आदि पर प्रयोग का वर्णन यहां अप्रा-संगिक होगा। अतः नहीं किया गया है।

🖈 शेषांश पृष्ठ १६४ का 🔻

साधारण शूल रहित होता है। मूलवह स्रोत रोग है। बहु-

निदान स्त्रीणामति प्रसंगेन भोकाञ्चापि श्रमादिप क्रि अतिसारक योगाद्वा गरयोगच्यैव च ।

बापः सर्वे शरीरस्थाः क्षुश्यन्ति प्रस्नवस्ति च।
तस्यास्ताः प्रच्युताः स्थानान्मूत्रमार्ग व्रजन्ति हि ॥
—भावप्रकाः

विशेष -- शरीरस्य उदकवह स्रोतस का अन्त मूत्रमागु है जो मूवातिसार भी कहलाता है।

ं सोमरोगे चिरं जाते यदि (मूलमतिस्रवेन) मूलातिसारं तं प्राहर्वेलविष्टवंसनं परम्। — भावप्रकाश

उपचार—सोमनाय रस २५० मि० ग्राम (भीषज्य रत्नावली बहुमूत्र), गुडूची सत्व १ ग्राम—कुल १ मात्रा, ऐसी ३ मालायें एक दिन में मधु से, रात्रि में चन्द्रप्रभा-वटी दो गोली मधु से चाटकर शतावरी सिद्ध दूध पीवें।

या ताकेश्वर रस २५० मि०गा., गुडूची संत्व १ ग्राम, यह १ मात्रा ऐसी ३ माला मधु से ।

प्रातःकाल आहार में खाली पेट च्यवनप्राश एक

दुवंलता तथा धातुक्षीणता की अवस्था—वसन्त कुसु-माकर रस १ गोली, हरताल मारित वंग भस्म १२५ मि. ग्राम, अभ्रक भस्म सहस्र पुटी (नागाजु नाभ्र डावर) १२५ मि. ग्राम, १ मात्रा मधु से प्रातः और सायं, प्यास लगने पर मधुयण्ठी च सें।

पथ्य-जी, कुल्थी, मूंग, चना, अरहर, करेला, लहसुन, जामुन, खजूर।

अपध्य-चिन्ता, शोक, भय, अधिक, परिश्रम ।



यहारीवाविविवित्या.

बृद्ध-रोग (तृतीय खण्ड)





वैद्यराज श्रीनिवास शर्मा कायुर्वेद जगत के ख्यातनामा विद्वान् दें। आप गोरखपुर के धान्वन्तरीय आयुर्वेद महाविद्यालय के प्राचार्य तथा धान्वन्तरीय धर्मार्थ चिकित्सालय के चिकित्साधिकारी हैं। आपके विद्वत्तापूर्ण लेख आयुर्वेदीय पित्रकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। सहज स्नेहवश आपने वृक्क तथा मूत्र रोगों की व्यावहारिक चिकित्सा श्रीपंक लेख प्रेषित कर अनुग्रहोत किया है।

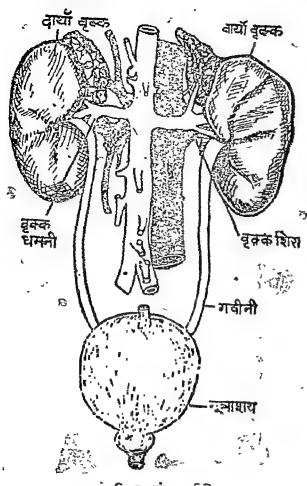
-गिरिधारीलाल मिश्र (विशेष-सम्पादक)

मानव के पूरे शरीर में शक्ति प्रदान करने वाले, पोषण देने वाले, धातु के निर्माण में सहयोग करने वाले द्वितीय धातु 'रक्त' का महत्वपूर्ण स्थान है। वहीं रक्त जब मूत्रवह संस्थान के सम्पर्क में आता है क्तव अपना दूषित माग 'वृक्कों' के माध्यम से छनवाकर शुद्ध

मानव के पूरे शरीर में शक्ति प्रदान करने वाले, हो जाता है। नर एवं नारी दोनों के णरीर में मूत्रवह ग देने वाले, धातू के निर्माण में सहयोग करने संस्थान की इटिट से कुल चार सवयव होते हैं—

- () वृज्ज- २ (२) मूजवहा या गवीनी- २
- (३) मुत्राणय या वस्ति—१ (४) मूत्रप्रसेक—१ आचार्य सुश्रुत ने इन सवयवीं को नामकरण के साथ

मूजा रोगा चिकिल्सा



ं चित्र सं०—६२

स्वीकार किया है। यथा-

- (१) मूत्रवहे हे [शारीर-६]
- (२) जल्प मांस गोणितोभ्यन्तरतः। कट्यां मूत्राशयो वस्तिनीम [शारीर-६]
- (३) मूत्रप्रसेकोनाम सूत्रं येन वस्ति मुखाश्रयेण-स्रोतसागरित । [चिकित्सा-७ डल्हण]

पक्क शारीर—

शरीर की उदरगृहा में वैंगनी रङ्ग की बड़ी शिम्बी— सेम बीज के आंकार प्रकार की दो रचनायें होती हैं। उरो-गृहा दनाने वाली ११-१२ वीं पशु काओं के सामने कटि-प्रदेश में रहने वाली दन रचनाओं को ही वृक्क कहा जाता है। इनकी जीसत लम्बाई लगभग चार इन्च तथा भार साढ़े चार बींस होता है। इनके सामने उदर्याकला होती है। ये वृक्क संचित्र कीप से आवृत्त रहते हैं। ये दृक्क मुत्रवाहक संस्थान के सर्वप्रथम एवं प्रधान अवयव

होते हैं। दाहिना बृक्क दायें से कुछ नीचे असमानान्तर पर स्थित रहता है। क्योंकि यह यक्त के बड़े क्षेत्र की समाप्ति पर ही स्थान पाता है। आचार्य सुश्रुत ने लिखा है कि—

वृत्रकी मांसिषण्डद्वयम् । एकोवामपार्श्वास्थितः । दितीयो दक्षिण पार्श्वस्थितः । — सु॰नि॰ ६ वृत्रक की सान्तरिक रचना—

- (१) वृक्क वस्तु (Matter)
- (२) वृवक द्वार (Hilum)
- (३) वृक्कालिन्द (Peivis)
- (४) वृक्क कोप (Renal capsule)



चित्र सं • ६३ - वृदक की आन्तरिक रचना

-वृक्क वस्तु-

दो प्रकार का होता है।

- (१) बहिवेंस्तु (Cartical matter)—इसीसे बाह्या-कार एवं सीमा का निर्माण होता है।
- ें (२) बन्तवंस्तु (Medullary matte)—यह भीतर की ओर रेखाओं से मिक्कित होता है। साथ ही वृक्कद्वार

CHAINE FEIGHT

की सोर मुख किये हुये शिखिरकाओं (विरामिड) से जुड़ा रहता है। शिखिरकाओं के मूलभाग स्थूल तथा वहिर्वस्तु से जुड़े रहते हैं ओर इनके अग्र भाग 'पुष्पमुकलाकार' वृक्का-लिन्द भाग में प्रसारित रहते हैं।

वृवक द्वार —

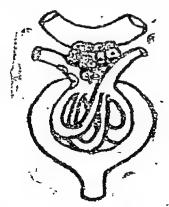
यह वृक्क की आन्तरिक सीमा में रहने वाला एक 'गड्ढा' खात होता है जहां 'गवीनी का सिर मिलता है। वृक्कालिन्द—

यह गवीनी का फैला हुआ शिरोभाग है जो कि वृक्क द्वार में स्थित रहता है। यह आलिन्द वृक्ककोष नामक स्थूल कला से ढका रहता है। इस आलिन्द में मुकुलाकारी अग्रभागों वाली १०-१२ वृक्क शिखरिकाओं से संचित मूत्र विन्दु विन्दु करके एकत्र हो जाता है।

वृक्क कोष 🗠

यह दोनों वृक्तों के चारों और लगा रहता हुआ स्थूल कलामय आवरण होता है। यहीं की कला वृक्त द्वार के चारों और पहुंचकर आलिन्द का परिसर भाग बनाती है। यही नहीं तो वहीं से पीछे मुड़कर गवीनी के शिरोभाग को ढक लेती है। चृक्त की सूक्ष्म रचना—

वृदक की सूक्ष्म रचना आश्चर्यचिक्ति करने वृाली होती है। वृदक की परिधि को बनाने वाली बहिर्वस्तु स्वतः



चित्र सं०—६४ मूलोहिसका (ग्लोमैहिलस)

मूल निर्माणक, सूक्ष्म, गोलाकार तथा जालकमय मशीनों से बना हुआ होता है। इनसे निरन्तर भूत्र की जलराशि चूती रहती है। इसीलिए इन्हें यूद्रोत्सिका (Glomuruls) कहते हैं। वहां पर व्याप्त सूक्ष्म शिराकों और धम-

नियों के वीच ये उत्सिकायें पूल के गुच्छों के समान होती हैं। प्रत्येक उत्सिका में गुच्छमुखं वाली एक एक घमनी प्रवेश करती है और गोलाकार गुच्छे में वदल जाती है। प्रत्येक गुच्छे को कलामय कीष इक लेता है। इसे उत्सिका पुटक कहते हैं। इसी पुटक में धीरे धीरे सूक्ष्म जिन्दुओं के रूप में रक्त के छनने के कारण अलग हुआ जलीय भाग एकित्रत होता रहता है उसे ही मूत्र कहते हैं।

ऐसा मूत्र पुटिकाओं से निकले हुये मूत्रबहस्रोत के द्वारा वृक्क के भीतर जाकर संग्रहीत होता है।

मूत्रवहस्रोत छोटी आंत के समान फ़ैले होते हैं और सर्प की तरह कुण्डल के आकार में गीत करते हुये केन्द्र की ओर बढ़ते दीखते हैं।

प्रत्येक स्रोत-

- (१) आदा कुण्डिलका भाग (First convoluted tubule)
 - (२) पाणभाग (Henle's loop)
- (३) अन्त्य कुण्डलिका भाग (Second convoluted tubule)
- (४) ऋजु भाग(Straight tubule) के नाम से चार भागों में विभक्त रहता है।

एक दूसरे के समानान्तर स्थित ऋजु स्रोतों से वृत्क शिखिरकाओं का निर्माण होता है। इन स्रोतों को आंतों की तरह फैले रहने के कारण आंत्र स्रोत (Uriniferus sof convoluted tubules) भी कहते हैं।

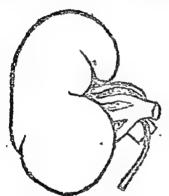
—वैद्य श्रीनिवास मर्मा
साहित्यायुर्वेदपुराणितिहासाचार्य एम० ए०,
संस्कृत-प्राचीन इतिहास, हिन्दी-साहित्यरत्न,
हिन्दी-दर्शन, ए०वी०एम०एस०, एम०वाई०एन०सी०,
विद्यामातंण्ड, साहित्य वाचस्पति,
प्राचार्य-धान्वन्तरीय आयुर्वेद महाविद्यालय, गोरखपुर,
संचालक-भारतीय योग प्राकृतिक चिकित्सा विद्यापीठ,
गोरखपुर, संरक्षक सदस्य-अखिल भारतीय आयुर्वेद
महासम्मेलन, नयी दिल्ली।



वृक्कामय-निदान-

वृक्कयोः शीतसंयोगात् प्रायोरोगः प्रवर्तते । दीर्घं जबरे विसूरयां च न मसूर्यामामवात के ॥ तथोपसर्गं रूपेण दृश्यते त्वयमामयः ॥९॥

(१) वृक्कं पर अत्यन्त शीत लगने, वर्षा में भीगना व अति शीतल जर्ल में निरन्तर स्नान, अति व्यायाम या



चित्र सं० -६५

वितश्रम के बाद तुरन्त शीतल जल से स्नान अल्प माला में जलपान प्रायः वृक्क रोग के कारण हैं। जीणं ज्वर, विसूचिका, मसूरिका, आमवात में भी वृक्क रोग उपद्रव रूप में हो जाते हैं।

- (२) मूल रक्त से उत्पन्न होने के कारण तथा रक्त का सम्पूर्ण घरीर से सम्बन्ध होने के कारण घरीर के प्रत्येक रोग मूल पर भी कुछ न कुछ प्रभाव किये विना नहीं रहते तथा इस हिन्द से मूल रोगों के कारणों में घरीर के सम्पूर्ण रोगों का समवेग हो सकता है किन्तु जिनका परिणाम मूल पर ही विशेष रूप से होता है उन्हें ही मूल रोग के सन्तर्गत लेते हैं।
 - (१) गर्मावस्था में भयकूर रोग से प्रसित्त होने पर

उसका प्रभाव वृक्क पर होता है और गर्भस्य शिशु के वृक्क भी उससे प्रभावित होने पर जन्मजात वृक्क विक्र-तियां हो सकती हैं।

- (४) कभी साधारण स्वास्थ्य वैपन्य या कभी पौष्टिक आहार की न्यूनता के कारण गर्भस्य शिशु के वृक्क, निर्वेल और कृशकाय होते हैं तथा जन्मोत्तर भी वह पूर्ण स्वस्य नहीं वन पाते।
- (५) शिशु के गर्मशया से भूलोक पर आने पर तात्कालिक शिशुचर्या में असावधानी व अज्ञानवश शिशु , को शीत प्रकोपक अवस्थाओं से रहित न रखने पर तथा शीशवकाल में निमोनियां, तीव रोमान्तिका आदि से प्रस्त होने पर वृक्ष अपना स्वास्थ्य पूर्ण या अपूर्ण रूप से खो बैठते हैं भले ही ऐसे कारण तुरन्त प्रभावोत्पादक न हों परन्तु वृक्ष विकृति या उनके कार्य शैथित्य के रूप में बीज सूक्ष्म रूप में अवस्थित हो जाता है तथा समवायि कारण मिलने पर उग्ररूप से सकते हैं।
- (६) कुलज और सहज दोष-निम्न मूत्र रोगों में इन दोषों का प्राधान्य रहता है-मधुमेह, वृद्ध, शकरामेह, उदक्रमेह तथा गैंगवीय वृद्ध अम्लोत्कर्प (Infantile renal acidosis) आदि।
- (७) आहार दोष अनेक मूत्र विकार आहार के अतियोग या हीन योग से होते हैं जैसे मधुमें ह, शुक्लिमेहं मधुमें ह, शौक्तमें ह, भास्त्रीय मेह आदि।
- (५) यष्ट्रत के विकार—यक्तहाल्युदर (Cirrhosis) सीनपीत यक्तत्वय ।
- (६) पचन संस्थान के विकार—अतिसार प्रवाहिका विसूचिका, आन्त्रिक ज्वरं, कब्ज, अजीर्ण, अग्निमांद्य आंत्रिक ज्वरं, आन्त्रधात जठर कैंसर आदि।
 - (१०) उपसर्ग-अनेक उपसर्गों का मूत्र पर प्रभाव

न्य रोग चिकित्सा

पड़ता है जिनमें निम्न महत्व के हैं—आन्त्रिक ज्वर, लोहित ज्वर, फुफ्फुस पाक (न्यूमोनियां), फिरङ्ग, राजयक्ष्मा, विषम ज्वर, श्लीपद, पूययुक्त मस्तिष्कावरण शोध, पीत-ज्वर, रोहिणी, पूयमेह, वातमेह, यश्मा दण्डाणु, गुह्य गोलाण्, दण्डाणु, स्त्री पुषक शोणित वासी कृपि आदि।

(१९) अन्तः स्रावी ग्रन्थिदोष-शरीर की अनेक अन्तः स्रावी ग्रन्थियों की अल्पकार्यता या अतिकार्यता मूत्र विकार उत्पन्न करती है जैसे पोपनिका, अग्न्याशय, अधिवृक्क अबटुका गंथि इत्यादि के कारण मधुमेह, उदक्रमेह, तनुमूत्र-मेह आदि।

(१२) रक्तविकार—रक्ताम्लता, श्वेतमयता (Leuka-emia', श्रोपांशन (Hemolysis), वृक्क की अधिरक्तता या अल्परक्तता, अन्तःशल्यता (Embolism) आभ्यन्तरीय रक्तस्राव व कामला की वैधिक एवं श्रोपांशिक अवस्याएं।

(१३) विष और रसायन—पारद, तारपीन तेल, सीसा, संखिया व उसके योग, विवनीन, शुल्दौपिधयों, कार्वोलिक एसिड वादि।

(१४) अर्बु द और कोव्ठ (Tumers and Cysts)—
मूत्रसंस्थान के अर्बु द मूत्र रोग उत्पन्न करते हैं। अंघातक
अर्बु दों में मूत्राशय का अंकुराबु द (Papilloma) महत्व
का है — इससे गोणितमें ह उत्पन्न होता है। इतर् अर्बु दों
में कालकाबु द महत्व का है इससे कालमेह उत्पन्न होता
है। बहुकोण्ठीय वृक्क Polycystic d'sease) से उदकमेह उत्पन्न होता है।

(११) मस्तिष्क संस्थान के विकार—चिन्ता, ब्रोध, भय, उन्माद, अपस्मार, विषमयता,मस्तिष्काघात, मस्तिष्क के अर्बुद आदि विकारों में मूल विकृतियां हो जाती है। युक्कामय पूर्वेरूप—

निद्राहानिरिनिमान्यं शोफोऽत्यास्यपदेपु च।
नाड़ीवेगवती स्तव्धा चोष्णा त्वग्रौक्ष्यमेव च॥
प्राप्रूपं लक्षयेद्वैद्यो वृवक रोगातुरस्य वै॥
अनिद्रा, अनिनमांद्य, नेय. मुख एवं पांवों पर शोथ,
नाड़ी की गति में तीव्रता, काठिन्य एवं उष्णस्पर्णं, त्वचा
की रूक्षता ये वृवक रोगी के पूर्वरूप हैं।
वृवक की स्थिति—

वृक्को स्पूलो कोमलो च मानतो द्विगुणो तथा। तयो शिराश्चोन्ननास्तु नाडिकासु द्रवोच्चयः॥ कलायाः मूत्रधारिण्या क्षरणं चोपजायेते॥

रुग्णावस्था में दोनों वृतंक पूर्वापेक्षा मोटे,भार में द्राने एवं मृदु हो जाते हैं। उनकी शिरायें रक्त संचय से फूल. जाती है, नाडियों में द्रव भर जाता है और मुद्र धारिणी-कला तन्तु अधवा अणुरूप में क्षरित होने लगती है। यद्यपि आयुर्वेद में वृषक रोगों के अन्तर्गत वृक्कशोथ, वृक्क-पाक आदि नामकरणानुसार वर्णन नहीं है पर उपरोक्त वर्ण न वृत्रकशोथ के लक्षणों की ओर स्पष्ट संकेत है। अतः यह निर्विवाद सत्य है कि आयुर्वेद में वदकद्वय के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान उपलब्ध है पर है वह आयुर्वेद सिद्धान्तानुसार कायुर्वेद की अपनी शैली में । 'प्रकर्पेण मेहति इति प्रमेह' प्रमेह के इस ज्यापक अर्थ में दुष्टि एव तदज्जन्य प्रमेही-त्पादक कारण, दोष, दुष्य, सम्प्राध्ति, लक्षण, उपद्रव आदि का समावेश आधुनिक वृद्ध रोगों के अवयवीय प्रथक प्रथक नामधेय रोगों में पूर्ण इपेण घटित होता है। वृक्ष रोगों के ज्ञान के लिए क्ष-किरण तथा मूत्र परीक्षण विधि की सहायता परमावश्यक है। विज्ञान किसी की बपौती नहीं है क्षाधूनिक साधनों का इस प्रकार आधुनिक चिकित्सक भर-पूर प्रयोग करते हैं उसी तरह वैद्यों को भी प्रयोग कर लाभान्वित होना चाहिये।

वृक्क रोग के लक्षण-

ज्वराष्ट्रभेदः शोफश्च शिरः शूलं विमस्तथा। रक्तहासात्पांडुवर्णमास्यं बह्नेश्च स्वेदामास्त्वचि रौक्यं नाडी वेगवती तथा। व्यक्तस्थाने तथा कटचां पीड़ा स्पर्शसहा भवेत ॥ मूतं सपीडम्पणञ्च स्वत्षं स्वत्षं मृहम् हः। जायते मुत्ररोधश्च क्वचित्स्रवति विन्दुशः॥ वृक्कयोरश्मरीयोगात् कदाचित्स्वयमेवहि । मूत्रं शोणितयुक्तं स्यात्तः कृष्णंस्रवेदगदी॥ हस्तपादयो खोजसोऽतिप्रवर्तनम् । मूत्रकाले ध्वजाग्रे वै किचिद्दाहाश्च लक्ष्यते ॥ व्कयो कार्यं शैथिल्याचकुत्प्लीहहृदां तथा। विकारो दृश्यते घोर स्वस्वसंवेद्य लक्षणं: ॥ श्रुतिनादोऽक्षिदोपश्च मूच्छा अङ्गो ध्वजस्य च । णिरोग्रीवांसपीडा स्यादेवमन्यश्च लक्षयेत्।। व्वक रोग के सामूहिक लक्षण-आयुर्वेदोक्त लक्षणों

में वृक्करोग के प्रायः सभी भेदों का समावेश हो जाता हैजवर, सम्पूर्ण अङ्गों में बेदना, शोध, शिरःशूल, वमन,

नुजा राजा चिकिट्सा

रक्ताल्पता, पांडुता, अग्निमांद्य, स्वेदाभाव, स्वचा की स्क्षता, नाड़ी वेगवती तथा तीक्षण, कमर में वृक्क स्थान पर स्पर्शासह पीड़ा मूत्र का वार वार थोड़ा-थोड़ा करके पीड़ायुक्त एवं गमं आना, कही-कहीं मूत्ररोध तथाच कहीं कहीं विन्दु विन्दु बाना, वृक्कों में अश्मरी के कारण व वहां की शिराओं के रक्त में फूली हुई होने के कारण स्वयं ही रक्त के खूत होजाने से मूत्र का रक्त मिश्चित होना, रक्त के कारण मूत्र का कृष्ण वर्ण होना, हाथ पैर की शीतता, मूत्र के साथ बोज का स्नाव, मूत्र काल में मूत्रीन्द्रय के अग्रभाग में दाह, वृद्दाों के अपने कार्य में शिथिल होने के कारण यक्टरणीहा के घोर विकार होजाते हैं जोकि अपने अपने लक्षणों से जाने जाते हैं। कानों में शब्द होना, आंखों में विकृति, मूच्छां, ध्वजभाग, सिर गर्दन एवं अंतप्रदेश में पीड़ा तथा क्षुधानाश, अतिपिपासा, मल बन्ध आदि लक्षण होते हैं।

भैषज्यरत्नावलीकार ने आयुर्वेद की अपनी पुरानी शैली के अनुसार रोगों में होने वाले लक्षरण समूहों को एक ही स्थान पर एक ही साथ स्थान दिया है। उपयुंकत लक्षण युगपत रूप में एक ही रोगी में नहीं होते पर वृद्धीय रोगों में होते अवश्य हैं बिल्क उपरोक्त लक्षणों में आधु-निक सभी नामध्य वृक्क रोगों का समावेश किया जा सकता है। आधुनिक चिकित्सा वैज्ञानिकों ने मूत्रविकार प्रमेह अश्मरी वृक्क रोग के अलग अलग प्रकरणानुसार उत्पत्ति सम्प्राप्ति साध्यासाध्य, जीणं, याप्य, तीन्न व विक्र-तियां एवं तज्जन्य लक्षणों का विस्तृत विवेचन किया है जिससे रोग निदान में सबल सहायता मिलती है। अतः आगे के प्रकरणों में आधुनिक मतानुसार वृक्क रोगों के विभिन्न भेदों पर सविस्तार वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है। वक्क रोग के उपद्रव—

> फुपफुसे भित्तशोयश्चीरस्तोयोदकोदरः । कासो मूत्रविपस्यापि रक्ते संगमनं पुनः ॥ मूच्छा वृक्कामये त्वेते जायन्ते च ह्य पद्रवा ॥

दीर्घकालीन वृक्क शोय पाक आदि के कारण न्यूमी-नियां, प्लूरिसी जलोदर, कास एवं मूलीयविधों के रक्त में मंगिश्रण से मूच्छी आदि उपद्रवों की उत्पत्ति होती है। बृदकरोग जिकित्सा सूत्र—

वृतक रोग साधारण तींन (Acute) और जीणं (Chronic)से दिधा विभवत है। साधारण अवस्था में रोगी अपने स्वास्थ्य में दैनिक कच्टों के कारण परेशान अवश्य

रहता है पर अपना दैनिककार्य येन केन प्रकारेण चसता रहता है पर द्वितीयावस्था का बाक्रमण होने पर रोगी शैय्याश्रित होने को विवश हो जाता है। अतः रोग की साधारण एवं तीव व जीर्ण अवस्थानुसार चिकित्सा क्रम निद्विट है—

साधारण-चिकित्सा क्रम---

विरेचनं स्वेदनं च वाष्पस्वेदनमेव वा।
मूत प्रवर्तकं यत्स्वाद्यद्वा शोणित शींधनम् ॥
पोषणं यच्च धातूनां यच्च बह्नो प्रदीपनम् ।
सन्नपानीषधं हृद्यं वृक्करोगेषु योजयेत ॥

(१) विरेचन—वृक्त रोगी को प्रायः कोष्ठबद्धता, मन्दाग्नि, अरुचि रहती है अतः विरेचन से प्रतिदिन मलोत्सगं होना चाहिए जिससे रनतशोधन में विशेष सहायता
मिलती है। विरेचनार्थ शिवाक्षार पाचन चूर्ण को मकोथ
अर्क अथवा अमलतास के क्वाथ से देना चाहिए। २-४ मात्रा
से ही स्वभाविक मल त्याग होने लगता है तथा आम का
निष्कासन हो जाता है। विरेचन द्वारा कोष्ठ की शुद्धि हो
जाने पर उदर क्रिया को स्वभाविक रखने व कोष्ठबद्धता
मन्दाग्नि अरुचि को दूर करने के लिए हिंग्वाष्टक, अविपत्तिकर चूर्ण, अग्निनुण्डी, शूलविज्ञणी, महाशंखवटी,
आरोग्यविधनी का उपयोग करना चाहिए।

जयपाल तथा स्नुहीक्षीरादि निर्मित, नारायण रस इच्छाभेदी रस आदि कदापि न दें।

- (२) स्वेदन-जय तक वृक्क में शोथ रहे तब तक रोगी को श्रम और शीत से बचाना चाहिए। त्वचा को गमं रखने से रक्तवाहिनियां फैल जाती हैं अतः त्वचा पर स्वेदन देना चाहिए। इससे संकटापन्न रोगी को तुरन्त लाभ मिलता है। गमं कमरे में, गमं कपड़ों में तथा गमं जल स्पंज करने से या आसपास गमं बोतनों को रख कर स्वेप्त देने से मूत्र की माना वह जाती है शोध शान्त होकर रोग के लक्षण शान्त हो जाते हैं। शोधाधिक्य में सर्वाङ्ग स्वेद देने के लिए गमं जल से भिगोये हुए खादी के मोटे कपड़े से रोगी के मुंह को छोडकर चारों और ढंक कर ऊपर से दो मोटे कम्बलों से शरीर को ढक दें। थोड़े ही समय में पर्याप्त पसीना आकर रोग के उपद्रव कण्टों में खाराम मिलता है।
 - (३) मूल प्रवर्तन-सूत्रप्रवर्तन वृवक रोगी के लिए

मूत्र रोग चिकित्सा

जीवन दाता है पर मूत्रोत्पादन तथा निःसरण की स्वभाक्रिया वृक्क शोथ में ह्रास होने पर ही सम्भव है। क्रिमक
मूत्रनिःसरण औषधियां—गोक्षुरादि गुग्गुल, श्वेत पर्यंटी
पंच तृण कषाय लाभप्रद हैं। पुनर्गवा तथा अमलतास के
प्रयोग भी हितकर हैं। मूत्रल औषधियां अत्युग्न होने पर
मूत्रोत्पादन तो होता है पर मूत्र प्रणालियों पर इसीका
दुष्प्रभाव होने से मूत्रोत्सर्ग में असमर्थंता रहती है अतः
भयञ्कर हानिप्रद हैं। पारदयुक्त मूत्रल औषधियों को प्रयोग
भी न करें—

रसो विवर्द्धयेद व्याधि मतस्तं नेह योगयेत् — अर्थात् पारद के योग इस रोग को बढ़ाते हैं अतः उनका प्रयोग न करें। आधुनिक युग की लैसिक्स (Lasix) उत्तम मूत्रल भौषधि है।

(४) रर्नत शोधन — मूत्र की उचित मात्रा का निस्स-रण न होने से उसके द्वारा निकलने वाले विपैले पदार्थ रक्तिश्रत होकर मूत्र विपमयता उत्पन्न कर देते हैं। रक्त-शोधनार्थं आरग्वध (अमलतास) तथा पुनर्नवा एवं मकोय का महत्वपूर्णं स्थान है। ये मूत्रल तथा रक्तशेधक हैं अतः इनके उपादानों का प्रयोग करना चाहिए। पुनर्नवा मण्हर और आरोग्यविधनी उत्तम योग है। विशिष्ट चिकित्साक्रम —

जलीकालीबुर्श्वं गैर्वाशिराया मोक्षणेन वा। रक्तं विनिर्हरेत प्राज्ञो विविच्युत बलावलम्।।

- (१) रक्तमोक्षण वृनकरोग के प्रवुद्ध उपद्रवों व तात्कालिक तीन्न केण्ट निवारणार्थ रक्तमोक्षण अपूक उपाय है। जोंक, तुम्बी, प्रृंग अथवा शिरोमोक्षण द्वारा रोगी का बलावल देखकर रक्त निर्हरण करना चाहिए। चिकित्सक के लिए कृतकर्मा होना आवश्यक है। यूरीमिया के लक्षणों की वृद्धि हो जाने से अन्नप्रणाली में क्षत होकर रक्तातिसार भी हो सकता है तथा नासिका से भी नकसीर फूट पड़ती है तथा इन लक्षणों की तत्काल शान्ति के लिए शिरोमो-क्षण करना चाहिए तथा शिरोमोक्षण का अभ्यास न हो तो कूर्णर मध्य शिरा से सिरिज द्वारा भी रक्ताकर्षण साध्य होता है। तोन्न लक्षण कम होने पर औपधियों द्वारा रक्त शोधन करना चाहिए।
- (६) औषघोपचार-धातु पोपक, अग्निप्रदीपक, हृद्य अन्तपान एवं औषधि का प्रयोग करना चाहिए। प्रारम्भिक अवस्या में रोगी का मलमूल विसर्जन स्वभाविक होता रहे

एतदथं अग्निप्रदीक अनुलोमक औषिष्ठ प्रयोग के साथ-साथ पौष्टिक आहार तथा व्यायाम पर्याप्त है। नियमित रूप से मलोत्सगं होता रहे एतदथं शिवाक्षार पाचन चूर्ण का प्रयोग कराते रहना चाहिए।

प्रयोग पञ्चक-चिकित्सा-व्यवस्था क्रम-

- (१) सर्वतोभद्र वटी (भैपज्य रत्नावली)-स्वणं भस्म, रजत भस्म, लौह भस्म, अश्रक भस्म, शिलाजीत, गन्धक, स्वणं माक्षिक इन्हें वरुणनवाथ से घोट कर २-२ रत्ती की बटी बनावें। प्रातः द वजे २ रत्ती मधु से चाटकर ऊपर सें गुरुच्यादि अर्क पीवें।
- (२) चन्द्रकला रस (योगूरत्नाकर मूत्र रोगाधि-कारोक्त)-११ वर्जे ४ रत्ती गुरुच्यादि अर्क से।
- (३) प्रभाकर वटी (भैषज्य रत्नावली) -- २ रत्ती ४ वजे दूध या गुरुच्यादि सर्कं से।
- (४) माहेश्वर वटी (भैपज्य रत्नावली)-वृवकायमा-धिकार) २ रत्ती रात में सोते समय गुरुत्यादि अर्क से।
- (५) गुरुच्यादि सकं (वैद्यराज हरदयाल जी वैद्य वाचम्पति का अनुभूत योग)— सकांडपता गुरुची, पर्षट, उशीर, नेत्रवाला, गोक्षुरू, पुनर्गवा पंचांग, काकमाची, फूल गुलाब, श्वेत चन्दन, रक्त कमल, सोंफ मीठी, कुमारी पत्र, पाषाणभेद, हरिद्रा प्रत्येक २६०-२६० ग्राम जीकुट करके १६ लिटर पानी में भिगो दें। प्रातः काल भवका यन्त्र से १२ वोतल सकं निकाल लें। वृक्क रोगियों के लिए अनुपान तथा जल के रूपमें पानायं प्रयोग करें। उपरोक्त चिकित्सा-क्रम वैद्य वाचरपति हरदयाल जी का अनुभूत है।

आहार — सर्वोत्तम निरापद आहार गाय या वकरी का दूध है। सत्तू व वार्ली वाटर, चावल का माँड, गेहूं का दिलया आह र में दिया जाता है। हाभ (नारियल का पानी) जल का प्रयोग उत्तम है। सन्तरा, मौसम्बी, अंगूर, पपीता, अनार, नाशपाती, द्राक्षा, चीकू दिया जाता है।

विहार—रोगी को शीत से बचाये तथा सर्वदा गर्म विस्तर पर रखे। शीतल वायु का सेवन, आद्र स्थान निवास व वर्षांकालीन जलप्लावित वात स्पर्श हानिप्रद है।

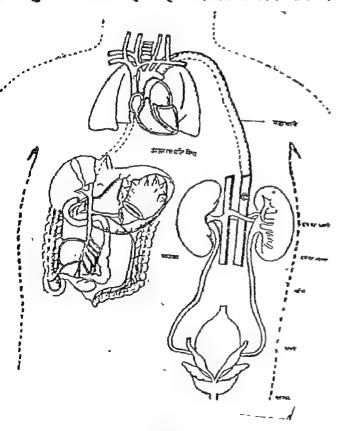
अपय्य — रोग की तीवावस्था में अन्त न दें। दिध केला अमस्द आदि गरिष्ठ फल भी खाने के लिए नहीं देना चाहिए। रोगी को मांस- मछली तथा मिर्च- मसाले तीक्ष्ण पदार्थों का सर्वधा त्याग करना चाहिए।

वुद्धिशोगिसेस्डिशिजिशे डा.सी.कार. भारत

श्री गंगाराम भाटी बायुर्वेद जगत के ख्यातनामा लेखक एवं सिद्धहस्त चिकित्सक हैं। आप भारतीय स्वास्थ्य एवं सामाजिक सूचना परिषद के हैं उपाध्यक्ष तथा जिला आयुर्वेद सम्मेलन पाली के अध्यक्ष है। आपने हमारे विशेष आग्रह पर लेख भेजकर अनुग्रहीत किया है। एतदर्थ हृदय से आभारी हैं।

-- विशेष सम्पादक 'धन्वन्तरि'

मानव शरीर में दो वृक्क होते हैं। इनका काम रक्त से मूत्र बनाना होता है। ये उदर के पीछे, पीठ से लगते हुये दायें जीर बायें होते हैं। बायां वृक्क ऊंचा तथा दायां उससे कुछ नं।चे स्थित होता है। इनका आकार सेम के



चित्र-६६

बीज जैसा होता है। लम्बाई इनकी लगभग चार इंच, चौड़ाई दाई इन्च तथा मोटाई एक इंच के लगभग होती

है। वृक्कों के ऊपर छोटे छोटे उपवृक्क भी होते हैं। वृक्कों की बनावट कुछ ऐसी विशिष्ट होती है, छलनी सी कि जिससे ये रक्त में से अनावश्यक जलीयांश तथा अन्य पदार्थों को छानकर मूत्र के रूप में मूल प्रणाली द्वारा सूत्राश्य में निरन्तर भेजते रहते हैं और उसे ही हम मूल के रूप में त्याग करते हैं। मूत्र प्रणाली अथवा मूलवाहिनी का एक हिस्सा ऊपर वृक्कों में वृक्ककोष, मीनारें, धमनी, शिरायें, केशिकायें, लिसका वाहिनियों एवं वातनाड़ी सूत्र समाहित रहते हैं। वृक्क मीनारों के शिखिरों में जो छोटे छिद्र होते हैं, उन्हीं से मूत्र रिस कर मूत्र प्रणाली में वाता है।

रक्त के पिष्टांश और शर्करांश वृक्कों द्वारा अलग हो जाते हैं और रक्त स्वच्छ होकर अपना यूरिया और यूरिक एसिड सूत्र में छोड़ते हुए कागे शरीर में भ्रमण करने योग हो जाता है। मूत्र प्रणाली की लम्बाई लगभग १० इन्ब से १२ इंच के करीब होती है। हम जो जल सेवन करते हैं वह शरीर को पुष्ट करता हुआ रक्त में मिलकर उसकी अणुद्धियों को धोने का काम करता है और विजातीय पदार्थों को धोने का काम करता है और विजातीय पदार्थों को लेकर मूत्र के रूप में शरीर से बाहर निकल जाता है। वृक्काश्मरी के कण तथा कभी कभी बड़ी संगिति रूप में वृक्काश्मरी निकल कर मूत्र प्रणाली में आती है और जब अटक जाती है तब रोगी को असह्य पीड़ा होती है। मूत्र प्रणाली से मूताश्मय में आने के बाद यह पथरी अगर मूत्रमार्ग में अटक जाती है तो मूत्र त्याग करते समय बड़ा कष्ट होता है। मूत्र त्याग अवरद्ध हो जाता है, जोर लगाने पर मूत्रमार्ग से रक्त आने लगता

मूञ रोग चिकित्सा

है और इस प्रकार मूत्राण्मरी की चिकित्सा लेना आवश्यक हो जाता है।

आयुर्वेदिक निदान ग्रन्थों मे वृक्क रोगों के निदान विस्तृत रूप में तथा विभिन्न वर्गों मे नही मिलते। परन्तु फिर भी मार्गदर्शन तथा चिकित्सा हेतु रास्ता वखूबी मिल जाता है। वे बताते हैं कि वृक्क रोगी की नाड़ी वेगवती तथा कठिन हो जाती है। रोगी को पीड़ास्वरूप निद्रा नहीं आती । त्वचा में रूक्षता तथा उष्णता प्रतीत होती है, स्निग्धता हट जाती है, रोगी अग्निमांद्यता का शिकार हो जाता है नेत्रों, पांबों तथा मुख पर शोथ के लक्षण उपस्थित हो जाते हैं। रोगी के शुद्ध रक्त के पर्याप्त मात्रा में न बनने से उसे रक्ताल्पता रोग वन जाता है जिससे मुख पीला सा नजर आता है। वृक्कों के स्थान अर्थात् कटि प्रदेश में पीड़ा होती है. पर पसीना नहीं होता। अगर होता है तो ठंडा पसीना होता है। अग्निमांद्यता के फलस्वरूप रोगी को अरुचि, उदरशूल एवं अपचन रहता है। खट्टी तथा चरपरी 'डकारें आती है, पेट ओर गले में दाह होती है। वमन होना भी एक मुख्य लक्षण है।

हृदय क मंपन भी होता है तथा रोगी को खास लेने में भी कव्ट प्रतीत होता है, मूत्रवेग शिथिल हो जाता है और मूतेन्द्रिय के अग्रभाग में दाह तथा पीड़ा लगती है। अगर वृक्क विकार जीर्ण एवं भीषण हों तो यकृत, प्लीहा तथा हृदय के अन्य रोग भी हो सकते हैं। वृदकशूल मे पीड़ा पीछे (पीठ) से आरम्भ होकर उदर (उदर) के आगे की तरफ आती है। रोगी को पीडा से ज्वर हो जाता है। कही कही अतिसार के लक्षण भी मिलते हैं। मूत परीक्षा कराने पर उसमें रक्तकण तथा एलब्यूमिन मिलता है। रोगी को कानों में एक गूंज सी सुनने को मिलती है तथा नेत्रशक्ति पर भी रोग का दुष्प्रभाव पड़ता है। सिर और ग्रीवा मे भी पीड़ा लगती है। रोगी के हाथ बौर पैर भारी हो जाते है। अधिक विकृति होने पर रोगी अचेत (वेहोश) हो जाता है। राश्वि में रोगी के सब ही जक्षण बढ़ जाते हैं। एक बात ध्यान में रहे कि सभी रोगियों में सभी लक्षण नहीं मिलते हैं, अतः लक्षणों की विभिन्तता के आधार पर ही रोग विनिश्चय करना चाहिये।

पश्चिमी चिकित्सकों ने अपने आधुनिक एलोपैथिक ग्रन्थों में वक्क रोगों का जहां अलग अलग वर्गीकरण किया है वहां उन पर खूब विस्तार से भी प्रकाश डाला है। वैसे भी आधुनिक तरीके से पश्चिमी लोगो की मान्यता के अनुकूल जीवनयापन करने तथा आहार विहार का सेवन करने से वृत्रक रोग खुद ही बहुत बढ़ जाते हैं. कारण उसमें शुद्ध पानी का बहलता से प्रयोग न किया जाकर उसके स्थान में अप्राकृतिक बीतलों में बन्द पेयों का प्रयोग घड्ल्ले से किया जाता है। मैं यह सब अपनी आंखों से देख चुका हूं। कारण विश्व के चौदह देों मे जो ३ बार जा चुका हं। ऐसे जीवनयापन से जहां दैनिक अनावश्यक खर्चे तो बढता ही है वहां शुद्ध जल के अप-यांद्र माला में प्रयोग से वृक्क रोगों का आगगन भी आरम्भ हो जाता है। हम अब अधिक विस्तार मे न जाकर वुक्क रोगों की चिकित्सा (संक्षीप में) पर प्रकाश डालेंगे । चिकित्सकों तथा रोगियों को चाहिये कि वे इससे सम्चित लाभ उठावें और अगर आवश्यक लाभ न हो तो शीघातिशीघ वडे हास्पीटलों या रोग विशेपज्ञो से निदान करवाकर उनकी चिकित्सा तथा मागंदर्शंन प्राप्त करें। वक्क रोगों से जीवन को वड़ा खतरा पैदा हो जाता है अतः अज्ञान में ऐसा खतरा मोल लेना उचित नहीं कहा जा सकता।

वृक्क शोथ-

(१) पूर्ण विश्वाम विस्तर में, (२) पानी पीने की कम दें, (३) नमक सेवन बन्द।

आयुर्वेद चिकित्सा—(१) मयूरशिखा, मक्की की मूं छें, खरवूजे के छिलके, गोखरू, पञ्चमूल, पुननंवा, कुटकी के २ तोले क्वाथ में ४ रत्ती शिलाजीत मिला रोगी को दिन में ३ दफा पान ।

- (२) गोक्षुरादि गुग्गुल, चन्द्रप्रभा वटी २-२ गोली प्रात सामं दूध से ।
- (३) शिलाजीत वटी १, चन्द्र प्रभावटी २, पुनर्नवा सव २ चम्मच छोटे तथा २ चम्मच लोहासव के साथ दिन में २ वार ।
- (४) कुलथी की दाल का पानी थोड़ा यवसार मिला-कर पान । जौ का पानी, थोड़ा नीवूरस डालकर पथ्य के रूप में।

एलोपेथी चिकित्सा—सिस्टैंबस टेबलेट २-२ गोली दिन में ३ वार दें। इनके साथ ही आवश्यकतानुसार

न्य रोगा चिकित्सा

एण्टीवायोटिनस, वमनरोधी एवं मूत्रल औषधियां भी दें।
एलोपैथिक औषधियों का प्रयोग केवल वे ही चिकित्सक
करें जो कि औषधियों का अंग्रेजी में पूरा साहित्य सही
सही पढ़ सकें एवं समझ सकें, अन्यथा नहीं करें।
व्यक प्रदाह—

आयुर्वेदिक चिकित्सा— (१) पुनर्नवा, गोखुरू, अनन्त-मूल, मकोय, निर्गुण्डी चूर्ण १ छोटा चम्मच भर दिन में ३ बार पानी से। नमक और खट्टे पदार्थ का सेवन बन्द कर हैं।

- (२) अगस्त सूतिराज रस ४ रत्ती मधु सें प्रातःसायं । सेवन ।
- (३) काला नमक, खुरासानी अजवायन १ माशा गर्म जल से दिन में ३ बार ।
- (४) गौमूत्र (यथासम्भव बछड़े का) २॥ तोला सेवन प्रातः एवं सायं।

एलोपैथिक चिकित्सा—(1) Furadentin (SKF) (2) Antibiotics (3) Septran Tab. 2-2 (4) Analgesics (जानकार एवं अस्छे पठित चिकित्सक ही प्रयोग करें, अन्य नहीं)।

वृक्कशूल-

आयुर्वेदिक चिकित्सा — (१) यवक्षार, कलमी शोरा, नीसादर, रेवन्दचीनी और सौंफ प्रत्येक १॥ माशा एवं मिश्री २ तोले। इन सदकी ४ खुराकें बना २-२ धण्टे से पानी से।

(२) यवकार १॥ माशा, मात्रा में जल से प्रति चण्टा जब तक दर्दे अथवा शुन न मिटे।

एलोपेथिक चिकित्सा— (1) Morphin Inj. (2) Pethedine Inj. (3) Fortwin Inj. (4) Valginate Inj. (Orient) शूलनाशक हेतु। वमन रोकने हेतु—(1) Largact l Inj /Tab (MB) (2) Siquil Inj./Tab. (Sarabhai)। किसी सही अनुपात में बने Alkaliser का पान करावें। रोगी को पूर्ण विश्राम विस्तर में करावें।

(एलोनैथिक औपधियां केवल पठित एवं अनुभवी चिकित्सक प्रयोग करें, अन्य नहीं)

वृषक वढ़ जाना—

मायुर्वेदिक चिकित्सा—(१) पुनर्नेवा एवं गोखरू

चूर्ण २ माशा दिन में दो वार पानी से।

- (२) गिलोय, गोखरू एवं पुनर्नवा चूर्ण १ छोटा चम्मच भर कर पानी से दिन में दो बार।
- (३) आरोग्यवधिनी वटी'.२, गोक्षुरादि गुगुत २ गोली (तोड़कर) पुनर्नवासव ४ चम्मच के साथ दिन में २ बार + रात्रि में २ गो. चन्द्रप्रभा वटी दूध से ।

एलोनेधिक चिकित्सा— (1) Dexamethasone Inj./Tab. (MSD) (2) Betamethasone (Glaxo) Tab./Inj. (3) Preduisolone or Prednison Tab. (any reliable Co.) (4) Antibiotics Inj/Tab. Septran group medi (BW)

(अंग्रेजी भौषिधयां अच्छे पढ़े लिखे चिकित्सक प्रयोग करें, अन्य नहीं) वुक्ताश्मरी—

वायुर्वेदिक चिकित्सा—(१) एरण्ड बीज १ लेकर छीलकर तवे पर सुर्खं होने तक भून लें। ऐसा १ बीज १५ दिन सुबह शाम दूध से सेवन करें।

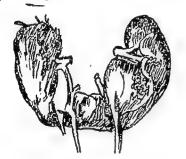
- (२) मूली स्वरस १०० मिलि. मिश्री मिलाकर केवस प्रातः पान करावे ।
- (३) मूत्र जांच कर उसमें यूरिक एसिड अधिक हो तो क्रूपन साल्ट आधा चम्मच ग्रम पानी से दिन में २ वार दें।

एलोपेथिक चिकित्सा—(1) Depropanex Inj. (MSD) (2) Cystone Tab. (Hima. Drug) २ गो. दिन में ३ वार पानी से। (३) कभी—२ अचानक दर्द हो जाये तो दर्दनागक कोई इन्जेक्शन कैसे—Valginate 3 c.c. (Orient) या कैपसूल Spasmo-Paroxon गर्म पानी या चाय से दें। X-Ray द्वारा समय समय पर जांच कर पता लगाते रहें कि अभ्मरी दवाइयों से कितनी घटी। अगर आणाप्रद लाभ न हो तो शल्य विशेषज्ञ से सलाह लें, आपरेशन करावें।

—डा॰ जी॰ बार॰ भारी डी.सी.एच., डी.आर.एस. (लंदन), एम.ए.एम.एस. (लाहोर), एम.एस.सी.ए. (झांसी), आयुर्वेद रत्न (प्रयाग), आयुर्वेद मनीपी (जयपुर), आयुर्वेद महोपाष्ट्रयाय (हैदरा॰) पाली (गजस्थान)

नुक को सहज विकृतियां विकास अन्यक्षर-कविश्वात की विविधासानाक क्रिय

(१) अश्वताल वृक्क—अश्वनाल के आकार के वृक्क दोनों ओर के वृक्कों के निम्न झुवों की ओर कभी कभी कर्ट्य झुवों का जुड़ जाने का परिणाम होता है जिसमें

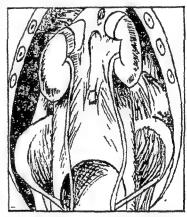


चित्र सं०-६७

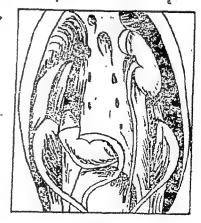
दोनों पार्श्व के वृक्क आपस में जुड़कर उदरीय महाधमनी (Abdominal aorta) के अग्रभाग में स्थित हो जाते हैं। इसके अन्तर्गंत रोगी किसी प्रकार का कोई प्रत्यक्ष लक्षण या नैदानिक दोष नहीं बताता। वृक्क की गोलिका, जो सामान्यतया वृक्क चाहिनियों के पीछे से निकलती है। इस अवस्था में उनके सामने रहती है और इससे गोलिका गंवीनी संगम पर अवरोध उत्पन्न होने से जलीय वृक्कता (Hydro Nephrosis) उत्पन्न हो सकती है। यह दशा उत्सजंन गोलिका चित्रण द्वारा या उदर के साधारण विकिरण चित्रण द्वारा पूर्ण रूपेण जानी जा सकती है।

(२) एकाकी वृक्क—यह अत्यन्त विरल अपसामा-न्कता है। १००० में से एक में यह पायी जा सकती है। एकल वृक्क अन्यया पूर्णतः सामान्य स्वस्य वृक्क होता है जिसका जीवन में सन्देह भी नहीं होता जबतक कि उत्स-जंन गोलिका चित्रण (Excration Pylogram) न लिया जाय। इसका विशेष रूप से शल्यकमं के समय ध्यान रखना चाहिए कि किसी व्यक्ति में एक ही वृक्क हो सकता है। इसकी पुष्टि एक्सरे से की जानी चाहिये।

(३) स्थानेतर वृक्क (Ectopic kidney)—यह अपसामान्य दशा भी १००० रोगियों में एक में पायी जाती है। कभी कभी एक वृक्क किसी अस्वाभाविक स्थान जैसे त्रिकास्थि (Sacrum) के सामने विद्यमान दृष्टिगत



चित्र स्० ६=-स्वस्थानस्य वृक्क



चित्र सं १६ - स्थानेतर दक्षिण वृदक

मूबा रोग चिकित्सा

होता है। इसका निदान कठिन हो सकता है। कभी कभी सहज एकल वृक्क श्रोणी में मिलता है। इसकी पुष्टि एक्सरे द्वारा हो जाती है।

- (४) लघु वृक्क कभी कभी जन्म जात ही वृक्क का आकार बहुत ही छोटा हुआ करता है जिससे बाह्यदलपुंज (Calyx) बीर भी छोटा होता है। परन्तु इसकी आंत्र वृक्कीय रूप रेखा में कोई भी अनियमितता तथा वल्कुर मोटाई (Cortical thickness) एक्सरे के अन्दर नहीं दिखाई देती।
- (५) उभय वृक्क—नियमित एक वृक्क में एक गवीनी और एक गोलिका होती है, पर कभी कभी दो गोलिकायें और दो गवीनियां भी मिलती हैं। ऐसे व्यक्तियों में गवीनी कलिका (ureteric bud) दो में विभक्त हो गई है और एक बोर दो वृक्क वन गये हैं। उभय वृक्क के उद्ध्वंभाग की गवीनी मूत्राध्य में दूसरी के अपेक्षा नीचे खुलती है। वह कभी कभी असामान्य स्थानों योनि, स्त्री मूत्र मार्ग, शुकाशय या पुरस्थ प्रन्थि में खुलती है।
 - (६) उभय मूत्रवाहिनी—कभी कभी जन्मजात विकृति के विरूपण में एक ही वृक्क से दो मूत्रवाहिनियां (Ureters) सम्बन्धित दिखाई देती हैं। इनके कारण सामान्यतया कोई असुविधा नहीं रहती। परन्तु कभी कभी उनमें उपसर्ग के पुनरावर्तन की सम्भावना रहती है।
 - (७) एक पार्श्वी संयुक्त बृक्क (Unilateral fured kidney)—इस अवस्था में दोनों वृक्क एक ही ओर हो जाते हैं और अवग्रह (Sigmoid) आकार या केक (Cake) के समान रूप घारण कर लेते हैं। एक गवीनी मध्य रेखा में शाकर मूत्राशय के सामान्य पार्श्व पर पहुंचती है-ऐसा वृक्क प्रायः कब्टकर होता है।
 - (c) बहुपुटीयुक्त वृक्क (Polycystic kidney)— वृक्क वस्तु में बहुत सी पुटी होती हैं जो केशिका स्तवक

द्वारा स्रवित तरल के संग्राहक सूक्ष्मनिकाओं में न पहुंच सकने के कारण उत्पन्न होती हैं। अतः इसका कारण कुछ सूक्ष्म निकाओं में वृक्क के स्नावी और उत्सर्गी भागों का संयुक्त व होना माना जाता है।

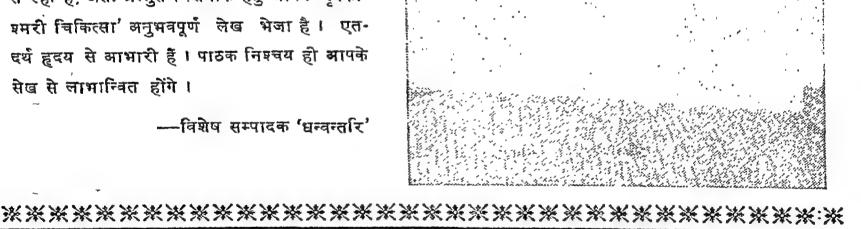
- (१) अपसामान्य रक्त वाहिकायें—वृक्कों के श्रोणि में स्थित रहने पर श्रोणिफलक रक्त वाहिकायों से रक्त बाता है। उनके आरोहण के पश्चात् किट प्रदेश में पहुँचने पर महाधमनी से रक्त आने लगता है और ये शाखा मुख्य वृक्क धमनियां बनाती हैं। किन्तु कभी कभी महाधमनी की शाखाओं के अतिरिक्त अन्य रक्त लाने वाली शाखायों जीवन भर वैसी ही बनी रहती हैं।
 - (१०) गवीनी की अपसामान्यता दो गवीनियों तथा दो गोलिकाओं का बनाना सबसे अधिक होने वाली अपसामान्यता है। यह गवीनी निलका के दिशाखन (Bifurcation) का परिणाम होता है। गवीनी सम्पूर्णतः दो हों या अधोप्रान्त पर पहुँचकर मूद्राशय में प्रवेश के पूर्व जुड़कर जाय या गवीनी योनि, मूद्रमार्ग आदि अनुचित स्थानों में खुलें।
 - (११) मूत्रवाहिनी वृक्त द्रोणिसंगम संकीर्णन—कभी कभी जन्मजात वृहद वृक्त द्रोणि तथा मूत्रवाहिनी के उच्च निवेशन (High insertion of ureters) के कारण वृक्त द्रोणि का वायतन प्रसार (Dilalation of Pelvis) तथा मूत्रवाहिनी वृक्क द्रोणि का आंशिक अवरोध हुआ करता है। इसके कारण शिरान्तरीय वृक्त निवाय चित्रण में काफी विलम्ब हो जाया करता है। यद्यपि साधारण एक्स-रे में इसके अन्दर बहुत कम ही परिवर्तन दिखाई देता है।
 - (१२) मूत्रवाहिनी (Mega uretes)—मूत्र वाहिनी का यह आयतन प्रसार जन्मजात विकास सम्बन्धी विकार के कारण हुआ करता है।

-- किव श्री गिरिधारी लाल मिश्र ए॰, एम॰ बी॰ एस॰ सबीक्षक-श्री केदारमल मेमोरियल आयु धर्मार्थं चिकित्सालय तेलपुर (असम)

वैद्य अम्बालाल जोष्ट्री आयु. केसरी

ं 'धन्दन्तरि' के गतवर्ष (सन् १६८२) के 'ज्वर-रोग चिकित्सांक' के यशस्वी विशेष सम्पादक वैद्य-राज श्री अम्बालाल जी जोशी राजस्थान के श्रेष्ठतम चिकित्सकों की प्रथम पंक्ति में प्रतिष्ठित हैं। पत्र-कार तो आप एक युग से हैं। आयुर्वेद संसार में आपकी लेखनी के चमत्कार से कौन अपरिचित मिल सकता है। 'धन्वन्तरि' पर आपकी कृपा सदैव से रही है, अतः प्रस्तुत विशेषांक हेतु आपने 'वृक्का-श्मरी चिकित्सा' अनुभवपूर्ण लेख भेजा है। एत-दर्थ हृदय से आभारी हैं। पाठक निश्चय ही आपके सेख से लाभानिवत होंगे।

-- विशेष सम्पादक 'धन्वन्तरि'



व्वक मूत्रजनक सम्पूर्ण अवयव को कहते हैं। इसे यूनानी में गुर्दा, अंग्रेजी में किडनी कहते हैं। सीलिक तन्तुओं द्वारा निर्मित इस स्थान में जब मूत्र कण या मूत्र शकरा जम जाती है तब 'अशम' पथरी Stone या अश्मरी का निर्माण हो जाता है। इसे वृक्काश्मरी स्थान विशेष के कारण कहते हैं। यह अन्य स्थानों पर भी हो

सकती है

बायुर्वेद वाङ्मय में अश्मरी चार प्रकार की वताई

गई है—(१) वातज, (२) पित्तज, (३) श्लेष्मज. (४) शुक्रज ।

प्रायः सभी अश्मरियों में श्लेप्मा को ही उनका आश्रय माना गया है। यह घोर, घोरतर तथा घोरतम होती है। समय रहेरी यदि इसका उपचार नहीं किया गया तो यम के समान यातना देने वाली होती है। यों अक्मरियां एक दोपज नहीं होती, त्रिदोपज होती हैं।

अश्मरी की पूर्वावस्था में आध्मान, वृक्क के निकट-

सूबा रोगा चिकित्सा

वर्ती प्रदेश में हल्की पीड़ा तदन्तर उग्र पीड़ा तथा मूत्र में अजा मूत्र की सी गन्ध, मूत्रकृच्छ, ज्वर तथा अक्चि हो जाती है।

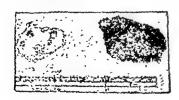
वृक्क में अश्मरी का चयापचय परिवर्तनों के कारण मास्वीया निग्मीय, प्राङ्गारीय तथा चूर्ण कण संचित हो



चित—७०
वृक्क स्थित अश्मरी के
दवाव से वृक्क कोषों
का विनाश हो
गया है।

जाते हैं। इस प्रकार अवमरी कु निर्माण होता है। आयु-वेंदीय मत से सिकता (कुछ छोटे कण) तथा शकरा (कुछ बड़े कण), कफ की सान्द्रता के कारण एक दूसरे से चिपक कर पथरी बना देते हैं। इस अवमरी में मूत्र विसर्जन करते समय वृक्क में हल्की पीड़ा होती है। यह पीड़ा कटि प्रदेश से प्रारम्भ होकर वंक्षण तथा वृष्णों तक आ जाती है। यदि वहां क्षत हो जावे तो रक्त या पूर्य मिश्रित मूत्र का प्रवाहण होता है। भौतिक परीक्षण में रक्त कण, पूर्य कण तथा चूर्ण कण निकलते हैं। मूत्र कठिनता से उत्तरता है। कुछ विवन्ध भी रहता है। यदि अवमरी नीचे जतर आवे तो मूत्र में दो धारायें आती हैं। मूत्र गन्दा (धूसर) आता है। शर्करायुक्त होता है। प्रायः पुरुषों में बाल्यावस्था या युवावस्था में होती है।

. वातिक अश्मरी—वातिक अश्मरी का रोगी पौड़ा से अत्यन्त दुखी होकर दांत चबाने लगता है, कांपता है,



चित्र — ७ ¶ वातिक अश्मरी (आक्जेलेट अश्मरी)

रोता है, तथा पीड़ा से आतुर हो जाता है। वृनक स्थान पर (चिल ७४)तीव पीड़ा होती है। सूत्र में भी अवरोध होता है तथा मल त्याग में भी कठिनाई होती है। अश्मरी चरक मत से कदम्ब पुष्प के आकार की तथा सुश्रुत के मत से विपमाकार होती है। यह कण्टकाकीण श्याम अथवा अरुण होती है। इसे अंग्रेजी में यूरिक एसिड कल्कूलस कहते हैं। यह आग्जलेट से निर्मित होती है।

पैत्तिक अश्मरी— पैत्तिक अश्मरी में वृक्कों में दाह, मूत्र विसर्जन में जलन तथा वृक्क स्पर्श से उच्छा होते हैं। अश्मरी रक्तवर्ण, पीतवर्ण अथवा श्यामवर्ण की होती है। इसे अंग्रेजी में मिक्सड केल्कयूलस कहते हैं। यूरिक एसिड यूरेट, कार्वोनेट से यह निर्मित होती है। यह पित्तज अश्मरियों की श्रेणी में गिनी जा सकती है।

श्लिष्मिक अश्मरी—इस अश्मरी में वृतकों में भारी-पन, पीड़ा, शियिलता, गुरुता, स्पर्शता में शीतलता होती है। यह अश्मरी चिकिनी, सफेद, कुक्कुटाण्ड के रङ्ग के आकार में अन्य अश्मरियों से बड़ी होती है। इसे अंग्रेजी



चित्र—७२ श्लैष्मिक अश्मरी (स्टोन ऑफ फास्फेट)

में 'स्टोन ऑफ फास्फेट' कहते हैं। फास्फेट से निर्मित यह पथरी कफज होती है। फास्फेट वायु के संयोग संस्थान विशेष में जम कर पथरी वना देती है।

वचपन में वच्चे पत्थर, चूना, रेती आदि खाते हैं। वह शरीर के विभिन्न अवयवों में रुककर वहां जमकर पथरी बन जाता है। इनको निकालने का काम बायु करती है जो उठकें जाने से उन्हें रोक भी देती है। यह विजातीय द्रव्य विशेषतः वृक्क तथा मूत्र संस्थान में कहीं भी जमा होकर अश्मरी स्थित कर देते हैं।

णुक्राएमरी—यह पथरी वृन्कों में नहीं जमती अतः इसका उल्लेख या वर्णन हम यहां नहीं करं रहे हैं।

ये अश्मरियां अधिकतर वच्चों में ही होती हैं। कभी कभी वे अज्ञात रूप में अवयव में स्थित रहती हैं तथा युवावस्था में ज्ञात या प्रकट होती हैं। जबिक वे अधिक पीड़ा उत्पन्न कर देती है या अन्य चिह्न प्रकट होते हैं।

and the factor

अश्मरी के बड़े दुकड़ों को शर्करा तथा छोटे दुकड़ों को सिकता कहा गया है। बाग्भट्ट के मत से वायु जहां



चिल्र-७३

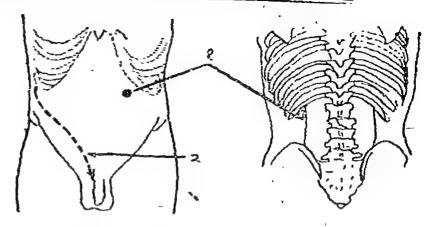
शत्य क़िया से निकाली गई मूत्र गवीनी की अश्मरी

अनुलोमन होकर अश्मरी के दुकड़े-दुकड़े कर बाहर निकाल देती है वहां यह प्रतिलोमन कर उन्हें ऊपर ही रोक देती है और इस प्रकार मूलकुन्छ हो जाता है।

सापेक्ष निदान-

सापेक्षता की हिष्ट से कुछ रोग ऐसे हैं जिनको देख-कर अश्मरी का भ्रम हो जाता है उनकी संक्षेप में यहां उपस्थित किया जाता है—

- (१) आंत्रिक शूल—इसमें उद्घेष्टन होता है, नाभि के नारों ओर पीड़ा होती है तथा तीन्न वेग से पीड़ा होती है। पीड़ा स्थान दवाने से कुछ आराम मिलता है। इसमें अतिसार नहीं होता, रक्ताल्पता नहीं होती, कष्ट बढ़ता रहता है। किसी भी अवस्था वाले को यह रोग हो सकृता है जबकि अश्मरी में यथास्थान पीड़ा होती है, मूत्रावरोध तथा मलावरोध होता है।
- (२) पैतिक शूल यह दक्षिण पाश्वं में आरम्भ हो कर दक्षिण स्कन्ध की ओर असरण करता है। अनवरत शूल होता रहता है तथा वेगयुक्त होता है। इसमें कामला की संभावना रहती है तथा अन्य यकुद विकार के लक्षण भी मिलते हैं। चालीस वर्ष से अपर वालों के तथा अधिकतर विवाहित स्त्रियों में होता है। जबकि अध्मरी में ये लक्षण उपलब्ध नहीं होते।
- (३) मूत्रावयवजनित शूल—किट प्रदेश में पीड़ा तथा पीड़ा का प्रसार, मूत्र में शकरा प्राप्ति तथा रक्त कणों की प्राप्ति तथा मूत्र विसर्जन में पीड़ा। बालक युवा तथा बूढों में समानतया उपलब्ध इसके लक्षण अश्मरी से मिलते हैं

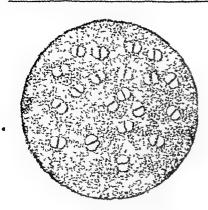


चित्र ७४ — वृत्कशूल — १. स्थिर शूल (बायीं कोर आगे की ओर का शूल-स्थान तथा दायीं ओर पीछे की ओर का शूल स्थान दर्शाया है) २. विन्दुदार रेखा द्वारा प्रसरणशील वृत्क शूल का मार्ग दिखाया है।

परन्तु आयु में भेद है। यों अष्मरी क्ष किरण परीक्षण द्वारा स्पष्ट की जा सकती है।

- (४) आंत्रपुच्छजन्यशूल-उदर के दक्षिण भाग में नाभि के नीचे शूल तथा पीड़ा का प्रसार, वमन तथा ज्वर तेज होना, आध्मान, पीड़ा स्थान से प्रसरित वेदना, स्पर्श में स्थान काठिन्य ये लक्षण इस रोग के होते हैं। किसी भी बय के रोगी को यह रोग आधात कर सकता है। जबकि वृक्काण्यूरी के सभी चिन्ह इससे भिन्न हैं।
- (५) प्रमेह—अधिकतर सिकतामेह तथा शनैमेंह का होना इस रोग से साम्यता रखता है। परन्तु इस रें अश्मरी रुकती नहीं, पीड़ा आदि का होना भी आवश्यक चिन्ह नहीं है। प्रमेह की ये दोनों ही जातियां हैं।
- (६) मूत्र मार्ग या वृक्त में ग्रन्थि—इस रोग में मूत्र में रक्त अथवा पूय की उपस्थिति रहती है। दूपण स्थान पर पीड़ा होती है। बार बार मूत्र त्याग होता है। कर स्पर्श से ग्रंथि का स्पर्श होता है। परन्तु पीड़ा का प्रसरण अश्मरी की तरह नहीं होता। यह रोग भी झ किरण यन्त्र से स्पष्ट किया जा सकता है।
- (७) उप्णवात (सुजाक) में मूत्र में जलन, पूय विसर्जन तथा बार बार मूल का दाह के साथ विसर्जन, मूत्र कर लेने के बाद फिर मूल त्याग की इच्छा होना। ये लक्षण

न्य रोगा चिनिहरना



श्रुजान के बीटाम्

चित्र---७५

अश्मरी में नहीं प्राप्त होते। मूत्र की अणुवीक्षण यंत्र द्वारा परीक्षा में मुजाक के जीवाणु की उपस्थिति तथा रक्त परीक्षा से उष्णवात रोग स्पष्ट हो सकता है।

इसके सिवाय वृक्क शोथ, ओजोमेह, वृक्क प्रदाह, साधारण वृक्क भूल, वृक्कार्जुद आदि रोगों से भी वृक्काश्मरी को स्पष्टतः प्रथक किया जा सकता है जो अन्य लेखों का विषय है। साधारणतः वृक्काश्मरी एक कठिन रोग है जिसकी चिकित्सा शल्य साध्य है। परन्तु यह पूर्णतः निरापद नहीं है। आयुर्वेद में भी सुश्रुत ने इसकी शल्य चिकित्सा का वर्णन किया है जो क्रिया साध्य है। फिर भी कुछ औषधियां भी बताई गई हैं जो वृक्काश्मरी के निष्कासन में उपयोगी सिद्ध हुई हैं। उनमें एकीषधि, संयुक्त औषधि प्रयोग प्रथक प्रथक वर्णित हैं। यहां हम कुछ ऐसे योगों को उपस्थित कर रहे है जो इस रोग में लाभ करते हैं—

- (१) कुलयी की दाल—इसे पानी में खूब उबाल कर अण्टमांश शेष रहने पर छान कर यवसार मिलाकर बार-बार पानी पीवें।
- (२) यव—को पानी में उवालकर अण्टमांश शेप रहने पर छान कर नीवू रस डालकर यवक्षार मिलाकर पान करें।
- (३) गोखरू—को चूर्ण कर पानी में उबाल कर चतु-धाँश शेप रहने पर छान कर पीवे।
- (४) मक्की की मूं छ (मक्की के बाल) को पानी में जनाल कर चतुर्थांश शेप रहने यवझार मिलाकर पान करे।

- (५) खरवूज का छिलका इसे उवाल कर चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर यवक्षार मिलाकर पीवे।
- (६) पपीते की जड़ इसे कूटकर उवाल कर चतु-थाँश जल शेप रहने पर छानकर पीवें।
- (७) मूली की जड़-का रस उचित मात्रा में यवक्षार मिलाकर पीने से लाभ होता है।

उपरोक्त एकीषधि जल को बार बार पीना चाहिए तब ही यह लाभ करता है। दिन में आठ दस बार पीनें। अन्य प्रयोग ये हैं—

१ पापाण भेद चूर्ण मात्रा ४ ग्राम को गोक्षरू क्वाय से पीने से लाभ होता है।

२. य्वक्षार ६ माशा-उपरोक्त किसी भी क्वाथ के साथ पीने से लाभ होता है।

३. वीरतर्वादिगण—वीरतरु (Dichrostachya Cinria) शर, अरनी मूल, पियावांस का लाल फूल, पियावांस का नीला फूल, पियावांस का पीला फूल, नरसल, मूर्वा नीलोफर, कुशमूल, अगस्त्य पुष्प, ब्राह्मी, काशमूल, दर्भमूल, अपामार्ग, गोखरू बड़ा पाषाण भेद अरलू।

माला १० ग्राम — विधिवत क्वाथ बनाकर दिन में ३ वार पीचें।

४. अश्मरी हर कपाय—पाषाण भेद, सगौनं के बीज, पपीता की जड़, शतावरी, गोखरू बरना की छास, कुश मूल, कासमूल धान्यमूल, पुनर्नवामूल (रक्त) गिलोय, चिचडामूल, ककड़ी के बीज, सभी १०-१० ग्राम, जटा-मांसी २० ग्रा., खुरासानी अजवायन २० ग्राम, (सिद्धयोग)

मात्रा १० ग्राम क्वाथ सिद्ध करे। १ ग्राम क्वेतपर्वटी मिलाकर पीवें।

४ त्रिकण्टकादि क्वाय — गोखरू, दर्भा, धमासा हरड़, अमलतास का गूदा, कास, पापाणभेद—समभाग । मात्रा २० ग्रा. क्वाय कर वार वार पीवें।

६. पापाण भेदादि क्वाथ-पाषाणभेद, वरुणत्वक, गोक्षरू, ब्राह्मी समान भाग्।

माता २० ग्राम-विधिवत कपाय छानकर इसमें शिला-जतु, ककड़ी के वीज, खीरा के वीजों की गिरी का कल्क मिलाकर गुड़ डाल कर पीवें।

and and intercal

७. वरुणादि ववाथ— वरुणछाल, गोखरू, कुलथी, कास, ईख, सूठ, मूसली, कुश, दर्भ, सर समान भाग मात्रा २० ग्रा. विधिवत ववाथकर यवक्षार मिलाकर पीवें।

उपरोक्त सभी क्वाथ दिन में बार बार पिलाये जाने चाहिए। ये अकेले या अनुपान रूप में भी प्रयोग किये जा सकते हैं।

·अन्य प्रयोग-

- (१) सर्वतोभद्र वटी (स्वर्णयुक्त)-१/१ ग्रा, त्रिविक्रम रस १/१० ग्रा., बदर पाषाण भस्म १ ग्रा.। १ मात्रा इसे मधु से चाटकर ऊपर वरणादि ववाध पीवें।
- (२) बदर पाषण भरम १ ग्राम, पाषण भिन्न रस आधा ग्राम । १ मात्रा वीरतर्वाद क्वाथ से ।
- (३) वहणाद्य लोहं १ ग्राम की मात्रा में त्रिकण्टकादि क्वाय के साथ लेवें।
- (४) वृक्क शूलान्तक चूर्ण—काला नमक, सज्जी-खार, नौसादर, यवक्षार सुहागे का फुला, अकरकरा, हींग, पिपरिमन्ट के फूल सभी समभाग। चूर्ण बनाकर मात्रा २ ग्राम।
- (१) एलादि चुर्णे छोटी इलायची दाने, पाषाणभेद, मुद्ध भिलाजीत पीपर वराठी इनका चूर्ण वनावें। माला २ ग्राम कुलस्य जल के साथ देवें।
- (६) माजून हिज्जलयहूद—कद्दू के बीज, ककड़ी के बीज, खरदूजे के बीज इन सब का मगज ४-४ ग्राम, काकनुज ४ ग्राम, हिज्जल यहूद पिष्टी ४० ग्राम सबको कूट कपड़छन कर शहद में मिलाकर माजून बनालें। (तिब्बे अकबरी) माला १-२ ग्राम बनुपान गोखक क्वाथ।
- (७) दानाह फिरङ्ग धारण—जिस वृदक की ओर अश्मरी शूल हो उसी ओर की अनामिका अंगुली में इसकी अंगुठी दनाकर पहनने से लाभ होता है। दानाह त्वचा को स्पर्श करता रहे।

यह दानाह (रतन) हरे रङ्ग का पत्यर होता है अन्य रत्नों की तरह अंगूठी में जड़वा कर पहना जा सकता है। (राजेश्वर दत्त शास्त्री)

हिज्ञल यहूद भस्म हजरतवेर पत्यर को लाकर कूट लें, फिर धमासे के रस में पीसकर टिकिया वनाकर सुखाकर गजपुट दें। इसी प्रकार मूली के रस में टिकिया

वनाकर एक पुट और दें। भस्म तैयार है। अधिक गुणों के लिये मूली के रस के और भी पुट दे सकते हैं।

मात्रा १ ग्राम । अनुपान विभिन्न ।

तिविक्रम रस-ताम्रमस्म १० तोले को बकरी के १० तोले दूध में मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। दूध सूख जाने पर १० तोले पारव तथा १० तोले गन्धक की कज्जली मिलाकर खरल करे फिर काले फूल की निर्मुण्डी की छाल के क्वाथ में ३ दिन खरलकर गोली बनावें। फिर सुखा कर शराब संपुट में बालुका यंत्र में रख कर १ प्रहर तीज्ञाग्नि दें। शीतल होने पर निकाल लें। मात्रा १/४गा.

सर्वतोभद्रवटी—स्वर्ण भस्म, रीप्य भस्म, अम्रक भस्म, लोह भस्म, गुद्ध शिलाजीत, गुद्ध गन्धक, सुवर्ण माक्षिक भस्म सम भाग—वरुणत्वक क्वाध की भावना देकर खरल कर वटी बनावें। मात्रा १/१० ग्राम

इस योग में डाली जाने वाली स्वर्ण तथा अन्नक भस्म करमी शोरे से बनाई गई हो तो अधिक लाभ करती है।

शीतल पर्वटी∸मात्रा १ ग्राम-यह आयुर्वेद का प्रसिद्ध योग है। इसका प्रयोग अश्मरी खण्डन के किया जा सकता है।

इस रोग में पथ्यापथ्य का भी उतना ही घ्यान रखना चाहिए जितना औषि सेवन का—

पथ्य पुराना चावल, यव, गोधूम की यवागू, कुलथी दाल, मूंग की दाल का जूस, चीलाई, मूली, लौकी, चौपतिया, खीरा, ककड़ी, खरवूजा, पपीता, नीवू, आर्ड क, गो दुग्ध, छाछ, नारियल का पानी, चीनी आदि का सेवन उचित है।

अपय्य चृत, भारी चीज, अम्ल, विष्टम्भी, रूक्ष, गुड़ मूत्रावंरोध ये सभी अपथ्य हैं।

अगुर्वेद में आज अनेक अस्मरी निकाल बाहर करने वाली औषधियां है जिनके आधार पर अनेक औपधि निर्माण शालाओं ने अपने पेटेन्ट योग बनाकर तैयार कर दिये हैं तथा जिनका नामकरण भी अंग्रेजी में कर दिया है जिससे डाक्टर लोग इनका प्रयोग कर सकें। वे सभी प्रयोग अपनी अपनी विशेषतायें रखते हैं।

> —वैद्य पं० अम्बालाल जोशी आयुर्वेद केशरी आयुर्वेदाचार्य, साहित्याचार्य पुंगल पाड़ा, जोधपुर (राजस्थान)

दिविद्यार्थित विश्वनाथ दिविद्य

बाचार्यं विश्वनंश्य जी द्विवेदी बायुर्वेद जगत के स्याति प्राप्त चिकित्सक, लेखक एवं अनुसन्धारक हैं। एक दर्जन से अधिक पुस्तकों प्रका-शित तथा २०० से ऊपर अनुसन्धानात्मक महानिबन्धों के निर्देशक तथा अखिल भारतीय इन्स्टोट्सूट ऑफ आयुर्वेदिक प्रक्षिक्षण व अनुसन्धान के निदे-शक रह चुके हैं। आपका वृक्कशूल लेख अनुमूत योगों सहित भेजकर तथा डा० गणनाथ वी० द्विवेदी जी का 'अभ्रक सत्व मस्म का मधुमेह पर प्रभा-बात्मक उपयोग' लेख प्रेषित किया है एतदथं अनुप्रहीत हैं तथा' आपका अभिनन्दन करते हुये हृदय से आभारी हैं। — विशेष सम्पादक 'धन्दन्तरि'



परिचय—वृक्कद्वय शरीर के ममंत्रय में गिने जाते हैं।
वृक्क एक अद्वितीय यंत्र है। यह पृष्ठवंश के १३ वीं, १४
वीं पर्जु कायों के क्षेत्र के नीचे उभयतः होते हैं। इनका आकार श्कशिम्बी के आकार का होता है। इनका कार्य जाग्रत और सुषुप्तावस्था में सदा होता रहता है। यह शरीर को स्वस्थ रखने के प्रधान यंत्र हैं। इनमें शिराओं द्वारा रक्त आता है और छनकर पुनः धमिनयों द्वारा लीट जाता है। रक्त से जिन वस्तुयों की आवश्यकता रक्त में नहीं होती ये छानकर बाहर मूत्र द्वारा निकाल देते हैं। अतः मूत्र में यूरिया-अनेक प्रकार नमक छन जाते हैं और मूत्र में निकलते रहते हैं। जब वृक्क रूण हो जाता है, उसमें शोथ होजाता है, अर्घु द या अन्य रोग होजाते हैं, अधिक काम करना पड़ता है तो यह कई प्रकार की वेदनाओं से युक्त हो जाता है।

निवान -

अधिक तीक्ण, उष्ण-अम्ल व सार के सेवन से तथा अधिक द्विदल (दालें) या प्रोटीन के सेवन से आवास तथा अभिधात के कारण वृश्क का रोग होजाता है।

कियाहानि होने पर अनेक रोग जैसे प्रमेह के रोग वृक्क के रोग, रक्त हास, पांडुता स्वैदावरोध, त्वचा की क्रिया हानि अधिक मधुर से बने, मूल, मूल शर्करा, मूला एमरी तथा हृदय के रोग होने से वृक्क को अधिक कार्य करना पड़ता है।

यह ममंत्रय (हृदय, मस्तिष्क, वस्ति शिर) में गिना जाता है अतः इसके रुग्ण होने पर हृदय के रोग, मूत्र के रोग, मस्तिष्क के रोग हो जाते हैं। इनका आपस में घनिष्ट सम्बन्ध है अतः एक के रुग्ण होते ही तीनों रुग्ण हो जाते हैं। वह चाहे आंशिक इप में हो या विशिष्ट रूप में हों।

नया अन्न गुड़ के बने पदार्थ-अधिक आलस्य, अधिक सोना, दुग्ध के वने पदार्थ-दही के बने पदार्थ, मांस का सेवन अधिक करना, शर्वंत अधिक पीना, सोडा झारीय द्रव पीना, अधिक चाय या काफी का पीना यह सब वृक्क के रोग पैदा करने में सहायक हैं। यों तो इसकी रचना प्रकृति ने ऐसी बनाई है कि यह रोगी नहीं होते—बारी बारी से आराम करते रहते हैं परन्तु अधिक काम होने पर इनमें रोग हो जाते हैं। यों तो प्रमेह इसका प्रधान रोग है। जब प्रभूत मूब होना-आविल (गंदला) मूत्र होना, कम मूत्र होना इसके प्रारम्भिक विकृति लक्षण हैं।

वृनकण्यल जब वृनक की उत्सिकाएं शोधयुक्त हों जब इनमें क्षय हो, जब अधिक आमिप सेवन से इनके

मूज राग चिकिट्स

मुख बंद हो जाये या उत्सिका कम काम करे, जब मनुष्य अधिक दाल के बने पदार्थ खाये तो इनका मुख रुग्ण हो जाता है और रक्त छनने का काम कम हो जाता है। लालामेह (Albumen Urea) के देर तक बने रहने व चिकित्सा न करने से । क्षारीय पदार्थ, चूना, सर्ती अधिक खाने से, जौ, मटर व वेसनके पदार्थ खाने से कई प्रकार के लवण मूत्र में उत्सर्जित होते हैं। क्षारों के उत्सर्जन से वृक्क खण्डों, उत्सिका, व पिरामिडों में (जो वृक्क की रचना के अंश हैं) झार संचय होता है तो कालान्तर में वह जम-कर धीरे धीरे शक्रा व बरावर वृद्धि होने पर पथरी के छोटे कण के रूप में जमा होने लगते हैं और मूत्र के साथ उत्सर्जित होते हैं। बड़े होने पर गवीनी में अटक (फंस) जाते हैं और गवीनी में जाकर पतले भाग में अटक जाते हैं। तब भयंकर शूल पैदा होता है, छोटे होने पर बराबर प्रवा-हिका होने से तीव वेदना होती है बुक्काश्मरी का रूप वन जाता है। वेदना के मारे रोगी चिल्लाता है रोता है। यह वेदना गवीनी में एक जाने से होती है। किन्तू वेदना का क्रम कटि, पृष्ठ, वस्ति प्रदेश, मूत्रनलिका के अप्रभाग में ज्ञात होता है। वेदना के समय रोगी का मुंह लाल हो



वृक्काश्मरी रोगी की खड़े होने की विशिष्ट आकृति

जाता है, पसीने छ्टने लगते हैं और मून्छित तक हो जाता है। वहरा सफेद पीला होजाता है। यह वृक्काश्मरी जिनत शूल होता है। विस्त के रोग होने पर शूल होता है यूरिया के अधिक निकलने, वृक्कशोथ, (Nephritis) में भीवेदना होती है। वृक्कश्मय, वृक्क आघात क्रण में भी शूल होता है। अतः निदान हो जाने पर चिकित्सो उचित होती है। वृक्क शूल के अश्मरी जन्य शूल में निम्न औषधि की जाती है। चिकित्सा—

स्मेहन-स्वेदन, भौषधि (संशमन) सहयोगी अन्य भौषधि प्रदान करना है। स्नेहन—

- (१) वृक्कप्रदेश या वेदनाके प्रदेश पर हिंगुत्रिगुंग तैल या महानारायण तैल की मालिश कर उष्णकैलिक विधि से स्वेदन करना होता है। प्रगाढ़ स्वेद से कुछ व्यथा कमहोती है।
- (२) एरण्ड मूल—मेंउड़ी के पत्र, धतूर पत्र का कल्क बना इसे एरण्ड तेल में गर्म कर पोटली से स्वेद लाभदायक होता है।
- (३) गर्म पानी को रहर के थैले में भरकर तारपीन का तेल वेदना स्थान पर लगाकर स्वेद करना चाहिए। नौपधि—

वेदना हारक, वेदना शामक दवा देने से वेदना कम होजाती है। धीरे धीरे गवीनी में कण या अश्मरी का भाग निकल जाने से दर्द बन्द होता है। अधिकेन मिश्रित दवायें या इसके सत्व से बनी औषधियां देने से वेदना शांत होजाती है।

- (१) वेदना स्थापन रस— शुद्ध हिंगुल, शुद्ध कपूर भीर शुद्ध अहिफेन समभाग मिलाकर १-१ रत्ती की गोली बनाइये। किसी प्रकार की वेदना में १-२ गोली उष्ण जल से दें, ददं बन्द होगा।
- (२) वेदनाहर—आज अनेकों द्रव्य वाजार में मिलते हैं। ददं बन्द न होने पर आधुनिक चिकित्सक मारफीन ब कोडीन आदि का इञ्जेनशन देते हैं। रोगी वेहोश होकर सो जाता है। पेशी शैथिल्य शिरा शैथिल्य होकर अश्मरी मूत्राशय में पहुँचती है। वेदना शांत होती है।

स्याई चिकित्सा - यह शूल अच्छा होने पर भी वार-वार होता है। अतः इसकी चिकित्सा स्याई की जाती है। स्यायी चिकित्सा आयुर्वेद की ही होती है। अतः यह चिकित्सा दर्द बंद होने के वाद करनी चाहिए।

तारकेश्वर रस—ं दत्ती की मात्रा में वरुणादि

मूडा योग सिंदरस्य

कपाय ५ तो. के साथ सेवन करें। लगातार सेवन से वृक्क शोथ समाप्त होकर बदमरी शर्करा वन कर निकल जाती है। मार्ग साफ हो जाता है।

- २. बदरीपापाण भस्म—२ रत्ती की मात्रा में वरु-णादि कपाय से लगातार २१ दिन या ४१ -दिन देने से अश्मरी बनना बन्द हो जाती है। वृत्कदोप रहित और क्षार संग्रह नष्ट हो जाता है।
- ३. श्वेतपर्पटी १ माशा, बदरी पापाण भस्म २ रत्ती की एक मात्रा बनाकर ऐसी दो मात्रायें नित्य तें—पथरी गलकर वह जायगी व गवीनी से निकल कर वस्ति में चती जायगी और मूत्र के साथ वाहर वा जायगी।

यह नं ० २-३ के योग बहुत रोगियों पर परीक्षित हैं। मूलल सब योग हैं परन्तु यह सबसे अधिक मूत्रल है।

वायुर्वेद में तीव मूज्ञल योग नहीं है। पंचतृण कषाय वरुणादि कपाय पापाण भेद रस, पापाण भेद के मूल का पूर्ण मूज्ञल हैं परन्तु अधिक मूत्रल नहीं है। बाधुनिक मूत्रल लैसिक्स के समान कोई योग बायुर्वेद के नहीं ठहरते किन्तु यह २ मात्रा में नं. ३ का मूत्रल व पायाण भेदक है।

४. वृक्कशोध में वरुणादि कपाय शोप नाशक व मूत्रल है। तथा एटीसेप्टिक है। सतः वल्य व मूत्रल देकर वृक्क को शक्तिशाली वना सकते हैं।

वृक्क को वलदायक दोपहर रस-

- (१) वातकुशान्तक रस-१ से ३ रती सदा बल-दायक और शोथहर वेदनाहर रस है। इसको वेदना शांति की तरह प्रयोग करें।
- (२) वसंत तिलक यह विदनाहर, शोयहर, वृक्क-बल्य तथा वृक्ककार्य नियंत्रक रस है। इसे २-३ रती तक की मात्रा में वरणादि कपाय के साथ प्रयोग करें।
- (१) वसंत कुमुमाकर रस— वृषकशोथहर, वृक्कवल्य व बड़ी मात्रा (३-४ रती) में मूत्र के छनने की शक्ति का नियामक, मूत्र अल्प लाने वाला बलदायक और मूत्र संग करने वाला रस है। वृक्काश्मरी, वृक्कशूल के बाद देवें।
- (४) वहुमूत्राक्तक रस-वृदक बत्य और वृत्कशूल-हर भी है। वड़ा गोक्षर बीज चुणे के साथ लाभप्रद है।

आयुर्वेदिक ग्रन्थ रत्नं

नैदानिक परीक्षण पद्धति -

आजकत हर एक रोग में रक्त, मूत, मन यून की परीक्षा कराना आवश्यक समझा जा रहा है किन्तु आयुर्वेद में बक्षी तक इस प्रकार की परीक्षा का अभाव रहा है। आयुर्वेद में विलिनिकल टैस्ट न होने से आधुर्विक प्रकार से परीक्षा पर लैकड़ों रुपये वहाये जाते हैं। आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी ने नये खोज से वात पित्त कफ की परीक्षा विधि खून, मूत्र, मल, यून, वमन, रज, वीर्य की परीक्षा विधि की आयुर्वेद विधि से खोज की है। इससे आप वात पित्त फफादि की परीक्षा घर वैठे कर सकते हैं, गोपनीय न रख इस परीक्षा की पुस्तक में परीक्षा के मसालों के साथ लिखा है। आप चिकित्सक हैं तो एकवार परीक्षा कर देखें। मूल्य २४)

इसके साथ परीक्षण के मसालों का सैट भी प्राप्त है। मूल्य ५० रु०

योग चिकित्सा व उदर रोग निवारण-

योग चिकित्सा में फुछ आसनों व विधि के पांच मिनट के प्रयोग से अपनी चिकित्सा आप स्वयं कर सकते हैं। यदि वाप उदर रोग जैसे पेट फूलना, अफरा, अग्निमांद्य, ग्रहणी, आंव पेचिस के रोगी हैं तो एकवार अवश्य पुस्तक मंगाकर अपने पास रिखये। मूल्य = रू० आपका स्वास्थ्य आपको सूडी में—

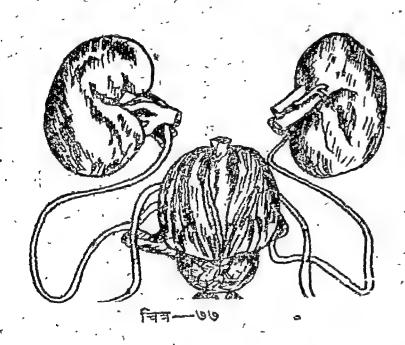
यथा नाम तथा गुण इस पुस्तक को पढ़ कर बाप अपेनी सेहत को अपने आप सुधार सकते हैं। आप चाहते हैं कि मौज में रहें और रोगी न हों तो इस पुस्तक का अवलोकन करिये। इसको सरल भाषा में रोज रोज के रोगों से वचने की विधि दी है। मुल्य ६ रु०

एक साथ तीनों पुस्तक मंगाने पर २० प्रतिशत खूट, पोस्टेज ५ रू० प्रयक ।

पता—चरक चिकित्साल्य, कुसुम भवन, नगवा, वाराणसी।

वृक्काश्मरी (गुर्वे की पथरी, रीनल कैल्कुस्स Renal Calculas) एक भवंकर रोग है।

-कारण-छोटे २ पत्थर चूरे को मूलरेण (Gravel) कहते हैं। मूत्र रेणु श्वेत ईट के चूरे की भांति लाल होती है। ये मूत्र रेणू ही आपस में मिलकर मटर की भांति,



छोटे २ पत्थर बन जाते हैं। पथरी गोल, अण्हाकार, चिकती, गर्म धीर छालू सहमा ३ इञ्च मोटी भी हो संकती है। जिनके मूख में फैल्सियम बाता है उनमें पत्तरी विशेष रूप से. वनती है। इस रोग में मूत्र त्याग करते. समय भीपण वर्ष होता है, मूत्र रक रक कर आता है। कभी कभी व्यक्त में सूजन व फोड़ा भी होजाता है, शिशन के अग्रिम भाग में दर्द होता है। पथरी जब वृक्क से भूत्रा-शय (Kidney) में उतरती है तव वेदना के कारण

रोगी उन्मत्त सा हो जाता है। रोगी का जी मिचलाता है, व वमन भी होता है। मूत्र त्याग के समयं और बाद शिएन-मुण्ड में 'वेदना' होने के साथ वारवार मूत्र हुआ करता है।



ব্বিল্ল---৬১ वृतक स्थित अभ्मरी



चिव - ७६ अश्मरी का एक प्रकार [इसे जैकस्टोन अश्मरी की भी संज्ञा दी गई है]

"चतस्रोऽएमयाँ भवन्ति, श्लेष्माधिष्ठामा तद्ययाश्ले-ष्माण, वातेन, पित्तेन, शुक्रेण चेति"।, .

— (तृश्रुत संद्तितां, निदानस्थानम् अ० ३, श्लोक ३) अर्थात्-अश्मरी चार प्रकार का है, श्लेष्मा इन अश्म-रियों का अधिष्ठानं (समवायी कारण) है। यथा-कफ जन्य, वातजन्य, पित्त जन्य, शुंकजन्य ।

"तत्रासंशोधनशोलस्यापय्यकारिणः प्रकुपितः स्लेल्मौ मूषसंपृषतोऽनुप्रविषय वस्तिमंश्मरी जनयति ॥४॥ -

तासा पूर्वेरूपाणि-ज्वरो वस्ति पीहारोचकी मूत्रकृष्ठ्र

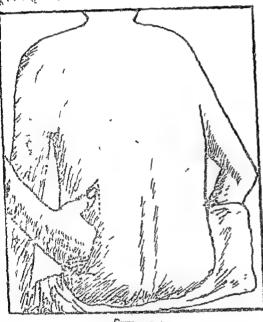
न्य रोग सिंहिट्सा

वस्तिशिरोमु क्शेफसां वेदना कुच्छावसादो वस्तगन्धित्वं मूत्रस्येति ॥ ॥ — (सुश्रुतसंहिता, निदानस्थानम् ध. ३)

अर्थे --सम्प्राप्त-(वात-पित्तव कफ दोष जन्य अश्मरी की) असणोधनणील (जो वमन, विरेचन नहीं करता)।

अपथ्यकारी व्यक्ति में कफ कुषित होकर मृत्र के साथ मिनकर मूलाशय में पहुँच कर अध्मरी को उत्पन्न करता है।।।।

ज्बर, बस्ति पीडा, अरुचि, मूत्रकुच्छ्, बस्ति, शिर, शुष्क (अण्डकोष) और शिश्म में वेदना, ज्वर, कुच्छ्रावसाद, मूत्र वस्तगंध (बकरे की गंध) आना, ये अश्मरी के पूर्वरूप है ॥५॥



वित्र— ६० वृत्रकशूल का स्थान

एकाएक मैथुन के रोकने- से अथवा अति भैथुव के कारण अपने स्थान से चलायमान 'शुक्रमागं से बाहर न आकर ऊपर-नीचे पार्श्वस्य दोनों ध्रमनियों में एकत्रित होकर शिशन,वृपण या मध्य में एकवित,गोलाकार बन जाता है। बायु इनको एकत्रित करके सुखा देती है। यह शुष्क शुक्रमणे अश्मरी मूलमागं को बन्द कर देती है। इसको शुक्राश्मरी समझना चाहिए। १२॥

जिस प्रकर से घड़े में स्नेह पहुंच जाता है उसी प्रकार

से बात, पिता, कफ मूत्र के साथ मिलकर बस्ति में पहुंच कर अध्मरी रोग उत्पन्न करते हैं ॥२४॥

आपुर्वेदिक चिकित्सा—

(१) ऋतं वा मघुरैः सीरं सर्पिमिश्रं पियेन्तरः । मूत्रदोपविशुद्ध्यषं तथैवाश्मरिनाशनम् ॥४३॥ —सुश्रृतसंहिता, उत्तर तन्त्रम् अ० ६६



चित्र--- द१

मूत्र गवीनी निलका के चार स्वामाविक संकुचित स्थल जहांकि वृक्काश्मरी अटककर शूल उत्पन्न कर सकती है।

१-गवीनी श्रोणि के तत्काल पश्चात्,

२—श्रोणिस्या महाधमनी (इलियक आर्ट्री) के सामने, ३ - शुक्रवाहिनी निलका के सामने

४- मूत्राशय भित्ति में प्रवेश करते समय,

५ - मूत्राशय में खुलने के स्थान पर।

अर्थे—काकोत्यादि मधुर गण से सिद्ध किया दूध पूर्त मिलाकर मनुष्य पीवें . इसमें मूत्रदोप एवं अश्मरी नष्ट होते हैं 1

(२) वलाश्वदंष्ट्राकोञ्चास्थि कोकिलासकतण्डुलान । शतपर्वकमूनं च देवदारु सचित्रकम्॥ ४४॥

Tal Viel felication

सक्षवीजं च सुरया करकीकृत्य पिवेन्नरः। मूत्र दोष विशुद्ध्ययं तथैवाष्ट्रमरि नाशनम्॥४५॥ — सुश्रुतसंहिता, उत्तरतंत्रम्, अ० ५६

अर्थ — बला, गोखरू, कोंचं की अस्यि, ताल मखाना, चावल, शतपवंक मूल (जल गांडीर, दूव),देवदारु, चित्रक, बहेड़ें की मज्जा इनको सुरा × के साथ पीसकर सुरा से मनुष्य पीवें। इससे मूत्र दोपों का शोधन होता है और अश्मरी नष्ट होती है।

- (३) मूली के रस में मिलाकर रोगी को दें।
- (४) अरहर के पत्ते ६ माशा और संगेयहूद चार रत्ती दोनों को महीन पीसकर ठंडाई की भांति पिलाया करें। बहुत लाभप्रद प्रयोग है।
- (४) कलमी शोरा ६ माशा, यवक्षार (जवाखार) ६ माशा दोनों को बारीक पीसकर समानमात्रा में शक्कर मिलालें। ठंडे पानी के साथ तीन माशे की मात्रा दिया करें। वृक्काश्मरी के लिए रामवाण है।
- (६) कलमीणोरा, जवाखार, नौसादर प्रत्येक ४-४ रत्ती, गन्ने का रस २ तोले, नींचू का रस ६ माशे इतनी एक खुराक है। सबको मिलाकर कुछ दिनों तक सेवन करने से पथरी गल जाती है।
- (७) बंशलोशन (तवाशीर पंजावी में),गोखरू, सुरमा-श्वेत, कलमीशोरा, जवाखार प्रत्येक २-२ माशे सवको कूटपीस कर दश पुड़िया बनालें और १-१ पुड़िया २-२ घंटे के अन्तर से बकरी के दूध की लस्सी के साथ खाने से पथरी व गुर्दे का दर्द दूर होता है।
- () पेठे के रस में शबकर जाना तथा पथरी रोग में . लाभ होता है।
- (१) सहजने के जड़ का क्वाय (काढ़ा) गुनगुना गर्म पीने से पथरी रोग नष्ट हो जाता है।
- (१०) कटेरी के स्वरस में शहद मिलाकर पीने से पथरी तथा भयन्द्वर मूत्रकुच्छ रोग में लाभ होता है।
- (१९) मुटज (मुड़े) की छाल को पीस कर दही में मिलाकर जाने से बहुत पुरानी सम्मरी भी ठीक होती है।

- (१२) तीन माशे गोखरू के बीजों के चूर्ण को शहद में मिलाकर तथा भेड़ी के दूध में घोल कर सात दिन तक पीने से हर प्रकार की पथरी दूर होती है।
- (१३) करञ्ज के पत्तों का खार (क्षार) २ माशा को १ तोला शहद में मिलाकर पीने से पथरी गल जाती है।
- (१४) गुलदाऊदी के पत्तों का क्वाय बनाकर पीने से पथरी ठीक होती है। उसमें समभाग चीनी मिलाकर दो।
- (१५) चौलाई का शाक खाते रहने से पथरी ठीक
- (१६) तिल के पीधे का खार (क्षार) २ माशा की गन्ने के सिरका २ तीला में मिलांकर पीने से पथरी गल जाती है।
- (१७) जंगली क्पोत की बीट द माशा तथा शवकर द माशा इन दोनों को मिलाकर पानी के साथ फांकने ने पथरी रोग दूर हो जाता है। आयुर्वेदिक इन्जेक्शन—
- [१] अरण्य तुलसी ('सिद्धि' व जी० ए० मिश्रा) वन तुलसी (बुन्देलखण्ड आयु० फार्मेसी) १-२ सी. सी. मांस में लगाने से लाभ होता है।
- [२] इन्द्रायण (लक्ष्मी, वुन्देलखंड, सिद्धि, आदर्श, मिश्र, ए० वी० एम) १ से ३ सी.सी. नित्य पा सप्ताह में ३-४ द्वार मांस या नस में लगावें।
- [३.] कसीस (लक्ष्मी आयुर्वेद अनुसन्धान भवन) १ से २ सी.सी सप्ताह में २ या ३ वार मांस में लगावें।
- [४] गोखरू (आदर्श, जी॰ ए॰ मिखा, बुन्देलखण्ड व् लक्ष्मी)। २ सी.सी. सप्ताह में ३ बार मांस में लगावें।
- [४] पापाणभेद (मिश्र व बुन्देलखण्ड)। २ सी.सी. नित्य मांस में लगाने से लाभ होता है।
- [६] मूत्रल (ए. बी. एम. रिसर्च इन्स्टीट्यूट)। रोगानुसार २ सी. सी. नितम्ब में लगावें।

एक एम्पुल में हपुषा, पुनर्नवा, कंकोल, भूमि आंवला प्रत्येक ०.०१६-०.०१६ प्राम, यवसार ०.००८ प्राम, परिश्रुत जल २ सी सी. मिश्रण है। ६ से १५ सूई लगावें। इससे प्यरी छोटे २ दुकड़ों में टूट कर मूत्र के साथ निकलती है।

सुरा = गराव, जल । यहां सुरा से तात्पर्य गराव ही प्रतीत होता है । जो लोग मद्यपान न करते हों उनके लिए वेकार है ।—(तेखक)

The state of the s

वृषकाइमरी में होमियोपेधिक प्रयोग—

- (१) वरवेरिस Q- ५-५ बूंद गर्म पानी में दर्द के समय १५ मिनट के अन्तर से देने से दद में आराम होगा।
- (२) लाइकोडियम ६—मूत्र में लाललाल तलछट जमे तो दिन में ३ बार कुछ दिन तकंदें।
- (३) फास्फोरिक एसिड २ × —यदि सूत्र में फास्फेट शिवक छाते हों।
- (४) लोशियमकावं ३ × यदि पथरी गुर्दे में न होकर मूत्राशय में हो तो इस कौषधि के कुछ दिनों तक सेवन से । पथरी गल जाती है।
- (४) श्रोसिमक केनम २००, हायस्कोरिया १×, कैन्लेरिस ६ भी लाभप्रद हैं। जाशोक मिला जिकिस्सा—
- (१) भेट्रम फास्फोरिकम (Natrum Phosphovicum) ३ × . देना चाहिये। ऐफोर्पेबिक-बायुर्वेदिक मिश्रित औषधि—

पोटाश साइट्रास, थियोद्योसीन, हजरलजहूर १-१ भाग, पोटासनाइट्राल ४ काग, स्थैतजीरा, फलमीशोरा संगसेरमाही १-१ भाग लें। सबको कूट-छान करके टींचर एसकोपारी ४ भाग, टींचर आयोसाइनम ४ भाग मिलाकर लुक महीन खरण करें।

ध्यन विधि— बाझा थे १ ड्राम सक प्रातः सायं गरंत ग्राम के साथ हैं। विना शस्य किया के पथरी दूटकर निकलती है। मूत्र खुलकर बाता है। यह पूर्यमेह (खण्णवास, सुजाक) में थी उपयोगी है। खुक्काइसरों में ऐलोपेखिक औषधियां—

- (१) मर्छ कम्पनी की 'यूपेको' एक एक टिकिया दिन में तीन बार देने से रोग अधिकार में रहता है।
- (२) एमोनियम् क्लोराइड टेब्लेट (कराटोनकोर)-साई शान ग्रेन की गोली दिन में तीन बार दें।
- (१) एगेएण्टासाइड (क्रुक्स) 9-9 गोली दिन में ,
- (४) वेयीनोडींड (वीमोफार्मा)—पधरी बनने से गेरूने में १-२ गोल चयवार्थे।
- (१) साम्द्रासील (वंगाल किमिकल)— २-२ चम्मच चिन में चार वार हैं।
- (६) नाल लीमिया (एंस. जी.) १-१ छोटी जम्मच दिन में ३ बार हें।

- (७) सिस्टोन टेब्लेट्स (हिमालय) १ से ३ गोलियां दिन में ३ वार दें। (यह आयुर्वेदिक योग है)।
- (=) नियोद्रोपिन (Neotropin) यह बरिलन अमेंनी की बनी हुई है। गर्म गर्म दूध के साथ या गर्म पानी के साथ सेवन करने से रेत, केंकरी तथा पथरी आदि विकार गल कर मूल के साथ बाहर निकल आती है। यदि मूल पीला या लाल आवे तो चिन्ता न करें। यह टिकिया है। इञ्जेक्शन—
- [९] एट्रोपीन (वंगाल इम्युनिटि) १/१० ग्रेन वर्म में लगावें । शूल में लाभप्रद है।
 - [२] ट्रासेण्टिन (सीवा) मांस में लगावें।
- [३] नोवाल्डिन (हैक्स्ट कं॰)— ५ सी.सी. नस में लगावें।

[४] यूनित्जन (यूनीकम)—१० सी. सी. नस में घीरे-२ लगानें।

[४] विस्कार्डिन (बी. डी. एझ.)—एक एम्पुल प्रति-

💥 पृष्ठ २३१ का शेषांश 🔆

वनसं, मानिक चौक, झांसी]—वड़ों को १-२ सी. सी:

(१) गोखक [बादर्श खायुर्वेस अनुसन्धान भवन, टीक्सगढ़, जी. ए. मिश्रा फार्मेसी, बुन्देलखंड, लक्ष्मी आयु-वेंदिक अनुसंधान भवन, झांसी]—- २ सी. सी. सप्ताह में २-३ बार मांस में लगाने से लाभ होता है। ऐलोपेशिक औद्धियां—

पेटेण्ट टेक्लेट

- १. नेष्टल (एम बी.)-१ टिकिया दें। यह तीय मूत्रल है। २. इसीड्रेक्स (सीवा)-आध से १ टिकिया आवश्यकता-
 - नुसार दें।
- १. थेसीनाल (थेमिस कं) २ टिकिया. १ बार हैं।
- ४. कैल्सियम हायोतिहिनः (२ गोली दिन में ३ बार हैं।
- नियो वैकलेस (ग्लेक्सो किन्धिती बावण्यकतानुसार दे
- ६. नेफिल (फीज़र)-१-१ गोली हैं। यह तीम मूचल है।
- ७. सिल्लारिन (सैण्डोज)—पुरानी शोध में १-२ टिकिया ३ बार हैं।
- मेनिहलाबाइन (वार्नर) ३ गोली दिन में ४ बार दें।

शुंदिक <u>श</u>ीश्री कवि.डा. जिस्धारी लाल मिश्र

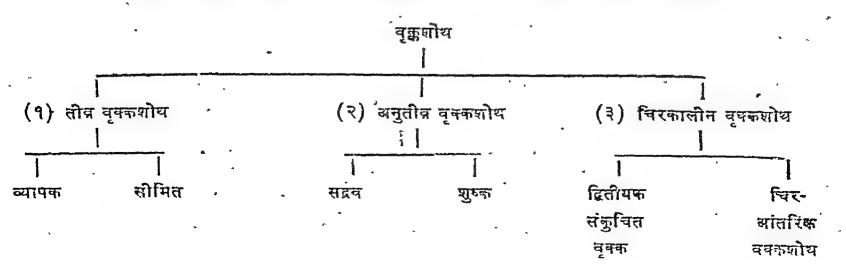
* * *

शरीर के विजातीय व दूषित पदार्थों को मूलमागं द्वारा विहिष्कृत कर स्वास्थ्य को बनाये रखना युक्क का प्रमुख कार्य है एतदर्थ हृदय-मस्तिष्क की तरह वृक्क भी शरीर के प्रमुख अवयव हैं तथा हृदयादि की क्रियाएं इसके साथ अन्योन्याश्रित हैं। यही कारण है कि जब वृक्क का कार्य ठीक से संस्पन्न नहीं होता और त्याज्य हानिकारक पदार्थों का सूत्रमागे द्वारा निस्तरण नहीं होता तो वे रक्त में मिलकर अनेक प्रकार के सार्वदैहिक दुष्प्रभावों का शरीर में प्रादुर्भाव करते हैं। इस प्रकार का विकार एकांगी होते हुए भी उसका प्रभाव सार्वदैहिक होता है।

दृक्क शोथ (Nephritis)-

वृवक की सूक्ष्म प्रणालियों (वृक्क का सावक भाव Nephron), घमनी गुच्छों ग्लोमें एलस (Glomerulus) व उसके ट्यू वूल्स के प्रारंभिभक तथा औपस्तिष्भिक भाग में शोथ होने को दृक्क शोथ कहते हैं क्योंकि मूत्रस्रवण व निर्माण के लिए वृक्कस्थ सूक्ष्मक स्नावक नेफाम हैं इसलिए इसे Nephritis कहते हैं। हा॰ रिचार्ड ग्राइट (१७८०-१८५८) ने सन् १८२७ में पहले पहले यह घोषित किया कि यदि मूत्र गरम करने पर जम जाय अर्थात् मूत्र में एल्ब्यूमिन हो सथा सारे शारीर में शोध दिखाई पड़े तो वृक्तों के रुग्ण होने की आमंका करणी चाहिए। बत: इस रोग को आधुनिक चिकित्सक शाइटामय (Bright's disease) भी कहते हैं।

आयुर्वेद में लिस प्रकार ज्वर, ज्वरातिसार, संग्रहणी, अर्था, यथमा बादि रोगाधिकार के रूप, में रोगों का वर्णन है उसी प्रकार से वृक्क रोगाधिकार के रूप में स्वतन्त्र वर्णन न होने के कारण आयुर्वेदशों की यह धारणा है कि आयुर्वेद में वृक्क रोगों का वर्णन नहीं है च प्रमेह रोगाधिकार में ही जो संक्षिप्त विवेचन उपलब्ध है उसी में वृक्क रोगों का भी समावेश है। आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से वृक्कशोध को वात-पित्त-कक भेद से विभक्त किया जा सकता है। आधुर्ने निक वैज्ञानिकों के मतानुसार वृक्कशोध का वर्गीकरण निम्न तालिकानुसार किया जा सकता है—



मूचा रोग चिकित्सा

- (१) प्रथमावस्था—इसको तीव्र अवस्था भी कहते हैं इसमें मुख्यतया गुत्सक (Glomeruli) विद्वृत होते हैं। विकृति का स्वरूप प्रसरणशील (Proliferative) होता है तथा मुख्य वक्षण मूल में पाये जाते हैं।
 - (२) द्वितीयावस्था—इसको अनुतीव (Sub-acute) अवस्था भी कहते हैं। मूत्रनलिकार्ये (Tubules) में विकृति होती है और मुख्य लक्षण सर्वाङ्ग णोथ रहता है।
 - (३) तृतीयावस्था—इसको जीर्ण (Chronic) सवस्था कहते हैं। वृवकों का अन्तराल धातु विकृत होता है तथा मुख्य लक्षण उच्च रक्तचाप तथा वृवक कार्य हानि होते हैं।

तीव वृक्कशोथ

पर्याय—तीत्र गुरसकीय वृक्कशोथ (Acute Glomerulo nephritis), तीत्र रक्तस्राची वृक्कशोथ (Acute Hemorrhagic Mephritis)

तीव वृत्कशोथ—इस रोग में वृत्कों के धमनी गुच्छ (ग्लोमेहलाई) में शोथ होता है। मूल स्नाविणियों (ट्यू-वल्स) में शोथ नहीं होती या कम होती है। जब ग्लोमेहलाई में सूजन हो जाती है तब मूत्र में एल्ब्युमिन छन जाता है और मूल की माला कम हो जाती है।

हेत्की --

(१) उपसर्ग—इस रोग का प्रमुख कारण उपसर्ग है। ६०% रोगियों में उपसर्ग का इतिहास मिलता है और ७०% से अधिक रोगी गले और श्वसन संस्थान के रोगी होते हैं जैसे गलक्षत, तुण्डिका शोथ, मध्य कणंशोथ, कनफेर, लोहित ज्वर, आन्तिक ज्वर, रोमान्तिका, विपम ज्वर, आमवात, उपदंश, मसूरिका, कालीखांसी, न्यूमो-निया आदि।

उपसर्गकारी जीवाणुओं में प्रधान मालागोलाणु (स्ट्रे-प्टोकोकाई) और मालागोलाणुओं में प्रधान शोणांशिक (Hemolytic) प्रकार का होता है। अनेक वार तुण्डिको-च्छेदव (Tonsilectomy) के पश्चात २-३ सप्ताह में यह रोग होता है। गलक्षत के साथ भी इस रोग का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

(२) त्विग्वकार — वृत्रक और त्वचा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। त्वग्दरध (Burns), चमणोथ, विसर्प, फोड़े-

फुन्सिओं इत्यादि पूययुक्त त्विश्वकारों में भी इसके होने की सम्भावना रहती है। वर्षा में भीग जाने व सर्वी लग जाने तथा कभी कभी वृवक प्रदेश पर अत्यधिक शीत लग जाने के कारण वृवकशोय हो जाता है।

- (३) आयु-लिंग तील रूप में : यह रोग दे से १० वर्ष के बीच बाल्यावस्था में होता है। लड़ कियों से लड़ कों में अयिक पाया जाता है। वसे यह रोग स्ती-पुरुपों, दोनों में ही ३० से ४० वर्ष की आयु में अधिक पाया जाता है। जिन बालकों में यह रोग पाया जाता है उनमें तुण्डी केरी या त्वचा पिडिका, अग्निदग्ध आदि कोई रोग स्पष्ट या अस्पष्ट रूप से होकर वहां से ही मोलिटिक-स्ट्रेप्टो को कस का संक्रमण वृक्कों में हो कर इसका आक्रमण हो जाता है।
- (४) भाहार— मद्य पीने बालों में इस रोग के होने की सम्भावना अधिक रहती है। वैसे प्राभूजिनों (प्रोटीन) की भोजन में अधिकता तथा प्रांगोदियों (कार्बोहाइड्रेट) की सल्पता से यह रोग बढ़ता है।
- (१) प्रसार यह रोग अकेला-दुकेला हुआ करता है परन्तु अनेक बार परिवार, पाठशाला, छात्रावास, अन-सम्पर्क के सार्वजनिक स्थान, इनमें एक समय में अनेक ने व्यक्ति पीड़ित हुये दिखाई देते हैं जिनसे गृहणशीन व्यक्तियों द्वारा फैलने वाला माना जाता है।
- (६) विष कुछ विपैले द्रव्य ऐसे हैं जिनके प्रयोग से वृक्कों में शोध उत्पन्न हो जाता है। इनमें कार्बोलिक एसिड, तारपीन तैल तथा पारद के योग एवं फासफोरस तथा बैरोजे का तैल विशेष महत्व रखते हैं। कभी कभी गर्भावस्थाजनित विषमयता भी रोग का कारण बन जाती है।
- (ए) गरीर के अन्दर ही Auto-immunity of Autoallergy की प्रक्रिया के हो जाने से वृक्क शोय का रोग होता है अत: यह एक Auto immunity से होते वाला रोग माना जाता है। इसलिये बहुत से रोगियों के सीरम में एण्टीस्ट्रे प्टोलाइसिन जो इस जीवाणु के संक्रमण के सूचक होते हैं, पाये जाते हैं। विकृति—

इसमें दोनों वृक्क विकृत होते हैं। वृक्कों की अभि-वृद्धि होती है किन्तु आकृति ज्यों की त्यों रहती है उनका तल लगभग दुगुना होता है। वृक्काभिवृद्धि तीव वृक्कशोध की खास पहचान है। रुग्ण वक्कों की स्यूल परीक्षा करने

सुत्रा राजा, चिकिट्सा

पर उसके अन्तर्वलतु या खोल में रक्तस्राव के लाल दाने दीखते हैं तथा सूक्ष्म परीक्षण से पता चलता है कि जैसे विष ने उनके धमनी गुच्छों (ग्लोमैक्लाई) की धमनियों पर दुष्प्रभाव करके उन्हें सुजा दिया हो। इस रोग में वृक्कों के प्रत्येक के गों में विकृति होती है परन्तु धमनी गुच्छों-में मुख्यतया अधिक बिकृति होती है इसलिए इस रोग को ग्लोमैक्लो वृक्क शोध कहते हैं। इस रोग में निम्न विकृतियां प्रमुख रूप में मिलती हैं—

- (१) धमनी गुच्छकों के बाहर जो अधिच्छदीय कोषायें होती हैं वे फूलकर मोटी हो जाती हैं तथा उनके भीतर का रास्ता बन्द सा हो जाता है जिससे रक्त स्वल्प मात्रा में ही आता है तथा उनके अनेक मोड़ों में तो रक्त बहना ही बन्द हो जाता है जिससे मूत्राल्पता उत्पन्न होती है।
- (२) चूक्कों में प्राणवायु की कमी होने से रनतचाप बढ़ने लगता है तथा कोशिकाओं की दीवाल से शुनिल का उत्सर्ग होता है।
- (३) धमनी गुच्छ के मीड़ों (loops) का बहिस्तर (इपीधीलियम) भी फूलकर मोटा हो जाता है जिससे दो मोडों के बीच का प्रदेश भर सा जाता है। इस सूजे हुये वहिस्तर के अनेकानेक सैल क्षीण होकर झर जाते है एवं अन्दर के रिक्त स्थान में वह जाते हैं। सूजे हुये मोड़ों या लूप्स पर से मलेष्मस्राव भी अधिक माता में निकलता है। इस मलेष्मस्राव के द्वारा मोड़ों में रक्तकण, म्वेतकण, अलब्यूमिन, फाइब्रिन भी कैप्सूल के अन्दर के खाली स्थान में आते हैं तथा मूत्र द्वारा वाहर निकलते रहते हैं।
- (४) जब यह रोगं मालागोलाणुजन्य गले की खराबी से हौता है तब उसमें रोग बार बार आक्रमण होने की प्रवृत्ति रहती है और वृक्क विकृष्टि का उपशम न होकर बह जीणं होने लगती है।
- (प्र) वृक्कों के सतिरिक्त अन्य अङ्गों की कोशिकाओं की प्राचीर भी विष के कारण विकृत होती है।
- (६) इस रोग में Tubules तथा वृतक की रक्त-वाहिनियों में कोई विशेष विकृति नहीं होती बल्कि धमनी गुच्छों में ही प्रमुख रूप से विकृति होती हैं।
- (७) संक्षेप में तीज़ वृतक शोथ में प्रफलन (Proliferation), अनुतीज़ में अपजनन (Degeneration) बौर

जीणं अवस्था में क्षय (Atrophy) तथा वणवस्तु भवन (Scarring) अधिक होता है।

सम्प्राप्ति—वृक्कशोथ उपसर्गं जन्य होने पर भी उपस्मिं के जीवाणु न रक्त में और न वृक्क में पाये जाते हैं तथा नहीं मूल से उत्सर्जित हैं विल्क जिन औपसर्गिक रोगों से यह रोग होता है उपसर्गों की निवृति के पश्चात् होता है, जीवाणु जन्य विष रोगोत्पादक होने से विकार प्रस्तुत होते हैं। तीवावस्था में वृक्कों के बहुत कम गुत्सक (Glomerul:) बचते हैं। इस विकार में जीवाणु जन्य विष से गुत्सकीय वृक्कशोथ उत्पन्न होता है। स्कार

्गले की खराबी, तुण्डीकेरी, आमवात इंत्यादि

- . (१) पूर्ववर्ति रोगों के ठीक होने के पश्चात् यकायक आंखों पर तथा शरीर पर शोध और मूल विकृति इस- रोग का सूचक है। मूल विकृति में लाल कणों की उप- स्थिति सर्वाधिक महत्व की है। इनकी उपस्थिति के कारण हो यह रोग रक्तसावी नाइट का रोग कहलाता है। अधिक रक्त साधारणतया ४०% रोगियों में पागा जाता है।
- (२) रोग का प्रारम्भ प्रायः यकायक होता है-या कभी कभी प्रारम्भ धीरे घीरे भी हो सकता है। इस अवस्था में वास्तविक लक्षण प्रारम्भ होने से पूव जी मिच-लाना, वमन, पित्त प्रवृत्ति, उदर में पीड़ा सिर दद इत्यादि लक्षण होते हैं।
- (३) ज्वर—तीव्ररूप में तीव्र संक्रमण के कारण सदी लगकर सहशा ज्वर का आक्रमण होता है और १-२-१०४ डिग्री फा॰ तक हो जाता है जो वरायर बना रहता है या न्यूनाधिक हो जाता है और बीच बीच में जतर भी जाता है जिससे विषम ज्वर का भ्रम हो सकता है।
- (४) यूरीमिया के लक्षण जल्दी सा सकते हैं— वार बार वमन होना, तन्द्रा, सिर दर्द, श्वास कुच्छ्ता तथा श्वास कुच्छ्र के साथ खांसी होना तथा सर्वाङ्ग शैथिल्य पाण्डुता वृक्क प्रदेश पर मन्द मन्द दर्ष, वृक्क स्पर्शाक्षमत्व एवं मूत्र में यूरिया का परिमाण सामान्य सबस्या से घोड़ा वढ़ा हुआ मिलता है।
- (४) शोथ—तीव वृक्कशोध का यह एक प्रधान लक्षण है। प्राय: प्रात: उठते समय यह प्रथम दिखाई देती

:है। इसका प्रारम्भ सर्वप्रथम आंखों के नीचे शिधिल वर्तुल मांसपेशियों में दीखता है। तत्पश्चात् वृषण, गृह्यभाग और पैरों पर तथा पीठ पर दीखता है। यदि अधिक बढ़ गया हो तो फुफ्फुस, हृदय, उदर इत्यादि अङ्गों के आव-रणों में जल संचय होता है।

- (६) रक्तवाप—रक्त का दवाव बढ़ जाता है तथा नाड़ी कठिन होकर उसकी गति कुछ अधिक रहती है। महाधमनी का दिलीय शन्द स्पष्ट हो जाता है पर हृदय वृद्धि नहीं होती।
- (७) मूत्र—मूत्राहाय के विक्षुक्य रहने से मूत्र वार कार कामन काथा आधा करटे पर योड़ा कोड़ा खाला है लघा जनन के साथ बाला है। उसमें पूप तथा फुक रक्त का खंध की (Pyuria, Haematuria) होता है अर्थात मूत्र में पूप तथा जीवाणु क्या क्वेतरक्तकण भी होते हैं जिससे यह घुंधला और दुर्गन्धित होता है अर्थात Color Bacilli होने पर उसमें मछलीकी तो सू आती है और प्रोटीन के संक्रमण से उसमें कमोनियां की सी वू आती है। मूत्र में प्राव: एल्ख्युमिन पर्याप्त मात्रा में रहता है यहां तक कि कई वार मूत्र जवानने पर ठोस हो जाता है। मूत्र की सात्रा कम होती है, कई बार दिन भर में केवल १०-२० ऑस या इससे भी कम मूत्र आता है परिणामत: आपेक्षिक गुरुत्व खिक्ष होता है। मूत्र प्रवल अम्लीय प्रतिक्रिया का होता है तथा गंदला, मुंधियाला तथा रक्त की उपस्थित के कारण गहरा भूरे रङ्ग का रहता है।
- (म) रक्त-रक्त में खेत कणों की संख्या १०-१४ हजार प्युविक मि.लि. पाई जाती है जिसमें Polymo-rphonuclear नामक खेतकण विशेष बढ़े होते हैं।
- (१) नाड़ी की गति—तापमान की अपेक्षा अधिक तीव होती है।
- (१०) रोगी को मलवन्छ बना रहता है। यह रोग विकित्सा साध्य है पर उचित चिकित्सा न मिलने पर चिरस्थायी रूप ले लेता है और वृक्क निपात व रक्तचाप वृद्धि उपद्रवों का कारण बनता है।

सीमित प्रकार का वृक्क भोथ —

वृनकशोथ की यह विकृति प्रायः वाल्यावस्था में ही मिनती है। इसमें विकृति क्लोमेरुलाई के कुछ ही भाग में भीमित रहती है। इसमें वृक्क की असमर्यता, रक्तचाप की

वृद्धि व रक्त में यूरिया की वृद्धि आदि कक्षण नहीं मिसते।
यह रोग विशेषतः वाल्यावस्था में ही होता है। रोगी
बालक के किंद्रप्रदेश व वृक्क क्षेत्र पर पीड़ा होती है तथा
उसे वबाने पर ददं बनुभव करता है। रोग की प्रारम्भिक
अवस्था में ४-५ दिन तक १०० डि. फा. मन्द ज्वर तथा
ज्वर के साथ के, शिरःश्चल उपस्थित रहता है। रेक्त मिला
हुआ भूरा रङ्ग का मूत्र आता है। मूत्र परीक्षा से मूत्र में
रक्त के लाल कण, म्वेतकण तथा कुछ निर्मोक (Casts)
मिलते हैं। नाड़ी की गित तीव्र तथा रोगी का रङ्ग फीका
सा लगता है। मूत्र में एल्ट्यूमिन रहता है।

रोग के उपद्रव—रोग की उग्रावस्था में निस्न उपद्रव मृत्युकारक होते हैं-

- (१) वृक्कातिपात (Renal failure)—अल्प-मूत्रता या अमूत्रता होने वाले रोगियों में यह उपद्रव हुआ करता है। इससे रक्त मे भूयाति विधारण होकर वमन, प्रवाहिका, सिरदर्ख, कम्प, आक्षेप इत्यादि मूत्र विषमयता के लक्षण उत्पन्न होते हैं।
- (२) हृदयातिपात फुफ्फुस में पूजन होकर श्वास-कृच्छ होता है। किरागत तथा धमनीनत रक्तचाप की वृद्धि, हृदयाभिवृद्धि व हृदयातिपात हुआ करता है।
- (३) गोथवृद्धि—त्वचा की सूजन परिहृदय, परि-फुफ्फुस, पर्यंदर इत्यादि आभ्यन्तरीय अङ्गों में प्रकिष्ट होकर जलोदर आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं।
- (४) मस्तिष्कं निकृति—यह उपद्रव वस्तों में रक्त-निपीड की अधिकता के कारण होता है। इसमें मस्तिष्क गत रक्तवाहिनियों में ऐं ठन उत्पन्न होती है और वमन, अन्यता, काक्षेप, क्षणिक अङ्गधात आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं।
- (५) अनेक बार रोग की उग्रावस्था में उपसगं—
 फुफ्फुसपाक, परिफुफ्फुस शोथ, परिहृदय शोथ, पर्युंदर
 शोथ इत्यादि औपसर्गिक रोग उत्पन्न होते हैं।
 साध्यासाध्यता—

साध्यता—यह रोग सौम्य रहता है, चिकित्सा भी प्र प्रारम्भ की जाती है तब प्रायः दो सप्ताह में सुधार होने ,लगता, मूत्र की राभि बढ़ने लगती है, चार सप्ताह के पूर्व मूत्र शुक्लिनियुं क (Albuminfree) होता है और ४-६ सप्ताह में मूत्र में लाल कण भी अदृश्य हो जाते हैं। मूत्र में रक्त के लाल कर्गों का न मिलना रोगानिवृत्ति का प्रधान चिन्ह होता है। रक्तचाप तथा अवसादन गति का स्वामाविक हो जाना तथा वर्ष भर में पुनरावर्तन न होना रोग के पूर्ण उप्रणम के लक्षण हैं।

असाध्यता—रोग उपशमन के उपरोक्त लक्षण र-४ मास तक न दिखाई दे तथा सर्वाङ्ग शोथ बढ़ती जाय सो समझना चाहिए कि रोग जीर्ण हो रहा है। फुफ्फुस, मस्तिष्क, स्वरयन्त्र इत्यादि में शोश हो जाय तथा अम्यन्त-रीय उदर-अलादि अवयवों में जल संचय (जलोदर) हो जाव। रक्त निपीड बढ़ता जाय तथा सूत्र की राशि घटती जाय तो समझना चाहिये कि रोग असाव्य हो गया है।

मृत्यु प्रायः मूत्र विषमयता होकर वृष्कातिपात, हृदय-दीवंल्य, रक्तचाथवृद्धि, हृदयातिपात, फुफ्फुस, स्वरयन्त्र में सूजन होकर प्राणावरोध से हुआ करती है। इस प्रकार तीत्र वृष्कणीय में १०% तक रोगी प्रायः असाध्य होकर मर जाते हैं और १०-२० प्रतिशतं जीणविस्था में तथा २०-३० प्रतिशत गुप्तावस्था में परिणत हो जाते हैं तथा ४०-१० प्रतिशत रोगी पूर्णतया स्वस्थ हो नाते हैं।

तीव बृक्कशोथ धिकित्सां—

निदान परिवर्जन, वृक्कों को आराम, त्वचा और आंत द्वारा वृक्क कार्य और उपद्ववों की चिकित्सा ये चिकित्सा के सामान्य सिद्धान्त हैं। तत्कालकरणीय व्यवस्था में वृक्कों को अधिक से अधिक विश्राम देना चाहिये। इसके लिये अधिक से अधिक जो हम कर सकें करना चाहिये।

शैंग्या विश्राम तथा त्वचा को गरम रखना—त्वचा तथा आन्त्र की क्रिया को बढ़ाकर वृक्कों का कार्य इनके द्वारा लिया जाना चाहिये। इसके लिये रोगी को गरम कमरे में पूर्ण आराम से रखना चाहिये। रोगी को शीत और श्रम से बचना चाहिये। गरम कमरे में गरम कपड़ों में एक मास तक पूर्ण विश्राम से रहने तथा गरम जल द्वारा संपज करने से व आसपास गरम बोतर्ले रखने से त्वचा के गरम होने से वृक्कों की रक्तवाहिनियां भी फैल जाती हैं जिससे शोथ शान्त होती है, मूत्र की मान्ना बढ़ जाती है, मूत्र में एल्ब्युमिन और रक्त की मात्रा घट जाती है, रक्त भार भी घटने लगता है और २-३ दिन में ही रोगी आराम अनुभव करने लगता है। प्रति दूसरे तीसरे दिन रोगी के रक्तभार, मून की मात्रा, मूत्र में अल्ब्युमिन तथा शरीर के भार का परीक्षण करते रहना चाहिये। अब रोगी का रक्त भार सामान्य हो जाय तथा मूत्र में अल्ब्युिर्म की माला २ ग्राम रह जाय तब उसे उठने-बैठने की अनुमति दे देनी चाहिये तथा एक मास तक पूर्ण विश्वाम
देने पर भी लाभ प्रलीत न हो तो विश्वाम को अविध २
मास के लिये बढ़ा देनी चाहिये।

वाहार-बाहार में पेय पदाधी की माला कम कर देनी चाहिये जिससे त्व्वकों पर अधिक कार्य भार म पड़े। रोगी को प्रथम १-४ दिन तक लंघन कराना चाहिए जिससे वृक्कों को विश्राम मिलने से लाभ शीघ होने की सम्भावना रहती है। पर रोगी दुवंल हो तो रोगी की शक्ति के अनुसार ही लेंघन 'कराबे-बल यत्नेन पालयेत्। अतः रोगी यदि लंघन व'उपवास न'कर सके तो-प्रतिदिन दिनं में दो बार आधा गिलाश जल निम्बू रस या ग्लूकोन मिलाकर देते रहना चाहिये जिससे मूल की मात्रा बढ़ती है और रक्तमेह कम होता है। जब मूल की मात्रा बढ़ने लगे तुव दूध तथा सोटा वाटर आधा पाँइन्ट की मात्रा में दिन में दो बार देना चाहिये तथा इस प्रकार धीरे धीरे दूध और जल की माला बढ़ानी चाहिये। रोगी को टमा-टर अंगूर, सन्तरे का रस जी-यूष (Barley water), मठ्ठा आदि पदार्थ पर ही रखा जाय। दूध और फलों के रस के रूप में २ किलो तक द्रवाहार प्रतिदिन दिया जाय, शीथ अधिक हो तो नमक और जल का प्रयोग अत्यल्प करना चाहिये। जब रोगी एक लिटर मूत्र त्याग करने लगे तथा जैसे जैसे रोगी को आराम आने लगे रोगी को सामान्य आहार तथा जल की माला बढ़ाते जावें। रोगी की कमर (व्कस्थान) को रोग शान्त करने के लिये दी इंकाल तक गरम ऊनी कपड़े से लपेष्ट कर (रखना चाहिये। १२ या १४ दिन में सामान्य आहार, दैनिक खुराक दे सकते हैं।

उपद्रवों की चिकित्सा उपद्रवों के लक्षणानुसार करें। औपिध—आयुर्वेद में इस अवस्था की चिकित्सा में मूत्रल औषिधयों के रूप में श्वेत पर्णटी तथा पुनर्नवा सार को मिश्री मिलाकर देना चाहिये। कमजोर अधिक हो तो लौह के योग देने चाहिये। शिलाजीत लौह भी उत्तम योग है। चन्द्रप्रभावटी, तारकेश्वर रस, सर्वतोभद्र वटी, माहे-श्वर वटी, चतुर्मुंख रस आदि इस रोग के प्रशस्त योग हैं। पुनर्नवामण्ड्र, आरोग्यविधनी भी दी जाती है। पीठ और

मूर्य रोवा चिकिट्सग

वृक्क प्रदेश पर महानारायण तैल व उशीरादि तैल की मालिश कराते हैं।

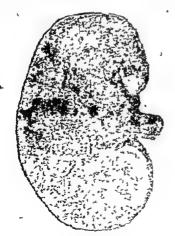
अनुतीव बृनकशोथ

पर्याय—जीणं अन्तःसारीम वृक्षणोच (Chronic parynchymatous Nephritis), वृहत् श्वेत वृक्षणोच (Large white Nephritis)

हेतुकी--

जैसा जगर लिख चुके हैं कि वृक्कों को पूर्ण विश्वाम सथा उचित चिकित्सा देने से तीन्न वृक्कशोथ बहुधा ठीक हो जाता है परन्तु यदि वृक्कशोथ २-३ मास तक ठीक न हो तो वह मन्द या चिरस्यायी वृक्कशोय का रूप धारण कर लेता है। वृक्कशोय की यह मध्यम स्थिति कही जाती है। यह विकार अधिकतर मध्यम अवस्या के पुरुषों में दिखाई देता, है और इस प्रकार धीरे धीरे शुरू होता है कि उसका पता भी रोग के उपद्रव उपस्थित होने पर ही

विकृति—वृनक परिमाण में स्वाभाविक सवस्था से कुछ बढ़े हुये होते हैं, वृनक ग्रन्थि पर सिराएं विखाई देती हैं तथा वृनक कुछ खेत वर्ण के दीखते हैं इसलिये इसको धवेतवर्ण दीधं वृनक (वृहत् खेत वृनक—Large white kidney) कहते हैं। इस रोग में धमनी गुच्छों में स्थूलता का तथा मूत्र हाविणियों मे कीणता का लक्षण विशेष रूप



चित्र—६२ -वृहत् श्वेत वृक्क-बहिवंस्तु में शोय एवं श्वेताभता प्रदर्शित हो रही है।

से पाया जाता है। असंख्य गुत्सक (धमनी गुन्छ) विकृत होकर नष्ट हो जाते हैं और कटे हुये भागों में छोटे छोटे उभार के रूप में विखाई देते हैं। गुत्सकों के अन्तःस्तर इतने मोटे हो जाते हैं कि उनमें रक्त संचार ही वन्द हो जाता है। जो गुत्सक पूर्णतया वेकार हो जाते हैं उनकी निलकार्ये सीण होकर तान्तव धातु में परिणत हो जाती हैं। धमनी गुन्छकों के चारों ओर के कैंप्सूलों के अन्दर का अन्तःस्तर (Epitheliuma) विशेष स्थूल हो जाता है अर्थात इनके सैलों में अतिवृद्धि हो जाती है। निलकाओं के साथ गुत्सका धमनियां और अन्तराल धातु भी विकृत रहते हैं।

शोय की अवस्था के अनुसार इस रोग के दो भेद किये गये हैं --

- (१) सद्रव अनुतीन वृक्कशोय (Oedematous subacute nephritis)
- (२) शुष्क अनुतीब वृक्कशोय (Non oedematous subacute nephritis)

(१) सद्रव अनुतीव वृक्कशोथ-

रोगी को इस रोग का आक्रमण इतने मन्द और अज्ञात रूप में होता है कि रोगी को शारीरिक निर्वेलतां सथा चलने पर श्वास चढ़ने के बितिरिक्त महीतों तक इस रोग का पता नहीं चलता। फिर पहले चहरे पर फिर पैरों पर और फिर सारे शरीर पर शीथ का प्रसरण हो जाता है। बांतों की दीवार में म्वयम् होने से वमन अतिसार के लक्षण हो सकते हैं। धीरे धीरे रक्ताल्पता की स्थिति उपस्थित हो जाती है और रक्ताल्पता और शोय के कारण चेहरा एक विशेष आकृति का तथा बड़ा प्रतीत होता है। शोथ इतनी हो सकती है कि शरीर का भार सामान्य भार से दो गुना हो जाय ! शोथ के साथ रोगी में पाण्डुता का भी लक्षण होता है। ही मोग्लोबिन की मात्रा रक्त में बत्यधिक कम हो जाती है तथा कोलेस्टरोल -की माला बढ़ जाती है। मूत्र की मात्रा क्रम हो जाती है और उसका आपेक्षिक भार घट जाता है। मूत्र में अल्म्यु-मिन, यूरेट्स और अन्यं कास्ट मिलते हैं। पाचन क्रिया विकृत हो जाती है। वृक्क रोग से युक्त स्वी को गर्भ स्थिति हो जाय तो उसमें यह रोग और बढ़ता है अतः उसमें गर्म का रहना ठीक नहीं होता। शोययुक्त अवस्था दीर्घकाल तक चलवे पर रक्त यूरिया का संचय होने

an eighteleschi

लगता है फिर रक्तचाप की वृद्धि होने लगती है और अन्त में शोध कम हो जाता है।

(२) शुष्क अनुतीत्र वृक्कशोध---

वृवकशोथ के मन्द रूप में रहने से मूत्र में अल्ब्युमिन, Casts, रक्तकण आते हैं पर रोगी के चेहरे आदि पर शोध नहीं होता जिससे शरीर शुष्क रहता है। रोगी में पाण्डुता के लक्षण स्पष्ट होते हैं तथा घमनी काठिण्य होकर रक्तचाप की वृद्धि हो जाती है। रक्तभार की वृद्धि वरावर बनी रहने से सिर ददं की शिकायत बनी रहती है। इस अवस्था में रक्त संस्थान सम्बन्धी लक्षणों की प्रधानता रहती है फलतः हृद्य की मांसपेशी मोटी हो जाती है जिससे दक्षिण हृदयनिपात (Right congestive heart failure) के लक्षण हो जाते हैं। मूत्र -से यूरिया का निस्सरण कम होकर रक्त में संचित होने लंगने से युरीमिया की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। रक्त-ं चाप वृद्धिक के कारण रेटिना में विकृतिजन्य परिवर्तन हो जाते हैं। मूत्र की मात्रा अधिक पर आपेक्षिक भार कम हो-जाता है। मूत्र में एल्ब्युमिन की उपस्थिति कम् होती है।

निदान — जब तीत्र वृक्क शोथ अनुतीत्र वृक्क शोथ में परिणत होता है तब यह परिणित बहुत घीरे घीरे होने के कारण तीत्र कब समाप्त हुआ और अनुतीत्र कब प्रारम्भ हुआ इसका निर्णय करना किठन होता है। साधारणतया तीत्र की अविध २-३ मास मानी जाती है जब प्रारम्भ से ही रोग अनुतीत्र रहता है तब ज्वराभाव, सूजन और मूत्र-गत परिवर्तनों से निदान करना चाहिये।

उपद्रव—

(१) जल संचय—हृदयादि छङ्गों के अवकाशों में जल का संचय होना जैसे जल परिहृदय (Hydrope-ricardium), जलोदर, फुफ्फुसावरण शोथ आदि।

(२) उपसर्गी विपोत्सर्जन (Vicarious elimination of toxins)—शरीर में इकट्ठा हुआ विप अनेक मार्गों से शरीर के वाहर निकलने लगता है। बान्त में सव्रणता उत्पन्न होकर प्रवाहिका हो जाती है। त्वचा द्वारा निकलने पर कण्डु, शीतिपत्त (urticaria), छाजन (Eczema) रक्तस्राव इत्यादि विकार होते हैं।

साध्यासाध्यता - वृतक में जब एक बार स्थायी

विकृति हो जाती है तब वह कदापि ठीक नहीं हो सकती, प्रायः बढ़ती ही जाती है। यदि हृदय और रक्तचाप की वृद्धि न हुई तो ६-१८ मास व अधिक से अधिक ३ वर्ष में किसी न किसी उपद्रव से मर जाता है। पर रोगी पथ्य पूर्वक आहार-विहार से रहे और कोई उपद्रव उत्पन्न न हो तो रोग का शमन सम्भव है व रोगी अधिक काल तक भी पथ्यमय जीवन योपन कर सकता है।

् असाध्यता—जब हृदयाभिवृद्धि होने लगती है तो -समझना चाहिये कि रोग जीर्ण अवस्था में परिणत हो रहा है।

शरीर पर सूजन का बढ़ना, साभ्यन्तरीय सङ्गों में जल का संचय होना, मूत्र में शुक्ति की माला का बढ़ना रक्त-चाप बृद्धि तथा नेत्र के दृष्टि पटल में सूजन उत्पन्न होना असाहयता के लक्षण हैं।

रोगी की मृत्यु प्रायः उच्च रक्तदाब, यूरीमिया अथवा मस्तिष्कगत रक्तस्ताव के परिणामस्वरूप होती है।

जीर्ण बुक्कश्रीथ (Chronic Nephritis)

पर्याय—जीर्ण अन्तरालीय वृक्क शोथ (Chronic Interstitial Mephritis), जीर्णे गुरसकीय वृक्क शोथ (Ch. Glomerulonephritis), द्वितीयक संकुचित वृक्क (Secondary Contracted Kidney) लघु श्वेत वृक्क (Small white Kidney)।

हेतुकी—यह विकार तीन्न वृक्क शोय, अनुतीन्न वृक्क शोय या अपवृक्कता के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है। इसका प्रारम्भ इतना सूक्ष्म और सौम्य होता है कि इसका प्रारम्भ कन किस वृक्क विकार के परिणामस्वरूप होता है इसका पता नहीं लगता। यह रोग तीन्न वृक्क शोथ तथा अनुतीन्न वृक्क शोथ दोनों में से किसी के चिरकाल लगशग २ वर्ष तक बने रहने से होता है। यह दो प्रकार का है—

- (१) द्वितीयक संकृचित वृदक शोथ (Secondary Contracted Kidney)।
- (२) चिरकालीन आंत्रिक वृषक शोथ (Chresi Interstitial Nephritis)।
- (१) द्वितीयक संकुचित वृक्क शोध-तीन वृक्क शोध या अनुतीन वृक्क शोथ इत दोनों में से किसी एक के -

ga em falacen

वर्ष तक रह जाने पर यह होता है। इस अवस्था में मृत्र की माला वह जाती है, आपेक्षिक गुरुत्व बहुत गिर जाता है। प्रथम अवस्था में जो एल्ब्युमिन वहुत माला में आता था वह कम हो जाता है। दिन रात में मृत्र की माला बढ़ जावे तो शोथ कम हो जाता है हृदय वाम क्षेपककोष्ठ में अतिवृद्धि हो जाती है। वृक्क की अकर्मण्यता प्रारम्भ होने पर मृत्र की मात्रा कम होजाती है तो यूरीमिया होजाता है।

- (२) चिरकालीन बांत्रिक वृक्क शोय पहले यह एक ही प्रकार-का समझा जाता या पर अब प्रायोगिक इंग्टि से इसके मुख्य तीन भेद माने जाते हैं। यथा—
- (क) मध्यम्बय वा वृद्धावस्था में विरकालीन वृक्क शोथ उत्पन्त हो जाये जिससे रक्त दबाव बढ़ा हुआ हो तो जिसके २ भेद हैं—
 - (i) साध्य रक्त का दबाव
 - (ii) असाध्य रक्त का दबाव
- (ख) युवा व्यक्ति में चिरकालीन वृक्क शोथ हो तो इस कारण वृक्क की सहज विकृतियां व सिस्टिक विकृति (Congenital & Cystic Kidney)हो सकता है।
- (ग) वृक्काश्मरी-चिरकालीन वस्ति वृक्क शोध से भी हो सकता है।

विकृति-

इस अवस्था में वृषक में सन्तूरकर्ष तथा श्रण वस्तुभवन (Fibrosis) होने से वृक्क का परिमाण छोटा होता है इसलिए इसको लघु श्वेत वृक्क कहते हैं। परिणाम में छोटा होने से पहले वृवक बढ़ा रहता है इसलिए इसको द्वितीयक शंकुचित वृक्क भी कहते हैं। सूक्ष्म परीक्षण करने पर वृक्क ही रचना पूर्णतया नष्ट हुई प्रतीत होती है। अधिक संख्यक ामनी गुच्छों में अत्यधिक वेकार हो जाने से भीर आसपास ह धातुओं के साथ इस प्रकार मिल जाते हैं कि उनको हिचानना कठिन हो जाता है। कुछ गुत्सक सीण संकुचित हते हैं परन्तु उनके भीतर रक्त प्रवाह जारी रहता है जससे, मूत्र घोड़ा-योड़ा छनता रहता है। यद्यपि अधिक ंख्यक वृक्काणु क्षीण होकर वेकार हो जाते हैं तथापि जो चते हैं वे परमपुष्ट होते हैं जिनके बल.पर वृक्क का कार्य 🛚 ालता है और जीवित रहता है। वृक्कगत इन विकृतियों त परिणाम शुक्लिमेह कम होने में, मूत्र की माला बढ़ने में या सर्व भरीर' की धमनियों में जठरता (Sclerosis),

रक्तचाप वृद्धि और हृदय की अति वृद्धि होने से होता है।

चिरकालीन वृक्कशोथ रोग की तृतीयावस्था होती है।
जो अनुतीब वृक्कशोथ के १-२ वर्ष वाद दिखाई देती है।
वृक्कशोथ की द्वितीयावस्था (अनुतीव वृक्क शोथ) में
यद्यपि वृक्कों की काफी क्षति होती है तथापि उनका जो
अंग वषता है वह अधिककार्य करके वृक्क कार्य का
समतोलन-क्षतिपूर्ति (Compensation) कर लेता है
इसलिये उसमें वृक्ककार्य हानि के कोई लक्षण मूत्र में
या रक्त में नहीं दिखाई देते। इस अवस्था में धीरे-२
खूक्क कार्य हानि होने लगती है जिसका परिणाम मूत्र और
रक्त पर होता है। संक्षेप में अनुतीय और जीर्ण वृक्कणोय में
जो अन्तर होता है वह वृक्कगत शारीरिक विकृति की
अपेक्षा वृक्क के कार्य हानि के कारण हुआ करता है।

मूत्र-प्रारम्भ में मूत्र में पतलापन तथा अल्प स्वरूप का एल्क्यूमिन मिलता है। मूत्र की राशि धीरे-धीरे बढ़ने लगती है और जब काफी बढ़ती है सब रोगी को रात में भी उठना पड़ता है। इस रोग में नृदक के धर्मनीगुच्छ भीर मूत्र विस्नाविणियां अत्यधिक संख्या में झीण होजाती हैं जिससे मूत्र गाढ़ा करने की शक्ति समाप्त हो जाती है। मूल निर्माण तो लगभग १०० औंस के हो सकता है और उसमें गाढ़ापन नहीं होता है इसंलिए मूत्र अधिक आता है जिससे रोगी को प्यासं अधिक लगती-है, और शरीर में जलाल्पता की विकृति उत्पन्न हो जाती है। पतला और हल्का बहुमूल जीर्णवृक्क शोथ का प्रधान लक्षण माना जाता है। मूत्र में कास्ट्स की उपस्थिति रहती है तथा यूरिया की निकासी कम होने तथा रक्त में इसकी ४०% से विधिक वृद्धि होने पर शरीर तथा मस्तिष्क पर अल्प परिश्रम ही यकावट उत्पन्न कर देता है। संक्षेप में मूत की अधिकता, गुरुता की अल्पता, 'धुक्लि की लेशमात्रता इसं रोग की विशेषतायें होती हैं।

रक मूत्र से रक्त का जलांश निकस जाने के कारण तथा शुनिल का उत्सर्ग कम होने के कारण रक्त में शुनिल की मात्रा बढ़ने लगती है तथा रक्तगत विषेत पदार्थों के मिलने से रोगी की त्वचा पर छोटे-छोटे लाल चकते निकल बाते हैं, साथ ही नाक तथा अन्य मार्गों से रक्तस्राव भी होता है। वृक्कों की मूत्रस्राविणियों के क्षीण होने सें,

ZI Zivi Elleberti

वृक्कों में विद्यमान रक्तवाहिनियों का रक्तप्रवाह मन्द हो जाने से रक्तभार बढ़ जाता है जिससे वाम हृदय की अति वृद्धि हो जाती है। रक्तभार वृद्धि के कारण शिरः शूल शिरोध्रम, मानसिक विक्षोभ, हृष्टिमांद्य आदि प्रमुख बक्षण होते हैं। रक्त कणों की कमी तथा ही मोग्लोबिन के अल्प निर्माण के कारण शरीर पर फीकापन तथा पाण्डुता आ जाती है।

नाड़ियों पर विक्षोभक प्रभाव पड़ने पर से हाथ पैर की मांसपेशियों में स्तम्भ के लक्षण पैदा हो जाते हैं तथा मंस्तिष्क प्रभावित होने से दिन में निद्राधिक्य तथा रात्रि में अनिद्रता के लक्षण होते हैं।

अन्य अक्षण— उपर्यु क्त प्रदान लक्षणों के अतिरिक्त मिलली (Nausea), अरोचक, अग्नि की मन्दता, प्रवाित्त हिंका इत्यादि पाचन संस्थान के लक्षण होते हैं। एवसन संस्थान के प्रभावित होने से खांसी, श्वासकुच्छ्रता, मस्तिष्क संस्थान के लक्षण, सिर दर्द, नाड़ी शूल, पेशियों में ऐ ठन, निद्रानाश, शारीरिक और मानसिक काम करने में अनिच्छा, कर्णनाद, बांखों के साधने अन्वेरा या अन्धापन तथा कण्डू, छाजन, भारक्षम, बरावर सर्वी से पीड़ित होना आदि लक्षण होते हैं।

जपद्रय-यह रोग वर्षों तक बना रहता है। यूक्कार्य हानि प्रारम्भ होकर घीरे-घीरे बढ़ती है और वृक्कातिपात (Renal Failure) होकर मूल विषमयता हो जाती है जो मारक होती है। रक्तजाव रक्तचापवृद्धि के कारण भी होता है, नासागत रक्तजाव घातक नहीं होता है। हृदय निपात (Cardiac failure) तथा आभ्यन्तरीय अङ्गों का द्रव संचय मारक होता है। उपद्रवों का विस्तृत विवरण तील बृक्कशोथ के अन्तर्गत हो चुका है।

भें और मृदुस्वेष्ठ्य का हो तो १-१० वर्षों में और मृदुस्वेष्ठ्य का हो तो २०-२० वर्ष में रोगी को यूरी गिया हो कर मृत्यु होती है। रक्तभार वृद्धि तथा हृदय निपास थादि उपद्रव मृत्युकारक होते हैं।

जीर्जश्रदक शोध चिकित्सा—

अनुनीय और जीण युवक शीय में आसम का जीवन होना चाहिए परन्तु विस्तरे की शरण जब सूजन अधिक हो, मूबदिपसयता के लक्षण तीव्र हों तब लेनी चाहिये। कमरा तथा ओडना विछीना ऐसा हो कि शीत से शरीर की रक्षा हो। रहने के लिए शुष्क या सम शीतोष्ण जलवायु का प्रदेश हितकर रहता है।

बाहार-बाहार में प्रोटीन क्रम तथा कार्बोहाइड्रेट्स, वसा का अधिक सेवन कराना चाहिए। जब यूरिया १०० मि लि. रक्त में १०० मि. ग्राम से ऊपर हो तब लगभग ३५ ग्राम प्रोटीन देना चाहिये । उसके देने से पूर्व ३-४ दिन तक रोगी को निराहार या केवल द्रवाहार पर ही रखा जाय तो लाभ अधिक होता है। द्रवाहार का कुछ अंश टमाटर और अंगूर आदि फलों का रस होना चाहिए तथा शेष अंश चाय लेमोनेड तथा नीव का शर्वत आदि जिन में ४-६ औंस ग्लूकोज की मावा मिश्रित, हो इस प्रकार १४ दिन तक प्रोटीन रहित कार्बोहाइड्रेट वाले आहार देने से यूरिया की माना कम हो जाती है। जब रक्त में यूरिया की मात्रा १०० सी.सी. में २० सी.सी. के लगभग हो सब बाहार में प्रोटीन की मात्रा ३५-४० ग्राम तक दी जा सकती है। कुछ दिन तक रोगी को केवल उबले हुए चावल ३-३ औंस दिन में ३ बार खांड या मुरब्वे के साथ दिया जाय तो युरिया की माना घट जाती है तथा युरिया की माना घट फर ५०-६० मि.सि. प्रतिशत तक हो जाय तो जल की मात्रा साधारण अर्थात २-३।। प्रतिशत तक दी जा सकती है। सेष्जी गालू फल चावल . रोटी दूध मक्खन की मात्रा धीरे धीरे भूख के अनुसार बढ़ाई जा सकती है। नमक का पूर्ण वर्जन करने की आवश्यकता नहीं पर सूजन की अवस्था में कम कर दिया जाय या न दिया जाय। मद्य मांस, काफी, गर्म मसालों का प्रयोग सर्वेण निपेध रखा जाय।

मूत्रल बौषधियां — जीर्ण वृक्कशोथ के रोगी के लिए
मूत्रल बौषधियों का प्रयोग सावधानी से करना चाहिए।
जब शरीर पर सूजन होती है तब रोगी को तृपित न रखते
हुए अल्पमाला में जल देना चाहिए। मूलल औषधियों में
सारीय बौषधियां यथा नीबू रस, सोडाबाईकार्व, प्रवेतपपंटी
आदि का प्रयोग करना चाहिए। यथा सम्भव रोगीको द्रवाहार
पर ही रखना चाहिए तथा सन्तरे, अंगूर, टमाटर आदि
का रस देना चाहिए। यथासम्भव तील मूलल बौषधियों का
प्रयोग न फरें णरदयुक्त मूलल बौषधियों का प्रयोग
कदापि न करें।

स्वेदल औपधियां—स्वेदल औपधियों का प्रयोग जीणं नृषक शोय में दिसकर नहीं होता क्योंकि जनके प्रयोग से

Ha von falebern

शीत पकड़ने का डर रहता है जो रोग को बढ़ाता है।

विरेचन ओषिधयां—रोगी की कोष्ठ शुद्धि पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इसके लिए सौम्य विरेचन औषिधयां मैगसल्फ, जलापा चूर्ण व शिवाक्षार पाचन चूर्ण व जवा-हरड़ को कैस्टर स्वायल में भूनकर चूर्ण कर इसका प्रयोग एकाध बार कर सकते हैं। तीव विरेचक औषिधयों इच्छा-भेदी, नाराच रस व जमाल गोटे के योगों का प्रयोग नहीं करना चाहिये नयोंकि उनसे स्वांत कमजोर हो जाती हैं।

खपद्रवों की चिकित्सा—रक्त भार वृद्धि तथा यूरी-मिया के कारण उपद्रवों की उत्पति होती है। मुख्य रूप से श्वासकण्ट, मुखपाक, दन्तवेष्ट गोथ, उच्च रक्तचाप बादि होते हैं जिनकी चिकित्सा रोग के लक्षणानुसार करनी चाहिए। वृक्कांतिपात, हृदयातिपात तथा मस्तिष्क विकृति जन्य विकार मारक होते हैं।

श्रीपिध चिकित्सा—श्रीषिध चिकित्सा में ऐसी श्रीपिध
की ज्यवस्था करनी चाहिए जिससे धारीरिक मल का
निस्सरण होता रहे एतदर्थ मेंगशल्फ या शिवाक्षार पाचन
च ण १:२ दिन से देते रहना चाहिए। अम्लोत्कर्ष दिनी
स्थित में सोडाबाई कार्व प्रतिदिन देना चाहिए। रक्त में
पोटाशियम की कमी हो तो रोगी को पोटाश साइट्रेट या
पोटासक्लोर लिक्बिड देना चाहिए। रातको ग्लूकोज मिश्रिस
जल देते रहना चाहिए। कैलिशियम तथा विटामिन दी की
कमी पृति के लिये कैलिसयम ग्लूकोज १० मि० लि॰ की
मात्रा में शिरामागं से देना चाहिए। रक्तचाप वृद्धि होने
पर रिसपिन व सपंगन्धा च ण आधा ग्राम का प्रयोग
करना चाहिए। यदि रोगी हृदय फल की स्थिति में हैं
तो मृतल श्रीपिधयां तथा 'डिजीटेलिस' का प्रयोग किया
जाता है। रक्ताल्पता में लीहयुक्त श्रीषिधयां हितकर
रहती हैं।

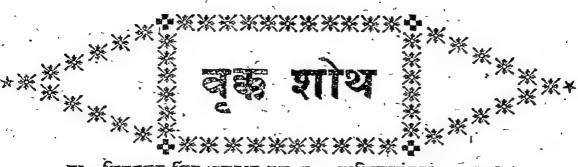
बायुर्वेद योग चतुर्दश—

- (१) वितपपंटी यह मूत्रल योग है। पहली मात्रा ही मूत्र प्रवंतन के लिए पर्याप्त है।
- (२) पत्यर वेर चूर्ण अश्मरीनाशकं उत्तम मूत्रल योग, दिन में ३-४ वार दिया जा सकता है।

- (३) चन्द्रप्रभा वटी—तिफला क्वाथ के अनुपान से जीण वृक्क शोथ में हितकर है।
- (४) सर्वतोभद्र वटी (भैपज्य रत्नावली)—वृत्कं भीय की सभी अवस्थाओं में प्रयोग कर सकते हैं।
- (प्र) रसराज रस- वृक्कणोय के साथ रक्तचाप वृद्धि की स्थिति में विशेष लाभदायक है।
 - (६) तारकेश्वर रस मूत्र रोगों में प्रशस्त योग है।
- (७) पुनर्नवा मण्हर वृवकितिपात व हृदयिनपात आदि चपद्रवों में भी चपयोगी है।
- (१) शिलाजतु योग—शिलाजीत ४ रत्ती की -माता में त्रिफला क्वार्थ से फ्लावे।
- (१०) अगस्तिमोदक—४ माशा की मात्रा में दिन में २ बार दें, मल मूत्र प्रवर्तक है।
- (११) पुनर्नवाद्यवलेह-१०-१० ग्राम दिन में दो वार दें। शोय नाणक मूलल प्रयोग है।
- (१२) बाद्र क स्वरस अदरख रस + गुड़ मिलांकर दिन में २ बार दें।
- (१३) गोक्षुरादि गुग्गुल—मूत्राद्यात, मूत्रकृष्कृ, अश्मरी । नाशक मूत्रप्रवर्तक योग है।

(१४)दशमूल हरीतकी-१०-१०ग्रा. दिन में दो बार दें।

वृत्तकशोध चिकित्सा में चिकित्सक रोग के लक्षणों के अनुसार उपयुंक्त योगों की व्यवस्था करे। वृत्तकशोध की चिरकालीन जीणें अवस्था में दीर्घकालीन पथ्यव्यवस्थामय चिकित्सा की आवश्यकता है। कारण औषधोपचार से रोग के लक्षण शांत हो जाते हैं क्योंकि इस रोग में वृत्क निवंल एवं विकारप्रस्त रहते हैं अतः पुनः पुनः रोग का आक्रमण हो जाता है। एक बार यह रोग हो जाने पर जल्दी ही रोगी को छोड़ता नहीं बिल्क इस रोग में मृत्यु को हटाया नहीं जा सकता क्योंकि यूरीमिया, हदयातिपात, वृक्तनिपात आदि की स्थित आकर रोगी का प्राणांत होजाता है। अतः रोग की प्रारम्भिक अवस्था में ही रोगी को सावधान हो जाना चाहिये अन्यथा इस रोग में मृत्यु आ ही जाती है। चिकित्सक को बड़ी तत्परता से रोग के उपद्वों को हिटट गत रखते हुए उनका शमन करते हुए चिकित्सा करने से ही सफलता मिलती है।



डा॰ शिवपूजन सिंह कुशवाह एम॰ए॰, साहित्यालंकार, कानपुर।

'यूनक प्रदाह, वृक्कशोथ, गुर्हें की सूजन आंग्ल भाषा में Nephritis भी कहते हैं।

इस रोग में बुक्क के स्थान पर कमर में दर्द होता है जो नीचे की ओर जांघों में आता है। जिस बुक्क में शोथ होता है उस ओर का पांव खींचने से पीड़ा बढ़ जाती है। जांघ का भीतरी भाग सुन्न सा लगता है। मूत्र अत्यल्प, और दर्द के साथ आता है। मूल में काले रंग का रक्त भी आ सकता है। सर्दी लगकर ज्वर होना, वमन होना और मलावरोध लक्षण भी होते हैं।

अायुर्वेदिक औषधियां — 'माहेश्वर वटी' अत्यन्त उप-मोगी है।

गगनं कान्तलीहं च स्फटिकास्वणं मौक्तिकम्। सहदेवीजटा क्षीरपृष्पी सर्वे समांशकम् ॥१६॥ संच_ण्यं सितवर्षाभूगोक्षुरः शुष्कमूलकम् । एषां वबार्यस्तु विधिना पृथक् संभाव्य सप्तधा ॥२०॥ गुंजाद्वयोन्मिताः कार्या वटिकाः सद्भिपग्जनैः। इयं माहेश्वरीनाम्नी वटिका सेवनाद् ध्रुवम् ॥ १॥ वृवकरोगं च सलिलोंदरं पाण्ड्वामयं तथा। विषमज्वरं च घोथं सर्वं देह समुद्गतम् ॥ २२॥ मूच्छा च सत्वरं हन्याद् यथा बज्जं तु पादपान् । प्रयत्नेन क्षीरान्नं पथ्यरूपतः ॥२३॥ सेवनीयं -[भैषज्य रत्नावली ६३ वृक्क रोग चिकित्सा प्रकरणम्] विद्योतिनी भा॰ टी॰- अप्रकं भस्म, कान्तलीह भस्म, गुद्ध फिटकिरी। स्वर्ण भस्म, मुक्ता भस्म, महा-वला की जड़ और कीर काकीली, इन सबको समान-२

प्रमाण लेकर एकत्र महीन पीसकर श्वेत पुनर्नेवा, गोखरू तथा सूखी मूली, इनके पृथक्-र क्वांथों से विधिपूर्वक सात-र वार भावित करके अच्छी तरह खरल कर दो-दो रसी की विद्यार्थ वना के सुखा कर शीशों में भर लें। इसको 'माहेश्वर वटी' कहते हैं। एक वटी सुबह तथा एक सम्ध्या के समय सेवन करनी चाहिए। वटी के सेवन करते समय पथ्य में दुग्ध तथा हल्के पदार्थ जैसे चावल आदि अन्न का सेवन करना उचित है। यह वटी वृक्क के विकार जलोदर, पांडु, विषयज्वर, सर्वाङ्ग शोथ, मूच्छा आदि को शीध ऐसे नष्ट करती है जैसे बच्च बुक्ष को। *

आयुर्वेदिक इंजेक्शन-

- (१) अपराजिता [बुन्देलखण्ड, झडा, जी. ए. मिश्रा,]
 १ से २ सी.सी. सप्ताह में ३ वार चर्म, मांस या नस में
 लगाने से लाभ होगा। नस में लगाना विशेष उपयोगी है।
 शूई लगाने के पंड्यात् मूर्छा होने पर प्रवासिष्टी २ से
 ४ ग्रॅन तक शोतल जल से दें। शीतल जल में ग्लुकोज
 धोलकर पिला दें। जल के छीटे भी मारें।
- (२) पुनर्नवा [मातंण्ड, ए. बी. एम., बुन्देलखण्ड, लक्ष्मी, सिद्धि, मिश्रा, आदणं, भरत]-१ सी.सी. नित्य नितम्ब में ६ से १५ तक सूई लगावें।
- (२) वरण [जो ए मिश्र व बुन्देसखण्ड]-१-२ सी.-सी. नित्य या वृतीय दिन मांस या नस में दें।
- () प्रवाल पंचामृत (वुन्देलसंड आयुर्वेदिक फार्मा-म्युटिकल ।

- भेषांग पृष्ठ २२० पर देखें।

^{★&#}x27;भैपज्यरत्नावली'' पृष्ठ ५२७ [संवत् २०९५ दि॰, दितीय संस्करण, चौखम्बा संस्कृत सीरीय आफिस, पो - · बा॰ ५, वाराणसी १ द्वारा प्रकाणित]

*** वद्दशोश की सफल विकित्सा ***

शाचार्य श्री हरदयाल वैद्यवाचस्पति, आयुर्वेदाचार्य र ई--२१, आनन्द निकेतन, नई दिल्ली--२१

सायुर्वेद के प्रकांड विद्वान किवराज हरदयाल वैद्य वाचस्पित वयोवृद्ध अनुभवी चिकित्सक तथा आयुर्वेद जगत के जाने-माने आचार्य हैं। आप दयानन्दायुर्वेद महाविद्यालय लाहोर एवं अमृतसर के प्रिन्सिपल रहे हैं तथा विश्व को आपने अपने अध्यापनकाल में ४।। हजार से अधिक कुशल कित्त्सक दिये हैं। 'धन्वन्तिर' के साथ तो आपका इसके जन्मदाता वैद्यराज राधाबल्लभ जी के समय से ही सम्बन्ध रहा है। चिख एवं सद्परामशं के लिये छत्त्र हैं।

वृद्ध शोथ—हिथा विभक्त है, तीन तथा चिरकासीन वा जीणं। इसका सीधा सम्बन्ध वृद्ध विकृति से हैं। वृक्कों की वृद्धि के कारण वे निर्णले पंदायं जो मूत्र द्वारा शरीर से बाहर निकत्ते हैं वे शरीर में ही संचित होकर विष के लक्षणों को जन्म देते हैं। स्वस्थ बृद्ध यूरिया एवं यूरिक अस्ल आदि द्रव्यों को जो प्रोटीन के प्रयुक्त होने से उनके विश्लेषण से वनते हैं, मूत्र द्वारा बाहर निकलते रहते हैं पर वृक्कों में निःस्रतिकरण मिक का हास होने से ये विषंले पदार्थ रक्त में सम्मिलित होते रहते हैं तथा इस रोग को उत्पन्न करते हैं। इसके लिये प्रचलित विचारधारा यही है। द्यभी तक निश्चित इप से यह कहना कठिन हैं कि किस द्रव्य विशेष से ऐसा होता है ? यह अन्वेषण कोटि में है।

तीव वृक्क शोथ — अचानक शिरश्यूल, शिरोभ्रम, व्याकुतता आदि लक्षणानुभूति होती हैं। तदन कुछ समय के बाद होठों और मुख पर उत्क्षेपण से होने लगते हैं। प्रश्चात् शों में होने लगते हैं। प्रश्चात् शों में होने लगती है। साथ ही तन्द्रावस्था भी बढ़ती है जियसे रोगी मून्छित होकर संसार को छोड़ देता है। दोष दुष्टि एवं यूरीमिया की अशांश कल्पना के आधार पर संबंत्र और संदा यही लक्षण नहीं होते अपितु भिन्न भी होते हैं और उपपुर्क लक्षणों में भिन्न अनेक प्रकार के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। कभी कभी अत्युद्ध शिरोव्यथा और दृष्टिमांद्य या दृष्टिनाम भी होता है या उत्क्षेपण के अनन्तर अथवा अकस्मात पक्षाधात के लक्षण उत्पन्न होते हैं एवं अति उग्र

कण्डू लोद सेद, क्यू स्फुटन, अब्रेज्ण, बेनिड़ा बादि होते हैं तथा तन्द्रा, मूर्ल्फ से रोगी मृत्यु मुख में चला जाता है।

जीर्णवृक्क शोथ—इस दशा में वृक्क रोगी मस्तिष्क, श्वास संस्थान एवं सदर भुहा के रोवों से विशेष कि भे पीड़ित होता है।

- (१) मस्तिष्क सम्बन्धी लक्षण प्रायः तीत्र वृक्कशोध में होते हैं—असह्य बिरःशूल जो प्रायः अदम्य होता है कुछ समय के पश्चात् शिरोध्रम, उत्सेपण, पक्षाधात, दृष्टिनाश, विश्रम सादि प्रवत्त यूरिया के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।
- (२) श्वास सम्बन्धी लक्षण प्रायः किचितीबांवस्या (Subacute) में होते हैं। सबसे अधिक श्वासकट़ है। इसके साथ मुख्याक, दन्तवेट्ट शोध विशेष लक्षण होते हैं। युगपत इन लक्षणों की विद्यमानता एक ही स्थान पर उपलब्ध हो तब नि:सन्देह यूरिया मान लेना चाहिये। ऐसीं शवस्था में रोगी की मून्छों के कारण मृत्यु होती हैं सौर मूच्छितावस्था में मुख से मूत्रगन्ध आती है।
- (३) उदर सम्बन्धी परिचायक लक्षण—उत्क्लेश, वमन, अतिसार और हिचकी बादि लक्षण जान पड़ते हैं। परन्तु सूव परीक्षण से ही वृक्क रोग का निश्चय होता है। सूत्र द्वारा निःसृत होने योग्य पदार्थों को यन्त्र द्वारा बाहर निकालने, की चेष्टा में व्रण होजाते हैं। इसीसे अतिसार हो जाता है जो इस रोग में दुलेक्षण है।
- जीण वृतक शोध में प्रायः ही वृतकीय, रचना और कार्य प्रणानी में विकृति आ जाती है । मूल निर्माण करने वाली नाड़ियां विकृत [(Chronic parenchymatous nephritis) होती है। कुछ काल के प्रधात

Ð

नाड़ियों की केन्द्रस्थ सैलें भी प्रभावित होती हैं। आद्यारम्भ
में वृक्क मोटा और स्थूल होता है। इसे स्थूल प्रवेत वृक्क
कहते हैं। तदनु यदि रोग स्थित चलती रहे तो दीर्घकालान्तर
में सौतिक तन्तु बढ़ जाते हैं। परिणाम्तः वृक्क संकुचित हो
जाते हैं। इसे छोटा संकुचित प्रवेत वृक्क नाम से सम्बोधित
करते हैं। कभी-कभी भोथ से केन्द्रीय सैलें अधिक पीड़ित
होती है तब जीणं केन्द्रस्थ वृक्क भोथ (Granular
Kidney) कहते हैं। इस अवस्था में अद्भुत लक्षण
भिन्नता उपलब्ध होती है-इसमें मूत्र अधिक आता है
भोजोनिःसरण कम होता है, आपेक्षिक घनत्व घट जाता
है। अन्त में वृक्क संकोच होता है।

वायुवंदीय सिद्धान्तानुसार विश्वभर की समस्त चिकित्सा पद्धितयों में भी आधारभूत तीन स्तम्भ समान रूप से अपनाय जाते हैं—प्रथम औषधि प्रयोग द्वितीय अन्न (चतुविध खाद्य, लेह्य, चोष्य, पेय), तृतीय-विहार, (इसमें रोगी की समस्त चेष्टायं परिचर्या, रोगी सेवा) में सम्मिलित हैं। इनका उचित सम्यक तथा युक्तियुक्त प्रयोग निश्चित सुखदायक होता है। वैद्य की सिद्धहस्तता इसीमें है कि वह अपने प्रतिपक्ष स्थित (रोग) योद्धा के बलाबल, प्रसर्ण शक्ति और उपस्थित, परिस्थित जन्य अन्य रोग तथा उपद्रवों का पूर्व ज्ञान तथा उपद्रवों का प्रशमन करते हुए चिकित्सा करने परही वैद्य की जय पराजय अवलंबित है।

उपद्रव विकित्सा—तीव और जीणं वृद्दक शोथ की विकित्सा के अभाव में ही उपद्रवों की सृष्टि होती है यथा श्वास कव्ट, मुख्याक, दन्तवेष्ट शोथ, शिरोभ्रम, शिरोविदना, उत्स्रोपण, तन्द्रा, मूत्र में रक्तस्राध, वमन, उत्वलेश, फिट एवं वृद्दक स्थान पर शृत, ये सर्व सम्पूणं लक्षण तो समवेतरूपेण एक ही रोगी में उपलब्ध नहीं होते, परन्तु जो भी उपलब्ध हो वह अतिशय कव्टदायक होता है। अतः तुरन्त शमनोपाय करना चाहिए।

श्वास - इसकी निवृत्ति के लिए—सितोपलादि चूणें १ माशा, अन्नक भरम १ रती, कलमीशोरा २ रती, ऐसी १-२ मात्रा चन्दनासब के साथ देनी चाहिए अथवा मधुयप्टी चूणें ४ रती, सीशांग्य भरम २ रती उण्ण किये हुए गुरुच्यादि अर्क से देना हितकर होता है। जण्ठ और छाती पर महानारायण तैल मुद्देन करके रवह की थैलो में गरम जल भरकर स्वेद देने से भी लाभ होता है।

मुखपांक - एतदर्थ आगे लिखे 'आरग्वधादि अवलेह' का सेवन तथा आमलकी और उदम्बर्पत क्वाय से गण्डूप और इसी करक से कवल छारण अति उपयोगी है।

ं दन्तवेष्ट शोथ — शान्त्यथं मुखपाक शामक चिकित्सा प्रयोग की जाती है।

शिरःश्ल, शिरोश्रम—ये दोनों लक्षण रक्त में यूरीमिया के कारण उद्भूत होते हैं। इन दोनों के प्रशमनार्थत्रिफला चूणें ३ माशा, हरिद्राचूणें १ माशा, स्फटिकाभसमं
१ माशा, गैरिक १ माशा, चन्द्रभागा चूणें १ माशा-मिला
कर रखलें। इसकी १-२ माशा मात्रा गुरुच्यादि अर्क या
गो दुग्ध से दी काती है। ऊपर से आरग्वधादि अवलेह
१ चम्मच चटाया जाता है। अर्थवा चैक्रान्त भस्म, स्वणें
भस्म, स्वणेंमाक्षिक भस्म, स्फटिका भस्म समान भाग
लेकर १-४ रत्ती की मात्रा में आरग्वधादि अवलेह से चटा
कर गुरुच्यादि अर्क अथवा चन्दनासव, उशीरासव या
अरविन्दासव, सारस्वतारिष्ट अनुपान रूप में देने से लाभ
होता है।

तन्द्रा और उत्सेपण-शान्त्यर्थं भी ऊपर के दोनों योग देने से अच्छा लाभ होता है।

वमन-उत्वलेश— इनकी शान्ति के लिए यवक्षार चार रत्ती शीतलजल में घोलकर— अथवा विशुद्ध यवक्षार के अभाव में (Potas-Bicarbonate) आधी चम्मच आधे हा गिलास जल में मिलाकर दिन में २-४ बार देने से लाभ होजासा है। अथवा - मधुरक्षार (Soda Bicarb) नृसार, सूर्यसार (कलमीशोरा) एक एक रत्ती गुरुन्चादि अर्क २ तोला में घोलकर थोड़े थोड़े समय के बाद देते रहने से दोनों उपद्रव शीघ्र शांत होजाते हैं।

मूत्र में रनत की उपस्थिति तथा थोजोविस्न सन—में कारस्करादि क्वाय प्रातः सायं तथा हरीतक्यादि क्वाय एवं रात्रि को चन्दनादि चूणं ४-द रत्ती तक चन्दनासव से दिया जाता है। ये तीनों योग मैंपज्य रत्नावली के बोजोमेहा- धिकार में वणित हैं। एक सप्ताह के प्रयोग से इन्छित लाभ होता है।

वृत्कशूल और किंद्शूल शान्ति के लिये, वाह्यो-पचार में उप्ण जल स्वेदन तथा अन्ति, ईसवगोल, खमाचदाना का पुलिटश बांधना हितकर है। नारायण तैले से मदेन तथा श्रृङ्की या जलौका द्वारा रक्तमोक्षण करना चाहिये। —शेपांश पृष्ठ २३४ पर देखें।

वृक्कशोथ पर आरग्बधादि अदलेह

आचार्य श्री हरस्याल वैद्यवाचस्पति, क्षायुर्वेदाचार्य, ई-२१, कानन्द निकेतन, नई दिल्ली-२१

春 ※ 🍨

अारग्वधादि अवलेह—यह वृक्क रोगियों के लिए हमारा प्रधान शस्त्र है। प्रत्येक दशा में इसे दिया जाता है। अनुपान रूप से तथा स्वेच्छा से दिन भर में कई बार १-१ चम्मच चाटते रहना चाहिए। इससे मलमूत्र की सम्यक प्रवृत्ति होने लगती है। वृक्क शोथ शनै: शनै दूर हो जाता है जिससे मूत्रोत्पादन एवं नि:सरण सुधरता जाता है। रोग निदान ठीक समय पर होते ही इसके प्रयोग से युक्क शोथ, उनकी अकर्मण्यता दूर हो रक्त-शुद्धि होती है।

आरग्वधादि अवलेह का योग—आरग्वध की फली का अन्तर्भाग ७५० ग्राम (गूदा फली से स्वयं निकालें, बाजार का निरथंक होता है)। व्वाथार्थ-पंचतृणमूल, शता-वरी, गोक्षुरी पंचांग, शालपर्णी, पृष्णपर्णी, काकमाची, पुन-र्नवा पंचाग, धनियां, श्वेत जीरक, उन्नाव-इन १० द्रव्यों को प्रथक-प्रथक १५०ग्रा लेकर क्वाय योग्य कूटकर चतुर्गुण जल से स्वच्छ पात्र में पाक करें। चतुर्याशावशिष्ट रहने पर पात्र को शीतल होने के लिए अलग रख दें। शीतल होने पर दोनों हाथों से या लकड़ी के मुसद्द से खूब मर्दन करें। इस क्रिया से क्वाथ का जल पूर्वापेक्षा कुछ गाढा हो जायेगा। घोल को ऐसे वस्त्र से जिसके छिद्र विरल हों अति संहत नहीं। यह छना हुआ क्वाथ गाढे रूप का हो।

प्रक्षेप द्रव्य--स्वर्णपती चूर्ण २ तोले, त्रिवृत चूर्ण ३ तोले. फूलगुलाव चूर्ण ४ तोले, खीरे के निष्तुष बीज की गिरी का चूर्ण ३ तोले, द्राक्षा बीजरहित २० तोले तथा गुठली सहित इमली के बीओं का बक्कल ४ तोला।

निर्माण विधि प्रथम आरग्दघ फलियों से प्राप्त कृष्णप्रसचित्रयायें लेकर एक स्वच्छ कलईदार पतीलों में साधा सेंर जल को गरम करें। जब जल खीलने लगे तब आरग्दध डालकर पात्र के मुख को ढांक दें और नीचे बग्नि गांत करदें। २ घण्टे के पश्चात् इनको हाथ से मगलकर विरल छिद्र वस्त्र से छान लें। छनने के पश्चात् निष्पीडित भाग को घोड़ा और जल देकर मदंन करके पुनः छान लें ताकि द्रव्यगत ग्रहणीय भागः पूर्णत्या प्राप्त हो। तदनु इमली के बीजों के द्रवक्त को १४-२० तोला पानी में २ घण्टे भिगोकर तथा मसलकर उसी वस्त्र से

छानकर प्रथक रखे। अब एक पत्थर की शिला पर धौत व और बीज सहित मुनक्का को पीसें और थोड़ा धोड़ा इमली संतीयार किये जल को डालकर हुढ मर्दन करें। बिना द्रव की सहायता के द्राक्षा के बीजों की .संरक्षण स्वचा का सम्यक् पेषण नहीं होता । सुपिष्ट होने पर द्राक्षाकलक को . प्रथक पात्र में रखें और इमली के अवशिष्ट जल से ही शिला पर लिप्त दाक्षा भाग को संग्रह करलें। अब पूर्व निर्मित क्वाथ, द्राक्षा करक तथा आरखभ के वस्त्रपूर्त[घोल को स्वच्छ कलईदार पतीला में पाक करे. ं यह पाक क्रिया बड़ी मन्द आंच से सम्पन्न होनी चाहिए। ५-६ घण्टे समय उसमें लग जाते हैं। जब पकते पकते नरम हलुए के सप्तश पाक हो तब इसमें प्रक्षेप द्रव्यों के चूर्ण को मिलाकर आधा किलो मधु मिलाकर आमोडन प्रक्रिया से एकरस करलें। योग को टिकाऊ रखने के लिए Potasium Meta Bi Sulphate १ छोटा चम्मच मिला कर कांच व चीनी मिट्टी के पात्र में रखलें जिससे न फुलन आयेगी और न योग विकृति ग्रस्त होगा-प्रयोग विधि जपर आ ही चुकी है।

पृष्ठ २३३ का शेषांश .

मुख्य चिकित्सा—प्रातः द वंजे सर्वतीभद्र वटी (भैपज्य रत्नावली) २ रती मधु में चटा कर ऊपर से गुरुच्यादि अर्क पिलावे। सार्य ४ वजे प्रभाकर वटी (भै. १.) २ रती तथा शयनकाल में माहेश्वर वटी २ रती, गुरुच्यादि अर्क से दे एवं दिन में कई बार एक-एक चम्मच 'आरग्वधादि अवलेह' जो चूक्क रोगियों पर अमोधास्त्र है चटाते रहें जिससे मूत्रोतसादन और निःसरण होकर शानैः शक्ने चृक्क शोथ का हास होकर रोग निमू ल होजाता है।

गुरुत्यादि अर्क- सकां इपत्रा गुरुची, पर्षेट, उगीर, नेत्रवाला, गोख रु, पुनर्नवारं चांग, काकमांची, फूल गुलाब, अवेत चन्दन, रक्त कमल, सींफ, कुमारीपत्र, पाषाणभेद, हिन्द्रा प्रत्येक १-१ पाछ, ६ सेर जल में भिगोकर अर्क विधान से १ बोतल अर्क निकाल लें। इसका उपयोग अनुपान तथा जलपान के रूप में किया जाता है



विशेष सम्पादक-कविराज श्री गिरिधारीलाल मिश्र ए॰,एम॰बी॰एस॰

अगुर्वेद प्रन्थों में वृवक के अर्जुद पर कोई स्वतन्त्र प्रकरण तो नहीं है पर शल्याचार्य सुश्रुत ने मूत्राचार्त के १३ भेद माने हैं उनमें वात कुण्डलिका (Spasm of urethra), मूत्र ग्रन्थ (Enlarged prostate or tumour of the bladder) मूत्रोत्सर्ग और मूत्रक्षय आदि भेदों में रोग के जिन लक्षणों का समावेश किया है उनमें 'वृवकार्जुद के लक्षणों का समावेश कर

सकते हैं। आधुनिक चिकित्सा वैज्ञानिकों ने वृक्का बुँदों के सन्दर्भ में निदान और चिकित्सा सम्बन्धी पर्याप्त जान-कारी प्राप्त कर न्ती थी जिसका वर्णन प्रस्तुत किया जारहा है—

वृवक के अवुँद दो प्रकार के माने गये हैं-

- (१) सार ऊतक (Parenchyma) के झब्द ।
- .(२) गोणिका (Pelvis) के अवुँद

अर्बुद का रूप	वृक्क का सार ऊतक	वृत्रक गोणिका
सुदमं ।	ग्रन्थ्यवु द (एडीनोमा)	वाहिकावुँद (Angioma) अंकुरावुँद (Pipilloma)
दुदंम	एडिनो-कासिनोमा (हाइपरनेफोमा या स्नाविग सर्वुद) एब्रियोमा (नेफोब्लास्टोमा या विलास अर्बुद)	अ कुरीय कासिनोमा ऐपीडमीइड कासिनोमा

वृतक के अवुंद को दुदंम समझकर ही उनकी विकित्सा करनी चाहिये क्योंकि सुदम अवुंद प्रायः असा-धारण होते हैं तथा उनकी दुदंम होने की पूर्णतः प्रवृत्ति रहती है।

रोग लक्षण--

वृतक अवृदि में शारीरिक सामान्य लक्षण एक समान हैं जिनमें मुख्य लक्षण रक्तमेह, उभार या वृद्धि और वेदना है—

(१) रक्तमेह (Haematuria) — वृतकाबुँद का यह मुख्य लक्षण है। अधिकतर रोगियो में यह शीघ्र ही प्रारम्भ हो जाता है पर लगभग तृतीयांश रोगियों में बिलम्ब से प्रकट होता है। रक्त मूल्ल में मिला रहता है किन्तु कृमिवत् निर्मोक (Casts) के रूप में भी निकल सकता है।

- (२) उभार या वृद्धि अधिकतर रोगियों में अर्बं द के अन्दर स्पर्शां सहिष्णुता रहती है, अबुँद गोल और चिकना होता है तथा प्वास के समय गति करता है। वृक्क प्रति लोढनीय (Ballotable) होता है।
- (३) वेदना—अवुंद में वेदना सदेव नहीं होती। पर होने पर वह वृक्क सम्पुट के खिचाव के कारण होती है या कभी कभी रक्त के यक्के जब गवीनी पर उतरते हैं तब वेदना होती है।
- (४) ज्वर असाधारण नहीं है, अज्ञात हेतुक ज्यर के कारणों में हाइपरनेफोमा स्मरणीय है। संक्रमण के बिना भी ज्वर रह सकता है और प्रायः वृक्क उच्छेदन के प्रश्चात् रोगी को ज्वर नहीं रहता।

वृक्कावु द निदान--

, वृत्क कैंसर के निदान में एक्सरे परीक्षण तथा वृत्क

स्पर्श परीक्षा तथा रोग निदान में विशेष सहायता मिलती है।

एक्स-रे परीक्षण—वृक्त कैंसर के निदान में एक्स-रे परीक्षण द्वारा चृक्त के कैंसर का स्थान और व ह्य रूप-रेखा के साथ अर्वुंद के आकार का स्पष्ट पता चल जाता है। इसके अतिरिक्त अर्वुंद अनियमितता, कैंक्सीकरण तथा द्वितीयक विक्षेप भी चित्र में दृष्टिगत होते हैं। वृक्तजन्य हाइपरनेफोमा के रोगी को कभी कभी रक्तमिश्रित कफ भी आता है। ऐसे वक्ष के एक्स-रे परीक्षण में फुक्फुसों के विकार का भी जान हो जाता है। उदर के साधारण एक्स-रे परीक्षण में एक विस्तृत एक्स-रे पिन्जर दिखाई देता है जिससे आंत दूसरी और विस्थापित हो जाती हैं। शिरामार्गीय गोणिका चित्रण में संपीडित तथा लम्बी सी गोणिका दिखाई देती हैं।

स्यान पर मन्दछ्विन सुनाई, स्पशं परीक्षा से 'विलम्स' स्वरूप का अवुंद बड़े आकार का प्रतीत होता है। अवुंद की ऊपरी भाग की उदर की ऊपरी त्वचा तनावयुक्त हो जाती है और चमकने लगती है। स्पशं परीक्षा से इढ़ स्वरूप का अनियमित स्तर वाला अवुंद पर्याप्त होंगहराई में प्रतीत होता है। दक्षिण खुक्क का अवुंद यकृत से सम्बन्धित हो जाता है और वाम खुक्क का अवुंद खुह्दन्त्र से सम्बन्धित हो जाता है और वाम खुक्क का अवुंद खुह्दन्त्र से सम्बन्धित हो जाता है। तत्र किसी किसी को जलोदर के लक्षण भी मिलते हैं।

रक्तमेह — रक्तमेह भी बृक्क कैंसर के मुख्य लक्षणों में प्रमुख है। जब वृक्क शून की अनुभूति रक्तमेह के साथ होती है तथा रक्तमेह बार बार होता रहता है व यकायक रक्तमेह अधिक मात्रा में आता हैं व एकाएक रक्त का मूल में आना बन्द हो जाता है। रोग के संकमणकाल में रक्त में मूत्र अवश्य मिलता है। जब रक्तस्कन्द गवीनी से होकर गुजरता है तब रोगी को वृक्कशूल की अनुभूति होती है। यह वृक्कशूल या तो जन्धा की ओर प्रसरित होता है या वक्ष की ओर प्रसरित होता है या वक्ष की ओर प्रसरित होता है। तीज़ वृक्क शूल वृक्का-श्मरीजनित ही होता है।

ं विलम्सरूप अर्वुंद का निदान शिरामार्गीय गोणिका चित्र द्वारा तथा दृक्क कैंसर का स्पष्ट निदान सुनियोजित परीक्षण द्वारा हो जाता है। सांध्यासाध्यता-

वृतक रोगियों के अर्बुद का ज्ञान प्रारम्भिक स्थिति
में ही हो जाता है तो चिकित्सा की हिन्द से पर्याप्त साध्य
होता है। अर्बुद के अधिक प्रसरित होने तथा रक्तमेह का
लक्षण प्रकट होने पर वह असाध्य हो जाता है। जब अर्बुद
एक ही स्थान पर होता है तो उसका समूल निष्कासन
समान होता है पर रोग के प्रसरित होने पर असाध्य हो
जाता है।

ग्रन्थ्यकासिनोमा में जितना अर्बुद छोटा होता है उतना ही साध्य होता है। उपत्वचाभ कासिनोमा कष्टसाध्य माना गया है और विल्म्स अर्बुद अत्यन्त घातक माना जाता है। यद्यपि इसमें शल्य चिकित्सा पर्याप्त प्रभा-वकारी सिद्ध हुई है तथा विकिरण चिकित्सा द्वारा भी सन्तोषजनक परिणाम मिले हैं तथापि अर्बुद असाध्य रोग माना जाता है। इसक के अर्बुद का प्रास्तान प्रायः सीमित ही रहता है। चृक्कार्बुद की प्रारम्भिक अवस्था में वृक्कोच्छेदन अन्तिम चिकित्सा मानी जाती है।

अतिस्वकार्जुंद (Hyper nephroma)

वृत्क के गीवितक से उत्पन्न होने वाले अर्बुदीं की अतिवृत्कार्बुद, एडिनोकासिनोमा कहा जाता है। ग्रीवित्स नामक वैज्ञानिक ने सर्वप्रथम इसका पता लगाया था इसकिये ग्रीवित्झार्बुद (Grawiz tumours) भी कहते हैं। एडिकासिनोमा वृद्धक में सबसे अधिक होने वाला अर्बुद है। लक्षण—

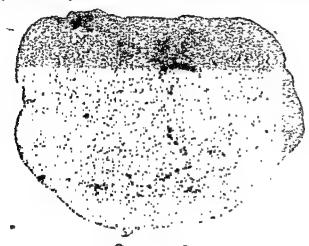
साधारणतया अर्जु द वृक्क के ऊर्ध्व ध्रुंब से निकलता है किन्तु निम्न ध्रुव पर भी निकल सकता है। अर्जु दों का प्रत्यक्ष दर्शन गोल सम्पुटित पिडवत् होता है पर उससे वृक्क का आकार प्रभावित नहीं होता पर अर्जु द को काटने पर उसमें कई प्रकार की आकृति दोखती हैं, स्वणंपीत शोत्र, रक्तस्राव के कारण लालक्षेत्र व रक्त से भरे हुये काष्ट्र (cysts) इतस्ततः देखे जा सकते हैं। कई प्रकार की पुटियां (casts) जिनमें कुछ पुटियों में स्वच्छ तरल और कुछ में रक्त भरा होता है। प्रारम्भिक अवस्था में अर्जु द सम्पुटित होता है किन्तु आगे चल कर सम्पुट फट जाता है और अर्जु द गोणिका को भी आक्रान्त कर देता है।

जिन लक्षणों से यह अबुंद पहलाना जाता है उनमें

an Pion Failacent

प्रमुख लक्षण हैं —

- (१) बीच बीच में वृक्क शूल होना जिसके साथ वमन भी होती रहती हो।
- ं (२) स्थानिक दंबाब के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं जिससे दंद व समीपवर्ती अवयवों की क्रिया विगड़ जातीहै।
- (३) बहुं धा अर्बुद धीरे धीरे फीलता है और जब गोणिका को आफ्रान्त करता है तब रक्तमेह होता है।
- (४) यह अर्बुद वृक्क शिरा के द्वारा प्रसारित होता है जो कभी कभी कोशिकाओं के ठोस स्तम्भ से भर जाती है। यह स्तम्भ वृक्कशिरा में होता हुआ अधोमहाशिरा



चित्र—ं ६ दे वृक्क का घातक अर्बुंद

भीर दक्षिण हृदय में पहुंच सकता है जिसके परिणाम-स्वरूप फुफ्फुस और अस्थियों में उसका अत्यधिक स्थला-न्तरण हो सकता है और परिणामस्वरूप वक्षश्ल, फुफ्फुस से रक्तस्राव (रक्तष्ठीवन) अथवा विकृतिजन्य अस्थिमंग आदि प्रारम्भिक लक्षण हो सकते हैं।

(प्र) जब रोग समीप के अंगों को भी ग्रस्त कर केंद्र है तो समीप के कटि लसीकापवों का विवर्धन पाया जाता है।

रोग के कारण -

जन्मजात गवीनियों का तंग होना, वृंवक की रक्त-वाहिनी का स्वाभाविक स्थान से सटना, मूत्रमागं में पर्दा होना जिससे नूत्र त्याग में कठिनाई होना आदि कारण है। जन्मोत्तर कालजन्य कारणों में मूत्रमागं में स्ट्रिक्चर, मूत्र ग्रंथि का वड़ा होना, गवीनियों में अश्मरी से या रक्त के जमने से लस्तिभाग के व दूसरे अर्बुंद का दबाद पड़ना, शस्त्रकर्म व आघात के कारण, गवीनी के रोग से गवीनी के संकुचित हो जाने आदि कारण, अन्य अज्ञात कारण इस रोग के उत्पादक माने जाते हैं।

यह रोग ४० वर्ष से अधिक के आयु के स्त्री-पुरुष दोनों को होता है। निदान —

सूक्ष्मदर्शन यन्त्र से वेखने पर इसकी आकृति में पर्याप्त भिन्तता मिल्ती है। रोग का प्रारम्भ में ही निदान आवश्यक है। सब लक्षणों के प्रिकट होने पर प्रायः स्थलां-तरण हो चुका होताहै अतः सिस्टोस्कोप द्वारा पूर्ण अन्वेषण आवश्यक है। उत्सर्जन गोणिका चित्र में भरण अपूर्णता (Filling defect) दिखाई देगा।

शस्त्रोपचार ही इसकी चिकित्सा है। पर्युदर्यापार (Transperitoneal), बृक्कोछेदन, परिवृक्क वसा सहित व् वांछित चिकित्सा है।

भ्रणार्बुद (Nephroblastoma)

यह बाल्यकाल का सबसे साधारण अबुंद है जो बालकों में र या दे वर्ष की आयु में मिलता है। द या १० वर्ष की आयु के पश्चात् असि असाधारण है। इस अबुंद की उत्पत्ति बाल्यावस्था में होती है तथा उत्पृत्ति का कारण भ्रूणीय वृक्कजन्य ऊतक माना जाता है एतदथं इसे भ्रूणाबुंद, नेफोब्लास्टोमा, ऐम्ब्रियोमा तथा विलम्स अबुंद के नाम से भी जाना जाता है।

यह अर्बुंद स्पष्ट रूप से रेखांकित गोलाकार तथा बड़े आकार बाले होते हैं। कभी कभी आकार बहुत छोटा के होता है किन्तु बहुधा बड़े आकार का होता है। प्रायः वृक्क के एक ओर होता है व दोनों ओर भी हो सकता है। अर्बुंद प्रायः गोलाकार अथवा अण्डाकार भी हो सकता है। यह वृक्क वस्ति से प्रारम्भ होता है और बहुत समय तक सम्पुट के भीतर ही बढ़ता रहता है। यदि सर्बुंद को काट कर देखा जाय तो उसका एक समपृष्ट धूसरमय लाल रंग का दीखता है।

वर्षुंद का विस्तार — यह वर्षुंद पात के पर्वों में स्तीकावाहिनियों तथा फेकड़े में रक्तप्रवाह हारा फैलता है। इसका प्रसार सतत रूप से गोणिका श्रोणि की श्रोर होता है। साथ ही इनके हारा वृक्कीय शिराय तथा कभी

सुना सेना सिक्टिसा

कभी महाध्मिनियां भी ग्रसित हो जाती हैं। इस अबुंद द्वारा अधिवृदकीय संक्रमण होता है तथा यकत, आंतें और कशेष्कायें भी ग्रसित हो जाती हैं।

लक्षण---

वच्चों में होने वाले वृक्कीय अर्बुद प्राय: यकायक इत्पन्त होने हैं और बहुत समय तक लक्षणहीन रह सकता है। प्रारम्भिक अवस्था में एक पिण्ड के रूप में उपस्थित हो सकता है जिसका आकार बढ़ सकता है और उदर के पार्व से मध्य धारा के दूसरी ओर तक विस्तृत हो सकता है तथा जिस ओर का वृक्क आक्रांत हो उस ओर का टदर बढ़ने लगता है। इस सबुद में वेदना नही होती तथा मूत्र सम्बन्धी लक्षण विरल होते है और रक्तमेह असाधारण है। पर रक्तमेह होने पर वालक का जीवन अति दुस्तर है।

रोग के बढ़ने पर बालक की वृक्क स्थान पर दर्व की अनुभूति होने लगती है। भरीर में रक्त की कमी, क्षुधानाण तथा भरीर का भार क्रमणः गिरने लग जाता है। अब द के कफजनन और रक्तलाव के परिणामस्वरूप जबर भी हो जाता है। सामान्य रूप से वृक्क अब द पर ध्यान नहीं जाता पर जब विना किसी आघात, चोट आदि के रोगी का अस्थिमंग हो जाता है तो इस कोर ध्यान जाता है।

ऐक्सरे परीक्षा—उदर के ऐक्सरे तित्र से अपार्य पिड् दीखता है। अंतिशिरीय गोणिका चित्रण से संपीड़ित (Compressed) और लम्बी सी गोणिका दीखती है। चिकित्सा—

यह अव द अत्यन्त घातक होता है जितना शीघ्र हो सके अव द का उच्छेदन करें। पार उदर छेदन दारों वृक्क को स्पष्ट क्रके उसके बृन्त का बन्धन करने के पण्यात् वृक्क को उसके स्थान से हटाकर उसका उच्छेदन कर दिया जाता है। शल्यकमं के पण्यात् ऐक्सरे किरणन बहुत लाधदायक होता है। किरणन को प्रथम मात्रा शक्ष्यकमं के प्रथम दिन ही संवेदनां हरण के प्रश्चात् चेतना होने के पूर्व ही दी जाती है। बोस्टन के बाल चिकित्सालय में इस विधि के परिणाम उत्साहवर्षक हैं। विशेषकर १ वर्ष से कम आयु वाले वालकों में। अधिकतर मृत्यु प्रथम वर्ष में रोग की पुनरावृक्ति से होती है। अर्बु द का स्पर्शन

अधिक व्यक्तियों द्वारा व अधिक वार न करें व्योंकि उससे रोग का विस्तार होता है। शल्यकमें पूर्व ऐक्सरे किरणन से कोई लाभ नहीं होता। वृक्काव द की चिकित्सा —

शहय चिकित्सा—वृक्तावुंद में शहय चिकित्सा द्वारा सम्पूर्ण वृक्त का समूल उन्छेदन कर दिया जाता है और यह चिकित्सा एकमात्र सर्वाधिक संफल चिकित्सा प्रमाणित हुई है। विकृत वृक्त की परिवृक्त वसा, उपवृक्त ग्रान्थ, लसीका पर्वो, वृक्त तथा गवीनियों के अधिकांश विकृत भाग को निकाल दिया जाता है और तत्पश्चात्र रेडियम चिकित्सा दी जाती है। वृक्त के अंकुरित कार्सीनोमा में वृक्त के श्रीण, गवीनी तथा मुत्राशय की दीवाल के अतिरिक्त भाग को भी निकाल दिया जाता है। गवीनी के कैसर में वृक्त गवीनी उच्छेदन किया जाता है। यूक्त प्रथावुंद में फुफ्फुस में विक्षेप पहुंचने से फुफ्फुस का भी खण्डोच्छेदन कर दिया जाता है।

शल्य चिकित्सा से पूर्व रोगों को रक्तास्पता हो तो रक्तास्पता को दूर करने के लिये रक्ताधान करके वृक्कों च्छेदन करना चाहिये। जल्य चिकित्सा के पञ्चात् रेडि-यम चिकित्सा दी जाती है पर वृक्काब द का आकार यदि काफी दड़ा हो तो उसे पहले रेडियम चिकित्सा छारा छोटा कर लिया जाता है जिससे अब द शल्य चिकित्सा के योग्य हो जाता है। विकिरण चिकित्सा के अन्तर्गत रोग की स्थिति के अनुसार १ ००-६००० रैड १ सप्ताह तक विकृत वृक्क पर लगाया जाता है। वोस्टन के बाल चिकित्सा के पञ्चात् रेडियम चिकित्सा के पञ्चात् रेडियम चिकित्सा के पञ्चात् रेडियम चिकित्सा के पञ्चात् रेडियम चिकित्सा के धिक लाभवारी है कि हुई है।

विकरणं चिकित्सा (Radio theraphy)—भ्रूणा-गूँद (वर्चों में होने वाले विलम्स अव्रुद्ध) में शल्य चिकित्सा के साथ रेडियो चिकित्सा भी की जाती है। यदि वृक्क प्रारंम्भ में ही वहा हो तो रेडियम चिकित्सा का एक कोर्स २०:० रेड विकिरण ३ सप्ताह तक दिया जाता है तत्पश्चात् वृक्कोन्छेदन कर रेडियम की शेष मात्रा दी जाती है। कभी कभी रेडिविकिरण चिकित्सा द्वारा वृक्कभोध तथा अस्थिकुटजता आदि उपद्रंव पैदा होते हैं ऐसी स्थिति में विकिरण का उपयोग विभाजित मात्रा में

eζĸ.

THE RICH FRIEDERIN

किया जाता है। साथ ही अधिक वोल्टेज के विकिरण का प्रयोग किया जाता है जिससे अस्थियों द्वारा विकिरण कम शोषित होता हैं। जो वृक्कार्बुद शल्य चिकित्सा से ठीक नहीं होते उनमें रेडियम चिकित्सा उत्तम है। आयुर्वेद चिकित्सा—

स्तेहन, स्वेदन, उत्तरविस्त देनी चाहिये। पाटला, यवक्षार, पारिभद्र, तिल क्षारोदक से दालचीनी, इलायची, त्रिकुटा का चूणें, गुड़ मिलाकर पिलायें या इनसे लेह बनाकर चटावें।

सर्वतोभद्र वटी—स्वणं, लौह, रजत, अभ्रक की भरम, शिलाजीत, गन्धक, स्वणंमाक्षिक भरम समभाग को वरुण क्वाथ से बोटकर १-१ रत्ती की गोली बनावें। १-१ गोली सुवह-शाम सेवन करना लाभदायक है।

4

**

Ų.

कैंसर विध्वंसक रस सर्वेश्वर पर्वेटी ६ ग्राम, शुक्क वर्की हड़ताल ६ ग्राम, स्वर्ण भरम ६ ग्राम, अञ्चल भरम (सहन्न पुटी) ६ ग्राम, मुक्ता पिण्टी ६ ग्राम, अमृतासत्व ६० ग्राम, पन्नापिण्टी ३ ग्राम, उत्तम हीरा भरम २४० मि०ग्राम सवको खरल में डाल सहंजन छाल स्वरस की भावना देकर अच्छी तरह घुटाई कर २६० मि०ग्राम प्रमाण की गोलियां बनालें। १-१ गोली प्रातः सायं शहद से चटाकर सहंजन स्वरस पीवें।

वायुर्वेद के —तालकेश्वर रस, व्यम्बकाश्र रस, विश्व-म्भर रस, सोमेश्वर रस, हेमाद्र रस, चन्द्रप्रभावटी, योगी-त्तमा वटी, नृपतिबरुत्तम, रसमाणिक्य, उदय भास्कर, सारिवाद्यासव, महामंजिष्ठाद्यरिष्ट, कांचनार गुग्गुल आदि औषध कल्पों का प्रयोग लाभकारी है। ★



कविराज ढा॰ हरिबल्लभ मन्तूलाल द्विवेदी सिलाकारी शास्त्री, बायुर्वेदाचार्य, कायुर्वेद वृहस्पति स्वामी निरञ्जन निवास, कोतवाली रोड, सागर (म॰ प्र॰)

क यह अर्बुंद विशेषतः स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को अधिक होता है। इसमें सामान्य लक्षण — मूत्र में के रक्त का निकलना है। यह रक्त वृक्क में से भी का सकता है। इसके अतिरिक्त ज्वर और रक्त की के परीक्षा करने पर रक्त में परिवर्तन पाया जाता है। कभी-कभी चिकित्सक को स्पर्श करने पर भी आभास के होता है। इसके सिवाय एक्सरे, रेडियो एक्टिय टेस्ट, वृक्क कार्य परीक्षण तथा ऐसे अनेक परीक्षणों द्वारा के निवान की स्पष्टता होती है। पाश्चात्य चिकित्सा में इसका एकमात्र उपचार शस्त्र किया से वृक्क को के निकाल देना है। परिणाम रोग की घातक अवस्था पर निमंद करता है।

उपचार—

- 9. रोगी को सर्वंप्रथम उसकी अवस्था के अनुसार विरेचन, वस्ति तथा उत्तर वस्ति देकर शोधन 🏰
- २. गोक्षुरादि गुग्गुल १ माशा, चन्द्रश्रभा वटी १ गोली, बङ्ग भस्म २ रत्ती । सबको मिला १ मात्रा 🏰 🚰 तैयार कर लेना । अनुपान गौ दुग्ध तथा मिश्री के साथ । अमृतादि ववाथ के साथ । समय—दिन में ३ 🤻 🗗 वार अथवा रोग और रोगी की अवस्थानुसार प्रयोग करना उचित है ।
 - ३. उशीरासव सारिवाद्यासव २-२ तीला, जल ४ तीला मिला भोजनीत्तर दिनमें २ बार दें।
 - ४. त्रिफला के क्वाय की अथवा हिम की उत्तरवस्ति देनी चाहिये।
- रू. स्थानिक—रोगी को गरम पानी में राई मिलाकर इस राई के पानी (टब) में बैठालना, साथ कू कि ही कमर के पिछले भाग पर राई की पट्टी लगानी चाहिये।
 - ६. त्रिफला चूर्ण ६ माशा की मात्रा में रात्रि में रोज सोते समय गुनगुने पानी से सेवन करना।

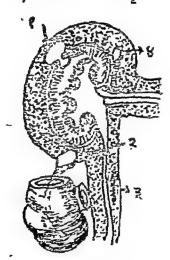
युव्हारी विद्यारी

विशेष सम्पादक-कविराज श्री गिरिधारीलाल मिश्र ए., एम. वी. एस., आयु॰ वाचस्पति

शरीर पर पिड़िकायें (वण) या कारवंकल निकलते रहते हों तो उसमें रक्त संचार द्वारा संक्रमण होकर वृष्क के आवरण, वृषक पृष्ठ और समीपस्य अवयव में पूर्यभाव होकर वृक्क विद्रधि होती है।

यह दो प्रकार की होती है --

(१) परिवृक्त हीमेटोमा के स्टेफिलोकोकस द्वारा संक्रमण से उत्पन्न होती है। संक्रमण फुंसी या अवसम्पुटी (Subcapsular) विद्विधि के परिवृक्त स्तक में फूटने से



·चित्र--- 'द8

वृक्क की परिधि पर विद्रिधियों के संक्रमण प्राप्ति स्वल १—वहिर्वस्तु(कार्टेक्स) २—वान्त्रपुच्छशोध से २—मूत्र गवीनीस्थ लसीका ग्रंथियों से ४—रक्त वाहिनियों द्वारा

पहुँचता है। यह स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में वाम और की अपेक्षा दक्षिण की ओर अधिक होती है।

(२) दितीयक, जो समीप के अर्ज्जों में जीय के ज्य-

द्रव रूप होती है जैसे पित्ताशय शोय, आंत्रपुच्छशोय, दिम्बवाहिनी शोय, यक्तत विद्रिध, एम्पायमा, पृष्ठवंश-ध्रय, वृश्कवस्ति शोय व आघातज कारणों से होती है। वसण—

किट में मन्द किन्तु चुमती हुई वेदना, जो कभी कभी टांगों की ओर जाती है। रुग्ण पार्श्व की टांग मुड़ी रहती है और चलते समय रोगी पीठ को सीधा न कर सकने के कारण झुक कर चलता है। शीत कम्प सहित जबर रहता हैं। वारम्बार फोड़े होते रहने का इतिहास प्रायः होता हैं और रोगी कुत्र होता जाता है। वृक्क अथवा समीपस्य खंगों में शोधग्रस्त होने का इतिहास, देवचा का शोध; वृक्ककोण पर स्पर्णासहता व वहां सूजन मिलती है। मूत्र में परिवर्तन हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है परन्तु नाम मात्र को एल्ट्युमिन आता है। ल्युकोसायटो-सिस वहुत अधिक रहता है। फेफड़ों के आधार में कोलेंट्स रहता है और कभी कभी प्लुरा में द्रव सचय भी हो जाता है।

इसका आरम्भ में ज्वर विपसंचार (Toxaemia) के लक्षणों के साथ होता है जब वृक्क प्रदेश पर पीछे एक रक्तवणें कठोर सा जभार प्रकट हो जाता है जिसमें दर्द, स्पर्शाक्षमता, कुछ भारीपन और Rigidity के होने से तथा टांग का सीधा न होने पाना (दर्द के कारण से), साथ ही ज्वर, स्वेद, पाण्डुता तथा प्रथमाव होने से चिकित्सक का ध्यान इस और जाता है। वृक्क आवरण सैप-सूल पर बन्दर से दवाव पड़ने के कारण ही वृक्क प्रदेश पर दर्द की प्रतीति होती है।

निदान—एक्सरे चित्र में कटि लम्बनी और वृवक की छायाओं का उस कोर लोप दीखता है और मध्यच्छिदिका के ची उठी दीखती है। उत्सर्जन गोणिका चित्रण में आल-बाल दीखते हैं।

en ein lenere

चिकित्सा-

प्रारम्भ में स्थानिक ऊष्मा प्रयोग द्वारा वेदना तथा
पेशी आकर्षण का शमन हो सकता है। उपयुक्त प्रतिजीवी
औषधियां दी जाती हैं। पेन्सिलीन देनी चाहिये।
Antibiotics देने पर यह रोग ठीक न हो तो शल्यकर्म
द्वारा इसकी पूय निकालनी पड़ती है अन्यथा यह विद्वधि
स्वयं आन्त्र में, उदरगुहा, उरोगुहा, मूतमार्ग में खुलकर
विस्तिगुहा में, वंक्षण में या पीठ पर खुल जाती है। अतः
जयों ही पूय का ज्ञान हो त्यों ही शल्यकर्म करना चाहिये।

रोगी के स्वस्थ हो जाने पर उधर के वृक्क की दणा का उत्सर्जन एक्सरे चित्रों द्वारा अन्वेषण करना चाहिये तथा उसके रोगग्रस्त होने पर उपयुक्त विकित्सा की जानी चाहिये।

लगभग दो तिहाई रोगी संरक्षी चिकित्वा से आरोग्य लाभ करते हैं। रोगी को शैंय्याल्ड करके तीव्र रक्तमेह के रोगी को चौथाई ग्रेन मार्फीन देकर रक्ताधान प्रारम्भ कर दिया जाता है। संक्रमण को रोकने के लिये पेन्सि-लीन और स्ट्रिप्टोमाइसिन दिये जाते हैं। रक्तस्राव रुक जाने पर ९० दिन तक पूर्ण शैंय्या विश्राम (Bed rest) कराया जाता है। रोगी को मुक्त करने के पूर्व वृक्क कार्यक्षमता को जानने के लिये उत्सर्जन गोणिका एक्सरे चित्रण उपयोगी होता है।

शल्यकर्म - २०-३० प्रतिशत रोगियों में शल्यकर्म की आवश्यकता होती है। परिवृक्क अवकाश का निसाव, विदर की सीवन आंशिक व पूर्ण वृक्कोच्छेदन करना आव-श्यक हो सकता है। मूत्राशय से रक्त के थक्कों को विगेली के निस्सारक (Bigellow's evecuator) और केनुला की सहायता से निकाला जा सकता है।

बृक्क का कारबंकल (Carbuncle)

ू वृदक का कारवंकल—यह अत्यन्त विरल है और त्वक-पनिसका से रक्त द्वारा स्टेफिलोकोकस ओरियस के संक्रमण के एक वृदक में पहुँचने से होता है।

विकृति—वृक्त के प्रान्तस्था संक्रमण के स्थाना-न्तरण से सार ऊतक के एक क्षेत्र में कई वहुकोष्ठीय विद-धियां वन जाती हैं जिससे परिगलन (necrosis) होता है। यह विद्रिध फ्टकर परिवृक्त ऊतक में परिवृक्त-विद्रिध वना देती है।

्लक्षण—

कटि प्रदेश में पिंड सा प्रतीत हो सकता है। जीव विपानतता और जबर कई सप्ताह तक बने रह सकते हैं। गोणिका वृक्कशोथ के समान रोगी की दशा होती है। उत्सर्जन एक्सरे चित्रण में क्षति की गुहिका हिण्टगोचर होती है। रक्त में श्वेत कोशिकाओं की बहुलता होती है। अ मूत्र में पूय कोशिकायें तभी अधिक होती हैं जब विद्रिध गोणिका में फूट जाती है।

चिकित्सा---

पेन्सिलिन की वृहदे मात्रायें सल्फोनामाइड के साथ दी जाती है। परिवृक्क विद्विध बनने पर शस्त्र कर्म द्वारा पूथ निर्दृश्ण किया जाता है तथा इसमें सफलता न मिखने पर वृक्कोच्छेदन किया जाता है। . .

्युय अपब्दक्ता (Pyoneprosis)

इस दशा में गोणिका विस्फारित होकर पूय से भर जाते है। सार ऊतक नष्ट हो जाते हैं। यह दशा जलीय वृक्कता के संक्रमण होने से या गोणिका वृक्कशोथ में अव-रोध उत्पन्न होने से होती है।

विकृति—वृक्क विविधित हो जाता है, वृक्क पूय का कई कोष्ठ वाला थैलासा हो जाता है। पूय मूत्र में निकल संकती है।

सिस्टोस्कोप— से परीक्षा करने पर गवीनी द्वारा पूय एक पतली रञ्जुका के समान निकलती हुई दिखाई देतीहै।

लक्षण वेदना, जबर, पूयमेह, जैवविषमयता, परि-स्पर्श्य और विविचित वृंबक हो सकते हैं। वन्द प्रारूप (closed type) के रोग में पूयमेह नहीं होता। साधारण एक्सरे में विविचित वृंबक की छाया दींखती है। उत्सर्जन गोणिका चित्र से वृंबक कार्यहीन मालूम होते हैं।

्चिकित्सा—बुक्कोच्छेदन है।

च क्केवस्ति में पूर्योत्पत्ति (Pyonephrosis)

यह वृक्ष का सिस्टिक अर्बुद है जिसका कारण वृक्क की वस्ति का और कैलिशयम का पूययुक्त द्रव से फैलना है/। इसका कारण मूत्र के स्वतंत्र रूप में वाहर आने की स्कावट है।

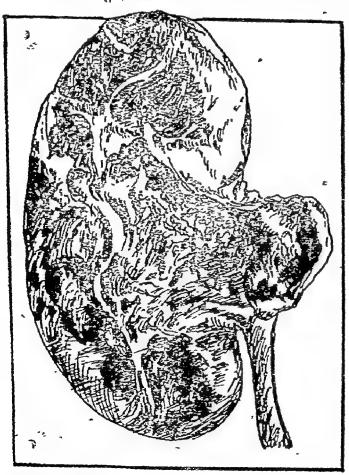
THE POLICE OF THE PROPERTY OF

लक्षण-

मूझ में पूष की मात्रा बढ़ी हुई आती है, स्पर्श से अबुंद के अन्दर स्पर्श असहिष्णुना रहती है, वृक्क वस्ति शोध के लक्षण मिलते हैं। विसर्गी उत्तर, कभी कभी शीव-कम्प, विपैले प्रभाव, किट भाग में मन्द वेदना रहती है। बीच में जब बबरोध हट जाता है अबुंद लुप्त हो जाता है। कारण—

हाइड्रोनेफोसिस में जीवाणु संचार हो जाय, जैसाकि
मूत्राशम शोय में होता है एवं गतीनी के अवरोध के कारण
वृक्कवस्ति शोथ के कारण यह दुखदायी रोग होता है।
वृक्क की बनावट प्राय: नष्ट हो जाती है। कोष्ट या
वक्ष में सर्वुंद के फटने से घातक परिणाम होते हैं।
चिकित्सा—

गवीनी को मूत्र, गलाका से घोना अस्यायी रूप में



चित्र ८५--मूत्र गवीनी श्रोणि का पूययुक्त शोष गवीनी श्रोणि पूयस्राव से भरी हुई हैं तथा वृक्क में विद्रिधियां दिखाई दे रही हैं।

लाभ । प्रायः वृक्क को शस्यकर्म द्वारा निकालना पड़ता है। त्रृक्क का पोली सिस्टिक रोग

इसमें दोनों वृक्क के अन्दर सिस्ट होती हैं जिनकी संख्या और आकार मिन्न भिन्न होते हैं। यह रोग प्रायः कुटुम्ब में चलता है।

लक्षण — एक या दोनों वृक्क पाश्वों में अर्बुद होता है जिससे एक या दोनों कटि प्रदेश पर चुभने वाली मन्द वेदना रहती है, वृक्क पर्याप्त कठोर इिट्गित होते हैं। मूत्र बहुत अधिक खेत वर्ण, आपेक्षिक भार में कभी तथा अल्पपरिमाण में एल्ट्युमिन तथा कभी कभी रक्त और कास्टस भी मूत्र में आते हैं।

उच्च रकत बाब, हृदय में हाइपरट्रौफी हो जाती है। इसके कारण भ्रूण में बहुत से अबुंद भी हो सकते हैं जिसो प्रसव कठिन हो जाय और बच्चों में वृक्क का फक्क रोग (Plickets) भी हो सकता है। रोगी का स्वास्प्य बहुत दिनों तक अच्छा रह सकता है अथवा विरकातीन यूरीमिया के लक्षण हो सकते हैं। रोगी प्राय: मध्यम वम के होते हैं और मध्यम वय के रोगी रोग निर्णय के पीछे रे.-३० वर्ष तक जीवित रह सकते हैं। चिकित्सा—

वृक्क शोय के समान है, मृत्यु, यूरीमिया के कारण से या वृक्क शोय के उपद्रवों से होती है जब दोनों पार्खों में अर्बुद हो तो शल्य कर्म नहीं किया जाता है।

वृद्ध गोणिका का अर्बुद (Pipilloma)

इसकी रचना मूहाशय के अन्द्ररार्जुंद के समान होती है उसकी गवीनी में फैलने की प्रवृत्ति होती है और दीर्घ-काल तक रक्तमेह के लक्षण हो सकते हैं जिसमें रक्त-स्कन्द (clot of blood) गवीनी शूल का कारण बन सकता है। उत्सर्जन गोणिका चित्रण में भरण अपूर्णता दीख सकती है। इसकी चिकित्सा गवीनी उच्छेदक है। उपत्वचाभ फार्सीनोमा (Epidermoid carcinoma)

गोणिका की भित्ति चूर्ण वृद्धि से ढक जाती हैं। इसिलये इसे गोणिका का एपीथीलियोमा भी कहते हैं। इसकी उत्पत्ति अधिकतर वृक्काश्मरी व वृत्क उपत्रगं से होती है जिसमें वृक्क का श्रोणि प्रदेश अर्बुद से प्रसित हो जाता है। इस प्रकार का कैंसर ४० वर्ष की आपु वाद होता है। यह १० प्रतिशत रोगियों में होता है। * जला-अपवृत्तकता मूत्र के बहिः प्रवाह के अवरोध के कारण उत्पन्न होती है। मार्गावरोध के कारण इकट्ठा हुए मूत्र के दवाव से वृत्तक आलिन्द और आलवालों की अभिस्तीर्णता की ओर वृद्ध की सीणता की विकृति को जलापवृद्धता कहते हैं। मूत्रका अवरोध वृद्धान्तर्गत हो सकता है या वृत्तक वाह्य होता है जिसमें गोनिका का विशेष विस्फार होता है।

हेतुको —

- (१) मस्तिष्क संस्थान विकृतिजन्य— मूत्रवह संस्थान के मूत्रमागं में मूत्र का प्रवाह प्रत्यक्ष पुरःसरणिक्या (Active Peristalsis) से जारी होता है एतदर्थ मूत्र प्रवाह सुचार रूप से प्रवाहित रहना मस्तिष्क संस्थान का काम होता है। सुपुम्ना पारच्छेदन (Trans Section) मस्तिष्कात रक्तस्राव आदि विकारों में मूत्र संस्थान के इस कार्य में वाधा उत्पन्न होकर मूत्र इक्ट्रा होने लगता है।
- (२) मूत्रमार्गावरोध जन्य मूत्र प्रवाह के मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट रहने पर मूत्र प्रवाहित न होकर इक्ष्ठा होने लगता है। इसके सहज और उपलब्ध दो प्रकार के कारण होते हैं—
- [क] सहज कारण—अध्वनालाकार वृक्क, अस्थानिक वृक्क (Ectopic Kidney) गोणिका गवीनी-संगम की संकीणंता (Stenosis) गवीनी में पुटक (Folds) या मरोड़ (Twist), मूत्राध्य में गवीनी का मुख पिन की नोक के समान होना, गवीनी मुख की अपसामान्य स्थित जैसे योनि या गर्भाध्य में, विषयी (Aberrant) वृक्क रक्त-वाहिकार्ये। मूत्रमार्ग के वहिद्वरि का अतिसूक्ष्म होना या फाइमोसिस, कुछ रोगियों में गोणिका-गवीनी संन्त्र अथवा गवीनी के मूत्राध्य में प्रवेध पर तंत्रिकापेशी असंतुलन आदि कारण माना जाता है।

[ख] उपलब्ध कारण—गवीनी की अश्मरी, निकु चन या अर्जुद, गवीनी की हिनिया, मूत्राशय की विपृटी अथवा अर्जुद का गवीनी के निम्न प्रान्त पर दवाब, गवीनी का बाह्य छोर से दवना जैसे अर्जुद से, कभी कभी चलायमान वृक्क, मूत्राशय, गभाशय ग्रीवा या मलाशय का कासिनोमा, विचिक्ता, पुरस्य और मूत्रमागं का निकु चन आदि उपलब्ध कारण माने जाते हैं। अतः मूत्र प्रवाह में मूत्रक्हसंस्थान की सहज विकृतियों के कारण व मूत्र संस्थान के रोगों के कारण मूत्र प्रवाह का अवरोध हो जाता है।

सम्प्राप्ति---

गोनिका गवीनी संगम, और गंवीनी के निम्न प्रान्त के बीच में अवरोध होने से एक और जलापवृक्कता होती है किन्तु मूत्राशय की ग्रीवा या मूत्र मार्ग में अवरोध होने से दोनों वृक्कों में जलापवृक्कता होती है। जब मूत्र की रुका-वट स्थायी और पूर्ण रूप की होती है। जब मूत्र की रुका-वट स्थायी और पूर्ण रूप की होती है तो जलापवृक्कता न होकर अमूत्रता और वृक्क शोथ (Alrophy) के विकार होते हैं पर जब मूत्र की रुकावट अस्थायी आंशिक और आन्तरित स्वरूप की होती है तब जलापवृक्कता उत्पन्न होती है। एक और की जलापवृक्कता का चयापचय वृक्क उत्सर्णन निपीड आलिन्दान्त्य निपीड के वलावल पर निर्मर रहता है।

लक्षण--

जलापवृक्तता किसी भी वय में हो सकती है। प्रायः २५ और ३० वर्ष के बीच में जलापवृक्तता का प्रारम्भ बहुत धीरे-धीरे होता है और अनेकों में उसके कोई लक्षण कुछ काल तक नहीं दिखाई देते। यह स्त्रियों में पुरुषों से अधिक होती है और वह भी दाहिनी और की गर्म में जलाप-वृक्तता कष्ट प्रसव का कारण होती है।

जलापतावृवकता दो प्रकार की होती है-(१) बन्द

(Closed) (२) सविरामी ।

(१) बन्दप्रकार में कोई लक्षण नहीं होते । कटिप्रदेश में मन्द वेदना और सूजन बन जाती है ।



चित्र संख्या ८६ . शोथमय वृत्कशोथ रोगी की आकृति विशेष

(२) मिवरामी (Inter mittent) किटप्रदेश में वेदना और उभार होते हैं जो बहुत बार मूच त्याग पर जाते रहते हैं। गवीनी में अश्मरी होने पर सिवरामशूल, बहुमूत्रता तथा रक्तमेह हो सकते हैं। परिस्पर्शन से किट प्रदेश में उभार प्रतीत होता है जिसमें वृष्क सम्बन्धी वृद्धि से सम लक्षण होते हैं।

जलापवृवकता में निम्न तीन लक्षण प्रमुख होते हैं -

- (१) वृनक प्रदेश का अनुंद—यहं अनुंद धीरे-धीरे बढ़ता जाता है और वीच में किसी दिन क्षधिक राशि में मूत्र त्यागने पर अहश्य होता है। उसके पश्चात् वह फिर से धीरे-धीरे बनने लगता है।
- (२) कटिशूल कटि प्रदेश में मन्द वेदना बनी रहती है। प्रायः जलापनृक्कता के बढ़ने के साथ पीड़ा बढ़ती है और मूस निकल जाने पर जब अबुँद गायव हो जाता है और पीड़ा भी गायब हो जाती है। बीच-बीच में अत्यधिक पीड़ा 'होकर वमन और शक्तिपात (Collapse) भी होजाता है।
- (३) बहुमूत्रता—रोग के बीच बीच में यह वृत्रक के भीतर इकहा हुआ जल रुकावट के हट जाने से निकल जाने से होता है। यह विकृति अधिकंतर स्त्रियों में चल वृश्क के कारण हुआ करती है इसमें निकलने वाले. जल का संगठन मूत्रसम ही होता है पर इसमें यूरिया की मात्रा कम और लवण की मात्रा अधिक हो जाती है तथा मूल की गुरुता कम रहती है।

साध्यासाध्यता—

रोगियों में एकाछ बार वृक्क में इकठ्ठा हुआ मूत्र निकलजाने पर फिर जलापवृक्कता उत्पन्न नहीं होती तो रोग ठीक हो जाता है और अनेक, रोगियों में बार बार मूत्र का त्याग होकर रोग गायव होता है और फिरसे वनता जाता है। इसे अन्तरिस जलापवृक्कता (Intermittent) कहते हैं जो विशेष कष्टदायक न होकर ठीक होजाती है पर मूल में क्कावट पैदा होने से मूत्र विषमयता उत्पन्त होने से, उसमें उपसर्ग होने से या वृक्क के विदोण होने से रोग घातक और असाध्य हो जाता है।

निदान—कटि प्रदेश में पीड़ा, वृतक स्थान में अव्देत, वीच-२ में अत्यधिक मूत्र निकल जाने पर अव्देव और पीड़ा नण्ट होना आदि लक्षण होते हैं।

एक्सरे चित्रण साधारण एक्सरे से चित्र में अश्मरी दीख सकती है, वृक्क छाया से विवधंन स्पष्ट हो सकता है। उत्स्जन-गोनिका चित्रण में वृक्कगोणिका का विस्फार दिखता है। आलवाल चपकवत से मुद्गदाकार हो जाते हैं उनका आकार वह जाता है। आगे चलकर रंजक का सान्द्रण उत्तम नहीं होता है। चित्रों में रञ्जक का कुछ सान्द्रण दिखाई पडता है और अस्थिर छाया बनती है। उत्सर्वन चित्रण के रञ्जक के सफल न होने पर प्रतीपगामी चित्रण आवश्यक होते हैं।

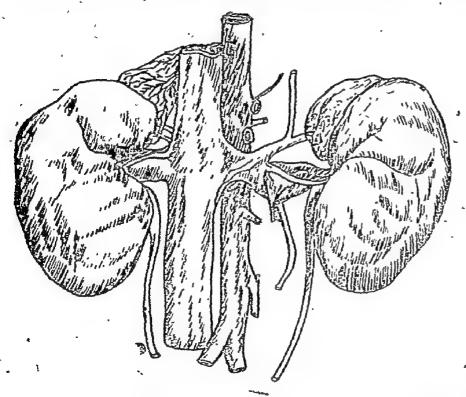
सिस्टोस्कोपी से मूत्राणय में या गवीनी मुख पर उपस्थित कारण ज्ञात होजाता है। चिकित्सा—

एकपक्षीय कव्ट न देने वाली जलापवृक्कता के निए कोई विशेष चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि वह प्रायः घातक नहीं होता। वहुत धीरे-२ बढ़ता है और क्वचित् अपने आप ही ठीक हो जाता है पर जब जलाप-वृक्क का थैला बहुत बड़ा और पीड़ादायक होता है तब ब्रीहिसुख यन्त्र से वेधन करके जल का आचूषण करें।

एक पार्थ्वी रोग में गवीनी से अश्मरी का अपहरण आवश्यक हो सकता है। जब वृक्क अंगतः या पूर्णतः वेकार हो जाता है तब आंग्रिक अर्घ या पूर्ण वृक्कोच्छेदन करना पड़ता है। वृक्क के सिक्रय होने और गोनिका-गवीनी संगम पर उपस्थित अवरोध वाले रोगियों में जिनमें गोनिका विरूप हीजाती है अनेक प्रकार के प्लास्टिक शस्त्रकर्मों का आयोजन किया जाता है। इन शस्त्रकर्मों गोनिका के अति-

ERRO-CARUT

यक्ष्मा के अन्य अङ्गों के साथ वृक्कों में भी यक्ष्मिकाएं बनती हैं परन्तु इस विकृति का परिणाम रोग के लक्षणों पर न होने से रोगी की जीवितावस्था में इस विकृति की ओर घ्यान आकर्षित नहीं होता और म्रणोपरान्त परीक्षा से वृक्कक्षय मृत्यु का कारण मालूम होता है। वृक्कयक्षमा



चित्र संख्या—५७

कभी प्राथमिक नहीं होता वित्क फुफ्फुस, लसीकापवं अस्थि में पहिले यक्ष्मा का केन्द्र रहता है और वहां से प्रध्मादण्डाणु वृक्क में पहुँच जाते हैं। प्रथम एक ओर का वृक्क पीडित रहता है और पश्चात दूसरी ओर का। हेतुकी—

यह रोग पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक हुआ करता है। बालक और वृद्ध इससे बहुत कम आक्रान्त होते हैं। ३०-५० वर्ष की अवस्था के लोगों में प्रायः यक्ष्मा होने

के पश्चात् इसका विकार दिखाई देता है।

विकृति—प्रायः दक्षिण वृक्क प्रथम आक्रान्त होता है वैसे यह सदा एकपार्थी होता है तथा एक वृक्क के उप-सृष्ट होने के कुछ काल बाद ही दूसरी ओर का वृक्क आक्रान्त होता है, यक्ष्मा का संक्रमण वृक्क में सदा

रक्त द्वारा ही होता है। वृक्क में प्रथम यक्ष्मिका के ्व्रण वन जाने पर रोग का गोनिका में प्रसार होता है। यह यक्ष्मिका (Tubercle) धीरे-२ बढ्ती है और उसके बीच में किलाटी भवन (Caseation) . शुरू होजाता है और यक्ष्मा जूपसर्ग में घातु विनाश की अवृति होने से यक्ष्मिका के भीतर पूय वहता है जो आलिद में पहुंचकर मूत्रमें उत्सगित होता है। इस प्रकार इसमें प्रयापवृक्कता भी उत्पन्न होती है। धीरे-२ उपसर्ग गवीनी में फैलता है तथा कभी कभी उसके मार्ग का पूर्णतया विलोप होकर निम्न अङ्गों से उसका सम्बन्ध विच्छेद होकर वृक्क वस्तु का नाण होकर वृक्क क्रियाहीन हो जाता है। इसको स्वतः वृक्कीच्छेदन (Auto-nephrectomy) कह सकते हैं। गवीनी से रोग वस्ति में चला जाता है , और मूत्राणयशोध उत्पन्न करता है। वस्ति से अण्ठीला वीर्यवाहिनी वृपण आदि तक प्रवाहित हो सकता

है। इस व्याधि के रोगियों में ज्यादातर जीर्ण विनाशात्मक यक्ष्मा अथवा शत्यीययक्ष्मा सबसे अधिक पाया जाता है। जो प्रायः एक ओर के वृषक में ५० % पाया जाता है और मृत्यु काल तक दोनों वृषकों में ६० % रोगियों में पाया जाता है।

धीरे धीरे न्यास्थ्य गिरना, मन्दज्वर प्रारम्भ होकर पूत्र त्याग की वृद्धि पवृत्ति वार-वार होती है जिसका कारण प्रारम्भ में किलाटी पदार्थ का वृक्क से मूत्राणय में सानीं और आगे चलकर स्वयं मूत्राणय का आक्रान्स होना होता निदान--

नुवा रोग चिकिस्सा

है जिससे उसकी धारिता कम हो जाती है। गवीनी में विकृति होने पर वह तंग हो जाती है। तब रक्त के कारण उसमें शूल उत्पन्न होने लगता है और मूत्र की अविलम्बता भी बढ़ती है। वृक्ष शूल का विशेष लक्षण नहीं होता पर किट्यदेश में मन्द वेदना हो सकती है। कभी-कभी वृक्ष शूल किलाटी पदार्थ के गवीनी में होकर आने के कारण होता है। यहमाविकृति से वृक्क आलवालों (Calyx) की रक्तवाहिनियों का नाश होने से रक्तमेह उत्पन्न होते हैं। वेदनाहीन रक्तमेह के प्रारम्भिक लक्षण हो सकते हैं। साधा-रणतया मूल में कुछ लान रक्तकोशिका उपस्थित मिनती हैं अतः रक्तमेह वृक्क यहमा का प्रधान और प्रथम लक्षण है।

उपद्रव—वृक्त यक्ष्मा में संस्थान के अन्य बङ्ग तथा पुरुषों में प्रजनन संस्थान भी उपसृष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त यक्ष्मज मस्तिष्कावरण शोथ वृक्त यक्ष्मा में जितना उत्पन्न होता है उतना फुफ्फुस यक्ष्मा को छोड़ कर शरीर के दूसरे किसी अङ्ग के यक्ष्मा में नहीं उत्पन्न होता।

मूत्र की परीक्षा करने पर पूय कोशिकायें तथा कुछ लाल रक्त कोशिकायें मिलती हैं। यक्ष्मा जीवाणु २४ घंटे तक एकत किये हुए मूत्र की तलछट में मिल सकते हैं। ७५% रोगियों में मूत्र का संवर्धन और गिनीपिगों के निवेशन प्रयोग धनात्मक होते हैं। मूत्र में यक्ष्मा दण्डाणु मिलने पर शरीर के अन्य स्थानों में. यक्ष्मोपसगं हो या न हो वृक्ष में जरूर उसका उपसगं होने की सम्भावना पर प्रथम ध्यान देना चाहिए।

एक्सरे-परीक्षा—एक साधारण एक्सरे चित्र में दूक्क का कैल्सीभवन दिखाई दे सकता है। वृक्क की परीक्षा से फुफ्फुस की विक्षति मालूम हो सकती है। उत्सर्जन-गोनिका चित्रण से पिरामिडों में अनियमित गुहिकाओं का बनना, आलवालों का बिस्फार, गवीनी में एक या अधिक निकुंचनों का होना अथवा वृक्क की कार्यहीनता का पता चल सकता है। 3

सिस्टोस्कोप द्वारा परीक्षा— गवीनी का मुख शोथ-युक्त या संकृषित हो, आगे चल कर उसके चारों ओऱ यहिमकायें तक दीख सकती हैं। कुछ मे वह ऊपर खिचा हुका दीखता है यद्यपि मुख खुला रहता है। यह गोल्फहोल गवीनी कही जाती है।

साध्यासध्यका-

रोग धीरे धीरे आक्रमण करते हैं और धीरे धीरे बरा-वर बढ़ता ही जाता है। आप से आप या औपिधयों से ठीक होने वाला यह रोग नहीं है। साधारेणतया ५ वर्ष के भीतर अधिक संख्यक रोगी मर जाते हैं परन्तु कुछ रोगी १०-२० वर्ष तक भी जीवित रह सकते हैं। दोनों वृतक खराव होने पर कुछ ही वरसों में मर जाते हैं। इस रोग मे मृत्यु प्राय: सावंदिहिक यक्ष्मा जन्य मूत्रविषमयता,वृतका-तिपात या अन्य औपस्रांगिक रोग से होती है।

चिकित्सा -

यक्ष्मा की साधारण 'रोग की भांति शैय्या-विश्वाम, प्रतियक्ष्मा रसायनी चिकित्सा और आहार द्वारा चिकित्सा करें। इसकी प्रमुख चिकित्सा शल्यकमें ही है—

सांशिक वृक्कोच्छेदन (Partia Nephrectomy)-जब वृक्क के केवल एक ही हिस्से में उपसर्ग होता है और इसरा हिस्सा ठीक होता है तब छल्य कर्म किया जाता है।

वृतकोच्छेदन वृत्रकं की विकृति आंशिक हो या पूर्ण हो प्रायः इसी का प्रयोग किया जाता है इसमें एक ओर का सम्पूर्ण वृदक निकाला जाता है।

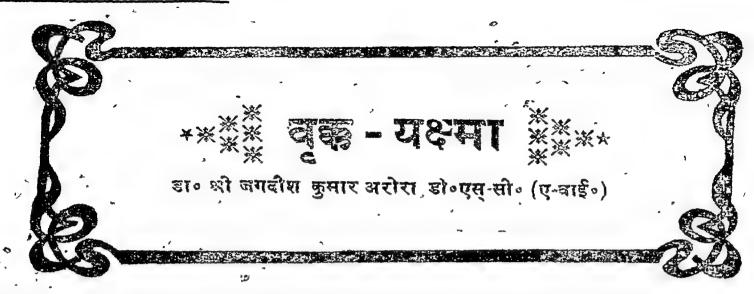
अौपिध चिकित्सा में—स्ट्रेप्टोमाथसीन का स्थान सर्वोपित है। वृत्कोच्छेदन के बाद भी इस औपिध का प्रयोग लाभदायक है चिससे पिद कोई संक्रमण रह गया हो तो वह दूर हो जायं इसलिए शस्त्र कमं के पश्चात् भी . प्रतिक्षय चिकित्सा महीनों तक चलती रहनी चाहिए। आधुनिक युग की यक्ष्मा की सर्वोत्कृष्ट स्ट्रेप्टोमायसीन है उसी तरह आयुर्वेद में स्दन्ती का स्थान है अतः स्दन्ती का प्रयोग इसमें करके देखना चाहिए। आयुर्वेदिक व आधुनिक किसी भी औपिध का चिकित्सक को अपनी योग्यता और सुविधानुसार प्रयोग करना चाहिए।

—विशेष सम्पादक ।

—शेवांश पृष्ठ २४४ का—

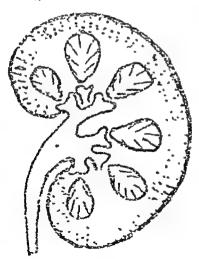
आरोपित किया जाता है जिसका वृत्वकछिद्रीकरण द्वारा कुछ दिनों तक निहंरण होता रहता है। केवल वृत्वकछिद्री-करण से वृत्वक की कार्य समता के पुन: स्थापन में सफलता मिल सकती है जिससे मूंत्र प्रवाह पुन: होने लगता है और वृत्वक की रक्षा हो जाती है वृत्वक का कार्य उत्तम न होने पर उभय पाथ्वीं रोगियों में दोनों और वृत्वकछिद्रीकरण लाभदायक होता है।

आधुनिक विज्ञान की हिंद से-



यंक्ष्मा रोग क्या हैं?

यह रोग ट्यूवर कुलोसिस या यहमा दण्डांणुओं के प्रकोप से ही होता है। यह प्रकोप प्रायः फेफडे से ही ब्रारम्भ होता है। फेफड़े के अतिरिक्त यह रोग वृक्क, ग्रन्थियों, आन्त्रों, हिंद्दियों, फुफ्फुसावरण तथा जोड़ों इत्यादि में प्रायः होता है। मस्तिष्कावरण और हृदया- वरण में यहमा भयद्धार रूप धारण कर लेता है। इसकी

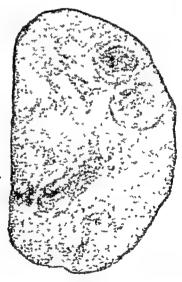


चित्र—८८ वृवक का पिरागिट प्रदर्शक चित्र

विक्षति हर अङ्ग में प्रायः एक सी होती है। अङ्ग की विशेष बनावट के कारण इसमें थोड़ा बहुत अन्तर पड़ता है।

यक्ष्मा का विशिष्ट कारण-

यक्ष्मा का मुख्य कारण तो यक्ष्मा दण्डाणु से हैं संक्रमण ृही है। ये माइको वेक्टोरियम वंगं के दण्डाणु हैं। इन्हें



चित्र - ६६
वृक्कक्षय-चित्रं में वृक्क फी वहिवंस्तु (कार्टेक्सपिरामिड) में कोटरयुक्त वर्णों की प्रारम्भिक
अवस्था प्रदर्शित की-है।

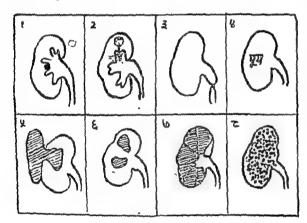
वेसिलस ट्यूवर कुन्नोसिस या यक्ष्मा दण्डाणु भी कहते हैं। सार्वदैहिक श्यामाकीय (General miliary) यक्ष्मा में अन्य अङ्गों के साथ वृक्कों में भी यक्ष्मिकाएँ वनती हैं। परन्तु इस विकृति का परिणाम इस रोग के लक्षणों पर

सुरा रोग चिकिन्सा

न होने से रोगी को जीवितावस्था में इस विकृति की स्रोर ह्यान आकर्षित नहीं होता और मरणात्तर परीक्षा में उसका पता लगता है वैसे ही फुण्फुस क्षय में भी मृत्यु के पहले वृक्कों के अन्दर यक्ष्मा के विकेन्द्र (फोकस) उत्पन्न होते हैं परन्तु उस समय भी उसमें कोई लक्षण प्रकट नहीं होते और विकृति का पता मरणोत्तर परीक्षा से ही लगता है।

प्राथमिक स्वरूप का विकार—इसमें भी शरीर के भीतर कहीं न कहीं यहमा का विकेन्द्र रहता है परन्तु वह शान्त या सुप्त होता है और वहां से वृक्क उपपृष्ट होकर रोग बढ़ता है जिससे इसमें वृक्किविकृति के लक्षण उत्पन्न होते हैं। अत: वृक्क यहमा में केवल इसका ही विचार किया जाता है।

यह रोग प्राय: ३०-४० वर्ष की अवस्था के लोगों में प्राय: विखाई देता है और अपेक्षाकृत स्त्रियों में अधिक हुआ करता है।



चित्रे—६०

वृक्कक्षय के विभिन्न प्रकार

- 9. वृवक का क्षयज व्रण
- २. वृक्क का कोटरयुक्त क्षयज वर्ण
- ३. क्षयज वृक्क-जलामयता (हाइड्रोनेफोसिस)
- ४. वृक्क पूयमयता (पायोनेफोसिस)
- ४. क्षयज वृक्क विद्रधि
- ६. क्षयज वृबकाश्मरी
- ७. क्षराज गलित या किलाटी भवनीकृत वृक्क (केजियस किडनी)
- ८. सम्पूर्ण वृषक की विस्तीर्ण क्षयग्रस्तता

- शरीर में प्रायः अस्थि, सिन्धि, लसग्रन्थियां इत्यादि में यक्ष्मा का विकेन्द्र रहता है और वहां से यक्ष्मा दण्डाणु वृक्क में पहुँच जाते हैं। प्रथम एक और का वृक्क पीड़ित होता है और पश्चात् दूसरी और का। यक्ष्मा दण्डाणु मुख्य-तया रक्त के द्वारा वृक्क में पहुंच जाते हैं। जब श्रोणिगृहा में विकेन्द्र होता है तत्र गवीनी की लक्षीका-वाहिनियों द्वारा भी यह पहुंच सकते हैं।

शारीरिक विकृति-प्रथम एक ओर का वृक्क उपसुष्ट होता है और उसके बाद दूसरा वृक्त । परन्तु अधिकतर यह देखा गया है कि यह एक ही व्दर्भ में होता है। प्रथम वृदक वाह्य भाग में या एकाध इत्प (पिरामिड) में यहमा का Tubercle उत्पन्न है और इसका प्रसार वृदक की बहिवंस्तु (cortex) माग में होता है और उसके बीच में किलाटी भवन (caseation) शुरू होता है। इसकी वृद्धि चारों और होती है और पैल्विस (गवीनी मुख), वस्ति, शुक्रवाहिनी, पौरुष ग्रन्थि, वृषण आदि तक प्रसारित हो सकता है।इस व्याधि का प्रकोप प्रायः युवाओं में विशेषतः देखा गया है। इसमें गवीनी (Ureter) की घलेडमकला में यक्ष्मकाएं उत्पन्न होकर वह कठिन स्थल (Dilated) होती हैं। कभी कभी उसमें उपसंकीच (Obliteration) होकर निम्न अर्ड्डों से उसका सम्बन्ध विच्छेद होकर मूत्रगत लक्षण नष्ट हो जाते हैं—इसकी Auto-nephrectomy कह सकते हैं। अतः मूत्रगत लक्षण बन्द होने का तारपर्य यह नहीं है कि रोग ठीक हो गया, यह रोग बुक्क में ही वन्द हो जाता है इसलिये अधिकतर यह देखा गया है कि मूत्र में इसका कल्चर करने पर भी यह नहीं मिल पाते। यह ठीक है कि मूत्रल संस्थान के क्षय में तथा सार्वदैहिक क्षय में मूत्र में यक्ष्मादण्डाणु उत्समित होते हैं परन्तु मूत्र में पूय के अभाव में, इनको प्राप्त करना बहुत कठिन काम है। वृक्कक्षय में मूत्र की प्रतिक्रिया (pH) अस्ल होती हैं। लक्षण---

धीरे धीरे स्वास्थ्य का गिरना, मन्द ज्वर इत्यादि सार्वदैहिक लक्षण इसमें मिलते हैं। इसमें मूल जलन के साथ आता है तथा मूल में रक्त आता है क्योंकि वृक्क में रक्त का संचार सबसे अधिक है और यह तील गित से होता है। अत: यह सम्भव है कि जीवाणु वृक्क में ज्यादा देर तक न रह सके और मूल के साथ ही आगे बढ़कर

सुना रोगा चितिहत्सा

मूत्र के साथ निकल कर वाहर आ जाये और कभी कभी र

मूत्र की वारम्वारता—यह सबसे महत्व का और प्रथम लक्षण होता है। यह वारम्वारता प्रारम्भ में दिन में और पश्चात् (रक्तमेह) रात्रि में बढ़ती है। बारम्बारता के साथ मूत्र करने के समय पीड़ा भी होती है। आगे चलकर जब गवीनी में विकृति होकर तंग हो जाती है तब रक्त के कारण उसमें भूल उत्पन्न होने लगता है और मूत्र करने की अविलम्बता भी बढ़ती है। मूत्र में भूक्ल (एल्ब्यूमिन) और रक्त मिखते हैं। गोणितमेह (स्थूल या सूथम) वृक्क यथमा का प्रधान लक्षण है। यक्षमा की विकृति से calyx की रक्तवाहिनियों का नाण होने से रक्तमेह उत्पन्न होता है।

चिकित्सा-

प्रारम्भिक अवस्था में यह 'रोग औषधि साध्य है परन्तु रोग की जटिल अवस्था में शंस्त्रकमें हो उपयोगी होता है। परन्तु औषधि से भी रोगी ठीक किया जा सकता है।

- (क) बौषधि चिकित्सा—सन् १६४४ में अमेरिका के डाक्टर वेकसमेन ने स्ट्रेप्टोमाइसीन नामक प्रतिजीवी अधिय का साविष्कार किया। इस आविष्कार ने यक्ष्मा की उपचार प्रणाली में नयी कान्ति कर दी। जिसकी आज भी वही उपयोगिता है जी उस समय थी। इसके दो वर्ष बाद अर्थात् १६४६ में स्वौडन के दा॰ लेहमेन ने यक्ष्मा के उपचार लिये पैरा-एमाइनो सैलिसिलिक एसिड नामक रासायनिक औषधि खोज निकाली, जिसकी बाज भी विकित्सा में वही उपयोगिता है। सबसे महत्वपूर्ण खोज १६४२ में "रोश" कम्पनी, स्विटजरलैंड द्वारा प्रभावी जीपि Isoniazid की हुई है। उसके वाद अन्य कई नई नई औपियों का आविष्कार हुआ जिनमें यह प्रमुख हैं—
 - . १. थायासेटाजीन (Thiacetazone)
 - २. पाइरेजिनामाइड (Pyrazinamide)
 - ३. साइवलोसिरीन (cycloserine)

- ४. इधिक्षोनामाइड (Ethioniamide)
- ४. ईयमबरोल (Ethambutol)
- ६. केत्रिओमाइसिन (Capreomycin)
- ७. केनामाइसिन (Kanamycin)
- इ. रिफेम्पसिन (Rifampein)

अब तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि कालान्तर में अल्प लाभवायक औपधियां छोड़ दी जायेंगी और स्थायी लाम-प्रद औषधियां यक्ष्मा का समूल नाश कर देंगी और वृक्को-च्छेदन की आवश्यकता नहीं-पड़ेगी।

- (खं) शस्त्रकर्म निम्न तीन प्रकार के शस्त्रकर्म किये जाते हैं—
- (१) बांशिक वृत्वकी च्छेदन जब वृत्क के केवल एक ही भाग में उपसर्ग रहता है और दूसरा हिस्सा स्वस्थ तथा कार्यक्षम होता है तब यह शस्त्रकर्म किया जाता है।
- (२) वृक्कोच्छेदन वृक्क की विक्वति आंशिक ही या पूर्ण हो प्रायः इसी का प्रयोग किया जाता है। इसमें एक ओर का सम्पूर्ण वृक्क निकाल दिया जाता है।
- (३) गवीनी वृक्कोच्छेदन—प्रायः सूत्र द्वारा यक्ष्मा दण्हाणुओं का उत्सर्जन होने के कारण गवीनी में भी उसका उपसर्ग पहुंच जाता है। इसलिये शस्त्रकर्म के समय यदि गवीनी में विकृति मालूम हो जाय तो उस समय वृक्क के साथ उसको भी काटकर निकाला साता है।

— खा॰ जगवीश कुमार अरोरा

डाक्टर ऑफ साइन्स (एवाई॰),

एफ. आर.ए. एस. (लन्दन), ए. एफ. आर.एस. (लन्दन),

मेम्बर ऑफ दी इण्डियन कालेज ऑफ एलर्जी ।

एण्ड एप्लाइड इम्यूनोलोजी,

मेम्बर ऑफ दी ऐस्थमा, बॉड्काइटिस एण्ड

कैंसर लंग फाउण्डेशन ऑफ इण्डिया,

मेम्बर ऑफ दी सोसायटी घॉफ बायोलोजिकल
केमिस्ट, इण्डिया,

मिम्बर ऑफ दी इण्डियन ऐरोवायोलोजिकल सोसायटी, पटेल नगरॅ, हापुड़-२४५१०१ (उ०प्र०)

* Elekanielia!

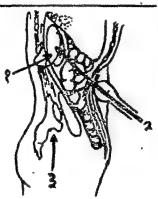
वृत्क के आघात साधारणतया नहीं होते 'पर होने से वड़े मार्मिक होते हैं। वृत्क आघात खुले हुए व्रणोंके कारण हो सकते हैं अथवा प्रत्यक्ष अभिघात का फल हो सकते हैं।

- चित्र संख्या ६९

 पीछे से चोट लगने पर वृत्रक यकृत के पीछे
 चला जाता है।

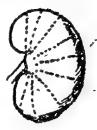
भागे से चोट लगने पर द्वादश पशुका से सट जाता है।

नीचे से आघात लगने पर वृतकतृत्त क्षतिग्रस्त हो जाता है।



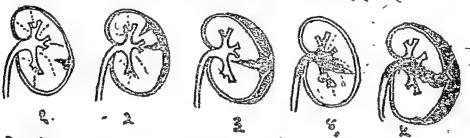
अनावृत आधात—अधिकतर गोली लगने या तेजधार वाले वाकू-छुरे के भेदने (Stab) का फल होते हैं। उनके साथ बाह्य रक्तलाव होता है और वृतक की गोणिका के से नितम्बों पर गिरने से भी वृक्कों को आघात पहुंच सकता है। वृक्क का वृन्त विदीण हो सकता है।

विकृति और भेद—वृनक का विदरण (Laceration) अनुप्रस्थ हो सकता है अथवा वह हाइलम से परिसर की ओर विदरित हो सकता है। वृक्क आधात को निम्न भेदों में विभक्त किया जा सकता है—



— चित्र संख्या ६२ वृक्क के सर्वाधिक-सम्भावित विदर-स्थल

(१) विदरण—वृत्क के केवल एक भाग का विदरण हो सकता है अथवा कई विदरण हो सकते हैं। गोणिका और उत्तक में विस्तृत विदरण से परिवृक्क रक्त गुल्म बन जाता है और रक्तमेह होता है।



नित्र संख्या ६३—वृक्क पर नाघात नग्ने पर वृक्क में रक्तस्राव की विभिन्त सबस्यायें १. वृक्कावर के नीचे शल्प स्नाव २. वृक्कावरण के नीचे क्षष्टिक रक्तस्राव ३. बृक्कवहिवंस्तु-विदरसह रक्तस्राव ४. वृक्कश्रोणि में रक्तस्रावसहित वृक्क खन्तवंस्तु विद्र ५. सम्पूर्ण वृक्क विदर

बत हो जाने से उनमें होकर मूत्र भी निकलता है। ऐसे क्षकों से मूत्र वर्णनाल (Urinary Fistula) बन जाते हैं। किन्तु वे अधिकतर स्वत: विरोहित (Heal) हो जाते हैं।

आवृत आघात— उदर या उसके पाववं से वृक्क पर कींघी चीट लगने से होता है। कभी कभी रोगी के ऊ चाई (२) वृत्क वृत्त के विदरण (Rupture of Renal pedicle) से आभ्यन्तर रक्तस्राव होता है जो बढ़ता जाता है। और घातक प्रमाणित हो सकता है।



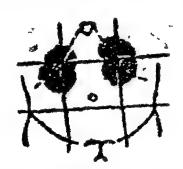
विशेष सम्पादक - कविराज श्री डा० गिरिधारीलाल मिश्र

पर्याय—सर्पानुकक, चल पृक्क स्पृश्यवृक्क, प्लव वृक्ष।

व्याख्या—वृक्क उदरगुहा के भीतर पीछे की दीवाल पर

परिवृक्क चरदी से, वृक्क रक्तवाहिनियों से तथा उपर फैली
हुई पर्युं दर कला से बन्धे हुए रहते हैं फिर भी श्वसन के

साथ नीचे की ओर आ जाते हैं। यह गति बांई
ओर की अपेक्षा दांयी ओर अधिक होती है।



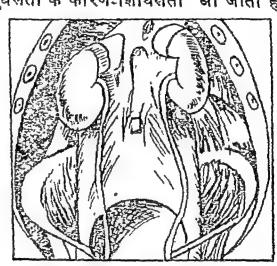
चित्र ६४--शरीर में वृक्क की स्थिति

स्पृथ्य वृक्क-में उदर शिशिल कर के पीठ के बल लेटे हुए व्यक्ति का निचला शिरा अन्तः श्वसन के समय जब हाथ से टटोला जा सकता है तब उसको स्पृथ्य वृक्क कहते हैं।

चल वृतक ज्व अन्तः श्वसन के समय हाथ बृतक के कपर के सिरे के अपर जाकर बहिः श्वसन के समय उसको अपर जाने से रोक सकता है तब उसे चलवृतक कहते हैं।

पत्व वृक्क (Floating)—जव वृक्क उदर मध्य रेखा के पास पाया जाता है और हाथ से उदर मध्य रेखा की दूसरी और दवाया जा सकता है तब उसको परुववृक्क कहते हैं।
हेतुकी—

(१) वृषक बन्धनों की शिथिलता वृष्किम्नं म का मुख्य कारण है। यह शिथिसता इन वन्धनों की सहज दुवंलता के कारण हो सकती है। (२) यह शियिलता पुरुषों की सपेक्षा स्त्रियों में लिक्षक (१:७) पायी जाती है। इसका कारण गर्भवृद्धि के कारण उनकी उदर गुहा में काफी उथल-पुथल होना है और प्रसर्वों के कारण औदिरक पेशियों में काफी दुवंलता के कारण-शिथिशता आ जाती है। इसका



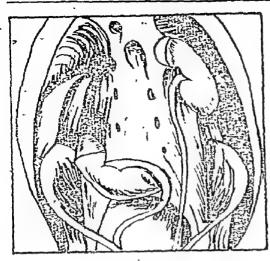
चित्र—६४ व्कल अपने सही स्थान पर-

अर्थ यह नहीं है कि यह रोग वन्ध्याओं में नहीं होता।

- (३) ऊँचा तङ्ग कमर वन्ध भी इसका कारण है।
- (४) वृक्क के आस पास चर्वी का शोय, अभिघात, भारी बोझ उठाना आदि भी कुछ कारण हैं।
- (४) वृक्क अर्बु दों के बड़े हो जाने से भी वह मीचे की ओर खिसक् जाते हैं। विकृति—

वृतक के नीचे की ओर गति करने पर उसका उन्नं भ्रुव निम्न भ्रुव की जपेक्षा मध्यरेखा के समीप सा जाता है और इसके वृन्त की लम्बाई बढ़ जाती है। बाई की अपेक्षा दाहिने वृषक में यह विकृति अधिक पाई जाती है, कारण

मुञा रोगा चिकित्सा



चित — ६६ दायां वृक्क नीचे खिसक आया है।

कि दाहिने वृक्क के अपर यकुत् रहता है जो महाप्राचीरा पेशी के साथ श्वसन के समय नीचे आकर वृक्क को नीचे दबाता है। बांगी और इस प्रकार की स्थिति न होने से वह नीचे की ओर कम आता है।

लक्षण -

दणा लक्षण हीन हो सकती है। संयोगवण इसका ज्ञान होजाने पर रोगी को नहीं बताना चाहिए नयों कि रोगी के मन पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। निम्न लक्षण हो मकते हैं—

- (१) कटि प्रदेश में वेचैती, पीड़ा, खिचावट के साथ जल अप बृक्कता हो सकती है।
- (२) अन्तर्पर्णु कीय नाड़ी शूल, बाड्यवसन्नता (Neu-rasthenia) स्त्रियों में अपतन्त्रक तथा पुरुषों में पागलपन आदि हो सकते हैं।
- (३) चल वृदक में वृदक को किसी भी ओर चलाया जा सकता है। कुछ में निम्न ध्रुव किन्तु अधिक में वृदक का उध्वंध्रुव परिस्पर्थ होता है।
- (४) वृक्क के चलायमान होने से वृक्क की रक्तवाहिनियां मुड़ जाती हैं या उनमें बल पड़ (Twist, Shrink) जाते हे जिससे वृक्क भूल, हुल्लास, वमन आदि होते हैं।
- (५) वृक्क की गवीनी में तल पड़ जाने से वृक्क के भीतर मूत्र इकट्ठा होकर अर्जु द सा वन जाता है जो सन्तरें से लेकर नारियल तक बड़ा हो सकता है। अर्जु द के वनने के काल में मूत्र त्याग नहीं होता या अल्प होता है। उसमें कुछ

रक्त भी रहता है ज्वर वमन भी होती है फिर स्थानिक पीड़ा और हल्लासादि लक्षण कम होने लगते हैं और मूद्र की राशि बढ़ जाती है तथा मूद्र त्याग हारा १०-१२ घंटे में अर्बुद गायव होजाता है। इस प्रकार बार बार दौरे आर्त हैं, जलापबृक्कता सबसे कण्टदायक उपद्रव है।

निदान—वेदना और उभार के अभिलक्षक इतिवृत्ति से निदान हो जाता है। रोगी को खड़ा करके गोणिका-चित्रण से निदान किया जाता है। उदर के अन्य चल अर्जु दों या गुल्मों, जैसे, पित्ताशय का श्लेष्म गुल्म (Muco-cele), पित्ताशय अग्न्याशय के अर्जु द, स्थूलान्त्र के अर्जु द से इसका सापेक्ष निदान करना आवश्यक है। चिकित्सा—

वेदनां की अवस्था में रोगी को दिस्तरे पर पेट के बस या जानु कूर्परासन पर लिटा कर पीड़ा के स्थान में सेंक या स्वेद किया जाय। पीड़ा असहा हो तो माफिया की सूई लगायी जाय। दौरा अधिक काल तक चले तो क्लोरोफामें देकर हस्त विधान (Menipulation) से वृक्क को स्थाना-पन्न करने का प्रयत्न किया जाय। एक कसी हुई उदर पेटी और शरीर भार वढ़ाने वाला वसामय उत्तम भोजन अधिक-तर रोगियों को लाभदायक होता है।

शल्यकर्मं - शल्यकर्मं 'का परामशं 'प्राय: मनोदीबंत्य (Neusesthenia) के रोगियों को नहीं दिया जाता है। इसके बार-बार आक्रमण होने पर वृक्क स्थिरीकरण (Nephrorexy) या वृक्कोच्छेदन आवश्यक होता है।

🌿 पृष्ठ २५३ का शिशांष



जीर्ण रोगी की बलाबल की स्थिति के अनुसार उपवास आरम्भ कर दें। उपवासकाल में जल मिश्रित फलरंस, यवागू (पुराने चावल, मूंग, तिल के यूष) पर रखें। प्राकृतिक चिकित्सा के जल प्रयोग (वस्ति, गरम ठंडे सेक, मिट्टी की पट्टी उदर पर एवं सर्वोङ्ग स्वेदन) आदि का प्रयोग किया जा सकता है। तीव्रगामी औषधियों के प्रयोग से समस्या और उलझ जाती है।

> — डा॰ योगेन्द्रनाथ मिश्रा योग नेचर रिसर्च क्लीनिक, २४/१५७, शक्ति नगर, दिल्ली-७

व्यक्त येगकी प्राकृतिक विकासी

डा. योगेन्द्र नाथ भिष्र

፠ዹ፠ዹ፠ዹ፠ዹ፠ዹ፠ዹ፠ዹ፠ዹ፠ዹ፠ዹ፠ዹ፠ዹ፠ዹ፠ዹ፠ዹ፠ዹ፠ዹ፠ዹ፠

वृक्क अपना कार्य क्यों नहीं करता ?

हमारा परा शरीर एक इकाई के, रूप में कार्य करता है। इस इकाई की प्रमुख विशेषता है, उसकी चया-पचय शीनता अर्थात् ग्रीर विभिन्न रूपों में जो खाद्य पदार्थं (जल, वायू और पृथ्वी तत्व) प्राप्त करता है 'उसका उप-योगी अंश शरीरगत पोषण में काम आता है और निरू-पयोगी अंश शरीर की निस्कासन यन्त्र प्रणाली द्वारा निकाल बाहर किया जाता है। शरीर के निष्काषण यन्त्र व्यवस्था के प्रमुख अंग हैं-बड़ी आंत, वृक्क, स्वचा,फेफडे। ये अंग शरीर में विश्वसनीय सेवक के समान जीवनपर्यन्त कार्यं करते रहते हैं। ये अंग अपना टीक से कार्यं करते रहें इसके लिये आवश्यक है जीवन में युक्त आहार-विहार के नियमों का कठोरता से पालन किया जाये। आहार-विहार के नियमों का पालन तभी संभव है जबकि उनकी सही जानकारी का ज्ञानहो। दुर्भाग्य की बात है कि हमारी शिक्षा दीक्षा में आहार-विहार के नियमों के प्रति सत्यन्त सापरवाही बरती जाती है। स्वयं चिकित्सक समाज आहार विहार के नियमों के प्रति गंभीर रूप से उदासीन हैं। जन समाज काम और विश्वाम के वीच विवेक नहीं, रख पाता । पाक कला के विस्तार ने वास्तव में आधुनिक मन्ष्य की पाचन क्रिया को चौपट करने का खतरनाक कार्यं किया है। पर्याप्त शारीरिक श्रम के अभाव में त्वचा अपना स्वाभाविक कार्य नहीं कर पाती। इन सबके परि-णामस्वरूप शरीर के वृक्क यन्त्रों पर अत्यधिक मार पड़ता रहता है और कालान्तर में उनकी कार्यक्षमता ही नहीं घटती बल्कि नाना प्रकार के रोग लक्षण पैदा होने लगते हैं।

ऊपर के विवेचन से प्रबुद्ध पाठक सहज अनुमान लगा सकते हैं कि वास्तव में वृवक रोग सम्पूर्ण चया पमय की दूषितं व्यवस्था के कारण पनपते हैं। इसिलये समस्त वृक्त रोगों की सम्पूर्ण चिकित्सा के लिये, शरीर की चया-पचय प्रक्रियां का जीणोंद्धार क्रना आवश्यक हो जाता है। आज का भीसत चिकित्सक इस मौलिक सत्य को समझने में असमर्थ है। वृक्त रोगों में लाक्षणिक चिकित्सा करने से अनेकों प्रकार की गंभीर स्थितियां पैदा होना स्वाभाविक हैं। औपिधयों के निरन्तर सेवन से शरीरगत भयानक प्रतिक्रियायें पैदा होती हैं जिनका अन्तिम परि-णाम जीवन शवित का क्षय का होना है।

— अत्यन्त जटिल वृक्क, रोग की स्थिति में वृक्कद्वय अपना कार्य करना ही बन्द कर देते हैं। आजकल यांत्रिक वृक्क क्रिया—डाइलैंसिस का एक फैशन सा वन गण है यह वैसे ही उपचार है जैसे कि कमजोर होती हुई आंखों की चश्मा अथवा कमजोर होते हुये पैरों के लिये वैशाखी। वृक्क रोगों की मौलिक चिकित्सा—

वृवक रोगों में सर्व प्रथम सशक्त पाचन क्रिया और त्वचा को किया को जागृत करना आवश्यक है। इसके लिये औपिधयों का सहारा न्यूनतम लिया जाये। उपवास, विश्वाम और आहार-विहार के नियन्त्रण से ६६% रोगियों पर वृवक रोग में सफलता मिलती है, यह हमारे विगत ४० वर्षों के कार्य क्षतुभव का निचोड़ है। आशा है हमारे प्रवुद्ध चिकित्सक वृवक रोग सम्बन्धित विचार परिचर्या से स्वयं लाभान्वित होंगे और वृवक रोगियों का सही दिशा में मार्गदर्शन कर सकेंगे।

नोट—वृक्क रोग स्थिति में सर्वोत्तम चिकित्सा पंचकर्म के माध्यम से शत प्रतिशत परिणाम के द्वारा की जा सकती हैं

मेरा निवेदन है कि चिकित्सक जटिल, गंभीर एवं - भोपांण पृष्ठ २५२ पर देखें।

सूत्राश्मरी एबम् वृक्ताश्मरी

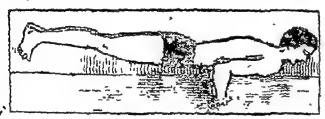
घोगासनों द्वारा चिकित्सा

\$

विश्व में इस समय यौगिक क्रियाओं एवं यौगासनों तथा अध्यातम विद्या की खोज के लिये तरह-तरह के परी-क्षण चलं रहे हैं। इस मशीनरी युग में सबसे बचूक इलाज योग चिकित्सा द्वारा हो रहे हैं।

वन्य चिकित्सा पद्धितयों में जहां लाभ होता है वहीं हानि भी अवश्यम्भावी है। परन्तु योगासनों द्वारा चिकित्सा करने में धैयं से कार्य लिया जाय तो हानि के लिये कोई गुंजाइश नहीं है। हम जिस योगासन के विषय में शिक्ष रहे हैं यह शिंतया इलाज है जिसका अनुभव एवं परीक्षण ५० रोगियों पर किया गया है जिनमें ४५ रोगी रोगमुक्त हो चुके हैं। शेष की चिकित्सा व्यवस्था चल रही है। इस चिकित्सा व्यवस्था में किसी भी अन्य पद्धित का सहारा नहीं चिया गया है।

मूत्राश्मरी एवं वृक्काश्मरी हेतु जिस जासन विशेष का वर्णन किया जा रहा है वह है मयूरी बासन ।



चित्र ६७--मयूरासन

विधि--

सर्व प्रथम पद्मासन लगाकर बैठ जांय। फिर दोनों, हाथ की हथेलियां जमीन पर टिकाकर पूरे शरीर को घीरे धीरे कोहिनयां दोनों मिलाकर तथा नाभि से घटाकर शरीर का वजन कोहिनयों पर आने दें। कृपया जल्दवाजी न करें। धीरे धीरे पूरे के पूरे शरीर का वजन कोहिन्यों न करें। धीरे धीरे पूरे के पूरे शरीर का वजन कोहिन्यों वर जाने दें। फिर मयूरासन की तरह पूरा शरीर सीधा कर लें, लेकिन पद्मासन लगायें रहें। धीरे धीरे श्वास ग्रहण करें। धीरे धीरे श्वास छोड़ें। कुंभक, पूरक, रेचक घीरे धीरे धीरे धीरे से करें। अब शरीर

को सीधी लकड़ी की तरह तान दें। लेकिन पद्मासन लगाये रहें। शरीर को संतुलित रखते हुये कमर तथा गर्दन सीधी रखें। ऊपर उठाये रखें। पूरा शरीर मार कोहनियों एवं इथेलियों पर रहेगा। अपना शरीर साम-ध्यानुसार इसी स्थिति में रहे। जब तक आराम से रह सके इसी स्थिति में रहे। अध्यास धीरे-र बढ़ावें। शरीर साम-यें से बाहर अध्यास विजत है। कुछ दिनों के अध्यास से ही आपको लाभ दृष्टिगोचर होने लगेंगे। मयरी आसन के लाभ-

- (१) पथरी जिसे वृक्काश्मरी या मूत्राश्मरी कहते हैं। दोनों स्थानों की पथरियों को आपरेशन से बचाकरे इसके अभ्यास से शनैः शनैः टुकड़े टुकड़े होकर मूत्रमागे से बाहर निकल जाती है। सतः पथरी का यह अब्क इलाज है।
- (२) गुर्दो के समस्त रोगों को दूर कर यह आसन गुर्दों में शक्ति संचार करता है। अतः वृन्क सम्बन्धी कोई रोग नहीं होने पाता है।
- (३) गले एवं उदर रोग, वात-पित्त-कफ रोग अति शीझ इस आसन हारा काबू में आते हैं।
- (४) पाचन शक्ति एवं रक्त संचार शक्ति बढ़ाकर शरीर में लावण्यता एवं तेज का प्रसार होता है।
- . (५) जिगर, तिल्ली एवं उदर अगर आवश्यकता से अधिक बढ़े हों उन्हें यथास्थिति में लाने के हेतु इस आसन की आवश्यकता है।
 - (६) यीवन स्थिर रखने में कामयाव है।
- (७) दीर्घायु तथा प्रसन्न चित्तं वनाने में सहायक हैं। नोट-- १. ऊपर चित्र में मयूरासन दिखाया है। इसी में पौरों को पद्मासन की स्थिति में (पालधी मारे रहने पर) मयूरी बासन होता है।
- २. कृपया आसन करने के पग्चात् शवासन अवश्य कर लें जिससे एक्त की गति सामान्य हो जावे।
 - . डा॰ पी०सी० शारदा उर्फ निरंजन नाय प्रधान चिकित्सक-शारदा हास्पिटल एवं आ० फामसी, छिवरामऊ (फरखावाद), उ॰प्र•

भेषज्य रत्नाबली में बुक्कामय

वृत्रकों (गुर्वी) पर ठण्ड लगने से प्रायः यह रोग उत्पन्न हुआ करता है। मत्यन्त पुराने ज्वर, विसूचिका, मसूरिका सथा आमवात में भी यह उपद्रव के रूप में हो जाया करता है।

वृक्क मोटे, मृदु, भार में दुगुने हो जाते हैं। उनकी शिरायें रक्तसंचय के कारण फूल जाती, हैं। नाड़ियों में द्रव भर जाता है और सूत्रद्यारिणी कला झड़ने लगती है।

वृक्तामय के पूर्व रूप—अनिन्द्रां, अग्निमान्दाः आंख, मुंह एवं पैर में शोथ, नाड़ी वेगवती, कठिन एवं उष्ण, त्वचा की रूक्षता-ये वृक्करोगी के पूर्व रूप होते हैं। लक्षण—

ज्वर, सम्पूर्ण अङ्गों में वेदना, शोफ, शिरःशूल कै-रनत की कभी के कारण पांडुता, अग्निमान्छ, स्वेद न आना, त्वचा की रूसता, नाड़ी वेगवती तथा तीरुण, कमरमे बृनक स्थान पर स्पर्शासह पीड़ा, मूल का बार बार थोड़ा-थोड़ा करके पीड़ायुक्त एवं गर्म आना, कहीं-२ मूलरोध तथा कहीं विन्दु-विन्दु आना, वृनकों में अश्मरी के कारण स्थया वहां की शिराओं के रक्त से फूली हुई होने के कारण स्वयं ही रक्त के लात हो जाने से रक्त मिश्रित मूल होना, रक्त के शारण मूल का कृष्णवंण का होना, हाथ पैर की शीतता, मूल के साथ बोज का अत्यन्त परिमाण में निक-लना, मूलकाल में मूलेन्द्रिय के अग्रभाग पर दाह, वृनकों के अपने कार्य में शिथिल होने के कारण जिगर एवं तिल्ली के घोर विकार होजाते हैं जो कि अपने अपने लक्षणों से माने जाते हैं। कार्नों में शब्द होना, आंखों में विकृति, मून्छां, ध्वजभञ्ज, शिर, गर्दन एवं अंसे देश में पीड़ा तथा भूख का नाश, अतिपिपासा, मलबन्ध आदि साधारण लक्षण भी रहते हैं।

जपद्रव-फुफ्फुसिमितिशोथ, कै, उरस्तोथ, जनोदर कास तथा मुच्छी, मूत्र के विषों का रक्त में प्रतिगमन; ये उपद्रव वृक्त रोग में होते हैं। क्रियाक्रम—

जोंक, तुम्बी, शृङ्क अथवा घिरामोक्षण द्वारा रोगी का बलावल देखकर रक्तनिहरण करावे।

विरेचन, स्वेद, बाष्पस्वेद, तथा हु छ अस, पान एवं औषित का वृक्ष रोग में प्रयोग करें। पारद के योग इस रोग को बढ़ाते हैं, अत: उनका प्रयोग न करना चाहिए। मलबन्ध होने पर स्नेहयुक्त वस्ति देनी चाहिये। यदि युगका-श्मरी हो तो अश्मरींत्रत क्रिया करनी चाहिए।

सर्वतोमद्र वटी— यह सम्पूर्ण वृक्क रोगों एवं विस्ति के रोगों को नष्ट करती है तथा बल और वीर्य को बढ़ांशी है। यह योग वृक्कक्षय में विशेष लामकारक है तथा कीर्ण वृक्कशूल में अनुभूत है।

ंता से श्वर वटी — पांडु, वृषक रोग, सर्वाङ्गशोध, जलोदर, मृच्छी, विवसज्वर प्रभृति रोगों को नष्ट करती है।

इस नृक्कामय में रसायनाधिकारोक्त खीपधों का भी प्रयोग करा सकते हैं।

इस रोग की सर्वया शान्ति के लिए कोई भी बौषिष शास्त्रों में निर्दिष्ट नहीं। वैद्य की चाहिए कि बल्म एवं सुपच पष्प द्वारा इस रोग का यापन 'करता रहे। 🔏

🏿 वृक्क के गाघात 💥

💥 वृष्ठ २५० का शेषांश 💥

गुहा में रक्त जोर मूत्र एकत्र हो जाते हैं और परिवृक्क वसा की अम्लता के कारण मूल परिस्राव भी हो सकता है।

- (४) अपूर्ण विदरण केवल गोणिका के विदर में रक्तमेह और मूत्र का परिस्नाव (Extravasation of Urine) होता है।
- (५) सामान्य नील लांछन और वृक्क का कुट्टल विदर में रेक्तमेह और रक्तगुल्म होता है।

लक्षण--

वृक्क पर आघात लगने से किट प्रदेश एवं वृक्क स्थान
में वेदना होती है। वमन, जीमिचलाना तथा रक्तमेह होता
है। उदर का आध्यान, मूथावधारण मूथाल्पता तथा अमूथता
तक हो सकती है तथा अन्य अंगों के आधात के लक्षण
साथ होसकते हैं। आभ्यन्तर रक्तसाव के कारण रक्तदाव का हास हो सकता है। पाश्वपर नीललाइन

स्य रोग चिकिस्स

(Bruising) तथा स्पर्श से वृत्तक कोण पर स्पर्शासहाता प्रतीत होती है। उत्तर भित्ति कठोर तथा कटि प्रदेश में एक पिड-सा भी प्रतीत हो सकता है। मूत्र में रक्त अधिक मात्रा में उपस्थित हो सकता है।

. निदान—एक्सरे चित्रण—एक्सरे चित्रण में अन्तिम दो पशुकाओं का अथवा अनुप्रस्थ प्रवर्धनों का नस्थि भङ्ग मिल सकता है, प्रतिगामी गोणिका एक्सरे चित्र आलवालों की विकृति को स्पष्टतया दिखा सकता है। आघात की ओर के चित्र विरूपित अंग्लिशन तथा परिवृतक उत्तक में लीक किया हुआ रंजक दीख सकता है इसलिए स्तब्धता के समय उत्सर्जन एक्सरे चित्र नहीं लिये जीते।

सिस्टोस्कोप परीक्षा—द्वारा गवीनी में से आघात की ओर आता हुआ रक्त दिखाई देता है।



संजय गांधी स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान संस्थान में

सन् १९८४ से गुर्हा प्रत्यारोपण

लखनक २ सप्रैं ल (यूनी) अगले वर्ष मार्च माह से संजय गांधी स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान संस्थान में न्यूरोलाजी तथा जेनेटिवस इन्य्यूनोलाजी की अतिविधिष्टताओं पर कार्य आरम्भ होजायेगा। शहर से ११ किलोमीटर दूर इस संस्थान को एशिया का सर्वोत्तम आयुर्विज्ञान शोध संस्थान बनाये जाने की महत्व कांक्षी योजना है। संस्थान में न्यूरो-लाजी विधिष्टता के तहत गुर्वा प्रत्यारोपण भी किया जायगा। पांच सौ सत्ताइस एकड़ में निमित होने वाले इस संस्थान की लागत अब ७५ करोड़ रुपये हो जायेगी।

वर्षं १९ ५६ तक इस संस्थान का निर्माण कार्यं पूरा हो जायेगा तथा चार अन्य अति विशिष्टताओं में शोध व उपचार कार्यं आरम्भ हो जायगा। ये चार अति विशिष्ट-तायें, न्यूरोलाजी तथा न्यूरो सर्जरी कॉडियोलाजी, गंस्टो एट्रोलाजी इंडोकोरोलाजी है।

इस संस्थान में कार्यरत विशेषकों को देश में सर्वोत्तम वेतन दिया जायेगा तथा जिन दो अति विशिष्टताओं में मार्च से कार्य आरम्भ होगा उसके लिये विशेषज्ञों तथा कर्मचारियों का चयन इक्षी वर्ष जुलाई के अन्त तक कर दिया जायेगा। इनकी सलाह से उपकरण आदि आयातित किये जायेंगे और जो देश में सुलम होगा उसे खरीदा जायेगा। संस्थान का चिकित्सालय १०० एकड़ के बृहद स्रोत्र में फैला होगा।

उत्तर घदेश के स्वास्थ्य मन्त्री श्री लोकपति विपाठी ने संवाददाताओं को बताया कि इस संस्थान में केवल स्नात-कोत्तर उपाधि प्राप्त डाक्टरों को आगे की पढ़ाई के लिये भरती किया जायेगा तथा इसे पूर्णरूपेण स्वायत्त संस्थान द्वारा उन्हें डी. एस. सी. की उपाधि प्रदान की जायगी। इस संस्थान के सभी विशेषज्ञों, कर्मचारियों तथा शोध छात्रों को संस्थान के परिसर में ही रहना पड़िगा। श्री त्रिपाठी ने कहा कि यदि आवश्यकता पड़ी तो विदेशों से भी विशेषज्ञों को बुलाकर संस्थान में नियुक्त किया जायेगा । उन्होंने कहा कि संस्थान शोध पर सर्वाधिक बल देगा और कम्प्यूटर युक्त लाइज़ेरी में विशिष्टताओं पर विश्व में हो रहे कार्यों की आधुनिक जानकारी उपलब्ध रहेगी । संस्थान पूर्ण रूप से संदिभित झायुविज्ञान संस्थान होगा और कैवल मेहिकल कालेजों तथा मंडलीय मुख्यालयों से संदर्भित मरीजों को ही इसमें भर्ती किया जायेगा। उन्होंने बताया कि संस्थान केन्द्र सरकार से जापान, फ्रांस, इंगलैण्ड, पश्चिम जर्मनी, अमेरिका तथा स्वीडन द्वारा ऋण तथा अनुदान के प्रस्तावों को स्वीकार करने की अनु-मति मांग रहा है।

श्री त्रिपाठी ने कहा कि संस्थान जब किसी अति-विशिष्टता पर संपूर्ण तकनीकी ज्ञान का विकास कर नेगा तो उस सम्पूर्ण ज्ञान को मेडिकल कालेजों को प्रदान करके नयी अति विशिष्टताओं पर कार्य आरम्भ कर दिया जायेगा।

संस्थान के पूरा हो जाने पर १०,००० की आवादी का एक संपूर्ण नगर तैयार जायेगा।

हर मरीज के साथ केवल सम्बन्धियों को यहां रहने दिया जायेगा और उनकी आवश्यकता के लिए वांछित धर्मशालायें वनाई जायेंगी।

---नवभारत टाइम्स ३ वप्रील ६३ पृष्ठ ५ से साभार ।

. ं हान्य न्ति है

यह्यभाविष्टिविष्ट्या

सूत्राशय, सूत्र इसेक निलका, पौरुषग्रन्थि एवं अन्य सम्बन्धित अगों के रोग (चतुर्थी खण्ड)

म्त्राशय की अश्मरी और उसकी सफल चिकित्सा

प्राणाचार्य पं॰ हर्षुं ल मिश्र प्रवीण बी॰ए॰ (ऑनसं) आयुर्वेदरत्न, आयुर्वेदाचार्य सेवा निवृत्त आयुर्वेदीय विभागीय निरीक्षण अधिकारी, रायपुर (म०प्र॰)।

मूत्राशय में अश्मरी मूत्राशय स्थित कुपित वात-पित्तकफ एवं शरीर स्थित दूपित धातुओं एवं विजातीय तत्वों
के संयोग से जनती है। कभी-कभी शुक्र विच्युत होकर
मूत्राशय में पहुंचकर किन वायु द्वारा शुक्त होकर अश्मरी
का रूप धारण कर खेता है। इस प्रकार आयुर्वेद मतानुसार मूत्राशय में वातज अश्मरी, पित्तज अश्मरी, कफज
अश्मरी, शुक्राश्मरी का निर्माण होता है। अश्मरी के
निर्माण में पित्त, कफ, शुक्र, शरीर स्थित दूपित धातुओं
एवं विजातीय तत्व फेवल साधन मान्न हैं। जब तक ये
सब द्रव्य कुपित वायु द्वारा मून्नाशय में संचित होकर शुक्त
नहीं हो जाते, तब तक अश्मरी का निर्माण नहीं होता।
ये दूपित द्रव्य (विजातीय तत्व) वायु के अनुलोम रहने
से मूत्रमार्ग द्वारा सरलतापूर्वक वाहर निकल जाते हैं,
जिससे अश्मरी निर्माण की स्थित कायम नहीं हो पाती।
अश्मरी के पूर्वरूप में विजातीय तत्व वृक्क, मूत्राशय,

पिताणय बादि अवयवों में सर्वप्रथम वारीक रेत कणों के रूप में संचित होते रहते हैं। ये ही सूक्ष्म कण वायु के प्रतिलोम होने पर वायु द्वारा शुष्क होकर घन होने लगते हैं। इनके घन होने की क्रिया प्रारम्भ होते ही मूत्राणय में क्रमणः संचित होने वाले विजातीय तत्वों का आवरण इन (सिक्ताओं) पेर शनैः शनैः चढ़ने लगता है। कुछ दिनों में ये सिक्तायें बढ़कर चना, मटर, चिरोंजी फल, करंज फल के आकार की दानेदार, चपटी, गोल, वृत्ताकार, अधें वृत्ताकार, चिकनी, कठोर, श्याम, श्वेत, पीली, लाल विपम सङ्ग और विपम आकार की दन जाती है। अश्मरी, मूत्राणय आदि अवयवों में उसी प्रकार उत्तरोत्तर बढ़ती है, धिस प्रकार गोरोचन गाय के पिताणय में बढ़ता है।

मूत्राशय में अश्मरी की स्थिति

(१) अश्मरी कभी कभी मूत्राशय में वनने के बाद

मूज राग चिकिस्सा

ब्रीरे घीरे विजातीय तत्वों के संयोग से मूत्राशय की दीवालों में श्लेष्मिक कला से वेष्टित होकर एक रुग्णे उभार (Morbid growth) के रूप में कायम हो जाती

चित्र - ६८ पूत्राशय में अनेक छोटी सहमरियां



है। इसमें पीड़ा अवश्य होती है, परन्तु यह अश्मरी मूत्रा-शय में वायु से प्रेरित होकर इधर उधर घूमती नहीं। इसलिये इसके द्वारा मूत्र विसर्जन में वाद्या नहीं होती। यदि यह मूत्राशय के मुख के पास क्लेब्मकला से वेज्टित होकर स्थिर हो जाती है तो इसमें बढ़ने से अजानक मूत्रा-घात की भयंकर स्थिति कायम हो जाती है, जिसका निवारण सिर्फ शल्य क्रियां द्वारा ही किया जा सकता है। प्रायः अधिकांश अश्मरी श्लेब्मकला से आवेष्ठित ही पायी जाती हैं, जो स्वतन्त्रतापूर्वंक मूलाशय में घूमती रहती हैं जीर कभी भी मूत्राशय के मुख के पास आकर मूत्राघात तया मूत्रक्रच्छ्रकी स्थिति निर्माण कर रोगी को महान कप्ट देने लगती हैं। कभी-२ ये छोटी होने से पीड़ा देते हुये, कभी सरलतापूर्वंक मूलमार्ग से बड़ें वेग के साथ रक्त व रंजित वाहर निकल पड़ती हैं। तब इसके निकलते ही रोगी मूत्रवाघा से तत्काल मुक्त हो जाता है। ऐसी छोटी अश्मरियों का मूत्र मार्ग से वाहर निकलना उत्तम औप-धियों के प्रयोग से ही होता है। स्वतन्त्र अध्मरियों से उत्पन्न मुत्राघात, उत्तरवस्ति (कैथीटर) को मूत्रमागं में प्रवेश कर मूत्राशय के मुख तक पहुंचाने से निःसंदेह द्र हो जाता है।

(ः) वृक्क से भी अश्मरी निर्माण फरने वाली सिक्तायें वृक्कनलिका द्वारा घीरे-२ मूत्राशय में पहुंचकर मूत्राशय में पहुंचकर मूत्राशय में संचित होती रहती हैं, जो कालान्तर में अश्मरी का रूप घारण करती हैं। ऐसी सिक्ता अश्मरियां अब वृक्क निल्का में फंस जाती हैं तब नामि के कभी दायों और तो कभी वायों और भयद्धूर वेदना होती है। गरम पानी की धैली से सेक पहुंचाते ही वृक्कनिका फेलतो है और अश्मरी सिक्ता तत्काल मूत्राशय में उत्तर

जाती है, जिससे रोगी को पीड़ा में तत्काल -राहत मिल जाती है। ऐसी सिक्ता अध्मरियां कभी कुछ दु:ख के साथ, कभी सरलतापूर्व के मूत्रमार्ग से बाहर आ जाती हैं। इस प्रकार सिक्ता अध्मरियों का मूत्रमार्ग से वाहर निकाने का प्रसंग प्रायः साधुगुणकारी औपिधयों के प्रयोग के बाद ही आता है, अन्यथा नहीं।

. (३) शोययुक्त मूताशय की लाला ग्रन्थियों के उभार में कभी-२ अवभरी फंस जाती है तो अत्यन्तू कर्यदायक पीड़ा होती है। उस समय शल्य क्रिया द्वारा अश्मरी को निकालना आवश्यक हो जाता है। शल्य किया की सुविधा न होने पर सुखोष्ण जल के टब में रोगी को बैठालने से भी भयद्धर दु:ख में राहत मिलती है और मूत विसर्जन स्वाभाविक रूप से होने लगता है। परन्तु यह उपचार स्थायी रूप से रोगनाशक नहीं हैं। रोग निवारण शल्य क्रिया द्वारा अथवा आशुगुणकारी पथरीनाशक औषिवयों से ही सम्भव है।

सक्षरी उत्पत्ति के कारण-

मूल के वेग को अधिक देर तक रोकने की आदत से अधिक चूनायुक्त जल के पीने से वा कैलिगयमयुक्त पदार्थों के अधिक सेवन से। मैं युन के समय वा स्वप्नावस्था में गुक्र के देग को बार वार रोकने से शुक्र प्रतिलोम वायु के वेग से मुत्राशय में पहुंचकर शुक्राश्मरी का कारण बनता है। पान के बीड़ के साथ अधिक चूना खाने वालों को वृक्काश्मरी तथा मूत्राशयाश्मरी हो जाती है। शरीर के रक्त में जल की मात्रा कम होने से भी वृक्क में रक्त के स्थूल विजातीय तत्व मूत्र के साथ धुलकर मूत्र मार्ग से बाहर नहीं निकल पाते। वे वृक्क में संचित होकर सिक्ता का रूप धारण कर लेते हैं, फिर धीरे-२ मूत्राशय में पहुंचकर कालान्तर में मूत्राशय अश्मरी का रूप धारण कर लेते हैं।

सरमरी की धनावट में पाये जाने वाले द्रव्य-

वाताश्मरी में चूना (Oxlate of lime calculus)
विशेष रूप से पाया जाता है। इसी के कारण वाताश्मरी
कठोर और उसका आवरण कांटेदार होता है। पित्ताश्मरी
की बनावट में मूत्राशय तथा मूत्र लवध (Uric acid)
तथा नृसार (अमोनिया) रक्त के लाल और पीले कणों
की उपस्थित रहती है। कफाश्मरी से अस्थिसार (फास्-

स्वारोग चिकित्सा

फेट) के साथ भिन्न भिन्न प्रकार के शारीरिक लवणों की उपस्थित रहती है। शुक्रायमरी में शुक्र धातु के शुद्ध कणों की उपस्थित रहती है। जब यह दूटती है वा चूर्ण हो जाती है तब मूल के साथ धुली हुई बाहर निकलती है। मुन्नाशय की अक्मरी का पूर्वरूप—

मूलाशय में जब अश्मरी बनवा प्रारम्भ होता है, तब मूत्राशय में आध्मान (वातावरोध) होता है, जिससे मूत्रा-शय में यदाकदा वेदना होती रहती है। मूत्र की गन्ध बकरे के मूत्र की तरह आती है। मूत्र विसर्जन यदाकदा जरा कट्ट के साथ और हक-हककर होता है। रोगी को उपयुक्त स्थित में ज्वर हो आता है। मूत्रकृच्छ, अहचि, मूत्राशय प्रदेश में वेदना, अश्मरी निर्माण के प्रारम्भिक सक्षण हैं।

अइमरी का सामान्य लक्षण

अश्मरी के रोगी को मूल विसर्जन करते समय मूत्राशय श्रीर मूत्रमार्ग में पीड़ा होतीं है। कभी पीड़ा नहीं भी होती, मूत्र हाहर निकलते समय दो बार में निकलता है। कभी मूत्र विसर्जन स्वाभाविक वेग से होते होते अचानक एक जाता है अथवा बूंद बूंद गिरने लगता है। कभी-२ मूत्र मागं में अश्मरी आ जाने से भारी वेदना होती है, मूला-शय की ग्रीवा में अश्मरी आ जाने से मूत्राघात की स्थिति निर्माण हो जाती है, जो उत्तर वस्ति (कैथीटर) लगाकर ही दूर की जा सकती है। कभी-२ स्वाभाविक वेग से मूत्र विसर्जन होते होते अचानक इक जाता है, परन्तु एक पैर ृनीचा और एक पैर ऊंचा रखने से अथवा दायें वायें किसी भी ओर हाथ रखकर अथवा तिरछा होकर वैठने से मूत्राशय की ग्रीवा से अश्मरी हट जाती है, और पुनः स्वाभाविक वेग से मूत्र विसर्जन होने लगता है। कभी-२ छोटी अश्मरी मूत्र सार्ग में आकर रक जाती है तो पतली घार से मूल विसर्जन होता है और उसकी रगड़ से मूल-मार्ग छिल जाने पर मूल के साथ शुद्ध रक्त भी बहने लगता है। इस स्थिति में घातु निमित्त मूत्रमार्गी शलाका (कैयी-टर) के प्रयोग से अश्मरी को मूलमार्ग से पीछे की ओर घीरे-२ हटाते हुए उसे पुनः मूत्राणय में पहुँचाया जाता है। मूलमार्गी शलाका के माध्यम से मूत्र का सम्यक्. विस-र्जन होतां है अन्यवा नहीं । अश्मरी में मूत्र वाघा के साय साथ शिशु के पेड़, मलद्वार में पीड़ा होती है। नाभि को

रोगी वेदना असहा होने पर बार वार मलता है और दर्व से जिल्लाता है। मूलमार्ग को जब अश्मरी पूर्णतया अग्रुट्ड नहीं करती, तब मूल पतली घार से थोड़ी वेदना के साथ उतरता है। जब मूलाशय की ग्रीवा में अश्मरी फंग्र जाती है, तब भारी वेदना होती है। मूलाशय में संकोच होकर मूल का वेग जोरदार होता है। परन्तु ग्रीवा में अश्मरी की बाधा होने से पेशाब विल्कुल नहीं उतरता। इस स्थित में मूलमार्गी शलाका के प्रयोग से ही तत्काल मूल विसर्जन कराके रोगी को तत्काल दु:ख से मुक्त किया जा सकता है।

वातज अर्थमरी के लक्षण — वातज अर्थारी में मूत्रा-वरोध, मूत्र विसर्जन के समय अत्यन्त वेदना होती है। मूत्र विसर्जनार्थ रोगी जब बार वार वल लगाता है, गुदा-द्वार से अपान वायु निकल आती है; मल भी निकल आता है। रोगी दांत पीसता है, नाभि को दोनों हाथों से दवाता है और विल्लासा है। बहुत वल लगाने पर मूत्र बूंद बूंद गिरता है। वाताश्मरी श्यामवर्ण, रूझ, विषम आकार की कठोर और कंटकावृत्त होती है। यह वाताश्मरी अत्यन्त पीड़ांकर और मूत्रावरोधक है। सहज में टूटती नहीं। स्पर्ण में कठोर होती है।

पिताश्मरी के लक्षण—यह भिलावे की मिगी के आकार की किचित लाल और क्लिचित की पीतवर्ण की होती है। मूत्राश्य में पिताश्मरी होने पर मूत्राश्य में दाह (जलन) की स्थित बनी रहती है। मूत्र विसर्जन के समय उप्णवात के समकक्ष जलन और दर्द होता है। यह प्रायः वढ़कर विस्त के मुख में ही स्थित रहती है, जिससे मूत्रकुच्छ्रता, मूत्राधात की स्थित दिन रात में कभी भी निर्माण हो जाती है। यह स्पर्ण में दाहयुक्त प्रतीत होती है।

कफाश्मरी के लक्षण—वस्ति में फफाश्मरी की उप-स्थिति होने पर हल्की वेदना के साथ तोद होता है। यह प्रायः श्वेतवर्ण की वा मधु पुष्प (महुये के फूल) के रङ्ग की चिकनी और स्पर्श में शीतल होती है। इसमें मूल विसर्जन के समय दाह और पीड़ा नहीं होती। केवल मूत्र वेग से नहीं होता, प्रत्युत पतली धार से शनै: शनै: यहुत देर में होता है। कभी कभी मूलमार्ग में तुदन जैसी पीड़ा होती है। उप्ण जल के टव में बैठने से,

वस्ति पर उल्ण जल की शीशी वा यैली से सेकने से, उष्ण लेप करने से प्रायः मूत्र विसजंन हो जाता है। कफाश्मरी बच्चों को अधिक होती है।

गुक्राश्मरी के लक्षण-आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार, वीयं के वेग को जब रोका जाता है, तब वायु प्रतिकोम होकर शुक को मूत्राशय में ठेल देती है। जहां वह कालां-तर में वाय द्वारा शुष्क होकर शुक्राश्मरी का रूप घारण कर लेती है। यह शुक्राश्मरी केवल वालिग, प्रौढ़ पुरुप को ही होती है। वस्ति में शुक्राप्यरी की उपस्थिति में बहुत पीड़ा होती है। मूल कठिनाई से रुक रुक कर होता है। मुक्राश्मरी कभी कभी ज्यादा घन न होने पर टूटकर विखर जाती है और सिक्ता और शकरा के रूप में मूत्र के साथ बाहर निकलने लगती है। कहने का तात्पयं यह, कि शुक मुद्राशय में पहुँचकर प्रतिलोम रूक्ष वायु के स्पर्श से घन होकर अश्मरी बनाता है। यही औषधि आदि के प्रयोग से अनुलोम वायु के स्पर्श से टूटकर शकेरा के रूप में मूत्र मार्ग से बाहर निकलने लगता है। परन्तु यह शुक्र शर्करां तथा शुक्र सिक्ता मूत्राशय में संचित रह गयी तो वह नामि और अण्डकोष में शोध, मूत्रावरोध, उष्ण वात, तृष्णा हृदपीड़ा आदि उपद्रव पैदा कर रोगी को मार डालती है। सूचना-उपयुक्त उपद्रव प्रायः सभी मरणासन्न अश्मरी रोगियों में मिलते हैं। इसलिये बढ़ी हुई अश्मरी

को उपर्युक्त उपद्रव होने के पूर्व ही शल्य क्रिया द्वारा निकलवा देना चाहिये।

अश्मरी नाशक अनुभूत सफल बौषधि योजना—

- (१) घृत कुमारी का स्वरस २॥ तोला, यवक्षार ४ रत्ती, गुड़ १। तोला सवका घोल बनाकर नित्य प्रातः सायं पीवें तो दो तीन वयं की अप्रमरी ३ से ६ माह के अन्दर टूटकर चूर्णं रूप में मूत्र मार्ग से वाहर निकल जाती है।
- (२) क्षारामृत मिश्रण-तिलक्षार,अपामार्गक्षार,कदली-क्षार, पलाशक्षार, यवक्षार पांची १-१ रत्ती, भेड़ का ताजा मूत्र २।। तोला । सबको मिलाकर घोल तयार करले नित्य प्रातः १ वार खाली पेट पीवें तो संभी प्रकार की अश्मरी सिक्ता सकरा २१ दिन में निःसंदेह नष्ट होजावेंगी।
 - (३) पापाणभेद, गोखरू, एरण्डमूल, वड़ी कटेरी,

छोटी कटेरी, तालमखाना का समभाग चूर्ण, ६ माशा-नित्य ताजे दही के ५ तोला पानी में घोलकर पीवें तो १ माह में अश्मरी से होने वाली. मूत्र वाधा रक जावेगी, स्वाभाविक रूप से मूत्र विसर्जन होने लगेगा । रे माह के सेवन से अश्मरी गलकर मूत्र के साथ वाहर निकल जावेगी।

- (४) कृष्माण्ड (भूरा कृम्हड़ा) के ५ तोला स्वरस में यवझार ४ रत्ती हींग ४ रत्ती और तिलक्षार ४ रत्ती घोल कर नित्य सवेरे पीने से अश्मरीजन्य मूलकुच्छ ७२ घण्टे में दूर होता है। इसके पीते ही अण्मरी का हास प्रारम्भ होजाता है। अष्टमरी भेद और शरीर भेद के अनुसार कभी-शीझ वा कभी विलम्ब से किन्तु १ माह से डेड माह के भीतर अश्मरी गलकर मूलं के सांच वाहर निकल जावेगी।
- (५) अश्मरी भेदक योग---पाषाणभेद का घनसार, वरुणा की छाल का घनसार, गोखरू का घनसार, ब्राह्मी का घनसार, प्रत्येक १-१ तोला। ककड़ी के बीजों की मींगी, यवक्षार, गोपाल कचरी की जड़ का चूर्ण तीनों २-२ तोले, सूर्यतापी शुद्ध लोह शिलाजीत ४ तोले, तिलक्षार ५ तोले ।

समस्त द्रव्यों को पत्थर के खरल में डालकर खूब मर्दन कर मिश्रण तैयार करलें। मात्रा-१ माशा । अनुपान-गुड़ युक्त सुखोप्ण वरुण क्वाथ । संमय प्रातः सायम् ।

गुण- १५ से ३० दिन में पथरी दूटकर चूर्ण रूप में मूत्र मार्ग से व्ाहर निकल जाती है।

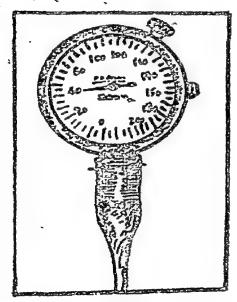
(६) अप्मरी गदांतक वटी-गोखरू घनसार, वरुणा-रवक् घनसार, पापाण भेदवनसार, तिलक्षार, अपामार्गक्षार, कदलीक्षार, पलासक्षार, यवक्षार, हजरलयहूद भस्म, गोबरू के बीज का चूर्ण, सहजना मूलत्वक चूर्ण, मुक्तासीप भस्म प्रत्येक र-र तोले, शुद्ध सूर्यतापी लौह शिलाजीत ४ तो०, गोपाल कचरी की जड़ का चुणं द तो -सवको १ • तोले असली मधु और ५ तोले भेड़ के घृत में सानकर १-१ माशे के वटक बना लें। माना १ से २ वटक ! अनुपान-ताजे दही का जल समय-प्रातः सायं। वच्चों को आधा बटक।

गुण-इसके सेवन से निःसंदेह १५ से ३० दिन के अन्दर अश्मरी टूटकर मूल मार्ग से बाहर निकल जाती है।

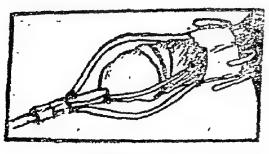
(७) कुलत्यादिषृतः—वरुणां का कादा अष्टमांस

अविशिष्ट १ सेर, कुल्यी का चूर्ण, सँधानमक, विद्यंगवीज, शवकर, पद्मकण्ठ चूर्ण, यवक्षार, कूष्माण्ड (भूरा कुम्हड़ा) के बीज का चूर्ण, गोखरू वड़ा का चूर्ण प्रत्येक १-५ तो०। सबको दही के पानी में पीसकर कल्क तयार करेलें। फिर इस कल्क और वरुणा के काढ़े को १ सेर गोवृत के साथ स्टेनलेस स्टील के डेग (चौड़ें मुंह वाले पात्र) में डालकर अग्नि पर चढ़ाकर इतना पंकार्वे कि सब द्रव्य पचजाय, केवल वृत मान्न शेप रहे। घृत सिद्ध होते ही पात्र को अग्निताप से अलग कर दें। घृत जब सुखोष्ण होजाय, सब उसे छानकर कांच की वरनी में भर कर सुरक्षित रख दें। मात्रा १ तोला से २ तोले। अनुपान—वरूण का सुखोष्ण क्वार्थ। समय प्रातः सार्थ भोजन के पूर्व। गुण-यह घृत लगातार १॥ माह से ३ माह तक सेवन करने से सभी प्रकार की अएमरी, मूलकुच्छ, मूलाघात समूल नष्ट हो.

स्त्राशय का अन्तः दबाव मापन



चित्र क्रमांक ६६ , ईस्ट का सिस्टोमीटर



चिल क्रमांक १००

इसे ईस्ट का सिस्टोमीटर कहते हैं। इसमें रक्तचाप मापक यन्त्र (डायल टाइप) के समान ही एक डायल होता है। फर्क केवल इतना ही है कि रक्तचाप मापक यन्त्र में पारद की ऊंचाई प्रदर्शक चिन्ह हीते हैं जबकि इसमें पानी की ऊँचाई प्रदर्शक चिन्ह (सैन्टीमीटर में) होते हैं।

विधि—पहले सम्पूर्ण यन्त्र को, कैथीटर आदि को विसंक्रमित कर लें। अब रवड़ कैथीटर के बाहर के सिरे में मुख्य यन्त्र की (चित्र ६६ में नीचे की ओर दिखाई गई) नली को प्रविष्ट कर दें तथा कैथीटर को मूत्राशय में प्रविष्ट कर चित्र क्रमाङ्क १०० में दिखाये अनुसार स्थिर कर दें। यन्त्र में मूत्राशय का दबाव का जायेगा।

-※-

TEIRING BERRIE

वैद्य श्री जयनारायण गिरि 'इन्दु' बी॰ए॰, डी॰एस्-सी॰एवाई॰ (वायु॰वृह०), आयु॰रतन धजवा, पो॰ नूरचक (मधुवनी) विहार।

कश्मरी को आम बोल-चाल की भाषा में "पथरी"
कहा जाता है। इस रोग में गवीनी या मूलाशय में पत्थर
हो जाता है। जो मानव इस व्याधि से दुर्भाग्यवश ग्रसित हो जाता है उसकी स्थित अत्यन्त हो कारुणिक हो जाती है। सुश्रुताचार्य का कहना है कि जिस प्रकार वायु और विद्युत की अग्नि आकाश में स्थित जल को ओले में परिकार देती है, उसी प्रकार वायु सहित ऊष्मा यानी पित्त, विस्तगत कफ को बांधकर अग्मरी का निर्माण कर देते हैं। उनके अनुसार—'चतस्त्रोऽश्मरी भवन्ति ग्लेष्माधिष्ठानाः।' इसका तात्पर्य यही हुआ कि समस्त प्रकार की अश्मरियां श्लेष्मा का आश्रय लेकर ही उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि इसकी उत्पत्ति में वात, पित्त और कफ सीनों दोपों की भूमिका है।

आचार चरक ने सश्मरी रोग का निवेचन मूतकुच्छू रोग के ही अन्तर्गत कियाहै, किसी स्वतन्त्र व्याधि के रूप में नहीं। अमरकोषकार ने भी अश्मरी और मूतकुच्छू को एक-दूसरे का पर्यायवाची ही माना है ("अश्मरी मूतकुच्छू स्यात्" २/६/५६)। वाद के संहिताकारों ने अश्मरी भीर मूत्रकुच्छू को दो स्वतन्त्र रोग माना है। यह सही है कि अश्मरी के कारण भी मूत्रकुच्छू होता है और मूत्रकुच्छू के परिणामस्वरूप अश्मरी भी हो सकती है।

हमने अध्मरी के निर्माण में वात, कफ, और पित्त की भूमिका का उल्लेख कर ही दिया है। सुश्रुत ने अत्यन्त ही स्पष्ट रूप से कहा है कि जिस प्रकार नवीन घट में रखे हुए जल में भी कुछ समय के उपरांत पंक (कीचड़) की उत्पत्ति हो जाती है, उसी प्रकार विस्तगत स्वच्छ मूत्र में भी कुछ काल के बाद अध्मरी बनने लगती है। अन्त-रिक्ष का जल अविकारयुक्त होता है किन्सु घरती के

वातावरण और जलवायु के संसर्ग के कारण उसमें विभिन्न
प्रकार के खिनज लवणों का मिश्रण होजाता है। जल के
सुखने पर ये ही लवण अवक्षेप वनाते हैं। मूत्र के द्वारा
प्राकृतावस्था में अनेक लवण यथा यूरिक एसिड, यूरेट्स,
फॉम्फेट आदि (देखें, इसी विशेषांक के अन्तर्गंत 'रोगनिदान में सहायक मूत्र-परीक्षा के अन्तर्गंत' प्राकृत
मूत्र)। आहार-बिहार की अनियमितता के कुपरिणात
स्वरूप मूत्र में जलीशांश की यदि अल्वता हो जाती है तो
इन लवणों के स्फटिकी भवन (Crystalization) होकर
छोटे-छोटे Crystals बन जाते हैं जिसके फनस्वरूप मूत्र
में अवक्षेप पैदा होता है और इसी अवक्षेप के एकितत
होकर कठोर वनने से पथरी का निर्माण हो जाता है।
पाष्चात्य चिकित्सा शास्त्रियों का यह अभिमत है कि भोजन
में नाइट्रोजन बहुल पदार्थों की अधिकता एवं विटामिन
"ए" की कमी से ही अश्मरी होती है।

अश्मरी का रोग वाल्यावस्था में विशेषकर होता है। स्त्रियों में यह ज्याधि क्वचित ही पाई जाती है क्योंकि उनका मूत्र मार्ग छोटा और विस्तृत होने से छोटी अश्मरी सुगम--ता पूर्वक निष्कासित हो जाती है।

अश्मरी के पूर्वरूप

इस अवस्था में मूत्राशय फूला हुआ रहता है, मूत त्याग करते समय तीव्र वेदना की अनुभूति होती है, मूत्रा-शय तथा उसके समीपस्थ प्रदेश में भी असहनीय पीड़ा प्रतीत होती है, मूत्र की गन्ध वकरे के गन्ध (बोतुआ के शरीर के गन्ध सा) आवे और अक्चि. रहे तो इन लक्षणों को अध्मरी का पूर्वहप ही मानना चाहिए।

अश्मरी के सामान्य रूप सुश्रुत के अनुसार-"अय जातासु, नाभि-बस्ति-सेवनी, मेहनेष्वन्यतंमस्मिन महती वेदना मूद्रधारा सङ्ग सरुधिर मूद्रता मूत्रविकिरणं गोमेदकप्रकाश-मत्याविलं ससिकतं विसृजति । घावनलङ्कानाप्लवन, पृष्ठयानाध्यगमनैप्चास्य वेदना भवन्ति ॥" उनके अनुसार—

- (क) नाभि, वस्ति, सेवनी, शिश्न और शिर में पीड़ा होती है।
- (ख) मूल परित्याग के समय मूलधारा इक जाती है (अश्मरी के कारण)। अश्मरी के हटने पर सुखपूर्वक मूल का त्याग होता है।
- (ग) मूत्र के साथ रक्त का भी स्नाव होता है क्योंकि अश्मरी के कारण उसके संक्षोभ से क्षत उत्पन्न हो जाता है।
 - (घ) मूत्र की धारा टेड़ी निष्कासित होती है।
- (ङ) मूत्र का रंग गोमेदक के समान (पीर्ताभ) होता है।
 - ं (च) मूल के साथ सिकता (Gravels) निकलता है।
- (छ) मूत्र अस्वच्छ (सुश्रुत ने 'आविल' इसी अर्थ में लिखा है) निष्कासन होता है।
- (ज) दौड़ने, उछलने, तैरने, घोड़े आदि की पीठ पर सवारी करने, अत्यधिक मार्ग गमन करने तथा उष्ण सेवन से वेदना में वृद्धि होती जाती है।

अश्मरी के प्रकार

अश्मरी के चार प्रकार होते हैं—(१) वातिक-अश्मरी (२) पैत्तिक-अश्मरी, (३) श्लेप्माश्मरी और (४) श्काश्मरी।

वातिक-सश्मरी—इस प्रकार की खश्मरी में सूत्र त्याग करते समय रोगी लिङ्ग और नाभि में असहनीय पीड़ा के कारण चिल्ला उठता है। भयंकर पीड़ा के कारण रोगी अत्यन्त व्यथित होकर दांत चबाता है, नाभि को दबाता है, शिश्न को मसलता है, गुदा को छूता है और क्भी-कभी रोगी को रेचन भी हो जाता है। वातिक-अश्मरी स्पर्श में कठोर, श्यामवर्णयुक्त, विषम और खुरदरी होती है।

पैत्तिक-अश्मरी — इसका अश्मरी रक्त मिश्रित, पीला, कृष्ण, भिलावे की गुठली के समान और मधुवण (शहद के समान वर्ण वाली) हाती है। इसके रोगी को ऐसा प्रतीत होता है जैसे उसके पेडू पर फोड़े के समान वेदना और उष्णता हो।

एलेट्माश्मरी—श्लेष्माश्मरी का स्वरूप 'मुर्गी के अण्डे के समान आकृति और रंग का होता है। इसके रोगी का पेड शीतल होता है। यह क्षारीय मूत्र में उत्पन्न होती है और ट्रिपल फॉस्फेट (अमोनियम) से बनती है। इस प्रकार की अश्मरी यदा-कदा ही हिण्टगोचर होती है।

चिकित्सा

्र नवीन और नातिवृद्ध अश्मरी की चिकित्सा औषधि द्वारा सफलतापूर्वक की जा सकती है। अश्मरी के अत्यन्त बढ़ जाने पर सुश्रुत ने शल्य चिकित्सा का निर्देश दिया है—

स्रमरी दारुणो व्याधिरन्तक प्रतिमो मतः। स्रोषधैस्तरुणः साध्यः प्रवृद्धश्छेदमहंति॥ —सु० चि० ६/३

बश्मरी का चिकित्सा सिद्धान्त यही है कि इस रोग में चिकित्सार्थ ऐसे योगों की योजना की जाय, जिसके प्रयोग से मूत्र में अश्मरी निर्मापक द्रव्यों की न्यूनता, उत्पन्न अश्मरी का विघटन और मूत्रराशि को वढ़ाकर उसका बहिनिष्क्रमण हो जाय। आवश्यकतानुसार सेंक, स्वेदन, अवगाह्न, लेप तथा उत्तरवस्ति का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए। कतिपय योग इस रोग में उपकारी हैं। यथा—

- (१) त्रिकण्टंक चूर्णं—गोखरू के बीज का चूर्णं मधु मिलाकर बकरी के दूध के साथ पीने से एक सप्ताह में नष्ट हो जाती है।
- (२) सहिजने के मूल का कोष्ण क्वाथ पीना अग्रमरी-
- (३) वारमट्ट का कथन है कि शुक्राश्मरी होने पर वस्तिकमं द्वारा मूलमागं के शुद्ध कर लेने के बाद पुरुष वृष्य द्रव्यों और मुर्गे के मांस का तृष्ति पर्यन्त सेवन करें। पश्चात् अत्यन्त मददायी, रूपवती, पोड़स वर्षीया वाला के साथ जी भरकर सम्भोग करें। इससे शुक्राशय की शुद्धि होकर शुक्राश्मरी नष्ट हो जाती हैं।
- (४) "राज मातंण्ड" के कथनानुसार गोल ककड़ी की जड़ रात्रि में पानी में भिगोकर दें और प्रातःकाल उसी पानी में ठण्डाई के समान उसे पीसकर पिलायें तो सात दिन में ही पथरी मूत्र मार्ग द्वारा निष्कासित हो जाती है।

(५) "योगरत्नाकर" लिखित" पाषाणवच्चक रस" इस रोग में अत्यन्त ही हितावह है। इसे २ रत्ती से १ माशा तक की माला में गोपाल ककड़ी के मूल के क्वाथ या कुल्थी के क्वाथ के अनुपान से प्रयोग करना चाहिये। इसकी निर्माण विधि निम्न है—

शुद्ध पारद एक भाग, शुद्ध गन्धक तीन भाग लेकर फज्जली वना श्वेत पुननंवा के रस के साथ एक दिन मदंन करें, पश्चात् भूधरयन्त्र में रखकर पकार्वे। शीतल होने पर समभाग पापाणभेद का चूणें मिलाकर रख लें। इसका प्रयोग अश्मरी में अत्यन्त ही फलप्रद है।

(६) आयुर्वेद के मूर्द्धन्य विद्वान और अनुभवी चिकित्सक वैद्य मीहरसिंह आयें जी का निम्न योग अवश्य ही गुणकारी सिद्ध होगा—

कलमीशोरा १०० ग्राम, भांग १०० ग्राम लें। भांग को सूक्ष्म पीस लें। कलमी शोरा को कड़ाही में डालकर आग पर चढ़ा दें। जब शोरा पिघलने लगे तो भांग चुटकी चुटकी डालते जायें। जब तमाम भांग जल जाये तो शोरा को एक घण्टा आंच पर ही रहने दें। फिर नवसादर १०० ग्राम लें। एक हांडी में नीचे-ऊपर शोरा रख मध्य में नवसादर रख सम्पुट करके २० किलोग्राम उपलों की आंच दें। शीतल होने पर निकाल-पीस लें। मात्रा बड़ों के लिए १ ग्राम। बालकों के लिए अवस्थानुसार १ चावल।

अनुपान—खरवूजा के बीज ६० ग्राम, शक्कर ६० ग्राम लें। वीजों को रगड़कर जल के संयोग से सत निकाल, शक्कर मिला आग पर चढ़ा दें। जब सार घट जाय तो छान कर दें।

ार्गण — हर प्रकार की पथरी टुकड़े टुकड़े होकर निकल जायगी। खाने को दही न दें।

(७) राजस्थान के विद्वान आयुर्वेदज्ञ पं विरिञ्चि लाल शर्मा जी का निम्न प्रयोग अश्मरी पर कल्याण-कारी है—

निम्बूरस २६ ग्राम, यवक्षार (पपड़ी) ६ र ग्राम,
मधु १३० ग्राम। इन्हें मिलाकर मिक्चर बना लें।
इसके वाद शोभांजन (सहिजना) की छाल २५ ग्राम
लेकर २५० ग्राम जल में डालकर जवाल लें। औपधक्वाथ
२५ ग्राम जल शेष रहने पर छानकर उपरोक्त मिक्चर

१ तोला में मिला कर दिन में २ वार या ज्यादा परेशानी हो तो तीन वार इस प्रकार से देने से सफल सिद्ध होता है।

- (=) रानकीय आयुर्वेद महाविद्यालय उदयपुर के कविराज राजेन्द्र प्रकाश आ॰ भटनागर जी की निम्न चिकित्सा व्यवस्था इस रोग में अपूर्व गूणकारी है—
- (क) प्रातः सायं-दिन में दो बार, त्रिविक्रम रस २ रत्ती, हजक्लयहूद पिण्टो या भस्म ४ रत्ती, क्षारपपंटी २ रत्ती-मिलित १ मावा।

ऐसी २ मात्राएं मधु से चाटकर निम्न कषाय पीयें-(ख) अश्मरीहर कषाय (सिद्ध-योग संग्रह) १ तो०-१×२ मात्रा।

(ग) चन्द्रप्रभावटी २ गोली या शिवागुटिका २ गोली - १ मात्रा × २ मात्राएं।

गोक्षुर चूर्ण पक्व दुग्धानुपान से, प्रातः सायं।

(घ) जुल्थी का क्वाय र तो०, दिन में र-४ बार। अध्मरीहरकपाय की निर्माण विधि निम्न है—

पाषाणभेद, सागीन के फल, पंपीते की जड़, शतावरी, एवं कास गोखरू, वरुण छाल, कुश मूल, पुनर्नवा, गिलीय, अपामार्ग के मूल और ककड़ी के बीज-प्रत्येक समभाग, जटामांसी और खुरासानी अजवायन के बीज या पत्ती— प्रत्येक २ भाग लें। सबको जोकुट करके रख लें। इनमें से १ तोला ले, उसको १६ तोले जल में पका, ४ तोला बाकी रहे तब कपड़े से छान कर पीवें।

- (६) अन्त में विशिष्ट सम्पादक का चिकित्सानुभव-
- (क) सिस्टोन (निर्माता, हिमालया ड्रग कम्पनी) १ गोली, वंगशील (निर्माता एलासिन कम्पनी) १ गोली अश्मरीहर कषाय (योग संख्या द में वणित) के सार्थ दिन में ३ बार ।
- (ख) त्रिविक्रम रस (र॰ यो॰ सा॰) १ रती, प्रवाल पिष्टी २ रती, हजरूलयहूद पिष्टी ४ रती, पुनर्नवा मण्हर ४ रती—ऐसी १ मात्रा दिन में दो बार सधु के साथ चार्टे।
- (ग) रात्रि में शयन के समय १/४ लिटर कुल्थी की दाल में (गुनगुना) दो चम्मच वेषणादि घृत (भै॰ र॰) डाल कर पीवें।



डा॰ दाकद्याल गर्ग ए., एम.बी'एस., क्षायु॰वृह॰, सम्पादक 'धन्वन्तिर' गुलजारनगर, रामधाट रोड, अलीगढ़।

वमन-विरेचन आदि संशोधन कमों से रहित तथा अपथ्य सेवन करने से पुरुप में कफ प्रकृपित होकर मूत्र के साथ मिलकर चार प्रकार की (१. वातज, २. पित्तज, ३. श्लैं िमक, ४. शुक्रज) अश्मरी उत्पन्न होती हैं। इन सभी का अधिष्ठान श्लेष्मा ही है।

पूर्वं कप-वस्ति प्रदेश में आध्यान, अरुचि, सूत्र त्याग करने में कब्ट, वस्ति शिर (दोनों वृक्क एवं मूत्र गवीनियां) अण्ड-कोष और शिश्न में वेदना, मन्द ज्वर, ग्लानि मूत्र में बकरे की सी गन्ध का आना आदि अश्मरी के पूर्वं रूप हैं। वातादि दोष के अनुसार वेदना, मूत्र का वर्ण परिवर्तन, सान्द्रता, गंदलापन होता है तथा रोगी कठिनाई से मूत्र त्याग कर पाता है।

सामान्य लक्षण-

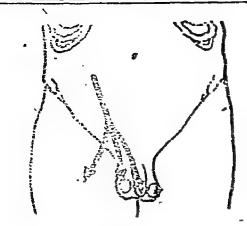
अश्मरी होने पर मूत्रोत्सर्गं के समय मूत्राश्य, श्रोणि तल (सेवनी-Perinium) और मेहन (अण्डकोप एवं शिश्न) में से किसी एक स्थान में पीड़ा, यदि अश्मरी मूत्रमार्गं में भा जाये तो मूत्र की धारा का निरोध, क्विंचत रक्त मिश्रित मूत्र का भाना, अश्मरी के मूत्रमार्गं से हट जाने पर भी मूत्र की धारा का सीधा न गिरकर इधर उधर गिरना, मूत्र का वर्णं गोमेद मणि के समान या गीलोचन के समान रक्तवणें होना, बहुत अधिक गंदला होना, बालू मिश्रित पानी जैसा होता है। भागने, कूदने, फांदने, तैरने, ऊँचे नीचे स्थान पर सवारी में बैठने या घोड़ें की सवारी करने, ग्रीष्म ऋतु में चलने-फिरने से या



लम्बी यात्रा करने से वेदना होती है या वेदना में वृद्धि हो जाती है।

वात, पित्त एवं कफजन्य तीनों प्रकार की अश्मरियां
प्रायः वालकों में होती हैं क्योंकि दिन में सोने से, अपव्यकर भोजन करने से, अध्यक्षन करने से, शीत, गुरु, मधुर,
स्निग्ध बाहार उन्हें प्रिय होने से, वस्ति के या मूल प्रणालियों के छोटा होने से अश्मरी शीध्र ही पैदा हो जाती
है तथा वृद्धि को प्राप्त होती हैं। लेकिन वस्ति के तथा
शरीर के छोटा होने से, वस्ति आदि में अधिक मांस न

् मुञा राजा जिल्ला



चित्र--9 % 9

मूत्र गवीनी के निम्न भाग में अइमरी के अटक जाने पर होने वाले शूल के प्रसार की तीन विभिन्न स्थितियां

होने से बच्चों में अश्मरी को सुखपूर्व कु खींचा जा सकता है या निकाला जा सकता है।

्बड़े पूरुवों से शुक्राध्मरी शुक्र के कारण उत्पन्न होती है। मैथुनरत पुरुप के एकदम किसी कारणवर्श मैथुन से विरत हो जाने, अथवा मैथुनाधिक्य के कारण क्वस्थान से क्षरित गुक्र बाहर न आकर विमार्गगामी होकर वायु द्वारा क्षपर-नीचे या किसी भी पार्श्व में ले जाया जाकर मेढ़ बीर वृषण के सध्य में (मूत्राशय के नीचे शुक्राशय में) एकत्रित होकर गोलाकार बन जाता है तथा वायु वहां पहुँचकर इसे शुष्क कर देता है। यह शुष्क शुक्र ही अश्मरी वन मृतमार्गं को अवश्द्ध कर देता है जिससे मूल का कठि-नाई से बाना, वस्ति में वेदना का होनां तथा कभी कभी दोनों अण्हकोचों में सूजन हो जाती है। गुदा में अंगुली प्रविघ्ट कर जुक्राशय पर ददाव ढालने से यदि अश्मरी छोटी ही है तो वह विलीन हो बाती है। यह नूतन शुकाश्मरी के लक्षण हैं। धर्करा (वारीक रेत जैसी) मेह, खिकता (दावेदार बालू) मेह और भस्मास्य (मृत शुक नामक मूछ रोग) अक्सरी के ही विकार (उपद्रव) हैं। बम्मरी जब बाबु द्वारा छोटे छोटे रेत जैसे टुक्ड़ों में विधक्त हो जाशी है सो उसे शकरा कहते हैं। इसमें अश्मरी के समान ही लक्षण एवं वेदनोयें होती हैं। यदि यह बहुत धारीक हो तो वायु के अनुकूत होने पर (उदित चिकित्सा से) बाहर निकल भी जाती है। शकुरा रोगी में हृदयं भदेश में वेदना (शर्कराष्ट्रमरी वृक्क में होने पर), टांगों

में ग्लानि, जदरश्ल, कम्पन, तृष्णा, वायु का उद्यंगामी होना, रुण का कृष्णवर्ण हो जाना, दुर्वलता के कारण (रक्त की कमी से) रुग्ण का पीलापन, अरुचि और अजीणं आदि होते हैं। यदि अश्मरी वृषक से निष्क्रमित होकर मूत्रमार्ग (मूत्र गवीनी निलका) में पहुंच कर रुक जाती है तो अत्यन्त वेचैनी, जदरशूल, हृदय में वेदना, दुर्वलता, कृशता, अरुचि, तृष्णा, पाण्डु, वमन उत्पन्न करती है।

वस्ति में वायु के अनुलोम होने पर मूत्र प्रवृत्ति भलीप्रकार होती रहती है लेकिन वायु के प्रतिलोम होने पर
वस्ति में मूत्राघात, प्रमेह, शुक्रदोप और मूत्रदोप उत्पन्न
होते हैं। जिस प्रकार से आकाशीय जल को वायु और
अग्नि (विजली) मिलकर कठोर ओला जैसा वना देती है
उसी प्रकार से मूत्राशय में स्थित वायु लग्नि के सहयोग
से मूत्र को (कफ को) पाचित कर कठोर अश्मरी उत्पन्न
कर देती है। जिस प्रकार से नूतन (स्वच्छ) घड़े में
अत्यन्त स्वच्छ जल भी रखे रहने पर कालान्तर में उसमें
कीचड़ उत्पन्न हो जाता है उसी प्रकार से वस्ति (मूत्राशय) में भी निर्मल मूत्र से भी अश्मरी वन जाती है।
चिक्तित्सा—

वश्मरी रोग भयानक है तथा मृत्यु के समान दारण है। तूतन अध्मरी तो औषधि चिकित्सा द्वारा साध्य हैं किन्तु अधिक पुरानी अथवा अधिक वड़ी अध्मरी शस्त्र कमें साध्य ही है। अध्मरी के पूर्वरूपों में स्नेहन कराना चाहिये।

वातज अश्मरी---पाषाणभेद, वक पुष्प, अपामागं, सिरहटा (अश्मन्तक), शतावर, गोखरू, दोनों कटेरी ब्राह्मी सहचर (क्षिटी), खस, गुंजा, श्योनाक, वरुण, सागीन के फूल, जी, कुलथी, वेर, निर्मती, इनके क्वाध में उपकादि गण का प्रक्षेप देकर घृत सिद्ध करे। वातज अश्मरी में स्नेहन, उत्तर वस्ति हेतु इसी घृत का प्रयोग करें। इस वातनाशक गण में पेय क्षारों को, यवागू को, यूप को, क्षाय, दूध और भोजन वनाये।

पित्तज अश्मरी-कृष, कास, सरकण्डा, गुन्द्रा (एरक)
गन्ना की जड़, पापाणभेद, शतावरी विदारी, वाराहीकन्द,
शालीमूल, गोब्बरू, श्योनाक, पाटला, पाठा, मछेछी, झिग्टी,
पुनर्नवा, शिरीय — इनके नवाध में शिलाजतु, मुलेठी, कमलगठ्ठा, खीरा, ककडी, कूष्माण्ड झादि के जीजों के कल्क से
सिद्ध घृत पित्तजन्य अश्मरी की नष्ट करता है।

कफज — वरुणादि गण, गुग्गुलु, इलायची, हरेणु, कूठ, भद्र दाव्यदि, मरिच, चित्रक, देवदारू—इनके क्वाथ में परुपकादि गण का करक दे कर सिद्ध किया गया है। दकरी का घृत कफ जन्य अरुपरी को नष्ट करता है।

करीर, अंकोल, निर्मलीफल, सागीन, कमल के फल (कमल गृट्टा) समभाग लेकर चूर्ण कर इस चूर्ण के समभाग गुड़ मिलाकर गर्म पानी से देने पर शर्करा नष्ट होती है। इसी प्रकार कौंच, ऊंट और गधे की अस्थि, गोखक, मूसली, अजवायन कदम्ब का फूल और सीठ-समान भाग मिश्रित कर गरम पानी से (या सुरा के साथ) पीने से भकरा नष्ट होती है।

गोखरू के बीजों के चूर्ण को मधु के साथ भेड़ के दूध में घोलकर द-१० दिन पीने से बाइमरी नष्ट होती है। अपर कहे गये घृतों के दूव्यों को लेकर (जिस दोष की अइमरी होने उसी घृत के द्रव्य लें) तिल को लकड़ियों -से जलाकर भेड़ के सूत्र में घोलकर छान लें। इसी में गाय बकरी आदि ग्राम्य पशुकों छे गोनर-छीद को जलाकर बनाया गया खार मिलावें और धीरे घीरे पकावें। पकाते समय इसमें ऊषकादि गण का प्रक्षेप और तिकदु (साँठ, मेर्चा, पीपल) मिलादें। यह खार अवमरी, गुरुम और लीहा को नष्ट करता है।

तिल, चिरचिटा, फेला, डाक, जी का क्षार धेड़ के पूज के साथ पीने से शकरा नब्ट होती है। इसी प्रकार गटला और करवीर (कनेर) के क्षार को भेड़ के मूल के साथ पान करने से शकरा नब्ट होती है। गोखरू, मुलेठी, बाह्यी का फरक रे मार्श की मात्रा में २ तीले मेड़ मूत्र के साथ पान. करे। पनवाड़, सहंजना और मांगरा-इनको भेड़ के मूत्र से पियें। त्रिफला या पुनर्नवा ने सिद्ध पूछ (क्षीरपाक विधि से) पूछ पियें।

वीरतर्वादि गण से सिद्ध घृत, दूध, फषाय, यवागू, मोजन आदि का उपयोग करना चाहिये।

यदि घृत, कार, कपाय. दूध, उत्तरवस्ति आदि के ायोग से भी अश्मरी का उपशमन न हो तो उसके लिये गुश्रुत चिकित्सा स्थान सप्तम अच्याय में निम्नवत् शाल्य हमें का उपदेश किया है —

रोगी व्यक्ति का स्तेहन करके वमन विरेचन से दोषों को निकाल कर थोड़ा सा लंधन कराके स्तेहन करके वमन वरेचन से दोषों को निकाल कर थोड़ा सा लंधन कराके

स्तेहन स्वेदन कराके भोजन देवें। फिर बलवान एवं न षवड़ाने वाले रोगी को घुटनों के बराबर ऊंची घौकी पर पूर्वाभिमुख बैठे हुये दूसरे पुरुष (भृत्य) की घोदी में नाभि से ऊपर का भाग रख देवें तथा रोगी के नितम्बों के नीचे कपड़े की गद्दी या तिकया रख कर कमर को ऊंचा उठा कर घुटने और कोहनियों को संकुचित कर एक दूसरे के साथ कपड़े से बांध दें। तत्पश्चात् भली प्रकार स्तेहाभ्यञ्ज नाभिप्रदेश के वाम पार्श्व में मलकर मुट्टी हारा नामि के नीचे दबाये जब तक कि पथरी नीचे न क्षा जाये। फिर मांये हाथ की सर्वनी भीर मध्यमा अंगुलियों में अच्छी तरह तैल या घी चुपड़कर (तथा जिनके नाखून भी अच्छी प्रकार कटे हों और भली प्रकार स्वच्छ हों, अच्छा तो यह है कि रबड़ के दस्ताने पहने हों) गुदा में प्रविष्ट करके सेवनी के साथ साथ ले जाते हुए गुदा और मेहन के वीच में लाकर प्रयास और बलपूर्वक त्वचा में संकोच हुए विना वस्ति को आयताकार शीर सीधा करके अंगुलियों से जोर से दबाये जिससे कि शस्य (अश्मरी) गांठ के समान ऊपर को उठ आये। इस प्रकार अश्मरी के हाथ में आजाने से किसी किसी रोगी की खोखें स्तब्ध हो जाती हैं, वह मूछित हो जाता है सथा मरे हुए के समान गर्दन लटका देता है, चेष्टा रहित होकर मृत्,पुरुषवत दीखता है। ऐसे रुग्णका शल्य क्सं प्रश चाहने वाला वैद्य न करे। लिसमें उपरोक्त लक्षण न हों उसी का शल्य कर्म करें। फिर वाम पार्व में सेवनी से जौ भर वचाकर वगमरी के प्रमाण से शस्त चलाये। कुछ बाचायं सुगमसा के लिये दक्षिण पार्श्व में शस्त्र कमं करने का निर्देश करते हैं। ऐसा प्रशास करे कि अष्मरी ट्टे नहीं या चूरा नहीं हो क्योंकि यदि टूट कर उसका छोटा सा कण भी जन्दर रह जाता है तो कालान्तर से वह पुनः धप्रमरी का रूप ले लेता है। संपूर्ण पथरी को अग्रवक्र शस्त्र से बाहर निकाल लें। रिश्रयों में वस्ति के पार्थ में ही गर्भाशयं रहता है इसिखये इनमें शस्त्र को कपर की ओर धार करके चलाये अन्यथा इनमें मुत्रसावी वण हो जाता है। पुरुष में भी मूत्रमागें में आघात होने पर मूत्र क्षरण होता है। अपमरी ग्रण के विना भिन्न दस्ति फिर नहीं जुड़ती। अंध्मरी कर्म में भी दो स्थान से (ऊपर भीर नीचे) विदीणं हुई वस्ति नहीं जुड़ती। अरमरी व्रण के कारण एक तरफ से विदीण यहित मिल जाती है इस-लिये रोगी जीवित रहता है। - इप्णोदक, झीरी वृक्ष,

मूञा रोगा चिकित्सा

क्षाय अदि उपचार के निरन्तर सेवन करने से तथा गास्त्र के अनुसार छेदन करने के कारण तथा मूत्र की बढ़ाने वाले यवागू गुड आदि खाने से रोगी जीवित रहता है। शल्य (अप्मरी) के निष्कासन के अनन्तर रोगी की गर्म पानी के टब में बैठा कर स्वेदन करने से वस्ति में रक्त नहीं भरता। यदि रक्त भर भी जावे ती पुष्प नेत्रं से बरगद सादि क्षीरी वृक्षों के कषाय (ववाथ) से घी देवें। मूत्रमागं के शोधन हेत रोगी को पेट भर कर गुड़ खिलाये। गरम पिती के टव में से रोगी को निकाल कर वर्ण पर मध् और धी का लेप करे और पंचतृण मूल, गोखरू, कृष्मांड, पापाण भेद आदि मूत्र शोधन द्रव्यों से सिद्ध घृत से मिश्रित यवागु को तीन दिन तक प्रातः सायं खिलावे । तटनन्तर १० दिन तक प्रचुर गुड़ वाले दूध के साथ गला हुआ कोमल भात थोड़ा सा देवें जिससे मूत्र और रक्त का शोधन होवे और वण में आर्द्रता आये। इसके वाद अनार आदि खड़े फल और जांगल मांस रस खाने को देवे। फिर दस दिन तक द्रव स्वेद या स्वेह से स्वेद देवे। तण को वरगद,पीपल, पिलखन, गूलर आदि झीरी बृक्षों के कपाय से घोवे। लोध मजीठ, कमल के कल्क को त्रण पर लेपन करे। इन्हीं में हल्दी मिलाकर तैल या मृत सिद्ध करके जण पर

अभ्यक्त करे। यदि रक्त जम, गया हो तो उत्तर बस्ति देवें सात दिन पश्चात् जय मूत्र स्वाभोविक रूप में आने लो तब वण की कही गईं, विधि से जलाये। मूत्र के अपने मार्ग से आने पर मधुर एवं कषाय गण के द्रव्यों से आस्या-पन, अनुवासन और उत्तर वस्ति देवें। जो शुक्राश्मरों या शकरा स्वतः ही मूलमार्ग में आकर रुक जाये उसे मूलस्रोत में से निकाल दें। यदि इस तरह से स्वतः आकर करी अश्मरी या शकरा प्रयास करने पर भी बाहर न आये तो नाड़ी को चीर कर शस्त्र से या विडिश यन्त्र से निकालें।

सावधानी—१ व्रण के भर जाने पर भी कम से कम १ वर्ष तक तीक्ष्ण व्यायाम, घोड़ा आदि पर चढ़ना, झटके दार सवारी पर चढ़ना बर्जित है।

२. मूत्र संस्थान से सम्बन्धित आठ ममं (सेवनी, गुड़ी वहा मुब्क, गुदा, मूत्र प्रसेक, मूत्रवहस्रोत, योनि और बस्ति) स्थानों को बचा कर शस्त्र कमं करे। मूत्रवहस्रोत के कटने से वस्ति मूत्र पूरित हो जाती है। सुक्वहस्रोत के कटने से नपुंसकता या मृत्यु होती है। मुब्क स्रोत कटने से ध्वजभंग होता है। मूलप्रसेक मे आधात के कारण मूत्र निकचता रहता है। सेवनी और योनि के कटने से वेदना होती है।

* * *

💥 पृष्ठ २७१ का शेवांश 💥

(७) वरुणार्थं लौह—वरुण की छाल और आंवला का चुणें २-२ पल, धाय के फूल ४ तोला, हरड़ का चूणें लौहमस्म और अद्यव भन्म प्रत्येक १-१ तोला अच्छी तरह खरल कर रखलें। माला २ माथी शहद से प्रयोग करने पर विशेष लाभ करता है।

अनुभूत प्रयोग--

(.) तिविक्रम रस २४०मि. प्राम, हजरुलयहूद भस्म प्र ग्राम, स्वर्ण वङ्ग २४ मि० ग्राम, श्वेतपर्पटी ४० मि० ग्रम ग्रुड स्फिटक २४ मि ग्रा०। ऐसी ही माला सुबह दुपतर, ग्राम प्रतिदिन पानी या गहद से दें। अवस्य ही नाम होगा।

- ग्—श्वेत पर्वटी ५०० मि० ग्राम, वेरपत्थर ५०० मि० ग्राम, पुनंनवामण्हर १ ग्राम, प्रवाल भस्म ५०० मि० ग्राम, शुद्ध शिलाजत्वादि लौह ५०० मि ग्राम, १×३ मात्रा सुबह दुपहर शाम अनुपान शहद से।
- (३) गोक्षुरादिगुग्गुल १-१ गोली सुबह दुपहर सार्यं दुग्धानुपान से सेवन करे। अवश्य ही लाभ होगा।

पथ्य वस्ति कर्म, वमन, विरेचन, लंघन, जल में क्रीडा जी, पुराना चावलं, गोक्षुर, अदरख आदि।

अपध्य-मूत्र शुक्त वेगों का धारण, अम्ल रूक्ष आदि चीजों का सेवन न करें।



त्राशय अहमरो

डा'० विजयकुमार वाष्ण्य बी०ए०एम०एस० कटरा वाजार, सहावर-टाउन (एटा) उ प्रव



डा॰ विजय कुमार वार्णिय आयुर्वेद के उदीयमान लेखक हैं, -आपने प्रस्तृत विशेषांक के लिए पांच लेख प्रेषित कर हमें सहयोग दिया है। आप राजकीय आयुर्वेद कालेज पीलीभीत के उपाइान हैं तथा वहां से .B. A .-M. S. उत्तीर्ण कर चिकित्सा के क्षेत्र में विकासमेदु: खतप्तनां प्राणिनामाति नाशनम्' की भावना को लेकर उतरे हैं। आपकी लेखन शॅली को देखते हए लगता है कि आप अति शीघ्र ही लेखकों की गण्यसान्य मण्डली में अपना श्रेष्ठ स्थान वना लेंगे। घन्वन्तरि को आप से वडी वडी आशाएं हैं। -- विशेष सम्पादक

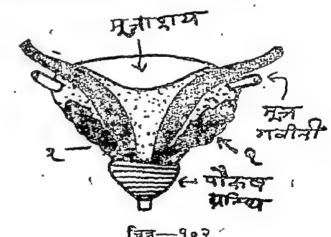
मूत्राशय में पथरी के निर्माण होने को मूत्राणयाश्मरी (Vesical Calculus) कहते हैं।

रोग का नाम तथा पर्याय - संस्कृत नाम-अश्मरी, हिन्दी का नाम-पथरी। लेटिन का नाम - कैलकूलस (Calculus), अंग्रेजी का नाम-स्टोन (Stone),

सम्बाप्ति—मूल में तरलता की कमी एवं घनता की वृद्धि ही अश्मरी का प्रधान हेतु है। सात्मीकरण की विकृति से यूरिक एसिड़ तथा फास्फेंट जैसे पदार्थों की प्रचुरता होने पर उसके कण धीरे धीरे एकत्रित हो जाते हैं जो अन्ततो-गत्वा सम्मरी का रूप धारण करते हैं।

अश्मरी निर्माण क्रिया -

वस्तिगत वायु जब सणुक्र या सिपतं मूत्र को या कफ को सुखादेता है तो वित्ताशय में गोरोचन की क्रमश: उत्पत्ति होती है। उसी प्रकार अण्मरी भी मूत्राणय में उत्पन्न ' होती है। (चरक)



चित्र--- १०२

उदाहरण: - महर्षि सुश्रुत ने जन का उदाहरण लिया है जैसे स्वच्छ जल जब कालान्तर में सूख जाता है उसमें उपस्थित पदार्थों के कारण वंह कीचड़ हो जाती है उसी प्रकार अश्मरी का निर्माण होता है। इसी प्रकार जब मूत्र में यूरिक एसिड, यूरेट्स, आंदजेलेट आदि निश्चित परिणाम न्से जब अधिक होते हैं तो वृक्क गवीनी या मूताशय में कण

Hai eid feldechi

के रूप में बैठ जाते हैं। यही कण आपस में मिलकर बड़ा आकार बना लेता है जिसे अश्मरी कहते हैं।

अश्मरी रचना-

यदि अश्मरी को मध्य से दो भागों से बांटा जाय तो उसके तीन भाग होते हैं। १-न्यूक्लियस २-मुख्यभाग (बाडी) ३-क्रेंस्ट।

- (१) अश्मरी निर्माण किसी पदार्थ को केन्द्र मानकर होता है जैसे म्लेब्सा, जमा हुआ रक्त, पूय, मूत्र द्वारा नृक्क से सूक्ष्म वृक्काएमरी के आने से आदि पदार्थ केन्द्र मन जाते हैं।
- (२) अग्मरी जिस पदार्थ की होती है उसी पदार्थ की मुख्य पदार्थ (बाडी) भी होती है। जैसे—यूरिक एसिड, स्रावजेलेट।
- (३) इसमें भिन्त-भिन्न मात्रा में फास्फेट पदार्थ होते हैं।

अरमरी संख्या-

प्राय: एक ही अश्मरों पाई जाती है ! कभी-कभी एक साय अनेकों छोटी-छोटी सैकड़ों की संख्या में होती हैं। अधिक अश्मरी जब होती हैं तो एक साय टकराने से मालूम हो जाती हैं। कई बार जब अश्मरी दीवाल के पास होती है तब कला से आच्छादित हो जाती है तब उसे बावेज्ठित अश्मरी कहते हैं।

प्रकार—यह चार प्रकार की होती हैं जो निम्न हैं— वायुर्वेद मतानुसार - अर्वाचीन मतानुसार -

- (१) वातिक अश्मरी (1) Oxalate Calculus
- . (२) पैत्तिक अहमरी (2) Uric Acid Calculus
 - (३) इलैं व्लिम सहमरी (3) Phosphatic Calculus
 - (४) मुकाबमरी (4) Spermatic Calculus कारण—
- (१) समय-समय पर पंचकमों के हारा मरीर की मुद्धिन करना वधों कि पंचकमें के हारा मुद्धिकरने से जश्मरी निर्माण के अनुकूल पदार्थ बाहर निकल जाते हैं।
- (२) मिथ्या आहार विहार— इस प्रकार का आहार-. विहार सेवन करना जो अश्मरी निर्माण में सहायक हो ।
 - (३) विटामिन 'ए' रहित पदार्थों को खाना-वयों कि -मही कारण है कि यूरोप बादि देशों ने अवमरी के रोगी कम

है। एशिया में आज भी निर्धनता व्याप्त है जिससे भोजन के ठीक न मिलने से अध्मरी के रोगी अधिक होते हैं।

- (४) जल, अधिक या कम सेवन-कैल्शियम, कैल्शियम कार्बोनेट आदि चूने के लवणों की अधिकता वाले जल का अधिक सेवन अधिक गर्मी में कार्य करना, जल कम पीना चाय आदि मादक द्रव्य का अधिक पीना आदि कारण हैं।
- (५) पुरुपों में अधिक वैसीकल कैलकूलस बन्नों की प्रायः अधिक होती है। रिलयों की अपेक्षा पुरुषों को अधिक होती है। इसका कारण स्त्रियों के मूत्र प्रेक्ष निलक्ष का काधिक चौड़ा होना शीतल देशों की अपेक्षा उष्ण देशों में अधिक पाये जाते हैं।

पूर्वं रूप-अश्मरी के पूर्वं रूप में वस्ति पौड़ा, अरी-चक, मूत्रकुच्छ होता है। जिस व्यक्ति के अश्मरी होती हैं उसका मूत्र मस्त बकरे की सी गन्ध वाला होता है। लक्षण-

प्रायः मूत्राशय अश्मरी के सामान्य सक्षण भिन्न-भिन्न रोगी में भिन्न-भिन्न सक्षण पाये जाते हैं।

वेदना-अश्मरी का सर्व प्रमुख लक्षण वेदनां है विशेष-कर सूदत्याग के भी घ्र बाद ही शिश्न के अग्र भाग पर वेदना होती है। (देखें चित्र १०१)

मूत्र में रक्त मिलना (रक्त मूत्रता)—भी होती है। विधर मिला होने के कारण मूत्र का रंग बदला होता है।

रोगी उस बात को बताता है कि मूत्र त्याग के समय मूत्राणय के रिक्त होने के पूर्व ही मूत्र सहसा इक जाता है। यदि वह शरीर स्पिति को वदले तो पुन: मूत्र साव होने लगता है।

यदि मूत्र मार्ग में अश्मरी अटंक जाती है तो वेदना होती है तथा उसके इधर उधर चले जाने पर अयदा मूत्र के साथ निकल जाने पर शांत हो जाती है।

मूत्र रुक-रुक कर आना—जब अपमरी से अवरोध जल्पनन होता है तो मूत्र धारा विदीण होती है और मूतर थोड़ा थोड़ा करके आता है। यह अध्मरी का निश्चित लक्षण है।

मूल द्वारा अश्मरी के छोटे-छोटे टुकड़े मूंत्र के साथ आना ।-

मुझा शेवा चिलिहरगा

वातादि भेद से लक्षण-

- (१) वातिक—सएमरी की साकृति घनी एवं खर, विषम, कंटिकत होती है। कंटिकत होने से रुधिर स्नाव मधिक होता है। इसमें वेदना अधिक होती है।
- (२) पैत्तिक—अश्मरी की आकृति लम्बाई िलये हुए कुछ गोल होती है। मधु के रंग की तरह होती है। इससे वस्ति में दाह चोष आदि पैत्तिक लक्षण होते हैं।
- (३) श्लैब्सिक— अश्मरी की आकृति वड़ी श्लक्षण, बड़े आकार की और श्वेत रङ्ग की एवं मुर्गी के अण्डे के सदृश्य होती है। यह बहुत कम पाई जाती है।
- (४) शुक्राप्मरी—केवल युवावस्था में होती है जो दवाने पर विलीन हो जाती है। इससे मूत्रकृष्छ्ता Pain in bladder, orchitis हो जाता है।

रोग निर्णय—

निम्न उपाय करें-

- (१) ध्विन परीक्षा—इस परीक्षा के लिए रोगी को लिटाकर सिर नीचे की ओर तथा नितम्ब में तिकया लगा-ऊंचा कर मूत्राव्य की दीवाल खाली होने से लिपकी न रहे इसको दूर करने के लिये कुछ पानी भरदें, तत्पश्चात. ध्विन शलाका विसंक्रमित करके मूत्र मार्ग में डाले तथा उसकी इधर नीचे बुनायें। शलाका जब अश्मरी से टकरायेगी तो धातबीय (Metalic) ध्विन उत्पन्न होगी।
- (२) एवसरे के द्वारा इसमें १५ % सफलता मिलती है।
- (३) सिस्टोस्कोपी इसके द्वारा मूलाशय में अश्मरी को देखा जाता है।
- (४) उदर की ओर से स्पर्श परीक्षा करते समय गुद द्वारा स्पर्श किया जाता है।
- (५) यूत्र परीक्षा से रक्त, पस या भिन्न-भिन्न प्रकार के कण मिलते हैं।

चिक्तिसा—

वाश्मरी की चिकित्सा दो प्रकार की जा सकती है— (१) औषधि चिकित्सा (२) यस्त्र कर्म द्वारा

चिकित्सा सूत्र-

वातज अश्मरी — स्नेह पान उचित पित्त प्रधान में — त्रिदोपज चिकित्सा प्रधान क्फज--वातज-अश्मरी स्नेहन, स्वेदन, निरूहण, उत्तरवस्ति, पुल्टिस अभ्यञ्ज उचित है

वड़ी अश्मरी-- शस्त्र कर्म के द्वारा दूर होती है। विकत्सा--

- (१) शुं ठियादि वदाय—सींठ के मन्दोष्ण कवार्थ में थोड़ा सा शहद मिलाकर देने पर लाभ करता है।
- (२) एलादि चूर्ण—छोटी इलायची के दाने, पापाण भेद, शुद्ध णिलाजीत, छोटी पिप्पली इन्हें. समप्रमाण में लेकर पूर्ण करले। इस चूर्ण को १ से २२ मां से तक लेकर २ तोला भर कड़ने दावल के धोवन के साथ पिथे। लाभ होता है।
- (३) गोक्षुर बीज चूर्णं—गोखरू के बीजों का चेर्णं ४ माशे णहद में मिश्रित कर बकरी के दुग्छ अनुपान करने से लाभ होता है।
- (४) वहणादि क्वाथ—वहण की छाल, सोठ, गोखक को बीज, मूसली, कलथी, कुशा की जड़, काश की जड़, अख की जड़, शरमूल और दर्भ मूल इन सदको समध्रमाण में लेकर कृटकर र तोला लेकर ३२ तोला जल में क्वाथ कर १/६ भाग शेप रहने पर २ तोला शबकर ४ रत्ती यवसार मिलाकर देते से लाभ होता है।
- (४) पापाण भिन्नो रस एगुढ पारा १ तोला, शुढ़ गंधक २ तोला, शुढ़ शिलाजीत १ पल लेकर।

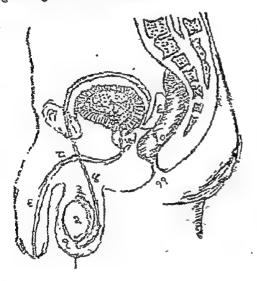
प्रथम पारद और गंधक की कज्जली बनाकर उसमें गुं॰ शिलाजीत मिलाकर अच्छी प्रकार घोटलें। उसके बाद ग्रेंबत पुनर्नवा के स्वरस या वयाय वासा के पत्तों का स्वरस तथा ग्वेत अपराजिता का स्वरस के साथ पृथक पृथक तीन दिन तक भावितकर गोला बनाकर शराबसम्पूट में बन्द कर बालुका यन्त्र में बन्दकर लयुपुट की आंच देकर सिद्ध कर हैं, फिर खरल में पीस कर रखलें, इस रस को २ रत्ती लेकर दें, दूध या कुलबी के प्रवाय री लाभ होता है।

(६) पापणबज्जो रस-शुद्ध पारद १ पल, शुद्ध गंधक २ पल लेकर कज्जली बनाकर श्वेतपुननंवा की जड़ के ववाथ के साथ एक दिन खरल करके शराव सम्पुट में बन्द कर 'भूधर यन्त्र' में सीन प्रहर तक पाक करके, स्वांग-शीतम सम्पुट से सिद्ध कर खरल करे। इस रस को १ रसी लेकर १ मासे गुड़ मिलांकर कुलथी क्वाथ से अनुपान करने पर लाभ होता है।

-भोपांश पृष्ठ ५६५ पर देखें।

GEILGIRINIEIT

मूत्राणय शोध जीवन के लिए खतरनाक तथा बहुत कच्ट वायक रोग है। बस्ति (मूत्राणय) में चाहे कितने ही जीवाणुओं से युक्त या कैसा ही मूत्र बहे कोई भी विकार तब



चिता--- ३०३

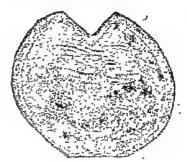
तंक नहीं होता जब कुफ कि मूलाशय पर कोई आधात (Trauma) न लगे या मूत्रप्रवाह बन्द न हो जाय । मूत्रा- श्राय में पूयजनक जीवाणु संक्रमण के प्रतिरोध की वहुत शक्ति होती है इस कारण मूत्राशय शोथ निम्न में से किसी प्रवर्तक कारण पर निर्भर करता है—

कारण-शारम्भ से ही मूलाशय में संक्रमण कम होता है तथा इसका करण मूलाशय में कुछ मूत्र का बचा रहना व मूलाशय का सम्पूर्णतः खाली न होना है।

(१) मूत्राशय की निपुटी (मूत्राशय का मुड़ जाना-बक्रता Diverticulum) मूलमार्ग के निकुंचन, पौरुष ग्रन्थि वृद्धि, वृद्धावस्था में मूत्राशय की निवंतता, विभिन्न स्नायु नाढी विकार जिनसे मूलाशय अकर्मण्य हो मुत्र को

रोकना है। स्त्रियों में सगर्भता, गर्भाशय भ्रंश और सिस्टो-सील के कारण मूल रुका रह सकता है तथा मूत्र प्रवाह के लिए कैंयिटर डालने से ही संग्रमण सहज में पहुंच जाता है।

(२) आगन्तुक शत्य — जैसे मूत्राशय की या बाहर से प्रविष्ट वस्तुर्ये (कैथिटर) आदि



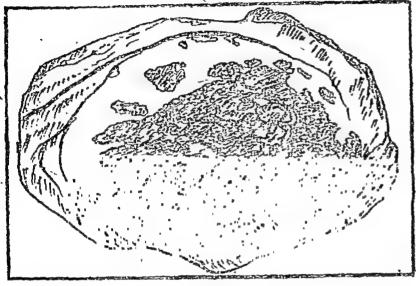
चित्र—१०४
मूलाशय का अर्जुद-इससे संक्रमित
होकर एक छोटा अर्जुद सोर
उत्पन्न हो रहा है।

- (३) मूत्राणय के अर्बुद पैपीलोमा, कारसीनीमा विशेष कर अर्बुद में परिगलन और वणोत्पति होना।
- (४) मूत्राणय शोथ प्रायः किसी न किसी प्रकार का. जीवाणु मिलता है पर मुख्यतः
- ं (क) मूत्र के अम्ल होने पर—वैसिलस कोलाई, क्षय-रोग का और गोनो कोकाई होता है।
- (ख) स्वभाविक मूत्र में वैसीलस कोलाई और स्ट्रेप्टी-कोकाई तथा—
- ्रातिय मूत्र में स्टैफिलोकोकाई और वैसीलस प्रोटियस (B. Proteus) होता है।
- (५) समीपवर्ती अवयवों से विशेषतः गर्भाशय ग्रीवा शोध से, वृहदान्त्र या गुदा में नई वृद्धि होने से, गुदा में भगन्दर होने से भी संक्रमण सम्भव है।

The Roll Property

रोग प्रकार - मूत्राशय शोथ मुख्यतः दो रूपों में मिलता है तीज और चिरकारी।

तीन मूत्राणय शोथ (Acute Cystits) — मूत्र का बार-बार त्याग दर्व के साथ होता है (मूत्रं शकुन मुञ्चित मेहते च) तथा मूल त्याग करने के बाद भी नुरन्त फिर मूत्र



्चिल-१०५ तीज मूर्ताशय शोय (रक्तस्राव से युक्त तीज शोध प्रदर्शित किया है)

त्याग की इच्छा रहती है। शूल के कारण वस्ति के त्रिकीण (Trigore) में अधिरक्तता और व्रणशोय होता है। मूत्र में बल्पमात्रा में पूय आती है तथा रोग की ज़गता में भूव में रक्त भी आता है। पहले मूत्र अम्ल रहता है परन्तु जल्दी ही कारीय हो जाता है। नाभि के निचले भाग में दर्द तथा स्पर्श की असह्यता रहती है। यदि मूलागय की शोथ का कारण अश्मरी हो तो दर्द मांत नहीं होता अपितु मूत्र त्याग के पीछे और भी तेज हो जाता है क्योंकि मूत्राशय की मित्तियां सूँजी होने के कारण सीधे रूप में अश्मरी के सम्पर्क में जाती हैं। मूत्रमार्ग के हुन्त होने के कारण यह रोग स्तियों में भधिक होता है। साधारणतया इसका कारण एस्कीरिया कोलाई होता है। स्ट्रिप्टो कोकस फिकेलिस स्टेफिलोकोकस ओरियस, प्रोटियस वलेरिस स्यूडोमोनास, पायोसीनिया-इन सबसे रोग उत्पन्न हो सकता है। बस्ति की श्लेष्मकला जाल हो जाती है तथा शोथ के कारण फूल जाती है तथा उसमें स्थान स्थान पर ज़ण वन जाते हैं। शरीर भी बस्वस्य रहता है। इस रोग में ज्वर भी हो जाता है।

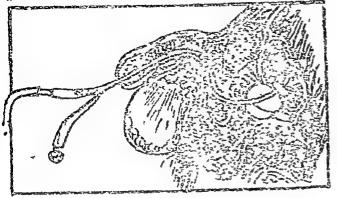
खीणं मूत्राशय शोथ (Chronic Cystitis)—तीववृक्तशोथ व तीव्रमूत्राशय शोथ से भी हो सकता है अथवा
स्वतः शन-शनैः प्रारम्भ होता है। प्रायः यह पूयजनक जीवाणु
जन्य होता है और अवरोध अश्मरी, अर्बुद विपुटी अथवा
शल्य से सम्बन्धित रहता है तीव्रमूत्राशयशोथ से लक्षण
मृदु होते हैं। मूत्र में पूय बड़ी मात्रा में आती है और मूत्र
त्याग को अधिकता से मूत्रमार्ग और मूत्राधार में वेदना, स्वास्थ्य का ह्रास आदि लक्षण होते हैं। मूत्रक्षारीय होता है
इसमें श्लेष्मा (Mucus) वड़ी मात्रा में रञ्जू रूप होता
है। मूत्रक्षारीय होता है जो स्ट्रिप्टो स्ट्रिफलोकाई प्रोटियस
वल्गेरिस के कारण होता है तथा ऐस्कीरिया कोलाई
संक्रमण होने पर मूत्र अम्लीय होता है। ददं तथा
अन्य लक्षण तीव मूत्राशयशोथ की अपेक्षा कम होते हैं।

सापेक्ष निदान (Differential Diagnosis)-मूत्रा-णय शोथ के अन्य स्थानीय रोगों के लक्षण भी मिलते हैं अतः विभेदक परीक्षा द्वारा निदान करना चाहिए—

- (क) मधुमेह में बहुमूत्रता होती है पर बहुमूत्रता के साथ वेदना नहीं होती ।
- (ख)पौरुष ग्रन्थि वृद्धि में राजि में मूल बार-बार होता है पर उपद्रव नं होने पर मूत्र स्वच्छ और पूय कोशि-काओं से रहित होता है।
- (ग) मूबाणय अश्मरी से वेदना और मुहर्मुं हु मूत्र त्याग होता है किन्तु उपद्रव रहित रोगियों में मूत्र निर्जीवा- णुक होता है। मूत्राणय में अश्मरी होने से उत्पन्न मूत्राणय गोथ में सामान्य मूत्राणयणोथ के जक्षणों के साथ में मूत्र त्याग की समाप्ति पर बहुत तीन्न वेदना होती है जो कि पीछे कुछ समय तक रहती है। वस पर चढ़ने या ऊँचा चढ़ने पर ददं बढ़ जाता है (धावन लंघन प्लावन, पृष्ठयानाच्य- गमनैश्च रक्त वेदनं भवति) मूत्र में प्रायः रक्त आता है (क्षोभात्सते मूत्रयतीह सास्त्नं) कई रोगियों में मूत्र इतना अल्प आता है कि अणुवीक्षण यन्त्र से पता चलता है।
- (घ) मूत्राक्षय में नई वृद्धि या व्रण से उत्पन्न मूत्राशय शोय में विटण भाग में दर्द होता है। मूत्र त्याग करने में और चलने फिरने से इस दर्द का कोई सम्बन्ध नहीं होता। मूल में कैंसर के सैल्स व क्षय के जीवाणु होने से सिस्ट-स्कोप या रेडियोग्राफ से निर्णय किया जाता है।

gai giui faigaczni

चिकित्सा—यंदासम्भव कारण का पता लगाकर उसको दूर करना चाहिए। रोगी को शैय्या विश्वाम तथा तरल



वित्र १०६—मूत्राशय में स्वयं ही स्थिर रहने वाला कैथीटर इस प्रकार लगा रहता है।

पदार्थं यव जल (वाली वाटर) यवमण्ड देना चाहिए।
मत संवर्धन (Urine Culture) और मुग्राहिसा की जांच
कराकर कारण के अनुसार चिकित्सा प्रारम्भ करती
चाहिए। मूत्रावरोध या अन्य प्रवंतक कारणों को दूर
फरना चाहिए। मूत्र के अम्लिक होने पर क्षारीय मिश्रण
(Alkaline Mixture) व आयुर्वेदीय यवक्षार पानी से
दिया जाता है। ऐस्कीरिया कोलाई के लिये सल्फा-डियाडीन, स्ट्रिप्टोमायित अग्रवा फ्यूर'डैन्टिन दिये जाते हैं।
कोकल संक्रमण में पैनीसीलीन, हैक्जैमीन या सोडियम
ऐसिड फोस्फेट देते हैं। वैशीलक कोलाई, वैसीलस प्रोटिस
वलोरिस पर क्लोरोमायसीटीन देने का तथा एकीफ्लोविन

से धोने का बच्छा प्रभाव होता हैं। दर्द के लिए माफिर की वर्ती का प्रयोग व गर्म पानी में विठाना चाहिए मर्करी बीवजीसायनाईड १/४००० से १/५००० से धोन पीछे लवण के पानी से धोवें। मूत्राशय को गर्म पानी में वोरिक एसिड से घोना भी उत्तम है। खाचार्य चरक में वाग्भट्ट ने भी वस्ति चिकित्सा देने का निर्वेश दिया है— कीरेण वस्ति मधुरीपधै: स्यम्तेलेन वा स्वाद्रफलोत्यितें

-चरक

विस्तिक में चामी सणं विशेषणोत्तरं विस्तः — अच्टाङ्ग संग्रह आयुर्वेद में — मूत्राश्यशोध की अवस्था का समावेश सूत्रकृष्ट या मूत्राघाद अवस्था में होता है। वेदनाशमनायें यातहर तेल अभ्यंग, स्वेद और उपनाह करना चाहिए। दशमूत, एरण्ड, बला, पुनर्नवा, णतावरी कुलथी, जौ इनको पीने के लिये देने का विधान है। मूत्र में जलन होने पर तृणपंचमूल, गोखरू, णतावरी, विदारी, कसेरु का क्वाथ, मधु और धकंरा के साथ देते हैं। मूत्र प्रवर्तन के लिए यवसार, श्वेतपपंटी सीवर्चल के साथ या इलायची बीज के साथ प्रसन्ना व सुरा से देने का विधान है— श्वीराम्बुः मद्येसुरसैंः। खीरे कराड़ी को बीज इनको चावलों के पानी से पिलावें।

कुशावलेह, गोक्षुराद्यवलेह, गोक्षुरादि गुग्गुल, वज्र-क्षार, श्रो तपपंटी, विदारीषृत वृहद्वातचिन्तामणि आदि का अन्तः प्रयोग तथा उशीरादि तेल नाभि के नीचे सारे भाग में सामने और पीछे मलना चाहिए। दूध का पथ्य दें।

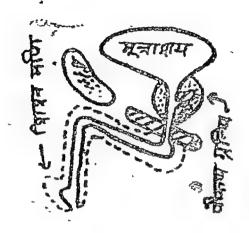
পুসাহার জা এইবা (Tuberculosis of Urinary Bladder)

मूत्राशय का यहमा सदैव मूत्रपण के अन्य रोगों के संक्रमण द्वारा होता है। पुरुषों में जननेन्द्रियों, पौरुषप्रन्थि और वृनक संक्रमण से होता है। सर्वप्रयम गवीनी द्वार पर गोथ होकर फिर वहां यहिमकायें (Tubercle) सनती हैं जिनके फूटने से वण वनते हैं। सतजन्य गवीनी-द्वार संकुचन से गौल्फीछिद्र (Golfhole) गवीनी द्वार संकुचन से गौल्फीछिद्र (Golfhole) गवीनी द्वार वनता है। दीर्घकालिक रोगियों में मूत्राशय भित्ति की तन्तुमयता (Fibrosis) होने से मूत्राशय की मूत्रधारण समता घट जाती है।

लक्षण-मूत्राणय में क्षोभ (Irritation) से मूत्रस्याग आवृत्ति बहुत बढ़ जाती है। आगे चलकर वेदना तथा मूत्रकृच्छता भी होने लगती है।

यक्सा के अन्य लक्षण—शरीरभारक्षय, रात्रिस्वेद बौर ज्वर आदि लक्षण प्रकट होते हैं। भूत्र में क्षय के जीवाणु न मिलने परें भी गिनीपिंग परीक्षण धनात्मक होते हैं।

चिकित्सा—प्रतिक्षय रसायनी चिकित्सा लाभदायक है। प्राथमिक यक्ष्मा क्षत का अपहरण क्षय ग्रस्त वृक्क का जिस तरह वृक्कोच्छेदन किया जाता है उसी तरह अपहरण आवश्यक है। मूत्राशय में धारिता में विशेष हास पर शेपांत मूत्राशय प्लास्टी (Heocystoplasty) करनी पड़ती है। ×



चित्र--- १०७

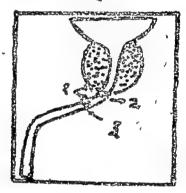
- (१) जन्मजात सहज निकोचन (Congenial Stricture)। यह पौरुषपंथिस्य मूलमार्ग में कपाटिकाओं की उपस्थिति के कारण हो सकता है।
- (२) अभिवातज निकीचन (Traumatic Stricture) यह अधिकतर कोन्द्रीय मूत्रमार्ग में होता है। निकोचन प्राय: एक होता है।



चिल-१०५

सड़क पर आधात लगने की एक विशिष्ट स्थित जिसकें कारण कि मूत्र प्रसेकनिका का विदरण प्रायः वित्र क्रमांक १ % है स्थलों पर होता है और बाद में जग भरते पर निक्का में निकोचन चित्र क्रमांक ११२ के अनुसार हो जाता है।

(३) गौनोमेह जन्य या शोधज निकोचन , cocal inflammatory)—केन्द्रीय मूत्रमागं में स्थित होते हैं। केन्द्र सबसे निचंला भाग होने के कारण वहां पूय एकत्र हो जाती है। शोथज निकोचन वलयाकार, लगाम के समान होते हैं। यह पूर्ण निकोचन भी हो सकता है और अपूर्ण निकोचन भी पूर्ण निकोचन द्वारा मूत नहीं निकलता, अपूर्ण होने पर निकल सकता है।



चित्र--१०६

मूत्र प्रसेक नलिका के विदर के सर्वाधिक सम्भावित .

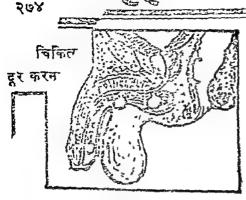
9. विकोणीय बन्धन, हिं२. श्रीणि के अन्दर विदर

३. शिक्ष्म मूल स्थल

लक्षण-मूर्त त्याग में कठिनाई होती है जो ते घोरे बढ़ती जाती है। मूत्र की घार घोरे-घोरे पतली है, जाती है, दो घाराएं निकल सकती हैं। मूत्र त्याग समय बल लगाना पड़ता है। मूत्र त्याग के बाद बूंद-बू ट्यकती रहती हैं।

निदान — मूं ला त्याग में कठिनाई छोर मूत्र की ध के पतले हो जाने का इतिवृत निदान में सहायक हैं एक्सरे द्वारा मूलमागं के चित्रण से निकोचन का नद हो जाता है।

चिकित्सा—वूजियों से विस्फारण (Dilatatic with bougies)—ही मुख्य चिकित्सा है। कूटमा (False Passage) न वन जाय एतदर्थ मध्यम क क



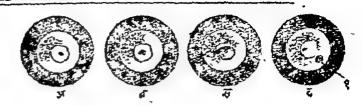
चिल-- ११०

[त्रप्रसेक निषका के समीपस्य प्रायः होने वाली विद्रिधयां जोकि मूत्रप्रसेक निलका में फूटने तथा उनके त्रणपूरित होने के प्रश्चात् निलका में निकोच उत्पन्न हो जाते हैं।



इनके कारण पूर्यमेह उत्पन्न होकर पश्चात् मूल-मार्ग निकोचन हो जाता है ।

'वूजियों से प्रारम्भ करते या पहले पतली कूजी प्रविष्ट्र जाती है। मूलमार्गदर्शी (Urethroscope) द्वारा ली वूजी प्रविष्ट की जासकती है। निकोचन का विस्फारण गा बल लगाये धीरे-२ करना चाहिए। क्योंकि उद्देश्य कोचन को चौड़ा करने का है न कि उसकी फाड़ देने । प्रत्येक विस्फारण के बाद कैथिटर, ज्वरं की रोकने लिए पेनिसिलिन या स्ट्रिप्टोमाइसिन का इन्जेक्शन ग देना उदित है।



चित्र---११२

मूलप्रसेक निका दर्शक यनत हारा देखी गई
मूलमागैनिकोचन की विभिन्त स्थितियां
स्र बारीक निकोचन ब—सामान्य प्रकार
का संकोच स—ऊपर की ओर का लटकने
वाला संकोच द—निकोचन के साथ एक
और कृतिमनिका बन गयी है जो
नं० पै से प्रदिशत है।

उच्छेदन-नधु निकोचन का उच्छेदन करने के बाद सार्ग का पुनर्निर्माण सम्भव है।

नाम्यन्तर मूलमार्ग छेदन (Internal Urethrotomy)—यूरेयोटोम यन्त्र से कड़े नौर नम्य निकोचन को विभक्त कर पश्चात् वूजियों से विस्कारण करें।

वाह्य मूत्रमार्ग छेदन (External Urethrotomy)—क्लीलहाउस का शल्यकर्म किया जाता है जिसमें निकोचन को मूलाधार में वाहर से विभक्त किया जाता है और कणिकाओं से उसका आरोहन होता है।

जोहनसन का यूगमार्ग संघान या प्लास्टी—निकीचन के विस्तृत होने पर यह उपयुक्त शल्यकर्म है। यूगमार्ग की अभ्युदर भिक्ति को निकोचन पर—तथा उसके कुछ आगे और पीछे तक विभक्त कर दिया जाता है और उसकी त्वचा को सावधानी से सी दिया जाता है जिससे अधोसूग मार्गता की दशा उत्पन्न हो सकती है। तीनमास वाद दैनिस बाडेन की अधोसूगमार्गता के सुधार की विधि से यूगमार्ग का पुननिर्माण करना होता है। इसके परिणाम उत्तम होते हैं और रोगी पुनः पुनः विस्कारण से वच जाता है।

(शल्य विज्ञान की पाठ्य पुस्तकृ से सामार)

EEEEIPUAT AMARIA

आयुर्वेद वाचस्पति कविराज डा॰ गिरिधारीलाल मिश्र ए॰एम॰बी॰एस॰, साहित्यायुर्वेद रतन विशेष सम्पादक—'धन्वन्तरि मूत्र रोग चिकित्सांक' अधीक्षक चिकित्सक—के दारमल स्मारक आयुर्वेदिक धर्मार्थं चिकित्सालय, तेजपुर (असम)

मूत्राशय मांसपेशीकृत अङ्ग है जो मूत्र संग्रह का काम करता है। इसमें ४००-५० मि.लि तक मूत्र को घारण करने की क्षमता होती हैं। मूत्र त्याग के पश्चात् रिक्त हो जाने पर यह त्रिकोणांकार होता है और श्रोणि के भीतर रहता है। मूत्राशय की रचना का वर्णन प्रथम खण्ड में आ चुका है अतः पुनः विषय का पिष्टपेपण न करते हुये मूत्रत्याग की क्रिया और उसकी असंगतियों पर प्रकाश डाला जा रहा है।

मूत्र त्याग क्रिया — मूत्राणय का कार्य मूत्र संग्रह करना है। मूत्राणय के भर जाने की संवेदना अभिवाहीं तिन्त्र-काओं द्वारा मेठरज्जु में और वहां से मस्तिष्क में पहुंचती है। मूत्र त्याग की सुगमता न होने पर वहां से मूत्राणय के णिथिलन के लिए संवेग जाते हैं। और मूत्राणय को रिक्त करने के लिए मस्तिष्क के संवेग मेठरज्जु में होते हुए परानुकम्पी तिन्त्रकाओं में पहुँचते हैं और निस्सारक पेणी का संकोच और सवरणी का णिथिलम होने से मूत्र त्याग होता है। मूत्र त्याग एक प्रतिवर्त क्रिया है जिसका निय-न्त्रण मेठरज्जु के दूसरे, तीसरे और चौथे तिक खण्डांण में स्थित केन्द्र द्वारा होता है। मेठरज्जु के आघात में यह नियन्त्रण नष्ट हो जाता है किन्तु मेठरज्जु की स्तब्धता के अन्त होने पर त्रिक केन्द्रों द्वारा नियन्त्रण पुनः स्थापित होता है।

मूत्र त्याग की असंगतियां-

मस्तिष्क और मेरुरज्जु के कई रोगों में मूत्राशय का कार्य अस्त-व्यस्त हो जाता है। विशेषतया (१) टेवीज हार्से लिस और प्रमृत काठिन्य में (२) तथा मेरुरज्जु के आधावों और (३) अयुत मेरुदण्ड में ऐसा होता है।

- (१) प्रसृत काटिन्य में मूत्र त्याग नार-वार होता है किन्तु मूत्र त्याग प्रारम्भ करना कठिन होता है औं समाप्त करने के प्रश्चात् भी बूद-वूद निकलता रहता है
- (२) मेरुरज्जु के आघातों से मूत्राशय को रिक्त करें वाली तन्त्रिकाओं का घात होता है जिससे मूत्राशय-निष्क्रिय विस्फार होता है और आप्लावी मूत्र असं (Over flow Incontinence) हो जाती है।
- (३) अयुक्त मेरदण्डु से कभी कभी पही अवस्था हे विस्त असंयति (Incontinence of urine) कई कारण होते हैं-चृद्धों में प्रमस्तिष्क घनास्ता, मूत्र शय की संवरणी का आघात जैसाकि पुरस्थोच्छेदन पश्चात् हो जाता है। स्त्रियों में गर्भाशय फ्रांश सिस्टोसील (Cystocele), मेरदण्ड तथा प्रमृत क। की विप्तावित दशाओं में मूत्र के अवघारण के अप्तूर्ण के विप्तावित दशाओं में मूत्र के अवघारण के अप्तूर्ण पर नियन्त्रण नहीं रहता है। शिकायत करे कि मूत्र निरन्तर टपकता रहता है। शिकायत करे कि मूत्र निरन्तर टपकता रहता है विद्या माग के दवाने से या मूल शलाका के गुजरने मूलाशय खाली दिखाई, तो वास्तविक मूल का न को होता है और मूल त्याग वार वार करना पड़े, थोड़ी भी रोका न जा सके तब मूल का बार वार क (Increased Frequency) होता है।

मूत का न रकना—यह या तो वास्तविक मूत्र न रकना होता है अथवा मूत्र का वार-वार आना होता जब मूत्र स्वयं ही बनने के साथ बूंद-वूंद टपकता रहत इसेके साथ मूत्र अतिस्राव या अलीकमूत्र के न रकने सबस्था को नहीं मिलान। चाहिए जो कि मूत्र के रकेर Har fill falcocall

से मूत्राशय के अत्यधिक फैलने के कारण मूत्र का अतिस्रावे होता है—

मूत्रजठर-चिरंधारयतो मूनं त्वरया न प्रवर्तते।

मेंहमानस्थ मन्दं वा मूत्रातीतः स उच्यते ।। अलीक रूप में मूत्रू का न रुकना (False incontinence)—इसमें मूत्राशय भरा रहता है और शलाका प्रवेश से आराम मिलता है ।

मूत्र का बार-वार थाना—रोगी मूत्र को रोक सकता
है परन्तु मूत्र त्याग की इच्छा बहुत प्रवल होती है तथा
यह बार-वार और कई बार इतनी प्रवल होती है कि
मूत्र त्याग के लिए जाते-जाते कुछ वृंद कपड़ों में निकल
जाती हैं। प्रत्येक व्यक्ति का मूत्र त्याग का समय मिन्नभिन्न होता है। साथ ही ली हुई द्रवहुँकी मात्रा पर निभंर
करता है पर साधारणत्या ३-४ घण्टे के पीछे मूत्र आता
है। पुरुषों की अपेक्षा हित्रयों में यह समय लम्बा होता है
और वे द-१० घंटे तक मूत्र को रोक सफती हैं—

पारतन्त्रयाद वैशारकात्सततमुपचारानुरोधात् चरक् भय से मूल का निकलना किसी भी प्रकार का सहसा मानसिक क्षोभ, उत्तेचना, क्षोध, भय, हुंसना, खांसना भी मूत्र को प्रहृत कर देता है।

मूत्र का वार-वार आना कई कारणों से होता है—

वर्वप्रथम मूत्र की रात और दिन की मूत्र की मात्रा को देखना

वाहिये। मधुमेह, उदक्षमेह, या चिरकालीन वृष्क शोथ

र्मा के बिधिक थाने से मूत्र का वार-बार आना होता

! । कुछ व्यक्तियों में उदक्षमेह, मधुमेह सामान्य रोग है

जनमें मूत्र वार-वार आता है पर वृद्ध व्यक्तियों में चिर-

कालीन वृक्त शोथ और पौरुप ग्रन्थि की वृद्धि अधिक सम्भावित कारण है। पौरुपग्रन्थि की वृद्धि की ओर.तब ध्यान जाता है जब रोगी को मूत्र त्याग के लिए रात में बार बार जाना पड़ता है। दिन-रात का मूत्र मापा जाये और फिर कारण समूहों पर विचार किया जावे तो निम्न कारण होते हैं—

- (१) स्थानिक विकाभ-मूनाशय में विकाभ हो जिसका कारण मूत्रप्रिथ वृद्धि जो प्रायः वृद्धावस्था में सामान्य कारण है। वृक्क का विक्षोध जो कि अध्मरी, क्षय वृक्क वस्ति शोथ के कारण होता है।
- (२) चिरकालीन तृबक शोथ, ज्ञण होना, अर्बुद अश्मरी, औक्जेलिक एसिंह का आना, गर्भाशय का द्वाप मूत्राशय पर पड़ना, मूल में वहुत अम्लता होना।
- (३) मूलाशय में मूच का घट्ट बनना, कृमि, निरुद्ध प्रकश, अशं, भगन्दर गुद्ध श, वस्तिभाग की शोय, मूत्रा- शय और मूलमार्ग के वीच में स्कन्दि (Carbuncle) प्रायः औरतों में यह कारण ध्यान में नहीं रहता।
- (४) निरन्तर बने रहने वाले कारण—इस अवस्था के साय बहुत कम होते हैं खैसे हिस्टिरिया, कामवासना की अधिकता, जब कारण इट भी जाते हैं तब भी कई दिनों वार-बार मूत्र त्याग की आदत बनी रहती है।

मूत्राषधारण (Retention of urine)—इसका अमूत्रता से भेद करना चाहिए कई रोगों में जैमें-मूत्रमागं अश्मरी, पौरुषग्रन्थिषृद्धि, मूलमागं निकुञ्चन, अर्बुद, अञ्ज-धात आदि में यह उपद्रव रूप होता है तथा रोग की प्रमुख चिकित्सा होने पर यह उपद्रव स्वतः शांत हो जाता है।

निशास्त्र असंयति [(Nocturnal Incontinence)]

यह अवस्था प्राप्तः वच्चों में मिलती है। बच्चे बहुधा ति को विस्तर भिगो देते हैं। मूल त्याग के नियन्त्रण शक्ति बच्चे में सामान्यतः २-२॥ वर्ष की आयु तक जाती है कितु कभी-कभी ऐसा नहीं होने से बच्चा त में विस्तर पर निद्रा में ही मूत्र त्याग करता है और दे इसकी चिकित्सा न की जाय तो किशोरावस्था व युवा-स्था तक यह स्थिति बनी रह सकती है।

कारण—(१) बहुधा बच्चों में इसका कारण मान-

सिक उत्तेषना है। ऐसे वालक का मानस संस्थान कुछ निर्वल तथा विक्षोभशील होता है। इस प्रकार के बच्चे प्रायः मोटे और मन्द बुद्धि वाले होते हैं तथा अभिभावकों द्वारा दण्ड दिये जाने पर भयभीत रहते हैं और रात में मूल त्याग करते हैं।

- (२) उदर में शिम हों तो भी (थ्रीडवमं, सूत्रकृमि) शय्या में मूत निकल जाता है।
 - (३) मुत्राशय ये अश्मरी, मूत्राशय शोध, शिश्नमुण्ड-

शोध, वृवक का यद्या निरुद्ध प्रकश, मार्ग द्वार में बण, फास्फेटमेह, जीवाणुमेह, सूत्रकृमि संक्रमण, गवीनी की की सहज अस्थानता आदि कारण भी हो सकते हैं।

चिकित्सा — इस रोग के ठीक होने की वहुत अधिक सम्भावनः है। चिकित्सा बहुत कुछ कारण पर आश्रित है। मूत्र को रोकना एक आदत है जिसे वचपन में उत्पन्न किया जा सकता है। स्थानिक कारण और प्रत्याविति कारणों को दूर करना चाहिए। बच्चों को दण्ड नहीं देना चाहिए। अवसर बच्चे अपनी कठिनाइयों के लिए चिन्तित रहते हैं जहां इसकी चिन्ता या वैचेनी बच्चे को बहुत हो वहां पर बच्चे को स्नेह से समझाना चाहिये उसे इसके लिये भत्सेना या दण्ड नहीं देना चाहिए। बच्चे के मन में यह विश्वास जमाना चाहिए कि यह अवस्था वद हो जायेगी। उसे एक तिथि पट देना चाहिए तथा उसे निर्वेश देना चाहिए कि जिस दिन शैंग्या मूत्र न हो, उस दिन उस पर निश्वान लगावे तथा उसे इसमें सफलता मिलने पर पारनोषिक देना चाहिए।

बच्चे को सोते समय दूध देना वन्द कर देना चाहिए, सायंकाल के पीछे पानी पिलाना वन्द कर देना चाहिये तथा रात में सोते समय मूत्र त्याग करवा कर सुलाना चाहिये तथा रात में भी षच्चे को उठाकर मूत्र करवा देना चाहिए एवं वस्त्वे के मानस संस्थान की निजंतता को दूर करने को जीपधियां देनी चाहिए।

मूलाशय की हिपुटी

मूत्राशय की विपुटी उसके पेशीस्तर के किसी दुवंल स्थान द्वारा श्लिष्मिक कला की हर्निया होती है जिससे एक कलाष्ट्रत थैली बाहर को निकल जाती है। सहज विपुटी भी हो सकती है, कई छोटी छोटी विपुटी भी चिरकार अवस्था की दशा में वन सकती हैं जैसे पुरस्थ वृद्धि में। विना अवरोध के भी एक बड़ी विपुटी हो सकती है और बढ़कर मूत्राशय के समान आकार की हो जाती है। ये प्रायः बालक अवस्था में उत्पन्न होती है और बढ़कर साकार में मूत्राशय के समान हो सकती हैं।

तक्षण - कभी कभी मूत्र त्याग के अधिक होने से मूत्र त्याग कष्ट और मूत्र अवधारण हो जाता है। मूत्रा-शय शोध और निपुटी में अश्मरी वन सकती है। विपुटी आयुर्वेद में — सारस्वत चूर्ण, आह्यवच, शंबर्ह पुष्पी, सुवर्ण गोघृत मधु का प्रयोग इसके लिये करते हैं। कुमार-कल्याण रस, स्वर्ण सिन्दूर, अश्वगन्धाघृत, का प्रयोग भी इसमें करते हैं।

उदर में कृमि हों तो कृमि नाशक योग देने चाहिए-नागार्जुन रस, कृमिध्न चूर्ण व कमीला, खुरासानी अज-वायन, विड्यू चूर्ण का प्रयोग इसके लिए प्रशस्त है। राई का चूर्ण बना लेना चाहिए और भोजन के बाद एक छोटी चम्मच पानी से देना चाहिए। सोते समय तिल का खड्डू खाने को देना चाहिए।

पेटेन्ट आधुनिक बौषिधयों में Amitriptilin (Sarotina) १० मि. ग्रा. एक गोली रात को वैते हैं या इस दवा से बने Tryptizal syrup के २ चम्मच सुबह शाम २ वार देते हैं। Tr. Belladonna 3ml. दिन में ३ वार दें या Probanthine 15 ml रात को एक वार या दिन में २ वार देते हैं। Ephedrine (इफेड्रीन) भी इसमें काम करता है। इसका सूचीवेध १ दिन छोड़कर 1 c.c देते हैं। आयुर्वेद का शूलान्तक इन्जेक्शन (मार्तण्ड) भी इसमें लाभ करता है। 1 c. c. इन्जेक्शन सायं-काल देना चाहिये। पहले ३ दिन लगातार दें। फिर १ इन्जेक्शन सप्ताह में तथा फिर तीन सप्ताह तक प्रति सप्ताह १-१ इस प्रकार कोर्स देने से आराम हो जाता है।

(Diverticulum of Bladder)

से मूत्राशय में छिद्र के संकुचित होने के कारण मूत्र का पूर्ण त्याग नहीं होता।

निदान—सिस्टोस्कोपी या सोडियम वायोडाइड विलयन के मूत्राणय में भरने के पश्चात् मूत्राणय का एक्सरे चित्र लेने से निदान का निश्चय किया जा सकता\है।

उपद्रच-मूत्राशय शोध, अश्मरी निर्माण, वृनक संक्र-मण, जलापन्छता और मृत्राशय के फैंसर आदि होते हैं।

चिकित्सा चिरकारी खबरोध संबन्धित विषुटियों की चिकित्सा अवरोध की चिकित्सा के अतिरिक्त और कुंछ नहीं है। विषुटियों के जीतर उपस्थित अपमरियों को अभिजधन मूबाजय चेक्किन करके निकाल देना चाहिये। वड़ी विषुटियों का जिनमें मूब भर जाता है जहां तक सम्भव हो पयुंदर्या वाह्य उच्छेदन उचित है।

सूत्रमार्ग और मूत्राशय की जन्मजात बिकृतियां

विशेष-सम्पादक श्री गिरिधारीलाल मिश्र

- (१) अधिमूत्रमार्गता (Epispadias)—शिश्न के पृष्ठ तल पर एक विबर में खुला हुआ मूलमार्ग होता है जिससे मूत्र त्याग होता है। इस विकृति को सुधारने के लिये प्लास्टिक सर्जरी का उपयोग किया जाता है।
- डूप्ले (Duplay) शस्त्रकमं द्वारा किनारों का उच्छेदन करके उनको एक कैथीटर पर मिलाकर सी दिया जाता है जिससे मूलमार्ग का स्वरूप सन्तोपजनक हो जाता है। इसके साथ विकृत मूत्राशय भी होने पर गवीनियों का श्रीण वृहदान्त्र में प्रतिरोपण किया जाता है।
- (२) अद्योमूत्र मागंता (Hypospadias) अद्यिम्त्र मागं की अपेक्षा यह विकृति अधिक पायी जाती है और यह जनन पुटको (Genital folds) की अपूर्ण संयुक्ति (fusion) का फल होता है। इसमें मूत्रमागं के नीचे छिद्र होता है जिससे मूत्र त्याग होता है। मूत्रमागं का शिश्नबन्ध के क्षेत्र में (Glandular hypospadias) शिश्न के अभ्युदर पृष्ठ पर अथवा मूत्राधार में अन्त हो सकता है जिससे लिंग नीचे की ओर भूका रहता है।

चिकित्सा-शल्यकमं द्वारा बालक के स्कूंल जाने योग्य होने से पूर्व इस दशा को सुधारा जाता है। प्रथम अवस्था में तान्तव उत्तक का उच्छेदन करके लिंग को सीधा किया जाता है जिससे मूत्रमार्ग का अस्थानिक द्वार और भी पीछे हट जाता है। दो अवस्था वाले अर्थात् दो बार में किये जाने वाले शस्त्रकर्म में नया मूत्रमार्ग बनाया जाता है। मूत्र के निकलने के लिये जब तक शस्त्रकर्म के क्षंत का पूर्ण विरोहन न हो जायें, मूलाधार मूत्रमार्गछेदन (Perineal urethrostomy) या अभिज्ञान मूत्रमांगंछेदन (Supra pubic cystostomy) हारा नया मार्गे बना दिया जाता है। नया मूलमार्ग त्वचा की पत्ती (Strip) ने बनाया जाता है जिसको Diwis brownis nethod कहते हैं। रवड़ नली के चारों और त्वचा प्रारोप (Melondovi's method) द्वारा या लिंग के अधी-रुट की त्वचा से ही (Ombrodannis method) मूत्र-मार्ग का निर्माण किया जाता है।

- (३) पश्च मूलमार्ग कपाटिकाओं (Posterior urethral valves) के कारण अवरोध — इन क्षुद्र कपाटिकाओं के कारण इतना अधिक अवरोध हो सकता है कि वृक्क क्षति हो सकती है, वृक्क संक्रमण और जलापवृक्कता हो सकती है। यह मूलोत्सर्जन तन्त्र की अत्यन्त गम्भीर अप-सामान्यता है जिसकी यह दशा अचिकित्स्य थी किन्तु अब अन्तर्देशंक (Endoscope) यन्त्र की सहायता से कपाटि-कोच्छेदन की नवीन विधि के संफल परिणाम हुये हैं।
- (४) निर्वन्ध यूरेकस (Persistent urachus)—
 मूत्राशय से नाभि तक एक नालवण (Fistulous tract)
 पथ के रूप में उपस्थित हो सकता है अथवा अपूर्णतया
 रुद्ध होने पर अधोनाभि प्रदेश तक पुटी के समान दीखता है।

चिकित्सा - जणनाल पथ या पुटी का उच्छेदन किया जाता है। मूलमार्ग में यदि कोई अवरोध हो तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

मूत्राशय बस्थानता अथवा मूत्राशय की बहिमुंखता (Ectopia Vesicae or Extraversion of Bladder)मूत्राशय की अग्रभित्त और नाभि की उदर अग्रभिति, अनुपस्थित होती है और अपूर्णता द्वारा मूत्राशय की पश्चभित्ति सामने निकली रहती है जिस पर गवीनियों के द्वारों से मूत्र की दूवें निकलती रहती हैं। साथ ही वस्त्र की अधिमूत्रमागंता होती है और जधन संधानिक की अनुपस्थिति, वृपण ग्रन्थि का अपूर्ण अवरोह और वृषण कोष तथा शिश्चन का अपूर्ण विकास होता है। मूत्र के लीक करने से यह दशा बड़ी कण्टदायक होती है।

चिकित्सा— अवग्रह वृहदन्त्र (Sigmoid Colon) में गवीनियों का प्रतिरोपण (Transplantation) है । बच्चे ४-५ वर्ष के पञ्चात् यह शल्यकमें किया जा सकता है। इसके पञ्चात्—मूत्राशय की श्लैंटिमक उपकंता का उच्छेदन और अध्युदर हनिया (Ventral hernia) तथा अधोमूत्र-मार्गता का सुझार किया जाता है। गवीनियों के प्रतिरोपण के दीर्घकालिक परिणाम संतोपजनक नहीं होते।

म्बाधात या म्बाबरोध

वैद्यरत श्री जयनारायण गिरि 'इन्दु', बी०ए० [आनसं], [डी०एस०सी० ए-वाई [आयुर्वेद वृहस्पित], आयु०रत्न] धजवा, पो० नूरचक [मधुवनी]

Treas

मूत्राघात का अर्थ है मूत्र का अभाव। इस स्थित में रोगी-को मूत्र आता ही नहीं है। उसे मूत्र का निर्माण ही नहीं होता। मूत्रावरोध उस स्थिति को कहते हैं जिसमें मूत्राणय में मूत्र तो भरा रहता है लेकिन इन्छा करने पर भी मूत्र का विसर्जन नहीं होता है। मूत्रावरोध को स्थित अत्यन्त ही कष्टकर और काष्ठणिक होती है। इसे अं प्रेजी में Renal colic की संज्ञा दी गई है। आयुर्वेद में मूत्राचात के तिरह भेद हैं। यथा—वातकुण्डलिका, अष्ठीला, वातवस्ति, मूत्रातीत, मूत्रजठर, मूत्रोतसंग, मृत्रग्रंथि, मूत्रगृंश, उपणवात, मूत्रसाद, विडविधात, वस्तिकुण्डल और कुण्डलीभूते। शाब्दिक अर्थानुसार मूत्राधात और मूत्रावरोध के अर्थ कपर लिखित हैं किन्तु मूत्रावरोध भी मूताधात के अर्थ कपर लिखित हैं किन्तु मूत्रावरोध भी मूताधात के अन्तर्गत ही आता है। उसकी चिकित्सा एक ही है।

मूत्रावरोध के विभिन्न कारण होते हैं। जिन्हें हम उग्र कोर जीण वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। पुरुषों में प्रेस्टेट ग्रन्थ की विवृद्धि, मूत्र निलका संकोच या संकीणन उग्र मूत्र मिलका प्रदाह और टेविस ही से लिस उग्रावस्था के कारण होते हैं। विनताओं में प्रश्रादावनत स्थानच्युत गर्भाशय या श्रोणि जन्तर्गत थर्नु द, हिस्टीरिया और विस्सेमिनेटेड स्कलेरोसिस और शिणुओं में मूत्रनिका विहिद्दीर की निरन्धता धीर निरुद्ध प्रकश, मूत्राशियक या मूत्रनिका स्थित अपनरी के कारण मूत्रावरोध के उग्रावस्था की स्थित प्रतिभासित होती है।

अम् त्रता और अल्पम् त्रता निम्नांकित स्थितियों में पायी जाती है—

१, बल्प माला में जल पीने से अमू वता की स्थिति उत्पन्न होसी है।

- २. गरीर में जलाल्पता, अल्परक्त दाव, वृक्कनिल-

मांद्य (हार्ट फेल्योर)। इन सभी अवस्थाओं में वृक्कों में रक्त कम मात्रा में पहुंचता है या वृक्कों में निःस्यन्दन दाव (फिल्टरेणन प्रेणर) घट जाता है जिससे वृक्क गुन्छि-काओं से मूत्र छनने का कार्य मन्द पड़ जाता है। ऐसी स्थिति में अम् दाता स्वाभाविक ही है।

रै, वृक्क, यकृत या हृदय रोगों में शरीर में शोय हो जाता है और शरीर के विभिन्न स्थानों पर जल का संचय होने लगता है। इस स्थिति की उत्पत्ति लवण संचालक हार्मोन (एल्डोस्टरोन) को अधिवृक्क वाह्यक में बनता है तथा मूहारोधी हार्मोन जी पश्चपीयूषी में बनता है, द्वारा की जाती है। यह स्थिति अल्पमू लाता को उत्पन्न करती है।

. इस रोग में गूजक न्छ चिकित्सा में विणित सभी योग नामकारी हो सकते हैं। कुछ सरल, सिद्ध और अनुमितत योग अद्योनिखित हैं—

- (१) कमल की जड़ और तिली को गोमूंच में पीस कर सेवन कराने से मूल निष्कासित होने लगता है।
- (२) कलमी शोरा ३ तोला, ढाक के पुष्प १ तोला, चूहे की फैंगनी १ तोका पानी के साप पीस पेड़ पर लेप करें। प्रति आधा धण्टा, बाद बदलें।
 - (३) १ अंजीर की ३ माथ कलसीशोरा मिलाकर ह
- (४) उटंगन [वंगला में ओकड़ा] के बीज और मिश्री के समभाग मिलित चूर्ण को २-३ मागों की माला में जस्सी के साथ प्रयोग करावें।
- (५) इलायची र भाग, धनासा, रेंडीमूल, हरें बौर पाषाण भेद १-१ भाग लें। जीकुट कर चतुर्याश क्वाय सिद्ध करें और उसमें गोखरू, ककड़ी के बीज और इन्द्र जो का चूर्ण मिला सेवन कराने से मूजावरोध दूर हो जाता है।
 - (६) भींस के कान की भील नामि पर लेप करें।
 - (७) म त्रमामें में कपूर की वित्तका बनाकर रही।

मूजा रोगा चिकित्सा

- (८) रोगी को नारियल के डाभ का पानी पर्याप्त माला में पिलाना चाहिये।
- (१) बरारोट को पानी में खूब पतला कर के आग पर उवाल कर उसमें कागजी नीवू का रस और मिश्री मिलाकर पिलावें।
- (१०) चन्दनासव २ चम्मच | उशीरासव २ चम्मच | पानी ६ चम्मच मिलाकर दिन में तीन बार देते रहें।
- (११) वैद्यनाथ कम्पनी का "मूलल पाछडर" यथा--विधि प्रयोग करायें।
 - (१२) इन्द्रिय मार्ग में जू डाल दें।
 - (१३) डाबर निर्मित "यूरा" महागुणप्रद है।
- ्(१४) अनार के रस में हरा गोखरू १ तोला, इला-यची के बीज का चूर्ण ३ रती मिलाकर मूलाघात में दें।
- (१५) कलमी शोरा ४० तोला, फिटकरी ५ तोला, नौसादर २॥ तोला सबको लोहे के तुवे पर छाल कर खिन का ताप देकर द्रव बनावें। फिर केले के पत्तों पर द्रव को उडेल कर पर्पटी निर्माण कर लें। मात्रा १० रत्ती अनुपान—ताजा जल के साथ। इसी योग को सार पर्पटी भी कहते हैं।

एलोवैधिक चिकित्ला

- (१) रोगी को वस्तिशलाका (कैथेटर) टालकर मृत्र नेकाल दें।
- (२) प्रोस्टेट ग्रन्थि प्रदाह जनित मूलावरोध में Strepto Penicillin 1 gram का प्रतिदिन मांसपेशी में दूचीवेध करें और Ledermyin या Restectin Capsul ग्रियेक ६ घण्टे पर वें।
 - (३) कार्वाकोल का इन्जेक्शन मांसान्तर्गत ।
 - (४) नैसिक्स १-१ टेवलेट आवश्यकतानुसार दें।
- (१) Aminophyllin 10 c. c. + Dextrose 25% 100 ml का सूचीवेध शिरान्तगर्तं लगायें।
- (६) जलाल्पता (Dehydration) की स्थिति में डैवस्ट्रोज १ प्रतिशत की बोतल ड्रिप नेथड से शिरान्त गत दें। ह्दय के रोग से प्रसित रोगियों में सैलाइन प्रयोग में

अति सावधानी रखनी चाहिये। मूत्र की मात्रा वृढ़ाने के लिये निम्न योग भी उपकारी हैं —

सोडा सल्फ ४.२% या २४ ग्राम, गर्करा ६-१२॥%या ३४-७१ ग्राम नामेंन सैनाइन ०.६% का पा॰/सी. सी. ४६८ विधि—सा० स० (आवण्यकतानुसार) ४० वृंद प्रति मिनट की गति से I. V. दें।

(७) निम्न मिश्रण परमोपयोगी हैं— पौट. एसिटास—ग्रे. १०/ग्राम ०.६ पौट. साइट्रास—ग्रे. १०/ग्राम ०.६ पुनर्नवा सत्व—मि. ३०/सी. सी. २ डाइयूरेटिन—ग्रे. ४/ग्राम ७.२५ मुलहठी सत्व—मि. ३०/सी. सी. २ ग्राक्रंर—मि. ६०/सी. सी. २ जल—श्रे. ६/सी. सी. ३० तक उपयुक्त सौषधि दिन में ३ वार दें।

नोट—पारद के योगों यथा Neptol (M. &. B). या Mersalyl (B. D. H) आदि का प्रयोग भूसकर भी नहीं करना चाहिए। इसके प्रयोग से वृक्कों की अपार क्षति सम्भव है।

प्राकृतिक चिकित्सा

साधारणतः पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी कई बार थोड़ी-थोड़ी देर पर देने से मूत्रावरोध दूर हो जाता है। परन्तु यदि इससे लाभ न होता दिखाई दे तो सिर पर ठण्डे पानी से भीगा और निचोड़ा तोलिया रखकर गर्म जल का किट स्नान देर तक लेना चाहिए। नमक मिले गर्म जल से भीगी बड़ी पट्टी पेड़ू, मूत्राशय और लिंग पर लगाने और उसे ९-९ घण्टे बाद बदलते रहने से भी लाभ होता है। इस रोग में सर्वंप्रथम एक गरम जल का एनीमा देकर आतों की सफाई अवश्य करा दें। इस रोग में चक्रा-सन लाभकारी सिद्ध होता है।

होमियोपैथिक चिकित्सा

क थारिस (यह अफ्रीका में होने वाली एक मनखी के चूर्ण से वनती है)-पेशाव का देग रहता है और लगातार

--शेषांश पुरु रुद्र पर

डा॰ दाऊदयाल गर्ग ए०एम०बी०एस०, आयुर्वेद वृहस्पति, 'सम्पादक-धन्वन्तरि' गुलजार नगर, रामघाट रोज, सलीगढ़।



कभी कभी अचानक मूत्राधात मूत्र प्रसेक निजिका में धाक्षेप (spasm) होने से या प्रदाह जनित गोथ के कारण होता है। धनै: धनै: मूलाघात होने के अनेकों कारण हैं। इस सूत्राघात का निश्चित कारण जानने हेतु लिंग एवं आयु - भेद से निदान में संद्यायता मिलती है वैसे कि अचपन में मुत्रावरोध मुत्रपथ में अश्मरी के अवरोध के फारण, मृत्रपथ में किसी विजातीय पदार्थ के वदरोध के कारण, मूत्र प्रसेक नलिका में जन्मजात विकृति के कारण (देखें चित्र) प्रकश (phimcosis) या शिश्न में किसी वंदन के कारण हो सकता है। स्त्रियों में ऐसे गर्भाशय अर्युद के कारण, जिनका कि दवाब मुताशय ग्रीवा पर पड़ता है, योदापस्मार (हिस्टेरिया) के दौरे में, मुत्रत्याग करते ही क्षोणजनित प्रत्यावतित किया के कारण हो सकता है, नज्युवकों में या मंध्यवय में मूत्रावरोध मूत्र प्रसेक नलिका संकोध, प्रयमेह (सुजाक), इलैप्निक कला में प्रदाह, एकदम शीत वग जाने पर मूत्रप्रसेक नलिका में आक्षेप (spasm) के कारण हो सकता है। बृद्धावस्या में मुतावरोध पौरुष प्रंथि वृद्धि के कारण या मुत्रागय की निष्कियता के कारण हो सकता है। अश्मरी, जलापबुरकता, ऐसा अर्बुद जो मूत्र पण पर दबाव हालें, सुपुम्ना या मस्तिष्क पर आधात जनित मूत्रा-णय का पक्षाघात, या श्रोणि प्रदेश में किने गये किसी वृहद शल्य कर्म के पश्चात् जनित प्रत्यावितत क्रिया के फलस्वरूप किसी भी वय में मूत्रावरोध हो सकता है।

इस उपरोक्त कारणों से हुये मूत्रावरोध की चिकित्सा मृख्यतः कल्यकमं है लेकिन कोई नी चिकित्सा करने से पर्व रक्तगत यरिया अवश्य ज्ञात करलें। यदि यह १०० मि॰ लि॰ में ७० मि. ग्राम या इससे भी अधिक है तो समझ लें कि वृक्क के कार्य में अवरोध उत्पन्न हो गया है जिसके कारण कोई भी आपरेशन जीवन के लिए घातक रहेगा। ऐसी अवस्था में कैथीटर द्वारा सूत्राशय को रिक्त करलें। उसके कुछ काल पश्चात् कोई आपरेशन करना सुरक्षित रहता है। आक्षेप (स्पाज्म) की स्थिति में गर्म जल स्नान या उदर पर गर्म सेंक से भी लाभ होता है। हिस्टेरिया या नाड़ी जन्य अन्य स्थितियों की तवनुसार चिकित्सा करें। मूत्राशय निष्क्रयता या अन्य किसी भी मूत्राशास में कृषीलु एवं धुस्तूर के मिश्चित् योग या निजली की मधीन का एक पोल भगास्थिसंधि के ऊपर, दूसरा पोल उदर पर नामि के नीचे लगाकर चिकित्सा करें।

यदि आपके पास रोगी यह शिकायत लेकर आता है. कि उसे दीर्घकाल से मूत्र त्याग नहीं किया है, मूत्राशय भी परीक्षा करने पर तनावयुक्त नहीं है, कैथीटर डालने पर मूत्र नहीं निकलता या बहुत थोड़ा मूत्र निकलता है तो इस स्थिति को पूर्ण मूत्राघात (Anuria) कह सकते हैं। यह एक दहूत गम्भीर अवस्था है तथा इस पूर्ण अमूत्रता का निद्यान करने से पूर्व कैयीटर अवश्य प्रविष्ट करना चाहिये। पूर्ण अमूत्रता के दो कारण या दो भेद हैं — १. मूल पथ में. किसी अवरोध के कारण २. वृक्षों के कार्यां पराचे मूत्राक्षय वृक्कों में मूत्र का निर्माण ही नहीं होता। अससे मूत्राक्षय रिक्त रहता है और मूत्र त्याग नहीं होता। इस वास वाली स्थिति को ही वास्तिवक अमूलता था। वास्तिवक मत्राधात कहा जाता है।

१. वनरोधजन्य मुनायात—इसमें नृक्त सामान्यतः स्वस्य होते हैं लेकिन दोनों मूंग गरीनी निक्तकों में निस्त

कारण से अवरोध हो सकता है-ध-वृतकाश्मरी द्वारा दोनों मूत्र गवीनी नलिकाओं में अवरोध ।

- व एक मूत्र गवीनी तलिका में वृदकाश्मरी के कारण अवरोध तथा उसकी प्रत्यावितत क्रिया के परिणाम-स्वरूप दूसरी मूल गवीनी नलिका में आक्षेप(spasm) के कारण।
- दोनों मूत्र गवीनियों का अवरोध सल्फोनामाइड किस्टल्स (विशेषतः सल्लाडायजिन, सल्फाथियाजील या अन्य किसी सल्फा प्रुप की औषधि का दीर्घकाल तक तेवनोपरान्त) के वृक्क से स्रव्ति होने के कारण भी हो सकता है। यही कारण है कि प्रत्येक सल्का बीपधि को सेवन करते समय उसके साथ साथ सोड़ा-बाईकार्व या एल्कजाइजर भी अवश्य देने का निर्देश रहता है।

द-मुलाशय शीपधार पर कोई अवृद

ई-जन्म जात विकृति में एक ही मूल गवीनी नलिका होती है और वह किसी कारण अवरुद्ध हो जाय। जब अवरोध फेवल एक मूल गवीनी नलिका में होता

है तो मूल स्वच्छ, अस्य आवेक्षिक घनत्व वाला, तथा एल्ब्यू-मिन रहित होता है। ऐसी अवस्था में कोई विशेष लक्षण उत्पन्न नही होता लेकिन दीर्घ काल तक एकही वृक्क के अधिक कार्यरत रहने के कारण दूसरे वृषक की युद्धि हो बाती है तथा पश्चात् काल में उससे जतापनुक्कता उत्पन्न हो सकती है। यदि किसी कारण से दोनों मुल गवीनी निलकाओं में अवरोध होता है तो उससे गुप्त यूरी मियां (Latent uraemia) की स्थिति पैदा होती है। उसके लक्षण हैं—रुग्ण "लगभग एक खप्ताह से मूत्र नहीं हुना" यह शिकायत सेकर बाता है, उसे मामूली अवसाय लेकिन १०-१२ दिन होने पर वेनैनी,नेल तारक संकुचित, शरीर का तापलम सामान्य से कम, जिह्वा शुष्क गहरी बादामी तथा गरीर में चीटी जैसी रैंगना जैसा प्रतीत होना जादि, कुछ स्यितियों में इतनी गम्थीर का प्रकार का वमन होता है कि उसमें सांतानरोध (intestinal obstruction) का भ्रम होना है। १० से १४-११ दिन् तक पूर्ण अमूत्रता रहने पर मृत्यु सचानकृ ही हो जाती है लेकिन रुग्ण का होशो-थि यन्तिम समय तक ठीक रहता है।

२. अवरोध रहित पूर्ण अम्वता—इसके कारण हैं-

- (अ) तीव व्वक शोथ, अथवा जी में व्वक की मन्तिम स्थिति (मृत्यु से १२-२४ पूर्व)
- (व) मधुमेह जन्य संन्यास का एक मूच संम्बन्धी प्रकार।
- (स) हृदयावसाद की स्थित जिसमे कि मूत्राघात भी एक लक्षण रहता है जैसे कि औदरिक शल्य कर्म या आवात, गरंभीर अग्नि दग्ध, गम्भीर अतिसार या गाभीर नमन के वाद तीव जबर या शोय या अचानक रक्तचाप न्यून होने की स्थिति में।
- (द) फिनोल, नाग, फोस्फोरस, तारपीन का तैल या किसी सल्फा औपधि द्वारा उत्पन्न विपाक्तता—
- (इ) अत्यन्त बिरल अवस्था में दोनों नृक रक्तवाहिनियों में रक्त के थक्का द्वारा अवरोध
- (ई) रोगी में ग्रुप से मेल न खाते हुए रक्त का रोगी में आदान कराना
- (ग) सिस्टोस्कोप या के थीटर या किसी अन्य शलाका के मूत्रपथ में किसी भी फारण से प्रवेश के वाद
- (ह) कुचलने वाली किसी चोट के कारण ी

इन उपरोक्त कारएों में से कोई भी कारण हो साधा-रणतया उसके लक्षण होते हैं - जो भी थोड़ा बहुत मृत त्याग होता है बहुत गहरे रंग का तथा अधिक आपेक्षिक घनत्व के कारण अति सपृवत (Concentrated) होता है बीर उसमें एल्ट्यूमिन, निर्मोक् (कारट्स) हो सकते है जी कि प्रदर्शित करते है कि अभूत्रता की यह स्थिति वृक्क. के रुग्ण होने से है। अयानक वमन, अतिसार या अधिक पसीना क्षाना हो सकता है। इसके अतिरिक्त तीन युरीमिया के लक्षण भी हो सकते हैं जिसे कि आप इसके प्रकरण में अन्य स्थल पर देखें।

आघात - किसी दुर्घटना में पैर के गम्भीरतया कुचस जाने के बाद मूताघात हो सकता है। इसमें हृदयावसाद के कारण मूत्र की माला एकदम काफी कम होजाती है। यह मूत्र गहरे वादामी रङ्ग के निर्मोक से युक्त होता है तथा उसमें एल्ट्यूमिन की भी काफी मात्रा होती है। प्राय: इसके बाद पूर्ण मूर्जावरोध हो जाता है जिससे गम्भीर वमन एवं नृष्णा उत्पन्न होती है और तत्पन्नात् ७-८ दिनों में मृत्यु ੋही जाती है।

धाध्यासाध्यता — अमूलता की स्थित एक गम्भीर अवस्था है जिसकी कि गम्भीरता बहुत कुछ अमूत्रता उत्पन्न करने वाले कारण पर निर्भर करती है। अवरोधजन्य अमूत्रता में यदि एक और अवरोध है लेकिन दूसरी और का वृक्क पूर्ण स्वस्थ है तो यह सर्वधिक सुसाध्य स्थिति है। यदि अवरोध दोनों मूत्र गवीनियों पर है तथा वह दूर नहीं होता या दूर नहीं किया जा सकता तो जिस समय भी अवरोध उत्पन्न हुआ है उसके १०-१२ दिनों में रुग्ण की मृत्यु निश्चित है। अवरोध रहित अमूलता में या तो कुछ ही दिनों में सुधार प्रारम्भ हो जाता है या कुछ ही दिनों में मृत्यु हो जाती है।

''चिकित्सा<u>;</u>—

. गर्म वायु, गर्म, चादर स्तानं धा अन्य प्रस्वेदकों के ्प्रयोग से त्वचा को उत्तेजित कर उससे पसीना निकाल कर विषमयता की स्थिति काफी हद तक टाली जा सकती सकती है। अवरोधरहित तीय अमूत्रता की स्थिति में मुख हारा द्रवों का अधिक प्रयोग करावें या १% डैक्स्ट्रोज विलयन को भिरा द्वारा प्रविष्ट करें। इस डैवस्ट्रोज विल-- यन में ४% गत्ति वाला आधे से १ पिन्ट (१ पिन्ट=२० कौंस) सोडियम सल्फेट निलयन अथवा डैनस्ट्रोज सालूशन आधा सक्रोजं विलयन मिला सकते हैं जो कि प्रायः शरीर भार के अनुपात में प्रायः १मि.लि. प्रति प्रौंड होना चाहिये। इन स्थितियों में जबिक रक्तगत जवणों की मात्रा न्यून हो जैसे कि प्रायः दीर्घकाल तक सल्फा औष्धियों के सेवन के प्रधात् या गलत गुर का रक्तादान कराने के प्रधात् होता है तो क्षारीय भौवधियों का सेवॅन कराना उपयुक्त रहता है। सीव्र ब्रातिसारक अपिधियों द्वारा रेचन कराके भी भरीर विपों का निस्कासन किया जा सकता है। कमर पर कपिंग ग्लासं द्वारा कपिंग करने पर स्थानीय प्रदाह कम होता है भीर उससे सुधार लाया जा सकता है। सौपु-म्निक संज्ञाहरण द्वारा या प्रोकेन के सुपूम्ना के दोनों . बोर प्रसंपण हारा वृक्कों में जाने वाले संकोचोत्पादक नाड़ी सुत्रों को निष्क्रिय करके भी अच्छो लाभ प्राप्त किया जा सकता है।-वृक्कों पर से वृक्कावरण को हटाकर अच्छा लाभ प्राप्त किया जा सकता है न्योंकि इससे वृक्कों की कार्याधिक्यतां के कारण स्वयं की धाकार युद्धि के लिये पर्याप्त मुधारात्मक स्थिति प्राप्त होती है जिससे कि

वृत्यकों के कार्य में सुधार आता है। यदि यह असूवता सल्फा औषि सेवन के कारण है तो मूत्र गवीमी के थीटर द्वारा सोडियम बाई कार्बोनेट के २.५% शक्ति के विलयन को प्रविष्ट कराये जिससे मूत्र गवीनियों में हकी शक्ति राहिट जाती है। अन्यथा वृदको च्छेदन की आवश्यकता होती है। वैसे अवरोध जन्य अमूत्रता की स्थित में उपयुक्त प्रकार का शल्य कर्म किया जाना चाहिये।

🔻 आयुर्वेट मसानुसार सूत्राचार्त .

थायुर्वेद में मूत्राघात १३ प्रकार के माने जाते हैं। सुत्रुत ने १९ प्रकार के मूत्राघात हताये हैं जिनमें यूत्रीक-साद दो मान कर १३ हो जाते हैं। सरक ने वाताण्ठीला और माना है। यह प्रकार निम्न हैं—

9. वात कुण्डलिका— कसता से या मलमूत्रादि के उपस्थित देगों को धारण करने से वस्ति में आश्रित वायु मूत्र को साथ में लेकर अर्थांत् रोक कर विश्व गति हो कर बतुं लाकार बन कर गति करती है जिससे मूत्र थोड़ा-थोड़ा वेदना सहित एवं धीरे-धीरे अवृत्त होता है। इस अवस्था को वातकुण्डलिका कहते हैं। यह अति कण्ट-साध्य है।

२. वाताष्ठीला न्युदा और मूलाशय के नध्य में स्थित अपान वायु स्थिर, ऊंची उठी हुई, अष्ठीला (पत्थर) के समान कठोर, स्थिर, ऊंची उठी छन्छि उत्पन्न होती है. जिसके कारण मलमूत्र-वायु का अवरोध होता है, मूत्राशयं में आध्मान होता है, वस्ति में (बस्ति प्रदेश में)तीन वेदना होती है। सुश्रुत ने इसे केवल अष्ठीला फहा है।

३. वात वस्ति—मूत्र के वेग को बलात धारण करने से वस्ति-स्थित अपान वायु वस्ति मुख को वन्द कर देती है जिससे मूत्र की दकावट होकर अत्यन्त छच्छ्रसाध्य वात बस्ति रोग उत्पन्न होता है। इसमें वस्ति (मूत्राशय) शोर कुलि में वेदना होती है।

४. मूत्रातीत मूत्र को प्रवृतीनमुख वेग को रोक कर जब मनुष्य पुनः प्रवृत्त करना चाहता है तब उसका मूध प्रवाहित नहीं होता। यदि बाता भी है तो धीरे-धीरे थोड़ा योड़ा करकी नार-बार और गक्क कर बाता है।

४. मूलजठर—वात जन्य उदावतं को कारण मूल को वेग रक जाने से कृपित अपान वायु उदर में अतिशय

स्वायाणां स्थायात्सा

रूप से ज्याप्त हो जाती है जिससे नाभि के नीचे तीस वेदना युक्त आध्यमान होता है। इसमें खदावर्त के कारण मूल एवं मलवाही स्रोत् बन्द हो, जाते हैं।

६. मूत्रोत्संग—विमार्गगामी अपान वायु के कारण मूत्र प्रवाहण करते समय वस्ति में या मूत्र प्रसेक निका-में अथवा मेहन मणि (शिश्नाग्र) में मूत्र सहसा एक जाये, अथवा प्रवाहण करते समय रक्त सहित थोड़ा-२ धीरे-२ वेदना रहित मूत्रोत्सर्ग होता है तो इसे मूत्रोत्सङ्ग कहते हैं।

७. मूल क्षय—क्ष्म एवं क्लान्त (थिकत) गरीर वाले पुरुप की वस्ति में स्थित वात-पित्त मिलकर कृष्टप्रद दाह एवं वेदना उत्पन्न करते हैं जिसे मूत्रक्षय या मूत्र संक्षय कहते हैं।

प. मूत्र ग्रंथि — विस्त द्वार के अन्दर गोल, छोटी, स्थिर, वेदनासहित, मूत्रमार्ग को रोकने वाली तथा अश्मरी के अन्य लक्षणों से युक्त ग्रन्थि पुष्ठपों में सहसा उत्पन्न हो जाती है। इसे मूत्र ग्रन्थि कहते हैं। चरक ने सि० स्थान के अध्याय ६/४० में इसे रक्तयुक्त बतलाया है।

है. मूत्र शुक्र—जो मनुष्य मूत्र के षेग की धारण करके सम्भोगरत होता है उसमें वीयं के साथ मूत्र भी सहसा प्रवृत्त होता है अध्वा कभी मूत्र से पहले तो कभी मूत्र के वाद वीयं प्रवृत्त होता है। इसे मूत्रशुक कहते हैं। इस रोग में मूत्र का वर्ण राख सहश होता है।

१०. उष्णवात—व्यायाम, यात्रा, आतप आदि से जिल्त या कुपित वायु से आवृत पिक्त वस्ति में पिहुँच कर वस्ति, मेहन तथा गुदा आदि में जलन करता हुआ मूत्र को प्रवृत्त कराता है। इसे उष्णवात कहते हैं। इसमें मूत्र का वर्ण ह्रन्दी जैसा पीला, या रक्त मिश्रित होने से .रक्ताभ तथा कभी-र केवल रक्त का ही उत्सर्ग होता है। यह कठिनाई से प्रवृत्त होता है।

११. मूत्रीकसाद—यह दो प्रकार का होता है—(अ) पित्तजन्य—जब मूत्र विण्द (पिच्छिल के विपरीत), पीत-वर्ण, हाहयुक्त एवं बहल, घट्ट होता है, सूखने पर गौरोचन के समान वर्ण का चूर्ण जैंशा हो जाता है।

(व) कफ जन्य—जव मूल पिन्छिल, घट्ट, इवेत, वर्ण का होता है तया कठिनाई से प्रवृत्त होता है, सूखनें पर गंख के चूर्ण के समान होता है। यह कफ जन्य होता है।

इस प्रकार से यह मूत्राघात के बारह भेद कहे गये हैं। भूतकच्छ सुश्रुत ने आठ प्रकार के बताये हैं। मूत्राघात में मूत्रप्रवृत्ति नहीं होती लेकिन मूत्रक्रच्छ्र मे मूल प्रवृति तो होती है लेकिन अत्यन्त कठिनाई एवं धेदना के साथ एवं अल्प मात्रा में होती है। इसके बाठ भेद निम्न प्रकार हैं—

वात-पित्त-कफ से तिन, चौथा सित्तपात से, पांचवा अभिवात से, पाकृत के कारण छठा, अप्रमरी और धर्करा से सातवें एवं आठवें प्रकार का होता है। इनके प्रथक-प्रथक लक्षण निम्न प्रकार हैं—

१. वातजन्य मूलकृष्ठ में वायु मुष्क, मेहन, मूत्राशय को पीड़ित करके कठिनाई से थोड़ा थोड़ा मूस्रोत्सर्ग करता है, फटने के समान बेदना होती है अर्थात् ऐसा प्रतीत होता है जैसे मुष्क, मेहन, वस्ति (मूत्राशय) फट जायेंगे।

२. पित्तजन्य मुर्ज्क, मेह्न, वस्ति में अग्निदग्धवत दाह, हल्दी की मांति पीताभ या उष्ण रक्ताभ मूत्र आता है।

३. कफजन्य — मुष्क, मेहन, वस्ति में भारीपन, स्निन्ध क्वेत एवं अनुष्ण (किचिदुष्ण) मूत्र का त्याग रुगण करता है। रोगी को मूत्र त्याग के समय हुएँ (रोमांच) होता है।

४. सिन्नियातज — रोगी दाह, शीत, वेदना से फिडित नाना वर्ण का (अर्थात् दोषों की उत्वणतां के आधार पर पीत, रक्त अवना भनेताभ) बार बार अतिकष्टपूर्वक मूझ त्याग करता है। रोगी को ऐसा प्रतीत होता है कि अध-कार में प्रवेश कर रहा है अर्थात् आंखों के आगे अधिरा सा छा जाता है।

४. अभियातज मूत्रकृच्छ् — मूत्रवाही स्रोतों में किसी शत्य के आयात से अथवा चोट लग जाने पर अतीव विदना से युक्त मूत्राघात या मूत्रकृच्छ्ता उत्पन्न होती है। इसमें वात वस्ति के समान लक्षण होते हैं।

भ. यदि मलं का अवरोध होता है तो वायु विपरीत-गामी होकर शूल, आध्मान एवं मूलोत्सङ्ग उत्पन्न करता है।

७, प अश्मरी एवं शर्करा से उत्पन्न मूत्रकृच्छू— इन दोनों के कारण और लक्षण समान होने के कारण सुश्रुत ने इनका वर्णन एक साथ किया है। कफ से पित का परिपाक होने के समय वायु से दुकड़े दुकड़े होने पर कफ के छोटे-छोटे दुकड़े शर्करा नाम से पुकारे जाते हैं। इनके कारण हृदय में पीड़ा, कम्पन, कुक्षि में शूल, अग्नि-मन्दता, मूच्छी और तीज मूबाघात होता है। यदि मूत्र के वेगपूर्वक उत्सर्जन से इस शर्करा का निष्क्रमण हो जाता है तो वेदना भी शांत हो जाती है। लेकिन यह वेदना जसी समय तक शांत रहती है जब तक कि शकरा की कोई बड़ी टुकड़ी सूत्र स्रोत (सूत्र गवीनी निलका) में पुनः नहीं फंसे। इसको शर्कराजन्य सूत्राघात कहते हैं। शर्करा ही बड़ी होकर अग्मरी कहलाती है। कारण एवं लक्षण एक समान हैं।

चिकित्सा-

मूत्राघात चिकित्सा—कथाय, कल्क, बौषधियों से सिद्ध धूंत, भक्ष्य, लेह, दुरध, सार, मद्य, बासव, स्वेदजनन द्रव्य, उत्तरवस्ति और अष्मरीनाशक विधियों से इसकी चिकित्सा करनी चाहिये। मूत्रजन्य उदावतं के योगों को इसमें प्रयोग करें। ककड़ी, खीरे बादि के बीजों का कल्क १ तोले में थोड़ा सा सैंधानमक मिलाकर कांजी के साथ पीवें। सौबंचललवणयुक्त सुरा का पान करे। केशर को मधु से चाटकर ऊपर से रात को बनाकर छोस में रखकर ठण्डा किया शर्वत पीयें।

अनार का रस, इलायची, जीरा, सोठ, किचित् नमक सुरा में मिलाकर रोगी को पिलावें। विदारिगन्धादि वर्ग, गोखक मूल या गोखक को दूध में मिला कर तथा दूध से चौगुना पानी मिलाकर कीरपार्क विधि से पांक करे तथा जब दूध मात्रा शेष रहे तो शीतल करके शक्रारा एमं मधु मिलाकर पीने से बात एवं पित्तजन्य मूत्राघात नण्ट होता है।

मूबा वेदना की शान्त्ययं गये और घोड़े की लीद को कपड़े में निचोड़ कर निलावें। यह सुश्रुतोक्त योग है लेकिन गाज के इस युग में इसका प्रयोग श्रेयस्कर प्रतीत नहीं होता।

नागरमोथा, हरड़, देवदार, मूर्वा, मुलेठी समान माला में लेकर पीसकर चटनी जैसी चनाकूर १॥-२ माणे की माला में चाटने से मूल दोपों का निवारण होता है। अथवा मूल वेदना की शांति के लिये हरड़-बहेड़ा आवला समान माला में मिला बररीक चूर्ण कर थोड़ा सा नमक मिलाकर शीतल जल से ही लें।

मुनक्का का कल्क १ तोला भर लेकर जल में भिगो कर रात भर पड़ा रहने दें तथा प्रातःकाल ही इसे ठण्डा रण्डा ही भीचे तो मूठा की वेदना फांत होती है। कटेरी का स्वरस आधा तोले की मात्रा में प्रातः पीने से भी मृत्र दोषों का निवारण होता है। अथवा वाजे लांबलों को कुचल कर, निचोड़कर उत्तका ४ तोला रस निकाल कर उसमें मधु'मिलाकर पान करने से मूत्राजन्य वेदना की शांति होती है। आंबले के स्वरस में छोटी इलायची का चूजें मिलाकर पीने से भी यही लाभ होता है। ताड़ की वाजी जड़ को खीरे के रस या शांति जावलों के ठण्डे पानी से पीसकर पिये या खीरे को दूध के साथ प्रातःकाल पिये तो मूल दोषों का निवारण होता तथा वेदना शांत होती है।

काकोत्यादि मधुर गण से सिद्ध दूध में घृत मिलाकर पीने से मूल दोषों एवं अश्मरी का निवारण होता है। दला, गोखरू, कौंच के बीच, तालमखाना, गालि चावल, जल गण्डीर (या दूवी), देवदारु, चित्राक मूलत्वक्, वहेड़े की गुठली—इनको सुरा से पीसकर सुरा के साथ हो पीचे तो मूल दोषों का शोधन होकर अश्मरी नष्ट होती है।

पाटला के क्षार को जीकि जल में सात बार नितार कर बनाया गया हो, उसमें थोड़ा सा तैल मिलाकर जेने से, अथवा नरसर, पाषाण भेद, दर्ल (दाभ), ईछ, खीरा, ककड़ी एवं विजयसार को दूध में पकाकर ठण्डाकर उसमें यथेन्छ शर्क रा मिला घी मिलाकर पीने से मू जदोषों का निवारण होता है। कुछ आचार्य विजयसार के स्थान पर खीरा या ककड़ी के बीजों का निर्देश करते हैं क्योंकि विजयसार मू हाल तो है नहीं जबकि खीरा एवं फकड़ी के बीज मू जल हैं।

पाटला, यवक्षार, पारिभद्र, तिल इनके क्षारोदक में दालचीनी, इलायची, पीपल का जूणे मिलाकर घटनी के समान चाटे।

मूत्र दोपों से पीड़ित मनुष्य को स्नेहन कीर रचेवन दे कर अश्वात् विरेचन देवें। इस प्रकार जोधन जर्म के प्रश्वात् उत्तरवस्ति देने से लाभ होता है। अति सम्भोग के कारण जिस पुरुष को रक्त सहित या केवल रक्त ही मूदमार्थ से उत्सजित होता है उसे मौथून से निवृत कराकर वृंगण कर्म करायें तथा उपरोक्त विधि से मुर्गे की वसा या तैन से उत्तरवस्ति दें।

मधु १ भाग, खालिस देशी घी दो भाग, शर्करा, मुनक्का का चूर्ण १-१ भाग, कींच, पीपल, तासमखाना प्रत्येक बाधा आधा भाग, मिलाकर एक डण्डे से खुद मये।

THE TOTION OF THE

इसको नगभग १ तोला की मात्रा में चाटने से मूत्र दोष जो बन्य दोषों से गांत नहीं होते इससे गांत होते हैं लेकिन इसके सेवन से पूर्व वमनादि से गरीर की शुद्धि कर लेनी चाहिए। बन्ध्या स्त्री को भी इस योग का सेवन कराने से गर्मधारणा होती है।

सुश्रुतोक्त वलाघृत के सेवन से मनुष्य मूलदोवों से मुक्त हो जाता है। यंशलोचन एवं शकरा का चूर्ण समान मात्रा में मिलाकर शहद से घाटकर पीछे से दूध पीने से मनुष्य मूत्रदोषों एवं शुक्रदोषों से मुक्त हो जाता है। वर्ति संभोग के कारण कीण मनुष्य को यह योग ओजस्वी एवं वक्तवान बनाता है। सुश्रुतोक्त महाबलाघृत मे शकरा एवं वंशलोचन मिलाकर चटाने से बात कफ पित्त से दूषित शुक्रदाले, रक्त दूषित दोषों का निवारण होता है। यह जीवनीय, वृंहण एवं वलवर्षक है। मेध्य एवं स्त्री सेवन करे तो उसे पुत्र प्राप्ति होती है।

म्त्रकृष्ठ्ता चिकित्सा-

वातादि भेद से सुश्रुतोक्त सम्मरी चिकिस्सा को उसकी स्नेहन झादि विधि सहित प्रयोग करें। योक्ष्क, पाषाण भेद, कुम्भी (जल कुम्भी), हाक्तेर, कटेरी, बला, शता-वरी, रास्ना, वरुण, विदारि गन्छादि गण की कौपधियों से घृत को सिद्ध कर पिये—इसीसे उत्तरवस्ति एवं अनु-वासन वस्ति देवें तो वात जन्य मूत्रकुच्छ शांत होता है।

गोखरू के स्वरस में गुड, दूध औय सौंठ के साथ तैल सिद्ध कर अनुवासन एवं उत्तरवस्ति देने तथा पान कराने से वातज मूत्रकृष्णुता का निवारण होता है।

पित्तजम्य मूत्रकृष्कृता के निवारणार्ण तृणोत्पनादि, काकोल्यादि, न्यग्रोद्यादि गण से सिद्ध धृत या दुःध को पान करावें, उत्तरवस्ति एवं अनुवासन वस्ति देवें। पित्तज मूत्रदोषों के निवारणार्थं ईख, दूध एवं द्राक्षा से युक्त योगों द्वारा विरेचन दें।

कफजन्य मूत्रहाच्छ में सुरसादि, ऊपकादि, मुस्तादि, वरुणादि गण से सिंख तैल तथा इन्ही गणों से सिंख यवागू (लपसी) का प्रयोग करायें।

सान्निपातिक मूत्रकृष्ट्यता में दोषों की उल्वणता देख कर तदनुसार यथोचित चिकित्सा करें।

अभिवातज मूत्रकृष्छु निवारणार्थं सद्योद्रण की चिकित्सा करें। तात्पर्य यह है कि अभिघात से जो भी अङ्ग विद्यत हुआ है उसके अनुसार उचित चिकित्सा करें।

क्रकृण्यन्य मूत्रुकृच्छ्र स्वेदन, श्रवगाहन, श्रम्यंग, वस्ति, चूर्ण क्रिया विधि से वातनांशक चिकित्सा करें।

अश्मरीजन्य एवं शर्क राजन्य मृत्रकृष्ट्य मे अश्मरी एवं शर्क राकी विधि से चिकित्सा करनी चाहिये। यह विधियां इनसे सम्बन्धित प्रकरणों मे देखें।

♣ ※ ♣

🗙 मूताघात या मूहावरोध 🗶

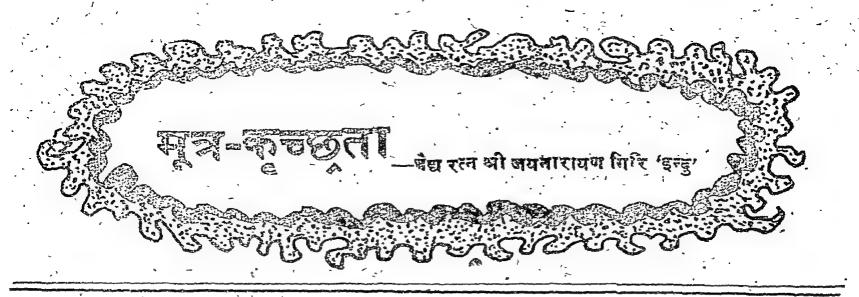
💯 पृष्ठ २५२ का शेषांप 🔀

पेशाब करने की इच्छा भी रहती है लेकिन पेशाब नहीं होता है। इसके सतिरिस्त वेचैनी, हिनांग (अर्थात शरीर बर्फ सा शीतल रहे) किंतु भीतर जलन प्रतीत हो तो यह ऑपिंध अमृत से जरा भी कम उपकारी सिद्ध नहीं होती।

बोपियम—मूत्राग्य वित्कुल सुन्न पड़ जाना जिसके परिणामस्त्रेरूप पेशाव नहीं होना, किसी भी नवीन रोग में सयवा डरकर या प्रसव के पश्चात् पेशाव वन्द हो जाय तो इस बोपिंध से इन्छित लाभ प्राप्ति होती है। मूताशय पेणाव से भरा रहने पर भी उससे रोगी को कुछ भी मालूम नहीं होता-ये बोपियम के ही कार्यक्षेत्र के लक्षण हैं।

लाइकोपोडियम-पेशाव होते-होते रुक जाना अथवा रुक-रंककर पेशाव होना । पेशाय वहुत जोर से लंगना किन्तु पेशाव निकलता नहीं, उसके लिए बहुत देर तक वैठे रहना पड़ता है । ये लक्षण प्रतीत होने पर लायकोपोडियम का प्रयोग निश्चित गुणकारी सिद्ध होता है ।

लक्षण संहिण्य रहने पर और भी कई बीपिययों का प्रयोग किया जाता है। विस्तृत जानकारी के लिए मेटे-रिया मेडिका का सध्ययन करें।



रोग परिचय-

मूत्रकृष्णुः स यः कृष्णुन्मूत्रयेद् वस्तिरोधकृत्।।

अर्थात् मूत्रकृष्णु वह रोग है जिसमें रुग्ण कृष्टपूर्वक
मूत्र विसर्जन करता है और वस्ति का रोधन करता है।
मूत्रकृष्णु और मूत्राधात का अन्तर स्पष्ट करते हुये
विजयरक्षित लिखता है—

मूत्रकृष्ठ्र सूत्राघाततयोश्चायं विशेषः, मूत्रकृष्ठ्रे क्रुन्छ्त्वमतिशयितं ईपद् विदन्धः मूत्राघाते तु विवन्धो बलवान् कृष्ठ्रत्वमत्पिति ।

मूत्रकुच्छ्र में मूत अव्यप्नक विसर्जित होता है लेकिन मूत्राघात में मूत्र आता ही नहीं। आंग्ल भाषा में इसे Incontinence of urine कहते हैं।

रोगोत्पत्ति-

- (१) जलचर जीवों का मांस अधिक मात्रा में सेवन करनें से।
- (२) तीक्ष्ण, रूखे व कच्चे अन्न के सेवन से।
- (३) अज़ीणिंदि रोंगों के होने से ।
- (४) अतिमद्य सेवन से ।
- (१) नृत्य करने से।
- (६) घोड़ा, ऊंट आदि की सवारी करने से।
- . (७) भोजन पर पुनः भोजन करने से।
 - (=) अत्यधिक परिश्रम करने से ।
 - (६) मल के बेग को रोकने से।
- (१०) बीर्य को रोककर रखने से।
- (११) पयरी (अश्मरी) के होने से।

- (१२) मृणोप्णवात (सुजाक) के होने से ।
- (१३) वृत्रक प्रदेश में अकस्मात् आधात से।
- (१४) विभिन्न जीवाणुओं के उपसर्ग के फलस्वरूप मूलनिका प्रदाह।

सम्प्राप्ति—रोगोत्पत्ति के वर्णित कारणों से कुपित दोष (वास, पिस, कफ) विजातीय तत्वों में परिणत होकर वस्ति और मूत्रमार्ग में अवरोध, प्रवाह, शोथ, क्षत मादि उत्पन्न कर इस व्याधि को उत्पन्न कर देते हैं। सक्षण—

सम्प्राप्ति के अन्तर्गंश तो हम जान ही लिये हैं कि वात, पित्त, कफ अपने कारणों से कुपित होकर मूत्राशय में अपना प्रभाव डालते हैं, जिसके कारण मूत्र में वेदना होती है। इस ज्याधि में पेशाव करने की इच्छा वार बार होती है लेकिन प्रेशाब होता नहीं। यदि होता भी है तो बुंद-बूंद करके। मूलावरोध थोड़ा होता है लेकिन दर्द अधिक होता है, जिससे रोगी वेचेन हो जाता है।

आयुर्वेद विज्ञान के प्राचीन प्रन्थों के अवलोकन के प्राचीन हों ज्ञात होता है कि प्राचीन आयुर्वेद महारिययों ने इसके आठ भेद चतनाये हैं। यथा—

- (१) वातज मूत्रकृच्छ ।
- (२) पित्तज मूत्रकृष्क ।
- (३) कफ्ज मूलकृच्छ ।
- (४) सन्निपातज मूत्रकृच्छ ।
- (१) प्रहारज [बाघातजे] मूत्रहुन्छु।
- (६) मलावरोद्यय मूत्रकृच्छ् या पुरीप निग्रहजन्य मूत्रकृच्छ् ।



- (७) शुक्रावरोधज मूत्रकृत्छ्।
- (=) अश्मरीजन्य अर्थात् पथरी से उत्पन्न मूत्रकृष्ठ्र।
- (१) वातज मूत्रकृष्ण्र—जांघ, लिगेन्द्रिय तथा मूत्राश्रय की सन्धियों में पीड़ा हो, मूत्र बूंद-बूंद करके तीव्र वेदना के साथ विसीजत हो तो समझना चाहिये कि आपका रोगी वातज मूत्रकृष्ण् की. पीड़ा से पीड़ित है। यह एटटव्य है कि इस कोटि के सूत्रकृष्ण् में मूत्र विसर्जन की इच्छा मूत्र त्याग के पश्चात् भी बनी रहती है। मूत्र का रङ्ग अलसी तेल के सहण भासित होता है।
- (२) पित्तज मूबकुच्छ्—पित्त के प्रकोप के कारण इस कोटि के मूत्रंकुंच्छ के रोगी का मूत्र पीताम अथवा रक्ताभ तथा बत्यन्त उष्ण मूत्र लिगेन्द्रिय से बड़ी तड़क-पूर्वक निष्कासित होता है। यह प्रायः व्रण शोथात्मक अव-स्याओं(Inflammatory conditions) में होता है।
- (३) कफल मूत्रक्रच्छ्र—िलगेन्द्रिय और मूत्राशय दोनों भारी हों और शोधयुक्त हों, मूल में फेन आवे, मूत्र थोड़ा-थोड़ा दर्द के साथ विसर्णित हो तो समझें कि आपका रोगी कफल मृत्रकृच्छ्र की ज्यथा से व्यथित है। इस प्रकार के मूत्र में वेदना नाममात्र की रहती है।
- (४) सित्रपातज मूत्रक्रच्छ्र—उपर्युक्त तीनों नक्षणों से युक्त जो मूत्रक्रच्छ्र हो वही सिन्नपातज मूत्रक्रच्छ्र है। यह क्रुच्छ्साध्य माना जाता है।
- (५) प्रहारज मूत्रकृष्ठ मूत्रवाही स्रोतों के शल्य विकित्सा के कुपरिणामस्वरूप पृथ्युक्त क्षत होने अथवा विकास स्रोति हो इस प्रकार के मूत्रकृष्ठ का प्रादुर्भाव होता है। इस कोटि के मूत्रकृष्ठ में वातज मूत्रकृष्ठ के समस्त लक्षण वर्तमान हो तथा मूत्र सबस्द्ध हो जाये, तो प्रहारज मूत्रकृष्ठ का लक्षण माना जाता है। यह भयंकर होता है। इससे वचना देववणात् हो समझना चाहिये।
- (६) मलावरोधज मूत्रकृष्ण या पुरीप निग्रहजन्य मूलकृष्ण भल के वेग को रोकने से वायु कुपित हो जाती है और वह मूत्राणय तथा उदर में जाकर अफरा उत्पन्न कर देती है। जांघों में पीड़ा हो और पेशाव केण्ट से उतरता हो, तो यह लक्षण मलावरोधज मूत्रकृष्ण या पुरीप निग्रहजन्य मूलकृष्ण का है। इस कोटि के मूत्रकृष्ण में मूत्रविसर्जन के पश्चात् रोगी कुछ शान्ति का वनुभव करता है।

- (७) णुकावरोधक मूगकुच्छ इस कोटि के मूल कुच्छ में वीयं मिश्रित मूत्र अत्यन्त कंण्टपूर्वक विसर्जित होता है और मूत्राग्य में वेदना की अनुभूति होती है। इस प्रकार के मूलकुच्छ का जन्म वीयं रोकने से होता है। सम्भोग कायं में रस मानव जब स्खलित अवस्था में आने को होता है, उससे पूर्व ही योनि से अपना लिंग निकालकर मैणुन क्रिया बन्द कर देता है। अथवा हस्त- मैणुन करते समय स्खलित होने से पूर्व ही किसी की आहट पाकर इस अप्राकृतिक कमें को छोड़ देने से शुकर गय से विचलित हुआ शुक्र वस्तिमुख और मूलमार्ग में पहुंचकर मूल निकाल के सागं को अवस्त्र कर देता है। और इस प्रकार मूलकुच्छ की उत्पत्ति हो जाती है।
- (८) अश्मरी अर्थात् पथरीजन्य मूत्रकृच्छ्र— यह अति दारुण है। पथरी तथा गर्करा का स्थान अन्त्रस्थान है। पथरी पित्त से पकती है, वादी से सूखती है और कफ़ के कारण खिसती हुई शकरा वन जाती है। यह मूत्र को रोकती है, जिससे रोगी के हृदय में पीड़ा, शरीर में कम्प, कुक्षि में शूल मन्वाग्न और बेहीशी होती है।

स्मरण रहे सुजाक, जरायु की विकृति तथा कांव भी कभी कभी मूत्रकृष्ठ्र का कारण बन जाती है। दोषानुसार मूत्रकृष्ठ्य की चिकित्सा—

- (१) वातज मूलकुच्छ्र—इस कोटि के मूलकुच्छ्र में अभ्यंग, स्नेहन, स्वेदन, उपनाह, उपण प्रलेप एवं उत्तर विस्त (केणीटर) का प्रयोग हितकारक सिद्ध होता है। अभ्यंग हेतु वातनाशक तैल यथा—महानारायण तील का प्रयोग प्रशस्त है। गिलोय, पुनर्नवा एवं पाषाण भेद का बवाथ अवश्य सेवनीय है।
- (२) पित्तज मूतकृच्छ्र— इस मूलकृच्छृ में शीतल. वारि का परिषेक, शीतल वारि का अवगाहन, शीतल पेय का सेवन विषेय हैं। रोगी को नारियल का दाम (पानी), खीरा के बीज, तण्डुलोदक का प्रयोग मुनिधा- नुसार अवश्य कराना चाहिए। दूध में घृत एवं शर्करा डालकर पिलाना चाहिए।
- (३) कफज मूत्रकृच्छ्र—इस प्रकार की मूत्रकृच्छ्रता में क्षारयुक्त उष्ण भौपिधियों का प्रयोग, स्वेदन, गरम सेंक, निष्ह्वस्ति और दमन कर्म का प्रयोग करना चाहिये। मट्ठे का सेवन अपूर्व गुणप्रद सिद्ध होता है। गोमूत

Tal Sioi Itildaces

५० मि॰ लि॰, केले के काण्ड का स्वरस ५० मि॰ लि॰ तथा छोटी इलायची का सूक्ष्म चूर्ण ६ ग्राम मिलाकर बार-बार पिलाने से आश्चर्यजनक उपकार होता है। यव से निर्मित:यवागू का प्रयोग भी हिताबह है।

- (४) सन्निपातलं मूत्रकृष्ठ्—वात, पित्तज एवं कफ की प्रवलता के अनुसार उपर्युक्त विधि से विकित्सा कर्म का सम्पादन करना हितकर है।
- (५) प्रहारज भूत्रकृष्ण्—उपनाह एवं सुखोष्ण संक कल्याणकारी सिद्ध होता है। सुखोष्ण गोदुग्ध में सिश्ची एवं गोधृत डालकर पिलाना चाहिए। आमलकी (आंवला) और इक्षुरस दोनों को समान मात्रा में मिला कर पिलाना भी उपकारी सिद्ध होता है।
- (६) मलावरोधक मूत्रक्रच्छ्र या पुरीपनिग्रह जन्य मूलकुच्छ्र— विरेचन कर्म, वस्ति कर्म, स्वेवन कर्म का प्रयोग अवश्य कराना चाहिये। रोगी को गोखरू क्वाय में ६ ग्राम जवाखार डालकर सेवन कराना चाहिये। इस व्यवस्था में रोगी का मूल तत्काल विस्नित होकर उसे शांति मिलती है।
- (७) शुकादरीक्षक मूत्रकृष्छ,— आस्थापन, अनुवासन एवं उत्तरवस्ति का प्रयोग शमनकारक है। मूसली, शतावरी के बीज एवं विष्टवर्ग के चूण २५ ग्राम की मात्रा में गरम एध के साथ प्रतिदिन सेवन कराया जाना चाहिये। मधु के साथ शिलाजीत का प्रयोग भी परमं सामकारी है। याचार्यों ने इस कोटि के मूत्रकृष्छ से व्यथित रोगी को अत्यन्त यौवनवती नारी से सम्भोग करने का परामण दिया है।
- (म) अश्वरी अर्थात् पथरीजन्य मूत्रकृच्छ् रोगी को तत्काल ही उत्तरविस्त (कैथीटर) हारा मूल विसर्जन करा देना चाहिये। गोखक, अमलतास, दाभ, जुलासा, पाषाण भेद तथा हरह का समभाग क्वाय १ तोला में रा। तोला मधु मिलाकर नित्य प्रयोग करना फलप्रद सिद्ध होता है। सूत्रकृच्छतानाशक अनुभदित योग —
- (१) पुननंवा (लाल) के पदा को कालीमिर्च के साथ पिलावें।
- (२) पुनर्नवा (लास) तथा श्वेत चन्दन दोनों को समभाग एकता कर जौ कुट कर लें। तत्प्रधात् दो तोला चूर्णको ४- तोला जल डासकर धरिन पर

- चढ़ावें। चतुर्थाण क्वाय रहने पर उसे उतार दें। इसमें परती कलमीशोरा मिलाकर रोगों को प्रयोग करने हेतु दें।
- (३) केंद्रयें (वरसंग) के मूल का रस २ तोला में एं छोटी इलायची के बीज का चूर्ण १ माशा मिलाकर देते रहें।
- (४) तृण पंचमूत क्याथ (कुश, काश, सरपत, दर्भ यानी दाभी और ईख के मूल का समभाग क्याध) मात्रा ४ तोला, ताजा गोंदुग्ध १० तोला और मिश्री २ तोला आपस में मिलाकर नित्य सेवन करने से पित्तज मूत्रकृष्ण्वा में आराम हो जाता है।
- (१) यवृक्षार पंचांग, कलमीशोरा, शीतल चीनी, वड़ी इलायजी इन चारों पदार्थों को समभाग लेकर चूर्ण कीजिय। २-३ माशे चूर्ण गोखरू के काढ़े के साथ दिन में चार बार सेवन करायें तथा गर्म वस्तुओं से परहेज करावें।
- (६) अमलतास का गूदा, धितयां, धमासा, शतावर, पाषाण भेद और हर समभाग लेकर चतुर्थांश दवाथ सिद्ध कर रोगी को सेवन कराने से लाभ होगा।
- (७) अलसी [तिसी] ६० प्राम, खीरा के बीज ५० प्राम, धितयां, गोखरू, विहीदाना, ईसवगोल और बबूध का गोंद ३४-३६ ग्राम, आंवला [सूखी] २६ ग्राम और शीतलचीनी ११ ग्रा. लेकर सबको जौकुटकर पीशी में भर रखें। यात्रा १२ ग्राम से ३६ ग्राम तक लेकर १/४ लिटर जल में रान्नि में भिगो दें। प्रातः मल छानकर उसकी ३ मात्रार्ये बना, प्रत्येक मात्रा के साथ ३० ग्राम मिश्री मिला, दिन में ३ वार सेवन कराये। शंत्यन्त गुणकारी प्रयोग है।
- (न) णतावरीं, कुशसूल, कासमूल, विदारीकन्द, इक्षु-मूल, शालिमूल, नाग केशर प्रत्येक समभाग । इनका क्वाय मधु व चीनी दोनों मिलाकर देने से उत्तम कार्य क्राता है ।
 —कविराज श्री अन्निदेव गुप्ता विद्यालंकार
- (६) शीर्तनचीनी, चन्दन चूरा, सत विरोजा, छोटी इलायची व असली वंश्रलोचन वरावर-वरावर लेकर चूर्ण बना लें। ४ माशा की मात्रा है चूर्ण फांक कर ऊपर से शुद्ध-शिलाजीत २ माशा, गाय या बकरी का दूध-दही की संस्ती के सार्थ लें। यदि मूत्र लगकर जलन करके याता हो तो साथ में ४ रत्ती कलमीशोरा भी लें।
 - —श्रीमती डा॰ विमला अग्रदाल (वुलन्दशहर)

न्य राग चिकित्सा

- (१०) छोटी कटेरी का स्वरस ० ताला, यवसार ६ माशा, मधु २ तोला सम्पूर्ण का मिश्रण बनाकर नित्य पीने से समस्त मूत्रकृच्छ, तथा पथरी रोग निश्चयतः ठीक होते हैं।
- (११) श्वेत स्फटिका भस्म १ माशा, फटे दूध का जल १० तोला में घोलकर पीने से निःसन्देह मूत्र कृच्छ में आराम होता है।
- (१२) तिलनाल क्षार ४ रती, क्वेत पुननंवा क्षार ४ रती, वक्षणा की छाल के ५ तोला क्वाय में घोलकर नित्य पिलाने से अक्मरी नष्ट होकर अक्मरीजनित मूत-कृष्ठ का नाण होता है।
- (१३) गुड़ ५ तोला, रसोन स्वरस, कटेरी स्वरस, घृतकुमारी स्वरस, ताचे फटे दूध का जल प्रत्येक रा। तोले सबका मिश्रण कर अच्छा घोल तैयार कर लें और नित्य पीवें। इससे मूत्रकृष्ठ शीझ दूर हो जाते हैं।

-प्राणाचार्य श्री हर्पु ल मिश्र जी (रायपुर)

- (१४) हरीतक्यादि क्वाय हरड़त्वक् चूर्णं २ तोला, जमलतास का गूदा २ तोला, जवासा का चूर्णं २ तोला, गोव्हक चूर्णं २ तोला, पाषाण भेव २ तोला। समस्त द्रव्यों को १६ गुना जल -डालकर क्वाय करें। जब अष्टमांश क्वाय शेष रह जाय तब छानकर २॥ से ४ तोले की मात्रा में नित्य पीने से मूत्रकृन्छ में लाभकर सिद्ध होता है।
- (१५) वृहद् वरुणादि नवाय-वरुण की छाल, गोजरू, सींठ, मूसली, कुल्थी प्रत्येक १-१ तोले, तृण पंचमूल ६ तोले, सबका वूणें कर १६ गुने जल में नवाथ विधि से नवाथ तैयार कर लें। मात्रा ४ तोला, यवसार ६ माशा, शवकर १ तोला मिलाकर नित्य प्रातः पीवें। इसके प्रयोग से मूत्रकृच्छ भूत शकरा, पथरी खादि जाराम हो जाते हैं।
- (१६) हजहल यहूद भरम ४ रती, यनसार ४ रती, कच्चे नारियल के पानी के साथ पीने से दो-तीन घण्टे में मूत्र विसर्जित होकर मूत्रकृच्छता का नाझ होता है।
- (१७) रोगण्यादि गुटिका—लघु कण्टकारी फल, एवेत जीरक, गुट गंधक, कुमारी रह में फूंका हुला कलमी शोरा। सभी समान भाग। इन सबका बस्त्रपूत चूर्ण बना कर गैंदे के पत्तों के रस में सात बार घोटकर झड़बेर बरा-वर गुटिका बनालें। मात्रा—२-४ गुटिका। प्रातः दोपहर बोर सार्व जल के अनुपान से दें। यह सभी प्रकार के मूब-

कृच्छ मे कल्याणश्रद है। मूहाकृच्छ के अतिरिक्त मूत्राव-रोष, कामला, अश्मरी आदि रोगों ं भी यह उपकारी है।

- (१=) क्षार पपंटी—कलमी शोरा ४० तोलां, फिट-करी ५ तोलां, नौसांदर २॥ तोला सबको लोहे के तब पर डालकर अग्नि का ताप देकर द्रव बनावें। फिर केले के पत्तों पर द्रव उडेल कर पपंटी निर्माण कर लें। माना १० रत्ती। अनुपान—ताजा जल नित्य सेवन करें। यह मूला॰ घात, मूलक ृच्छ और सश्मरी पर लामप्रद योग है।
- (११) 'गोखक' का आयुर्वेदिक इन्जेनशन बच्धों को १ मि. लि. कीर बड़ों को १ से १ मि. लि. की मात्रा में प्रतिदिन मांसान्तर्गंत अथवा १५ मि. लि. ग्लुकों में मिला कर शिरान्तर्गंत देकर अमित यश का अजीन किया जा सकता है।
- (२०) गोक्षुरादि गुग्गुल-गोखरू का चूरो आठ गुने जल में औटाकर आधा शेष वचने पर छान लें। इसी जल में बरावर गूगल डालकर पुनः औटावें। इसके वाद इसी में सोंठ, कालीमिर्च, नागरमोधा, हरें की छाल, बहेड़े की छाल और आंवला, प्रत्येक चौथाई-चौथाई भाग लेकर महीन चूण कर डाल दें। जब सब पदार्थ परस्पर मिलकर इंड हो जांय तब उसे उतार कर घृत के चिकने पात्र में रख दें। यह गोक्षुरादि गुग्गुल मूलकुच्छ्र, मूलाघात, प्रमेह, वातरक्त, शुक्रदोप नाशक समोघ सौषदि है।

साया— र माशे जल के साथ। यदि जल के बदले गों सुरादि क्वाय का प्रयोग किया जाय तो और इत्तम हैं। इसकी निर्माण विधि शोग संख्या २१ के रूप में अंधो-लिखित है—

- (२१) गोसुरादि नवाथ—वड़ गोसक, किरबारे की गिरी, दाभ की जड़, कास की जड़, जवासा, आवला, पथरचटा (पाषाण भेद) और हरें की छाल इन प्रत्येक दवाओं का नवाथ करें। इसे मधु के लाय प्रयोग करावें। यह मूलकृच्छ के लिये रामवाण है।
- (२२) मूत्ररोधान्तक वटी—हजरुल यहूद भस्म ४ तोला, स्फटिका भस्म, यवसार, अपामागं क्षार, तिलनाल सार, कण्टकारी क्षार, वरुणा का घनसत्व, गोपाल कर्कटी (कचरिया) मूल चूणं, कलमीशोरा, प्रत्येक ४.४ तोला, नौसादर, कन्धी की जड़ का चूणं, वेर की मीगी का चूणं, तृणपंचमूल चूणं, एरण्ड मूल चूणं, पाषाण भेद चूणं, पुन-

मुड्य योगा चित्रिट्सा

नंवा की जड़ का चूर्ण, गोखरू घनसार, थांवला घनसार, इलायची वीज, सत्विशालाजीत प्रत्येक २-२ तोला। कांत-लीह भस्म, श्रृङ्ख भस्म, नागमस्म, मुक्ताणुक्ति भस्म, शम्बूक भस्म प्रत्येक १-१ तोला।

निर्माण विधि—समस्त द्रव्यों को खरल में डालकर छोटी कटेरी के स्वरस की सात भावना देकर चार-चार रत्ती की गोलियां बनालें, फिर छाया में सुखा स्वच्छ शीशी में भर कर डांट लगाकर रखें। मात्रा ४ से १० वर्ष के बच्चों को १ गोली। वयस्क स्त्री पुष्टपों को नित्य २ गोली से ४ गोली जाजे जल से निगलवार्वे। यह मूत्रकृच्छ, मूत्रा-चात, अश्मरी रोग में आणुगुणकारी है।

- प्राणाचार्य श्री हर्यु ल मिश्र (प्रयोग कर्ता)

(२३) सत्यानाशी का रस २॥ तोला ले कर इसे लोहे की कड़ाही में डालकर अग्नि पर रखें और इसमें कलमीशोरा १ तोला डालकर पकार्वे। जब खारा रस सूखकर केवल कलमीशोरा बच जाये, तब कड़ाही नीचे उतार कर शीतल होने दें। अब यह पका हुआ कलमीशोरा २ माशा, मिश्री १ तोला और नीबू का रस आधा तोला, तीनों को ४ तोले पानी में मिलाकर पीने से कैसी हो मूत्रकृष्ट वयों न हो, एक सप्ताह में ठीक हो जाता है। पथ्यापथ्य पर घ्यान देना चाहिये। यह नितान्त उपयुक्त प्रयोग है।

—वैद्य श्री खेमराज शर्मा छांगाणी 'रसायन' से साभार

- (२४) सहजने (शोभाञ्जन) के १२ ग्राम गोंद का चूर्ण नित्य दही के साथ ७ दिन तक खाने से मूत्रकृच्छ मिटता है।
- (२४) भोजनोत्तर चन्दनासन का प्रयोग इस रोग में ने गुणकारी है।

एलोपेथिक चिकित्सा—

मूत्रकृष्ठता के परिणामस्वरूप वेदना होने पर स्पाजमोसिवाल्जिन या न्यूरोट्रासिण्टीन में से किसी एक की गोली दिन में ३ नार हैं। असहा पीड़ा की अवस्था में १/१०० प्रेन की एट्रोपीन सल्फेट का इन्जेवशन चर्म में लगायें। मूल की क्षारीयता बनाये रखने के लिये १० प्रेन सोड़ा-वाई-कार्ब को शीवल जल के साथ दिन भर में ३-४ वार देना चाहिये। वावश्यकता प्रतीत होने पर के थीटर की सहायता से मूत्र निकाल देना चाहिये। वानद्रा की स्थित में Phenobarbiton का प्रयोग किया जा सकता है। पीड़ा-स्थल पर गरम सेंक लाभप्रद होता है। मूत्रमागं की सूजन की अवस्था में जीवाणुष्ट औष-धियों का प्रयोग करना उपयोगी है और इस दृष्टि से Restectin (Squibb), Terramycin (Pflzer) or Achromycin (Lederle) का प्रयोग मुख द्वारा किया जा सकता है। मूत्रक च्छ में निम्न योग लाभकारी है—

एक्सट्रेक्ट करसकेरा लिक्विड	१५ वूंद
टिक्चर हायोसाइमस	१५ वृंद
पोटास साइट्रास	२० वृंद
टिक्चर देलाडीना	प्रवृंद
सीरप ,	६० बूंद

जल कुल ४ औंस। ऐसी एक माता को ३ भागों में विभाजित कर दिन में ३ दार दें।

मूलकृच्छ की प्रत्येक सबस्या में "कार्वकोल" का . इन्जेक्शन देकर लाभ उठाया जा सकता है।

. होमियोरेथिक औपधि के रूप में केन्यरिस वयू ५० वूंद दिन में ३-४ वार देने से उत्तम फलप्रद है।

सूतकुच्छ में पथ्य—

गोदुग्ध, गेहूं की रोटी, दलिया, खिचड़ी, छिलकेयुक्त मूंग की दाले, मिश्री, पालक, वयुवा, मेंथी, चौलाई, कद्दू, करेला, परवल, नारक्ष्मी, अनार, ईख, मधु, मोसम्बी, नीवू, पुनर्नवा आदि।

> —वैद्य रत्न श्री जयनारायण गिरि "इन्दु" वी०ए० (आनसें), डी०एस०सी०ए-वाइ (आयुर्वेद वृहस्पति), आयुर्वेद रत्न धजवा, पो० पूरचक (मधुवनी)।

ARTHEUR TOURS

ज्ञा॰ हाङदयास गर्ग ए०एम॰वी्०एस॰, बागुर्वेद वृहस्पति, ्सम्पादक-'धन्वन्तिर'.

गुलवार नगर, रामघाट रोड, अलीगढ़।

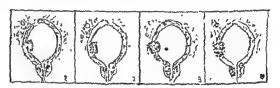
जब भी कोई रुग्ण रक्त मिश्रित मूल त्याग की शिका-यत करे तो उससे प्रश्न द्वारा यह सुनिश्चित करना चाहिए कि मूत्र में रक्त प्रारम्भ में आता है या अन्त में बाता है या घुम वर्ण का मूल आता है जोकि रक्तमिश्रित मूल का द्योतक है। भूत्र में हीमोग्लोबिन भी वा सकती है इसका भी ध्यान रखना चाहिये। स्तियों में मासिक धर्म के समय मासिक धर्म का रक्त मूत्रं में गिल सकता है जिससे रक्त-मूत्रता का भ्रम होता है। इसके निवारण हेतु कैथीटर द्वारा मूत उपलब्ध कर परीक्षा करनी चाहिए। यदि रक्त चम-कीले लाल रंग का है तथा मूत्र त्याग के प्रारम्भ में ही आता है तो अधिक सम्भावना उसके मूल प्रसेक निवका या पौरुष प्रनिथ से माने की है। ऐसी स्थिति में मूत्र पथ पर . किसी खाघात का या पूयमेह का इतिहास प्राप्त होगा। पौरुष एन्थि के शोथ या उसमें विद्रिध होने पर स्थानीय दर्द या स्पर्शासहाता जात होगी तथा गुदा में दाह भी हो सकता है। मूत्र पथ में अवुँद, तथा पुरुषों के अधिक संभो-गरत होने के कारण भी रक्तसूत्रता हो सकता है।

यदि रक्त मूत्रत्याग के अन्त में आता है तथा प्रायः रक्त के थवने जमे हुए आते हैं तो यह मूत्रवह संस्थान के किसी अवयव से आ सकता है। इस प्रकार की रक्तमूत्रता प्रायः निम्न कारणों से होती है—

- रै. तीन मूनाशय शोथ के प्रारम्भ में इसका पूर्ण विवरण आप अन्य लेख में देखोंगे। इसमें रक्तसाव मामूली होता है।
- २. मूत्राचाय में सक्सरी—इस अवस्था में रक्तसाव किसी परिश्रम के कार्य करने के पत्रात् या क्यापाम करने - के पत्रात् अधिक होता है, रक्त की माला भी अधिक होती है, यूल होता है जोकि मूद त्याग के अन्त में अमहा हो प्रता है तथा गर शब जिल्हा में अस्त तक पहुँचता है।

प्रायः मूत्राशय शोध के भ्रम में मूत्राशय स्थित व्यस्मरी का निदान नहीं होता, जोकि एवंस-रे परीक्षण, मूत्राशय शलाका (sound) या सिस्टोल्कोय नामक अयकरण _हारा परीक्षा किये जाने पर जात होती है एवं सुनिश्चित होती है।

रै. सूत्राणय के अर्बु द-इसमें, तथा त्रायः पैपित्लो-मेटा (मूत्राणय अर्बु द) (देखें चिय-१०४) मे रक्सस्राव की मात्रा अधिक होती है। अर्बु द के टूटे हुए दुकड़े भी आ



चित-- ११३

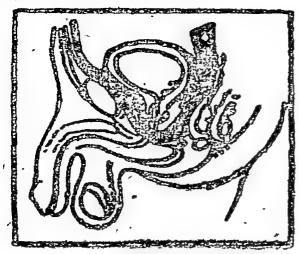
धातक मृताशयार्जुद [म्ताशय का किंसर] की क्रमणः वर्षमान चार स्थितियां, जिनके कारण कि प्रायः रक्तम् तता होती है।

सकते हैं और इससे मूत्रावय गोय उत्पन्त हो सकता है।
कैंसर में तो रक्त की मात्रा और भी अधिक होती है, वहुत
कम-कम देर पश्चावं ही होता है तथा औषधि उमचार से भी
विशेष लाभ नहीं होता। इस स्थिति में लगातार दर्व होता
है। कभी-२ मूत्रावय में कैंसर या अबूंद का ज्ञान हाथ से
मूत्रायय-स्थल को दवा कर या गुदा में अंगुली प्रविष्ट कर
परीक्षा के हारा किया जा सकता है। समीपस्थ अङ्गों से
अबुंद का प्रसार, तथा आंवपुच्छ शोध या संग्रीही जन्य
संत-वर्णों से शोध का प्रसार मूत्रायय में होने से भी रवतमूत्रता हो सकती है जिसकी कि सुनिष्चिति सिस्टोस्कोप
से ही होती है।

ं ४. पीरवग्रन्थि की वृद्धि में भी रवत-सूत्रता हो सकती _जोकि_या नो पौरुष गन्धि विट में ःे (cougestion)

Tal Pion fallancem

. के कारण या मूत्राध्य, ग्रीवा के पास इस ग्रंथि की किसी शिरा के टूट जाने के कारण होती है।



चित्र---99४

म् लप्रसेक निका या मूत्राशय के निम्न भाग पर विदर के कारण मूत एवं रक्तस्राव से प्रित स्थल, जिसके कारण कि प्रायः रक्तमिश्रित मूत्र आता है।

- ५, रक्तमूत्रता निब्न कारणों से भी हो सकती है लेकिन यह कारण प्रायः कम ही मिलते हैं—मूत्राशय का राजयक्ष्मा, स्कर्वी, परप्यूरा।
- ६, ईजिप्ट तथा दक्षिणी अफ्रीका में प्रायः सिस्टोसी-मियेसिस (एक प्रकार का आंद्रा कृमि) की मादा मूलाशय में स्थान ग्रहण कर वहां अण्डे देती है जिससे रक्तमूत्रता होती है।

रक्तमिश्रित मून -

यदि रक्त मूल में मिला हुआ खाता है तथा जिसके कारण कि मूत्र का वर्ण घूमाम हो जाता है तो यह प्रायः वृक्त से जाता है। इस स्थिति में भी भूत्र में रक्त की उपस्थिति की सुनिश्चितता हेतु निश्चित रक्त परीक्षण करके कर लेनी चाहिए जिससे फोई भ्रम नहीं रहे। वृक्त की विभिन्न परीक्षायें करके तथा अन्य लक्षणों से वृक्त सम्बन्धी रक्तलाव के विभिन्न निम्न कारण उपलब्ध हो सकते हैं।

१ वृवक शोय—तीव वृवक शोघ में प्रायः निर्मोक (Casts) प्राप्त होती हैं। अनुतीव वृवक शोघ या जीण ववकशोध में व्यायाग या किसी परिश्रम के कार्य के पश्चात मूल में रक्त राता है। बृक्कणो्य के साथ उच्च रक्तचाप होने के कारण भी रक्तमूत्रता होती है। (उच्च रक्त-चाप में रक्तमाव नाक से या मस्तिष्क से भी हो सकता है।) जीकाणुजन्य अनुतीव हृदयावरण शोथ के कारण उत्पन्न infarction में भी रक्त मूत्रता हो सकती है। किसी एक या दोनों वृक्क में क्षय के फारण भी रक्त मिश्रत मूत्र आ सकता है (इसका पूरा विवरण वृक्क यक्षमा शीर्षक अन्य लेख में देखें)। तीन्न मूत्र गवीनी शोणि शोथ या मूत्र गवीनी में पूर्योत्पित के कारण उत्पन्न शोथ, कुछ आंत्रकृमियों के कारण भी वृक्क से रक्त मिश्रत मूत्र आंत्रकृमियों के कारण भी वृक्क से रक्त मिश्रत मूत्र आ सकता है।

- २. गम्भीर प्रकार के दाहयुक्त शोध—साधारण शोध से मूत्र में प्रायः शुक्ति (एल्ब्यूमिन) मिश्रित आती है लेकिन यही शोथ तीझ हो जाने पर रक्त मूत्रता भी उपलब्ध होती है।
- (अ) सर्वाधिक कारण हृदयावसाद (दाहिनी ओर का) है। इसमें थोड़ा, लेकिन चमकीला तथा प्रथम एल्ब्यूमिन युक्त एवं पञ्चात् में रक्त की मात्रा बढ़ने के साथ-साथ एल्ब्यूमिन की मात्रा भी बढ़ जाती है। दीर्घकालीन रुग्णों में हायलाइन कास्ट उपलब्ध होते हैं।
- (व) उभयपक्षीय जलापेवृदकता में मूल से भरे मूत्रा-शय को कैथीटर प्रवेश करके एकदम खाली कर देने से भी यकायक शोथ उत्पन्न होकर रवतमूत्रता होती है। इसके पश्चात् मूत्रहच्छ्रता या मूत्राघात (अमूलता) भी हो सकती है। इस स्थिति को घ्यान में रखकर चिकित्सकों को चाहिए कि मूत्राशय को एकदम रिक्त कभी न करे अपित् उसे धीरे-२ कई बार में रिक्त करें।
- (स) वृक्क की शिरा में कोई थक्का रुकते के कारण तीव प्रदाह उत्पन्न हो सकता है। यह प्रायः माला गोला-णुओं (strepto coccus) के संक्रमण के कारण उत्पन्न होता है। इसमें मूच में यकायक ही रक्त आने लगता है और इसके साथ साथ ही वृक्क जाकार में वड़ा एवं स्पर्णा-सद्यता भी होती है।
- (द) उर्वास्थि भग्न बादि स्थितियां जव रोगी दीर्षं काल तक विस्तरे में पड़ा रहता है उसके प्रधात् जव उसको चलगा प्रारम्ध कराया जाता है तो तसके दसरे

मुखा रोगा चिवित्रस्या

तीसरे दिन प्रायः प्रदाह उत्पन्न होकर मूर्च में रक्त वाने लगता है। इस स्थिति में कमर में दर्द, प्रसरणशील शूल, रक्त मूलता आदि लक्षण होते हैं जिनका कि शमन रूण कुछ दिनों के लिए पुनः पूर्ण शय्या विश्राम लेने पर हो जाता है।

३. वृक्क रक्त वाहिनियों के अवरोध युक्त या अवरोध रहित स्थिति में वृक्कावरण शोथ होने पर कुछ-कुछ समय के अन्तर से प्रदाह सहित रक्त मूत्रता होती है।

४. वृवकाश्मरी या शकरा होने पर वृवक शूल सह-रक्तमूत्रता होती है। (वस्तृत विवरण अन्य प्रकरणों मे देखें)

४. रक्त की कुछ स्थितियां जैसे कि स्कर्वी, परप्यूरा, मलेरिया।

६. कितियय श्रीपिधयों के कारण भी रक्तमूत्रता हो सकती है जैसे कि सैलीसिलेट, फिनोल, सल्फा पायरिडिन, सल्फाथियाजील, हैवसामिन, कैथाराइड्स (दक्षिण अफीका में पाई जाने वाली एक प्रकार की मक्खी का चूणे) तार-पीन का तैल आदि।

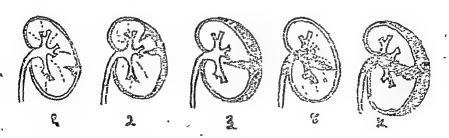
७. वृक्क के वर्बुद यथा कार्सीनोमा, सारकोमा, हाइपरनाफोमा तथा बहुपुटीय वृक्कशोय, या मूत्र गवीनी श्रोणि मे कार्सीनोमा या पैपित्लोमा होने पर । इस स्थिति में प्रायः चूल तो होता ही नहीं और रक्तस्राव मगातार समयान्तर से हो सकता है।

प. नवयुवकों में प्राय: वृवक के एक छोटे से भाग मे

णीय होने पर (Patchy nephritis) मामूली या गंभीर प्रकार की रक्तम ज्ञता जिसके साथ कि साधारण या गंभीर का एक या दोनों मोर शूल भी रहता है हो सर्कती हैं। इस स्थिति में वृक्कोच्छेदन करने से रक्त मूजता प्रायः समाप्त हो जाती है (लेकिन वृक्कोच्छेदन प्रायः करना नहीं चाहिए)

हो मो ग्लोदिन्रिया से प्रायः रक्तम् ज्ञता का प्रम हो जाता है लेकिन यह वास्तिवक रक्तम् ज्ञता नहीं है। इसकी सुनिश्चिति मूत्र में रक्त परीक्षा करने पर मूत्र में होमोग्लोदिन तो मिलने लेकिन रक्त की प्लेटलेट (Blood platelets) न मिलने पर होती है।

१०. वृक्क के आधात—वृक्क का कुचलना या फटना
(यह प्रायः कमर के बल गिरने पर होता है या कोई
गंभीर दुर्घटना होने जैसे रेल दुर्घटना, या सड़क पर दुर्घटना। ऐसा घी हो सकता है कि आधात का कोई बाह्य
विह्न यथा खुरचट आदि न हो लेकिन वृक्क कुचल या
फट जाये जिससे दीर्घ काल पश्चात् साधारण चोट लगने
पर उसके सक्षण उमर आयें। वृक्क के सावरण में बहुत
अधिक रक्तसाब होने के वावजूद भी रक्तम वृत्ता नहीं हो
लेकिन इस स्थिति में वृक्क स्थान पर मन्द द्वनि (dull
sound) तथा तनावयुक्त शोथ होगा। इन स्थितियों में
तुरन्त शल्यकर्म करके रक्तसाव को येनकेन प्रकारेण रोकना
आवश्यक है तथा यदि बहुत अधिक रक्तसाव हो गया है
तो रुग्ण को रक्तादान भी आवश्यक है। लवण जल
निक्षेप तो अत्यावश्यक है हो।



चित्र संख्या- ११५

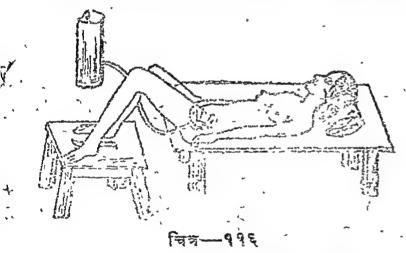
·वृत्क पर साबात लगते. पर घृतक में रक्तसाद की पांच विभिन्न अवस्थायें, जिनमें से कि चौथी एवं पांचवीं अवस्थाओं में यृवक विदर मूल गवीनी श्लोणि तक पूर्ण होने के कारण युक्क से रक्तसाव गवीनी निलका में होकर मूत्रा-

Tal eigh fileseth

चिकिस्सा---

कारण एवं तक्षणों के अनुसार - चिकित्सा करनी चाहिए। रक्तमेह में यदि रक्त किस स्थान से आ रहा है तथा वहां से किस कारण आरहा है यदि यह सुनिश्चित हो जाय तो उस रोग की या उस अङ्ग की यथोचित चिकित्सा करनी चाहिए। साधारणतः विटामिन सी, विटामिन के मे योग देने चाहिए। कीएगू जिन सिटा या क्लीडेन के इन्जे-कणन देने चाहिए। शिरान्तर्गत क्लूकोंज, सुमान्य खब्ण - विलयन, डैक्स्ट्रोज बादि का प्रयोग करें। अधिक रक्त छाव की अवस्था में रोगी का ग्रुप ज्ञात कर उसी एक के दाना का रक्त वादान कराये जिससे उसकी जीवन रक्षा हो नके।

आयुर्वेदानुसार रेक्त मूत्रता को रक्ति में सम्मिलित किया गया है। इसके लिये किसी पिच्छिल दव गुणा शाल्मली पुष्प अथवा पंच वर्कल के शीत कपाय की अथवा गेरू र तोले, रसीत र तोले, किटकरी र तोले, तूतिया



र मासे का पीसकर १ सेर जल में मिलाये हिम से उत्तर बस्ति या विचकारी देने से लाभ होता है। पंध्यार्थ पेया का सेवन कराना चाहिए। बलावल देखकर दीप से लंगी-धनार्थ वमन करायें । अधोग रक्तपित्त में क्योंकि निदान उटण और इस होता है इस कारण प्रध्य पेया द्वारा आदि द्वारा तर्पण करना होता है। यदि वमन कराना बमीट्ट हो तो प्रथम वमन द्वारा संशोधन कराके तत्पश्चात पेया सेवन करायें। मूझ मार्ग द्वारा, प्रवृत रक्तमूझता में प्रायः जीव रक्त ही होता है इस कारण जीव रक्त है या दूपित रक्त है इस परीक्षा के चनकर में न यह कर उसके रोकने की चिकित्सा प्रारम्भ करनी 'चाहिये। कुछ आयु-वेदिक योग इस प्रकार हैं— '

-काकोदुन्बर (कटूमर या कटगूलर) के फल के रस में शहद मिलाकर पिलायें।

-- अडूसा पंचांग अथवा केवल पत्तों के क्वाध में शियंगु, संगजराहत (सेलखड़ी), श्वेतांजन (सफेद सुरमा), लोध का चूर्ण और मधु मिला कर पान करावें।

मूत्र मार्ग से रक्त की शिति ह्वृत्ति पर शीत तथा स्तम्भक औपधियों की उत्तर वस्ति दें अथवा पंचतृणमूल से तिष्ट दूध का पान करायें। तत्पश्चात् प्रियंगु, फिटकरी, लोझ तेषा रसांगन (रसीत) को सममाता में मिश्रित कर आधा मासा चूर्ण को अडूसे के पत्र स्वरस अथवा सधु में मिला सेवन करायें। यदि शस्त्र के आधात से किसी भी जगह से रक्तआब हो रहा है तो इस चूर्ण का उस स्थान पर अवन्यूर्णन अच्छा लाभ प्रदान करता हैं।

— दूर्वाच घृत (भैप॰ रत्नावली) की छत्तर वस्ति उत्तम है। सन्त्रव्य घृत (भैप॰ र॰) का र मागे से ६ माने तक का जान्तरिक प्रयोग उत्तम है।

न्मीयुज्य रत्नावली का जणीरासव २ तोला की माना में दिन में तीन बार सेवन करावें। यदि मूल में जलन होवे तो चन्यनासव १-१॥ तीले और मिलालें

पध्य — दमन तथा लंदन लामदायक हैं। पुरानें साठी द्यान्य, शालि द्यान्य, कोदों, जी, मूंग, मसूर, चना, अरहर, मोठ की दालं. सन पकार के कपाय रस वाले द्रव्य, गी तथा दकरी द्या दूध, घृत, भैंस का घी, चिरींजी, कदलीफल (केला), चौलाई, परवल, कोहड़ा के शाक, ताड़ के पके फल (खजूरा), अनार, बांवला, सींफ, नारियल, डाम का पानी फीना, कतेल, सिघाडा, कैंच, कमलकन्द (कमल ककड़ी), फालसा, जिम्ब पत्र, चिरायता, तरवूज, सत्तू, दाख, मिछी, मधु, गन्ने का रस कादि का सेवन। शीतल जल से स्नान, शतधीत घृताम्यक्ष यादि उपयुक्त हैं।

अपद्या—स्यायाम मार्ग गमन, घूप का सेवन, वेग रोछ, किसी तेज घनका लगने वाली सवारी में बैठना, स्वेदन, रक्तमोक्षण, घूमंपान, मैथुन, कुलबी, गुड़, बैंगन, उंड़द, सरसों, मद्य सेवन, सभुन, कहु सम्ल एवं लवण रस वाले पदार्थ, विवाहकारी द्रव्य हानिकर हैं।

• वमन हेनु मुर्लंटी के क्वाय में मधुं एवं लवण मिसाकर पिलावें। सत्तू के घोल में मैनफल का ६ गासे खूर्न वयोचित मधु एवं शर्करा मिलाकर पिलावें। शालपंकी बादि क्षपु पंचमूल के देवाय में बनाई गई पेया पिलावें।

स्त्रा की हिस्पिन्न तिक तियां और उनका प्रतिकार डा॰ जयनारायणं गिरि 'इन्दु' (मेडीकन जर्निताट)

१. मूद हे तर्करा की उपस्थिति—

(क) चन्द्रशमा वटी ४ ग्राम, शिलाजित्वादि लौह ४ ग्राम, हेरनाथ रस ४ ग्राम, जामुन की गुठली की चूर्ण २५ ग्राम, मेंपी का चूर्ण २६ ग्राम।

उप्युक्त पांची शौषिष्ययों को चूर्ण करके खरल में हालकर घोट लें और उसे नई साइज के कैपसूलों में भर लें। प्रातः सम्यं १-१ कैपसूरा पानी के साथ दें। सर्करा का आना बन्द हो याता है।

(ख) मधुमेहारि क पसूल-

कीकर का गोंद रे तोला, कीकर का फूल, पत्ता, छाल, फली और जड़ की छाल १-१ तोला, करंज की गिरी निदौली सालम मिश्री, सत्तपोदीना, दोनों 'तुलसी, सत्नानाशी का पंचांग, पुनर्नेवा मूल, बकायन का पंचांग, दनाय, बृटकी, निजीय, रेवन्दचीनी, बीकुवार, कुठ, हल्दी, रास्ना, काकड़ासिंगी, देवदार, छना, अतिवला. कींचवीज, पाहल अरणी भिलीय, एरण्ड, पापाणभेद, सफेद अकर, लाल अर्क, घतादरी, अपामार्ग पंतांग, धतुरा, भारंगी, झड़वेर, जी, कुलत्य, ढाक के बील ये प्रत्येक चार-चार तोला लेवें और सबको खूब कूट पीसकर चार सेर गोमूत्र में भिगो देवें। रात भर पड़ा रहने देवें। सबेरे सबको मसलकर छान लें और लोहे की कड़ाही में भर कर चुल्हे पर चढ़ा दें। फिर इसमें गुड़गार का चूर्ण एक पाव, णिलाजीत दस तोला, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिर्च, पीपन, पीपलामूल, मिलावा, कत्था, शीधम के वीज भी १-१ तोला कृट पीसकर मिला दें। मन्द अग्नि से पाचन फरें। जद गवलेह पैसा बन जावे तव उसमें अध्रक भस्म, निवंद भस्म, प्रांग भस्म, ताज और वैक्रान्त भस्म चार चार माशा मिला वें और पकाते-पकाते खूब गाढ़ा कर दें। अन्त में आधा सेर मेड़ासिगी के फलों का चूर्ण- मिलाकर कूटते-कूटते सूक्ष्म चूर्ण बना हैं। धूप में भी सुखाकर कुटाई की जा सकती है, अन्त में १-१ माशा यह चूर्ण कैपसूल में भर लें। प्रातः, दोपहर, सार्य और सोते समय एक-एक कैपसूल गरम पानी से सेवन करें। सी दिन में पूर्ण और स्थाई लाभ हो जाता है। रक्त की चीनी सवा के लिये नष्ट हो जातो है। यदि इसमें अन्निस्थामी हिंगुल, अन्निस्थाई हरताल, अन्निस्थामी यश्वदमस्म आठ-आठ माशा और मिला दी जाय तो सभी प्रकार के उपद्रवों से युक्त असाध्य मधुमेह को समूल नष्ट कर देता है, यह धुव सत्य है।

-कविराज श्री थी.एस. प्रेमी णास्त्री एम.ए.एम.एस.
(वैद्य रत्न श्री जयनारायण गिरि 'इन्दु'
हारा सम्पादित 'धन्वन्तरि' के
''कैपसूल अङ्क्ष" से सामार),

- (ग) कैय के फल के गूदे को सुखाकर छाया सुखाकर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को ३ से ६ माशे. की मात्रा में मधु से सुबह शाम नियमित सेवन करायें।
- (घ) यूनानी की कुर्स जियावेतिस २-२ टिकिया प्रातः तथा सायं छाछ से दें।
- (ङ) ढाड्बनीज (फीजर) या हायनावील (हैनस्ट) टेबलेट या इन्सुलिन का इंजेक्शन रोगी की स्थिति के अनुसार दिया जाना चाहिये।
- २. मूत्र में एल्ब्युमिन की रिर्घात-

[क] चन्द्रप्रभा वटी १० ग्राम, वृहत् बंगेश्वर रस ४ ग्राम, त्र्यूषणादि गुग्गुल ४ ग्राम ।

तीनों बौपधियों को खरल कर कैपसूल में भर लें। और प्रावः सायं १-१ कैपसुल पानी के पाद दें। प्रयोग से एल्ब्युमिन की मूल में उपस्थिति समाप्त हो जायगी।

THE POINT PROBLEM

[ख] चन्द्रप्रभा वटी १० ग्राम, लौह भस्म १ ग्राम, पूर्णचन्द्र रस १० ग्राम।

सबको खरल करके कै पसूलों में भर लें। रक्ताल्पता रीग में एत्ट्युमिन की शिकायत होने पर उपयोगी है। उसके प्रयोग से रक्ताल्पता भी दूर होती है और मूच में अप्लब्युमिन का जाना भी एक जाता है।

[ग] तारकेश्वर रस १५ ग्राम, पुनर्नवादि मण्डूर इ

इसे खरल कर कैपसूलों में भर लें। प्रातः सायं १-१ कैपसूल पानी के साथ प्रयोग करने से तीव या जीर्थ चृक्त शोथ में लाभ होता है और एल्ब्युमिन का आना बन्द हो जाता है।

[घ] स्ट्रॅंग्टो पैन्सलीन आंघा ग्राम, १० दिन तक

६. 'मूत्र में रक्त की उपस्थिति—

कि वरणाद्य लीह १५ ग्राम, प्रदरान्तक लीह १५ ए ग्राम, पुरुषानुग चूर्ण १५ ग्राम।

सभी की खरल में डालकर एक संग कर लें और बड़े साइज के कैपसुलों में भर लें। २-२ कैपसूल दिन में दो या तीन बार जल अथवा उशीरासव के साथ दें।

् [ख] कामदुधारस १४ ग्राम, रक्तिपत्तान्तक लीह

इसे कैपसूल में भर लें और प्रातः सायं राति में १-१ या २-२ कैपसूल उशीरासव के साथ दें। रक्तमूत्रता को दूर करके इस विकृति को दूर करता है।

[ग] क लिशयम सेन्डोज १० सी. सी. का शिरान्त-गंत सूचीवेद्य करें और क्रिस-४ की सूर्ध प्रतिदिन मांस में दें। मुख द्वारा कैपलिन अथवा स्टीप्टोविट का प्रयोग शाशु-फलदायक है।

४. मूल में पीव की उपस्थिति-

[क] वृहद् वात चिन्तामणि रस ५ ग्राम, प्रवास •

इसे की पसूलों में भर लें। प्रातः सायं प्रयोग से मुमागय णोय में पीव की उपस्थिति पर लाभश्द है।

[च] सोमनाथ रस र प्राम चन्द्रपभा वटी १५ गा.। इसे खरल कर कैपसूलों में 'गर लें.। इसके नियमित सेवन से पाइलाइटिस रोग नण्ट होते हैं और यह विकृति भी दूर हो जाती है।

[ग] गुन्चक रहायन, प्रवाल पिष्टी १०-१० ग्राम ।
्रें इसे खरल कर कैं पसूलों में डाल दें। इसके अवस्थानुसार प्रयोग करने से मूल नली भोथ रोगों में उपकार
होता है तथा मूत्र में पीव माना वन्द हो जाता है।

४. मूल में स्नेह की उपस्थिति - प्रमेह चिन्तामणि रस ५ ग्राम, सर्वेश्वर रस १ • ग्राम ।

उपर्युक्त दोनों भौषिष्यों को कैपसूलों में भर लें। यह मूत्र में स्नेह आने पर उपकारी है। . -

६. मूल में फास्फेट आने पर--सोमेख्वर रस १० ग्राम मेहबज्ज रस ११ ग्राम ।

खरल कर इसे क पसूलों भें भर लें। प्रातः सायं १-१ क पसूल चल के साथ प्रयोग करावे से मूल में फास्फेट माना बन्द हो आता है।

७. मूत्र में आवजलेट - चन्द्रप्रभा वटी, शुक्रमातृका वटी १० ग्राम ।

इसे खरल कर कैं पसूलों में भर लें। अवस्थानुसार इसके प्रयोग से मूत्र में आक्जलेट की उपस्थिति समाप्त हो जाती है।

ह. मूत्र में ही मोग्लोविन — शतमूलादि लौह, सोम-नाथ रस, प्रताल पिण्टी प्रत्येक ४-६ ग्राम, आतन्द भैरव स्स १० ग्राम ।

उपयु क्त चारों बौषधियों को खरल में भली प्रकार घोटकर कैपसूलों में भर कें। इसके प्रयोग से सूल में हीमोग्लोबिन का आना बन्द हो जायगा।

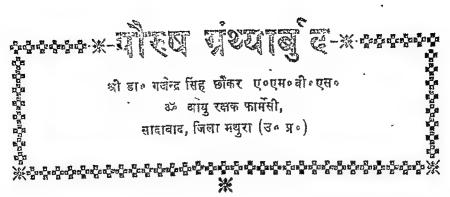
ह. मूत्र में यूरेट—सर्वेश्वर रस १० ग्राम, पूर्णचन्द्र रस ५ ग्राम । खरल कर छोटे साइज के फीपक्सों में भर लें । मूत्र में यूरेट की उपस्थित में गुंणदायक है ।

१०. मूत्र का गंदलायन—स्वर्ण वंग, रजनी चूर्णः २ ग्राम, सत्व गिलीयं ४ ग्रामः

ै इन तीनों को खरल कर कैं पसूलों में भरें। आवश्यक-तानुसार १ से २ कैं पसूल भोजनोत्तर चन्दनासम की समान भाग जल मिलाकर अनुपान के रूप में सेवन करायें। —सा जयनारायण गिरि 'इन्दु'

(मेडीकल जर्नेलिस्ट)

धजवा, यो न तूरचक (मधुवनी)



प्रोस्टेट कैन्सर (Carcinoma of Prostate) -प्रोस्टेट वृद्धि के एंगियों ने २०% के लगभग में कैन्सर पाया जाता है। ६० से ७० वर्ष की आयु में इसने रोगी देखने को मिलते हैं। प्रोस्टेट वृद्धि और कैंसर दोनों साय-साथ भी हो सकते हैं पर अधिकतर वृद्धि के बाद ही कैंसर होता है और यह धीरे-धीरे बढ़ता है।

प्रोस्टेट कैसर के प्रारंप—तीन प्रकार का होता है-नैदानिक प्रच्छन, गुप्त। नैदानिक (Clinical)—में मूनाशय की गीना पर अवरोध हो जाने से लक्षण प्रकट होते हैं और मूनावधारण हो जाता है।

प्रच्छन्न (Occult) छिपा हुशा किन्तुं सिक्रय होता है, कोई लक्षण नहीं उत्पन्न होते किन्तु वह अस्थियों में स्थलान्तरण के रूप में अपने को प्रकट करता है।

गुष्त (Latent) - छिपा हुआ यौर निष्क्रिय होता है केवल कित परीक्षा पर उसका सान होता है। गुष्त मन्द-यधीं, वृद्धियां कई वर्ष तक जिना लक्षण के पड़ी रहती हैं। बहुत सी सब परीक्षाओं से पता लगता है कि १० वर्ष से कपर है १६ % व्यवतयों में गुष्त कार्सिनोमा होता है।

लक्षण—सामान्यत्या प्रोस्टेट के पीछे के भाग में कैंगर का प्रोरम्भ होता है और कैंसर के बगल-वगल और उपर के भाग में फैलता है। इसका स्थानिक विस्तार शुक्राशय में पहुँच कर वहां प्रण बना देता है श्रोणि की तन्त्रिकाओं के अन्तः सरित (infiltrated)होने पर शिश्न मूत्राधार, णीठ और उस में तीव वेदना रहती है। प्रारम्भ में लक्षण सत्रुम पुष्ट्य निवर्धन के होते हैं बर्धात, दिन और रात में मूत्र त्याग प्रधिक होना और मूत्र त्याग में कठिनाई, होना, मूलाधान और सूत्रावरोध होता है। बहुत दिनों तक इस का निवान नहीं हो पाता। रोगी का तूब वन्द होने पर प्रोस्टेट वृद्धि की परीक्षा के समय व वृद्ध अवस्था में जल्यकर्म के पण्यात् प्रनिथ परीक्षण से इसका ज्ञान होता है। इस रोग

का प्रधान लक्षण जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है मूला-घात और मूत्रावरोध है पर रोग का कि टप्रदेश की अस्थियों में प्रसरण हो जाये तो कमर में दर्द होती है साथ ही गृध्यसी (Sciatica, अथवा प्रन्थि कर्म क्षये (फोस्टिने-जिमा) की शिकायत भी रोगी करता है। व्यचित कैसर की .प्रसरणशीलता अस्थि में होने से रक्त पतला होजाता और पांडुता और कुश्रता के लक्षण भी होते हैं।

परीक्षण—कैसर वाली प्रोस्टेट ग्रन्थि पापाणवत्, किन होती है। निवान के लिये रक्त तथा ऐक्सरे पंरीक्षा तथा सिस्टोस्कोपी परीक्षा की जाती है। रक्त में एसिड फास्फेट्स का प्रमाण बढ़ा हुआ मिलता है। सूत्रशोथ की रिक्त करवा कर मलाशय हारा अंगुली परीक्षा से निवान हो सकता है। पुरस्थणिय का सामान्य आकार बढ़ा मिलता है तथा उसमें कठोरता परिस्पर्श्य होती है। सिस्टोस्कोप से मूताशय की प्रीवा या त्रिभुजा के आक्रांत होने का पता चल जाता है। थोणि और मेक्वण्ड की एक्सरे परीक्षा में अस्थि निक्षेप (deposits) तथा धनीभूत क्षेत्र हण्टिगोचर होते हैं। प्रोस्टेट से छोटा टुकड़ा सूई द्वारा बायोप्सी परीक्षण से भी निश्चित निवान होजाता है।

चिकित्सा—यह रोग असाहय है। अधिकतर-रोगियों को उन के जीवन के अन्त तक स्टिट्वेस्ट्रोल (Stilbo-estrol), ६-१६ मिलीग्राम दिन में ३ वार लेना होता है। इसकी दैनिक माना २६ मिलि तक ले जाने से इस रोग की तीवता को कम किया जा सकता है। कुछ रोगियों में ईस्ट्रोजन किया की वृद्धि के लिए वृषणोच्छेदन कर दिया जाता है। इस चिकित्ता से रोगी की विधाम मिलता है और बहुत से रोगी कई वर्षों तक जीवित रहते हैं। चिर अवधारण वाले रोगियों में पारमूत्र मार्ग उच्छेदन (Tiansurethral resection) आवश्यक होता है।

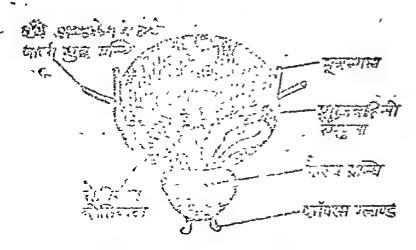


डां० महेन्द्र कुमार गर्मा एम॰ए॰, ए॰एम॰वी-एस॰ (लखनळ), प्रवक्ता काय-विकित्सा डा॰ दिनेशचन्द्र गुर्प्ता वी.ए॰एम.एस., रेजीडैन्ट मैडीकल आकीसर लितहरि राजकीय आयुर्वेदिक कालेज, पीलीभीत (च॰ प्र॰)

इस अवस्था में भरीर के अञ्च-प्रत्यञ्जों व इन्द्रियों की कार्यामन्दता के साथ साथ भारीरिक क्रियाओं को सम्पन्न कराने वाली ग्रंथियां भी अपना स मुचित सहयोग देना बन्द करने लगती हैं। मानव भारीर की पौरुष (अष्ठीला) ग्रन्थि भी उत्त विकृति का अपेदाद नहीं है। पुरुषों

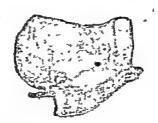
मुहायाय मुहायाय मालाधाय गोरुष ग्रन्थि

चित्र—११७ पौरुष ग्रंथि की सूत्रवह एवं प्रजनन संस्थान के अंगों के साथ स्थिति



चित्र ११८--पोरुष प्रनिध

में यह ग्रंथि मूत्र स्रोतस के उपरी सिरे तथा मूत्राशय के निम्न हार को घेरे हुए लगभग २०-२५ ग्राम धार की, चैमनट सहग ४×३×२.५ से.मी. आकार की तथा एक मध्य एवं दो पार्श्व खण्डों से युक्त होती है। इसके दोनों



ंदिह्छ छ छ छ छ छ छ छ छ चित्र—१९६

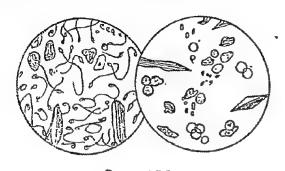
बृद्ध पौरुष ग्रन्थि पर शिरा-जाल कि कि कि कि कि के कि कि

अर के स्रोत मूत्रस्रोत में खुलते हैं। यह ग्रंथि प्रन्थिल स्ततकों (Glandular Tissue) को घेरे हुये मांस सूत्रों से बनी होती है एवं सौत्रिक तन्तुओं के कै पसूलों से हकी रहती है। वास्तव में इसी ग्रंथि के द्वारा मूलायय का निय्न द्वार (Sphincter) वनता है। इस ग्रन्थि का पतला स्नाव शुक्त का सहायक स्नाव होता है जो शुक्राणुओं को गित प्रदान करता है। लगभग ५०-५१ वर्ष से कपर के वृद्ध पुरुषों में यह ग्रन्थि आकार में कुछ वड़ी हो जाती है, जिसे पौरुष-ग्रंथि वृद्धि कहते हैं। आयुर्वेद निकित्सा

चित्र-१२० पौरप ग्रंथि के तीन खंड

शास्त्र के अन्तर्गत इसका वर्णन भूत्राधात में वर्णित सूत्रा-प्ठीला एवं मूत्र ग्रन्थि के नाम से निलता है। कारण एवं रोगकास्ति।—

वृद्धावस्था में पौरुप ग्रन्थि की वृद्धि का मुख्य कारण हार्मीन-असन्तुलन होता है। इस आयु में प्रायः पुरुष हार्मीन-टेस्टोस्टेरोन की उत्पत्ति कम हो जाती है तथा



चित्र - 9२9
गुक्राणु (क्राचें) एवं पौरुप ग्रन्थिसाव (दाचें)
का सुक्ष्मदर्शकीय चित्र

स्त्री हार्मोन ईस्ट्रोजन की उत्पत्ति अपेक्षाइत उतनी कम नहीं हो पाती है। इस प्रकार स्वधावतः होने वाले हार्मोन-असन्त्रान से प्रायः दो प्रकार की वृद्धि होती है—

- '(१) स्नायु तन्तु वृद्धि (Fibro-adenoma of Prostatic enlargement)
- (২) গাঁৱৰ যদিখ বৃদ্ধি (Carcinoma or Middle Lobe (mostly) enlargement)

ग्रन्थि के पार्श्व खण्डों एवं स्नायु तंतु की वृद्धि से मूबोत्सर्ग हेतु जोर लगाने पर मूत्राशय पर भार वढ़ जाता है। फलस्वरूप दोनों पार्श्व खण्ड अन्दर की ओर पास-पास था जाते हैं जिससे मूत्राशय का निम्न द्वार बन्द हो जाता है। है एवं इसी के कारण मूत्र निकलना भी बन्द हो जाता है।

पीरुष ग्रन्थि वृद्धि में आक्ति विषम एवं किर्न हो जाती है। प्रायः मध्य खण्ड प्रभावित होता है। जो प्रसेक संकोचनी में उपर की ओर बढ़ती है। रोगी के मुत्रोत्सर्ग के समय जोर लगाने से मुत्राशय के अन्दर का भार बढ़ जाता है तथा खण्ड नीचे की बोर भुककर प्रसेक संकोचनी को वन्द कर देता है। अतः मूत्र अवरुद्ध ही जाता है। धायुत्रद के अनुसार इस रोग का कारण प्रवृद्ध वात एवं फफ से रक्त दुण्ट बताया है।

लक्षण--

- (१) बहुसूत्रता—पीरुष ग्रन्थि के सूत्रमागं या सूत्रा-णय के अन्दर की ओर आ जाने से सर्व प्रथम राति में सूत्र प्रवृत्ति अधिक (लगभग ३-४ गार) होती है। सूत्र अवरोधनी के खिच जाने से सूत्र त्याग की इन्छा वार-वार उत्पन्न होती है।
- (२) कामणक्ति लोप प्रारम्भ में पुरुष की कामणक्ति कुछ वढ़ जाती है लेकिन ग्रन्थि के कुछ बढ़े होने पर काम-शक्ति लुप्त हो जाती है।
- (३) मूत्रकृच्छ्र—मूत्र करते समय काफी देर के बाद बूंद बूंद करके उत्तरती है। मूल की धार निर्वल हो जाती है। सागे दूर न गिर कर विस्कृत नीचे गिरती है।
- (४) मूत्राघात अत्युष्णपान, नद्यपान, अतिशीत सेवन, दीर्घयात्रा या दीर्घकाल तक आराममय विस्तर पर पड़े रहने से मूत्राघात हो जाता है। जिसके कलस्वरूप तीन उदरशून जोकि वंसण की और गमन करता है, पाग्रा जाता है।
- (४) रक्त मूझ—प्रस्थि के मध्य खण्ड से सम्बन्धित रक्तवाहिनियों में विस्फार के फारण मूत्र के साथ गुढ़ रक्त आने लगता है। इस स्वयस्या को रक्त मूत्रता कहते हैं। निदानार्थ परीक्षा—
- (१) उंदरगत परीक्षण मूत्राणय तनावयुक्त मिनता है। वृक्क स्पर्णगम्य हो जाते हैं।
- (२) गुद परीक्षण ग्रन्थि की वृद्धि स्पष्ट विक्रनी, कठिन एवं मध्य परिखा का अनुभन किया जा सकता है। । गुदपेशी पौरुष ग्रन्थि से अलग स्पर्शगम्य होती है।
- (३) आयु प्रायः १५ वर्षं से ऊपर एवं लक्षण धीरे-धीरे उत्पन्न होते हैं।
- (४) अन्तिम अवस्था में देर तक पूत्र रुके रहने से वृनकों द्वारा पूरिया पूर्णरूपेण न निकल पाने पर उसके रक्त में मिल जाने से पूरीमिया (मूत्र विपमयता) उत्पन्न हो जाती है।
 - ं (१) मूत्र परोक्षा-विभिष्ट गुरुत्व कम् हो जाता है।
 - (२) रक्त परीक्षा-यूरिया की उपस्थिति पाई जाती है।
- (२) मूत्राभय दर्शी नाड़ी यन्त्र द्वारा परीक्षण— पौरुष मंथि के खंड के आकार की जानकारी।

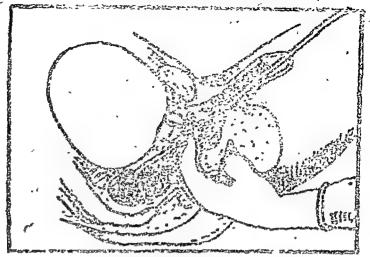
The field felicited will

- (४) गोणिका चित्र—वृक्क के कार्य, जलापवृक्कता
- (१) मूत्राशय दर्शी नाड़ी चित्र—ग्रन्थि के बढ़ जाने के कारण टोपी के आकार का अवकाश मिलता है।
- (६) प्रोस्टेट कैंसर में सौरम एखिड फास्फेट में के. ए. यूनिट से अधिक मिलता है। सापेक्ष निदान—
- १-- मूत्राणमरी-- इंसमें गुद प्रीक्षण में ग्रन्थि का अनुभव नहीं होता है।
- न्मूत्र परीक्षा में शकंरा, फास्केट, आवजीलेट मादि की उपस्थित पाई जाती है।
- यह प्राय; अपेक्षाकृतं युवा एवं तरुणावस्था में पाई जाती है।
- —इसमें दाहयुक्त बत्यधिक तीवं उदरशूल पाया जाता है। चिकित्सा—
 - सर्व प्रथम रोगी को वेदनाशामक शेषिष हैं।
- ें २. पौरुष ग्रंन्थि के शोथ को कम करने के लिये पौरुष ग्रन्थि को दबायें।
 - ५. पीरुष हार्मोन टेस्टोस्टीरोन देते हैं। 🕡

टेस्टोस्टेरोन इंजेनणन २५ मि. ग्राम सांसपेशीगत सन्ताह में वो बार। या

देवलेट मिथायल टेस्टोस्टेरोन ५ मि. प्राम गोली

- ह. कैंसर की सबस्या में स्टिलवेस्ट्रोल १ मि. ग्राम की मात्रा में दिन में तीन बार देने से तथा धीरे धीरे बढ़ा। कर प्रतिदिन २१ एम.जी. देने से रोग की तीवता की कम किया जा सकता है।
- थ. मूत्र विस्नावण नाड़ी यन्त्र (Self retaining catheter) द्वारा मूत्र निकाल लें। हालांकि यह रोग ससाध्य है एवं केवल शास्त्र चिकित्सा ही इस रोग के उन्यूलन के लिये प्रयोग करते हैं। आधुर्वेदीय चिकित्सा—
- ग गोक्षुर मूल दूध में पकांकर शकरा एवं मधु से . हैं। [सुखूत संहिता]
- २—शुद्ध जिलाजीत ४ डेसी, ग्राम, जनकर ६ ग्राम, दणमल क्पाय २४ से ५० मिलीलीटर के साथ देने से



चित्र १२२—पौरुष ग्रंथि वृद्धिके कारण उत्पन्न मूत्रावरोध की चिकित्स्यार्थं कैथीटर प्रविष्ट कर मूताशय की रिक्त करें। यदि इस वृद्धि के कारण कैथीटर प्रवेश में किटनाई पड़े तो चित्र में दिखाये अनुसार गुदा में अंगुली प्रविष्ट कर कैथीटर को सहारा देकर मूताशय में पहुँचायें।

अण्ठीला आदि रीगों में लाभ मिलता है [योग रत्नाकर]।

र'- वनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में इस प्रकार के रोगियों पर वरुण शिशु ववाध २४ से ४० मि० लि० तड़के समय तक देने से बाजातीत ताम मिलता है।

४- त्रिफला + नमक ४-४ ग्राम व ब्रांकासव १६ से २६ मिलो, प्रातः सार्य दें।

५—गरम जल से कमर तक अवगाहन मूत्र प्रवृत्ति में लाभदायक होता है।

शहैय विकित्सा—यह रोग शहय प्रधान है। जीपधि चिकित्सा से लाभ न होने पर कुशल शहयज्ञ के पास परा-मर्श के लिये भेजना चाहिये। इस रोग में निम्न विधियों से-शहय कुर्म किया जाता है—

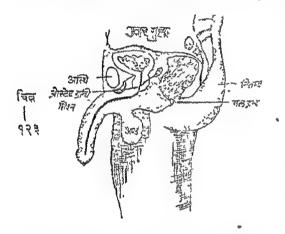
9—मैक्कर्णी विधि २—फेयर विधि ३—मिलन की विधि ४— यङ्ग विधि

उपरोक्त वणित विधियों में से मंग विधि (Perineal Prostectomy) केवल अमरीका में ही की जाती है एवं भारतवर्ष में इस विधि से पह मल्य कर्म प्रायः नहीं किया जाता है। अन्य विधियों में प्रायः फ्रेयर विधि हारा इस रोग की चिकित्सा की जाती है।

पोरुष गल्य वृद्धि की चिकित्सा

श्री डा॰ जयकुमार 'सुञाकर'

प्राचीनाचार्यों के अनुसार प्रायः राभी रोगों में स्नेहन, स्देदन, विरेचन, लंघन आदि कई क्रियार्ये बतलाई है जो देश काल और रोगी की सदस्थानुसार चिकित्सक को कृरचानी चाहिए। इस रोग में रोगी को द-१० दिन दक अन्नाहार विचकुल बन्द करके फलाहार देना चाहिए।



सायंकाल के बाद तरल पेय, फल नहीं देने चाहिये। पीने के लिये गरम पानी और एदि रोगी को कोव्छवद्धता (क्ब्ज) हो तो अन्य रेचक जीपधियों को कपेक्षा गरम पानी का एतिमा ही अयरकर है। प्रतिदिन प्रात काल १० मिनट तक कटि स्नान के पश्चात रोगी घूमे। खाने के लिए रोगी को

सोहादाई कार्व, यवसार, मूलकक्षार, नयसारं, शीतल-चीनी और शंख सस्म ४-४ रती नेकरं इन सबकी ४ पुड़िया बनाकर १ सुन्द ७ बजे, दूसरी १२ वजे, तीसरी सायं ५ वजे और चौथी रात मे १० वजे १-१ तोला सारिवाद्यासव एवं चन्दनासव में २ तो. पानी मिलाकर हैं।

पेडू पर टेसू के फूल वाधना भी श्रेयस्कर है। यदि क इससे पेगाव साफ न उतरे तो रवर के कैंबीटर द्वारा रोगी की पेगाव उतारकी चाहिये, जहां तक हो सके धातु के कैंबीटर का प्रयोग नहीं करें क्योंकि इससे ६०% रोगिणों को पेशाव मे खून आने लगता है। यदि रवर का

कैथोटर र-३ दिन तक नगाने की जरूरत पड़ जावे ते कोई हानि नहीं हैं। तिर्फ इस वात का प्रधान रखन चाहिए कि जब भी कैथोटर लगानें, गरम पानी से साप कर लें। जहा औपधिया पेशाब उतारने में असफल है जाती हैं वहां पेड़ पर काली मिट्टी की पट्टी बाधने से कुष्ट ही घण्टों में पेशाब उतार आती है।

यदि पेशाव बूंद बूंद आती हो तो वैद्य रतन रे लिखित निम्न योग चावल के जल या गृह के साथ दें—

घटक द्रव्य—ईलायची, पापाणभेद, शिलाजीत, पिष्प लादि। यदि पेशाव में खून आता हो तो ऊनर वाहे योग में स्फटिका भस्म ४ रत्ती मिलाकर रौगी को देवें।

कोण्डवदता (कब्ज) की अवस्था में यदि एतिम सम्भव तहों सके तो उष्ण जल से २ ग्राम की साता रे त्रिकलादि चूर्ण देना श्रेयस्कर है।

चन्दन चूरा, चन्द्रप्रभा वही, गोक्ष्रादि गुग्गुल, आरी ग्यवधंनी, वगभस्म, नागभस्म, वंगेश्वर, कांकायन गुटिका लोहभरम, खेत पर्वटी, पुनर्नवा की जड़ का चूर्ण आरि रोगी की अवस्थानुसार है।

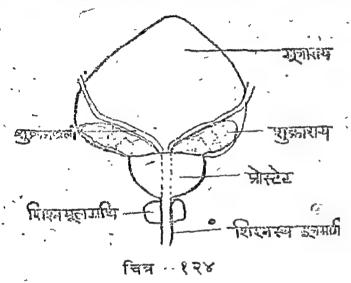
रात्रि में टी केंप भी रोगों के लिये उचित है। इसकें लिये एक लम्बे और ६ इंच चौड़े फेपड़े को लेकर पार्न में भिनोकर निचोड़ लेना चाहिये। उसके बाद पेडू में चारों तरफ लपेट कर जननेन्द्रिय एवं पौरुप मन्यि कें ऊपर से लेते हुए पीछे की ओर ले जाके ऊपर से सूखा ऊनी बस्त्र अस्छी तरह लपेंट देना चाहिये।

आजकल के बैज्ञानिक लोग इस रोग पर 'खेरीन' नामक इन्जेक्शन प्रयोग करते हैं। 'प्रोस्टेटीन एक्स' नामक औपधिया भी श्रेयस्कर है। 'स्पीमेन फोर्ट' गोलियां भी प्रात: सार्य २-२ गोली पानी के साथ दें।

पथ्यापथ्य—इस रोग में पुराना चावल, जी, गेहूं, मूली, गाजर, दूध, परवल गन्ना का रस, सन्तरा, मौसम्मी, कोमल नारियल, हरड़ आदि वस्तुथे देनी चाहिए। शराब, आलू, वंगन, लालिमर्च, त्रंल, खटाई आदि नही देनी चाहिए। मेथुन सदा विज्ञत है।

THE GIFT DIE TOTALES.

अवसर पौरुप ग्रन्थि के बढ़ने अथवा उसमें सूजन आने की तकलीफ युद्धावस्था में ही होती है। पौरुष (श्रीस्टेट) ग्रन्थि हमारे गरीर में महत्वपूर्ण कार्य करती है। क किशोरावस्था से युवावस्था को परिवर्तन, प्रजनन गनित,





वित्र-- १९५ जीर्ण पीरुष ग्रिन्य ग्रीय में दर्द के स्थान--इसके साथ ही नीचे जंघाओं में

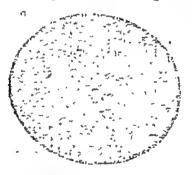
भी हल्का-हल्का दर्द संधिक जीर्णे अवस्था में रहता है।

स्वर में मोटापन इसी की नदौलत होता है। ३ सेंटीमीटर ज्यास वाली शंकु रूप की यह ग्रंथि मूलाशय के द्वार पर चिपकी मिलती है। इसी ग्रंथि के वीच में से होकर मूल-नजी शिशन तक जाती है। किसी कारणवश जब इसमें



शोथ या सूजन आजाती है तो मूत्रागय का मार्ग रुक जाता है और मूत्र गरीर से बाहर न निकल पाने के कारण यूरीमिया (मूल विष) की तकलीफ होने लगती है।

हारमीन-असंतुलन की वजह से पौरुप ग्रंथि में शोध

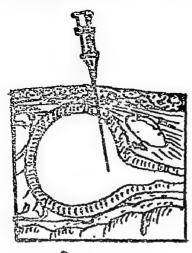


पित्र—१२६: पौरुप ग्रंथि साव की अविकृतावस्या का सुक्ष्मदर्शकीय चित्र



चित्र—१२७
पोरुप प्रन्यि वृद्धि के
कारण उत्पन्न अवरोघ से मूत्राशय
में मित्ति सूत्रों
का उभार
हो गया

THE ROLL PROPERTY.



चित्र-- १२६

पौरुष श्रिष शोथ के कारण उत्पन्न सूत्रावरोध की बात्यिक अवस्था (इमर्जेन्सी) में, जबिक मूत्राश्रुष मूत्र से पूरित होने के कारण रोगी दुखी हो और कैथीटर प्रवेश आदि सभी उपाय फेल हो गये हों तो इस प्रकार से कटिवेदनी सूचिका को सीचे ही मूलाशय में प्रविष्ट कर उसका मूत्र रिक्त कर रोगी को राहत पहुंचायें।

आना खुख्य रूप से माना जाता है। इतके भलावा गोनो-कोक्कस, स्ट्रेप्टो कोक्कस, स्टेफिलो कोक्कस, आंतों को कीटाणु, पथरी और गुदा को अनेक रोगों के कारण व कैथीटर को अनुचित प्रयोग करने से यह हो जाया करता है। इस को बोरंम्भिक लक्षणों में वार दार रात में पेशाब धाना, रोग ग्रस्त स्थान पर सख्त दवं और जलन होना, मूत्र करते समय उसकी घार दूर न गिरकर विलकुल नीचे-गिरना, बूंद-बूंद कर उतरनां, काम शक्ति का लोप होना च मूत्र बंद हो जाना प्रमुख है। गुदा के अन्दर अंगुली प्रवेश कर चिकित्सक आसानी से बढ़ी हुई प्रोस्टेट ग्रन्थि पता कर सकते हैं।

आजकल ५० वृर्ष से ऊपर की उम्र के लगक्षग ३०% पुष्पों की इस रोग की शिकायत होजाती है। उनमें से तीन में इसका मुख्य कारण कैंसर होता है। आरम्भिक कैंसर के उपचार में सजंरी से लाभ हो सकता है। इस ग्रंथि को आपरेशन से निकाल देने पर जीवन अविध घटती नहीं।

े एलोपैथी विकित्सा पद्धति में इस रोग के उन्मूलन के लिए अक्सर सर्जरी का प्रयोग किया जाता है। भीप-धियों में हार्गोन का प्रयोग होता है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा मे रोगी के लक्षण तथा अवस्था के अनुसार चन्द्रशभावटी, गोक्षुरादिगुग्गुल, चन्दन चूरा, बंग भरम, बारोग्यवर्धनी, नाग भ्रम्म, कांकायन गुटिका, श्वेत पर्पटी, लोहभरम, पुनर्नवा की जड़, गोक्षुर मूल, द्विफला चूर्ण बादि का प्रयोग किया जाता है।

होम्योपैथिक चिकित्सा विज्ञान में लक्षणों के अनुसार सैवाल सैक्लेटा, कोनियम, सिमिसिपयूगा, फेरम पिक्रेटम, चिमाफिला, त्पाजिया तथा यूजा का प्रयोग सफलतापूर्वक किया जाता है।

चन्द्रप्रभा बही

योग रत्नावली का यह अनुपंम योग सभी मूत्र रोगों एवं प्रमेह में हितकर है। जरानाशक और शोब बल को बढ़ाने वाली है। इसके सेवन में विशिष्ट पथ्यानुपालन भी अत्यावश्यक नहीं है। अतीव लाभकारी योग है।

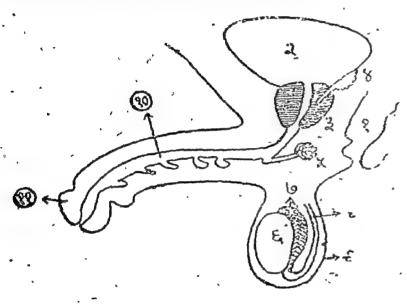
मूल्य--- ५० ग्राम १४ रुपये।

पता—निमंस आयुर्वेद संस्थान, अलीगढ़।

शिश्न का अबुंद और उसका उपचार

कविराज आचार्य श्री हरिबल्लभ मन्तूलाल द्विवेदी सिलाकारी शास्त्री, चिकित्सक चक्रवर्त्ती, आयुर्वेद वृहस्पति, स्वायी निरंजन्-निवास, कोतवाली रोड, सागर (म॰ प्र॰)

शिशन का अर्बुद अर्घिक भयानक कष्ट कारक होता है। यह अर्बुद इस जन्म के कुक़त्य एवं पूर्व जन्म में किए हुए दुष्कर्मी का फद्ध है। यह कई कारणों से होता है, किंतु उनमें से जो प्रधान कारण हैं, वे निम्न हैं-



वित्र—११६

मूत्रवह संस्थान एवं पुरुष प्रजननांग

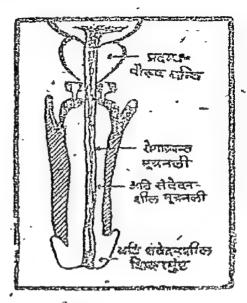
- १. सलाशय २. मूत्राशय ३. पौरुप ग्रंथि
- ४. शुकाशय ४. कूपर ग्रंथि ६. वृषण ग्रंथि
- ७. उपांड ग्रंथि ८. शुक्ररज्जु ६. त्वचा
- ् १०. मूत्र प्रसेकं निलंका ११ शिश्त मुण्ड

कारण—१. अत्यधिक सम्भोग करने से, शिश्न मुंड के चमंद्रके फट जाने से, उत्पन्न घाव की उपेक्षा करने से शिश्न का अर्बुद उत्पन्न होता है।

२. उपदंश का उपचार उचित नहीं होने पर अथवा स्थाई उपचार न करने से यह उत्पन्न होता है।

२. अधिक काल तक अयोगि अथवा पशुयोगि में या मुष्टि-मैथुन करना।

४. स्वल्य सुख के लिए लिङ्ग के ऊपर जत्कट् इन्यों द्वारा तैथार भिन्त-२ प्रकार के लेप, तिला या तैल आदि



ँचित्र -- १३०

शिश्नावुँद उत्पत्ति में सहायक कतिपय रोग

के उपयोग करने से भी शिश्व के अवृं व की उत्पत्ति होती है।

· ५. गर्भ निरोध के लिए नाना प्रकार के अस्वामाविक प्रयोग और मैथून करना।

६. सुपारी (शिश्त-मुंड) के नीचे की ग्रन्थियों का साव जो सुपारी को चिकना रखती है। यदि यह साव सुपारी के नीचे एकत्रित हो जाय और वाहर न निकले तो उस स्थान पर खराश पैदा होने, लगती है। काफी समय तक इस साव के रहने से शिश्न, का अवुंद (कैंसर) उत्पन्न हो जाता है। सुपारी के मांस को हटा (लौटा) कर यदि प्रतिदिन स्वन्छ जल से वो दिया जावे तो अवुंद होने की सम्भावना नहीं रहती।

लंकण—शिश्नावृदं की प्रथमावस्था—प्रारम्भ में लिंगमणि के किसी एक भाग में एक छोटी सी फुंसी अथवा घाव होता है। साधारणतः पहले इस पर ध्यान नहीं दिया जाता। शनैः शनैः यह फुन्सी वह कर फूलगोभी का रूप धारण कर लेती है। आरम्भ में इसमें किसी

THE PUBLICATION

प्रकार की पीड़ा नहीं होती। किन्तु जब इसकी वृद्धि होती है, तब वृद्धि के साथ ही पीड़ा प्रारम्भ होने लगती है और दिन प्रतिदिन कप्ट बढ़ता जाता है। कभी कभी लिग्मणि के किसी भाग में फेन के समान सफेद फुन्सी अथवा घावों की वृद्धि होती है। शनैः णनैः यह धाव बढ़ने लगता है तथा अन्तः प्रविष्ट हो जाता है। इस घाव को थोड़ा सा दवा देने मात्र से रक्त बहने लगता है।

हितीयावस्था—इस अवस्था में, अर्बुद इतने बड़ें हो जाते हैं कि लिङ्गमणि का चर्म खोला या वन्द नहीं किया जा सकता। शनै: शनै इस घाव का क्षय होने लगता तथा इसके साथ साथ लिङ्गमणि लगने लगता है और साथ ही रक्तलाव होने लगता है। एक या दो वर्ष के भीतरं सम्पूर्ण शिश्न (लिंग) गलकर नष्ट हो जाता है। शिश्न क्षय के साथ-साथ निम्न उपद्रव उत्पन्न होने लगते हैं—सर्व प्रथम रक्तलाव में वृद्धि होजाती है, थोड़ा सा आघात लगने से अधिक रक्तलाव होने लगता है। घाव में जलन एवं पीड़ा होने लगती है, कभी कभी घाव पर सकेद पत (पपड़ी) जम जाती है। धीरे धीरे कष्ट में अभिवृद्धि होती जाती है।

तृतीयार्वस्था में रोगी अधिक अशक्त हो जाता है।
यक्ष्मा रोगी के समान नियमित रूप से ज्वर होने लगता
है। इस अवस्था में रोगी का सम्पूर्ण निष्न नष्ट हो जाता
है। मूत्र निकलने के लिये केवल अस्य मार्ग खुला रहता
है। धीरे धीरे रोगी के चलने-फिल्मे की शक्ति कीण हो
जाती है।

चतुर्यं अवस्था सम्पूर्णं रूप से शिश्न के नृष्ट होजाने के बाद भी अधिकतर रोगी जीवित रहते हैं। इस दशा में रोगी के अण्डकीय में घाद हो जाता है। यह घाव वड़ कर उदर की मांसपेशी को भी आक्रांत कर देता है। शनी: शनी: मूत्राशय के दोनों पाश्व आक्रांत हो जाते हैं। इस जवस्था में रोगी को पेशाय करते समय काफी कष्ट होता है, धीरे घीरे रोगी का कष्ट बढ़ता जाता है। अत्य-धिक कष्ट के कारण रोगी मूच्छित भी हो जाता है।

-(१) रोगी की अवस्था के अनुसार प्रथम विरेचन,

उपचार-

वस्ति और उत्तर वस्ति देकर उदर तथा मूत्राणय शुद्धि के पश्चात् निम्न उपचार करना चाहिए—

(२) प्रथमावस्था में चन्द्रप्रभावटी १ माशा, विफलागुग्गुल १ माशा, रसमाणिक्य २ रत्ती, सबकी मिलाकर एक मात्रा तैयार कर लेनी चाहिए।

् अनुपान — त्रिफला क्वाय २।। तोला में मधु १॥ तोला मिलाकर लेना चाहिए।

्समय—दिन में चार बार तक । अथवा रोगी और रोग की अवस्थानुसार व्यवस्था बनाकर देना।

- (३) भोजनोपरांत—सारिवाद्यासव २ तोला, उशीरा-सव २ तोला ताजा जल ४ तोला मिलाकर दिन में दो बार सेवन कराना चाहिए।
- (३) द्वितीयावस्था में काञ्चनारगुग्गुल १ माशा, गंधक रसायन ४ रत्ती, वंग भस्म २ रत्ती। तीनीं को मिलाकर एक मात्रा कर लेना।

अनुपान-गौदुग्ध मिश्री युक्त एक पाव।

समय पातः १० वजे तथा रात्रि में १० वजे, दो

- (४) उत्तरवस्ति—विफलाक्वाय में स्वल्प मात्रा में फिटकरी चूर्ण डालकर कैयीटर द्वारा मूत्रेन्द्रिय मार्ग से मूत्राशय प्रक्षालन करना (देखें चित्र १०६)
- (६) तृतीयाद्रस्या में ताम्रभस्म २ रत्ती, स्वर्ग-मालिनीदसन्त २ रत्ती, वङ्गभस्म २ रत्ती, चोपचीनी चूर्ण १ माशा। सवको मिलाकर एक मात्रा बनाकर उपयोग करना चाहिए।

अनुर्पान—विफलाक्वाथ में मधु मिलाकर, दिन में तीन वार सेवन करना चाहिये।

(७) चतुर्थावस्था में — त्रिफला गुग्गुल १ माशा, रस-माणिवय २ रत्ती, बंग भस्म २ रत्ती । तीनों को मिलाकर एक मात्रा तैयार कर लेना चाहिए।

अनुपान—मधु गौ दुग्ध मिश्री मिलित १॥ पाव । समय-दिन में तीन वार । अथवा-आवश्यकतानुसार

(न) भोजनोत्तर—महामंजिञ्ठादि नवाय २।। तोले, मधु २ तोले।

- EN RION FORDER
- (६) दणांगलेप में हत्दी चूर्ण मिलाकर घृत के साय धिश्नुपर्िलेप लगाना चाहिए।
- (१०) वेदना की दणा में नीयपत्र तथा तिफला के गरम दवाध से सेक करना चाहिए।

बाहार नें — नगक, खटाई, मिरच, गुड़, शीत एवं बायुकर पदार्थों का सर्वधा त्याग करना चाहिये। ब्रह्म वर्षे वर्त का पालन तथा मिस्सी रोटी नमक रहित घी के साथ बीर गी दुग्ध सेवन करना चाहिये।

"वृवकार्नुंद का उपचार" और "शिश्न का सर्नुंद और उसका उपचार" इन दोनों लेखों के उपचार में लिखित शास्त्रोकत बादिधयों के योग शार्क्नुं घर संहिता तथा रसयोगसागर में कथित हैं। इन ग्रन्थों में देखकर वैद्य वन्धु निर्माण कर सकते हैं अथवा विश्वसभीय प्राचीन फर्म द्वारा निर्मित क्रय कर सकते हैं। योग परम्परागत एवं ६० वर्ष से स्वयं चिकित्सा काल में व्यवहृत अनुभूत हैं। आप आयुर्वेदाचार्यों का मत है कि—"या किया व्याधि-हरण सा चिकित्सा निगचते" अनुभृत योग—

मधुंगेह में — शुद्ध शिलाजीत २ तो., नागभस्म २ तो., जामुन गिरी ४ तो., गूलर वीज ४ तो., दिल्व पत्र ४ तो. गुड़मार पत्र ४ तोले । विधि — करेला विल्वपत्र तथा गुड़-

मार पत्र के रस या क्वाय में एक दिन मर्दन कर रख लेना।

माना—१ हे १॥ माशा से ३ माशा पर्यन्त, अवस्था नुसार । अनुपान—वरुणादि क्वाण अथवा ताजा जल ।

समय—दिन में दो के चार नार तक, आवश्यक्रता-नुसार। तमस्त मधुरपदार्थ त्याग कर जी की रोटी, मूंग की वाल, मसूर की दाल, परवल, करेला, मेंथी का साग सेवन कराना। कथन है—"विनापिभेपजैन्यधिः पथ्यादेव निवर्तते"।

सम्मरी पर— गुद्ध शिलाजीत, हजकलयहूद भस्म, वंग भस्म, यवक्षार, इलायची बीज, पांची समानभाग और इन अबके दरावर गोखरू लेना चाहिए।

विधि संगंको कूटछान कर पञ्च तृणमूल तथा
गोखह में खूब घाँट कर जंगली बेर वरावर गोली वना
गुखाकर रखलें। मान्न भी से गोली तक। अवस्थानुसार। अनुपान के गोखह के क्वाथ में यवकार तथा
मिश्री मिलाकर देना। दिन में चार वार तक, आवश्यकणीनुसार। रोगी को दाना फङ्क दो रत्ती वजन का तांवे में
जड़वाकर पहनना चाहिये। गुड़, लालमिरच, तेल, खटाई,
गरम गर्माले, गर्म चीजें वन्द कर, केवल पुरातन चावल
तथा दूध देना चाहिये।

水大大水水水

शिष्त सुग्ड शोश

(BALANITIS)

• शिशन मुण्ड लोथ स्थानीय शन्य रोगों के उपद्रव रूप में होता है जिसमें शिशन गुण्डच्छद (Prepuce) के अन्तः पृष्ठ और शिशन की त्वचा का शोध होता है। आक्रांत



विल-९३१

ह्यान दें वेदना और पूच्युक्तमाव निकलता है।

रीग की कारण उपदंश, सुजाक, अश्मरी, निकट

प्रकश धादि सकते हैं।

चिकित्सा—रोग के कारण के अनुसार ही की जाती है। शिश्न की त्वचा के शोध पर प्रणरोपक, शोध का खोप-धियों का प्रयोग किया है, रोग की उपावस्था में मुण्डच्छद को ऊपर से छिन्त करके जैन्शियन चायोलेट या २ प्रतिशत मक्यू रोक्शेम को शिश्नमुण्डच्छद पर , लगाया जाता है। पारद विलंशन से धोया जाता है।

्रहागुर्वेद हें—जिकला नवाय से सेक कर घोकर, जात्यादि तेल लगाना उत्तम है। उपदंश, सुजाक अप्रमरी दादि कारणों की उनके अनेक लक्षणानुसार चिकित्सा करनी चाहिए।

* निरुद्ध प्रकश

वैद्यरत्न **दा** जय नारःयण गिरि "इन्दु" धजवा (मध्यवनी)

परिवित्तका-

परिवर्तिका को आंग्ल भाषा में फाइमोसिस कहते हैं, यह एक ऐसी अवस्था है जिममें लिगाग्र चर्म लिगाग्र पर पीछे की ओर किसी कारणवश पराक्षित नहीं किया जा सकता। इस रोग के लक्षणों पर विहंगम हिन्द से विचार करते हुए महिंप सुश्रुताचार्य ने संकेत किया है—

सवेदनः सदाहण्च पाक् च न्नजित वनित । मारुतागन्तु सम्भूताम् विष्ठात्तां परिवर्तिकाम् ॥ सकण्हः कठिनाश्चापि सैन श्लेष्म समुस्यिता ॥

भयांत् इस रोग में लिंग का चर्म ऊपर की बोर चढ़ जाता है तथा सुपारी (मिण) के नीचे प्रंथि रूप में होकर लटकता रहता है। कभी कभी उसमें दौह, और पीड़ा भी परिलक्षित होते है। यदि इस रोग में खुजली चलना तथा कठिनता प्रतीत हो तो ऐसी स्थिति में इसे कफजनित परिवर्तिका समझना उचित है। भोज ने अपनी संहिता में सुश्रुताचार के उपयुक्त कथन से सहमति व्यक्त की है—

मणेरधोमेढ्र वर्मा व्यानस्तु परिवर्त्तयेत् । सण्ललतोद दाहाद्यैविज्ञेया परिवर्तिका ॥ श्लैष्मिकी कठिना न्निग्धा कण्डूमत्यस्प वेदना । (भोज संहिता : निदान स्थान)

परिवर्तिका के कारणों का उल्लेख करते हुए सुश्रुत का कहना है-

मदंनात् चीड़नाच्चापि तथैवाप्यभिघाततः । भेकु चर्न यदा वायुर्भंजते सर्वंगतश्वरः ॥ तवा वातोपसृष्टं तु चर्म प्रति निवक्तंते। मणेरधस्तात कोषश्च ग्रंथिरूपेण लम्बते।।

यानी हस्तादि द्वारा मर्बन करने से, अधिक दवाने से तथा चोट लगने से (भैथुन के समय झगड़ा होने अथवा बिलात्कार सम्भोग की चेण्टा के परिणामस्वरूप अभिषात कगने) सर्व धारीर संचारी क्यान वायु बन लिग के चर्म में प्रविष्ट होती है तब वायु से आक्रांत होकर चर्म कप की बोर उठ जाता है और परिवर्तिका की उत्पत्ति हो जाती है। साधुनिक चिकित्सा विज्ञों के मतानुसार परिवर्तिका जन्मजात और अजित ये १२ प्रकार के हो सकते हैं—

जन्मजात परिवितिषा—साधारणतः यह लिम्बत संकीर्ण-ितियाप्रत्वक् सूक्ष्म मूलनिकाविहिछिद्र या लिगाप्र तथा लिगाप्र वर्म के बीच अधिघात के कारण उत्पन्न होता है। यह अधिकतया पायी जाती है। मूत्रकृच्छ्रता, मूत्रत्याग में किठनाई, मूत्र त्याग के परचात् भी बुंद बूंद करके मूत्र का निष्का न और मूत्र निका की सूजन तथा लिगाप्र का पीछे की बोर नहीं फिरना आदि इसके मुख्य लंक्षण हैं।

विज्ञत परिवर्तिका—यह अस्थायी रूप में पूर्यमेह, कोमल क्षत आदि जनित प्रदाह के कारण या स्थायी रूप में इन क्षतों के वन्छा होने पर क्षतांकजनित अभि-घात या तनाव के कारण उत्पन्न हो सकता है। इस अवस्था की फैंसर में परिणति होने की शंका रहती है। निरुद्ध प्रकश और शिश्न की कलापुटक या फीनम में फटन आदि भी पाये जाने सम्भव हैं।

चिकित्सा-विश्व में सर्वेप्रथम गल्य चिकित्सा के

गुड़ा शेवा हिकिटसा

प्रतिष्ठापकं महिष सुश्रुत ने परिवर्तिका चिकित्सा के सम्बन्ध में कहा है—

परिवृत्ति घृताश्यक्तां सुस्विक्तमुपनाहयेत्।
ततोऽक्यज्य जनैष्चर्मनानयेत् पीडयेन्मणिम्।।
प्रविष्टे च मणीचर्मा स्वेदयेदुपनाहनैः।
विरातं पंचरात्रं च चातष्नैः साल्वणादिभिः।।
दशाद्यातहरान् वस्तीन स्निग्धान्यन्नान भोजयेत्ः॥
—सुश्रुत् संहिता, चि० २० श्लोक ४०-४५

ं परिवर्तिका चिकित्सार्थ प्रशावित लिंग में घृत लगा कर भली मांति स्वेदन करके उपनाहं वर्षात् पुल्टिस बांधनी चाहिए । एतदर्थ गुड़ धीर गेहूं के आटे को पानी व घी से थोड़ा-घोड़ा डासकर धान पर पकाकर लूपरी बांधी जा सकती है। अंलसी को दरदरा कूटकर उसमें थोड़ा गुड़ और अल्ना ची और पानी सालकर बाग पर. पका लेई सी बनाकर कवोष्ण ही बणों पर बांघना हितां-वह सिद्ध होता है। उपनाह कमें के उपरान्त घी भी मालिश फरके शिश्नमुं ह दबाते हुए चर्म को धीरे धीरे नीचे उतारना चाहिए। मणि के अन्दर प्रविष्ट होने पर चर्म को शास्त्रण स्वेद (चक्रदंस में वातव्याधि चिकित्सा-न्तर्गत विणत) द्वारा तीन या पांच दिन स्वेदन करना चाहिये । वातनाशंक वनस्पतियों का प्रयोग जिसे दशमून का काढ़ा करके उसमें अरण्डी का तैल डालकर वस्ति (एनिमा) लगाना व इन्हीं से जण धोना] करना चाहिए। एलोपेथिक चिकित्सकों के अभिमतानुसार चार लाख -यूनिट का प्रोक्तेन पेनिसिलिन प्रतिदिन मांसान्तर्गत देना चौहिए। प्रतदर्भ Pronapen (Pfizer) या Crys 4 (Squibb) का इन्जेक्शन दिया जाना चाहिए। सूजन नहीं रहने पर खल्ना(Circumcision) कर देना चाहिए। लिइमणि से आगे की ओर चमड़ी को खींचकर गौर दूसरे हाथ से लिङ्गमणि को बचाते हुए फाजिल चमड़ी को काट दिया जाता है। इसके बाद लिगाय चर्म की एलैपिक फला और चर्म को कैटगट के ४-६ सींवन द्वारा सींकर : पेनसिलिन र साय या पेसलीन गाज का दू सिंग उसी में बांध देते है जो फैटगट के गल जाने पर ५-१० रोज बाद खुद खुलकर निर जाता है। इस स्थान को आपरेशन के

बाद प्रतिदिन स्प्रिट अथवा डिटाल से सफाई करते रहना चाहिए।

अवपाटिका

इस व्याधि में शिश्तमुण्ड के ऊपर के चर्म का खोल यानी लिंग चर्म फट जाता है। एलोपैथ इस स्थिति को Tear, in the Prepuce कहते हैं। इस रोग के कारणों की विवेचना सुश्रुत के द्वारा निम्न इप में की गई है—

अल्पीयः खां यदा इषि बाला गच्छेत् स्त्रियं नरः ।
हस्ताभिषातावयवा चमंण्युदर्शतते वलात् ।।
इसके लक्षण भी सुश्रुत में निम्न रूप से विणत हैं—
मदंनात् बीड़नाद्वापि शुक्त वेग विषाततः ।
यस्यावपाटयेत चमंताम् विद्यादवपाटिकाम् ।।

- सु० नि० अ० १३ अल्प योनिच्छिद्रे वाली

अर्थात् जब कोई मनुष्य अल्प योनिच्छिद्रे वाली अल्प वयस्का स्त्री के साथ प्रहर्ष (कामोरोजना का वेग) पूर्वक सम्भोग या बलात्कार करता है उससे अथवा लिंग वद्ध नाथ तिला लगाते समय या हस्तमैथुन करते समय हाथ के अभिघात (चोट), से चमं के ऊपर चढ़ जाने से किंवा चमं के महन (रगड़ने) भौर पीड़न (भींचने) से तथा उपस्थित गुक्रवेग को रोकने से शिशन का चमं फट जाता है। यही अवपाटिका है।

बवपाटिका (tear in the prepuce) की चिकित्सा परिवृतिका के समान ही करेनी चाहिये। परिवृतिका के समान ही स्वेदन और उपनाह की क्रिया/सम्पादित करनी चाहिये। झत की स्थिति का प्रेक्षण कर वात, पित्त और कफ में से जिस दोप की प्रधानता प्रतिभासित हो, तदनुसार चिकित्सा करनी चाहिये।

अवपाटिकां जयेदेवं यथा दोपं चिकित्सकः।
-- सुश्रुत चि. २०

यदि रोगी चिकित्सा हेतु विलम्ब से यावे और शिश्न चर्म में बण वन जाये और पूर्य की उपस्थिति दीख पड़े

an vion fallence in

तो "एक्रीपलेविन लोशन" का प्रयोग कंल्याणकां री है। पूर की दशा में उचित सफाई और एण्टीयायोटिनसं भैपजें का मौखिक प्रयोग निश्चित रूप से लाभकर है।

निरुद्ध प्रकृश

निरुद्ध प्रकण को आंग्ल भाषा अथवा एलोपैथों की भाषा में Paraphimosis कहते हैं अयुवा phimosis । महर्षि वाग्भट्ट के अनुसार मणि का विकास निरुद्ध होने से इस रोग को "निरुद्ध मणि" भी कहते हैं । याधव निदान के मधुकोष टीकाकार लिखते हैं—

"निरुद्ध प्रकशत्वातिरुद्ध प्रकेशः।"

वर्षात् शिक्ष्त चर्म द्वारा मणि हक जाने से शिक्ष्तमणि पर प्रकाश पड्ना निरुद्ध (चन्द्र) हो जाता है, क्षंतः इस का नाम "निरुद्ध प्रकश" है। महिष सुश्रुताचार्य ने इसके कारणों और लक्षणों पर प्रकाश डालते हुये कहा है—

वातोपसृष्टमेवं तु चर्मं संश्रयते मणिम्। मणिश्चमोपनद्धसतु मूत्रहोतो रणिड च। निरुद्ध प्रकशे तिस्मन्मन्द्रधार युवेदनम्। मूत्रं प्रवर्तते जन्तोमंणिनं च विदीयते॥

संघित, वात से दूपित विक्त वर्ग मणि को पूर्ण रूपेण निकासन मार्ग को बन्द कर देती है तथा मून मार्ग के वन्द होने पर पीड़ा के विना ही मूल हर्नी धार के रूप में निकलता है किन्तु शिक्त मुख हर्नी धार के रूप में निकलता है किन्तु शिक्त मुख हर्नी धार के रूप में निकलता है किन्तु शिक्त मुख हुलता नहीं। इस प्रकार वात प्रकोप से उत्पन्न तथा किन्तित पीड़ा वायक यह रोग "निच्छ प्रकण" होता है। पाश्चात्य विकित्सा पढ़ित मतावलम्बी इसके दो भेद मानते हैं (१) जन्म जात और (२) जन्मी तर। जन्मजात का कारण प्रमुद्ध दोष है। जन्मोत्तर का कारण बच्चों में शिक्त मार्ग के नार वार खूजलाने पकड़ कर खींचने तथा नखकत होते हैं। युवाकों में इसका प्रधान हेतु पूर्य मेह होता है। वृद्ध विकर्मा में इस रोग का प्रधान कारण मूलाश्य की प्रयो, मूलमार्ग शोथ तथा पौरूष मन्धि की वृद्ध

हो सकती है।

विश्व के प्रथम शल्य प्रस्तोता सुयुत ने इसकी चिकित्सा विधि निम्न रूप से सम्पादित करने का विधान इिल्नत किया है—

निरुद्ध प्रकशे नाहीं लौहीमुभयतोमुं खीम् ।
दारवीम् वा जतुकृतां घृताभ्यंक्तां प्रवेशयेत् ॥
परिषेके वसा मज्ज णिणुमार वराहयो ।
चक्र तैलं तथा योज्यं वातव्न द्रव्य संयुतम् ॥
व्यहात ज्यहात् स्थूलतरां सम्यङ्नाड़ी प्रवेणयेत् ।
स्रोतो विवर्धयेथेवं स्निन्धयन्नं च भोजयेत् ॥
भित्वा व सेवनीं मुक्त्वा सद्यः क्षतवदाचरेत् ।
—सुष्ट विश्व अ० २०

ंयानी, निरुद्धप्रकश में दोनों बोर छिद्र वाली लोहे, लकडी या लाख की वनी नली पर घी लगाकर शिश्नमागं 🕆 के अन्दर प्रवेश करना चाहिये। शिश्नमुण्ड के परिपेक के: लिये मगर तया सुअर की चर्बी और यज्जा तथा वात-नाशक प्रविधे:से युक्त तेल (कोल्हू का तेल) का प्रयोग करना चाहियें। इस प्रकार २, ३ दिन के बाद फ़मशः मोटी नली भली भाति प्रवेश कर स्रोत (मार्ग) को बढ़ाना चाहिये तथा स्निग्ध सन्त विलाना चाहिये अयवा सेवनी को वचाते हुये शस्त्र कर्म वर सद्यक्षत विधि के अनुसार उपचार करना चाहिये। आधुनिक चिकित्सानुसार ०.9% एड्रीनलीन युक्त १०% शक्ति का स्थानिक संज्ञा और पीड़ाहर कोकेन के घोल का लेप पीड़ित स्थान पर लगाकर १ १- १५ मिनट उसके संज्ञाहर प्रभाव की प्रतीक्षा की जाती है। यदि सूजन वहुत अधिक है तो सुई चुभाकर और गाज से दाबकर अधिकाधिक पानी उसमें से निकाल दिया जाता है। उसके बाद गांज से पकड़कर चमड़ी को आगे की बोर खींपते और अनरील करते हुये वलपूर्वक प्रत्यानयन बारते हैं। सकल नहीं होने पर संकोचक बलय या पट्टी को काट देते हैं। जिसके बाद प्रत्यानयन क्रिया सुगम हो जाती है। कुछ दिनों के पनचात् सुविधानुसार खतना (Circumcision) किया जा सकता है।

निरुद्ध प्रस्ता (PHIMOSIS)

डा जी थार भाटी डी सी एच, डी आर एस (लंदन) एम ए. एम एस (लाहीर) एम एस सी (ए) (झांसी), आयुर्वेदरत्न (प्रयाग), आयुर्वेद मनीपी (जयपुर), आयुर्वेद महोपाध्याय (हैदराबाद), पाली (राजस्थान)

'निरुद्धप्रकश' को ''निरुद्धप्रकाश' भी कहा जा सकता है परन्तु आपंग्रंथों के उद्भट विद्वानों ने इसका नामकरण निरुद्ध प्रकश ही करना ठीक समझा है। आयु-वेंद के अधिकृत ग्रन्थों में इसका विवरण अधिक विस्तार से नहीं मिलता जितना एंलोपेथिक ग्रंथों में मिलता है। कारण प्राचीन युग में लोगों के सार्त्विक रहन सहन तथा ब्रह्मचर्य के विधिवत पालन से यह रोग अधिक होता ही नहीं था 'और एक अधिक प्रचलित रोग न होने के कारण इस पर ज्वर अतिसार आदि रोगों जैसी 'विस्तारपूर्वक प्रकाश नहीं हाला गया है।

पं० भाविमश्र ने अपने ग्रंथ भावप्रकाश में जो संक्षेप - में लेकिन साधिकार इस पर लिखा है उसमें इसके वारे में - थोड़े ही में सब कुछ आ जाता है अर्थात् निदान से लेकर - चिकित्सा तक उसमें समा जाती है। वे लिखते हैं—

वातोपसृष्टे मेढ्रे तु चर्म संश्रयते मणिम्।
मणिश्चमोपनद्धस्तु मूत्रसोत्रो कणिद्ध च।।
निरुद्धंप्रकशे तिस्मन्मन्दधारमवेदनम्।
मूनं प्रवत्तंते जन्तोमंणिवित्रयते न च॥
निरुद्धप्रकशे विद्यारसर्वजं वात संभवम्॥

अर्थात् शिश्न में कुपित वात का संचार होकर के वह वात चर्म द्वारा शिश्नमिण को अपने अन्दर कर लेता है तथा शिश्नमिण को आवृत करके मूत्र द्वार तक पहुंच जाता है। उसके फलस्वरूप मूत्र पतली धार से ही पीड़ा करते करते निकलता है। शिश्नमिण प्रयत्न करने पर भी चर्म के बाहर नहीं निकलता। इस स्थिति को निरुद्धप्रकश कहते हैं और यह वातजन्य रोग है। वे अ ने लिखते हैं— निरुद्धप्रकशे नाड़ीं लीही मुभयतो मुखी म्। दारवीं जतुकृतां वा घृताक्तां सम्प्रदेशयेत्।।
- परित्विद्धसा मज्जां शिशुमार वराहमोः। चक्रतैलं तथा योज्यं वातच्य द्रव्यसंयुतम्।।
्त्र्यहात्स्थूलतरां सम्यक् नाड़ी मार्गे प्रदेशयेत्। स्रोतो विवद्धयेदेवं स्निग्धमनंच भोगयेत्।।
भित्ता वा सेवनी मुकत्वा सद्यः क्षतवदाचरेत्।

वर्थात् चिकित्सक लकड़ी, लोह या अन्य किसी वस्तु का बना दुतरके मुख वाले नाड़ी यंत्र को चिकना कर शिक्ष्मचर्म के छिद्र में प्रवेश करे और बाहर से भी किसी चिकने पदार्थ (चर्बी, घृत, मज्जा एवं चक्रतेलादि) से सिचन करते हुए प्रतिदिन पिछले दिन से कुछ मोटा नाडी यंत्र शिक्ष्मचर्म ढीला करने हेतु प्रयोग कुछ दिन जारी रक्षे तथा रोगी को बलकारक स्निग्ध पदार्थ सेवन कराते जाय । यदि यह किया सफल न हो और पूर्ण जानकारी (शिल्यकमें करने की मय यंत्र शस्त्रादि के) हो तो शिक्ष्मचर्म को आगे खींचकर चर्म को काट दें और कटे स्थान की विधि अनुसार चिकित्सा करें। यह है संक्षेप में चिकित्सा का आयुर्वेदिक वर्णन । अब हम आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की तरफ मुड़ते हैं।

"निरुद्धप्रकश" अथवा "फाइमोसिस" दो प्रकार का होता है। प्रथम प्रकार को "जन्मोत्तर" तथा दूसरे प्रकार को "सहज" कहते हैं। प्रथम अथवा जन्मोत्तर निरुद्ध प्रकश बाजक युवा तथा वृद्ध तीनों को होता है। शिष्ठु तथा बालकों में किसी को शिष्ठनचमं कच्छू तथा

मूञ रोग चिकिट ।।

दवाता है तथा शिश्नचमं को आगे की ओर खींचता रहता है। ऐसा करने तथा मदंन, पीड़न एवं खुजली के फल-स्वरूप शिश्नचमं में व्रण तथा शोथ उत्पन्न हो यह रोग हो जाता है। उधर वड़ों में औपसर्गिक पूर्यमेह (सुजाक) तथा सीपट सोर (सैंकर) आदि रोग उनके गलत कर्मी तथा अन्य अनेक असावधानियों के फलस्वरूप होने से भी शिश्नमणी के आगे शोथ के साथ चमंबदता जाता है जिससे इस रोग की स्थित उत्पन्न हो जाती है। अलावा इसके भी बस्तिगत् अश्मरी (पथरी), मूत्रमागं संकोच, अब्दीला वृद्धि तथा शिश्नचर्म में वणों की उत्पत्ति तथा अस्वन्छता इत्यादि अनेक छोटे मोटे कारणों से शिश्नचर्म में क्षोभ तथा खुजली एवं वण उत्पत्ति होकर (चमं के निरंतर मदंन करते रहने तथा उसको आगे खींचते रहने से) यह रोग उत्पन्न हो जाता है। ये हैं अधिकांश कारण "जन्मोत्तर" निरुद्ध प्रकश के।

अब दूसरे प्रकार अर्थात् "सहज" निरुद्धप्रकश पर थोडा प्रकाश डालते हैं। यह जन्म समय से ही गर्भ में रहते किसी दोष के कारण उत्पन्त हो जाता है। यदि मुत्रत्याग करने का शिश्या बालक का छिद्र बहुत छोटा न हो तथा माता पिता सावधान या जानकार न हों तो इस रोग का पता वाल्यावस्था तक चलता ही नहीं है । बाद में कहीं जाकर युत्रावस्था के भारमभ में पता चलता है जबकि रोगी का शिश्नोत्यान (लिङ्ग का उत्तेजित होना) होने लगता है तथा रोगी लिंग का मदन करता है। हस्तमैयून की कूटेव से भी लिंग का उत्तेजन तथा मदंन होता है और तब शिक्नमणि पर से चर्म के न हटने (जन्मजात छोटा मुख होने से) रोग का पता चलता है। मैथून करने पर भी चमं मणि से पीछे नहीं हटता है जिसके फलस्वरूप एक तरफ न तो मैयुन का पूर्ण भानन्द रोगी को प्राप्त होता है और दूसरी तरफ उसको शिश्न में पीड़ा सथा शोथ का अनुभव होता है। शिश्नमणि के ऊपर सबके एक प्रकार का श्वेतरंग का मैल भी उत्पन्न होता रहता है जिसको स्वस्थ पुरुष तो पानी से प्रक्षालन कर सकता है परन्तु निरुद्ध प्रकश रोगी चर्म मुख के न खुलने से नहीं घो पाता । इससे वहां उमके सतत बने रहने पर पीड़न तथा क्षोभ होने के फल-स्वरूप मर्दन आदि करने से एक कर्कटार्बुंद (कैन्सर) सा

यही नहीं अपितु निरुद्ध प्रकश रोग होते हुए स्त्री के साथ मैथून करने पर रोगी को दो अन्य रोग भी हो सकते हैं। वे हैं "अवपाटिका" तथा "परिवर्तिका" रोग। अवपाटिका योनि छिद्र में उत्तेजित लिंग को प्रवेश करते पर शिक्ष्म को प्रवेश करते पर शिक्षमणे उससे आच्छादित जो रहता है। इस प्रकार उमंग एवं कामांधता में उस चमं के कट, फट चिरजाने को अवपाटिका रोग कहते हैं। इसका उपचार भी योग्य अनुभवी शल्य चिकित्सक से लेना चाहिये अन्यथा इससे अनेक रोग होकर यौवन अथवा जीवन बर्बाद हो सकता है।

दूसरा रोग जो निरुद्ध प्रकश के रोगी को हो सकता है, वह है "परिवर्तिका" रोग। मैथुनावस्था में लिंग का जबरन मदंन करके योनि में प्रवेश करने से उसमें पौड़न होकर उसका चर्म परस्पर आच्छादित रगड़न के द्वारा नीचे इक्ष्ट्रा होकर गांठ का सा रूप धारण कर लेता है। इसकी परिवर्तिका रोग कहते हैं। इसका भी अगर अवपाटिका सा शीध्र शख्य चिकित्सक से उपचार न हो तो शिश्नमणि और रोगों से आक्रांत होकर रोगी को मूत्रत्याग तथा मैथुनादि में भयंकर कष्ट प्रदान करता है।

चिकित्सा— यदि माता पितां को रोगी की शिशु या वालावस्था में रोग का भान हो जाय तो किसी अनुभवी शत्य चिकित्सक जिसके पास कि ऐसे रोग को ठीक करने के समस्त उपकरण तथा औषधियां हों, से विधिपूर्वं के चिकित्सा लेनी चाहिये। चिकित्सक को प्रथमावस्था में मूत्र छिद्र के आसपास कोई स्निग्ध पदार्थ प्रवेश करके चतुराई पूर्वं रोगी को कम से कम पीड़ा पहुंचाते हुए शिश्नचमं को धीरे-२ चौड़ा करके अपर की ओर चढ़ाना चाहिए। यदि काफी दिन ऐसा प्रयोग करने पर लाभ नजर आवे तो धीरे धीरे शिक्नचमं को चौड़ा कर अपर चढ़ाते रहना चाहिये।

यदि उपरोक्त प्रयोग कामयाव न हो तो पीछे तिखें आयुर्वेदीय पद्धित से किसी नाड़ी अथवा संदंश यंत्र की सहायता से शिश्नमणि पर उसकी घुमाकर लिंगमणि से चमं को दूर करना चाहिए तथा साथ ही साथ किसी उष्ण स्निग्ध पदार्थ का सिचन भी जारी रखना चाहिये। यदि

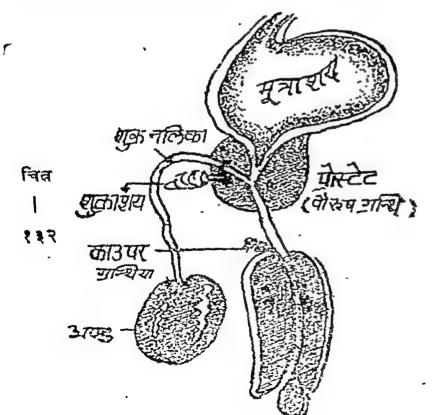
् —शियांश पृष्ठ ३२०पर देखें।

वृषण-अधिवृषण शोथ

श्री डा॰ वेदप्रकाश शर्मा ए.एम.वी-एस. I/c राज. आयु. चिकि., फीरोजाबाद (आगरा)

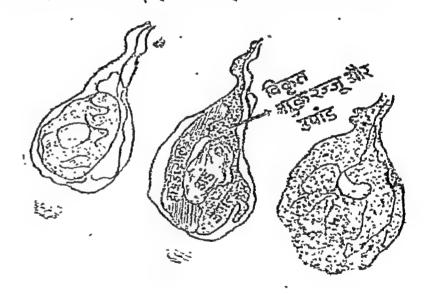


वृषण शोथ (Orchitis)—कर्णमूल ग्रेन्थिपाक (Mumps) के साथ जब वृषण पाक होता है उस समय वृषण ग्रंथि में शूल होता है, वह फूल जाती है किन्तु



उसमें पूर्योत्पत्ति नहीं होती । वृषण में रक्त द्वारा संक्रमण होता है, उसमें लिसकाओं की भार मार हो जाती है जिसके उपरान्त तन्तृत्कर्ष होकर कोषक्षय हो जाता है जो आगे चलकर बम्ध्यत्व क्लैब्य का कारण बनता है । ३० प्रति-शत रोग दोनों वृषणों में होता है और शोथ तथा पाक होकर उभयपार्श्वी रोग से पुरुष में बन्ध्यता हो जाती है । एक ग्रन्थि में पाक होने पर क्लैब्यता नहीं होती। तरुणों में कर्णमूल ग्रन्थिपाक के साथ वृषणपाक मिलता है पर वालकों में यह उतना नहीं मिलता।

ं अधिवृषण शोथ (Epdidymitis)—अधिवृषण शोथ गोनोरियाजन्य मूलमार्ग शोथ या अस्त्रप्रयोग व पुर-स्थोच्छेदन के पश्चात् हो सकता है। साधारणतया गोनो-



चित्र-- ?३३

कोकस, स्टेफिलोकोकस और इस्कीरिया कोलाई रोग का कारण होते हैं। किसी व्यक्ति को जब गोनोमेहजन्य उप-सगं लग जाता है तो र-र।। मास पश्चात् अधिवृपणों में पाक प्रारम्भ होता है। वृपण सूज जाते हैं, शूल होता है, वृपण रज्जु भी मोटी हो जाती है, (चित्र १३३) बिव-धित और स्पर्शासह होता है, पूय जाती है, रोग शोतकम्प के साथ अकस्मात् प्रारम्भ होता है, ज्वर बढ़ जाता है।

मुना शेमा चितिहरूगा

अधिवृषण का यक्ष्माजन्य शोथ—संक्रमण पौरुप ग्रंथि अथवा शुक्राशयों से शुक्रवहा द्वारा पहुंच सकता है। प्रथम अधिवृषण का निम्न ध्रुव आक्रान्त होता है फिर सारे अधिवृषण को आक्रान्त करने के पश्चात् वृषण में फैल सकता है। अधिवृषण कड़ा हो जाता है। किलाटीभवन (Caseation) और मृदु होने पर वृषण कोप के निम्न और पार्श्व भाग में एक नाड़ी ब्रण (Sinus) दन जाता है। चिकित्सा न करने पर रोग उभयपार्थी हो सकता है, रोग के विस्तार शुक्रवहा मोटी और पविल (Nodular) हो जाती है। शुक्रवाहिनियों (Vasa deferens) के अधि-

च्छद को,बहुत हानि पहुंचती हैं। प्रण वस्तु के संकोच करने पर उनके सुषिरक मुड़ जाते हैं जिसके कारण शुक-वहन में गड़बड़ी होकर क्लैब्यता हो आती है।

तीव्रावस्था व्यतीत होने पर जीर्णावस्था प्रारम्भ होती है जो वर्षो रहती है। तन्तुत्कर्षे इस अवस्था का प्रधान लक्षण है। जिसके कारण उति का शनैः शनैः किमक नाश होता रहता है।

चिकितमा कई मास तक यक्ष्मा रासायनी चिकित्सा वावश्यक है। एक ओर के रोग में अधिवृषणोच्छेदन और रोग वढ़ने पर वृषणोच्छेदन करना उचित है।

际四项

वृषणार्द्ध (Tumours of Testis)

डा॰ प्रमिशंकर शर्मा ए.,एम.बी-एस , इन्चार्ज-राज आयु. चिकि. तसीमो वाया धौलपुर (राज॰)



दसंवरं के वालक से ३० वर्ष के युवक में यदि गुप्त वृपणता या कोई लिंगसूत्री विकृति हो, तो वृपणार्बुंद पाये जातेहैं। दुदंम अर्बुंद वृपण के अन्दर उत्पन्न होते हैं, जो निम्नलिखित हैं—

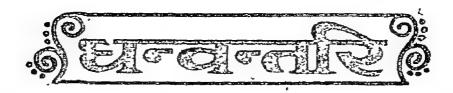
(१) सेमिनोमा (Seminoma)—सूदम गुक्राणु-जन निकाओं (सेमीफेरस ट्यूब्यूल्स) में उत्पन्न होते हैं। अबुंद कडा, ठोस, एक समान आकृति वालां व धीरे धीरे बृहदाकार हो सकता है।

- (२) टेरटोमा (Tertoma)—ये जनन कोषाओं से बनते हैं, जिनमें पेशी, तान्तव ऊतक और उपास्थि कोशिकाएं होती हैं और रक्तस्राव क्षेत्र भी हो सकते हैं।
- (३) कोरियन उपकलार्जुंद (Chorion Epithelioma) – यह वृषण का सबसे दुदंम अर्जुंद है जो अनाव-रोहित वृषण में अधिकतर होते हैं।

लक्षण—जब भी वृष्णार्जुंद पनने लगता है, वृषण बढ़ने लगते हैं, पर वेदना का सर्वथा अभाव रहता है। अर्जुंद चिकना, ठोस और एक समान तथा भारयुक्त होता है। वृषण रञ्जु धमनी (स्परमेटिक आर्टरी) के प्रारम्भ पर स्थित परामदाधमनी पर्वो (पेरा एओरिटिक नोड्स) में स्थानान्तरण होता है, जिससे नाभि से, एक और उदर में एक प्ररूपक (Typical) पिंड बन बाता है। कुछ रोगियों में क्षीणता (Cachexia) भी होती है।

जब अन्तर्स्तरीय केशिकाओं में अर्जुद बनता है, तो जड़कों के कम उम्र में ही दाड़ी-मूं इ आ जाती हैं। स्तनों की वृद्धि भी साथ साथ पायी-जाती है।

चिकित्सा वृपणोच्छेदन और वृपणरज्जु का उच्च वन्धन (Ligation) किया जाता है तथा परामहाधमनी पर्वो की गम्भीर 'एनस-रे' चिकित्सा की जाती हैं। यह विषय णत्य चिकित्सा (Surgery) का है। अतः शत्य शास्त्र की पुस्तकों में वृहद् वर्णन हज्ज्य है।



理學可能可能是過過過過過

प्रकीर्ण-प्रकरण

़ (पंचम खण्ड)

खरक क अधार पर

Q



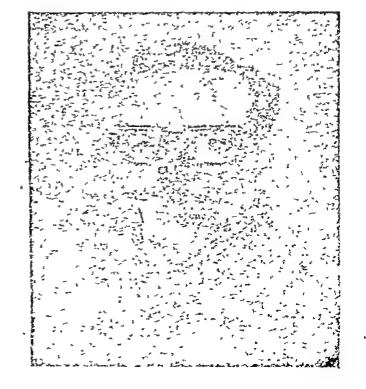
वैद्य श्री वेणी माधव अ॰ शास्त्री भिषगाचार्य, एच॰पी॰ए॰, एम॰ए॰, पी-एच॰डी॰ काय चिकित्सा विभागाध्यक्ष—शासकीय आयुर्वेद महादिद्यालय, ग्वालियर

सूत्र सम्बन्धी प्राकृत विकृत शारीर — भ्राणिकी (Embryology)—

**** 'संसर्गे शुक्रशोणितसंसर्गमन्तर्गेभाशयगतं जीवो-ऽवक्रामित सत्त्वसंप्रयोगात्तवा गर्भोऽभिनिवर्तते । च.शा.३।३

शुक्र णोणित संयोग जब अन्तर्गर्माणयगत होता है तथा
यथाकाल चेतनावान् अणुरूप मनोवेग भी संयुक्त होता है,
तब गर्भ धारण हुआ अनुभव किया जाता है, परीक्षा से
मान्य भी किया जाता है। इस गर्भावस्था का विकास
फ्रमणः शुक्र गोणित के साथ नित्य सम्बन्ध रखने वाले
जाति सूत्रीं (Chromosomes) के अनुसार होता है।
इसी क्रम को महर्षि चरक ने गारीर ३ खुद्दिका गर्भावक्रान्ति कहकर सातृज एवं पितृज अवयवों के विकास
फ्रम के निरूपण सहित विणत किया है। यथा—

यानि पल्वस्य गर्भस्य मातृजानि, यानिचास्य मातृतः



मुञा रोगा चिकित्सा

संभवतः संभवन्ति, तान्मनुज्याख्यास्यामः न्त्वक् च; लोहितं च, मांसं च, मेदश्च, नाभिश्च, हृदयं च, क्लोमं च, यकृष्च ट्लीहा च, वृक्की च, वस्तिश्च, पुरीपाधानं च। माशा-यश्च पक्वाशयश्चोत्तर गुदंचाधार गुदं च क्षुद्रांत्रं च स्थूंनातं च वपा च, वपावहनचेति। एवमेव—केशस्मश्रुनंखलोम दन्तास्यि सिरास्ना युद्यमन्त्रः शुकं चेति पितृनानि।

-च॰शा• ३।६<u>-</u>७

मातृज अवयवों में वृक्क, धस्ति, वपा, वपावहन, मेद एवं पितृज अवयवों में धमनी का विकास प्रकट किया है।

पुनः इस विकास क्रम को जोकि जाति सूत्रों के परिणाम से नियन्त्रित है महींप चरक ने भौतिक विकास
क्रमानुसार महती गर्भाशय क्रान्ति सध्याय में गर्भस्तु
खल्वन्तरिक्षवाय्यग्नितोयभूभि विकारश्चेतनाधिष्ठानम्
तः' कहा है। उक्त सातृज एवं पितृज अवयव विकास
को भी पुन. प्रकारान्तर से महाभूत विकार मानकर निरूपित किया है। यथा—

मातृजादयोऽप्यस्य महाभूतिविकारा एव । तत्रास्या-काशात्मकं शब्दः श्रोत्रं लाघवं सीक्ष्म्यं विवेकश्च, वाय्वा-त्मकं स्पर्शः स्पर्शंनं रीक्ष्यं प्रेरणं धातुब्यूहनं चेष्टाश्च शारीयः, अग्न्यात्मकं रूपं दर्शनं प्रकाशः पक्तिरीष्यः यं च, अबात्मकं रसो रसनं शैत्यं मादंबं स्नेहः क्लेदश्च, पृथिव्या-त्मकं झाणं गौरवं स्ययं मूर्तिश्चेति । च•शा॰ ४।१२

भौतिक भ्रूण विकास कम मे अप्धातु एवं अग्नि-धातु का परमाणविक (Molicular) सम्बन्ध मूल के साथ निर्दिण्ट है। इसी क्रम में आनुवंशिक रचना क्रिया विकारों तथा व्याधि परम्परा के लिये भी निर्देश दिया गया है जोकि मूल विकारों के संदर्भ में स्मरणीय है तथा लेखक के विचार से चिकित्सा विज्ञान के इतिहास में प्रथम पंक्ति में स्थापित करने योग्य वैज्ञानिक स्थापना कही जा सकती है। आज का विश्व आनुवंशिक व्याधियों के मूल में Chromosomes का सम्बन्ध १६वीं सदी के आरंभ में जान पाया है, जबिक महिंप चरक ने बीज, बीज भाग तथा वीजमागावयन के शुक्रशौणित दोप से विकृति होने का संकेत स्थूल मतानुसार इसा से ५ हजार वर्ष पूर्व दिया है। यहां क्रमणः—

१—वीज [शुक्र (Sperm) + शोणित (Ovum)

२—वीजभाग [मातृज-पितृज अवयटों से वर्णसूत्र (Chromosom) है]।

३—बीजभागावयव [जाति सूत्रों के गुण सूत्र (Genes) हैं]।

जैव रासायनिक शारीर (Biochemical Physiology)

तत्र यद्विशेषतः द्रव सर मन्द स्निग्ध मृदु पिच्छिनं रस रुधिर वसा कफ पित्त मूत्र स्वेदादि तदाप्यं रसी रसनं च। यद्विविक्तं यदुच्थते महान्ति चापूनि स्रोतांसि तदान्तिरक्षं शब्दः श्रोतं चेति।—च• शा० ७।१३

अङ्ग प्रत्यङ्ग कर्म एवं क्रिया गुणकर्म विज्ञान द्वारा अप् महाभूत एवं आकाश महाभूत तथा गति (सम्बन्धी "उन्मेयनिमेपाकु वन प्रसारण गमन प्रेरण धारणादि कर्म सम्बन्ध से वायु महाभूत का भी जैवरासायनिक शारीर सम्बन्ध मूत्र एवं मूत्र रोगों से स्यापित है। / क्रिया विज्ञान (Physiology)—

आयुर्वेदशों ने विकसित देह को 'दोषधातुमन मूलं हि शरीरम्' कहा है। इस आधार से वात-पित्त-कफ तीन दोष तथा रसादि शुक्रान्त ७ धातुएं तथा स्वेद, 'मूत्र, पुरीष ३ मल धारण पोपण एवं पालन करते हैं। इनकी विकृति से ही शरीर एवं उसके घटक भाव रचना क्रिया-रमक दृष्टि से विकृत होकर रोगी वनते हैं।

दोप—वात के प्राण, व्यान, समान एवं अपानभेद मूत्र निर्माण और विसर्ग तथा प्राकृत विकृत कर्म सम्पा-दन के लिये उत्तरदायी हैं।

ंपित्त के पाचक भेद का मूत्र निर्माण एवं विसर्ग से सम्बन्ध है।

कफ के क्लेदक एवं अवलम्बक भेद का मूत्र से सम्बन्ध है।

घातुएं — रस, मांस, मेदस, रक्त घातुओं का मूत्र के रचना किया ज्यापार एवं सम्बन्धित अवयवों से नित्य सम्बन्ध है। विशेषकर मेदो घातु का मूत्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वर्योकि मेदोवह स्रोतस् के मूल रूप में वृक्क एवं वपावहन निरूपित है। च० च० पाड

मल-मूत्र का कार्यं क्लेदवाहन लिखा है। स्वेद का कार्य क्लेद विघृति लिखा है। उक्त दोनों कार्य एक दूसरे के पुरक हैं।

Tal Ridl Ituanceti

रचना शारीर सम्बन्ध -

(१) महर्षि चरक ने विमान स्थान अध्याय १ में मूत्र वह स्रोतस् के शारीर वर्णन में वृक्कद्वय तथा वस्ति लिखा है। पाठान्तर से वृक्क को वंक्षण शब्द से भी निरूपित किया है। सम्बन्धित अवयवों में गवीनी, वस्तिशिर प्रन्थि (Prostate gland) भी लिखा है। अवयवों में मेढ़, वस्ति, वृक्क, गवीनिका मूत्रवह स्रोतस् के साथ सम्बन्ध स्थापित है। यहां तक कि मूत्र की माला का भी शारीर संख्या के प्रसङ्घ में ४ अञ्जलि मूल माला होती है, के रूप में वर्णन किया है। मूत्रवह स्रोतस् का वर्णन अत्यन्त ही सुस्पब्द रूप से किया गया है,। यथा—मूलवह नां स्रोतसां वस्ति मूलं वंक्षणी च। — च० वि• १। मूलवह स्रोतोद्धि का स्वरूप—

- (१) अंतिप्रवृत्ति--जैसे बहुमूत्र या मूत्रवेगः नियन्त्र-णाभाव।
- (२) संग जैसे मूत्रावरोध, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रोत्सङ्ग, मूत्रजठर।
- (३) प्रनिथ जोसे वस्तिशिर प्रनिथवृद्धि (Enlarged prostate) या अन्य अर्बुद होने पर !
- (४.) विमार्गगमन—जैसे शोथ होने पर या छिंदं रोग (Uraemia) में स्नातोदुष्टिका स्वरूप निरूपण महिषं चरक ने निम्न प्रकार किया है—

अति प्रवृत्तिः संगो वा शिराणां प्रन्थयोऽपि वा । बिमार्गगमनं चापि स्रोतसां दुष्टि लक्षणम् ॥ —व० वि० ४।२४

स्रोतस् की सूदम एवं स्यूल रचना का स्वरूप निरू-पित करते हुये महर्षि चरक ने लिखा है कि—

स्त्रधातु समवर्णानि वृत्तस्यूलान्यूणूनि च । स्रोतांसि दोर्घाण्याकृत्या प्रतान सहशानि च ॥

इनमें से वृत्त, स्यूल, अणुत्व, दीर्मत्व, प्रतान सहशत्क सभी स्यितियां मूत्रवह स्रोतस् के वस्ति, गवीनी, मेढ़ एवं वृक्कीय रचनाओं में पाई जाती हैं। इस क्रम में यह आयु-बंदीय Histopathology of urinary tract का वर्णन है।

मूत्रवह स्रोतोदुष्टि के सिद्धान्त एवं कारण —

स्रोतोदुष्टि के सिद्धान्तों का अत्यन्त ही सुगम एवं प्रत्यक्ष वर्णन महिष् चरक ने निम्न प्रकार किया है—

आहारश्च विहारश्च यः स्याद्दोषगुणैः समः । धातुभिर्विगुणश्चापि स्रोतसां स प्रदूषकः ॥ — च० वि० ४।२३

स्रोतोद्पक इस सामान्य सिद्धान्त की मूत्रवह स्रोतस के प्रसंग में व्याख्या करते समय गूढ़ एवं निहितार्थ का अध्याहार दोषगुण समान आहार विहार तथा धातु विपरित गुण आहार विहार के रूप में संदिश्वेत कर देने पर अति स्पष्ट हो जाता है। दोष शब्द से यहां उन सभी दोपों से तात्पयं है जो मूत्र निर्माण, धारण, संग्रह एवं संवहन से सम्बन्धित हैं। जिनका उल्लेख पूर्व में किया गया है। इसी प्रकार धातु विपरीत गुण से मूत्र के प्रसङ्ग में उन सभी धातुओं का ग्रहण किया जायगा जो मूत्र निर्माण में सहायक होती हैं, उनके विपरीत आहार विहार मूत्रवह स्रोतस् की भी दुष्टि करता है। इस विषय में अधिक सुस्पष्ट करते हुए आचार्य चरक ने उन कारणों का विशेष उल्लेख भी किया है जो मूत्रवह स्रोतस् की दुष्ट से सीधे कारणभूत होते हैं। यथा—

मूति तोदक भक्ष्य स्त्री सेवनानमूत्र निग्रहात्।
मूतदाहिनी दुष्यन्ति क्षीणस्याभिक्षतस्य च।।
—च• वि• ५।२०

द्षित स्रोतस् के लक्षण —

जिन लक्षणों को देख सुनकर चिकित्सक निश्चित कर सकता है कि मूजबह स्रोतस् ही दूपित हुआ है। यथा—

प्रदुष्टानां तु खल्वेतेपामिदं विशेष विज्ञानं भवति तद्यथा — अतिसृष्टं, अतिबद्धं, प्रकुपितं, अल्पाल्पं, अभीश्यणं वा बहलं, सभूलं मूलमन्तं दृष्ट्वा मूत्र वहान्यस्य स्रोतासि प्रदुष्टानीति विद्यात्। — च वि धाः

अति मात्रा में अवरोध होकर अति कठिनता से थोड़ा थोड़ा, वार बार, गंदला, पीड़ा के साथ यदि मूत्र प्रकृता हो रहा हो तो विना किसी प्रयोगशाला एवं उपकरण की सहायता के यह निश्चित जान लें कि मूत्रवह स्रोतस् में दृष्टि है।

सम्बन्धित रोग—प्रमेह, मूत्राघात, मूत्रातीत, मूत्र-जठर, मूत्रोत्संग, मूलसय, उप्णवात, अप्ठीला, मूत्रकृच्छ, अश्मरी, वितसार, वमन, रक्तपित्त, शोध, उदर रोग, वात कुण्डलिका, विड्घांत, वस्ति, कण्डू, मूत्रोवसाद प्रमुख हैं।

THE RUITERICA CHI

मूत्र रोगों की चिकित्सा के सिद्धांत -

मूत्रवह स्रोतोद्विष्ट के लिये मूत्रकृच्छ की चिकित्सा का प्रयोग निर्देश महिएं चरक ने विमान ११२८ में किया है। मूत्रवेग निग्रह के प्रसङ्घ में नवेगान्धारणीय सूत्र ७१७ में स्वेदन, अवगाहन, अभ्यङ्ग, अवपीहक सिर्पट्यान (भोजन से पूर्व या भोजन के बाद उत्तम माद्रा में घृतमान) त्रिविध वस्तिकमं निरूह, अनुवासन एवं उत्तर्वस्त प्रयोग का विधान किया है। यह चिकित्मा कियात्मक मूत्र एवं मूत्रवह स्रोतो विकृति के लिये प्रत्यक्ष फलप्रद है। किन्तु मूत्र निर्माण किया एवं रचना विकृति के लिये प्रियक चिकित्सा कम निर्देश च० चि० २६१४६ से ५८ तक किया है। इस कम में दोषानुसार चिकित्सा का विधान किया गया है। मूत्र रोग चिकित्सा में प्रयुक्त द्रव्य भो दोषानुसार वर्गोकृत कर चरक संहिताकार ने निर्दिष्ट किये हैं। मार्गदर्शनार्थ कुछेक द्रव्य एवं कमं दोषानुसार मूत्र एवं मूत्रवह स्रोतस् पर क्रियाकारी संक्रित हैं—

वातप्रधान रोगों में — अभ्यंग, स्नेहन, निरुहण, स्नेहो-पनाह, उत्तरवस्ति, सेक, लघुपंचमूल, मासरस, पुननंवा, एरण्ड, शतावरी, बला, पापाणभेद, कुलत्य, कोल, यव, वराहवसा, ऋक्षवसा, लवण, तैलफल।

पित्तंप्रधान मूत्र रोगों में - सेक, अवगाह, शीतप्रदेह,

ग्रीष्म ऋतुचर्या निर्दिष्ट आहार एवं विहार, स्नेड एवं क्षीरवस्ति, दुग्ध एवं तज्जन्य विकृतियां, द्राक्षा, विदारी-कन्द, इक्षुरस, घृत, शतावरी, कास, कुश, गोक्षुर, शाली, कशर, मधु, शकरा, कमल, श्रुगारक, सरकंडा, शीतल जल, ककड़ी, खीरा, अडूसा, मुलठी, तण्डुल—धावन, आमलकी।

कफप्रधान मूल रोगों में— यवक्षार, स्वेद, वमन, निक्ह वस्ति, तक्र, उप्ण तीक्ष्ण औषध, अन्नपान, तिक्ती-धप सिद्ध तैल अभ्यंग एवं पान, लिक्टु, गोक्षुरु, एला, दावीं, मधु, गोमूल, कदली, नकायन, चौलाई प्रवालच्णी, सप्तच्छद, आरख्ध, धव, करंज, क्रुटज, गृहूची।

इत प्रकार एक क्रम में महिप चरक द्वारा प्रतिपा-दित मूत्र रोग विवरण हमें सफल एवं सरल विकृति विज्ञान का ज्ञान कराने में सक्षम है। केवल सन्दर्भ एवं प्रसंग पुरस्सर अनुशीलन की अपेक्षा शेप रहती है जो कि स्नातकीय एवं स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में ढूढ़ने पर भी प्राप्त नहीं होती। जो पाठक इस क्रम में कोई अपूर्णता अनुभव करें कृपया लेखक को मार्गदर्भन अवश्य करें। इस संक्षिप्त सिद्धान्त निरूपण का विस्तार मूत्ररोग विज्ञान के एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की आधारभूत सामग्री वनने की पूर्ण पात्रता रखता है।

※※※

४ निदद्ध प्रकश ४

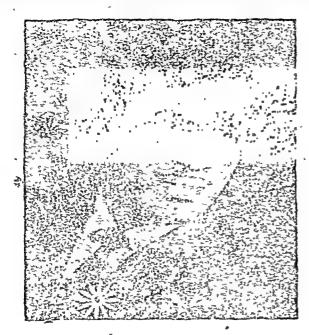
💥 पृष्ठ ३१४ का शेषांश 💸

ऐसा करने पर चर्म मणि को छोड़ता जाय तो ठीक वर्ना
"रोन्डेज" (इवांस कं. का) या "हाईजेल" टाटा फिशन
कं. का इन्जेक्शन मंगवा उसको वाटर फार इन्जेक्शन में
घोल शिश्नचमं पर चर्मान्तगंत सूचीवेश्व करना चाहिये—
शोड़ा-२ काफी स्थानों पर। ऐसा करने से चर्म शिश्नमणि
से हटने लगेगा। स्नेहन एवं स्वेदन कर पट्ट वंधन (मूत्र
छिद्रं को खुला रखते हुये) कर देना जरूरी होगा। शोथ
एवं पीड़ा हरने के लिये किसी बौडस्पेकट्रम एन्टी
वायोटिक का इन्जेक्शन कर दें। रोगी को लिगमदेन,
पीड़न बादि सहित संभीग न करने को कह दें।

अगर उपरोक्त दूसरी विधि से भी शिश्तमणि चर्म के बाच्छादन से आवश्यकतानुसार मुक्त ने हो तो फिर जान

कार पठित शल्य विशेषक से ही चर्म को कटवा देना चाहिये ताकि बन्य कोई नई व्याधि उत्पन्न न हो जाय और रोगी के स्वास्थ्य एवं जीवन को खतरा न पैदा हो। ध्यान रहे, देवल कुछ पुग्तकों को पढ़कर या किसी से कुछ सुन कर तथा उचित यंत्र शस्त्रों के अभाव में कोई चिकित्सक ऐसा शल्य कमें न कर वैठे क्योंकि यह एक सरल तथा सामान्य कार्य नहीं है। कहीं कहीं कुछ परंपरागत पढ़ित के अच्छे जानकार गोंवाई खानदानी वैद्ये, हकीम या नायते आदि भी इस कर्म को दिना किसी खतरे के सम्पादित कर देतें है। इनसे लाभ उठाना चाहिये (मुसलमानों में जो खतना या मुसलमानी बाल्यावस्था में होती है वह भी लगभग ऐसी ही किया है। इससे भी लाभ उठाया जो सकता है।

यूत्र रोगों की सरल चिकित्सा



मूत्र रोग अनेक हैं तथा उनकी चिकित्सार्थ औपिंघयां भी अनेक हैं। फिर भी मुख्य-२ रोगों तथा उनकी चिकि-त्सार्थ औपिंधयों का संक्षिप्त सार रूप विवेचन नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

(अ) आयुर्वेदिक चिकित्सा—

त्रिदोप सिद्धान्त पर आधारित यह पद्धति विश्व में अपना सानी नहीं रखती।

वहुमूत्र (Polyuria) — • थोड़ा-थोड़ा मूत्र अधिक वार होना —

सर्वे प्रयम वमन-विरेचन कर देह शुद्धि करें।

- (१) यगदभस्म (रस तरिङ्गणी)—१२५ से २५०मि. ग्रा. प्रातः सायं दूध-घी, मिश्री मा मलाई के साथ चटायें।
- (२) सुवर्णमाक्षिकभस्म(रसतरिङ्गणी)-१२५ से ३७५ मि॰ग्रा॰ दिन में ३ वार दूध, मधु, गुलकन्द, गिलोय का सत्व मा त्रिफला जल से सेवन करायें।
- (३) अञ्चलभरम (रसतरिङ्गणी) १२४ से २४०मि. ग्रा. दिन ३ वार जिलाजीत एवं मधु पिष्पली या हत्दी, पिष्पली और मधु के साथ दें।
 - _ (४) हेमनाथ रस (भैपच्य रत्नावली)-१२५ से २५०

मि. ग्रा. दूध-मिश्री या धात्री घृत के साथ सुवह शाम दें।

- (४) अश्विनीकुमार रस (औपिध गुण धर्म)-१२४ से २५० मि॰ग्रा॰ दिन में दो बार ईहल्दी-मधु से दें।
- (६) वृहद धात्री घृत (भैषज्य रत्नावली)— ॥ से १० ग्राम दिन में दो वार चटार्थे।
- (७) शु॰ शिलाजीत (भैषज्य रत्नावली)—२५० मि. ग्रा. छोटी इलायची के दाने और वंशलीचन एवं मधु के साथ सुबह शाम दें।
- (५) बृहद् वंगेश्वर रस (रसेन्द्रसार संग्रह)— १२५ से २५० मि० ग्राम गाय के दूध से दिन में २ वार दें। मूत्र की उत्पत्ति अधिक होने पर—

सर्व प्रथम हल्का विरेचन दे फोव्ठ की शुद्धि करें। तव—

- (१) वंगभस्म (आयुर्वेद प्रकाश)-१२५ से २५० मि. ग्रा. तक दिन में दो बार मलाई-मिश्री वादाम की खीर मनखन मिश्री या ईसवगोल की भूसी-मिश्री के साथ खिलायें।
- ्र (२) नागभस्म (रसतरङ्गिणी)-६५ से १२५ मि.प्राः दिन में २ वार मधु, दूध, मक्खन, मिश्री हत्दी या आंवला और मधु से चटायें।
- (३) जातिफलादि वटी (धन्वन्तरि)-६४ से १२४ मि. ग्रा. दिन में दो वार गुड़मार के अर्क या चूर्ण अथवा गाय के दूध के साथ सेवन करायें। मूवकृत्छ—

सर्वेषयम पेडू पर पहले गर्म और फिर गीतल जल की गद्दीदार पट्टी रक्खें। फिर रोगी को कमर से ऊपर तक गर्म जल की नाद में वैठावें। तव—

- (१) मूत्रकृच्छान्तक रस (रस चण्टांशु)-१ ग्राम सबेरे मिश्री एवं मुठ्ठा या लस्सी के साथ सेवन करायें। जरूरत पड़ने पर दुवारा या दिन में दो बार दें।
- ं(२) चन्द्रनादि अर्क (रसतन्त्र सारव सिद्ध प्रयोग संग्रह) २४ से ५० मि.लि. दिन में तीन वार पिलायें।

मूत्र रोगा चिकित्सा

- (३) यवक्षार (रसतरङ्गिणी)— ६५ से १२५ मि गा. जल से दिन में दो बार दें।
- (४) शिलाजीत (रसतरिङ्गणी)-१०० मि.ग्रा. बरावर वंग भरम, छोटी इलायची के दाने एवं पीपल चूर्ण के साथ दिन में २ वार दें।
- (५) उशीरासव (भैपज्य रत्नावली)—१५ मि. लि. से ३ • मि.लि. बरावर जल के साथ मिलाकर भोजन के बाद दिन में दो बार पिलायें।
- (६) प्रमेहगज केंशरी (वैद्यक सारसंग्रह)— १२४ मि. ग्रा. ३७४ मि. ग्रा. जल या गुड्मार के अर्क के साथ दिन में दो बार दें। मुत्रावरोध एवं मुत्राधात—

सर्व प्रथम रोगी को आराम से लिटा देवें। तव-

- (१) संगे यहूद भस्म (हिजरलयहूद)यूनानी हिकमत-२५० मि ग्रा. से ५०० मि. ग्रा. शर्वत-वजूरी या शक्कर के जल के अनुपान से हर १ घंटा पर कुल २-३ बार देवें। मूत्रमार्ग की पथरी को भी चूर्ण कर लाभप्रद है।
- (२) शीतल पर्पटी (स्व० पं० बंशीधर)—७५० मि. ग्राम से १५०० मि.ग्राम प्रातः जीरे के चूणं के साथ खिला कर ऊपर से शीतल जल पिलायें। जरूरत पढ़ने पर एक घंटा के बाद दूसरी खुराक दें।
- (३) त्रिकण्टकादि काढ़ा (भैषण्य रत्नावली)-५० मि. लि. काढ़ा वरावर मनु मिलाकर तुरन्त पिलायें। जरूरत पड़ने पर दो घंटे बाद दूसरी मात्रा देवें।
- (४) गोक्षुरादि अवलेह (आयंभिपक्)-२५ से ५० ग्राम प्रतिदिन प्रातःखाकर ऊपर से गाय का दूध पिला दें।
- (१) गोक्षुरादि गूगल (शाङ्का घर सं.)-२४० मि.ग्रा. सै ५०० मि.ग्रा. दिन में २-३ बार दूध या जल के साथ सेवन करायें।

उपदंश से उत्पन्न वस्ति शोध —

अष्टमूर्ति रसायन—सन्दर्भ ग्रंथ-औषि गुण धर्म-शास्त्र। माता १२४ मि. ग्रा से २४० मि. ग्रा. तक अद-रक के रस में भली भांति घिसकर मधु में मिश्रित कर दो बार प्रतिदिन चटा करके देवें। इसके सेवन से उपदंश से उत्पन्न हुए वस्ति (मूत्राशय) की सूजन जिससे मूत्र नहीं उत्तरता तो सभी विकार दूर होकर मूत्र आने लगता है। साय ही स्वणंक्षीरी मूल छात १ ग्राम पीसकर खिलायें। मुजाक से उत्पन्न मुत्र वाहिनी की सूजन-

सर्वं प्रथम किट प्रदेश तक स्वेदन तथा वमन विरेचन कराकर देह की शुद्धि करें। तव—

- (१) चन्दनासव या चन्दन तैल (भैपज्य रत्नावली)— १५ से ३० मि.लि. सम भाग जल मिलाकर प्रातः-सायं पिलायें। जीणं रोग में आधी मात्रा देवें।
- (२) सारिवाद्यासव (भैष. रतना)-१५ से ३ मि लि. दुगुना जल मिला भोजन के बाद दिन में दो बार पिलायें।
- (३) प्रमेहांतक वटी (भायुर्वेद निवन्ध माला)—५०० मि.पा. की (दो वटी) प्रातः २ ग्राम कतीरा गोंद और जल तथा दोपहर और शाम में जल के साथ खिलायें। वस्ति की निवंसता से मूत्राघात—
- (१) बृहद् वंगेश्वर रस (रसेन्द्र सारसंग्रह)-१२४ से २५० मि.ग्रा. गाय के दूध से दिन में दो वार पिलायें।
- (२) कांस्यभस्म (रस रत्न समुख्यय)-१२१ से २४० मि. ग्रा. तक मधु या गुलकुत्द से दिन में २ बार दें।
- (३) शिलाजीत शुद्ध (भैष रत्ना ०) २५० मि.ग्रा-बरावर छोटी इलायंची के दाने के साथ सुबह शाम दें।
- (४) अभ्रकभस्म (रस रत्न समुच्चय)—६५ से १२५ मि. ग्रा. मधु से चटाकर रूपर से इलायची के दाने, गोखरू और गाय का दूध मिला पिला दें। समस्त प्रमेह—
- (१) त्रिफला चूर्ण (चरक)—२ से ५ ग्राम समभाग हल्दी और दुगुने भाग मिश्री के साथ दिन में १ या २ बार खिलायें।
- (२) न्यग्रोधादिचूणं (योग रत्नाकर)— ३ से ६ ग्राम दिन में २ बार मधु के साथ चटाकर ऊपर से विफले का काढ़ा पिला देवें।
- ं (३) चन्द्रप्रभावटी (शाङ्ग धर संहिता)-२५० मि.ग्रा. से ५०० मि. ग्रा. दो बार प्रतिदिन १२ ग्राम गिलोय के स्वरस और ६ ग्राम मधु से सेवन करायें।
- ू (४) लोधासव (गद निग्रह)—१५ से ३० मि. ग्रा. वराबर जल के साथ भोजन के बाद दिन और रात में पिसायें।
- (१) वृहद् वंगेश्वर रम (रसेन्द्रसार संग्रह)-१२५ से २५० मि. ग्रा. गाय के दूध से दिल में दो बार सेवन करायें।

चिकित्सा

- (६) वसन्त कुसुमाकर रस (रस योग सागर) १२५ से ३७५ मि.ग्रा. दूध-मिश्री, मलाई अथवा मक्खन-मिश्री के साथ सेवन कारायें।
- (७) रोप्यभस्म (रसरत्न समुच्चय)-६५ से १२५ मि. ग्रा. तक दिन में दो बार १२ ग्राम ईसब्गोल की भूसी को ५०० ग्राम गाय के दूध में खीर बनाकर उसमें ५०० ग्राम मिश्री मिलार्वे। तब रौप्य भस्म को इस खीर के साथ दें।
- (८) शुक्र मांज्ञा वटी (शुक्र विकार जन्य प्रमेह हर) मैं प० रत्ना०—१२५ से २५० मि. ग्रा. दिन में दो बार बकरी के गर्म दूध या मीठे अनार के रस के साथ सेवन करायें।

मूत प्रसेक नलिका में व्रण---

सर्वथम नीवू के पत्तों के कपड़छन काढ़े से मूत्रप्रसेक निलका का प्रशालन, पिचकारी एवं सेंक करें। तब

- (१) उष्ण वातव्त चूर्ण (रस तन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह)—पू से १० ग्राम सुबह में दूध की लस्सी के साथ सेवन करायें।
 - (२) प्रमेहान्तक वटी (आयुर्वेद निबन्ध माला)-४०० मि.ग्रा. दिन में ३ बार जल से देवें।
 - (३) मूत्रकृच्छान्तक रस (रस चण्डांसु) १ ग्रा. प्रातः मिश्री और मठ्ठा या लस्सी के साथ सेवन करायें। साथ ही कुलधी का काढ़ा पिलायें।
 - (४) चन्द्रप्रभावटी (शाङ्गंधर संहिता)—२४० से ४०० मि. ग्रा. दो बार प्रतिदिन शीतल मिर्न और गोखरू के काढ़ा के साथ देवें। साथ ही मुलहठी चूणें ३ ग्राम दें। (आ) एलोपेंची चिकित्सा— वहमूत्र (Polyuria)
 - (१) पिच्यूटरी पोस्टेरियर लोब (Pitiutary Posterior lobe) (बी॰बा॰) एक एम्पुल प्रतिदिन मांस में एक दो बार सुई लगायें।
 - (२) बीजेक्टल Bejectal (अब्बट) सॉल्यूशन नं १ के साथ सॉल्यूशन नं २ भली-भांति मिलाकर १ मि.लि. मांस में सप्ताह में २-३ बार सूई जगायें। सावधान ! विटामिन वी. के अति संवेदनशीन रोगियों में इसकी सूई मत लगायें।
 - (३) वीट्रिशॉन Beetrion (फ्रेंको-इण्डियन) एक रूप्त प्रतिदिन ३ बार जन से निगलवार्ये। सावधान!

मूल घटक के एलर्जी वाले रोगियों में इसका प्रयोग न करें।

- (४) बीकोसुल्स Becosules (फाईजर) एक कैप्सूल या सीरप ४ मि. लि. प्रतिदिन सेवन करायें।
- (५) फेनोसिन ट्रिसल्फा Fenocin Trisulpha (फाईजर) एक टिकिया हर ६ से १२ घंटे पर पर्यास्त जल से खिलायें। मूत्र कमी होने पर (Dehydration)
- (१) डेक्स्ट्रोज विद नॉमंल सेलाइन सॉल्यूशन (बी. आई. या अन्य) ४०० से १००० मि. लि. इन्पयूजन विधि से बूंद-बूंद करके शिरा में अन्तःक्षेपित करने से मूत्र से रिक्त वस्ति में पुनः मूत्र उत्पन्न होकर मूल आने लग जाता है।
- (२) इलेक्ट्रल पाउडर Electral Powder (एफ.डी. सी.) इसे १ लिटर जल में घोलकर ९-२ छोटे चम्मच बार-बार दिन में कई बार पिलाते रहें। मूल एक जाने पर (Retention of Urine)—
- (१) कैकीन सोडि वेंजोएट Caffeine Sodi Benzoate (वी० आई) १ से २ मि० लि० मांस में सूई लगभग दिन में १-२ बार लगायें।
- (२) साइट्रासॉल Citrasol (बी॰ सी॰) एक से दो छोटे चम्मच बराबर जल मिलाकर दिन में २-३ बार पिलायें। वस्ति शोथ —
- (१) ब्रॉडिसिलीन (एत्केम) आवश्यकतानुसार २५० मिग्रा से १ ग्राम की मात्रा में कैंप्सूल, शर्वत या इंजेक्शन दवा रूप में मांस में सूई का प्रयोग करें। सावधान ! पेनिसिलीन के अति संवेदनशील रोगियों में इसका प्रयोग न करें।
- (२) कैम्पिसलीन (कैडिला) ५०० मि० ग्रा० के कैप्सल हर प घंटे पर या आवश्यकता के अनुसार निगल-वार्ये अथवा ड्राई सीरप में चिह्नित अंश तक उवाला ठंडा जल भली-भांति घोलकर २.५ मि०लि० से १० मि० लि० हर ६ घंटे पर बच्चों को पिलायें। सावधान ! पेनसिलीन के अति संवेदनशील रोगियों में इसका प्रयोग न करें। मूत्र में शकरा आना —

रेस्टिनॉन (हेक्स्ट) पहले दिन ६ टिकियां, दूसरे दिन ४ टिकियां दो तीन मात्राओं में बांटकर खिलायें। इसके १-२ टिकियां दो बार प्रतिदिन भोजन के तुरन्त बाद थोड़े से जल से दें।

an elou fellascau

- (२) डायोनिल (हेक्स्ट)— गुरू में ६ मि. ग्रा की एक टिकिया एक माता के रूप में नाशता के बाद दें और क्रमशः २ ६ से ६ मि ग्रा. हर सप्ताह में बढ़ाते हुए जरूरत के अनुसार अधिकतम १६ मि. ग्रा. प्रतिदिन तक ले जायें। सावधान! इस दवा को बचों, मधुमेह की मूच्छी, यकृत या वृक्क की विकृति एवं गर्भावस्था में मत देवें।
- (३) आर्टोसिन (बी-नॉल) जरूरत के अनुसार १ ५ से १ ग्राम (आधी से १ टिकिया) प्रतिदिन खिलायें। साव-धान ! इसे गर्भवती, मधुमेह जन्य अम्लता तथा रक्तनिल-काओं के ट्ट-फूट में मत प्रयोग करें।
- (४) इन्पृलिन (फाईजर) जरूरत के अनुसार उचित मात्रा में इसका इन्जेक्शन लगायें। यही दवा बूट्स कम्पनी की भी आती है। जरूरत के अनुसार ४० या ५० यूनिट मांस में सूई हर २४ घंटे पर लगायें। सावधान! सूई लगाने के तुरन्त बाद ही रोगी नाश्ता कर ले। अतः नाश्ता पहले से ही अपने पास रखले।
- (१) पेण्टिड्स (साराभाई) १-१ टिकिया आवश्यकता-नुसार (२ या ४ लाख यूनिट की) हर ६ घण्टे पर खिलायें।
- (२) क्रिस-फोर (साराभाई) एक वायल जरूरत के अनुसार हर १२ से २४ घंटे पर मांस में सूई लगायें।
- (३) डेल्टाकॉटिल (फाईजर) 9 टिकिया भोजन के बाद दिन में ३ वार खिलायें तो वृवकों की शोथ दूर हो।
- (४) अमीनोफायितन (वी उब्ल्यु॰) १ से २ टिकियाँ ३ बार प्रति दिन खिलायें तथा ऊपर से लिक्विड एक्स्ट्रैक्ट ऑफ पुनर्नवा आधा से २ छोटे चम्पच पिलाई।
- (१) मेड्रिवोन (रोश) इस रोग की सफल क्षीपिष्ठ है। आवश्यकता के अनुसार ६०० मि ग्रा. की एक टिकिया २-३ बार प्रतिदिन खिलायें। वच्चों को इसके ड्रॉप्स २ वूद प्रति किलो शरीर भार के अनुपात से प्रतिदिन पिलायें।
- (६) यूरोवायोटिक (फायजर)--१-१ कैप्सूल ३ बार प्रतिदिन निगलवायें।
- (७) जेण्टिसीन (निकोलस)—३ मि. ग्रा. प्रतिकिली भरोर भार के अनुपात से प्रतिदिन मात्राओं में बांटकर दें। वीच दशा में ४ मि. ग्रा. प्रति किली गरीर भार के धनु-पात से प्रतिदिन करके दें। दोसप्ताह तक प्रयोग करें।

- वृक्क भूल या अश्मरी —
- (१) रोगी को पीठ तक गर्म जल के टब में १० मिनट तक वैठायें या पीठ पर गर्म ईंट का सेंक करें।
- (२) मॉर्फीन एण्ड एट्रोपीन (वी. आई.) एक एम्पुल त्वचा में सूई लगायें।
- (३) पेथिडीन हाइड्रोक्लोराइड (बी. आई.) ५० मि. ग्रा. की एक टिकिया खिलायें या तीव दशा में इसका इंजेक्शन मांस में लगायें।
- (४) आवसैलजिन (कैडिला). ९-२ टिकिया दर्द के समय खिलायें।
- (५) वेनेमिंड (एम. एस. डी.) यूरिक एसिड से वनने वाली पयरियों को वनने से रोकने तथा उसको चूर्णकर निकालने के लिए इसकी आधी टिकिया तीन वार प्रतिदिन खिलायें।

्वार वार मूत्र त्याग होने पर—

- (१) एलिग्जर वैलेरियन ब्रोम (एलेम्बिक) जरूरत के अनुसार १ से २ छोटे चम्मच ३ बार प्रतिदिन पिलाये । यदि इतनी माला से लाभ न हो तो घीरे-२ मात्रा बढ़ाकर २॥ छोटे छोटे चम्मच ३ बार प्रतिदिन पिलाये । वन्चों को वयस्कों की आधी मात्रा दें।
- (२) मैक्रावेरिन (ग्लैंबसो) १ से २ मि. लि. मांस या धीरे-२ शिरा में प्रतिदिन इंजेब्शन लगायें तथा इसी की १ से २ टिकिया दिन में १-२ वार खिलायें।
- (३) लिक्विड एक्स्ट्रैक्ट ऑफ सगेंट १० से २० वूंद ३० मि. लि. ताजा जल में मिलाकर २-३ वार प्रति दिन पिलायें।
- (४) शारीरिक दुर्वलंता, आमाशय एवं यहत के दोप और दिमागों कमजोरी के कारण अधिकं मूत आने पर बीजेक्टल (अञ्बट) वयस्कों को १ मि. लि. मांस या घीरे घीरे शिरा में सप्ताह में २-३ वार सूई लगायें।
- (५) पिटोसिन (पार्क डेक्स) प्रतिदिन आधा से १ मि. लि. (५ से १० ऑक्सीटॉसिन यूनिट) का एक इंजे- क्यान मांस या त्वचा में लगायें। इससे मूत्रेन्द्रिय की मांस पेशियों में यथोचित नियन्त्रण शक्ति आकर बार बार मूत्र त्याग होने की शिकायत दूर होती है।

LA Elos fellescan

ओजोमेह---

- (१) स्पीमेन या स्पीमेन फोर्ट (हिमालया ड्रग) २-२ टिकिया मधु से चटा कर ऊर से गाय का गर्म दूध मलाई या जल दिन में ३ बार पिला देवें। ओजोमेह, प्रमेह, शुक्रमेह नाशक है।
- (२) फोर्टेंज (एलासिंन) २-२ टिकिया मधु से चटा कर ऊपर से गर्म दूध दिन में ३ बार पिला दें।
- (३) बंगसिल (एलासिन) दो टिकिया मधु से चटा-कर तीन बार प्रतिदिन ऊपर से गाय का गरम दूध पिला देवें।
- (४) बी० एच० पित्स (गैम्बर्स) भात्रा एवं प्रयोग विधि बंगसिल के समान ।
- (प्र) निक्षों (चरक) दो टिकिया दिन में २-३ बार गरम दूध या जल से दो सप्ताह तक सेवन करायें। मूलमार्ग के संक्रमण —
- (१) इमोनिसन (यूनित्वाइड्स) वयस्कों को २५० मि॰ ग्राम के कैपसूल तीन बार प्रतिदिन तथा बच्चों को १२५ मि॰ ग्राम तीन बार प्रतिदिन खिलायें।
- (२) इयुफोसिलीन (इयुफोरिक) इसके कैपसूरस और इहाई सीरप विकते हैं। तीव दशा में प्रयोग के लिए २४० और ४०० मि.ग्राम एवं १ ग्राम के वायरस आते हैं। बावश्यकतानुसार २४०मि. ग्राम से १ ग्राम हर ६ घण्टे पर प्रयोग करें।
- (३) मेरिजेण्टा (मंकरी) वयस्कों जिनका शारीरिक भार ६० किलो से अधिक हो ६० मिग्राम हर ६ घण्टे पर तथा ६० किलो से कम शारीरिक भार वाले को ६० मिग्राम हर ६ घण्टे पर तथा वच्चों को १ से १.६ मिग्रा प्रति किलो शरीर भार के अनुपात से हर ६ घण्टे पर दें। शिशुओं को २ पे २॥ मिग्राम प्रति किलो शरीर भार के अनुपात से हर ६ घण्टे पर तथा गण्हें शिशुओं को ई मि. ग्राम प्रति किलो शरीर भार के अनुपात से दी बार प्रति- ग्राम प्रति किलो शरीर भार के अनुपात से दी बार प्रति- दिन करके सभी को कम से कम ७ दिनों तक प्रयोग करें। यह सूई लगाने के लिए ४० मिग्राम प्रति मिली. की शक्ति के दो मिली. के कांच कुप्पी में मिलता है। सादधान!

इसे गर्भावस्था, अतिसंवेदनशीलता, वृवकशोथ आदि में नहीं प्रयोग करें।

(४) पायरिडैंसिल (इथनॉर) एक से दो गोली (सी से दो सी मिग्राम) भीजनों के बाद ३-४ बार प्रतिदिन खिलायें। इसकी एनएफटी गोली भी आती है जिसमें नाइट्रोफुर ण्टोइन भी मिला रहता है। प्रयोग विधि व मात्रा पूर्ववत् है।

योगासन चिकित्सा—

मधुमेह—गोमुखासन करें। गरम या ठण्डे जल का एनिमा लें। रात भर कमर पर भीगी पट्टी लगाये रखें। प्रतिदिन पांच मिनट तक सम्पूर्ण शरीर का बाष्प स्नान कराये। तब अल्प ठन्डें जल में कमर स्नान, मेढ़ स्नान या योनि स्नान दस मिनट तक करें। पथ्य में फल ताजी सटजी और करचा ताजा दूध सेवन करायें। कप्ताह में १-२ बार उपवास करें।

वृक्कणूल, अश्मरी—भुजंगासन करें। तब गोमुखा-सन करें। इसके बाद सर्वांगासन करें। दो चार दिनों उक नीदू या नारंगी रस मिले जल को बार बार पिलायों। प्रतिदिन दो बार एनिमा से कोंप्ठ की गुद्धि करें। महीना में एक बार सम्पूर्ण शरीर का बाप्प स्नान करें। ७ या १५ दिन पर एक बार उपवास करें। नारियल या खजूर का ताजा मीठा रस, फलों और सञ्जियों का रस, मठा आदि पथ्य में दें।

शुक्रमेह—(१) गरम जल का एनिमा करें।

(ः) पादांगुच्ठासन करें।

मूत्र का न बनना अयवा अल्प चनना--

अर्घ मत्स्येन्द्रासन करें। साथ ही प्रतिदिन वृक्कों पर गरम ठंडी सेक देवें तथा जब तक पूर्ण लाभ न हो जाय गरम जल का एनीमा भी लगाते रहें। पैरों का गरम जल का स्नान भी करें। सप्ताह में एक बार सम्पूर्ण घरीर का वाष्प स्नान करें तथा रात को कमर पर भीगी पट्टी लगावें। दिन में ३-४ बार गरम जल में कागजी नीव का रस निचोड़ कर पीवें। फलों का रस या गठा या दूध में जल मिलाकर पथ्य में देवें।

मुखह संस्थान के रोगों पर ... पिशिया न्याविश्विष्या । अगर्पडा गोपीनाथ परिक गोपेश्व 'शिषगारार्य

श्री गोपीनाथ जी 'गोपेश' बायुर्वेद जगत के जाने माने लेखक हैं। आपके पथ्य व्यवस्था परं उत्तमोत्तम लेख पढ़कर हमारी इच्छा हुई कि सूत्र रोगों की चिकित्सा पर भी आपका पथ्य व्यवस्था लेख प्रकाशित करें। आपने हमारे आग्रहानुसार लेख भेज कर अनुगृहीत किया है। —विशेप सम्पादक

वैद्यवर श्री वसवराज ने अपने "वसवराजीयम्" नामकप्रंथ के नवम प्रकरण में मूचवह संस्थान के रोगों का वर्णन किया है। वहां इन रोगों का वर्णन है—प्रमेह, मूलकु, मूचाधात एवं अश्मरी। ये रोग प्रायः मूवाशयः से सम्बन्धित हैं। कहा गया है—

मूत्राघाताः प्रमेहाश्च शुक्रदोषास्तयैव भ । मूत्रदोषाश्च ये वापि बस्तौ चैव भवन्ति हि ॥

डा॰ विगलों का कथन है कि दवाओं का प्रभाव और बीमारी, ये दोनों एक दूसरे के साथ इतने मिल गये हैं कि मन को उन्हें अलग करने में कठिनाई मालूम होती है। आयुर्वेद में भी औछछि की अपेक्षा पथ्य का महत्व प्रकट किया है। बीषिध के अतिरिक्त भी कई उपचार हैं। उन्हें हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—

- 1. शारीरिक उपचार—इसमें व्यायाम, संवाहन विद्युः रप्रकाश, सूर्य प्रकाश आदि से शरीर के विकारों को नष्ट किया जाता है।
- २. मानसोपचार मनोविकलन, प्रार्थनोपचार भीर विश्वासोपचार मानसोपचार कहे जाते हैं।
- ३. आहारीपचार आहार के हितकर एवं अहित-कर दो भेद किये गये हैं। मात्रायुक्त, अग्निवलानुसार पेवित आहार जिसके सेवन से दीप धातु, मल प्रकृतिस्य रहते हैं हिताहार कहलाता है। इसके विपरीत जो आहार हीन या अति मात्रा में किया गया हो अग्नि बल के अनु-सार सेवन न किया गया हो एवं जिसके सेवन से दोष, धातु, मल प्रकृतिस्थ नहीं रहते वह अहिताहार कहा

गया है। रोगोपचार के प्रसंग में अहिताहार रोगकारक होने से अपथ्य कहा गया है एवं तद्तद् रोग निवारक सांमर्थयुक्त हिताहार को पथ्य कहा गया है। हमें वहाँ पर मूत्रवहसंस्थान के प्रमुख रोगों में प्रयुक्त उपयोगी पथ्य आहार का वर्णन करना है एवं मन के लिए अनुकूल हित: कारी पदार्थों को चक्रपाणिदत्त ने पथ्य कहा है।

(चरक. सु- २४।२४)

१. प्रमेह-

श्यामाककोद्रवोहालगोधूमचणकाढकी । शालिमुद्गकुलित्थाश्च मेहिनां देहिनां हिताः ॥ —योग रत्नाकर

गेहूं, जी, चना, कोदों, चावल, मकई, बाजरा, मूंग, अरहर, चना, मसूर, कुलथी, तिल आदि प्रमेह में हितकर हैं। ये धान्य पुराने हितकर हैं क्योंकि नवीन धान्य गुरु एवं कफकारक होने से प्रमेह में पथ्य नहीं है-

घान्यं सर्वं नव स्वादु गुरु श्लेष्मकरं स्मृतम् । तत्तु वर्षोषितं पर्थ्यं यतो लघुतरं हि तत् । —भा. प्र. नि. ना ६९

बन्नों में जी प्रमेह मात्र में हितकारक है—

मेदोब्नाः बद्धमूत्राम्च समाः सर्वेषु धांतुषुः।

मवास्तस्मात्प्रशस्यन्ते मेहेषु च विशेषतः॥

—योग रत्नाकर

प्रातराश निमित्त गर्मी के दिनों में जो का सत्तू और सर्दी के दिनों में चने का सत्तू १००-१५० ग्राम थोड़े पानी में घोलकर नमक मिलाकर पीना चाहिये। निफला के

मूञ रोगा चिकिट ना

जल में रात को जी या चना भिगो सुवह निकाल सुख़ा कर भोजन में काम लेना लाभदायक है नयों कि त्रिफला के लिये कहा गया है—

त्रिफला कफिपत्तच्नी मेहकूष्ठहरा सरा।

कोदों चावल और मुलंथी की दाल मधुमेह में विशेष पथ्य है। बहुमूल में मसूर की दाल लाभदायक है।

पालक, वधुआ, मेथी, परवल, बैंगन सहिजन की फली मूली, गाजर, टमाटर, द्रोणपुष्पी व गुडूची पत्रों का शाक प्रमेह में उपयोगी है। करेला प्रमेह में अत्यन्त उपयोगी है। शालगम का शाक भी लाभप्रद है। तिक्तशाक विशेषतया हितकारक है।

फलों में जामुन के फल हिंतकारी हैं। होमियोपैंथी
में मधुमेह के लिए जामुन का रस "सिंजीजीयम जेम्बो॰
लिनम मदर टिचर" के नाम से काम में लिया जाता है।
गाजर, नारक्षी, अंगूर, कैथ, सिगाडा, खजूर, अंजीर,
मुनक्का, सेव, किशमिश, आंवला, पक्व गूलर फल
आदि हितकर हैं। केला स्वप्न मेह में एवं बहुमूत्र में उपयोगी है। एक केला खाकर आमलकी स्वरस में शकरा
मिलाकर पीने से बहुमूत्र में लाभ होता है। वृद्ध मनुष्य
वार-वार पेशाव जाते हों तो नित्य छुआरे खिलाने चाहिए।

इसके अतिरिक्त सैंधव नमक, मरिच, हरिद्रा, जीरा, दलायची, धनियां, इंगुदी का तेल, मधु, गोदुग्ध (अल्प मात्रा में) आदि भी हितकर हैं। रक्त मेह में शतावरी सिद्ध हुग्ध श्रेष्ठतम पथ्य है। इसी प्रकार तृणणंचमूल सिद्ध दुग्ध भी हितकर है। दुग्ध सिद्ध करते समय मात्रा इस प्रकार रखें— ववाध्य द्रव्य मिलित २५ ग्राम, दूध २०० ग्राम, जल ५०० ग्राम, शेप २०० ग्राम।

प्रमेह कफ प्रधान रोग है अतः व्यायाम, उवटन, विजयसार या खदिरसार के जल से अवगाहन, परिपेक, स्नान, खस, दालचीनी, इलायची, अगर, चन्दन का लेप इसमें हितकारी है—

व्यायामयोगैः विविधैः प्रगाउँ — क्दर्सनैः स्नान जलावसेकैः । सेव्यत्वगेलागरुचन्दनादौ —

विलेपनैश्चाणु न सन्ति मेहाः ॥
---चरक चि. ६।५०

च्यायामस्नानमभ्यंगं प्रमेहेषु हितं सदा ।

—ंवसवराजीयम्

च्यायामजातमिखलं भजन मेहान् व्यपोहित । पादत्रच्छत्ररहितो भिक्षाशी मुनिवद् यतः ॥ योजनानां शतं गच्छेदिधकं वा निरन्तरम् । मेहाञ्जेतं बने वाऽपि नीवारामलकाशनः ॥ — चक्रदत्त प्रमेह ४६-६०

विशेषतया शुक्रमेह में विचारों की शुद्धता भी आव-

शान्तवीररसाध्यायी शुक्रमेही सुखं वसेत्।।
— भी. र. शुक्र १९

शुक्रमेह में अर्जुन चन्दनसाधित दुग्ध का उपयोग करना चाहिए। ओजोमेह में बचासाधित दुग्ध लामप्रद है। सिकतामेह विदग्धाजीणं जन्य हो तो अजीणं का ध्यान रखें। इसमें चितक का प्रयोग अवश्य करना चाहिए एवं पर्याप्त जल पान से भी रोग निवारण होता है। पूयमेह में गिलोय अलसी का फांट हितकारी है। नीलमेह में अश्वस्थ साधित दुग्ध, मजिष्ठमेह में मध्यष्ठि साधित दुग्ध लाभ-प्रद है।

प्रमेह यद्यपि लंघनसाध्य व्यधि है पुनरिप शुक्रमेहादि प्रमेह पीड़ित रोगियों में यदि वृंहण की आवश्यकता हो तो अवदय पौष्टिक आहार देना चाहिए—

स्थूलः प्रमेही वलवानिहैकः

कृशस्तथैकः परिदुर्वेलश्च ।

संवृंहणं तत्र कुशस्य कायँ

संशोधनं दोपवलाधिकस्य ॥

-- चरक चि. ६।१५

किन्तु यह ध्यान अवश्य रहे कि यह पौष्टिक आहार उप न हो। ऐसे आहार में आमलकी, सिता, गो दुग्ध, सिंघाड़ा, चिरौंजी आदि उपयुक्त हैं। अपध्य—

दिधमधुगुडसिंप सीरमम्लं च हिंगु लवण लणुन निद्रासङ्गमं मत्स्यमांसम्। तिलसपंपशुष्ठिनारिकेलाम्बुं पिष्टं वृहतिपनसकन्दं मेहिनां शत्रुवगैः॥

—वसवराजीयम्

वाचायं सुश्रुत ने कहा है-- ''द्वो प्रमेही भवतः सहजो।

अतिस्वप्न

`६. अव्यायाम

न. शरीर शुक्ति

७. ग्राम्यानुपोदक मांस

agai Pial Piascell

ऽपथ्यनिमित्तश्च 'सुतरां' हेतोरसेवा विहिसा यथैव जातस्य रोगस्य भवेन्चिकित्सा'' के अनुसार अपथ्य का त्याग नितांत आवश्यक है। चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट ने निम्नां-कित कारण प्रमेह के कहे हैं —

वाग्भट चरक सुश्रुत १. शीतस्निग्ध १. मेदमूत्रकफकर १: कफ मेद मूत्र जनक आहार अन्नपान माहार २. नवान्नधान्यति २. दिवास्वप्न २. अनुपयुक्त सेवन ् शयन ३. दिध सुरा -३. अव्यायाम ३. नवान्नधान्य ४. आस्यासुखं ४ मेध्यद्रव्य ४. सुरा, गोरस, इक्षु ।

'इक्षुमूं वजननानां घेष्ठम' — चरकं सू० २४।४० और 'प्रभूतिक्रिमिमज्जामृङ्मांसमेदोकरः गुडः' (चरक सू० २७।२३८) के अनुसार प्रमेह में इक्षु और गुड़ अपथ्य है। तिल् स्वादु, स्निग्ध होने से अपथ्य हैं, यह वहुमूत्र में उपयोगी हैं। योगरत्नाकरकार ने अपथ्य कहे हैं—

५. आलस्य

५. आनूपमांस

६. बालस्य

सदासनं दिवा निद्रा नवान्नानि दधीनि च।
मूत्रवेगं धूम्रपानं स्वेदं शोणितमोक्षणम्।।
सौवीरकं सुरां सूक्तं तैलं क्षारं घृतं गुडम्।
सम्लेक्षुरस पिष्टान्नानूपमांसानि वर्जयेत्॥

शुक्रमेही इन अपथ्यों का परित्याग करें—
अभिष्यंदि दीर्घंजरं तीक्षणं पानान्नमेव च ।
सन्तापं मैथुनं मद्यं लङ्कनञ्चातिजागरम् ॥
दिवा निद्रां शुचं क्रोधमालस्यञ्चातिचिन्तनम् ।
असताञ्च तथा सङ्गं शुक्रमेही विवर्जयेत् ॥
— भै०र० श्क्रमेह०

रक्तमेह में लवण कार, ताम्वूल आदि तीक्षण विदाहि द्रव्य तथा पूर्यमेह में सुश्रु तोक्त नवधान्यादिवगं सदैव अपध्य है। संक्षेपतः प्रमेह में तिवतकपायरसात्मक पदायं पद्य हैं

और मधुराम्लरसात्मक पदार्थ अपथ्य हैं । कन्दशाक अपथ्य हैं।

२. मूत्रकृच्छ —

	आहार	
वर्ग	. पेथ्य	अप्रय
१. धान्यवर्ग	पुरातन रक्त शालि,	माय, तिल,सपंप,
	यव, मुद्ग ।	चणका
२. गोरस	गोदुग्ध, गोघृत, गोदधि	महिषी दुग्ध एवं
	गोतज्ञ	प्रायः दुग्ध भी
३. फलवर्ग	द्राक्षा, खजूर, नारि-	छुहांरा, जामुन,
•	यल, आमलकी,	करीरफल, कपित्य
•	अनार, मुसम्यी, अन-	आम, केला, वित्व
	न्नास, पपीता	
४. शाकवर्ग	परवल, चौराई,	वृंताक, करेला,
	ककड़ी, लौकी, सफेद	आलू, कर्कोटक
-	कोहडा (पुराना),	
_	मूली के पत्ते।	
५. इस्वर्ग	इक्षुरस, सिता, शकरा	नवीन गुड़
६ सन्य	कपूर, इलायची, कश्चे	*
	ं नारियल् का पानी,	ताम्बूल, मत्स्य,
**	धनिया, मधु, तण्डु-	मास,लवण, मद्य
	लोदक, गोमूख	`

विहार			
	पध्य	स्पर्य	
	अभ्यङ्ग (वात फफज में), शीत परिपेक अव- गाहन लेप (पित्तजन्य में), स्वेदन (वातकफज में), वस्ति, उत्तरवस्ति	श्रम,मैथुन,हायी घोड़े ऊँट की सवारी, वेगाव- रोघ, घूप, तेज हवा।	

मूत्रकृष्णुं में शीतवीर्यं वाले द्रव्य प्रायः हितावह हैं।
कपाय रस प्रधान अन्तपान मूत्रकृष्णुं में उपयोगी नहीं है।
अति तीक्षण, विदाही, रूक्ष, अम्लपदार्थं, विरुद्धासन, विषमासन मवकष्ण में सबैव अपक्र कहे गरे हैं। निघण्ट में

न्य रोगा चिहिन्द्ना

ाम्नांङ्कित द्रव्यों को मूत्रकृच्छ्हर कहा है—

नारिकेलफलं शीतं दुर्जरं वस्तिशोधनम् । तस्याम्भः शीतलं हृद्यं दीपनं शुक्रलं लघु। पिपासापित्तजित्स्वादु वस्ति शुद्धिकरं परम्॥ खबूं जं मूललं वस्यं कोष्ठ शुद्धिकरं गुरु। द्वपुरं लघु शीतं च नवं तृट्वलमदाहजित्। स्वादुपितापहं शीतं तिक्तं कृच्छ्हरं परम्॥ तद्दीजं मूललं शीतं इक्षं पित्तास्रकृच्छ्जित्॥

— आश्या न ना सार्थ ।

द्राक्षा पश्वा सरा शीता चक्षुष्या वृंहणी गुरु । स्वादुपाकरसा स्वय्या तुवरा सृष्टमूत्रविट् ॥ — भा०प्र०नि० ५।१११

शालयो मधुराः स्निग्धाः बत्या दद्धाः त्ववर्षसः । अत्पानिलक्षभाः गीताः पित्तव्या मूत्रलास्तथा ॥ — भा०प्रवित्व दा७

त्रेयः सोऽष्टगुणो मण्डो ज्वरदोपत्रयापहः ।
रक्तक्षुद्वर्धनः प्राणप्रदो वस्तिविशोधनः ।।
द्राक्षादिपानकं हृद्यं मूत्रलं तृड्श्रमापहम् ।।
धान्यकल्कसिताजातं पानकं शशिवासितम् ।
शीतं परं पित्तहरं मूत्रकृच्ळ्विनाशनम् ।।
— यो. र.

वातज मूत्रकृन्छ् में अमृता णुण्ठीसाधित दुग्ध लाध-द है। पित्तजमूत्रकृन्छ् में तृणपन्धमूलसाधित णीतल दुग्ध ना लाभप्रद है। आमलकी स्वरस मधुयुक्त भी पथ्य है। एफजमूत्रकृन्छ् में ५-७ छोटी इलायची गोमूत्र गा कदली-वरस से देनी चाहिये। त्रिदोपलमूत्रकृन्छ् में एक हित-गरी पथ्य है—

गुडेन मिश्रितं दुग्घं कटुप्णं कामतः पिवेत्। मूत्रक्र्ेपु सर्वेषु शर्करा वातरोगनुत्।।

बिभवातन मूलक च्छ्र में सितायुक्त मन्य, सिपयुक्त इतदुग्ध, इक्षुरस, बामलकी रस मधुयुक्त उत्तम पथ्य है। इक्षिवन्यन मूलकुच्छ्र में तृणपंचमूल सिद्ध दुग्ध सिता हित पीना चाहिये। शक्कद्विधातन मूलकुच्छ्र में इसी पथ्य हा प्रयोग करें एवं वस्ति का भी प्रयोग करें। अश्मरी जन्य मूलकुच्छ्र में वीरतर्वादिगणसाधित शृत दुग्ध हित-हारी है। दूध-जल की लस्सी, कुल्धी, यवसार भी लाभ-गय हैं। मूल की प्रतिक्रिया झारीय होने पर कुल्धी,

नीवू, इमली, त्रृणपश्वमूल हितकर है। मूत्र की प्रतिक्रिया अम्लीय होने पर क्षार हितकर है।

तिलापामार्गकदली पलाशयव संभवः।
दग्ध्वा तद्भस्म चादाय वस्त्रधातं जलैः कुरु।।
जले शुष्के तु तत्क्षारं द्विनिष्कं मूत्रकृष्कृतुत्।।
—वसवराजीयम्

अश्मरीजन्य मूत्रकृच्छ्र में अश्मरीद्रावक, त्नग्ध, मूत्रल बाहार की योजना करनी चाहिये।

३. सूत्राघात--

मूत्रकृच्छ्रमें मूत्र की क्रच्छ्रता अधिक और विवन्ध कम रहता है और मूत्राधात में मूत्रविवन्ध अधिक और कृच्छ्रता कम रहती है।

स्नेहस्वेदोपपन्नस्य हितं स्नेहिवरेचनम् । वस्तिरुत्तरवस्तिश्च मूत्राधाते सवेदने ॥ मूत्रकृश्छ्रे ऽग्मरी रोगे यत् पथ्यं च प्रयुज्यते । मूत्राधातेषु सर्वेषु तद् युञ्ज्याद् देशकालवित् ॥ अन्नपानमनुष्रं यद्यन्मूत्वश्चानुलोमनम् । हितपत्र विजानीयाद्विपरीतं सुखाय न ॥

मूत्राघात में वह पथ्य गुणकारी है, जो (१) अनुग्न हो (२) मृतल हो।

इस निमित्त तृणपंचमूलसाधित दुग्ध सर्वोत्तम पथ्य है। इसके अतिरिक्त अन्य दुग्ध योग भी पथ्य हैं— श्रुत शीतं पयो मांसी चन्दनं तण्डुलाम्बुना। पिकेत्सशकं रं श्रेष्ठं उष्णवाते सशोणिते।। त्रिकष्टक रण्डशतावरीभिः सिद्धं पंयो वातमये सण्ले। गुरुप्रगाढं सत्रृतं पयो वा रोगेपु कृन्छादिपु शस्तमेतत्।। —वसवराजीयम्

मूलावात नण्ट करने की क्रिया कई प्रकार से शरीर में संपादित होती है—

- मूत्रोत्सिका को अधिक संख्या में कार्य कराकर-मूत्र को बढ़ाने में गोमूत्र, चाय, काफी ब्रादि प्रमुख हैं।
- २. मूत्रोत्सिका या वृक्कों में रक्त प्रवाह बढ़ाक्तर-मूतवृद्धि करने में सुरा अद्वितीय है।
- ३. रक्त की आम्लिक क्रिया वढ़ाकर मूत्र को बढ़ाने वाले द्रव्य हैं-नवसादर, कलमीशोरा, अनारदाना, चावल, कृलत्य, ीवू, इमली आदि।

मुञा शेवा चिकित्सा

- ४. रक्त में स्ववण की मात्रा बढ़ाकर मूलल किया करने वाले समस्त सार हैं।
- ५. वृक्कों को उत्तेजित कर मूत्र बढ़ाने वाले द्रव्य हि—चन्दन का तैल, शीतलचीनी, पपीता, खट्टा अनार, अनन्तास, पोदीना, जिलाजीत आदि ।

समस्त औवध पथ्यों के दो भाग होते हैं-

(१) साक्षात् णारीरिक फलदर्शक, (२) असाक्षात् णारीरिक फलदर्शक।

इनमें साक्षात् शारीरिक फलदर्शकों के दो विभाग होते हैं—

- व्यापक फलदशंक,
 स्थानिक फलदशंक।
 व्यापक फलदशंक के पुनः तीन भेद हैं—
- 9. उत्रोजक (Stimulants)
- २. अवसादक (Sedatives)
- ३. परिवर्तक (Alteratives)

इसमें यथायोग्य उत्तेजक, अवसादक और परिवर्तक पथ्य की मूत्राघात में कुणल चिकित्सक को योजना करनी चाहिये। कतिपय उत्तम पथ्य हैं—

- १. २०० मिली. कांजी में ३ ग्राम सैंघा नमक, ९० ग्राम ककडी के बीजों का कल्क मिलाकर पीवें।
- २. कूष्मां इस्वरस ५० मिली ३ में ५ प्राम यवकार और २० ग्राम सिता मिलाकर सेवन करें—

शीतोऽवगाह वावस्तेरुष्णवातिनवारणः। कृष्माण्डकरसण्यापि पीतः स क्षार शर्करः॥

—चक्रदत्त मूत्राघात १५

- ३. शालि चावल के २४ मिसी० मण्ड में ५०० मि. ग्राम तिलक्षार मिलाकर प्रयोग करें।
- ४. गोपाल कर्कटी की जड़ में पीसकर सितायुक्त तप्ण बनाकर सेवन करें। इसी प्रकार मूली स्वरस, पर्ला-इ स्वरस का तप्ण भी सेवन करें।
- ४. उष्णवात में तण्डुलोदक ४ मिली ॰ श्वेत चन्दन ४ ग्राम, सिता ४ ग्राम मिलाकर सेवन करें।
- ६. औपसमिक उष्णवात में समधु तण्डुलोदक ५०--१०० मिली. या चन्दनादि अर्क शर्वत अनार मे मिला-कर पीर्वे।
- ७. पालक और लाल टमाटर का रस १०-१० मि. भी. पीने से मूत्राघात दूर होता है।

- प्राम ईसवगोल की भुक्षी को मिगोकर उसमें बूरा मिलाकर पीने से उष्णवात नष्ट होता है।
- ह. ९० ग्राम धनिया रात्रि में भिगो दें। प्रात: ठंडाई की भांति पीस-छानकर सिता मिलाकर पीने से भी उष्ण-वात में लाभ होता है।
- १०. एक शलगम और एक कच्ची मूली साथ में ही खार्वे। इससे मूलाघात में आराम मिलता है।
- 99. चुकन्दर को पानी में जवालें। इसके वाद शीतल हो जाने पर उसी जल में चुकन्दर को मसलकर पानी छानकर दिन में ३-४ वार २५-५० मिली. पी जाइये, उष्णवात में फायदा होगा।

पुराना शालि चावल, जो का दलिया, मुद्गयूप, सांवा, कोदो, गो, वकरी का दुग्ध, तक्र, दही, धृत, मिश्री, चीनी, आंवला वेदना, कूप्साण्ड, ककड़ी, खीरा, लौकी, परवल, नारियल का जल आदि दोपानुसार पथ्य रूप में प्रयुक्त करें।

शीतल मूत्रल द्रव्य और उत्तेजक मूत्रल द्रव्य में मूत्रल द्रव्यों के दो भेद होते हैं। यद्यपि शीतल मूत्रल द्रव्य अधिक परिमाण में सेवन करने पर कार्यकारी होते हैं किन्तु मूत्रा-धात में प्रायः ये द्रव्य ही अधिक प्रभावशाली होते हैं। औपवियां वीर्य प्रधान द्रव्य होने से प्रायः उत्तेजक मूत्रल होती हैं और आहार रस प्रधान होने से प्रायः शीतल मूत्रल होता है अतः मूत्राधात में विशेषेण पथ्याहार की महत्ता है। शास्त्र में पथ्यापथ्य इस प्रकार विणत है—

जविष्ठजूरकनारिकेल तालद्रुमाणामि मस्तकानि । यथामलं सर्वमिदं च मूत्राघातातुरासां हितमादिशंति ॥

विरुद्धाशन सर्वाणि न्यायामं मार्गे शीलनम् । रूक्षं विदाहि विष्टिम्भ न्यवायं वेगद्यारणम् । करीरं वमनं चापि मूत्राघाती विवर्जयेत् ॥

४ अश्मरो--

आचार्य सुश्रुत ने अश्मरी के दो मुख्य हेतु वतलाये हैं। (१) असंशोधन (२) अंपथ्य। सुतरां अश्मरी रोग में पथ्य सेवन एवं अपथ्य निवारण नितान्त आवश्यक है।

अष्टमरी वैसे विदोपात्मक व्याधि है किन्तु इसमें श्लेष्मा की प्रधानता होती है क्योंकि घनत्व इसी के कारण होता है और यह क्रिया वात सम्पादित करता है तथा वात के

gen ein fellegeth

विना शूल भी नहीं होता एतावता वातकफशामक चिकित्सा का निर्देश दिया गया है—

कफानिलाख्यकुच्छ्रस्य क्रियाश्मर्या प्रयुज्यते । वातदोषशमनाथं दशमूल, पित्तदोषशमनाथं चन्दनादि और कफदोषशमनार्थं न्यग्रोधादि गण द्रव्यों से सिद्ध वुग्ध, यूष, यवागू, कषाय आदि की योजना करनी चाहिये।

यद्यपि प्रोटीन की अधिकता से चावल अश्मरी में अपथ्ये है किन्तु पित्ताशय की अश्मरी में या पित्ताशमरी में पित्ताशम एवं मूथल होने से एवं एकांततः पण्यतम होने से शालि चावल पथ्य है किन्तु वे पुरातन हों। कफपित्त-शामक एवं मधुर कपाय रस होने से यव की यवायू कफजन्य और पित्ताजन्य अश्मरी रोग में लाभप्रद है। इसी प्रकार गोधूम की यवायू वातजन्य पित्ताजन्य अश्मरी में लाभदायक है।

क्षारीय प्रतिक्रिया से कफज अश्मरी बनती है अतः चने में स्टार्च एवं फास्फोरिक अम्ल होने से, इसी प्रकार कित कफ शामक लघु कषाय रस होने से अश्मरी में चना परमोपयोगी है। रात में चने की दाल जिगो दें, प्रातः पीसकर शकरा मिलाकर पानी मिलाकर एक गिलास भर सेवन करें। विटागिन 'ए' में अश्मरी प्रतिरोधक शक्ति है। चने की पत्तियों में यह विटामिन पर्याप्त होता है। सुतरां इनका शाक भी अश्मरी रोगशा- मक है। पथ्यतम मुद्गयूष कफजन्य व पित्तजन्य अश्मरी में हितावह है—

कुलत्था मुद्गगोधूमाः जीणं शालियवाः हिताः।

कुलत्य को वातकफशामक एवं अश्मरी शर्करानाशक कहा है। बाचायं सुश्रुत ने कुलत्य को विशेषेण शुक्राश्मरी-हर कहा है। वायु ही दूषित होकर कफ को सुखा-कर अश्मरी बनाता है—यह पूर्व में कहा जा चुका है। कुलत्य वातकफशामक है, इसमें अश्मरी भेदन व मूत्रल गुण हैं; अश्मरी की उत्पत्ति को रोकने में लाभदायक विटामिन 'ए' भी कुलत्य में है, अतः अश्मरी के रोगी को कुलत्य क्वाय २५-२५ मिली. प्रातः सायं पिलाना चाहिए। कुलयी चूर्ण को ३२ गुना जल में रात्रि में भिगोकर प्रातः छानकर यथावश्यक पीने को देना चाहिए।

अश्मरी रोग में गोदुग्ध, बकरी का दही, तक्र और भेड़ का घृत व मूत्र लाभदायक है। श्वेत गाय का दुग्ध गुरु और कफकारक होने से उपयुक्त नहीं है। अश्मरी रोग विनाशार्थ मध्याह्न में गोदुग्ध सेवन करना चाहिये— मध्याह्ने बलदायकं रुचिकर कुच्छाप्रमरीछेदनम्।। एक-दो दुग्ध के पथ्य प्रयोग हैं—

एलाहिंगुयुतं क्षीरं सर्पिमिश्रं पिवेन्तरः। मूलदोपविशुद्धचर्यं शुक्राश्मरीहरं परम्॥

—वसवराजीयम्

शतावरीमूलरसो गव्येन पयसा समः।
पीतो निपातयत्याणुह्यश्मरीं चिरजामि ॥
—योग रत्नाकर

दिध में अश्मरीभेदन शक्ति निहित है। त्रिदोषहर होने से आज दिध इसमें उत्तम है—'आजं दध्युत्तमं ग्राहि लघु दोपत्रयापहम्।' पथ्य अन्न के साथ दिखे अनुपान से यह द्रव्य सेवन करें—

विवतः कुट्जं दध्ना पंथ्यमन्तं च खादतः।
निषतत्यचिरादस्य निष्चितं मेढ् शकेरा ।।
—योग रत्नाकर

कफ वातशामक होने से तक भी लाभप्रद है। हिंगु, जीरा और सैंधव मिलाकर सेवन करने, से अश्मरीजन्य पीड़ा का भी शमन होता है। भेड़ के घृत के बारे में कहा गया है—

पाके लघ्वाविक सिर्पः सर्व रोगविनाशनम्। वृद्धि करोति चास्थीनामध्मरी शकरापहस्।। —भावप्रकाश निषण्टु

कफ वात शामक होने से भेड़ का मूत्र अश्मरी में गुणकारक है। यह स्मरण रहे कि---

'गोजाविमहपीणां च स्त्रीणां मूतं प्रशस्यते ।'
नारिकेलोदक पित्ताश्मरीनाशक कहा गया है—
स्निग्धं स्वादु हिमं हृद्धं दीपनं वस्ति शोधनम् ।
वृष्यं पित्तपिपासाद्दनं नारिकेलोदकं लघु ॥
—योग रत्नाकर

वैसे लघु एवं वस्ति शोधक होने से सभी प्रकार की अग्मरी में लाभदायक सिद्ध हो सकता है। हरिद्रा नारि-केलोदक से सेवन करनी चाहिये। शोथनाशक, शूलहर एवं कफामयहर होने से अग्मरी रोग में सदैव आद्र के हितावह है। वातकफहर होने से क्षार सदैव इस रोग में हितकारी है—

ga fin filescen

तिलापामार्गेकदलीपलाशयवसंभवः

--- योगरत्नाकर

पुराना गुड़ लघु एवं पथ्य होने से लाभप्रद है। शकरा, सिता वातिपत्त शामक होने से वातज पित्तज रोगों में हितकारी है तथा मधु शकरा व द्राक्षा शकरा कफित्त शाप्रक होने से कफज पित्तज रोगों में लाभप्रद है। इसी प्रकार कफिप्तहर, लघु, स्वादु, कपायानुरस और योग-वाही होने से मधु तो गुणकारी है ही।

'कूटमाण्डं वृंहणं शीतं गुरुपित्तास्त्रजित्' होने से श्वेत कूटमाण्ड इस रोग में पथ्य है। इसके स्वरस ४० मिली. में ५ प्राम गुड़ एवं १ ग्राम यवसार मिलाकर पीना चाहिए। खट्टे बनार के बीज एवं ककड़ी के बीज भी अक्सरीहर हैं। खीरा, ककड़ी मूलल एवं कफवातहर होने से अत्यन्त लाभकारी हैं। इनके स्वरस में मधु एवं निम्बू स्वरस मिलाकर सेवन करना चाहिये। गोपाल कर्कटीमूल की पथ्यव्यवस्था प्रकट की गई है—

गोपालकर्कटीमूलं विष्टं पर्यु विताम्भसा । पीयमानं त्रिरातेण पातयत्यश्मरीं हठात् ॥ —राजमार्तण्ड

वरण शाक कपाय तिक्त होने से विशेषेण अश्मरीहर कहा गया है। त्रिदोषहर शाकराट् वास्तूक पित्तकफहर, विषहर मूत्रल विटामिन 'ए' से पूर्ण तण्डुलीय और पित्त-कफहर विटामिन 'ए' युक्त पालक भी इस रोग में पृथ्य हैं। मेथी, धनियां, पोदीना, गाजर, लोकी, चौपतिया, चुकन्दर आदि विटामिन 'ए' से युक्त होने पर पृथ्य है। चुकन्दर में पाये जाने वाला तत्त्व बीटिन है जो लाभप्रद है। पत्ता गोभी में भी विटामिन 'ए' होता है। पलाण्डु और मूली स्वरस भी शर्करासहित गुणकारक हैं।

वातिपत्तहर खरवूजा भोजन के मध्य में खाने से फल प्रव है। इसी प्रकार वातिपत्तशामक सेव भी पथ्य है। यह पित्ताशय की अश्मरी में विशेष रूप से लाभ करता है। वाताश्मरी में निम्बू और आग्रस्वरस तथा नारङ्गी-स्वरस हितकारी है। पित्ताश्मरी में नारियल, परूपक, मातुलुङ्ग एवं कफाश्मरी में द्राक्षा, गाजर, ककड़ी विशेषण पथ्य है। पपीते में विटामिन 'ए' २००० इन्टर नेश-नल यूनिट प्रति सी ग्राम और विटामिन 'सी' १३० मि. प्राम प्रति सी ग्राम होता है। इसकी जड़ १ ग्राम पीसकर

जल मिलाकर छानकर कुछ दिन पीने से भी अप्रमरी गल कर निकल जाती है। अप्रमरी को नष्ट करने में कपाय रस प्रधान द्रव्य विशेष हपेण प्राय: पथ्य कहे गये हैं। उल्ण जल का सेक एवं अवगाहन आदि भी इस रोग में हितावह है।

वातिक एवं पैत्तिक अण्मरी में अम्ल विपाक वाले द्रव्य प्रायः अपथ्य हैं तथा श्लेष्मिक अश्मरी में क्षारीय विपाक वाले द्रव्य प्रायः अपथ्य हैं। मादक एवं गुरु द्रव्य इस रोग में हानिकारक सिद्ध होते हैं।

चावल, उड़द, टगाटर आदि ह्रव्य इसमें खाह्तकर हैं। ४. व्यक रोग-

वृक्करोगों का प्रमेठ में अन्तर्भाव होने से प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इनका स्वतन्त्र वर्णन नहीं मिलता है। वृक्क रोगों में वह औपिष्ठ, अन्न हितकर हैं जो मूत्र का प्रवर्तन करे, रक्त का शोधन करे, विह्न का दीपन करे, धातुओं का पापण करे, हृदय को सबल बनावे, कृपित दोषों की शांति कर मलों की आगे गति कराने में सहा- यक हो।

अर्थात् जो मूत्रल हो, रक्तप्रसाद न हो, दीपन हो, पौष्टिक हो, हृद्य हो, अनुलोमन हो।

क्योंकि मूत्रल द्रव्यों से देहगत, रक्तगत विजातीय द्रव्य एवं हानिकर विष बाहर निकल जाता है, वृदक्षीय दूर होता है। वृक्षाप्तरी में मूत्र परिमाण की वृद्धिकर मूत्रल (भीतल) द्रव्य लाभ पहुंचाते हैं। धनिया, कल्विज्ञका, यवसार, नारियल, शीतल जलपान, दूध-जल की लस्सी, वादाम आदि की ठण्डाई, गाय-वकरी का दूध, यवयूप आदि यथाकाल बलानुसार यथावश्यक इस कार्य निमित्त परमोपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। मूलकृच्छ्राधिकारोक्त पथ्य भी इसमें लाभवद है। किन्तु अधिक शीतल पथ्य न दें।

वयोंकि रक्तप्रसादन द्रव्यों से रक्त में उत्पन्न विकृति दूर होती है, रक्त स्वच्छ होता है, रक्त का दबाब कम होता है। रक्त और इतर धातुओं में से मृत विजातीय कीटाणु दूर होकर देह सदल बनता है, रक्ताणुओं में वृद्धि होती है, रक्त में क्वेताणुओं की संख्या बढ़ जाती है अ मलकी, चन्दन, इलायची, हिरद्रा, गिलोय, सोंठ, पटोल, संतरा, मौसम्मी जादि यथावश्यक इस निमित्त पथ्य कहे। गये हैं।

THE FINE FRANCE !!

वयों कि दीपन द्रव्यों से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। यकृत् और अन्त्र की क्रिया सुचारु होती है। आमाशय स्वल्प उत्तेजित होने पर आमाशय का रक्तस्राव वढ़ जाता है। देह घटकत्व निर्माण के प्रति आहार पर शरीर की प्रथम क्रिया इन्हीं द्रव्यों से सम्यक् वनती है। शत-पुष्पा, सन्तरा, धनिया अजवाइन, मेंथी, जीरा, हिंगु, अजमोद, पारसीक यवानिका, प्रपीता सादि इस कार्य हेतु लाभप्रद हैं।

क्योंकि पौष्टिक द्रव्यों से अङ्ग विशेष या सर्वाङ्ग को जल मिलता है, जीवन क्रिया उत्तेजित होती है, हृदय क्रिया बलवती वनती है, वालवाहिनियों की शवित बढ़ जाती है, वृवकविकृतिजन्य निवंकता दूर होती है, इस निमित्त आमलकी, गिलोय, शतावरी, यव, हरिद्रा, दुग्ध, खुरासानी अजवाइन, नारियल, गोखरू, शतपुष्पा, इला-यची, खीरा, चन्दन आदि सर्वेव पथ्य हैं।

क्योंकि हृद्य द्रव्यों से रक्तवाहिनियां और हृदय सबल बनते हैं। सामान्यतः स्वास्थ्य सुघरता है, वेदना, अरित दूर हो मूलसारक क्रिया सम्पादित होती हैं, इस निमित्त फलप्रद पथ्य हैं—गेहं का दिलया, मूंग की दाल, परवल, पालक, तण्डुलीय, दुग्ध, आमलकी, पारसीक यवानी, अज-मोद, यवानिका, मधु, मीठा अनार, विजीरा आदि।

हमोंकि अनुलोबन द्रव्यों से किसी स्थान का शोध दूर होता है रक्त में मूत्रविष वृद्धि (वृक्क संन्यास-यूरीमिया) होने पर रक्त विषमय वन जाता है,अनुलोमन द्रव्य इस विष को निकालते हैं। रक्तरस में विरेचक, मूत्रल, स्वेदल द्रव्य प्रविशित होकर इनमें से अनेक पदार्थों के परमाणुओं को निर्गत करा देते हैं। वातावि कुपित दोषों को अनुलोमन द्रव्य शांत करते हैं, मलों को यथामार्ग प्रवृत कर बंधों का भेदन कर उन्हें पकाकर नीचे गिराते हैं ये मृदु विरे-षक होते हैं। इनसे स्रोतस शुद्ध होते हैं। क्योंकि इनके सम्यक् योग से क्रमशः पुरीष, पित्त, कफ व बात निकलते हैं इनसे अधोमार्ग का संशोधन हो जाता है। इस निमित्त मुनक्का, त्रिफला, फालसा, अन्कीर, आलुबुखारा, एरण्ड तैल, मघु, अंगूर, पपीता, गोदुग्ध, तण्डुलीय, गुलाव के फूल, विविध क्षार लाभप्रद पथ्य हैं। वृक्क प्रदाह में जल वत् भेदोत्पादक कालादाना प्रयुक्त होता है। खरवूज, तरवूज, चन्दन के पानक भी हितकर हैं। मौसम्मी के स्वरस का कल्पविधि से सेवन करने से वृक्कशूल एवं वृक्कशोथ समूल नष्ट होते हैं। इसी प्रकार सेव और नारङ्गी भी लाभप्रद हैं।

जब तक वृक्क मूत्रोत्पादन और निष्कासन क्रिया में समयं नहीं होते तब तक नवण का परित्याग अत्यावण्यक है। इसे अस्वस्थ होने के कारण वृक्कं बाहर नहीं निकाल पाते और वह पैरों के निचले भाग में जमा होकर शोथ उत्पन्न कर देता है।

अधिक शीतल जल, शीतल वायु, अत्यधिक परिश्रम, अर्द्ध स्थान में निवास, अत्यधिक विषाद रोग को बढ़ाते हैं। पारद निर्मित रसीपिधरां वृवक रोगों में विश्व चिकि-त्सक को प्रयुक्त नहीं करनी चाहिये। गुरु, तीक्ष्ण पदार्थ सदैव हानिकारक कहे गये हैं।

दधि, केला, अमरूद, मिठाइयां, दालें, मध, अण्डे, मांस आदि इस ज्याधि में सदैव अपथ्य हैं।

वृक्करोगों में मांस भक्षण सर्वथा अपथ्य है। मांस को पचाने में शरीर को अधिक ताप की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त ताप के कारण वृक्कों की रक्त छानने की प्रक्रिया बहुत तेज हो जाती है और मूत्रोत्सिका में ये लवण-क्षार, अतिरिक्त दवाव के कारण छनने से वच नहीं पाते और मूत्र के साथ बाहर निकल जाते हैं। अर्थात् वृक्कों की लवण सन्तुलन और अम्लक्षार क्रिया सम्यक् रूपेण सम्पादित नहीं हो पाती। इससे अस्थियां कमजोर हो जाती हैं तथा इन रासायनिक प्रक्रियाओं के असन्तुलन के कारण अन्य भी कई रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

—श्री वैद्य गोपीनाथ गोपेश भिषगाचार्यं चिकित्साधिकारी-राजकीय वायुर्वेद चिकित्सालय. पचार, जिला सीकर (राज॰

कृष्णिशिलाधिका खालाधिका विकास मार्थिक स्थानिक
मूत्र रोगों की अपने द्वारा किये गये प्रयोगों के आधार पर सूर्य रिश्म, प्राकृतिक, यौगिक, वायोकैमिक की सरल चिकित्सा विधि लिख रहा हूं—

(१) सूर्य रिश्म—सूर्य किरणों में सात रङ्ग होते हैं— १. वैंजनी, २. नीला, ३. बासमानी, ४. हरा, १. पीला, ६. नारङ्गी, ७. लाल।

सीघे सूर्यं की किरणों में वरावर उचित काल तक वैठना ता उचित स्थान तक पाना सम्भव नहीं होता है। अतः सूर्यं की किरणों के सम्मुख सम्वन्धित रङ्ग के शीशे की प्लेट को रख देते हैं और अपेक्षित काल तक उस प्लेट पार कर वाहर आयी किरण का उपयोग अपेक्षित अवयव के लिये करते हैं। इसी प्रकार हर समय और हर अवयव पर अपेक्षित रङ्ग वाली किरण पहुंच पाना सम्भव न होने के कारण अपेक्षित रङ्ग वाली वोतलों में रखे हुए जल (सूर्यं किरण संतप्त जल) का आन्तरिक प्रयोग करने से भी पूरा-पूरा लाभ पाया गया है। निम्नलिखित प्रयोग सूत्र रोगों में लाभकारी सिद्ध हुये हैं—

वृक्कशोथ — आसमानी रङ्ग का प्रकाश ३-४ वार ४-५ मिनट डार्ले। १२ १३ मिली. आसमानी रंगीन पानी दिन में २-४ वार पियें।

मूत्रकृच्छ्र, मधुमेह, मूत्रावरोध—आसमानी रंग वाला पानी २४-२६ मि.ली. प्रातः सायं पीने से यथाशीघ्र लाभ होता है।

वृक्तशोध-नारंगी रंग का प्रकाश ३-३ मिनट तक। ६-५ मिली. नारंगी पानी यथालाभ तक पीने से लाथ।

मूत्रदाह, पूर्यमेह—सासमानी रंग वाला पानी २४ से मिली. प्रातःसायं पीने से यथाशीघ्र लाभ होता है। प्राकृतिक चिकित्सा विधि से रोगोपचार—

मूत्रावरोध या मूत्राधात होने पर—कच्चे नारियल का पानी पिलाने से लाभ पाया गया है। दूध में भौगुना पानी मिलाकर चीनी तथा कागजी नीवू के रस को डाल कर पिलाने से पूरा लाभ पाया जाता है। कलमी सोडे के गाड़े घोल को मोटे कपडे की पट्टी पर लेप कर बस्ति. पेड़ू प्रदेश पर रखने से भी पेशाव उत्तर जाता है। गुन गुने या सहने योग्य गरम जल से टब इतना भर दें कि उसमें बैठकर कटिस्नान कर सकों तो भी मूलावरोध, जलन, वेचैनी दूर हो जाती है।

आयुर्वेद पद्धति से मूत्र रोगों की अनुसूत चिकित्सा—

(१) घृतकुमारी स्वरस ५ तोला एवं स्विजिका क्षार ४ माशा तथा शिलाजीत ६ माशा मिलाकर २ माला बनाकर नियमित रूप में पीने से 'मूत्रकुन्छू' रोग दूर हो जाता है और आराम मिल जाता है।

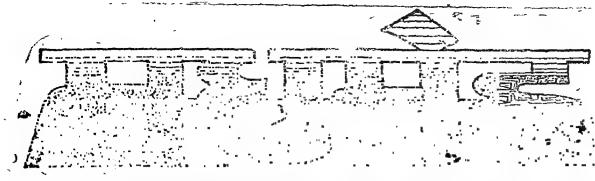
(२) 'श्वेत स्फिटिका भस्म' १ ग्राम फटे दूध का पानी १२० मिली में घोलकर पीने से किसी भी कारण

से होने वाला मूत्रकृच्छ्र दूर हो जाता है।

(३) 'एलुआ चूर्ण' २ ग्राम से ४ ग्राम तक कैपसूल में रखकर गरम जल के साथ देने पर वृवकश्चल में तत्काल आराम मिलता है। लगातार प्रयोग करने से स्थायी लाभ होता है।

(४) 'गोखरू का इन्जेक्शन' [सिद्धि फार्मेसी]—मूत्र सम्बन्धी लगभग सभी विकारों में सफल सिद्ध हुआ है। यह वात अवश्य है कि स्थायी लाभ के लिए इसके १२ इन्जेक्शन अवश्य लगाने चाहिये।

(भ) 'चन्दनासव' दिन में तीन बार २५ से ३० मि.
— शेपांश पृष्ठ ३३६ पर देखें।



श्री डा॰ विठ्ठलदास मोदी, संचालक 'आरोग्य-मन्दिर', गोरखपुर (उ॰ प्रः)

श्री चिठ्ठलदास जी मोदी प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति के सुप्रसिद्ध चिकित्सक हैं। गोरखपुर में सापका 'आरोग्य मन्दिर' जीवन से निराण मानवों को जीवनदान देने का आग्रा-केन्द्र है। आप 'आरोग्य' पिल्लाका के सम्पादक भी हैं। प्राकृतिक चिकित्सा के भारत विख्यात उद्भट विद्वान् हैं। आपने मधुमेह की प्राकृतिक चिकित्सा पर लेख भेजकर अनुगृहीत किया है।

— विशेष-सम्पादक 'धन्वन्तरि'

मधुमेह के रोगी को रोज सेर भर गाय के दूध का दही खिनायें, परवल, तोरई, टिण्डा, लोकी, करेला आदि की विना नमक की हरी सब्जी दें। जो सब्जी जितनी हरी होगी वह उतनी ही फायदेमन्द होगी। आलू, घुड्यां, कुम्हड़ा गोभी आदि की गिनती हरी सब्जियों में नहीं है। कुछ खट्टे फल भी दें—जैसे टमाटर, सन्तरा, मीसम्मी, अनन्तास, मकोय, जामुन आदि। साथ ही एक-दो छटांक चौकर समेत गेहूं के आटे की रोटी भी दें। रोगी के लिये छः मील नित्य टहलना आवश्यक है। इस उपचार से रोगी अच्छा हो जायगा।

असल में प्रकृति हमें जो चीज जिस रूप में देती है उसी रूप में हमें उसे ग्रहण करना चाहिये। जो आग के सम्पर्क में लाये बिना न पचने वाली हो उन्हें उतनी ही देर आग के सम्पर्क में लाना चाहिये जिससे ने पचने लायक हो जायें और जब पेशाब में चीभी आ रही है, खून में चीनी बढ़ गयी है, तब इसका मतलब है कि चीनी जिन खाद्यों से बनती है अर्थात् गेहूं चावल, दालें, चीनी कुछ दिन के लिये न ली जायें।

पूरी पाचन प्रणाली के आराम का अर्थ ही उपवास है। क्यों न एक दो दिन उपवास के वाद भोजन में परिवर्तन करें। मधुमेह के रोगी को चाहिये कि चिकित्सारंभ में एक दो दिन का उपवास करें लीर फिर एक सप्ताह खट्टे फलों और हरी तरकारी पर रहें। सुबह पाव-डेढ़पाव दमाटर या सन्तरा या जामुन खाना ठीक रहेगा। दोपहर माम को वे हरी उवली तरकारियां आध तेर या डेढ़ पाव को मात्रा में लें। दूध एक उफान से अधिक गरम न किया जाए। जो दही का इन्तजाम न कर सकें वे तीनों बार रि छटांक अं फुरित मूंग या चना या मोंठ लें। दो सप्ताह ऐसे भोजन पर रहने के बाद दोपहर को १ छटांक चौकर समेत गेहूं के आटे की रोटी भी ली जा सकती है।

आशा है इतने से ही यदि पेशाव में २-४ प्रतिशत भी चीनी बाती होगी तो पेशाब स्वाभाविक हो जायेगा।

उपवास और फलाहार के समय आमतौर पर लोगों को शौच नहीं होता। ऐसे समय नित्य सेर-सवा सर गुन-गुने पानी का एनीमा लेकर आंतों को साफ करते रहें।

स्वास्थ्य सुधार और पाचन प्रणाली को स्वस्थ हुंबनाने के लिये नित्य व्यायाम करना आवश्यक है। व्यायाम से रक्त की चीनी भी उपयोग में आती अर्थात् जलती है। अतः मधुमेह के रोगी को अंग-प्रत्यंग का व्यायाम करना चाहिए। जमकर व्यायाम करना लाभप्रद है और कुछ न बने तो नित्य सुबह-शाम डेढ़-डेढ़ घण्टे टहलना चाहिये। शुरू में इतना न टहल सकें तो टहलने का समय घीरे-धीरे बढ़ायें। यदि तेज न टहल सकें तो शुरू में घीरे-धीरे टहलें। पर टहलें अवश्य।

मधुमेह रोग के निवारण में पाचन प्रणाली, को स्वस्थ वनाना आवश्यक है और इस कार्य में लुई कूनेका बताया किटस्नान बड़ा सहायक होता है। वह पाचन को तो सुधारता ही है मल निस्कासन को भी सशक्त करता है। जिन्हें कड़ज रहता हो उनके लिये तो यह स्नान अत्यन्त आवश्यक है। सुवह शाम टहलने जाने से पहले यह स्नान गरमी सर्वी देखकर दस पन्द्रह मिनट के लिए लेना चाहिए। कई मधु-मेह के रोगियों की त्वचा खुरदरी हो जाती है। पसीना आवश्यक रूप से नहीं निकलता, जो शरीर में विकार वृद्धि का कारण होता है। त्वचा को स्वस्थ वनाने के लिए धर्मण स्नान अमोध है। इसके लिए नित्य स्नान के पहले शरीर को १५ मिनट तक खुरदरे तौलिय से रगड़ना या किसी से रगड़थाना चाहिए। इसके बाद ठंडे पानी से स्नान करना चाहिए।

एलोपैथी की भूल-

डाक्टर हर मधुमेह के रोगी को ज़सके पास पहुंचते

ter ever labeth

ही दवा देना शुरू कर देते हैं। वे बवा द्वारा पाचन के उस रस की पूर्ति करते हैं जो पाचन प्रणाली कम या नहीं निकाल पा रही है। जिसके कारण पेशाब में चीनी आती है। फल यह होता है कि उनत रस को स्रवित करने वाली प्रन्थि और शिथिल हो जाती है, वह कभी स्वस्थ नहीं हो पाती और रोगी के ललाट पर जीवन भर दचा लेना लिख जाता है।

वात इतनी भी नहीं हैं, डाक्टर यह सोचकर कि भवेतसारीय खाद्यों से चीनी वनती है, वह रोगी के भोजन से चावल, आलू और आटा निकाल देता है तथा यह सोच-कर कि फत भी मीठे होते हैं अतः सभी फलों की मनाही कर देता है। भोजन की पूर्ति के लिए प्रोटीन वाले खाद्यों से रोगी को चीनी तो नहीं मिलेगी पर उसका भोजन असं-नुलित हो जाता है। फलों के अभाव और प्रोटीनयुक्त खाद्यों की अधिकता से रक्त में अम्लता बढ़ जाती है, जो जिंधकाधिक रोगों को जन्म देती है।

यह जानते हुए भी कि किसी के लिए भी चाय, काफी और सिगरेट जावश्यक नहीं हैं डाक्टर इन चीजों के लिए मना नहीं कर पाता। हां! रोगी चीनी न खाए, इसके लिए वह चाय, काफी में रोगी को चीनी के वदले सेकरीन डालना सिखा देता है। सेकरीन कोलतार से बनाया गया स्वयं में एक विप हैं जिसका कि प्रयोग किसी को भी रोगी बना सकता है। कई दूसरे रोग, रोगी को हो जाते हैं, पर डाक्टर सन्तीय करता है कि रोगी के मूत से (सेक-रीन लेने की वजह से) चीनी कम या नहीं आ रही है। मनोवेग—

मधुमेह रहन सहन की गलती से होता है, पर इसका कारण कई बार मानसिक भी होता है। मानसिक आधात भी पांचन प्रणाली की क्रिया को लव्यबस्थित करने में समयं है और मधुमेह पैटा कर सकता है। मानसिक असं-तुलन मधुमेह के रोगी के स्वास्थ्य प्राप्त करने में बाधक होता है। अतः मनको निश्चिन्त बनायें और खुश रहें। मधुमेह निवारक यौगिक क्रियायें —

मधुमेह निवारण के लिए चक्रासन, पश्चिमोत्तानासन, सर्वांगासन, मयूरासन, मत्स्येन्द्रासन, मत्स्यासन और छनु-रासन, कपालमांति, उहुयासन, नौलि और उज्जापी भाणायाम बड़े हितकर सिद्ध हुए हैं।

🐕 पृष्ठ ३३४ ना शेवांश 🏰

ली. तक लगातार एक मास तक लेने पर पूरमेह भी ठीक हो जाता है। . सायोकी सक पद्धति से—

नायोकैमिक पद्धति की अपिधियों में यद्यपि बारहों लवण कमोवेण या लक्षण की प्रधानता से कार्य करते रहते हैं तथापि 'फेरमफास' सर्वोत्तम औषधि हमारी समझ में आयी है।

लगातार मूत्रत्याग, शब्धामूत्र, मूत्राशय पीड़ा, स्त्रियों में सोमरोग, शिशु के अनियन्त्रित मूत्र त्याग पर फेरमफास की मात्रा २०० शक्ति की भात्रा दें।

बृक्क पर गवीनी वस्ति में अप्रमरी होने पर - मैंग्ने-शियम फास, नेट्रम सल्फ, कल्केरिया फास।

पूर्यमेह, कृमिज बहुमूत्र में—साइलीशिया का प्रयोग बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ है। योगासन तथा यौगिक पद्धति से चिकित्सा—

मूत्राभाव या मूत्रावरोध के वरावर बने रहने की स्थिति में उत्कटासन, सिद्धासन का अभ्यास कराने से सबः लाभ मिलता है।

- अन्तर्धाति, दण्ड धोति और जलवस्ति का प्रयोग लाभकारी पाया गया है।
- —मूत्र शोधन विधि का उपयोग भी सुखकारी होता है।
- भिल्लका तथा कुम्भक प्राणायाम से भी लाभ पाय। गया है।
- —कभी-कभी तो 'महावन्ध्य' का अभ्यास बहुत ही आश्चर्यजनक लाभ दिखाता है।

सम्पादक-श्री विठ्ठलदास मोदी

वार्षिक मूल्य-१८ रूपया एक प्रति-१.६० पैसा । नमूना मुफ्त

 विशेष सम्पादक-मूत्ररोग चिकित्साङ्क-कविराज श्री गिरिधारीलाल मिश्र प्रधान चिकित्सक-केदारमल आयुर्वेदिक होस्पीटल, तेजपुर (असम)

पुनर्नवा (Boerhavia Diffusa)-

पुनर्नवा का उल्लेख चरक-सुश्रुत आदि सभी संहिताओं में तथा सभी निषण्टुओं में उपलब्ध है तथा भारतीय चिकित्सक प्राचीनकाल से इसका प्रयोग मूलरोगों, शोथ, यकृत, उदररोगों में प्रचुरता से करते आ रहे हैं एतदर्ष इन्डियन फार्मोकोपिया में भी इसका समावेश कर लिया गया है।

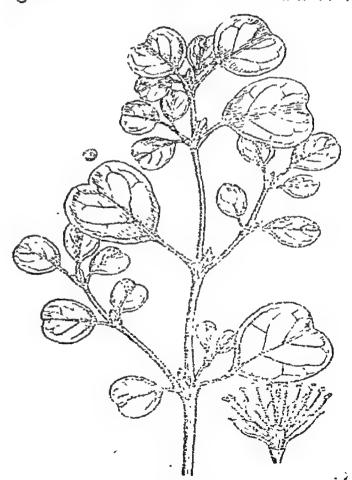
नाम-पर्याय—संस्कृत-रक्तपुनर्नवा, शोधध्नी, शिला-िटिका, कठित्लक, हिन्दी में—लालपुनर्नवा, गटहपूरना, गुजराती—साटो, राती सारोडी, अं.—हन्दकूकी पुनर्नवा, पुनरमीक्षणं नवा, न्यते वा — जो बार-बार प्रतिवर्षं नवीन हो जाय या जो पुनः पुनः शरीर को नवीन बना दें एतदर्थं इस का नाम पुनर्नवा है।

रासायनिक संघठन—इसके पत्तों में शुष्कावस्था में पुनर्नवीन (Punarnavine) नामक कार्यकारी क्षाराभ की मात्रा ० ० १ प्रतिशत तक होती है। मूल में सम्पूर्ण क्षाराभ की मात्रा ० ० ४ प्रतिशत होती है। इसके अति-रिक्त इसमें पोटासियम नाइट्रेट, सल्फेट, क्लोराइड ६ ५ प्रतिशत एवं स्थिर तैल होता है।

गुण एवं छपयोग—अपने मूत्रल कमें के लिए पुनर्नवा अति प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। पुनर्नवा एवं ट्राएन्थेमा (चित्र संख्या १३५) दोनों ही मूत्रल के रूप में वरावर है। इनकी यह क्रिया विशेषतः इनमें पाये जाने वाले पुनर्नवीन नामक अल्कलायड तथा पोटासियम् नाइट्रेट के कारण होती है। पुनर्नवीन की क्रिया प्रत्यक्षतः वृक्कों पर होती है जिससे भूत्रनलिकाओं से द्रव का पुनः शोषण नहीं होने पाता, परिणामतः मूत्रगत द्रवांश की मात्रा वढ़ती है। मूत्रल होने के साथ-साथ पुनर्नवा शोथध्न भी है। इसका मूत्रल प्रभाव उच्चकोटि का होने से इसके प्रयोग से मूत्रपिडों पर उत्तेजक क्रिया होती है तथा रक्त का द्वाव वढ़कर

सहज ही में विना कष्ट के मूत्र का प्रमाण दुगुना हो जाता है। यह मूत्रजनन प्रभाव इसकी आनुलोमिक पूर्ण मात्रा देने पर ही प्रतीत होता है । मूत्रल होने के अतिरिक्त पुन-नंदा स्र सन (Laxative) तथा अधिक माला में (६ ग्राम) देने से वामक भी होता है।

मूतल होने के कारण यह वृक्क शोथ, यूरीमिया, मूत्रकृच्छ अश्मरी तथा सिकतामेह में अत्यन्त लाभप्रद है। आयुर्वेद में जलोदर के चिकित्सा क्रम में रोगी को जब जल



पुनर्भवा श्वेत ९६:A:ITHEMA PORTULAEASTRYM LIHH. चित्र १३४

eta viai itiladetii

वित्कुल नहीं दिया जाता. रोगी को प्रायः दूध पर रखा जाता है, ऐसी स्थिति में अर्क पुनर्नवा का प्रयोग करने से मूत्रल होने के कारण शरीर से द्रवापकर्पण (Dehydiation) के लिये जलोदर में इसका प्रयोग जल तथा औपिध दोनों कार्य करता है। पांड, कामला तथा पांडुजन्य सर्वांग शोध में पुनर्नवा का प्रयोग लोह या मण्डूर भस्म के साथ करते हैं एतदर्थ पुनर्नवा मण्डूर आयुर्वेद का सुप्रसिद्ध प्रयोग है।
पुनर्नवाघटित आयुर्वेदीय योग—

- (१) पुनर्गवादि मण्डूर—४ से ८ रत्ती लिफला चूर्ण के साथ मधु से दें। यकृत शोध मूत्रकृच्छ्र मे उपयोगी।
- (२) पुनर्नजारिष्ट-पुनर्नवासव-२-४ तोला + व्रावर पानी से भोजनोत्तर-सेवनीय । सर्वाङ्ग शोय, वृत्वकरोग, पांडु, कामला, हलीमक, श्वास, कास, यक्टदरोग में उपयोगी ।
- (३) पुनर्नवादितैल (भै. र.) पांडु, हलीमक,फुफ्फुसा-वरणशोष (प्लूरिसी) में मालिश करायें।
- (४) पुनर्नवाष्टक ववाय—सर्वाङ्ग शोय, यूरीमिया, वृक्कशोय, पांडुरोग में उपयोगी मूतल ऐवं उदरशोधक गुणो के लिए प्रसिद्ध है।

गोलरू (Tribulus Terrestris) --

प्राप्ति साधन—गोखरू नामक क्षुद्र वनस्पति के पक्व फल होते हैं।

नाम पर्याय संस्कृत गोक्ष्र, विकंटक, चणपलक, हिन्दी—गोखरू, गुलखुर। फारसी- खारेखश्रक, खोरसेह-गोशा। वंगाली - गोखरि, गुजराती-गोखरू। मद्रासी- लहान गोखुर, अंगेजी—स्माल कल्टोप्स (Small Caltops)।

नोट— वाजार में छोटा भीर वड़ा भेद से दो प्रकार का गोखक मिलता है। वड़े गोखक के फल छोटे की अपेक्षा वड़े होते हैं। अतः इसको बड़ा गोखक (Pedalium Muren) कहते हैं।

चरक के विदारिगंधादि-मूलविरेचतीय, शोधहर, कृमिध्न, अनुवासनीपग के प्रकरण में तथा सुश्रुत के लघु पञ्चमूल, वीरतवीदि, कंटक पञ्चमूल, वाताक्ष्मरी, भेदन भादि के प्रसङ्घ में गोखरू का उल्लेख आया है। लघु

पंचमूल का यह भी एक उपादान है तथा आधुर्वेद की सुप्रसिद्ध औष्रधि है।

रासायनिक संघठन गोखरू के फल में ० ००१ प्रतिशत सुगन्धित उडनशीसतैल, राल पर्याप्त मात्रा में नाइट्रेट (Nitrats) होता है।

प्रयुज्य अङ्ग सामान्यतया चिकित्सा में गोखरू के फलों का ही प्रयोग किया जाता है। चूर्ण के लिए फल एवं क्वाय के लिए मूल एवं पंचांग लिया जाता है।

गुणधर्म तथा प्रयोग—गोखरू, शीतल, मूत्रल बल्य, पौष्टिक तथा बाजीकरण (Aphredisiac) होता है अत-एव मूलकृच्छ्रता (Dysuria) एवं पथरी रोग में इसका प्रयोग वड़ा उपयोगी है। इसका प्रयोग पूयमेह या सुजाक में भी करते हैं।

मूत्र संस्थान की श्लेष्मकला पर इसका प्रभाव वकु (Buchu) के पत्र सहश होती है। इसका मूत्रल प्रभाव इसमें के नाईट्रेंट एवं डहनशील तैल के कारण होता है। यह शीतवीय होते हुए भी वृक्कोत्तेजक है। मूत्रकृच्छ्र में इससे सिद्ध दुग्ध का प्रयोग किया जाता है। मूत्र बहुत सम्ल होने पर यवक्षार मिलाकर इसका क्वाथ देते हैं, इसका वेदना स्थान व गुण अल्प होने से इसके साथ खुरा-सानी अजवायन या अफीम मिलाई जाती है। मूत्रक्षारीय व दुर्गन्वित होने पर, वृक्कशोध या वस्तिशोध में इसके क्वाथ में शिलाजीत मिलाकर देते हैं। कामशक्ति का हास स्वप्नदोप कौर अपने आप पेशाब हो जाना इन अवस्थाओं में इसके फल का क्षार देते हैं। गोक्षक तथा तिल का सम-भाग चूर्ण हस्तमैथुनजन्य नपुंसकता में लाभदायक है। गोक्षक घटत आयुर्वेदीय योग—

- (१) गोक्षुरादि गुगगुल मूद्राघात-मूत्रकृष्छ्र, अग्रमरी नांशक उत्तम मूत्रल योग है।
- (२) गोसुरादि चूर्ण-गोखरू, तालमखाना, शतावर कोंचवीज, वला नागवला सगको समभाग लेकर चूर्ण वना कर दूध से सेवन करने से अत्यन्त वाजीकरण होता है।
- (३) गोक्षुरासव—इसके १ भाग चूर्ण में ४ भाग मद्यसार मिला १४ दिन बोतला में रखे फिर छान ले १० से ४०वूंद तक मूत्राघात,प्रमेह एवं सर्वागशोध में सेवनीय।
- (४) गोक्षुरूपाक और (५)गोक्षुरादिववलेह का प्रयोग भी मूतरोगों एवं कामशक्ति होनता में किया जाता है।

eet evileseevi

कबाबचीनी (Cubeba) --

प्राप्ति साधन-कतावचीनी विष्यली कुल की नता के फल होते हैं जिनकी पूर्ण वृद्धि होजाने पर किन्तु पकने से पूर्व ही ध्र्य में सूखा कर रख लेते हैं।

नाम पर्याय-संस्कृत—कंकोल; कनकोल, कोषफल, सुगन्ध मरिच । हिन्दी—कवावचीनी, शीतलचीनी, शीतल मिच, कंकोल, दुमकी मिरच । गु०— चणकवाव, तड़िगरी, अरबी—कषाय, हव्बुलउ६स । वं०—कंकला । लेटिन—वयुवेवी फ्राइटस (Cubebse Fructus), अंग्रेजी—वयुवेवस (Cubebs)।

वमतव्य चिकित्सा में कवावचीनी का प्रसार मध्य-कालीन अरवी चिकित्सकों द्वारा हुआ, मसूदी, सिहाइ एवं इब्नसीना आदि चिकित्सकों ने इसका उल्लेख किया है।

उत्पत्ति स्थान—जावा, सुमात्रा, वोनियो, मलाया आदि देशों में प्रचुरता से होती है। इसके अतिरिक्त श्रीलंका तथा दक्षिण भारत में कहीं-कहीं इसकी उपज होती है। विशेषतः मैसूर प्रान्त में इसकी खेती की जाती है।

गुण और उपयोग—श्वासमार्ग मूब-प्रजनन मार्ग की श्लैष्टिमक कलाओं पर उत्तेजक प्रभाव करने के कारण यह उनके स्नाव की वृद्धि करता है और साथ ही जीवाणु वृद्धि रोधक भी होता है। अतः कवावचीनी मूत्रल एवं प्रजनन मार्ग विशोधक होता है जिससे मूत्राशय प्रवाह तथा सुजाक में प्रयोग किया जाता है।

कवावचीनी उटण, उत्तेजक, कफटन, वातटन प्रति दूषक (Antiseptic), मूत्रजनन, दीपनं, पाचन, रुचिकर, वृद्य, तृष्णाशामक तथा मुखदुर्गधहर है। मूतल औपित के रूप में पुराने सुजाक में २० रत्ती कवावचीनी चूर्ण में रा। रत्ती फिटकरी चूर्ण मिलाकर दूध से देते हैं। मूत्र जननेन्द्रिय संस्थान के रोग,बस्तिशीय, सुजाक और सुजाक की पुरानी सबस्थाओं में शर्करा के साथ देते हैं।

यह कफ वात शामक होने से प्रायः कफ वातंजन्य बीयारियों में भी प्रयुक्त होता है। श्वसन संस्थान के रोग श्वास, कास प्रतिश्याय आदि में इसके चूर्ण का घूम्रपान लाभदायक है। जीणंश्वसिनका शोथ में इसकी उण्ण जल में डालकर इसकी वाष्प सूंघी जाती है तथा प्रतिश्याय में इसके नस्य से शीघ्र बाराम मिलता है। मुखपाक बौर कफ निस्सारक रूप में खंदिरादि गुटिका जैसी गोलियां वनाकर चूंसते हैं। गायक लोगों को इसको मिश्री के साथ चग्राने से गला खुल जाता है। खांसी में इसके चूर्ण को मधु के साथ चटाते हैं।

स्वप्नदोष, प्रमेह और वीयं विकारों में इसे छोटी इलायची के दाने और वंशलोचन के साथ प्रयोग करने से वीयं की उप्णता दूर होती है तथा वीयं गाढ़ा होता है एवं स्वप्नदोष आदि विकार दूर होते हैं।

कंकोलासव—पूयमेह, मूत्रकृष्ठ्र, गलक्षत, स्वरभंग, कास, अग्निमांद्य में उपयोगी है। शारीरिक दुर्गन्ध दूर करने के लिये इसका उपयोग उनटन के रूप में भी किया जाता है। आगाशय प्रणाली पर इसका अल्पमात्रा में प्रयोग दीपन पाचन वातानुलोमक है। अधिक मात्रा में इसका प्रयोग आमाशयान्त प्रवाह एवं पाचन क्रिया विकृत करता है।

चन्दन (Santalum album)-

नाम—सं०-चन्दन, श्रीखण्ड, भद्रश्री, गन्धसार, मल-यज, चन्द्रद्युति । हिन्दी—चन्दन । म०— चन्दन, गु०— सुखहु, वं० -चन्दन, अं०-सन्दले अब्यज Sandal wood लेटिन—Santalum Album linn

विशेष—चन्दन लाल, सकेद,पीला भेद से तीन प्रकार का होता है। चिकित्सा में लाल और सफेद चन्दन तथा चन्दन का तैल विशेष व्यवहृत होता है।

प्राप्ति स्थान—यह भारत की ही खास उपज है, मैसूर. कुर्ग, कोयम्बद्धर एवं मद्रास के दक्षिणी भागों में ४००० फीट की छंचाई तक उत्पन्न होता है। लगभग ६००८ वर्ग मील का क्षेत्र इससे व्याप्त है जिसमें =० प्रतिशत भाग मैसूर एवं कुर्ग में है।

रासायनिक संघठन - इसके काष्ठखार में २'४-६ प्रतिशत तक एक उड्नशील तैल, राल एवं टैनिक एसिट, अलिडहाइड्स, कीटोन आदि द्रव्य पाये जाते हैं।

गुण और उपयोग—श्वेतचन्दन, शीतल, रूक्ष, दाह-शामक, पिपासाहर, ग्राही, वण्यं कण्डूहर, वृष्य, आत्हाद कारक, रक्तप्रसादक, सूत्रल, दुर्गन्धहर अङ्गमदं नाशक है। इराका उपयोग ज्वर, रक्तपित्त, पैत्तिक विकार, वमन, सूत्र-कृच्छ, सूत्राधात, रक्तमेह, श्वेत प्रदर, रक्तप्रदर, उप्णवात, रक्तातिसार और तीम्र एवं जीणं ज्वर, चर्मरोगों में किया जाता है। रक्त चन्दन शीतल, वल्य, सीम्य एवं ग्राही है

बाह्यलेप, शीतल,शोयध्न,जणरोपक है।

चन्दन का तैल - यह भ्वेत चन्दन के काष्ठ को पानी में भिगोकर परिश्रवण द्वारा या चन्दन वृक्ष के मूल से प्राप्त किया जाता है-मूत्र रोगों में विशेषतः चन्दन के तैल का प्रयोग अधिकतर होता है तथा यह उत्तम मूत्रजन्न, मूत्र-मार्ग के लिए प्रतिद पक, वृक्कोत्तेजक, त्वग्दोषहर, कृमिष्न कफिटन:सारक है। इससे वृक्कों को कोई नुकसान नहीं होता. इसका उत्सर्जन मूलजनने न्द्रिय संस्थान तथा फूपफुसों द्वारा होता है। जीर्णवस्ति शोथ, गवीनी मुखशोथ वस्ति के राजयक्ष्मा उपमर्ग से यदि बार वार पेशाब होता हो तथा मूबकुच्छ एवं पेशाब में जलन होने पर चन्दन के तैल को बताशे में डालकर देते हैं। नये या पुराने सुजाक में यदि जलन अधिक होती हो तो चन्दन तैल की दिन में ३-४ वूंद वताशे में अयवा मिश्री या चीनी मे मिलाकर देते हैं। इसकी अधिक मात्रा सेवन के पश्चात् गले में खुक्की एवं प्यास तथा अधिक मात्रा में शूलवत् वेदना एवं कटिप्रदेश में भारीपन मालूम होता है।

चन्दन घटित आयुर्वेदीय योग---

चन्दनादि वटी-भवेत चन्दन का बुराबा, छोटी इला-यची के बीज, कवावचीनी, सफेद राल, गन्धाविरोजा का सत्व, कत्था और आंवला प्रत्येक ४-४ तोले, गेरू २ तीले, कपूर 9 तोले, रसौत ४ तोले, चन्दन तैल 9 तोले में घुटाई कर ६-३ रत्ती की गोलियां वना लें। २-४ गोली दिन में ३-४ बार ठण्डे पानी से या दूध की लस्सी या शर्वत चन्दन से दे। सुजाक या मूत्रकृच्छ् हो जाने पर पेशाव में भयंकर जलन कड़क, एवं मूत्र मार्ग से मवाद जाने पर इसके प्रयोग से शोध्र लाभ होता है।

चन्दनासव--मूत्र रोगों में व्यवहृत होने वाला आयु-वेंद का सुप्रसिद्ध योग है। मूत्र की जलन मूत्र रुक रुक कर ख़ाना तथा वीर्यविकार उपदंश-सूजाक बादि रोगों में ४-४ चम्मच बरावर पानी से भोजन के वाद सेवन किया जाता है। शरीर में दाह श्वेतप्रदर तथा हृदयरोग में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

चन्दन-अर्क और चन्दन का गर्वत—मूत्र रोगीं एवं ग्रीष्मऋतु की दाह से वचने के लिए सुमध्र, अतीव श्रेष्ठ जायकेदार, शीत वीर्य और दिलदिमाग को तरावट देने षाला है। बहुत से लोग खासकर पित्त प्रकृति के लोग

गर्मी के दिनों में इसका नित्य प्रयोग करते हैं।

चन्दनादि अकं, चन्दनादि अवलेह, खमीरा चन्दन व चन्दन पाक आदि अन्य प्रयोग भी इसके प्रचलित हैं। त्वचा के बाह्य विकारों में इसका लेप आदि किया जाता है। इसके वीज उष्ण हैं। पेसरी के रूप में गर्भपात के लिये प्रयोग किया जाता है।

खरबूजा (Cucumis melo)—

नाम पर्याय-संस्कृत खबूँ ज, पड्भुज, दशांगल, मधु-फल, हिन्दी-खरवूजा, लालमी, अं. Sweet Melon लेटिन-मुकुमिस मेलो (Cucumis Melo)।

रासायनिक संघठन-शरीर को सशक्त वनाने नाले तत्व लौह विटामिन 'सी' अधिक सात्रा में पाये जाते हैं। ग्तूकोज, कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन तथा खनिज लवण भी यथोचित मात्रा में होते हैं, छिलकों में क्षारीय तत्व की विशेषता होती है। गुण धर्म और प्रयोग -

खरवूजा का पका हुवा मीठा फल शीतल, मधुर मूत्रस, यलकोरक, कोण्ठणुद्धिकर, स्निग्ध, पित्तशामक, तृपाहर, वात और पित्त शामक, गुरु, स्निग्ध, मूत्रकृच्छू, उत्माद, रक्तविकार, कुष्ठ नाशक है। खारा रस वाला खरवूजा रक्तिपत्त और मूत्रकृच्छ प्रकोपक होता है।

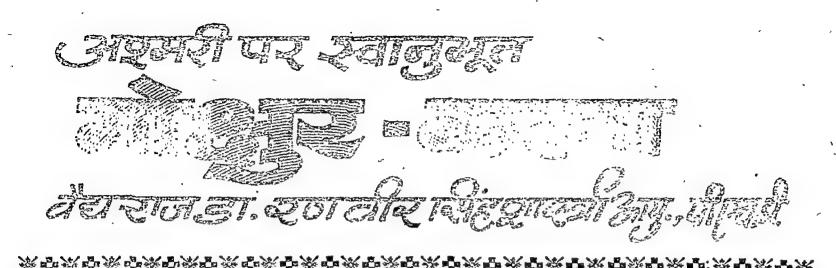
मूत्रविरेचनार्थ-उत्तम ताजे परिपवव फल को घिया-कस से कसकर उसमें आवश्यकतानुसार चीनी तथा नीवू रस निनोड़कर शर्वत वनाकर पोवें। इसके सेवन से भली-भाति मूल विरेचन होकर कोष्ठवढता भी दूर होती है। वृक्काश्मरी तथा सामाशय के विकारों में लाभदायक है।

खरवूजा के बीज-पूयमेह या मूत्रक्रच्छ्र में इसके बीजों को जल में पीस छानकर उसमें १०-१५ वृंद चन्दन तैल मिलाकर सेवन कराते है। बालकों के बार बार मूत त्याग पर बीजों को ठण्डाई के साथ पिलाते हैं।

फलों का छिलका मूत्रल तथा अश्मरीव्न है। छिलकों को जल में पीसकर पिलाने से शोझ ही पेशाय खुलकर हो जाता है। गर्मी के मौसम में ठण्डे पानी में तथा सर्दी के मौसम में गुनगुने पानी में छिलकों को पीसकर पिलावें।

खरवूजा कल्प-आमकल्प की तरह खरवूजा का भी कल्प विधान से सेवन किया जाता है। यह संग्रहणी की

— भेपांग पृष्ठं ३४८ पर देखें।



गस्त्र साध्य कण्टदायक अग्नरी (पद्यी) रोग पर नियमित प्रयोग कराने से बनेक रोगियों को अश्मरी रोग से मुक्ति मिल गई। १०-१४ वर्षों से बार बार दौरा करने वाले इस रोग के असीम कण्ट को भुन्तभोगी रोगी ही जानता है। अश्मरी रोग की बहुत सी दवायें भी महीनों सेवन करने से रोग को निर्मूल नहीं कर सकीं, ऐसी विषम स्थिति में एक औषधि 'गोक्षुर' का कल्प रूप में रोगियों पर प्रयोग किया। इससे पूर्ण सफलता मिली, चिकित्सकों व जन साधारण के तिये प्राचीन वैद्याचार्यों द्वारा वर्णित 'गोक्षुर' के गुणों एवं प्रयोग पर अपना अनु-भव प्रकट कर रहा हूं जिससे सफलतापूर्वक सभी लाभा-न्वित हो सकें।

गोक्षर का परिचय एवं नाम-

इसका क्षुप भूमि पर फैलने वाला जाने जैसे पत्तों वाला, पीतपुष्प, तीक्ष्ण कण्टकी फलों से युक्त, पथरीली एवं वन्य प्रदेशीय भूमि में उत्पन्न होता है, भारत के सभी प्रान्तों में, यह प्रसिद्ध औषधि वर्षा ऋतु में उत्पन्न होकर शीतऋतु में परिषक्व हो जाता है।

नाम—गोक्षर त्रिकण्टक, श्वदंण्ट्रा, गोकण्टक बादि संस्कृत की पर्यायवाची संज्ञायें हैं, हिन्दी में—गोखरू, हर-चिकार, बंगाली-गोक्ष्री, मराठी-सराटे, गुजराती-गोखर लेटिन-ट्रिच्युल्स टेरेस्ट्रिस।

भेद-(१) छोटा गोखरू, (२) वड़ा गोएरू।

गुण—दोनों प्रकार के गोखक शीतल, बल्य, मधुर, वृंहण, मूत्रल तथा प्रमेह, अश्मरी मूत्रकृच्छ, मूत्रदाह, आदि वृक्क और मूत्राशय ऐवं मूत्रमागं से रोगों को नष्ट

करते हैं। निघण्टुकारों ने इनको त्रिदोषघन, रसायन और हदयरोगनाशक बताया है।

गोक्षुर कल्प का अुख्य घटक-

इस करप में छोटा गोख्र ही सभीष्ट एवं प्रयोज्य है। वड़ा गोख्र हमारे औपधालय में पौष्टिक योगों में ही प्रयुक्त होता है। छोटे गोखुरू को एकाकी विना कुछ मिश्रण किये ही छायाशुष्क करके सूक्ष्म चूर्ण बनाकर (कपड़छन या मैंदे की चलनी से छानकर) हरे या नीले रङ्ग की शीशी में भर लें अथवा अन्य बर्तन या डिक्वों में मुरक्षित रक्खें।

मात्रा—चाय के जम्मन से २ नम्मन भर प्रातः-काल ताजे पानी से, २ नम्मन मध्याह्मोत्तर तथा २ नम्मन रात्रि में पानी से सेवन करें। यह क्रम कम से कम ३ महिने तक अवश्य नातना चाहिये।

मात्रा की न्यूनता एवं वृद्धि ...

9 वर्ष से ३ वर्ष तक--- २-२ रसी ३ वार शहद या द्ध से।

३ वर्ष से ५ वर्ष तक—४-४ रत्ती दिन-रात में ४ वार पानी से।

४ वर्ष से १० वर्ष तक— द- दत्ती ४ वार पानी या मधु से ।

१० वर्ष से १५ वर्ष तक—- ३-३ माशे ३ वार पानी से।

१५ वर्ष से ७५ वर्ष तक-५-५ मामे प्रातः मध्य-होत्तर व रात्रि में पानी • या फनों के रस से।

म्या सेवा चित्रिस्य

गोक्षर क्वाथ कल्प-

अब रोगी गोक्षुर चूर्ण का प्रयोग न कर सके, अत-भ्यास के कारण विशेष परिस्थितियों में चूर्ण के स्थान पर गोख़ के क्वाथ का भी प्रयोग कर सकते हैं।

क्वाथ बनाने की विधि — गोखुक १ तोले कुचल कर १० तोले पानी में भिगोकर पकावें, १ तोले भोष रहने पर छानकर पीवें। इस प्रकार २ बार पीवें। इस ववाय के पीने से पधरी, भकरा, मूत्रकृष्टळ्ट आदि सभी रोग २ या ३ महिने में नष्ट हो जाते हैं।

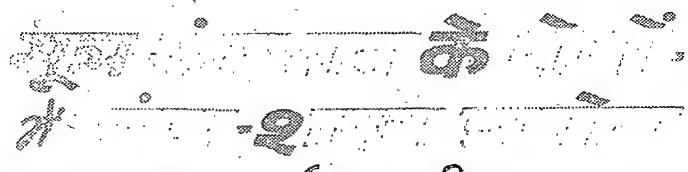
अपय्य गोक्षर का कल्प करने वाले व्यक्ति को टमा-टर, पालक, चावल, कुल्फा, दालें तथा गरिष्ठ पदार्थ, पक्तवान, मिठाइयां, गरबी, भिण्डी, रतालू, मालू, कटहल, वैगन, केला आदि शाक, मैदा और वेसन की बनी हुई खाद्य सामग्री, लालिमर्च एवं कब्ज करने बाले पदार्थ नहीं खाने चाहिये। दूध, दही एवं चिकने पदार्थों का सेवन भी अहितकर है। शारीरिक व्यायाम, मैथुन, चिन्ता, भय, शोक आदि का परित्याग करना चाहिये। बाजरा झन्न का सेवन भी विजित है।

पथ्य—जौ, पुराना गैंहूं, कुत्थी, लौकी, तोरई, टिण्डे, परवल, शाक, मूली व मूली के पत्तों का शाक, नाढी शाक, गन्ने का रस, मौसमी, मिठ्ठा, पपीता, मुनक्का प्रयोग स्थिक करना चाहिये। गैंहूं-जी का भुना दलिया, जी का पानी विशेष लेना चाहिये। मूद्रल वस्तुओं का सेवन सदा-हिताबह है। लवणों में सैंधव का सेवन करना चाहिये। गोक्षुर फल्प में लावधानी—

- (१) कल्प प्रयोग से पूर्व लिफला, गुलकन्द गुलाब, अमलतास, सींफ का बवाय, सनाय, गुलाब के फूल, निसोत का क्वाय अथवा अनुकूल आने वाली किसी भी रेचक औषधि से पेट साफ कर लेना चाहिये।
- (२) गोक्षुर कर्प के प्रयोगकाल में इभी भी कड़ज नहीं रहना चाहिये, उष्ण बीपघों से रेश्रन नहीं लेना चाहिए, कदाचित लेना ही पड़े तो ठण्डाई, पानक शर्वत या लस्सी का अनुपान रूप में भरपूर सेवन करना चाहिये।
- (३) गोक्षुर फल ताजे न मिले तो वाजार से सूखा हुआ नवीन हरियाली लिया हुआ काम में लेना चाहिये। छोटा गोखुरू ही इसमें प्रयुक्त होता है।
 - (४) चुर्ण बनाते समय मैदा की चलनी से या कपड़े

से छानकरं सूक्ष्म चूर्णं प्रस्तुतं करना चाहिये। किसी स्वच्छ डिट्या या रङ्गीन शीशी में रक्कें।

- (५) गोबुर कल्प को प्रारम्भ में १-१ चाय के चम्मच के बरावर लेकर दिन में ३ या ७ वार ठंडे पानी से सेवन करना चाहिये। प्रौढ़ व्यक्ति को वड़े चम्मच से प्रारम्भ करना चाहिये, थोड़ा थोड़ा मुख में डालकर पानी से उतार लेना चाहिये जिससे ठसका न लंगे।
- (६) कल्प प्रयोग से पूर्व गुदों, गवीनिकाओं या मूला-शय में विद्यमान अश्मरी या पयरी के दुकड़ों का एक्स-रे फोटो करका लेला चाहिये, जिससे पथरी का स्वक्प आकार प्रकार जाना जा सके। मूंग, मटर या जो के समान वड़ी या नुकीली कंगूरेदार पथरी दौरे के समय कष्ट देती है, कभी कभी उपेक्षा से पथरी वेर के वरावर वादाम, सुपारी और वित्व फल के वरावर बड़ी हो जाती हैं जिससे असहा कब्ट होता है।
- (७) वड़ी पथरियों को किसी योग्यं सर्जन से साधन सम्पन्न अस्पताल में शल्य क्रिया द्वारा निकलवा देना चाहिये। औषध सेवन से वड़ी पथरियों का घुलना चिर-काल साध्य या असाध्य ही है।
- (न) मूंग से वेर के बरावर वड़ी पथरियां गोसुर कल्प से अवश्य ही घुलकर निकल जाती हैं। कभी कभी बड़े वड़े दुकड़ों के रूप में भी मूत्रमार्ग द्वारा बाहर निक-लती हैं।
- (६) गोक्षर कल्प से किसी प्रकार की निवंतता नहीं आती, अपितु इससे भारीरिक व वीयं पुष्टि होती है तथा अन्य कोई विकार भी उत्पन्न नहीं होता।
- (१०) आपरेशन से निकाली हुई पथरी से रोगी को तत्काल तो रोग निवृत्ति हो जाती हैं, परन्तु कालांनार में पथरी बनने का क्रम चलता रहता है, जिससे रक्त में विद्यमान यूरिक एसिड आदि के कर्णों का गुर्दों में सञ्चय होकर पुनरिप अञ्चरी बन जाती है।
- (११) हमने अपने औपधालय में चिकित्सा कराने वाले अनेक रोगियों की सफल रोगमुक्ति की है। अनेक वर्ष व्यतीत होने पर भी रोग का पुनराक्रमण नहीं हुआ।
 - —वैद्य रणवीर सिंह शास्त्री, एम.ए., पी.एच.डी. विद्याभास्त्रर, आयु, वेद-आयु.-व्याकरण-साहित्याचार्य,

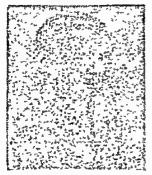


डा. दाजद्यालगर्ग ए.एम.वी.एस.आयु.बृह.

यूत्राशय की क्ष-किरण परीक्षा (Cystography)

यह दो प्रकार की है-

- १. कैथीटर द्वारा, २. उत्सर्जन विधि।
- (१) केथीटर विधि केथीटर द्वारा मूत्राशय को रिक्त कर लें जिससे कि उसमें कोई अश्मरी होवे अथवा मूत्राशय भित्ति का कोई क्षत-क्रण आदि हो तो उसे ज्ञात



कर लें। अब शरीर के तापमान पर गर्म विलयन को मूत्रा-शय में उस समय तक धीरे-धीरे प्रविष्ट करें जब तक कि रुग को कष्ट प्रतीत होने लगे। कष्ट प्रतीत होने पर केथीटर को मोड़कर क्लेम्प लगाकर वन्द कर दें जिससे मूलप्रसेक निलका से यह द्रव वापिस बाहर न निकले। अब ट्रेडिलि-वर्ग स्थिति में एक्स-रे चित्रण करे। इससे मूत्राशय की स्थित स्पष्टतः ज्ञात हो जायेगी।

अब मूलाशय को कैथीटर द्वारा निक्त कर लें तथा रोगी को सीधा खड़ा कर पुन: एक्स-रे चित्रण करें। इससे मूत्राशय में कोई कोटर (Diverticulum) होगी तो वह शात हो जायेगी।

(२) उत्सर्जन विधि—जब मूत्रप्रसेक नलिका में संकोच के कारण या शोथ के कारण मूत्राशय में कैथीटर पहुँचाना सम्भव न हो या कष्टप्रद हो तो इस विधि का सहारा लिया जाता है। रोगी को पायलैक्टन (Pyelectan) या यूरोपैक (Uropac) २० मि. लि. का शिरान्तर्गत सूचीवेध किया जाता है तथा उसके २० मिनट वाद एक्स-रे चित्रण किया जाता है। इससे भी मूत्राशय की स्पष्ट छाया प्राप्त होती है।

मूत्रप्रसेक नलिका दर्शन (Urethrography)-

इसके लिए लीपयोडील (Lipiodol) का ४% शक्ति का घोल जोकि जैत्न के तेल में मिलाकर बनाया गया हो उपयुक्त रहता है। दूसरा विलयन नियो हाइड्रि-योल पलूइड (Neo-hydriol fluid) भी उपयुक्त है जो कि लीपयोडील की अपेक्षा कम पिच्छिल है और इसी कारण छोटे छोटे क्षत या निलकार्ये बन जाने आदि की सम्भावना होने पर इसी का प्रयोग करना उत्तम रहता है। मूत्रप्रोक निलका से रक्तस्नाव की अवस्था में यह परीक्षा न करें।

मूत्राशय को रिक्त करने के पश्चात् मूत्रप्रसेक निलका के विहर्डार को पूर्ण्तः विसंक्रमित कर लें और २० मि. लि शरीर के तापमान पर उष्ण विलयन को एक रिकार्ड सिरिज द्वारा, जिसके आगे एक रवड़ का टिप लगा हो, जिससे वह मूत्र विहर्डार पर फिट बैठ जाय और अन्दर गया द्रव वाहर निकल कर न आये, मूत्राशय में घीरे-र प्रविष्ट करें। किसी भी समय रोगी को तनाव नहीं प्रतीत हो। पूरा इद चले जाने पर रोगी को मूत्र त्याग करने का प्रयास करने को कहें जिससे मूत्रप्रसेक निलका की पेशियों का सकोच समाप्त हो जाये और खड़ी स्थित में में एक्स-रे चित्रण कर लें।

Han ein fillesekin

मूलमार्ग एवस-रे चित्रण— इसकी दो विधियां है—१. उत्सर्जनविधि,

२. पश्चादावर्तन (Retrograde)

(१) उत्सर्जन विधि (Excretary method)—
यह परीक्षा करने से १२ घण्टे पूर्व से रोगी को कोई द्रव
आहार नहीं दें। द्रियोडोन (Diodone) विसयन का ३
से मि. लि. की मात्रा में प्रयोग किया जाता है। यहां
ध्यान रखने की वात यह है कि इस विलयन को शरीर
भार के अनुपात से अधिक मात्रा का प्रयोग बच्चों में किया



निम — १३६ उत्सर्जन विधि द्वारा वृश्क-द्वय, गवीनी श्रोणियों एवं गवीनिकाओं का क्ष-किरण निव

जाता है। इसका प्रयोग शिरान्तर्गंत किया जाता है लेकिन यदि किसी कारण से इसका शिरान्तर्गंत प्रयोग करना सम्भव न हो सके तो इसके १० मि. लि. विलयन में इतना ही परिस्नुत जल तथा १ मि. ग्राम ह्यालूरोनीडेज (hyaluronidase) मिलाकर नितम्ब या स्कन्ध प्रदेश में अधःत्वकीय सूचीवेध करें। इसका सर्वाधिक उत्सर्जन सूचीवेध के ३० से ४० मिनट पश्चात् तक होता है। यूक्कावसाद की सम्भावना होने की अवस्था में इस परीक्षा विधि का कदापि उपयोग न करें। रोगी को अपने नित्य के कार्यकलापों से नहीं रोकें क्योंकि शारीरिक परिश्रम से उसकी आंत्र में गैस नहीं रकेगी। गैस के रुक जाने से उनका भी छायांकन हो जाने से परीक्षण गढवडा जाता है।

(२) पश्चादावर्तन विधि—अ. मूत्राशय चित्रण— अ उपयुक्त साइज का लाल रबड़ का कैथीटर मूत्र से रिक्त मूत्राशय में प्रविष्ट करें और मूत्राशय को परिश्रुत जल में बाइडोक्सिल (Iodxyl) का २५% शक्ति के विलयन से भर दें। अब कैथीटर को बाहर निकाल लें तथा रोगी की मूत्र त्याग के लिए थोड़ा जोर लगाने को कहें या नाभि प्रदेश के नीचे हाथ से थोड़ा सा दबाव डालें और एक्स-रे ले लें। इससे मूत्राशय, मूत्रुप्रसेक निलका तथा साथ ही दोनों मूत्र गवीनियों के नीचे के भाग का साफ चित्र आता है।

व. मूत्र गोणिका चित्रण (Pyelography)—इसमें व्यायु के अनुसार १ से ६ मि लि. की मात्रा में उनत विलयन किसी एक मूत्र गवीनी में गवीनी के णीटर द्वारा पहुंचाया जाता है तथा उसके पश्चात् एक्स-रे ले लिया जाता है। दूसरे दिन दूसरी और की मूत्र गवीनी का चित्रण किया जाता है। यह परीक्षा रोगी को संज्ञाहीन करके की जाती है। कामला रोगी में यह परीक्षा न करें। सिस्टोस्कोप द्वारा मुदाशय की परीक्षा—

इस परीक्षा को सिस्टोस्कोपी (Cystoscopy) कहते हैं। इसके द्वारा मुत्राशय की आन्तरिक भित्तियों तथा



चित्र १३७--मूलाशय दर्शक यन्त्र (सिस्टोस्कोप)



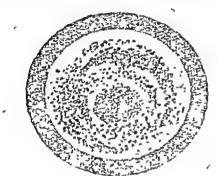
चित्र— १३८
मूत्राशय दर्शक यन्त्र सहित
अश्मरी भंजक यन्त्र—
अश्मरी के दोनों
फलकों के बीच
मूत्राशयाश्मरी
दीख रही है

मूत्र गवीनियों के मूत्राशय में खुलने वाले द्वार-द्वयों का निरीक्षण किया जाता है। अगर इन्हीगो-कारिमन का ०.४% शक्ति का ७ मि.लि. का सूचीवेद्य शिरान्तगंत लगाया जाये तो सामान्यतः ४-५ मिनट के पश्चात् यह मूत्र गवीनियों से मूत्राशय में उत्सर्जित होता हुआ दिखाई देगा। यदि एक बोर की मूत्र-गवीनी से इसके उत्सर्जन में देरी होती है तो समझें कि उस बोर कहीं भी अवरोध है। यदि दोनों ओर ही उत्सर्जन अधिक देरी से हो तो वृक्क अकर्मण्यता समझें। यदि मूत्र गवीनी द्वार में कोई

THE PROPERTY

धारमरी अटक रही है तो यह भी चित्र १३६ की अनुसार दिखाई देती है।

इस यन्त्रं का प्रयोग मूलाणय दर्शन को अतिरिक्त मूलाशय के अन्दर मूल गवीनी द्वारों को चौड़ा करने में अश्मरी को खींचकर निकालने में भी किया जाता है। मूल गवीनी ढार को चौड़ा करने को लिये सिस्टोस्कोप में एस हेतु विशेष रूप से निमित एक बडिश शस्त्र (विश्वूरी जैसे फलक वाला) लगा दिया जाता है। गवीनी द्वार में अटकी अश्मरी को खींचने हेतु सिस्टोस्कोप में कार्क स्कू जीशा इसी हेतु विशेषतः निमित स्कू जगा दिया जाता है।

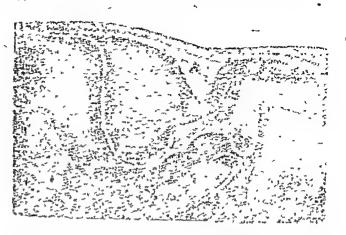


चित्र — ३६६



चित्र —१४०
स्क्रूटाइप अश्मरी निष्कासक यन्त्र — अश्मरी को
खोंचते हुए।

इस मूत्राण्य दर्णक यन्त (सिस्टोस्कोप) में एक सरमरी संज्ञ (Lithotrite) लगा दिया जाता है जिसके द्वारा मूत्राणन में उपस्थित तथा इस यन्त्र की पकड़ में जा सकने जितनी यड़ी अश्मरी को पकड़कर अवचृणित कर दिया जाता है और किर अश्मरी का यह चूरा मूत्र के साथ-साथ मूत्राणय से वाहर निकल जाता है (चित्र १३०)



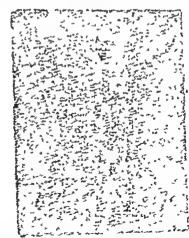
चित्र १४१ - मूत्राशय विदर जितके कारण कि । उदरावरण में मूत्र एकतित हो गया है।

मूत्र प्रसेक नलिको दर्शक यन्त्र--

इस यन्त्र को द्वारा मूत्रप्रसेक निलका का निरीक्षण किया जाता है। मूत्रप्रसेक निलका में प्रायः संकोच (Str ctures) पाये जाते हैं। निलका में कूटमार्ग भी (False passages) हो सकते हैं।

जब मूच निल्का कुछ लम्बाई तक संकुचित हो जाती । है तो उसे क्रिवेन्ट (Cresent) कहते हैं जोकि जिन १४२ में दिखाया गया है (A) जबिक नीचे (B) में सूचनिका का पूर्यमेहजन्य संकोज दिखाया गया है।

इस मूत्र प्रतेक निलका दर्ण क यन्त्र (Urethroscope) से निलका में यदि कोई विदर हो तो उसे भी जात किया जाता है जैसे कि जिल्ला फ्रमांक १०६ में दिखाया है।



जित १४२—मूत्रप्रसेक मलिका निकोशन का

गृत्युत्तर प्राप्त शित्र

A-लम्बा निकोजन B-छोटा निकोशन

Har all the text of the second

कंथोटर

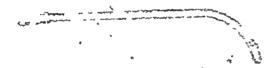
यह रवड़ के तथा छातु के दो प्रकार के आते हैं। रवड़ को कैयोटर स्त्री तथा पुरुष दोनों के लिए एक ही प्रकार के आते हैं। छातु के कैयोटर स्त्री तथा पुरुष दोनों के लिये पृथक् प्रपक् आते हैं।

घातु के कैथीटर-

यह नलिका के स्वरूप का यन्त्र होता है जिसमें एक छिद्र मग्रभाग से कुछ हटकर होता है। इसका अमधाग गोल, चिकना और कड़ा होता है जो साधारण दवाव से



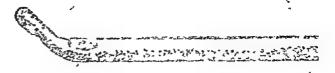
चित्र-१४३ फैथीटर धातु का स्त्री के लिये



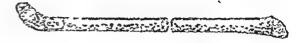
चिल — १४४ कैथीटर छातु का पुरुष के लिए

नहीं मुद्रता। धातु है कैथीटर में भी उसी प्रकार से अप्र भाग से कुछ हटकर दो छिद्र होते हैं—१-१ दोनों और। धातु के कैधीटर के धीतर एक तार पटा रहता है जिसे 'स्टिलेट (Stylet)' कहते हैं। अगला भाग मुका होता है। तार का एक सिरा पीछे के कैथीटर के छिद्र से एक घुण्णा, के इन में बाहर निकला रहता है। कैथीटर के मूलामय मे पहुंच जाने पर यह 'स्टिलेट' बाहर खीच निया जाता है। पुच्चों की अपेक्षा स्त्रियों का मूलामय पास होने से प्रयोग से पूर्व कंथीटर को विसर्क्रीमत करना कत्यन्त खावश्यक है।

रदड के साधारण कैथीटर उचास लेने से घरान हो जातेहैं। उनको उबसते हुए पानी में २ मिनट के निये टाल हैं तथा ज़ने निकाल स्वन्छ ठंडे जल में या किसी जीवाणुनाणक के ठंडे हलके घोल में हाल दें। साजकल कड़े रवड़ं (Gum Elagtic) के कैयीटर प्रयोग में लाये जाने



चित्र १४५-टाईमीन का केथी र



जित्र ११६ - को ही के यीटर



चित्र १४९ - बाई-को हो के योदर

चित्र १ 'द- गप-इल्रास्टिक के थीटर



चित्र १४६ - मूत्राणय में स्वयं स्थिर रहने वाला कीट के थीटर

तमे हैं। यह उवालने दे खराव भी नहीं होते तथा अपेक्षा-इत अधिक ठंदे होने से उनका प्रयोग भी जासान है।

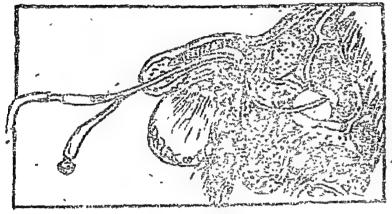
रोगी को पलंग या मेज पर कमर के नीचे तिकया लगाकर चित्त तेटना चाहिये। रोगी को अपने भूटने सिकोड़े हुए पृथक् पृथक् रखने चाहिए। रोगी के द्रांबी बोर कैथीटर प्रवेशकर्ता को खड़ा होना चाहिये।

कैथीटर को भूदमागं में प्रविष्ट करने से पूर्व मूत्र प्रवेश के निकट की स्वच्छता बत्यन्त सावश्यक है। इसके निए मूश्रमागं के चारों बोर स्वच्छ तीलिया हाल दें। अब शिश्न को बार्य हाथ में गाज (Gauze) से पकड़ें। यदि केटल हाथ से णिवन को पमड़ा जाये तो पकड़ें जिनी मजदूत नहीं रहती है। अब शिश्नाप्र की त्रचा को पीछे जिसका दें तथा शिश्नाप को किसी हत्के जीवाणुनायक घोल में भीगे पिचु हादा स्वष्ट कर हैं।

an elevitated

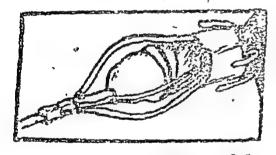


चित्र १४० — फोली-हीमोस्टेटिक बेग कृषीटर (मूत्राणय में स्वयं स्थिर रहने वाला, एक अन्य प्रकार का क्षीटर)



चित्र-- १५१

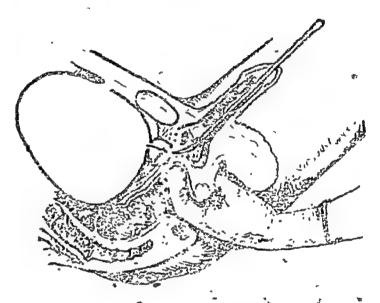
इस चित्र में चित्र नम्बर १४० वाले कैयोटर को मूत्राण थ में स्थिर रहते हुये दिखाया गया है। प्रायः इसका उपयोग मूत्राणय-विद्यादन में किया जाता है।



चित्र १५२--रवड़ के साधारण कै घीटर को पुरुष के मूत्राक्षय में देंप लगा-कर स्थिर रखने की विधि

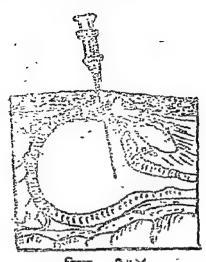
वब कैंगीटर की वंगुनी तथा वंगूठे द्वारा पकड़े। पुरुषों के मूश्रमागं की स्म्वाई लगभग = इन्द्र होती है। कैंगीटर को = इन्द्र के लगभग चिकना कर लें तथा किर एसे घीरे-घीरे मूलमागं में प्रविष्ट करें होर उस सभय तक प्रदेश नरते. रहें जब तक कि वह गूत्राशय में न पहुँच वाथ। कैंगीटर का छिद्र रोगी की मूश्रनली की सीध में

रहना आवश्यक है। कैथीटर प्रवेश करते समय कैथीटर पर अधिक वल न लगायें। प्रवेश करने के उपरान्त यदि कैथीटर रवड़ का है तो उसके मुंह पर अंगुली लगाएँ। अब इन्द्रिय को थोड़ा नीचे की ओर भुका दें और ऐसा पात रखें जिसमें कि मूत्र गिर सके और अंगुली हटा लें। यदि धातु का कैथीटर है तो 'स्टिलेट' को धीरे से खींच लें। इस बात का ध्यान रखें कि शीघता में कैथीटर बाहर न आ जाय। इस दार के किकलते ही मूप निकलने लगेगा। कैथीटर के मुख को अपनी अंगुली द्वारा बन्द रखे रहें जिससे आपके उपर या आपके एवं रोगी के बस्त्रों पर मूत्र न गिरे। किसी पात्र में लगाने पर ही अपनी



े चित्र—१५३ पौरुष ग्रनिक के कारण कैंथीटर प्रवेश में कठिनाई हो तो मल मार्ग में अंगुली झलकर इस प्रकार कैथीटर को सहायता हैं।

शंगुली हटायें। यदि कैयीटर मूलपार्ग में प्रविष्ट हो जावे किन्तु बीच में एक जाता हो तो बल न लगायें अपितु पन्न को बाहर निकास लेवें तथा स्वच्छ कर पुनः प्रविष्ट करें। इस प्रकार से र-वे बार प्रविष्ट करने पर कैथीटर प्रविष्ट हो जायेगा। यदि किसी सर्जुद या तीन्न पौष्प प्रनिष शोष के कारण मूलमार्ग बन्द है तो किर फैबीटर मूनाशय में स्वतः ही प्रविष्ट न हो पायेगा। मल मार्ग में एक बंगुली चिन्न १५६ में दिखाये अनुसार प्रविष्ट कर कैयीटर को सहायता देने पर कैथीटर मुलाशय में पहुँच जायगा। यदि



चित्र-- १५४

पौरुप थ्रन्यि वृद्धि या किसी अन्य कारण मूत्राशय भूत्र से पूरित हो और कैथीटर प्रवेश के सभी उपाय विफल हो गये हों तो इस जात्ययिक वावस्था में कटिवेघनी सूचिका (सम्बर पंक्चर नी हिल) को सीधे हो मूलाशय में प्रविष्ट फरें।

शोध के कारण मूत्रमार्ग बिल्कुल ही वन्द हो गया है तो कैथीटर प्रवेश नहीं कर पायेगा।

यह केवल अनुभव से ही जात हो सकता है कि किसी रोगी को कौन से नम्बर का कैयीटर लगेगा। साधारणतः माता का दूध पीते वच्चों को नम्बर २ का, ३-४ वर्ष के बच्चे को २, ४, ५ नम्बर का, १ र वर्ष तक के बच्चे को मम्बर ६ का तया इससे अधिक आयु में ७-५ तम्बर का कैंबीटर प्रयोग करें।

यदि मृतमार्ग में किसी संक्रमण के उपस्थित होने की शंका हो यथा सुजाक में तो मूत्रमांर्ग के अग्रभाग को किसी जीवाणुनाशक घोल से स्वच्छ कर लेना चाहिये। वैसे तो यह कार्य कैयीटर प्रवेश करने से पूर्व प्रत्येक रोगी में किया जाग तो अच्छा ही रहता है। इसके लिए एक विना नीडिल की सिरिज में जीवाणनाशक घोल लें और हलके से मूल बहिद्दिर में लगांकर प्रविष्ट कर दें तथा १ मिनट बाद इस द्रव को खीचकर फैंक दें। इस प्रकार से २-४ बार करें। मुत्रमार्ग के इस अग्रिम प्रक्षालन कर लेने से म्त्रमार्ग में यदि कोई संक्रमण है तो वह मूत्राशय में नहीं पहुंच पायेगा.।

स्त्रियों में के थीटर प्रवेश करने का कार्य यदि किसी स्त्री चिकित्सका के द्वारा किया जाय तो उत्तम है क्योंकि ·पुरुष द्वारा कै थीटर प्रवेश करने पर स्त्री लज्जा का अनु-भव करती है और कैथीटर प्रवेश में पूरुप चिकित्सक को उतनी अधिक सुविधा नहीं देती । कै घीटर प्रवेश करने से पूर्व भग को पूरी तरह स्वच्छ कर लेना चाहिए तथा मूत्रमार्ग को विना नीडिल की सिरिज द्वारा उपरोक्त तरीके से स्वच्छ कर लेना चाहिए। स्त्रियों का मूलमार्ग बहुत छोटां होता है अतः प्रत्येक संज्ञमण मुल्लाशय में वहुत आसानी से पहुँना सकता है। इस वारे में चिकित्सक को पूर्णवः सतक रहना चाहिए।

> — डा॰ दाऊदयाल गर्ग ए॰एम॰ बी॰एस॰, आयु.बृह. सम्पादक-धन्वन्तरि गुनजार नगर, रामघाट रोड, बलीगढ़

मूत्ररोगनाशक दनौषधियां X

उत्तरकालीन स्थिति में शरीर पुष्टि तथा आमदोष निवृत्ति एवं यक्तकार्य के उत्तेजक है। संग्रहणी के अतिरिक्त उन्माद, हृदय रोग, अश्मरी, सन्धिवात में भी उपयोगी है।

सरवूजे, केकड़ी खीरा के बीज खिलाना अश्मरी निकालने में टपयोगी है। खरवूजे के बीजों को जल में पीस कर घरीर परं लेप करने से 'लू' से रक्षा होती है।

,विशेप-खरवूजा खाली पेट नहीं खाना चाहिए बरिक मोजन पचने पर खाना चाहिए हथा खाने के पूर्व खरवूजा

🎉 - पृष्ठ ३४० का शेशांच

शीतल जल में भिगोकर रखना चाहिए इसके खाने के बाद चीनी का शर्वत बनाकर पीने से यह शीघ्र हजम होजाता है। इसके खाने के प्रधात्ं ही दूध का सेवन हानिप्रद है, अतिसार या हैजा होने का भय है आसपास हुजा फैला हो तो इसे खाना ठीक नहीं इसके सेंवन से दांतों का मल साफ होकर है मजबूत होते है। इसके हानिकारण प्रभाव के निवारणार्थ गुद्ध शहद और जनार रस सिरका का सेंवन किया जाता है।

होतियोग्नी कि चितित्त स्मा होतियोग्नी कि चितित्त स्मा होतियोग्नल अस्ति सम्बद्धाः सिहित

श्री दीक्षित जी के लेखों का रसास्वादन 'धन्वन्तिर' के पाठक पर्याप्त समय से करते रहे हैं, लेकिन हमें हादिक दुःख है कि उनके समीपस्थ कुछ सम्वन्धियों के स्वगंवास के कारण तथा उनकी अधिक कार्य व्यस्तता के कारण यह क्रम अवच्छ हो गया। 'धन्वन्तिर' के अनेकों पाठकों के पत्र हमें आपके लेख पुनः चालू करने हेतु प्राप्त हुए और हमने आपसे अनेकों बार लेख भेजने हेतु अनुरोध किया। अप हमारे एवं पाठकों काकर आपसे मिले और 'धन्वन्तिर' में अपने लेख चालू करने का अनुरोध किया। आप हमारे एवं पाठकों के अनुरोध को टाल नहीं सके और अत्यन्त कार्य व्यस्त रहने पर भी लेख नियमित छप से भेजना स्वीकार किया है। आपके लेख व्यर्थ की ऊहापोह से परे, भाषा सरल तथा अपने विषय का स्पष्ट ज्ञान कराने वाले होते हैं। आप नैपाल में वीरगंज में प्रातः से रात्रि तक रोगियों को देखने में व्यस्त रहते हैं तथा प्रतिदिन सैकड़ों नये रोगी देखते हैं। उन्हीं से प्राप्त अनुभवों का निचोड़ आपके लेखों में रहता है। आशा है पाठक इस लेख से लाभान्वित होंगे।

होमियोपैषिक में रोग की चिकित्सा न होकर रोगों की चिकित्सा होती है अतः लक्षण संग्रह करते समय रोगों के मानसिक चक्षण, विशेष लक्षण, वंगगत इतिहास, रोग की हास वृद्धि आदि का विशेष ह्यान रखना चाहिये। साधारण लक्षणों में सफलता मिलना 'असम्भव है। प्रत्येक लक्षणों की विशेषता पर ह्यान रखना आवश्यक है। अतः हम दवा के साधारण लक्षणों को न लिखकर विशेष लक्षणों को लिखेंगे। रोगों के कारण आदि विषय पर न लिख कर चिकित्सा ही लिख रहे हैं। कारण आदि अन्य लेखक वन्धु अपने अपने लेखों में लिख ही चुके हैं। आवश्यक स्थानों पर हम संक्षेप में कारण और उदाहरण एवं होमि-योपैथिक महापुष्ठ्यों के अनुभव भी लिखेंगे।

मूत्ररोध (पेशाब रकता), -

मूत्राणय में किसी कारणवश मूत्र न निकलने को मूत-रोध या मूत्र स्तम्भ कहते हैं। जहां गुदों से ही मूत्र नहीं आता उसे मूत्रनाण कहते हैं। इसकी पहिचान यह है कि जहां मूत्राणय फूना हुआ ,होवे उसे मूत्ररोध समझना चाहिये और मूत्राशय फूला हुआ न ही वहां मूत्रनाश होता है अर्थात पेशाव तैयार ही नहीं हो रहा है।

विकित्सा—
एकोनाईट नेप ३०,२००—

यह दवा आयुर्वेद की चिरपरिचित बच्छनाग है। जन्म के समय बच्चे को मूत्र त्याग न होने में यह अति लाभप्रद है। यदि मूत्ररोध का कारण सर्वी लगना होने तो इसकी १-२ माता से ही मूत्र त्याग हो जाता है। सन् १६५१ दिसम्बर का महीना था, उस समय में श्री सत्य-नारायण दातव्य चिकित्सालय खुलना (बंगला देश) में चिकित्सक के पद पर कार्य करता था। स्थानीय उच्च डिग्रीधारी एलोपैयिक चिकित्सक की स्त्री को बच्चा हुआ। १२ घण्टे तक मलमूत्र त्याग न होने से डाक्टर साहब को बड़ी चिन्ता हुई। डाक्टर साहब ने पहले सभी उपाय किये पर सफल नहीं हो सके। उनकी बहिन होमियोपैयिक की भनत थीं। २-४ बार कहने से डाक्टर साहब करके बोले, अच्छा भाई मीठी गोली वाले डाक्टर

Tal Glob hamade and

को भी बुला लो, उस मीठी गोली से कुछ होना तो है नहीं छोर में गया और बन्चे को १ ड्राम डिस्टिल बाटर में रे गोली एकोनाईट ३० की टासकर ४-६ मिनट पर ४-४ बूंद दी गई। १० मिनट बाद मल मूत्र त्याग हो गया। उसके बाद डाक्टर साहब को होमियोपैथिक पर विश्वास हुआ और उस बच्चे को कोई भी बीमारी होने पर होमि-योपैथिक विकित्सा होती है। इस प्रकार के अनेकों बच्चों पर हम प्रयोग कर चुके हैं।

सर्वी लगने के कारण वयस्कों का भी मूबरोध होने पर एकोनाईट के लक्षण मृत्युभय, वेचैनी खादि होने पर इसका प्रयोग होता है। कैनेविस सैटाइवा Q, ३×—

यह दवा भांग से तैयार होती है। इसकी मूल यन्त के रोगों में देने से बहुत लाभ होता है। जहां मूलाशय में मूत्र भरा प्रतीत होता है पर होता नहीं है वहां इसको ३ × या ३ या ६ शनित में प्रयोग करने पर लाभ होता है। आर्सेनिक एल्ब ३० —

हा॰ जार का कहना है कि जहां कैनाविस इन्डिका
से लाभ न होवे और रोगी में गासँनिक के लक्षण जलन,
प्यास, वेजैनी, मृत्युभय, शीत कातरता होवें तो इससे
विशेष लाभ होता है।
होनेपन्यम् ३०—

जहां मूत्रनाश होने, किहनी से मूत्राशय में मूत्र ही नहीं आता होने। उस अवस्था में मेटेरिया मेहिका में यह एक सर्वोत्तम दवा है। अोपियम ३०,२००—

स्नायिक कारण से या भय के कारण मूत्रावरोध होवे और उसके साथ भयद्धर कव्ज हो तो इस दवा से विशेष लाभ होता है। जहां देखें कि किसी कारणवण मूत्राणय का पक्षाधात हो गया है, उसकी मूत्र नि:सारक पवित लोप हो गई है वहां ओपियम उसे पुनः सक्रिय कर देगा।

उदाहरण—दो माम पूर्व एक ६५ वर्धीय वृद्ध व्यक्ति को देखने गया, वह पटना से चिकित्सा कराकर आया था। उसे कव्ज था, पाखाना तीन दिन से नहीं हुआ था, अचेतन अवस्था में था। ओपियमू दे० शंबित की तीन माता १-१ घण्टा पर देने पर' काफी मात्रा में मूत्र त्याग हुआ एवं ६ घण्टे बाद पाखाना भी हो गया।

चपरोक्त दवाइयों के अलावा सक्षणों के अनुसार हेलो-नियस, नक्स बोमिका, डलकामारा रसटक्स आदि का भी प्रयोग होता है।

२. रक्तमूत्र (Haematuria)

पेशाब के साथ खून निकलने को रक्तमूत्र या हिमाचूरिया कहते हैं। यह रक्त किडनी, मूत्राशय, मूत्र नली
आदि स्थानों से आ सकता है। होमियोपैथिक चिकित्सा
में यह जानने से चिकित्सा में कोई लाभ नहीं होता कि
रक्त कहां से आ रहा हैं। हमें रोग के विशेष लक्षणों पर
और रोगी के सर्वाष्ट्रिक, मानसिक, विशिष्ट लक्षणों की
लक्षण समण्टी के अनुसार दवा निश्चित करनी होती है
और उसी दवा से सफलता की आशा की जा सकती है।
किन्तु अभिभावक के पूछने पर यह बताना आवश्यक हो
जाता है कि रोगी को रक्त क्यों आ रहा है? कहां से,
आता है? अतः संक्षेप में हम इस विषय पर प्रकाश
ढालना आवश्यक समझते हैं। विस्तारपूर्वक अन्य लेखकों
के लेख में पढ़ें। संक्षेप में परीक्षा निम्न प्रकार से करें—

- (१) मूलनली से रक्तस्त्राव—मूलनली से रक्तस्राव होने पर पहले रक्त आयेगा और पीछे, मूल यायेगा। इसमें बूँद-बूँद रक्त निकलता है, पेशाब करने में कोई कष्ट नहीं होता है। मूलनली में कभी कभी सिर्फ रक्त ही निकलता है मूल निकलता ही नहीं है। सुजाक (पैनो-रिया) के प्रदाह से या बाहरी चोट लगने से भी इस तरह का रक्तस्राव होता है।
- (२) मूलाशयं से रक्तज्ञाव—मूलाशयं से रक्त आने पर पहले पेशाव होगा, पीछे रक्त आनेगा। टोशाब करने के समय दर्द होगा और एक प्रकार की तकलीफ बनी रहेगी। मूलमार्ग से रक्त के थक्के निकलेंगे। कभी-कभी यह थक्के बड़े होने पर मूलाशय पर दबाव देकर या यन्त्र की सहायता से तोड़ करके भी निकालने पड़ते हैं।

मूत्राशय में पथरी, चोट, मासिक वन्द होने आदि कारणों से रक्तस्राव होता है।

(३) किंडनी (गुर्दे) से रक्तमान—रक्त पेशाब के साथ मिलकर निकलता है और उसमें रक्त के थक्के भी रह सकते हैं।

Tal Ridi Feliale 211

नोट - किसी किसी स्त्री को मासिक के समय पेशाब के साथ रक्त खाता है। यह हिमाचूरिया न्हीं है बल्कि ऋतु का रक्त ही है। यह ४-५ दिन में स्वतः ही ठीक हो जाता है।

रवृत मूत्रतों के कारण—

- (१) मूत्राणय प्रदाहर कोरण्ड घटित मूत्रप्रत्य प्रदाहर बादि वीमारियों में, पीठ में चोट लगने के कारण, किडनी (गुर्दे) में प्रदाह होने के कारण या रक्त की अदिकता से, द्यूमर आदि होने पर रक्त मूत्र हो सकता है।
- (२) किडनीं या मूलाशय में कैंसर या ट्यूबरिकल, प्रमेह (गनोरिया), घाव आदि भी कारण हो सकते हैं।
- (३) मूत्रवहा नली (यूरेटर) अथवा यूरेश्रा में पथरी अटक जाने पर भी रक्त आ सक्ता है।
 - (४) मूलनली में कैथीटर का प्रयोग करने या चोट से
- े (५) पीतज्वर, मलेरिया, स्कर्बी, पर्युरा आदि रोगों से भी रक्तमृतता हो संकती है।
- ' (६) एक प्रकार के कीटाणु रनत में होने पर भी मुझ में रक्त आने लगता है।
- (७) तारपीन, कार्वोलिक एसिड, कैथ्राइडिस आदि दवाइयों के अधिक प्रयोग से भी हिमाचूरिया हो सकता है। विकिश्सा और पथ्य आर्सेनिक एटव ३०,२००—

पेशाव का रङ्ग काला, उसमें सड़ी बदबू, पेशाव में यक्का यक्का रक्त, किडनी, मूलाशय में जलन, दर्द उसके साथ उद्वेग, वेचैनी, मृत्युभय, शित भाव, गरम से उपशम. रोग की बड़ी हुई अवस्था. रोगी अति दुर्वल हो जाता है।

बार्मेनिक हाइड्रोजेन ३,६,३०-

बाइट्स डिजिज या नेफाइटिस की बीमारी में मूत्रा-गय से रक्तस्राव होने पर इससे लाभ होता है। कैंबारिस ३,६,३०—

. इस दवा का निर्माण एक प्रकार की मक्खी थे होता है जो कि सोन देश में बहुत होती है। इस दवा की प्रधान - किया मूत्र यन्त्र पर होती है। मूत्र यन्त्र की इसे चिणिष्ट - दवा भी कही नावे तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस दवा के नारे में सिवस्तार लिखा जावे तो गायद लेख इसी में पूरां हो जायेगा, फिर भी हम इस दवा के बारे में कुछ विंस्तारपूर्वक लिखने को बाह्य हैं—

मुख्य लक्षण — (१) पेशाव करने के समय, पेशाब करने के पहंले औन पेशाव हो जाने के बाद में भी भय- क्ष्यूर जलन। (२) पेशाव का बार वार वेग और फुन्थन। (३) हर समय पेशाव करने की इच्छा बनी रहना, बूँद-बूँद पेशाय के साथ रक्तस्राव। (४) रक्त मिला जलन के साथ मूत्रत्याग।

मूत्रनली में प्रदाह बार बार पेशान की इच्छा का होना, बूँद-वूँद पेशाव होता है, उसके साथ में रक्त रहता है। पेशाव करने के समय भयञ्कर जलन होती है। पेशाव करने के बाद भी रोगी दर्द के कारण वेचेन रहता है। यदि पथरी के कारण दर्द होता है तो वह गुर्दे में होकर मूत्रनली में फैलता है। इस दवा ने कितने ही पथरी के रोगियों को आरोग्य किया है। पेशाव में रक्तस्राव के साथ ही यदि बार बार पेशाव की इच्छा, बूँद बूँद मूत्र त्याग और भयंकर जलन का लक्षण होने पर सबँ प्रथम इसका प्रयोग करना चाहिये।

े पेशाव करने के समय कांटा चुभने की तरह दर्द, पेशाव के साथ बहुत ज्यादा मान्ना में चमकीला लसदार या सूत की तरह क्लें ज्यादा मान्ना में चमकीला लसदार या सूत की तरह क्लें ज्यादा मान्ना में चमकीला लसदार या सूत की तरह क्लें ज्यादा बदबूदार, उसमें सुर्खी की तरह की लाल रङ्ग की तली जमती है। वार वार प्रेशाद करने की इच्छा होती है। मूच त्याग के बाद भी ऐसा अनुभव होता है कि पेशाब और होवेगा, लिंग मुण्ड से मूजनली तक खुजलाहट होती है। बहुत दिनों की पुरानी गनीरिया के कारण हिमाचूरिया, जिसमें खून के धक्के निक-लते हैं।

वाहर से चोट जगने के कारण रवतस्राव की प्रथमा-वरधा में इसका प्रयोग करना चाहिये। क्रोटेलस ३०,२००

ं शरीर के किसी भी यङ्ग से रक्त क्यों न होते, यदि ल् खून काले रङ्ग का होदे, तरल न जमने वाला, जिसका धक्का न बनता होये, उसमें यह लाभवद होता है। यह दवा सर्प के विष से तैयार होती है। लेकिसिस ३०,२०० — यह दवा भी सर्प के विष से तैयार होती है। जहां पेशाव गंदला, काले रंग का होवे जैसे कॉफी घुले हुए पानी की तरह दिखाई देवे। रोगी को जलन, वेचैनी होवे, श्वास में कब्ट हो तो इसका प्रयोग होता है।

हेमामेलिस Q १×३×६, ३० - इस दवा का सभी प्रकार के रक्तस्राव में प्रयोग होता है। पेशाब में जलन कि नहीं होती है, रक्त कुछ कालापन लिये होता है।

मिलिफोलियम् ३X६X६,३० — लाल रंग का रक्त साव, उसके साथ ही गुर्दे के स्थान पर दर्द, वर्तन में रखने पर खून का थक्का नीचे जम जाता है। मूत्र निकलने के समय मूत्रनली में दर्द होता है।

एसिंह नाइट्रिक ६,३०,२०१—उपदंश विष दूषित एवं पारा के अपन्यवहार के कारण पेशाब से रक्तस्राव, बार बार पेशाव का बेग।

टेरिविन्थिना ६,३०,२ ०—यह दवा तारपीन के तैल से तैयार होती है। इसकी प्रधान क्रिया मूत्र यन्त्र पर होती है। पेशाब करने के समय जलन यन्त्रणा वूँद वूँद पेशाब होता है। पेशाब करने में छात कष्ट होता है। खून मिला हुआ पेशाब होता है, गुर्दे की जगह पर दर्द, पेशाब में एल्व्यूमिन, धुँआ की तरह पेशाब का रंग। दर्द गुर्दे से आरम्भ होकर मूत्र नली तक आता है। यह मूत्र में खून लाने की सर्वोत्तम दवा है।

चिनिनम सल्फ ३X,३० मूत्र में खून आता है पर किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता है। पेशाव अधिक मात्रा में होता है। उसमें एल्ब्यूमिन, यूरिक एसिड ज्यादा मात्रा में होता है।

व्लिष्सीवर्सा Q—रक्तस्राव के लिये इसका प्रयोग अधिक होता है। जहां रक्त का रंग काला होवे और उसमें थक्के थक्के होवें, साथ ही बदबू होने पर यह लाभ-प्रद है।

कैनाविस सैटाईवां Q, ३, ६, ३० — हा. जार लिखते हैं कि अगर पेश:य में खून आने पर किसी औषिष्ठ के कोई विशेष निर्दिष्ट लक्षण नहीं मिलने पर मैं कैनाविस का प्रयोग करता हूं। इससे सफलता न मिलने पर कैन्थारिस देता हूं। यदि रोग का कारण अधिक शराव पीना हो तो नेवस का प्रयोग करके बहुत रोगियों को आरोग्य किया है। यदि मूल में रवत आने के साथ गुदों में दद भी हो, पेशाव

की रंगत हरी सी होवे और मूत्र में कफ भी आवे तो कल्केरिया कार्व देना चाहिये। यदि मूत्राशय में दर्द हो, तल पेट में गर्भी प्रतीत हो, अति दुवंलता हो, रक्त का रंग लाल होने पर इपिकाक का प्रयोग करें। मूत्रनली में भयंकर जलन होने पर लक्षणों के अनुसार—आर्सेनिक, कैयारिस, सहफर या पल्सेटिला में से किसी का चुनाव करना होगा। मूत्राशय की नली में काटने या डंक मारने की तरह का ददें होने पर सलफर, मार्कसोल या कैयारिस में से किसी का चुनाव करें। मूत्राशय से निम्न किट प्रदेश और जंघास्थली तक प्रसव वेदना के समान ददें होने पर पल्सेटिला, सल्फर, नक्स पर ध्यान देवें। यदि भयंकर विष्टब्धता हो. रक्त मिश्रित सुद्दें (थक्के) आवें तो लाई-कोपोडियम देवे।

उदाहरण— रोगी की उग्ने २५ दर्ग की, अचानक ही पेशाव से रवतस्त्राव होने लगा। दर्द, जलन, किसी भी प्रकार की तकलीफ नहीं थी। रवत का रंग लाल था। लक्षणों का संग्रह नरके उसे मिलीफोलियम् ३४ शन्ति में प्रति घण्टा पर देने पर ५-६ माला देने से ही रक्त-स्राव वन्द हो गया।

३. पूत्रपथरी

हाईड़ न्जिया Q—'इसका प्रभाव मूत्रनली पर विशेष रूप से होता है। साथ ही गुर्दे की नली पर भी क्रिया होती है। मूत्रपथ में जलन, पेशाब की बार बार इच्छा, पेशाब बहुत कष्ट से उतरता है। पेशाब में कफ की तरह का तलछट जमता है। वायें जांच में दर्द होता है। गुर्दे में जो प्राय: वायीं तरफ होता है। रक्त भी आता है।

मात्रा—१ से १० बूँद मदर टिचर दिन में ३-४ वार देवें।

सोलिडैगो Q—पेशाव का रुक् जाना या रुक रुक्कर होना। गुर्दे का दर्द जोकि पेट और मूत्राशय तक जाता है। पेशाव रुक्ने पर इससे कैथीटर लगाने की आवश्यकता नहीं रहती है।

कैन्यारिस ३० — मूत्र रुक रुककर होता है, मूत्र करने के समय भयंकर जलन और ददं। यह मूत्र पणरी की बहुत ही उत्तम दवा है, इससे पणरी के डुकड़े दूटकर निकल जाते हैं।

सार्सापरेला ६ - यह भी पथरी रोग के लिये और गुर्दे के दर्द के लिये उत्तम दवा है। इस दवा का विशेष - शेषांश पष्ठ ३५ = पर देखें।

APUG HARIOT ON THE ST....

सूत्रकृच्छता (Dysurla)

इन्जेक्शन (एन्टीबायोटिक्स)--

(१) टेरामाइसीन-नि.-फाईजर, बड़ों को २४०-५०० मि. ग्रा. प्रति ६ घण्टे पर मांसपेशी में । बच्चों को २४-१०० मि. ग्रा. । प्रति कि.ग्रा. शरीर भार के अनुसार प्रति दिन की मात्रा को कई खुराक में वांटकर मांसपेशी में । या

डूपेन (Dupen 5 or 10)नि.—ह्रमेनस मात्रा-४-१० लाख यूनिट को डि. वाटर में घोलकर सुवह शाम मांसपेशीमें आवश्यकतानुसार मात्रा को कम-अधिक किया जा सकता है।

क्रिस-फोर-नि.-सारामाई, डि. वाटर में घोलकर प्रतिदिन मांसपेशी में।

कैप. — एन्टीबायोटिक्स-टेरामाइसीन नि.-फाइजर या एम्पीलीन या साइक्लोसन — वायोकेम १-२ कैप × ४ बार।

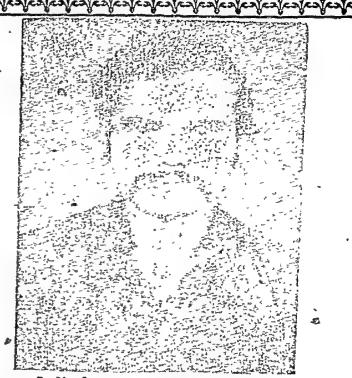
टेब.—लैसिक्स टेब॰ नि —हेक्स्ट १ टेब. ×२ बार्। बाराल्गन टेब-नि॰—हेक्स्ट १-२ टेब. ×३ बार।

सूत्राघात (Anuria)

चिकित्सा - शिरामार्गे द्वारा वृंदपात विधि से ५% . हेक्स्ट्रोज, १०% हेक्स्ट्रोज (५% या १० %) या, सोडि-यम क्लोराइड - हेक्स्ट्रज आवश्यकतानुसार चढ़ाएं।

बो. नोल के. का कैलिशयम डायुरेटीन टेव. वयस्कों को आधा-१ टेव X र-४ बार। वच्चों को चौथाई टेव. X र वार।

अल्कासोल नि.—स्टेडमेड—१ वर्ष तक के शिशु को विधाई-आधा चम्मच × ३ वार । १२ वर्ष तक के वच्चों को आधा-१ चम्मच × १ वार । वयस्कों को २ चम्मच ×



3 वार पानी में घोलकर । आवश्यकतानुसार इसकी मात्रा रोगानुसार वढ़ाई जा सकती है।

सूत्र विजमयता (Uraemia)

तीव यूरीमिया (Acute Uraemia) — इन्जेनशन + कैपसूल-

'एन्टीबायोटिन्स' का प्रयोग करें। एन्टीवायोटिन्सों -का वर्णन 'पूर्व' के अन्य लेखों से प्राप्त करें।

डायनावील इन्जेक्शन (सीवा) १ ऐम्पुल नित्य या सप्ताह में १-१ वार मांसपेशी में या ड्युराबोलीन इंजेक्शन (आर्गेनन) १०-१६ मि. ग्रा. का १ एम्पुल सप्ताह में १ वार दे देना लाभकर है।

वृंदपात विधि से शिरामार्ग द्वारा ५० % डेक्स्ट्रोज आवश्यकतानुसार दें। ६० % डेक्स्ट्रोज ५०० मि. ली. आमाजय में नली प्रवेश करा कर दें। er did felicocas

चिरकारी यूरीमिया (Chronic Uraemia)-

(१) जितना मूल त्याग हो उससे ६०० मि. ली. अधिक जल पिलावें।

(२) एन्टीवायोटिक्स दवाओं का व्यवहार इन्जेक्शन के रूप में करें।

(३) अतिरक्तदाव के लिए रक्तदाव को कम करने हेतु सर्पोसिल इन्जेक्शन (सीवा) १-२.५ मि. ग्रा. मांसपेशी में या शिरामार्ग द्वारा बहुत ही धीमी गति से प्र-१० घण्टे के अन्तरील से तब तक दें जब तक कि रोगी मुंह से औषि लेने के लायक नहीं हो जाये।

(४) आक्षेपों के लिए लागें विटल इन्जेक्शन १ एम्पुल ६-६ घण्टे पर मांस में दें।

पूयमेह (Pxuria)

चिकित्सा-एन्टीबायोटिक्स द्वारा-

नोट — मूत्र रोग खण्ड में वणित मधुमेह रोग को छोड़कर मूत्रकृच्छता, मूत्राघात, मूत्रविपमयता, बहुमत्रता, अल्पमूत्रता, अमूत्रता, इक्षुमेह, सुरामेह, शुक्रमेह, सिकतामेह शितमेह, शनैमेंह, लालामेह, क्षारमेह, नीलमेह, अम्लमेह, हिरद्रामेह, मज्जामेह, वसामेह, हिरतमेह, रक्तमेह, पूयमेह, जीवाणुमेह, ऐल्वुमिनमेह—कोई स्वतन्त्र रोग नहीं हैं बल्कि यह भिन्न-भिन्न रोगों के लक्षण हैं। अतः जिस बीमारी के साथ ऐसे लक्षण होते हैं, उनकी चिकित्सा रोगानुसार तथा उनके कारणों के अनुसार की जाती है।

मंचुमेह (Diabetes Mellitus)

प्रोढ़ता-प्रारंभिक मधुमेह (Maturity onset diabetes)

स्थूल रोगी—भोजन द्वारा शरीर का वजन तथ बलड सुगर को आवश्यकतानुसार घटावें। यदि ऐसा नहीं हो तो स्थूलता की चिकित्सा करानी चाहिए।

टेबलेट—डायबीनीज २४० मि. ग्रा. (फाईजर) या डायोनिल (नि. हेम्स्ट), या इगुग्लुकोन टेबलेट ४ मि.-ग्राम १ टेबलेट नास्ता के साथ। यदि इतने से नियंत्रित न हो तो इन्सुलीन दें।

कृश रोगी को —टेन्नेट डायनीनीज. २४० मि.गा. या डायोनिन या इप्रानुकीन या ग्लाइनेज आधा टेन्नेट नाश्ता के साय। मूत्र में सुगर की माला के अनुसार इसकी मात्रा केटाई जा सकती है।

म. यदि इतने से नियंत्रित न हो तो डायबीनिज ४०० मि. या. नाश्ता के साथ। दो सप्ताह के वाद यदि नियंश्वित नहीं हो तब डायोनिल या इयुग्लुकोन २ टेवलेट नाश्ता के साथ १ टेवलेट रात को भोजन के बाद। इसके वाद भी नियंत्रित नहीं होने पर इन्जेक्शन लेन्टि इन्सुलीन (Lente Insulia) १५ यूनिट चर्मान्तगंत नाश्ता से पूर्व। (यह इमेक्स कम्पनी का इन्सुलीन नोवो लेन्टि (Insulia Novo Lente) के नाम से आता है।)

विटामिन बी कम्पलेक्स यथा बीकाडेक्स फोर्ट १ क्रैप-सूल रोज दें, यदि लेन्टि इन्सुलीन की मात्रा ४० यूनिट १ प्रतिदिन से अधिक हो।

इन्जेनशन सोल्युविल इन्सुलीन २० यूनिट + एन. पी. एव.या लेन्टि इन्सुलिन २० यूनिट १ वार नाशता से पहले । यदि दिन के भोजन से पहले पेशाव में सुगर + है तो सोल्युविल इन्सुलीन २ यूनिट नाशता के पहले बढ़ाकर दें। यदि पेशाव में सुगर + रात के पहले हो तव एन. पी. एव. या लेन्टि इन्सुलीन २ यूनिट नाशता के पहले । यदि फिर भी नियंत्रित न हो सके तव इन्जेक्शन प्लेन इन्सुलीन २० यूनिट नाश्ता से पहले । एवं यूनिट नाश्ता से पहले ने भोजन से पहले २० यूनिट रात के भोजन से पहले २० यूनिट रात के भोजन से पहले २० यूनिट रात के भोजन से पूर्व ।

वृद्धावस्था जन्य डायविटिज (Juvenile diabetes)

इन्जेक्शन—NPH. Insulin ०,२५-०.६ यूनट । प्रति कि. ग्राम शा. वजनानुसार नाश्ता के वाद । इसकी मात्रा पेशाव तथा रक्त में सुगर की मात्रा के अनुसार विधारित करें।

कीटोसिस एवं मघुमेह जन्य संन्यास-घर पर की जाने वाली चिकित्सा-

खुलनशील इन्सूलिन इंजेनशन २० यूनिट मांसपेशी में नौमेल सैलाईन वून्दपात विधि से शिरा द्वारा दें। इसके वाद रोगी को अस्पताल भेजने में विलम्ब नहीं करें।

व्यक्त रीग

तीत्र वृक्क भोय (Acute Hephritis) —

[9] ड्षेन (५ या १०) ग्लैनसो का क्राइस्टापेन इसीके समान है जो बैंजाइल पैंसलीन है। (ड्रमेन्स) १ लाख यूनिटका १इन्जेंनशन परिस्नुत जल में घोलक्र प्रत्येक ६-६ घण्टे पर मांसपेशी में लगायें।

[२] क्राइस (साराभाई)

समकक्ष—[i] पी पी एक [ii] सेक्लोपेन (ग्लैक्सो)
[iii] प्रोनापेन (फाइजर) [iv] पेनप्रोड्यूरल (एम. एस. छी.) परिस्नुत जल में घोलकर १ इन्जेक्शन प्रतिदिन मांस-पेशी में १० दिनों तक लगायें। यह फोर्टिफायड प्रोकेन पेनिसिलिन है।

[क] यूनी मैनिटोल (यूनीकेम) ६ मि. ली. / प्रति कि. ग्राम शारीरिक वजनानुसार वून्द निपात विधि (drip method) से शिरामार्ग द्वारा है। यदि अतिरुक्तदावी मस्तिष्क विकृति हो तो दाव हास करने हेतु उत्तम है।

[४] लेसिक्स (हेक्स्ट)

समकक्ष [i] डायुरल (एलेम्बिक) [ii] फूसिक्स
१ ऐम्पुल शिरा या मांसपेशी में । बच्चों को--• ५ मि.ग्रा.
१ ३ मि. ग्रा.। प्रति कि. ग्रा शारीरिक वजनानुसार।
यदि युक्क निपात हो तब न दें। इसके २ मि.लि. के ऐम्पुल
में २० मि. ग्रा. प्यूरोसेमाइड होता है।

[🗓 वैलियम १० (रोश)

समकंक्ष - १. कम्पोज २. साइकोकैम (यूनीकैम) ९ ऐम्पुल शिरा मार्ग द्वारा । इसे २-३ वार तक दिया. जा सकता है। बच्चों को वयानुसार कम दें।

टेवलेट--

[१] एल्थ्रोसीन (एलेम्बिक) २५० मि. ग्रा. × ३-४ वार वच्चों को वयानुसार। पेनसिलिन के इन्जेक्शन न सह सकने की स्थिति में इसका प्रयोग करें।

समकक्ष-१ एरिधोसिन (एवंबीट)

[] एडेल्फेन-एसीड्रॅक्स (सीवा) आधा-१ टेवलेट × २ बार तव तक जब तक रक्तदाव सामान्य न हो जाये। यदि रक्तचाप बढ़ा हुआ हो तो दें।

[२] लैसिक्स (हेक्स्ट), फूमेक्स (डोल्फीन कं.), सैली-नेक्स (आ. डी. पी. एल.) २ मि. ग्रा.। प्रति किलो ग्राम शारीरिक वजनानुसार। यदि वृक्कपात हो तब नहीं दें।

पेय — इसके लिये किसी भी कम्पनी का विटामिन वी फम्पलेश्स सीरप प्रयोग में लायें यथा — बी. जो फाँस मर्क णार्व होह्म कंपनी, विटाहेक्स्ट (Vitahext)-हेक्स्ट फार्मा.,

पोलिवियोन ई. मर्क इत्यादि ।

जीर्ण बृक्क जोथ (Chronic Nephritis)

इसकी चिकित्सा हेतु पूर्व वर्णित 'ह्रपेन' फ्राइस-फोर इत्यादि इन्जेक्शनों का व्यवहार करें। अन्य एन्टीबायो-टिक्स जैसे-एम्पीसिलिन के योग यथा सिन्थोसिलिन इन्जे. पी. सी. आई कं., एम्पीलिन लायका इत्यादि के इन्जेक्शन दिये जा सकते हैं।

माल्रा—बड़ों को—२४०-५०० मि. ग्रा. प्रति ६ घंटे पर मांसपेशी या शिरा में।

वचों को - २५-१०० मि. ग्रा. प्रति कि. ग्राम शारी-रिक भार के बनुसार एक दिन की मात्रा की कई खुराक में वांटकर मांस में या शिरा में।

इसका पेय वच्चों को-

१ वर्षं सक के वच्चों की -- ६२' ५-१२५ मि. प्रा.।

प्रवर्षे,, ,, ,, १२५:-१८७:६,, ,,

१२ वर्ष ,, ,, १८७ ४-२४० मि. ग्राम प्रत्येक ६-६ घन्टे पर ।

वड़ों को कैपसूल के रूप में —

. १-२ ग्राम आवश्यक खुराक में वांटकर।

व्यवसी टेट्साइक्लीन के योग भी इन्जेक्शन, पेय तथा कैपसूल के रूप में व्यवहृत किये जा सकते हैं। यथा टेरा-माइसीन फाईजर कम्पनी, अलसाइक्लीन तथा अलसाइ-क्लीन औ (एलेम्बिक कम्पनी) आदि ।

मात्रा - इन्जेन्यान के रूप में --

बच्चों में - १०-२० मि. ग्रा. / प्रति किलो ग्राम णारीरिक भार के अनुसार।

वयस्कों में-१५०-५०० मि॰ प्रा. १२ घन्टे के अन्तर पर मांस्पेशों में।

कैपसूल-वड़ों को-१-२ग्रा. कई खुराकों में वांट कर पेय-9 वर्ष तक के वच्चों को-६२.५-१२५ मि. ग्राम

इसके अलावा इस रोग में कभी-कभी हल्का जुलाव भी देना चाहिए। इसके लिये ग्लैक्सी कम्पनी का ग्लैक eler alou lelicocau

वसीना टेवलेट दे सकते हैं।

मात्रा—वच्चोंको आधा टेवलेट रात को सोते समय। इसे १-२ टेवलेट की मात्रा भी आवश्यकता पड़ने पर दे सकते हैं यदि जरूरत आ पड़े।

वड़ों को - १ टेवलेट रात को सोते समय, आवर्यक-

सिपला कम्पनी का सिनेंड (Senade tab) — सिपला भी इस हेतु १-१२ वर्ष के वच्चों को-१ टेवलेट रात को सोते समय।

वयस्कों को - १-३ टेवलेट रात को सोते. समम ।
इस रोग में पेय के रूप में ग्लुकोनेट कम्पनी का
अल्कासाइट्रन या स्टेडमेड कम्पनी का बल्कासोल भी दें।
माला-१ वर्ष तक के बच्चों को-चौयाई-आधा
चम्मच । १२ वर्ष तक के बच्चों को आधा-१ चम्मच ।

वयस्क—2 चम्मच को पानी में घोलकर × ३ वार देना चाहिये। २-३ दिनों तक इसे २-३ घण्टों के अन्तराल पर भी दे सकते हैं।

अपवृक्कीय संलक्षण (Nephrotic Syndrome)

इस रोग में संपूर्ण शारीर यथा-पैर, हाथ, मुंह तथा पेट में काफी शोथ (सूजन Oedema) होता है। चिकित्सा—

(१) प्रेंडनीसोलोन के योग यथा — वाइसोलोन टेवलेट वाइय कम्पनी या होस्टाकोटिन-एच-हेक्स्ट या प्रेसिन— एलेश्विक।

सात्रा—२ मि. ग्राम / प्रति कि. ग्रांम । प्रति दिन । की खुराक को ३ खुराक में बांटकर × २८ दिन तक । - २८ दिन के बाद १ दिन बीच देक्र २८ दिन तक ।

- (२) मूत्रल दवा—इसके लिये लैसिक्स २ मि. ग्राम / प्रति कि. ग्राम । प्रति दिन की खुराक कई मात्रा में बांटकर दें।
- (३) एन्टीवायोटिक्स-पूर्व वाँगत 'हूपेन' देखें। इसमें प्रेडनीसोलोन के वदले डेक्सामिथासन (पेटेन्ट नाम-डेका-ड्रॉन) टेवलेट;-मार्क-शार्प एण्ड डोह्म कम्पनी, मिलिकोटिन टेवलेट-सीवा कम्पनी एवं वाइसेलोन-वाइय कं० इत्यादि।

मात्रा—वड़ों को—३ मि. ग्राग प्रति दिन (१ मि. ग्राम × ३ वार) वच्चों को उम्रानुसार या वेटामिथासान

के योग जैसे—ग्लैक्सो कम्पनी का वेटनेसोल टेवलेट भी दिया जा सकता हैं।

मात्रा चढ़ों को — थोड़े दिन की चिकित्सा वे लिये — १-२ टेबलेट × ३ वार । प्रति दो दिन पर धीरे-२ मात्रा घटावें। लम्बी अवधि की चिकित्सा के लिये — १-२ टेबलेट से शुरू करके ३-४ वार तक १-२ सप्ताह तक वच्चों के वयानुसार।

पेय - इसके लिये 'तिटामिन वी कम्पलेक्स' के योग दें। अनुतीव सारऊतक वृक्कशोध

इसकी चिंकित्सा प्रेडनिसोलोन अथवा डेक्सामिथासीन से करें। पेनसिलीन (ड्पेन, क्राइस-फोर) इत्यादि को पूरी माला में दें। पेट को साफ रखने के लिए रेचक—यथा ग्लैक्सैना टेक्लेट दें।

तीव गोणिका वृवकशोथ

इसकी चिकित्सा ,में एन्टीवायोटिकस - 'एम्पीसि-लिन' तथा 'ऑक्सीटेट्रासाइक्लीन' के योग देवें। या सेप्ट्रान टेक्लेट (बरोज वेल्कम) - २ टेक्लेट × २ वार, समकक्ष वैक्ट्रोम नि-रोश गारामाइसीन - सी.ई. बुलफोर्ड कम्पनी के इन्जेक्शन को ३ मि. ग्राम / कि. ग्राम । प्रति दिन की खुराक को ३ मात्रा में वांटकर मांसपेशी में।

पाइरीडेसिल एन एफ टी - इथनर कम्पनी हारा निर्मित इस टेवलेट को वयस्कों को - र टेवलेट × ३-४ बार। बच्चों को बायु के जनुसार। या -

पयूराडेन्टीन टेवलेट—यह एस. के. एफ (S.K.F.) कम्पनी द्वारा प्रस्तुत नाइट्रोफ्यूरान्टोइन है।

मात्रा-वयंस्कों को-१०० मि. ग्राम×३ बार बच्चों को-वयानुसार।

गैन्ट्रोसिन—रोश कम्पनी द्वारा प्रस्तुत यह सल्फ़ोना-माइड है। इसे इस रोग में वयस्कों को—१ ग्राम प्रत्येक ६ घण्टे पर तथा वच्चों को वयानुसार कम देते हैं।

पेट साफ करने के लिए हल्के जुलाव का प्रयोग करें। पेशाव को साफ लाने हेतु 'अल्का साइट्रान' या 'अल्का-सोल' का व्यवहार आवश्यक है।

जीर्ण गोणिका शोथ--

इसके इलाज के लिये 'एम्पीसिलिन' तथा 'नाइट्रोपयु-रान्टोन' (पयुराडेन्टीन) का सहारा लें। रक्तचाप अधिक

and the fallences

होने पर एडेल्फेन हैं।

वृक्क विद्रधि

इसकी चिकित्सा एन्टीवायोटिक्स यथा—एमीसिलिन, ऑक्सीटेट्रासाइक्लीन, पेनिसिलिन के योग इन्जेक्शन द्वारा दें। मुख द्वारा—एम्पीसिलिन, आक्सीटेट्रासाइक्लीन, क्लो-रमफेनिकोल पेटेन्ट—क्लोरोमाइसेटीन, इन्टेरोमाइसेटीन, पाराक्सीन इत्यादि को वयस्कों को आवश्यकतानुसार १-२ ग्राम (कैपसूल रूप में) को कई वरावर भागों में बांट कर दें। बच्चों को उनकी आयु के अनुसार।

इसके अलावा मुख द्वारा पेनिसिलिन के योग भी दिये, जा सकते हैं। यथा — क्रिस्टापेन वी टेवलेट (ग्लैंक्सो) को वयस्कों को २५० मि. ग्रा. × ग्रति ५-६ घण्टे पर वच्चों को — १२५ मि. ग्राम × प्रति ३ घण्टे पर तथा छोटे बच्चों एवं शिशुओं को ६५-१२५ मि.ग्रा. × ३-४ वार ।

पेनियोरल-फ्राँको इन्डियन-वयस्क-१ टेवलेट × ६ वार प्रतिदिन। दश्चों को आधा टेवलेट × ६ वार प्रतिदिन।

पेन्टेड सल्फाज--१-१ टेबलेट X४ वार् वचीं की वयानुसार।

ेद्रनक यक्ष्मा

इन्जेवशन-

१. एम्बीस्ट्रीन-एस (०.७५ ग्राम, १ग्राम) निर्माता— साराभाई केमिकल ४० मि. ग्राम / प्रति कि. ग्राम प्रतिदिन । मांसपेशी में रोज प्रथम १ महीना, दूसरे महीने में—१ दिन बीच देकर मांस में । तीसरे महीने में-सप्ताह में २ बार मांस में । यह स्ट्रेप्टोमाइसीन सल्फेट का इन्जे-क्शन है।

२. आइसोनेक्स टेक्लेट एवं आइसोनेक्स फोर्ट टेक्लेट (इमेक्स)। यह आसोनियाजाइड हैं जो क्रमणः १०० और ३०० मि. ग्राम में प्राप्य है।

माना वयंस्क-३०० मि. ग्राम की फोर्ट टेक्लेट १ वार या १०० मि. ग्राम की १ टेक्लेट × ३ वार । वहीं को -२-१ मि. ग्राम प्रति कि. ग्राम । प्रति दिन इसे आवण्यकतानुसार १ वर्ष या हेढ़ वर्ष तक देते हैं। समकक्ष -नाइड्राजाइट -साराभाई के मिकल्स

पेलाजाइड - ग्लैक्सो

एल्जाइड—एलेम्बिक थेमिजाइड—थेमिस

रे. मायाम्ब्युटोल टेवलेट - यह इथाम्ब्युटोल (Etha-mbutol) है जिसे लेडरले ने उपरोक्त नाम से पेटेन्ट किया है। यह २०० एवं ४०० मि. ग्राम के टेवलेट के रूप में प्राप्य है।

माला - २५ मि. ग्राम प्रति कि. ग्राम प्रतिदिन की मात्रा। १ खुराक के रूप में × २ महीने तक, वाद में १५ मि. ग्राम। प्रति कि. ग्राम। प्रति दिन की मात्रा १ खुराक के रूप में × ६ महीने तक।

(१) विटामिन्स के योग क पसूल एवं पेय (सीरप) के रूप में प्रयोग करायें।

. वृक्कधात (Renal Failure) तीव वृक्कधात—

इन्जेवशन मैनीटोल—इसे अन्य कई कम्पतियों के साथ-साथ यूनीक म कम्पनी तैयार करती है। २४० मि. ली. (२-३,मि. ली. प्रति कि. ग्राम शारीरिक वजन के अनुसार) ३० मिनट में शिरामार्ग से बून्दपात विधि द्वारा।

लैसिक्स इन्जेक्शन हेक्स्ट २० मिलीग्राम प्रति किलो ग्राम शिरो मार्ग द्वारा २०० मिली लीटर ५ % डेक्स्ट्रोज सोल्युशन में मिलाकर।

जीर्ण वृक्कघात-

लैसिक्स — वें (१००० मिलीग्राम तक दिया जा सकता है)।

आपातकालीन उपाय-

१०% के लिशयम सैन्डोज—१० मिली लिटर-शिरा मागं में देने के बाद डेक्स्ट्रोज १० प्रतिशत या ५ प्रतिशत ३०० मिली लिटर, सोडावाईकार्व—७५ प्रतिशत १०० मिली लिटर, ग्लुकोज ५० प्रतिशत १०० मिली लिटर, रेगुलर इन्सुलीन २० यूनिट्स । शिरा मार्ग द्वारा बून्दपात विधि से ।

यदि अम्लमयता (Acidosis)—लक्षण—लतिसंवा-तन (Hyperventilation), मितली एवं वमन हो तव— सोटावाईकार्व पावहर ३ ग्राम । प्रतिदिन मुख द्वारा हैं। या सोटामिन्ट टेवलेट—४ टेवलेट × ३ वार दें।

न्य राजा चिकित्सा

् , बुबक जूल

इन्जेक्शन

[१] वारालान — हैक्स्ट (Hoechst) २-५ मि. ली. शिरा मार्ग द्वारा घीरे-२ इसे = घंटेपर दृहरावें। या

एवाफोर्टन (खण्डेलवाल लैंब्स)—३ मि. ली. शिरा मार्गे द्वारा घीरे-घीरे। यदि दर्द (शूल) घातक रूप में हो—तो पैथीडिन १०० मि. गा. + सिक्विल १ मि. गा. टेबलेट + कैपसूल्स

[१] नियो ओवटीनम टेबलेट (वी. नोता) १ २ टेब. × २ ३ बार ।

[२] स्पाज्मो प्राक्सीभान कैपसूल (बोकाडँट)१ कैप × २ ३ वार ।

[३] एवाफोर्टन टेवलेट (खण्डेलवाल लैंग्स) १ से २ देवलेट २-३ वार।

[४] स्पाजमो सीवालजिन टेव.~१ टेव: × २-३ वार ।

[४] बारल्गन टेवलेट---२-२ गोली तीन वार ।

[६] वेलाडिनल- रिटार्ट १-१ गोली दो नार।

बृवक् हे संक्रमण

दलोक्सासिलिन-वायोकेम— यह बायोकेम फार्मा का व ना क्लोसासिलिन है, जिसे अन्य कम्पनियां भी तैयार करती है। यह कैपणूल, एवं ड्राईसील के रूप में प्राप्त है।

मात्रा—इन्जेक्शन—२५०. मि. ग्राम × प्रति ४ घंटे पर मांसपेशी या शिरामार्ग द्वारा इसे ५०० मि. ग्राम रे ६ घन्टे पर दे सकते हैं। वच्चों को —२५ मि. ग्राम। प्रति कि. शारीरिक वजन के अनुसार।

कैप.--१-२ कैप. प्रत्येक ४-६ घण्टे पर।

अन्य इन्जेवशन गारामाइसीन—सी.ई. बुलफोर्ड— समकक्ष-वायो गारासीन् (वायोकेम), जेन्टीसिन, निकोलसं लाइरामाइसीन (लाइका लैक्स) जेन्टास्पोरिन (पी.सी.आई) को ३ मि. ग्राम प्रति कि. ग्राम शारीरिक वजन के वनुः सार प्रतिदिन की खुराक को ३ बरावर भागों में बांट कर मांस में दें।

— डा. हरेन्द्रकुमार प्रवीण आर. सी. एम. एस. प्रकार प्रवास वाया मेजर गंज (सीतामड़ी) विहार

मूत्र रोगों की होमियो चिकित्सा

सक्षण है कि मूत्र करने के पहले और करते समय दर्द नहीं होता है, मूत्र समाप्त होते ही दर्द होता है। मूत्र को रखने पर सफेद रंग की वालू की तरह पदार्थ अमता है। .प्यरी और गुर्दे के दर्द में रोगी के रोग लक्षण गरम चीज खाने पर बढ़ जाते हैं पर गरम सेंक से आराम मिलता है।

असिमम कैनम ६,३०,२०० — इसका निर्माण तुलसी से होता है। मूलपय और गुर्दे की वीमारियों में इसका प्रयोग-होता है। यूरिक एसिड की प्रवृत्ति होवे, मूत्र में साल रंग की रेत की तरह का पदार्थ थावे, मूत्र में कस्तूरी की तरह की गन्ध आवे।

लाईकोपोडियम् ३०,२००,९००० — लाईकोपोडियम् पर २०० शक्ति देने से पथरी वनने की प्रवृत्ति हक जाती है। मूत्र में लाल रंग की तली जमती है। मूत्र करने के पहले कमर में ददं होता है पर मूल कर चुकने पर ठीक हो जाता है। मूल घीरे-२ जाता है और जोर लगाना पड़ता है। कभी कभी रुक भी जाता है। यह एक दीर्घ, कियाभीन दना है।

कल्केरिया कार्ट ३०,२०० — यह पथरी वनने की

— पृष्ठ ३१२ का शेषांश—

प्रवृत्ति को रोकती है और दर्द के समय भी लाभप्रद है।
आटिका इयूरेन्स Q—लाईकोपोडियम् से लाभ न
होने पर और रोनी के मूत्र में यूरिक एसिड मिलने पर
इसका प्रयोग करना चाहिए।

वार्वेरिस वलोरिस .Q-- मूत्र पथरी और गुर्वे के दर्वे में लाभप्रद है। १ ०-१० दुँद पानी में दो-तीन बार देवें।

क्षमा पाचना—मेरे साले पं लक्ष्मीनारायण जोशी की १५ अगस्त को, एवं ता. १४ नवबस्र को उनके पिता जी स्व. माधव प्रसाद जी जोशी की पुत्त शोक से दीपावली को रात १ उजे हार्टफेल होकर मृत्यु होगई। ता. २९ नवस्वर को मेरे पुत्र डा. काशीनाथ की पित्त के वड़े भाई कंचनपुर (सीकर) निवासी वैद्य मासीराम जी मिश्र का स्वर्गवास होगया। वह राजकीय चिकित्सालय में वैद्य ये। उपरोक्त तीनों दुर्घटनाओं के कारण में पाठकों की उचित सेव: नहीं कर सका। पाठक कृपया क्षमा करेगें।

— होमियो रतन डा. बनारसीदास दीक्षित एच.एम.€ी.एस. दीक्षित मैडीकल स्टोर्स, रक्सील (चम्पारण) बिहार

想可约何们是问题的感识的

शास्त्रीय एवं अनुभूत योग प्रकरण

(षट्य खण्ड)

मुन्य होग हुए..... श्वारम्परियाधीयाधीका श्वादाहरू कति, गिरियादी लाल मिश्र ए. एम. वी. एस. आयु. वाच.

आयुर्वेद शास्त्र में मूत्ररोगनाशक असंख्य महाघ्यं योग रत्न यत्र-तत्र विकीणं हैं जिनका संकलन चिकित्सकों के लिए परमोपादेय हैं। इनसे चिकित्सक अपने चिकित्सा चातुर्यं एवं प्रत्युत्पन्नमतित्व द्वारा योग कल्पना कर असाध्य रोगियों को रोगमुक्त करें। असंख्य योग रत्नों में से केवल ५०० प्रयोगों का संकलन यहां प्रस्तुत हैं

- [१] ओजोमेहान्तक रस (भैंप. रत्ना.)— प्रवाल भस्म २ तोल, संवर्णभस्स १ तोले, मुक्ताभस्म १ तोले, लौहभस्म शातपुटी १ तोले । इन्हें एकचं मिश्रित कर जल से घोटकर १-१ रत्ती की गोली बनावें । अनुपान-मधु । यह रस ओजो-मेह (Albuminuria) में लाभग्रद है।
- [२] कन्दर्प रस (भी. र.)— णुद्ध गारद, णुद्ध गन्धक, प्रवास भरम, स्वर्ण भरम, स्वर्ण भरम, स्वर्ण भरम, वैकान्त भरम, रीप्य भरम, शंख भरम और मुक्ता भरम इन ६ बीपिंधयों -

को समभाग लें। पहले पारद — गन्धक की कजाली करे फिर भेष भस्म आदि मिलाकर बड़ जटा अथवा बड़ की छाल के क्वाथ की ७ भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां बनालें। १-१ गोली को जिफला क्वाथ, गीतल मिर्च क्वाथ अर्जु नस्वक क्वाथ, व बब्बूल क्वाथ से दिन में ६ वार हैं। इसके सेवन से बीपसगिकमेह (सुजाक) व पूर्यमेह के कीटा- णुओं का नाथ होता है।

[३] कामधेनु रस (भै. र.)-शुद्ध गन्धक क्षौर आंवला चूर्ण दोनों को समयाग लेकर आंवला रस और समलमूसली के रस की ७.७ भावना देकर २-२ रत्ती की गोली वनार्ले।

माला-शंनुपान — १-२ गोली सुवह शाम दूध व मधु से सेवन करें। उपयोग-सभी प्रकार के प्रमेह, विशेषतः शुक्रमेह में विशेष उपयोगी है। वल वीर्य वर्द्धकं, कामोद्दीपक, ध्वज भंग नाणक उत्तम पौष्टिक रसायन है।

THE RULE TO CHE

[४] चन्द्रकला रस (सि. यो. सं.)-शुद्ध पारा, ताम्र-भरम, अभ्रक भरम ९-१ तोला, शुद्ध गन्धक र तोला, मोती पिण्टी २ तोले, कुटकी, गिलोयसत्व, पित्तपापड़ा, खस, छोटी पीपल, श्वेत चन्दन, अनन्तमूल, वंशलोचन-सबका कपड़छन चूर्ण १-१ तीले लेवें। प्रथम पारा गंधक की कजजली कर भस्म आदि द्रव्यों का मिश्रण करें तथा नाग्रमोथा, मीठा अनार, दूव, केवड़ा, कमल, सहदेई, शतावर, पित्तं पापड़ा इनके न्याय व जिनका स्वरस मिल सके उनका स्वरस बना प्रत्येक की 9-9 भावना और फिर मुनक्का की ७ भावनाएं देकर अन्त में १ तोले चन्द्रकला (कपूर) मिलाकर चने के बराबर गोलियां बनां छाया में सुखाकर शीशी में सुरक्षित रखलें । १-२ गोली सुबह-शाम अनार रस, उशीरासव व पानी से दें। मूत्रकृच्छू व मुताघात. में जलन के साथ थोड़ा-थोड़ा पेशाव होना, मूलनली में दाह तथा अन्तदिह, मूत्र में रक्त बाना झादि लक्षणों में अत्यन्त लाभदायक योग है। पित्त विकृति जन्य सभी विकारों, आन्तरिक एवं बाह्य दाह, रक्तचाप वृद्धि, भ्रम, मूच्छी, रक्त वमन, रक्ता-तिसार, रक्तप्रदर, रक्तपित्त में अनुपान भेद से परमो-पयोगी है। पैनिक प्रमेह में -- कालमेह, नीलमेह, हारिद्रमेह की सभी अवस्थाओं में यह अत्यन्त लाभदायक बहुश: परीक्षित योग रत्न है।

[१] चन्द्र कान्ति रस. (भी. र.)— शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अश्रकमस्म, रीप्थभस्म, शुद्ध हरिताल, कांस्य मस्म, लोह भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, स्वर्णभस्म—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग, वंग भस्म ६ भाग लेकर प्रथम पारा । गन्धक की कज्जली कर अन्य भस्मों की मिलाकर आमला स्वरस खंज्जालुं स्वरस, तथा आम छाल वड़ जटा सेमल छाल के क्वाथ एवं ज़ल्यी क्वाथ की ३-३ भावना देकर, पश्चात सुंखा कर जितना सब द्रव्यों का वजन हो उतना जायफल, लींग, नागरमोधा, दालचीनी, छोटी इलायची, जाविश्री ये प्रत्येक द्रव्य समभाग का चूर्ण मिलाकर पुनः बामला स्वरस की १ भावना देकर १-९ रत्ती की गोलियां बनालें। १-१ गोली आमला स्वरस के अनुपान से सुवह गाम सेवन करे। यह रसायन समस्त प्रकार के अमेहों में लाभवायक है। मुत्राधार्त, मुत्राध्मरी, मुत्रातिसार और मधुमेह आदि रोगों में करयन्त लाभवायक है।

[६] चन्द्रप्रभावटी (सि. यो. सं.)- कंपूर, वच, नागरमोथा, चिराणता, गिलोय, देवदारु, हल्दी, अंतीस, दारुहरूदी, पिपरामूल, चित्रकमूल-छाल, धनियाँ, हरड़, वहेड़ा, आंवला, चन्य, वायविडङ्ग, गजपीपल, छोटी पीपल, सोंठ. कालीमिरच, स्वणं माक्षिक भस्म, सज्जीखार, यव-क्षार; सेंधानमक, सींचर नमक, सांभर नमक, छोटी इला-यची के बीज, कवावचीनी, गोखरू और खेत चन्दन प्रत्येक ३-३ मारो, निशोथ दन्तीमूल, तेजपात, दालचीनी, वड़ी इलायची, व शलीचन प्रत्येक 9-9 तीले, लीह भस्म २ तीले मिश्री ४ तोला, शुद्ध शिलाजीत खीर शुद्ध गुगगूल ५-५ तोले। गुग्गुल, शिलाजीत, भस्में तथा काष्ठीपिधयों का कपड़छन चूर्ण मिलांकर गिलीय के स्वरस में ३ दिन मद्न कर ३-३ रत्ती की गोलियां वनाकर रखें। १-१ गोली सुवह शाम घारोष्ण दूध, विल्वपत्र गोखरू क्वाथ व दारु हल्दी नवाथ, गुरूची क्वाय व हल्दी स्वरसं से रोगा-नुसार देवें। विस्तृत विवर्ण पृष्ठ १६५ पर देखें।

[७] चन्द्रकला वटी (सि॰यो॰सं॰)—छोटी इलायची के बीज, कपूर, शुद्ध शिलाजीत, आंवला, जायफल, केशर रसिंदूर, वंगमस्म और अन्नक मस्म सब समान भाग लें। प्रथम रसिंदूर को खरल में महीन पीस उसमें शिलाजीत और भस्में तथा अन्य द्रव्यों का कृषड्छन चूणें मिला गुरुची स्वरस और सेमलमूल में ३-३ दिन मर्वन कर ३-३ रत्ती को गोलियां बना, छाया में सुखाकर रखलें। ९-२ गोली, गो दुग्ध व प्रमेह नाशक ववाथ से सुबह-शाम वें। बीसों प्रकार के प्रमेहों में उपयोगी है। विशेषतः शुक्रमेह और स्वप्नदोप में अत्यन्त लाभदायक पौष्टिक बल धीर्यन्वधंक रसायन है।

[द] चन्दनादि वटी—श्वेत चन्दन का बुरादा, छोटी इलायची के बीज, कुबाव चीनी, सफेद राल, गन्धाविरीजा सत्व, कत्था और आमला प्रत्येक ४-४ तोले, गेरू दो तोले और कपूर १ तोले लें, कपड़छन चूर्ण लेकर उसमें रसौत ४ तोला तथा चन्दन तेल १५ मि०लिं मिलाकर घोटकर ३-३ रत्ती की गोलियां बनालें। २-४ गोली दिन में ३-४ बार ठण्डे पानी, दूध की लस्सी, व डाभ से दें। मूत्रकृष्ण्य में इसका प्रयोग मूत्र सोफ और खुलकर लाने के लिये किया जाता है। सुजाक की प्रारम्भिक अवस्था में मूत्रनली में सुरसुराहट और खुललाहद होकर मूत्र मार्ग से भयक्कर

नुमा रोवा सिक्टिसा

यन्त्रणा के साथ मत्राद आने, लगता है। ऐसी स्थिति में इसका प्रयोग अत्यन्त लाभगद है।

[8] तारकेश्वर रस (भी. र.)-रससिंदूर, लीह भस्म, वंग मस्म, अध्यकभस्म सबको समान भाग लेकर प्रथम रस सिन्दूर को खरल में घोटकर अन्य भस्में मिलाकर खूब मर्दन कर मधु में घोट कर २.२ रत्ती की गोलियां बनालें। १-१ गोली सुबह भाम मधु से या गूलरफल चूणं + मधु से दें। बहुमूत्र में लाभदायक योग है।

[१०] ताल केश्वर रस (भी र) ज्या हरताल, या. पारद, या. गन्धक, लीह भरम, अध्यक भरम, वंग भरम इन्हें समभाग लेकर मंदन कर मधु की सहायता की २-२ रत्ती की गोलियां वनालें। १-२ रत्ती सुबह थाम पद्मत्वालर चूर्ण २ तोले के साथ मधु से। यह योग बहुमूत्र में अत्यन्त लाभदायक है। पौरुषप्रनिथ शोध तथा तज्जन्य बहुमूत्र में विशेष उपयोगी है।

[११] तिविक्रम रस (भी. र.)—ताम्र भस्म २० तोले को बकरी के २० तोले दूध में मन्दाग्ति पर पकार्वे। जब सब दूध सूख जाय तब २० तोले पारा और २० तोले गन्धक की कज्जली बना, सबको मिला कर निगुँण्डी पन स्वरस की भावना देकर गोला बना सुखाकर सम्पुट में बन्द कर बालुका यन्त्र में १ पहर तीन्नाग्ति देकर पकार्वे। जब स्वांग शीतल हो जाय तो शौपिध को निकाल पीस कर रख लेवें। १-२ रत्ती सुबह शाम मधु से दें ऊपर से विजोरा नीम्बू मूल क्वाथ पिलार्वे या हरड़, बहेड़ा, पापाण भेद, धमासा, धनिया, गोखरू, ककड़ी बीज मगज क्वाथ से दें। मूत्राश्मरी में अत्यन्त लाभदायक है। त्रिविकम रस लेने से यदि वेचैनी हो तो नीवू की शिकञ्जी बनाकर पिलावें तथा इस रस के सेवन करने पर १ घण्टे तक गर्मे चार या गर्मे दूध नहीं लेना चाहिए।

[१२] पञ्चानन रस (भै र.) - पारद, गन्धर्क, लौह भस्म, अभ्रक, प्रत्येक १-१ तोले, वंगभस्म द तोले एकत्र कर मिलाकर मधु के साथ घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां घनालें। १-२ गोली शीवल जल से प्रातः साय सेवन करें। सम्पूर्ण प्रमेह, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ तथा अश्मरी प्रभृति रोग इसके सेवन से नष्ट होते हैं।

[१३] पाषाण भिन्न रस (भी. र.) — शुद्ध पारद एक विले, शुद्ध गन्धक दो तोले की कज्जली बनाकर शिला-

जीत एक तोले मिलाकर श्वेत पुनर्नेदा, वासा तथा श्वेत विष्णुकांता के रस से पृष्टक पृथक २-२ दिन मर्दन करें। पश्चात् इसे एक पात्र में रख दूसरे पात्र के बाहर कपड़-मिट्टी कर पहले पात्र को दोलायन्त्र की तरह इसमें लटका दें और नीचे से आग दें। इस प्रकार शुष्क ताप द्वारा वह और भी शुष्क हो जायेगा। सुवह शाम २-२ रत्ती कुलथी के न्त्राथ से सेवन करावें। यह अश्मरी नाशक योग है।

[१४] पापाण भेदी रस (र. र. स.)—शुद्ध पारद १० तोले और शुद्ध गन्धक २० तोले की कज्जली बनाकर फिर एवेत पुनर्नवा, रक्तपुनर्नवा, नासा और सफेद कोपल (गोकणीं) के स्वरस से ३-३ दिन मर्दन कर गोला बना सुखा कर सराव सम्पुट में सम्पुटित करके भाण्डपुट (एक बड़ी हांडी के चारों तरफ छिद्र कर घान की भूसी भर उसके बीच सराब-सम्पुट कर अग्नि दे) देवें। स्वांग णीत होने पर निकाल ले। २-४ रत्ती प्रातः काल एक समय ही मधु से दे ऊपर से पपीता और कुलथी का यूप पिलावे, सायंकाल भी पपीता और कुलथी का व्यूप पिलावे। अष्मरी नाशक योग है। धैयँपूर्वंक १-२ मास सेवन करने से मूत्राशय की असाध्य पथरी भी दूट-हुट कर निकल जाती है।

[१५] पाषाण बज्र रस (भी.र.)—बिशुद्ध पारद एक भाग, गन्छक दो भाग की कज्जली बनाकर श्वेत पुन-नीवा के रस से १ दिन मर्चन कर—सूधर यन्त्र में १२ घंटे पाक करे। स्वांग शीत होने पर खरल करके रखें। २-४ रत्ती सुबह शाम मधु से लेकर कुलथी का क्वांच पीने।

अश्मरी को भेदन करने एवं उसकी उत्पत्ति को रोकने के लिये इसका प्रयोग करते हैं। वृक्क शूल में भी उपयोगी है। इससे यक्तंत पित्त की रचना सुघरती है अत: 'वमन और आमाश्य की उष्णता भी इससे शान्त होती है।

[१६] प्रमेह कुञ्जर केणरी (र. यो. स.)—सुयणं भस्म १ तोले, जसदशस्म २ तोले, लौह भस्म ३ तोले, जश्चक भस्म ४ तोले तथा वंग भस्म, रससिंद्र और अमृता सत्व ४-४ तोले लें। सबको मिलाकर सफेद मूसली क्वाय केले के स्तम्भ के रस, सेमल की छाल के क्वाय जौर गोखरू क्वाथ, इनकी ३-३ भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां तना कर रखलें। १-२ गोली सुबह शाम मधु से देकर

ज्यर से आंवले और गोखरू का क्वाथ पिलावे। अतिजीणं प्रमेह रोगों में भी यह रसायन आणुफलप्रद है। अष्मरी में इसके सेवन के साथ विजीरे की जड़ गर्म करके शीतल किये हुए जल में घिस कर पिलाये।

. [१७] प्रमेहान्तक रस (र. यो. सा.) -- वंग भस्म, नागभरेम शतपुटी, अञ्चक भरम, लोह भरम, कांतलौह भस्म, रससिद्र, ताम्रभस्म, तीक्ष्ण लीहभस्म, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध गन्धक, सोहागे का फूला और जसद भस्म इन १२ सीषधियों को १-१ तोले प्रमाण में लेके खरल में महीन पीस कर हंसराज रस में ३ दिन खरल कर मुखावे। फिर क्षातशी भीशी में भरके वालुका यन्त्र में रख कर ६ घण्टे अग्नि देने से औषिव पक कर एक पिण्ड वन जायेगा। इसे स्वांगशीतल होने पर निकाल कर पीस लेवे पश्चात् उसमें कपूर, वेशर, दालचीनी, नागकेशर, नेजपात, छोटी इडायची मिला के मदन कर कंड्रोपान (विम्वी पत्र) के स्वरस में ३ दिन खरल कर २-२ रत्ती को गोलियां बना कर सुखा लेवे। १-२ गोली मधु अथवा मक्खन मिश्री के साथ सेवन करे के यह रसायन सव प्रकार के प्रमेहों को नण्ट करता है। मधुमेह और इक्षुमेह पर भी यह सफलता पूर्वक प्रयुक्त होता है। काम शक्ति वर्धक, दैलवीर्य-वर्धक कान्तिदायक दिव्य रसायन है।

[१८] प्रमेह सेतु (भी. र.) - रससिदूर, अश्रक भस्म, इन्हें एक प्रमित्र कर वड़ के दूध से दो प्रहर मर्दन कर मूपा में वन्द कर रखलें। २-२ रती सुवह-शाम जिक्का क्वाय तया मधु से दें।

[१६] पुनर्नवा, निशोय, सीठं, पीपल, मिचं, दायविडङ्ग, देवदार, चिन्रक, पोहकर मूल, हल्दी, दार हल्दी,
दन्तीमूल, हरें, बहेड़ा आंवला, चन्य, इन्द्र जी, कुटकी,
पीपलामूल और नागरमोधा १-१ तोले लेकर कृट छान
चूर्ण कर रख़र्ने तथा शुद्ध मंण्डूर ४० तोले लेकर अठगुने
गोनूत्र में पकाकर पुनर्नवा आदि के चूर्ण का प्रक्षेप देकर
घोटकर ३-३ रत्ती की गोलियां बना सुरक्षित रखें। २-२
गोली सुबह शाम गोमूत्र व त्रिफला क्वाथ से हें। मूत्र
विकारों मूत्र विपमयता में उपयोगी योग है। वृक्तों की
कियाशीलता को बढ़ा कर अपने मूलल गुण के कारण
मूल रोग जन्य विकारों यथा शोध रोग में नमक का त्याग
कर इसका सेवन करने से शीझ लाभ होता है रक्त कणों

की वृद्धि करता है।

[२०] बहुमूत्रान्तक रस (र च.) - रस ितृदूर, छोहुमस्म, वंग सस्म, अफीम सार, गूलर के बीज, वेलध्वल और पीली चमेली के फूल इन ७ औपिंघयों को समभाग मिला के गूलर के फूलों के रस में ३ दिन खरल करके आधी आधी रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रो-अनुपात- १-२ गोली सुब्ह गाम गूलर के फलों के रस या नारियल के जल से दें। यहं बहुमूत्रांतक रस बहुमूत्र (उदक्षेह) और उससे उत्पन्न तृषाधिक्य अधि सब उपद्रवों को दूर करता है। यह अहिफेन प्रधान योग है।

विशेष— अफीमयुक्त होने के कारण को ठवढताकारक है अतः रोगी को मलाबरोध न हो इसका घ्यान रखे। मलावरोध को दूर करने के लिये सनाय व छोटी हरड़ का चूर्ण व इनका क्वाय य पंचसकार चूर्ण आदि से विरेचन करना चाहिये।

(२१) बहुमूबद्य रस् (सिद्ध भी. म.)-वीजवन्द, तालमखाना, मुतहठी सत्वे, वशलोचन शुद्ध विरोजा, सालम मिश्री, शुक्ति भरगे, प्रवाल भरम, बहेड़े की गिरी, हरड़ की गिरी, शुद्ध शिलाजीत, छोटी इलायची के दाने जीर वंगभस्म इन १३ शौषधियों को समभाग लें । काटी-पिंघयों का चूर्ण कर सदको मधु से तीन घण्टे तक स्वरस करके १-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। ४-४ गोली दिन में तीन बार पानी से देना चाहिये। बहुमूत्र को दूर फरता है। सुज।क या अन्य हेतु रो भूच प्रसेक्श निका में प्रदांह हो जाने पर मूत्र ब्रँद बार बार आता रहता है ऐसी स्थिति में इसका प्रयोग उत्तम लामदायक है। जीर्ण रोगों में कुछ दिनों तक धैर्यपूर्वक सेवन करना चाहिये। मधुमेहजन्य बहुमूत्र व उदकमेह में यह विशेष उपकारी नहीं है उसके लिये तो यक्कत् पर कार्यकारी तृषाणामक पृणयुक्त तथा वातसंस्थान सोम की शामक सौपधि के रूप में सफीमयुक्त वहुमूत्रान्तक रस ही हितावह है।

(२२) वृहत् वगेश्वर रस (भी. र:)—वंग भस्म, चांदी भस्म, कपूर, अभ्रक भस्म ९-१ तोले, कज्जली २ तोले, स्वर्ण भस्म और मोती भस्म तीन तीन सामा ले; सबकी भांगरे के रस में खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां वना लें। सावा-अनुपान-११ गोली सुबह शाम गाय या वकी के दूध से संवन करें।

उपयोग—नये पुराने सब प्रकार के प्रमेह, मूलकृच्छ्र, बहुमूल, मूत्रातिसार, टट्टी, पेशाब के रास्ते बीयं जाना, स्बप्नदोष और बीयं विकार तथा शुक्रक्षयजन्य मन्दाग्नि, प्रहणी, रनतित्त आदि में परमोपयोगी तथा आयुर्वेद का सुप्रसिद्ध थोग है। स्वप्नदोष में शुद्ध शिलाजीत के साथ देने से उत्तरोत्तर धातुए पुष्ट हो जाती हैं।

(२३) बृहत्सीमनाथ रस (र. सा. सं.)—हिगुलोत्थ पारद को पारिभद्र रस में (नीमपत्र स्वरस) ७ दिन मर्दन करें। गंधक को मूपाकानी के रस में ७ बार शुद्ध करें फिर दोनों को ४-४ तोले लेकर कज़्जली करें। उसमें द तोले लीह भरम मिलाकर १ दिन घी ग्वार के रस में खरल करें, फिर अञ्चक शस्म, बंग शस्म, रज़त भस्म, शुद्ध खर्पर (ससद भस्म), रहणें माक्षिक भस्म और स्वर्ण भस्म दो—दो तोले मिलाकर १ दिन घी क्वार के रस में सथा १ दिन बाह्मी स्वरस में मद्देन कर १-१ रत्ती की गोलियां बनाकर रखें।

मात्रा-अनुपान-एफ-दो गोली एहद, पनका केला व आंवला के स्वरस से सुबह लाग देवें।

गुण-उपयोग-समस्त प्रकार के सोमरोग, बीयंबोध, बीसों प्रकार के प्रमेहों को नब्द करता है। बहुनूप्र, मृत्रा-तिसार, मूत्रकुच्छू, मधुमेह, हस्तिमेह, इस्नुमेह और लाला-मेह आदि सब प्रमेहों को हूर करता है। सोमरोग की उत्पत्ति मूलासय प्रवाह होने पर होती है और यह प्रयोग मूत्रा संस्थान के रोगों को नाश करने में प्रशस्त है। यह रस यकृत् और अन्याशय कि लिये शक्तिवढंक होने से इसका उपयोग मधुमेह और इस्नुमेह में शकर कम कराने में उत्तम है।

(२४) मधुमेह नाशिनी गृहिका (रंसामृत)—हिवंग भस्म ४ तोले, गृहमार पत्ती १२ तोले, छाया में सुदाई हुई नीम की पत्ती १२ तोले, शु० शिलाजीत २४ तोले, जामुन मींगी चूणें १२ तोले लेकर प्रथम चूणें करने योग्य द्रव्यों का चूणें कर गूलर पत्र स्वरस, गिलोय स्वरस और विजयशार के मनाथ की १-१ भावना देकर मटर समान (३-३ रत्तो) गोलियां बनालें। इसमें यदि १ तोला स्वर्णे भस्म डाली जाय तो यह विशेष गुणकारी बनतीं है। २-३ गोली दिन में २-३ बार करेला स्वरसंव गुरुची स्वरस, तथा आंवला स्वरस या जिल्व पत्र स्वरसं तथा विजयसार नवाथ से सेवनीय है। मधुमेह नाशक उत्तम द्रव्यों से निर्मित प्रस्तृत योग निश्चय ही मधुमेह रोग में आधुगुण-कारी है। नवीन मधुमेह में कुछ दिनों तक पथ्यपूर्वक लेने पर शीघ्र लाभ होता है। इन्सुलीन की लम्बी चिकित्सा लेकर भी निराश हुए रोगी इस प्रयोग का सेवन कर रोग-मुक्त हुए हैं।

[२४] मधुमेह दर्पहारी (औ. गु. घ. मा.) — अंफीम, और गुद्ध शिलाजीत समप्रमाण में भिलाकर अदरख स्वरस की २१ भावना देकर, आधी-आधी रत्ती 'की गोलियां बनायें। १-१ गोली दिनमें १-२ बार धारोज्ण दूध, गुड़-मार अर्क व जल से वें। यह योग इक्षुमेह और मधुमेह में मूत के साथ जाने वाली शकरा को शीझ कम करता है। इसके प्रयोग है थोड़े ही दिनों में तृषा का- ह्रास होने लगतां है जिससे मूत्र का परिमाण कम हो जाता है। क्वचित किसी विलक्षण मानसिक आघात-चोरी डकैती, धरिनं प्रकोप, व्यापार में हाति, कर्ज, मानहानि आदि कारणों से हुए मधुमेह पर यह आण्गुणकारी है। आणु-गणकारिता में यह निश्चय ही इन्स्लिन का प्रतिद्वन्दी है पर धकीम युक्त होने से इसका व्यसन होने की भीति है अतं: शल्य मात्रा में ही प्रयोग करना चाहिए तथा कव्ज है रोगियों को तथा जिन के रुधिर में शर्करां की मात्रा अत्य-धिक वढ़ नयी हो और मूच की मात्रान्यून हो उन्हें नहीं देना चाहिए।

[२६] माहेंच्यर वटी (मैं. र) - विशेष विवरण पीछे श्री महेक्वर प्रसाद जमाणंकर के लेख में देखें।

[२७] मूलकुन्छान्तक रस (र. सा. सं.)— मुद्ध पारा,
मुद्ध गन्धक और यवक्षार-प्रत्येक समान भाग लेकर, पहले
पारद-गन्धक की कज्जली बनाकर फिर यवक्षार डालकर
खरलकर सुरक्षित रखें। २-४ रत्ती दृध की लस्सी, डाभ
पानी, व मिश्री मिश्रित जल से दें। गभी प्रकार के मूशकृन्छ और मूल विकारों को नष्ट कर गूल प्रवर्तन करता
है। मूत्राधात, अध्मरी, वृक्कशूल, विस्तिशूल, तूनी-प्रतितूनी
शकरा-सिकता, शांत्र वृद्धि को लस्सी व ठण्डे पानी से व फलों
के रस से लेने पर मूल साफ होने लगता है।

[२८] मूत्रकृच्छ्हर (भी. र.)—पारद भस्म १ रत्ती को विदारीकन्द, गोखरू, मुलहठी, नाग केशर के नवाथ में मधु मिलाकर — इसके साथ देने से मूत्रकृच्छ्र नाशक है। विशेषतः पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र नाश करता है। एक सप्ताह में पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र का नाग करता है।

[२६] मेघनाद रस (भी. र.)—रसिंस रूर, कान्तली ह-भस्म, अश्रक भस्म, शिलाजीत, स्वर्ण माक्षिक भस्म, मनः शिला, त्रिक्टु, त्रिफला, बङ्कोठ, जीरा, कार्पास बीज (विनीले), हत्दी चूर्ण सबको समानभाग मदन कर चित्रक क्वाथ से २० भावना देकर २-२ रसी की गोलियां बना कर रख लें। १-१ मोली सुबह-शाम मधु से देने पर सभी प्रकार के प्रमेहों का नाश करता है।

[३०] मेहकुतान्तक (की. र.)—वंग भस्म, अभ्रक, पारद, गन्धक चिरायता, पिप्पलीसूल, विकटु, विकला निज्ञीत रसीत, वायविडङ्ग, मोथा, विल्वफल यज्जा, गोखल वीज, अनारदाना प्रत्येक १-१ तोले, णिलाजीत द तोले। पहले शुद्ध पारद । शुद्ध गन्धक की कज्जली वनाकर भस्मों को मिलाकर काप्ठीयधियों का महीन वूर्ण मिलाकर इन्द्रायण मूल के रस से मदन कर १-२ रती की गोलियाँ वनावें। २-३ गोली सुबह-शाम वकरी का दूध, सामलकी स्वरस व जल से दें। इस योग से प्रमेह, मूचकृच्छ, अश्मरी, हलीमक, कामला, पांडु मूत्राधात और खर्चित प्रभृति रोग नष्ट होते हैं।

[३९] मेह केशरी रस (भी. र.)—वंग भस्म, स्वर्ण भस्म, लौहभस्म, हससिंदूर, मुक्ता भस्म, दालचीनी, छोटी इलायनी, तेजपत्र, नागकेशर, इन्हें समभाग में मिश्रित कर घीनवार के रस की भावना देकर २-२ रत्ती की वटी बनावें। ५-२ गोली सुबह-शाम दूध से सेवन करावें। यह प्रमेह रोगों में साश्रुगुणकारी सफल योग है। जिस प्रकार सिंह हाथी को मारता है उसी तरह यह योग शुक्रमेह को जीन दिन में नष्ट करता है।

[३२] मेह बज्ज (भी. र)—रसिंस्ट्र, कान्तलीह भरम, शिलाजीत, स्वर्णमाक्षिक भरम, मनःशिला विकटु त्रिफला, बेल का गूदा, जीरा, कैथ, हल्दी चूर्ण इन्हें समभाग निश्चित कर भृगराज स्वरस की ३० भावना देकर ३-: रत्ती की गोलियां बनालें। १-२ गोली वकायन वीज १ माशा, तण्डुलोदक-२ तोले, भी २ माशे. से देवें। इस

रस के सेवन से सभी प्रकार के प्रमेह और मूत्रकृष्ण रोग नण्ट होते हैं।

[३३] मेहमुंद्गर रस (भी. र.) - रसीत, विडनमक, देवदारु, वेलगिरी, गोखरु, यनार की छाल, चिरायता, पीपरामुल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हुरड़ ्वहेड़ा, आमला और निसोत इन ९६ थौपिंघयों को ९-१ तोले, लोहभस्म १५ तोले और गुद्ध गुग्गुल ४ तोले लेकर काष्ठीपिधयों के चुणे में भस्म और गुग्गुल मिलाकर खुव घोटकर तथा आव-श्यतानुसार (गोली वनने लायक) घी मिलाकर ३-३ रत्ती की गीलियां वनालें। ९-१ गोली प्रात सायं वकरी दूध अथवा जल से तेवन करावें। यह रसायन २० प्रकार के प्रमेहरोग और पेशाद के साथ वीयं जाना तथा स्वप्नदोप और वीयं सम्बन्धी सभी विकार नष्ट होते हैं। मूलाघात कीर मुत्रकृष्ठ् में भी यह योग फायदेमन्द है। कामला, पांडु, हलीमक, अरुचि, अर्थ, कुष्ठ, धातुगत ज्वर, रक्तपित्त, गहणी, बाम दोप आदि रोग भी इसके सेवन से नष्ट होते हैं। प्रमेह रोग वालों को पांडु और अर्थ विकार हो तय यह रसायन अच्छा लाभ पहुंचाता है।

[३४] मेहानल (भी. र.) रससिन्दूर तथा बंगभस्म १-१ रती सद्यु से चटावें तो नवीन पुरातन प्रमेह नष्ट होते हैं। मधु से चाटकर ऊपर से गुञ्जामूल बनाय व दूध पिलाना चाहिए।

[३४] योगीश्वर रस (भी र.) — रसिसन्दूर, अश्रक भरम, नाग भरम प्रत्येक १ भाग, वकायन बीज ३ भाग, इन्हें मिश्रित कर २-२ रसी की मान्ना में, हल्दी चूर्ण ३ मासे तथा मधु से सेवन करने से सम्पूर्ण प्रमेह-नष्ट होते हैं।

[३६] लौह जिलाजतु वटी—शुद्ध शिलाजीत द तोले, लौह भस्म २ तोले, अभ्रक भस्म १ तोले, बंगभस्म ६ माशे ले, तीनों भस्मों को खरल कर जिलाजीत मिलाकर घोट १-१ रत्ती की गोलियां बनालें। १-२ गोली दिन में दो वार सुबह गाम दूध से देनी चाहिए। इस वटी का धैंय पूर्वक १-२ माह तक सेवन करने से प्रमेह—शुक्रसाव स्वप्नदोप, पांडु रोग, अग्निमांच कादि दिकार ठीक होते हैं। घचपन के कुटेवों से ग्रसित नवगुवकों के इन्द्रिय गैंपिल्य और वीर्य दौर्यल्य विकार इस से दूर होते हैं।

[३७] वरुणाद्यलीह (भी .र.) - वरुणछांल और

आवला ५, ६ तो हो, धाय के फूल ४ तो ले, हर्र २ तो ले, पृष्तपर्णी १ तो ले, इनको चूर्ण कर लो ह भस्म १ तो ले और अभ्रक भस्म १ तो ले मिलाकर खरल कर सुरक्षित रखें। -२ माणा सुबह शाम अश्मरी में यबक्षार आधा तो ला तथा कुलथी क्वाथ से, मूत्राघात, मूलकृच्छ्र में गोख ल कुलथी क्वाथ तथा सुजाक में दूध या दही की लस्सी या डाभ जल से दें। मूत्रल एवं अश्मरीभंजक प्रसिद्ध योग है जो पेशाब की नली में गड़बड़ी हो जा ने अथवा पयरी या अन्य किसी कारण से पेशाव कक जाने, जित्त अनुपान से देने पर पथरी को टुकड़े टुकड़े कर पेशाब साथ आसानी से निकाल देता। अश्मरी मूत्रकृच्छ्र और सूजांक आदि रोगों में पेशाब न होने के कारण असहा वेदना होने पर इसके सेवन से शी ब्र लाभ होता है। इसके साथ हजकलयहूद भस्म मिलाकर दी जाय तो अश्मरी में विशेष लाभदायक है।

[३ =] वसन्तकुसुमाकर रस (सि. यो. सं.)—प्रवाल भरम या पिट्टी, चन्द्रोदय या रस सिंदूर, मोती पिट्टी, अभ्रक भरम प्रत्येक ४-४ तोले, रौट्य (चांदी) भरम, स्वर्ण भरम २-२ तोले, लौह अस्म, नागभरम, वंग भरम प्रत्येक ३-३ तोले लेकर खरला में डालकर वांसा पत्र स्वरस, हल्दी स्वरस, गन्ने का रस, कमल के फूलों का रस, मालती के फूलों का रस, णतावरी स्वरस केले के कन्द्र का स्वरस और चन्द्रन क्वाथ की ७-७ भावना देकर अन्त में कस्तूरी दो तोले मिलाकर ३ घन्टे मर्द्रन कर १-१ रत्ती की गोलियां बना कर छाया में सुखालें। इसमें दो तोले अम्बर मिलाना विशेष गुणकारी है।

विशेष विवरण पृष्ठ १=१ पर के लेख में देखें।

[३६] वैकान्त वसन्तकुसुमाकर (आ॰ सं॰)—वैक्रांत भस्म १ तोले, सुवर्ण भस्म, अभ्रक भस्म, मुक्तापिण्टी और प्रवाल पिष्टी दो दो तोले, वंग भस्म ३ तोले और रस सिन्दूर ४ तोले लेवें, सबको खरलकर नीवू के रस, गोदुग्ध खस के क्वाध, वासामूल क्वाय और ईख के रस की क्रमशः ७-७ भावनाएं देकर १-१ रस्ती की गोलियां बनालेकें। १-२ गोली शह्द या रोगानुसार अनुपान से देवें। यह योग मूवातिसार, प्रमेह, सूत्राघात, अग्मरी में परमोपयोगी हैं। जिस उदक्मेह (बहुमूत्र) पीड़ित रोगी को अफीम का सेवन नहीं करा सकते, उसे बहुमूत्रान्तक रस या हेमनाथ रस

नहीं दे सकते उसे वृषक क्रिया नियमित होने पर यह दिया जाता है जिससे सेन्द्रिय विष को नष्ट कर रोग को दूरकर देता है और मूत्राशय प्रदाह तथा मूत्रातिसार को नष्ट कर देता है। यह योग तृषा, दाह, तालुशोप, श्वास, क्षय, कशता को दूर कर दल्य, वृष्य रसायन गुण की प्राप्ति कराता है।

[४०] वेदविद्या रस (भी. र.)—रसिसन्दूर १ भाग, अभूक भरम एक भाग, कान्त लीह भरम एक भाग, सांखिक भरम एक भाग, इन्हें दिन भर ब्राह्मी के रस से मदंन कर यथाविधि बालुका यन्त्र में पाक करें। पश्चात् औपध को बाहर निकाल खरल में बारीक पीसलें और इसमें अभ्रक भरम, शिलाजीत, स्वर्ण माक्षिक भरम, मण्डूर वैक्रान्त भरम तथा कसीस भरम प्रत्येक १-१ भाग मिश्रित करें। तदन्तर मोथा, लाल चन्दन, सुपारी, नारियल की जड़, कैथ, हल्दी, प्रत्येक उपर्युक्त मिश्रित चूर्ण के समान मिला कर जम्बीरी के रस से दो प्रहर मदंन कर गोली वंनावें। ४ रनी, अनुपान—आंवले का रस, गिलोय का रस या शहद। यह सभी प्रकार के प्रमेह में गुणकारी है।

[४१] बंगेश्वर रस (भी. र.)—वंग मस्म, कान्तलीह भस्म, अश्रक भस्म, नाग केशर चूर्ण प्रत्येक १-१ भाग लेकुर खरल कर ग्वारपाठा स्वरस की ७ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियां वना लें। १-२ गोली सुवह शाम मबू से। यह रसायन सभी प्रकार के प्रमेह रोग में उपयोगी है। इसके सेवन से उदक्षमेह, मूत्रातिसार, मूत्रकृच्छ्र, मधु-मेह, क्षय, कास कुष्ठ पांडु, हलीमक, शूला, श्वास, हिचकी, अग्निमान्द्य, अरुचि का नाश होता है। सर्दियों में शिला जीत के साथ मिलाकर वीर्य वृद्धि हेतु इसका सेवन किया जाता है। धातु क्षीणता, स्वप्नदोप या वहुमूत्र में वहुप्रच-लात सुप्रसिद्ध योग है।

[४२] वृवकणूलान्तक वटी (सि॰ यो॰ सं॰)-काला-नमक, सज्जीखार, नौसादर, यवक्षार सोहागे का फूला; होंग, अकरकरा और पिपरमेंट, इन बाठ औपधियों को समभाग लें। पिपरमेंट को छोड़कर शेप औपधियों के चूर्ण को घृतकुमारी के रस में खरल करें। फिर पीपरमेंट मिला के ४-१० मिनट खरल कर ४-४ रत्ती की गोलियां बना वोतल में सोडवाई कार्व के भीतर डालते जायें, बोतल में सोडा लगने से गोलियां सूख जायेंगी। चीड़ें मुंह की शीशी में सोडा पहले से डाल लें। यह गोलियां कुछ गीली सी

An significations.

रहती है व वर्षा आदि की नमी से गीली सी हो जाती हैं। अतः मशीन से गोली वनाना हो तो विना भावना दिये भी गोली बनाई जा सकती हैं। वृक्क शूल में यह गोली यथा नाम तथा गुण है। वृक्क शूल की असह्य वेदना में यह तत्काल गूल का नाश कर अमृत के समान लाभ करती है। वृक्क में फंसी अश्मरी को तोड़-तोड़ कर एक सप्ताह में निकाल देती है। मूत्रल, स्वेदल और मूत्र मार्ग अवरोध हर है, यकृत्शूल, पौरुपग्रन्थि शोध, लिंग शूल, वस्ति शूल और तज्जन्य वमन को भी दूर करती है। सामान्य औषिध होते हुए भी आश्चर्यं जनक लाभ पहुँचाती है। अश्मरी के रोगियों को शल्य किया कराने से पूर्व इसका प्रयोग अवश्य कर के देखना चाहिए। तम्बाखू के व्यसनी को तम्बाखू छोड़ देनी चाहिये या कम कर देनी चाहिये।

[४३] शिलाजित्वादि लीह (भी.र.)—शुद्ध शिलाजीत,
मुलैठी, सोंठ, मिर्च, पीपल, स्वणं माक्षिक प्रत्येक द्रव्य
९-९ भाग, लीह भस्म सबके बरावर (६ भाग) लेकर
प्रथम काष्ठीपधियों का चूणं कर शिलाजीत और भस्में
मिली कर पानी के साथ मद्देन कुर २-२ रत्ती की गोलियां
बना सुखाकर सुरक्षित रखें। २-२ गोली सुबह शाम दूध
के साथ या उचित अनुपान से दें। बहुमूल और प्रमेह रोग
नाशक, बल, वणं, वीयं वर्धक उत्तम रसायन है। राजयक्ष्मा, रक्तक्षय, रक्ताल्पता, जीणं ज्वर, पांडुरोग, रक्त
पित्त नाशक है।

[४४] शिलाजित्वादिवटी (सि. यो. सं.)— त्रिबङ्ग ३ तोले, छाया में सुखाई हुई नीम की पत्ती तथा गृड़मार की पत्ती का चूण १०-१० तो. और शिलाजीत १५ तो.। प्रथम शिलाजीत और त्रिवंग भस्म मिला, अन्य चूण मिला ४-४ रत्ती की गोलियां बनावे। इस योग में आधा तोला स्वर्ण भस्म मिला, गोलियां बनावे से विशेष गुणकारी बनती है। ४-४ घण्टे से ३-३ गोलियां पानी या करेले के रस से देवें। मधुमेह, इक्षुमेह, बहुमूत्र में इस योग से उत्तम लाम होता है। मधुमेह में करेले के रस से देवे पर यह शीघ्र ही शर्करा पर नियन्त्रण करता है। मधुमेह एवं बहुमूत्र में बहुप्रचलित सुप्रसिद्ध योग है।

[४५] ध्वेत पर्पटी (सि.यो.) —कलमीशोरा ४० तोले, फिटकरी ५ तोला और नौसादर २॥ तोले लें सबका मोटा चूर्ण कर मिट्टी की हांडी में या कड़ाही में अग्नि पर प्कार्वे। जब सब एक हो द्रव (पतला)हो जाय तब जमीनपर गोबर विछा, ऊपर केले का गड़ा पत्ता रख कर उस पर हाल दें और तुरन्त ऊपर से केले का दूसरा पत्ता रख दबा दे। ठण्डा होने पर खरल में महीन चूर्ण कर के शीशी में भर कर रखें। १-९० रत्ती सुबह शाम ठण्डे प्रानी या कच्चे नारि-यल का पानी (डाभ) अथवा दूध या दही की लस्सी के अनुपान से दें। उत्तम मूलल, स्वेदल, वातानुलोमक योग है। मूत्रकृच्छ, मूत्राघात, मूत्र की उत्पत्ति कम होना, अम्ल-पिता, उदरश्ल और अश्मरी में इस्का प्रयोग अत्यन्त लाभ दाँदैक आगुफलप्रद है। मूत्र के साथ लवण, क्षार, अम्लादि पेशाव में घुलकर शरीर से मूत्र द्वारा बाहर निकलते रहते हैं। वृदकों की क्रियाशीलता में कमी आने पर ये द्पित पदार्थ मूत्र में शरीर के बाहर य निकल कर मूत विषमयता (यूरीमिया) उत्पन्न करते हैं। ऐसी स्थिति में श्वेतपपंटी के प्रयोग से मूत्र की माला वृद्धि होकर मूत्र के साथ शरीर के विजातीय पदार्थ बाहर निकल जाते हैं। सतः मूत्र विकारों को दूर करने और पेशाव साफ के लिये यह सुप्रसिद्ध योग है।

[४६] श्रंप्टादि वटी (सि. यो. सं) — तिफला म तोले, शुड गन्धक ४ तोले, हल्दी, गुडमार, कपूर, वंग भस्म निम्बत्वक, गुग्गुला बौर आंवला इन ७ औषधियों को २-२ तोले लेवें। इन सबको कूर कूट कर कपड़छान कर गुड़-मार, पान और गूलर की छाल के क्वाथ-की ७-७ भावना देकर ४-४ रती की गोलियां बनालें। पित्तक और कफल प्रमेह, मधुमेह और तज्जन्य प्रमेह आदि उपद्रवों को गुड़मार क्वाथ से देने पर लाभप्रद है। प्रमेह पिटिका में रामवाण परीक्षित योग है।

[४७] सर्वतोभद्र वटी (र. यो. सा)—स्वर्णभस्म, रोप्यभस्म, अभ्रक भस्म, लौहभस्म, शुद्ध शिलाजीत, गन्धक और स्वर्णमाक्षिक भस्म इन ७ औषिष्ठयों को समभाग मिला ३ दिन वरुण छाला क्वाय में घोट कर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें। १-१ गोली सुबह शाम वरुणछाल के क्वाय से देवें। यह सम्पूर्ण वृक्क रोगों एवं वस्ति के रोगों को नष्ट करती है। वृषकों की क्रियाशीलाता को बढ़ाकर मूवविषमयता को दूर करती है तथा वृक्क की अश्मरी दुकड़े दुकड़े होकर निकल जाती है।

[४८] सर्वेश्वर रस (भी.र.)-स्वर्ण भस्म, मुक्ताभस्म,

मुद्ध शिलाजीत, लीह भस्म, अभ्रक भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, मुलहठी, पिप्पली, कालीमिर्च, सोंठ, सवको समभाग खरल में काजल के समान महीन कर भृङ्गराज स्वरस और भांग स्वरस से पृथक पृथक मदन कर २-२ रत्ती की बटी बनावें। इसके सेवन से वात पित्ताज एवं कफज प्रमेह और दारुण मधुमेह रोग नष्ट होते हैं।

[४६] सोमनाथ रस (भै. र.)— लौहभस्म १ तोला, शु० पारा, शु० गन्धक, छोटी इलायची, तेजपात, हल्दी, दारूहल्दी, जामुन की छाल, खस,गोखक, वायविडंग, जीरा, पाठा, आंवला, अनार की छाल, रसीत, सुहागे की खील, सफेद चन्दन, शुद्ध गुग्गूल, लोध, शालवृक्ष की छाल, अर्जुन छाल ६-६ माशा प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर उसमें लौहभरम और अन्य औषधियों का चूर्ण मिला, वकरों के दूध में खरल करके ४-४ रत्ती की गोलियां बनावें। १-२ गोली सुवह शाम बकरी दूध दार्व्यादि क्वाथ मधु से दें। यह स्त्रियों के सोमरोग की प्रसिद्ध औपिंध है।

[४०] सारिवादि लौह (भै. रं.) — काली अनन्तमूल, नील, रास्ना, गिलोय, छोटी इलायची के दाने, चित्रकमूल, मानकंद, सूरण, शंखिनी, निसोत, शुद्ध भिलावा बौर हरड़ इन १२ औषिधयों को समभाग लेकर, कपड़छान चूर्ण कर उसमें सबके समान भाग लौहभस्म मिलाकर खरल में घोट कर शीशों में भर कर रखें। १-४ रत्ती सुबह शाम सारि-वाद्यासब भुद्धराजासव के साथ देवे।

सब प्रकार की प्रमेह पिड़िका में लाभकारी योग है। अर्थ वातरक तथा सन्पूर्ण त्वचा रोगों को दूर करता है। इसका सेवन पंच्य पालन से १-२ मास तक करना चाहिये।

[५१] हरिशक्टर रत (र० र० स०)— सभक भरम, तथा रसिसन्दर २-२ तोले और नीले योथे का फूल १ तो. को खरल कर आवले के स्वरस और हल्दी स्वरस में क्रमशः ७-७ दिन ७-७ भावना देकर १-१ रती की गोलियां बनांदें। १ गोली से प्रारम्भ कर ३ गोली तक बढ़ांदें, अनुपान में पानी, जिफला और शहद, बढूसे का रस,मिश्री सीर नागरपान अथवा तिल का तेल दें।

पूर्यमेह में यह योग विशेष लाभदायक है।

विशेष - इसमें नीलायोथा वामक गुण युक्त है जिसका आमले के स्वरस की भावना देने से शमन होता है। गोली देकर ऊपर से ४ तोले तैल (तिल का तैल) या आंवला-स्वरस व फाण्ट या नीम्बू का रस पिलाने से वमन घवरा-हट आदि नहीं होती। इस औषि के सेवन के पण्चात् ३ घण्टे तक भोजन, दूध, चाय कुछ न लें, ठण्डा पानी ले सकते हैं।

[१:] हेमनाथ रस (भैं० र०)— शु० पारद, शु० गन्धक, सुवर्ण भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक १-१ तोले, तथा लीह भस्म, कपूर, प्रवाल भस्म और वंग भस्म प्रत्येक ६-६ माशे लें। प्रथम पारद- गन्धेक की कज्जली करें। फिर शेष औषधियों को मिलाकर अफीम का पानी, केले के खम्मे का रस और गूलर का रस से पृथक-पृथक ७-७ भावनायें देकर १-१ रत्ती की वटी बना लें। ९-२ रत्ती सुबह शाम दूध, मिश्री या धात्रीवृत के साथ।

यह रसायन दारुण बहुसूत्र, सब प्रकार के प्रमेह, मधु-मेह सोमरोग, स्वप्नदोष, कास, श्वास, क्षय, उरक्षत आदि दूर करता है।

[५३] हिमां शु रसं (भै ० र०)—रससिंदूर २ तोले को खरल में घोट कर अगस्तिये के फूल के रस तथा दूर्वा स्वरस की ७-७ भावना देकर टंकण १ तोले कत्था २ तो., कपूर २ तो० हाल कर चन्दनोदक से अच्छी तरह घोटकर ३-३ रत्ती की वटी वनालें। १२ वटी सुबह शाम पानी अथवा चन्दनोदक व चन्दनादि फाण्ट से दें।

प्रमेह नाशक योग है। मूत्र की जलन तथा रुक रुक कर मूत्र त्याग होने में उपयोगी है। सोम रोग तथा सम्पूर्ण पिडिकाओं का नाश करता है, मुखशोप को हटाता है।

[५४] हजरुलयहूद भस्म—हजरुलयहूद एक लम्बा और ऊपर से रेखा वाला, वेर के सदृश एक-सवा इंच लम्बा, गोलाकार खाकी रङ्ग का पत्थर जैसा कठिन होताहै, वेर की गुठली जैसा होने से 'पत्थर वेर' भी कहते हैं, यूनानी दवा विक्रे ताओं के यहां मिलाता है।

शोधन विधि—हजरुल यहूद के पत्थर को आग में तपा तपा कर ७ बार कुलथी नवाथ में बुझाने से शुद्ध हो जाता है।

मस्म विधि—हजरूलयहूद पत्यर की कूट कर ३ दिन मूली स्वरस में मर्दन कर टिकिया बना शराब सम्पुट में दें स्वांग शीत होने पर अर्क पीसकर शीशी में भर लें। पिष्ट विधि — हजरुलयहूद को गर्म पानी से धोकर सुखाकर, पीस कर अर्क गुलाव व चन्दनादि अर्क से स्दिन तक मर्दन कर छाया में सुखाकर शीशों में भरलें। यह पिष्ट मूचल, पित्राशामक अश्मरीशूलहर, अश्मरीमेदक है इसको पेड पर लेप भी किया जाता है।

गुण और उपयोग—हजरुलयहूद भस्म यूनानी वैद्यक में मूत्रल और अश्मरी को ताड़ कर मूत्र मार्ग से से निकाल ने के लिए सुप्रसिद्ध है। यदि पथरी अधिक वड़ी हो तो कुछ दिन तक इसका लगातार प्रयोग करने से बिना आपरेणन के पथरी मूत्र के साथ निकल जाती है। मूत्राव रोध, मूत्रकुच्छ और शर्करा आदि में पेशाच साफ होने में यह अप्रतिम शतशोनुभूत सुप्रसिद्ध बहुप्रचलित है।

[४४] गोक्ष्रादि गुग्गुल (शा॰ सं॰)—9१२ तोले गोखक के पंचां को कूटकर छ गुने पानी में पकार्वे, आधा पानी शेष रहने पर उसमें २८ तोले शु. गुग्गुल मिला कर गुड़पाक के समान गाढ़ा होने पर सींठ, मिचं, पीपल, हरड़ बहेड़ा आंवला, नागरमोथा का चूणें ४-४ तोले डाल कर घी-एरण्डतैल के साथ गुण कर ३-३ रत्ती की वटी बनाकर रखलें।

मूत्राघात, मूत्रहच्छ्र, अष्मरी प्रमेह नाशक सुप्रसिद्ध मूत्रल योग हैं। आयुर्वेद का बहुप्रचलित सुप्रसिद्ध योग है। पुष्ठ १६० भी देखें।

सूत्र रोग हर चूर्ण

[५६] अश्मरीभेदन चूण (भी र.)—गोखक मूल, तालमुखाना की मूल, एरण्डमूल, छोटी कटेरी समभाग का चूण बनाले। दूध व दही की लस्सी से २-२ माशा की माला में देने से अश्मरी का भेदन होता है।

[५७] एलादि चूण (च. द.)—छोटी इलायची के दाने, पापाणभेद, शु॰ शिलाजीत और पीपल घारों को समभाग मिलाकर चूण करें। १-१ माशा कुलथी के यूप व जल से देने पर वृक्कस्थान और मूत्राशय में रही हुई अश्मरी का भेदन कर निकाल देता है।

[ध्र=] उष्णवातघ्न चूर्ण—(सि॰यो॰सं॰) - फिट-करी का फूला, कल मीशोरा, छोटी इलायची, संगजराहत, सफेद चन्दन, रेवन्द चीनी, शीतलचीनी और सफेद जीरा एक एक तीले गन्ध बिरोजे का सत्व २ तीले, सफेद राल ३ मारो और मिश्री सबके बरावर मिलाकर चूर्ण बनालें। आधे से १ तोले प्रात काला दूध की लस्सी के साथ दें।
सूजाक (पूयमेह) में लाभदायक है। सूजाक की मूल व्याधि
रक्त में लीन विष, प्रसेक निलाका में झत और मूत्र विकारों
को नष्ट परता है।

[५६] कर्कंटी बीज चूर्ण (वृ नि. र) — कर्कड़ी के बीज सैन्धानमक, विफला समभाग लेकर महीन चूर्ण बना कर रेखें। ३ माशा सुबह और शाम पानी से दें। यह चूर्ण पित्तशामक तथा मूत्र प्रवंतक है। पिना की अधिकता के कारण मूत्र नली में उचित परिणाम में मूत्र नहीं आता, वृंद बूंद पेशाव आता है। इस चूर्ण का प्रयोग करना लाभदायक है, पित्त शान्त होकर मूत्रविरेचन होता है।

[६०] गोक्षुरादि चूण (यो० त०)—गोखरू, ताल-मखाना, शतावर, कोंच के बीज, नागवला और अतिवला समभाग का कूटकर चूण वनालें। १२ माशा सुवह शाम अथवा रात को सोते समय दूध से दें। शुक्रमेह में उपयोगी है स्वय्नदोप धातु दौबंत्य दूर कर स्तम्भन शक्ति बढ़ाता है। बला, बीर्य वर्धक कामोत्तोजक योग है। साधारण सा होते हुए भी अत्यन्त साभदायक है।

[६१] चन्दनादि चूणं—सफेद चन्दन, खस, कमला-केशर, नागकेशर, वेलगिरी, नागरमोधा, मिश्री, नेत्रवाला, पाठा, कुडा की छाल, इन्द्रजी, सोठ, अतीस, धाय के फूल, रसौत, खाम और जामुन की गुठली की मींगी, मोचरस, नीलोफर, मजीठ, छोटी इलायची और अनारद ना समान भाग लेकर चूणं बनाले। (भी. र)

मात्रा— रे-६ माशे शहद, अशोक छाल क्वाय या ठंडे ' पानी से दें। पिराज रोग नष्ट होते हैं। मूल में रक्त आना रक्त और श्वेतप्रदर, हाथ-पांव व सर्वाङ्ग में जलन, दाह, प्यास, कण्ठ शोष बादि में लाभदायक है। यह चूर्ण शीत वीर्य होने के कारण पैक्तिक रोगों में विशेष लाभदायक है।

[६२] प्रमेहान्तक चूर्ण—तालमखाना ४ तो., गिलोय सत्व और जायफल २॥ २॥ तो॰ तथा मिश्री १० तो॰, चूर्ण बनावे। ३ माशे सुबह शाम गोदुग्ध से सेवन करावे। यह चूर्ण कफज, पित्तज प्रमेह नाशक है वृवकों को शक्ति देता है। वृवक, सूत्राशय, बौर सूत्र निका आदि अवयवों की श्लैष्मिक कला का प्रदाह दूर होकर सूत्र में वीर्य श्लेष्मा, पित्त और क्षार जाना वन्द हो जाता है। वीर्य को शीतल और गाढा बनाता है मूलाशय की उप्लाता को शांत

त्या रोगा चित्रित्सा

करता है। स्वप्नदोष भी दूर होता है। प्रमेह रोगी के लिए घूमना, व्यायाम और लघु भोजन पथ्य है।

[६=] मधुमेहदमन चूण — गुड़मार प्रतोल, विनोले की मींगी प्रतोल, जामुन की गुठ़िलयों की मींगी प्रतोल, सूखे विल्कपत्न ६ तोले तथा शुष्क नीम्ब पत्र २ तो०, चूणं वनाले। २-३ माशा पानी से दिन में र बार सेवन करावे। अग्न्याशय और यकृत् के विकारों को दूर कर मधुमेह का शमन करता है। मूत्रगत सथा रक्तगत शकरा पर अतिशीध्र नियन्त्रण हो जाता है। यदि वसन्त्रकुसुमाकर रस के सह-पानरूप से इसका प्रयोग करें तो मधुमेह में निश्चित लाभु-दायक हैं।

[६४] मूत्रदाहान्तंक चूणं — प्रवालिपटी २० तो०, अमृतासत्व ४० तोले, सोयहूद पिटी ६० तोले, सोनिभिख ८० तो शीतलचीनी ८० तो लेकर चूणं वना कर रखें। माल—२-४ रली दिन में ३ बार जन्दनादि अकं से देवें। मूत्रदाह किसी भी कारण से हो, यह योग अत्यन्त लाभ दायक है। ग्रीष्म ऋतु में सूर्यताप में अधिक भ्रमण करने करने और मिर्च आदि के अधिक प्रयोग से हुई पेशाव की जलन को तत्काल दूर करता है। मूत्रदाह पूयमेह की तीमा वस्था के कारण हो तो भी यह योग अत्यन्त लाभदायक है।

[६४] मूत्रविरेचन चूणं — शीतलचीनी, रेवन्दचीनी, छोटी इलायची और जीरा १-१ तो., कंलमीशोरा २ तो., मिश्री ४ तो॰ सबको कुटछान कर चूणं बनालें। २-३ माशा द्ध की लस्त्ती से हें। यह चूणं मूत्रोत्पत्ति को खूब वढ़ाता है। सूजाक में पीप दूर करने और मूलमागं साफ करने के लिये अति उत्तम है। सूजाक की तील्रावस्था तीन दिन में शांत होती है। भोजन में केवल दूध भात खाने से इन्द्रिय जुलाव बच्छा हो जाता है।

[६६] वृहच्छतावर्यादि चूणं—शतावर, गोखरू, कीच के बीज की गिरी, गंगरन की छाल, खरैंटी की छाल तालमखाना, सफेद मूसली, उंट्यून के बीज, ऊंटकटेरे के मूल की छाल, बीजबंद, समुद्रशोप, कमरकस, सूखा सिघाडा गिलोयसत्व, सेमल के मूल छाल और आंवले, इन १६ बीपिधयों को समभाग मिलाके कूटकर कपछान चूणं करे ४ से ६ मासे समान मिश्री मिलाकर दिन में दो बार देवें। इस चूणं का २१ दिन तक सेवन करने से प्रमेह, धातु- सीणता, स्वप्नदोप और अधिक शक्रवात से आई हुई निवं-

लता दूर होकर वीयं गाढ़ा वन जाता है i

[६७] यवक्षारादि चूर्ण (भा० भं० र०)—यवक्षार शेर मिश्री समान भाग लेकर चूर्ण बनाले। १ से ३ माशा सुबह शाम जल, हाभ जल तथा छाछ से सेवन फरावें। इसका प्रभाव वृदक पर अधिक पड़ता है। मूत्र-कृष्छ, मूत्राघात और मूश्रादाह में गुणकारी पित्तशामकें और मूबल योग है।

[६८] सफूफ इन्द्री जल्साव — गन्छक से शुद्ध किया हुआं कलमी शोरा १ माशे, जवाखार ४' रत्नी दोनों को मिलाकर चूर्ण बनालें। ६ रत्ती चूर्ण को गोखक के फांट और शर्वेत बजूरी के साथ देने से पूयमेह (सूजाक) में लाभ-दायक है, व्रण को धोकर शुद्ध करता है। (कलमीशोरा शोधन — कलमीशोरा १ पाव को पिधला कर उसमें गन्धक २ तोले के चूर्ण को चुटकी-चुटकी हाशते जाय जब गन्धक विलकूल मिल जाय तब दूसरी चुटकी दें)।

[६६] सफूफ मासिकुल वौल—खीरा और कद्दू के वीज की गिरी ३-३ तोले, खुब्बाजी के वीज, खत्मी के बीज १-१ तोले, मीठे बादाम की गिरी ४ माशे, समन खालु स्याह (एक गोंद विशेष) और कतीरा पप्त माशा तथा मुलेठी का सत पाशा चूर्ण वनालें। १-१ माशे चूर्ण तरबूज का रस प्रतीला के साथ सेवन करावें। कष्ट्र के साथ बूंद २ पेशाब होना और मूत्रदाह में गुणकारक है।

मूत्र रोग हर क्वाथ कषाय

[७०] अभया क्वाय — हरड़, आंवला, देवदार, धिनयां सींठ, काली मुनक्का, सारिवा, वेलपत्र, कड़वीनाई और पोदीना के पान, इन १० औपिष्ठयों को समभाग मिलाकर जीकुट चूण करे। १-१ तोले का क्वाय कर दिन में तीन वार देते रहें। भैप. रत्ना का मूल योग. है जिसमें आव- ध्यकतानुसार वेलपत्र, कड़वीनाई और पोदीना ये ३ औपिष्ठियां बढ़ाली गई हैं। यह अग्न्याशय (Pancreas) की निवंलता और विकृति को दूर करता है तथा मधुमेह और इक्षुमेह में मूल में जाने वाली शक्कर को कुछ ही दिनों में नियन्त्रित करता है। शारीरिक निवंलता बढ़ जाने और ४-७% शकरा हो जाने पर वसंत कुसुमाकर रस, प्रमेह गजक्षारी या अन्य औपिधयों के साथ अनुपान रूप से व्यवहृत किया जाता है।

[७१] वरमरीहर कपाय-पापाणभेद, सागीन के फल,

ELEN ENDIFICATION

पवीते की जड़, जतावर, गोखरू, वरुण छाल, कुश की मूल कांस की जड़, चावलधान के मूल, पुननंत्रा, गिलोय, अपा-मार्ग छीरा ककड़ी के बीज इन १३ औषधियों को १-१ ॰ तोले तथा जटामासी और खुरासानी अजवायन र-२ तोले लेकर सवको मिलाकर जीकुट चूण कर लें। १ तो. चूण को १६ तो पानी में पक्षावें तथा चतुर्थांश क्वाथ छानक्रं उसमें ५ रत्ती णिलाजीत या १० रती श्वेतपपंटी व यव-क्षार मिलाकर बावश्यकतानुसार २-२ घण्टे पर या दिन दिन में ३-४ बार देवे। इस नवाय के साथ "हजहल यहद भस्म' देना विशेष लाभदायक है। यह कषाय अध्मरी (पथरी), सिकता (रेती) तथा उससे होने वाले वृदकशूस, उदरशूल से व्यवहृत होता है। यह कपाय सौम्य गुणयुक्त है पर इसमें भ्वेतपपेटी और यवसार का मिश्रण हो जाने से तीक्ष्ण हो जाता है तथा अध्मरी को गलाकर मूत्रमार्ग से बाहर निकाल देता है, पेशाव खुलकर लाता है। यदि पेंट में गैस भर गयी हो, दर्द और भारीपन हो तो इस कपाय से शीघ लाभ होता है।

[७२] कुलत्य क्वाथ (वृ० नि० र०) — कुलथी का क्वाथ १०० नि० लि० में सैंघव सवण मिलाकर पिसाना अश्मरीनाशक है।

कुलशी यूप — कुलथी २५० ग्राम को जीकुट कर दो लिटर पानी में डालकर चतुर्थांश शेप रखे तो यूप तैयार हो जायेगा। इसमें थोड़ा सा घी और सैंधन लनण मिलाकर चाय की तरह गर्म-२ पीना चाहिये। तीव्र वृदकशूल में 'वृत्कशूलांतक वटी' के साथ पीने से वृत्कशूल का तत्काल शमन होता है। कुलथी पथरीली जमीन में होती है एतदथै अश्मरी नाशक है।

[७३] गोक्षुरादि क्वाय (मैं॰ र०)—गोखरू २ तो० का क्वाय विधि से क्वाय बनाकर उसमें यवक्षार और मिश्री १-१ माणा मिलाकर पिणावें। प्रमेह, मूत्रकुच्छू, मूत्राघात में अनुपान रूप में इसका व्यवहार होता है। यह वृक्क में अधिक रक्त लाकर गुच्छिकाओं से निकलने वाले द्रव्य की मात्रा बढ़ाकर मूत्र की वृद्धि करता है एतदर्थ जब कभी मूत्र सरलतापूर्वक नहीं उतरता तो इसके प्रयोग से मूत्र अधिक निकलने लगता है। बहुमूत्र रोग में इसे न दे तथा अन्य आकस्मिक कारण से मूत्रकुच्छू हो तो वहां भी, इसका प्रयोग न करें।

[७४] चन्दनादि दयाश— प्रवेत एवं लाल चर्दन,
मुलह्ठी, आंवलां, गिलोय, खस द्राक्षा, तमभाग का क्वाप
विधि से क्वाय वनाकर २ ३ रत्ती फिटकरी का प्रक्षेप डाल
कर पिलाने से बोजोमेह को नष्ट करता है। उपद्रव युक्त
प्रमेहों को विशोपतः रक्तमेह, हारिद्रमेह तथा मिक्जिण्ठादिमेह
को जड़ से नष्ट करता है।

[७४] तृणपंचमूल क्वाथ-कृश, कांस, सरकण्डा क्वाय (डाभ) और गन्ना इन पांची तृणों की जड़ से सिद्ध क्वाय वस्ति णोधन तथा 'पैत्तिक मूदकृच्छ्र में सेवन किया जाता है।

[७६] दूर्वादि नवाय—दूब, मूर्वामूल की जड़, कास जड़, देन्तीमूल, मञ्जिष्ठा, सोमल की जड़ समान भाग लोकर नवाथ विधि से नवाय बनावें। इसके सेवन से रक्त-मेह और गुक्रमेह रोग का नाग होता है।

[७०] पाषाणभेदादि ववाध (वं से)—पापाणभेद, वरुणत्वर, गोखरू. ब्राह्मी सममाग के रा। तो विवाध में गुड़ ड्रालकर उसे धिलाजीत र-४ रत्ती की गोली के साथ पिलावें तो मूत्रकुच्छ, मूत्राधात और अश्मरी का निष्कासन होता है।

[७६] पुनर्नवाष्टक क्वाथ (चकदत्तं)—पुनर्नवा,हरड, नीम की छाल, दारुहत्दी, कुटकी, परवल का पंचाङ्ग, गिलोम, सोंठ प्रत्येक समान भाग लेकर जीकुट करलें तथा क्वाथ विधि से क्वाथ बनावें। यह क्वाथ सर्वाङ्ग शोथ उदर रोग यक्तर्प्लीहा वृद्धि तथा आमवात में उपयोगी है। यह अपने रेचन और मूत्रल गुण के कारण शरीर का शोधन कर देता है। वृक्क द्रोणियों (Glomeruli) के भीतर जो उपांग आलसी हो गये हों उनको प्ररेणा देकर मूदोत्पत्ति में सहायता देता है। इस हेतु से इस क्वाथ के सेवन से सर्वाङ्ग शोथ और उदर रोग का निचारण होता है तथा लक्षण रूप या उपद्रव रूप से उत्पर्श कास, शूल, पांडु भी नष्ट होते हैं।

[७६] मूत्रल कयाय - पुननंवामूल, ईख का मूल, कांस का मूल, छोटे गोखरू,सौफ धनिया सागीन के फल, मकोय, कासनी के बीज ककड़ी (खोरा) के बीज का मगज, गिलोय, पापाणभेद, काकनुज और कमल के फूल इन १५ औषधियों को १-१ जो गिलाकर जौकुट करंले । क्वाय निर्माण विधि

and the fellencett

से क्या बनावें। वृक्कविकार जिनत शोथ पर विशेष उप-योगी है। मूत्र में एल्ब्युमिन जाना, मुख पर शोथ, शोथ जीणें होने पर रक्त वाहिनियों का विकृत होना और हृदय निर्वल होना, पेशाब क्या स्तरना आदि पर विशेष लाभ-दायक है। मूलाघात, मूलकुच्छ, मूत्रकुण्डलिका, तूनी,प्रति-तूनी, मूत्रोदावर्त सादि में रुके हुए मूत्र को उतारता है।

[द०] वहणादि कषाय — वहण की छाल, सींठ, गोखक पाषाणभेद प्रत्येक १-१ तोला लेकर जोकुट करलें। १ तो. चूण को १६ तो० पानी में कवाथ बनाकर ४ तो० शेष रहने पर इसमें क्षार पर्पटी या, यवक्षार ५ रती मिलाकर पिलाने से अश्मरी, मूत्रक्षच्छ्र वृक्क शूल में लाभ होता है।

[=9] शतावर्याद क्वाय (भा. प्र.)-शतावरी, गोखरू कसेर, कुश, कास, ईखमूल समान-२ का क्वाय-शहद मिला कर पिलावें। अश्मरी जनित वृक्क शूल, वृक्कमूत्राशय में शोध के कारण उत्पन्न या मूत्रामार्ग में शोध के कारण उत्पन्न मूत्रकृत्रकृ में उपयोगी है।

मूलरीगहर आहद-अहिटट—

(=२) उणीरासव (मै.र.)

खिस, सुगन्धवाला, कमल, गम्भारीफल, नीलोफर, फूल प्रियंगु, पद्माख, लोध, मजीठ, जवासा, चिरायता, वड़ की छाल, गूलर की छाल, कचूर, पित्तपापड़ा, सफेद कमल, पटोल पत्र, कांचनार छाल, जामुन छाल, मोचरस प्रत्येक का चूर्ण ४-४ तोले, मुनक्का कुटा हुआ प्र और धाय का फूल ६४ तोले लेकर जौकुट करें। फिर निवाया जल २०४८ तोले, गिश्री ४ सेर, शहद २॥ सेर मिला अमृत वान में भर मुखमुद्रा करके १ मांस तक रख दें, बाद में छानकर काम में लेकें।

गुण और उपयोग—यह उशीरासव शामक, मूत्रल, पित्तशामक, दाहनाशक और प्रसादक है, यह अधोग रक्तपित में विशेषतः मूत्रमागं से रक्त जाने पर अति उपयोगी है। मूत्रकृष्ण और सूत्राधात में मूत्र की मात्रां बढ़ाना और मूत्र में होने वाले दाह को दूर करना, ये दोनों कार्य इस आसव से सम्पन्न होते हैं। कालमेह, नीलमेह, मांजिष्ठिमेह आदि पित्तज प्रमेहों पर यह विशेष उपयोगी तथा उपदंश, उष्णवात, पेशाव में जलन होना आदि विकार शमन हो जाने पर भी रक्त में कुछ विष अविशिष्ट रह जाता है जिसका निवारण इसके सेवन से किया जा सकता

है। इसके सेवन से उध्वंगत और अधोगत दोनों प्रकार के रक्तिपत्त का शमन होता है। नाक, कान, आंखें, मल-मून हार से होने वाला रक्तस्राव, रक्तप्रवर, रक्तार्श तथा तथा शरीर के किसी भी मार्ग से रक्तस्राव होता है। यह अपने सौम्य गुण प्रभाव से उसका शमन करता है अतः यह रक्तरोधक, मूत्रेदाहशामक एवं बीयंवधंक है। पुरुषों के स्वप्नदोष, पेशाव में धातु जाना तथा बीयं विकार में तथा स्त्रियों के गर्भाशय दोष, रक्तप्रवर, सोमरोग आदि में इसके साथ चन्द्रप्रभावटी का उपयोग करने से अत्यन्त लाभदायक है।

(८३) चन्दनासव (भी. र.)

सफेद चन्दन, नेत्रवाला, नागरमीथा, गम्भारी के फूल, नील कमल, फूलियंगु, पद्माख, लोध, मजीठ, लाल-चन्दन, पाठा, चिरायता, बड़ की छाल, पीपल वृक्ष की छाल, कचूर, पित्तपापड़ा, मुलहठी, रास्ना, पटोलपन्न, कंचनार छाल, काम की छाल और मोचरस इन बाईस बौपिधयों का जौजुट चूणं ४-४ तोले, धाय के फूल ६४ तोले, मुनदका ५० तोले, शदकर ४०० तोले और गुड़ २०० तोले लेवें। सबको २०४५ तोले जल में मिला अमृतवान में भर मुखमुद्धा करके १ मास तक रख दें, वाद में छानकर काम में लावें।

मात्रा- १- तोला, वरावर जल मिलाकर दिन में हो बार भोजन के बाद देवें।

उपयोग - यह शुक्रमेहनाशक, बलकारक, पौष्टिक, ह्य और धानवर्धक है। मूत्र विपमयता, मूत्राशय दाह, मूत्रकु कीर मूत्रावरोध तथा सुजाक, उपदंश में दाह सहवेदना में यह बासव अपने शामक तथा मूत्रल गुण के कारण दाह का शमन कर मूत्रा प्रवृत्त करता है तथा मूत्रो-त्पित की वृद्धि होकर पूय का स्नाव होता रहता है। मूत्रा मागं में जीणंत्रण हो तो उसका ज्ञास कम हो जाता है। पेशाव में धातु जाना स्वप्नदोप, प्रमेह, पेशाव की जलन तथा स्वियों के खेत प्रदर में लाभदायक है। यह आसव शीतवीयं होने के कारण शुक्रस्थान की उपणता तथा शरीर के दाह को नष्ट कर वीयं की वृद्धि करता है। पेशाव पीलां या लाल हो तो उसे भी दूर कर पेशाव साफ लाता है।

् सिकतामेह में चन्दनासव का प्रयोग उत्तम है, इससे

अइमरी के छोटे छोटे दुकड़े द्रवीभूत होकर मूत्रमार्ग से बाहर निकल जाते हैं। अश्मरीजन्यशूल में इसका उपयोग होता है।

द्वा चया स्वा मार्ग संकुचित हो गया हो तो इस आकुन्चन को उत्तरविस्त की नली मूत्र मार्ग में पहुँचा कर शनैः शनैः कम् करना चाहिये तथो चन्दनासव या अन्य मूलल औषियों का प्रयाग नहीं करना चाहिये अन्यथा . मूत्रोशय में मूत्रसंचय होकर कष्ट बढ़ जाता है।

(=४) देवदार्वाद्यरिष्ट

देवदार २०० तोले, अड्से के पत्ते ५० तो., मंजिष्ठा, दन्तीमूल, इन्द्र जो, तगर, दारुहर्नी, हस्दी, रास्ना, वाय- विडङ्ग, नागरमोथा, सिरस की छाल.— खैर छाल, अर्जुन छाल प्रत्येक ४०—४० तोले, गिलोय. चिटाकमूल, अजवायन, रक्तचन्दन, कुटकी, कुटज छाल प्रत्येक ३२-३२ तोले लें। सबकों जोकुट कर ५१६२ तोले जल मिलाकर क्वाय करें। अष्टमांश जल श्रेप रहने पर उतार फर छान लें। जीतल होने पर शहद १२०० तोले, धाय के फूल ६४ तोले, दालचीनी, तेजपात, इलायची तीनों मिलाकर १६ तोले, सोंठ मिर्च पीपल तीनों मिलाकर ६ तोले, नाग केशर ६ तोले और फूल प्रयंगु १६ तोले लेकर मोटा— मोटा चूणें कर मिला अमृतवान में भर मुखमुद्रा करके १ मास सन्धान के लिये रखें, फिर छान लें।

माला—१-२ तोला वरावर पानी मिलाकर दिन में दो वार भोजन के बाद लें।

उपयोग — एक प्रकार के किंठन वातज प्रमेह, पूयमेह, उपदंश, सुजाक आदि बन्य मूत्रकृच्छ्र दहु, कुष्ठ, दात रोग, संग्रहणी, अर्था, प्रदर, गर्भाशयदीय, कण्डू आदि रोगनीं शक है। यह आसव रक्तशोधक और मूत्रदीय नाशक है। जीर्ण उपदंश और सुजाक के उपदवों को नष्ट करता है और मलशोधन कर तथा पाचन क्रिया को व्यव-स्थित करता है। स्थियों के प्रसवीपरांत होने वाले उपदवों में लाभकारी है।

(५५) पुनर्नवारिष्ट

सफेद और रक्त पुनर्नवा, बला, अतिवला, पाठा, विलोय, चित्रकमूल, छोटी कटेरी और वासा प्रत्येक १२— १२ तो. का जीकुट चूर्ण कर १ मन ११ सेर १६ तो. पानी में पकार्वे। चीथाई (१२॥ सेर ४ तो.) पानी शेप रहने पर छान लें फिर उसमें १० सेर गुड़ और ६४ तो. भाहद मिलाकर पान में डालकर नाग केशर, दालचीनी. इलायची बड़ी. कालीमिर्न, खश और तेजपात का चूर्ण २—? तो. लेकर मिलाकर १ मास तक संघान करके रखें फिर छान कर काम में लें।

माला-१-२ तो. दिन में २ वार, भोजन के बाद वरावर पानी से सेवन करावें।

गुण खीर उपयोग—इस खासव का प्रभाव वृतक, थकृत, प्लीहा और हृदय पर विशेष रूप से होता है अतः वृतक की विकृति के कारण व युक्त प्लीहा की विकृति के कारण शोथ हुआ हो तो यह रामबाण महीपिछ है। यह उत्तम मूलल एवं हुछ तथा वलवर्षक, वर्णकारक, आयु और तेजस्कर है तथा इसके सेवन से हृदय रोग, पाण्डु रोग, हितका, श्वास कास, गुल्म, अर्थ, भगन्दर, ग्रहणी, कुष्ठ, शाखागत वात आदि रोग नष्ट होते हैं। शरीर से मल मूल विसर्जन कर शोथ रोग को समूल नष्ट करने में यह सुप्रसिद्ध योग है।

(=६) सारिवाद्यासष

सारिवा, मोथा, लोध, वरगद की छाल, पीपल की छाल, कचूर, अनन्तमूल सफेद, पद्माख, सुगन्धवाला, पाठा, आमला, गिलोय, खश, दोनों चन्दन, अजवावन, कुटकी प्रत्येक ४-४ तो., छोटी और बढ़ी इलामची, कूठ, सनाय, हरड़ प्रत्येक दे-१६ तो. लेकर जीकुट चूर्ण कर जल २०४८ तो., गुड़ १२०० तो., धाय के फूल ४० तो. और मुनक्का २४० तो. मिला अमृतवान में भर केर मुख-सुद्रा कर १ मास रहने दें। फिर छानकर प्रयोग में लेकें।

मात्रा—१-२ तो. दिन भें दो बार भोजन के बाद वरावर पानी से सेवनीय है।

उपयोग—यह आसव २० प्रकार के प्रमेह, प्रमेह पिडिका, उपदंश, नाड़ीज़ण, पीप वाले ज़ण आदि में लाभ-दायक है। शामक, मूत्रल, दाहशामक उत्तम रसायन है। विशेषतः पित्तज प्रमेहों एवं पुराने सुजाक, उपदंश के उपद्रवों, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, मूत्रदाह में विशेष उपयोगी है। मूत्राश्मरी मूत्रकृच्छ्र तथा पूयमेह में इसके प्रयोग से लाभ होता है। पुरुषों की अपेक्षा स्तियों के उपदंश, सुजाक रोग अधिक घातक होते हैं जिसमें सारिवाद्यासव का कुछ दिन लगातार सेवन करने से आशातीत लाभ

Tal Pidli Fildscall

होता है। मस्तिष्क विकार, वातवाहिनियों, मूत्रेन्द्रिय, जननेन्द्रिय और अन्तः लावक ग्रन्थियों पर इसका शामक प्रभाव है।

क्सूत्ररोगहर अवलेह, खमीरा, माजून, शर्बत—

(मण) कुशावलेह (भी.र.)— कुशा, काश खस, इस्नु, खराड (रामशर-तृण विशेष) की जड़ प्रत्येक चालीस-चालीस तो. लेकर देर सेर पानी में क्वाय, कर अण्टमांश शेप रहने पर छान लें। फिर कड़ाही में लेकर अग्नि पर चढ़ाकर चौसठ तो. खांड डालकर दो हार की चाशनी वनावें। जब बुछ गाड़ा होने लगे तो उसमें मधुयिट, खीरा कुष्यांड एवं ककड़ी के वीज-गिरी, दशलोचन, कांवला, तेजपात, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, वरुण की छाल, गिलीय सत्व, प्रियंगु प्रत्येक १-१ तो. अन्छी तरह आलोडित कर पाक कर लें।

माला—१ तो. प्रातः सायं दूध से सेवन करावें। दण— सभी प्रकार के प्रमेह, मूत्रकृत्छ, मूदाघात में लाभप्रद है।

् (८८) खमीरा संदल-सन्दल (स्फेट चन्दन) का चूर्ण पतो. और धनियां का सगज ना तो. जौकुटकर रात्रिको १ सेर पानी में भिगो देवें। सुवह उवाल कर शाधा पानी जला देवें। फिर छानकर उसमें अंगूर, तुशं का धर्क, गुलावजल और वेदमुश्क का सर्क वीस वीस तो., अंगूर का सिरका २॥ ती: और मिश्री ३॥ सेर मिलाकर चाशनी करें। पश्चात् सफेंद चन्दन की पानी में घिसकर मुखाया हुआ चूर्ण और वंशलोचन ढाई ढाई तो., चांदी का वर्क और प्रवाल पिष्टी ६-६ माशे, मोती पिष्टी और संगेयशव पिप्टी ३-३ माशे मिलालें। मात्रा — आधा से १ तो. तक सुबह दूध की लस्सी के साथ तथा रात में दूध के साथ देवें। उपयोग—यह खमीरा सन्दल पूयमेह (गोनोरिया), वस्तिवण, मूत्र निका क्षत सादि में मल भुद्धि कराता है। मूत्रदाह और पूय को दूर कैरता है। मस्तिष्क के लिये शामक, मूत्र संशोधक, मूत्र में बाह, घत्रराहट, तृपा आदि को नष्ट करता है। पित्त विकार नाशक तथा मूत्रदाह एवं प्रवत व्यथा शामक, मुजाक में लाभप्रद है।

(= ६) माजून हिजरुल यहूँद 'कद्दू, ककड़ी, खीरे के वीजों का मगज और काकनुज ४-४ मांशे और हिजरुल यहूद पिष्टी ५० माशे लें। बीजों को कूट कपड़छन कर उसमें हजरूल यहूद पिष्टी को खूब घोटकर चाटने लायक शहद मिलाकर माजून बना लें। मात्रा—१ से २ माशे सुबह पानी के अथवा गोखरू या चने के नवाथ के साध दें। उपयोग—यह माजून मूत्राशय की अश्मरी को निकालने में गुणकारी हैं। इससे अश्मरी श्वेत की तरह टुकड़े दुकड़े होकर बिना कष्ट के मूत्र के साथ निकल जाती हैं।

(६०) शर्वत सन्दल (चन्दन का शर्वत)-आधा पाव श्वेत चन्दन के टुक है की आधा सेर गुलाब जल में रात को भिगो दें। सबेरे हल्का सा जोश देकर् (उबाल कर) डेढ़ पाव पानी शेष रहने पर मलकर छान हों फिर खाधा सेर मिश्री मिलाकर धर्वत बना लें। उवालने पर ढक्कन लगा दें अन्यथा तेल उड़ जाता है। मात्रा — दो से पांच तो. दिन में दो बार पानी के साथ देवें । उपयोग-यह शर्वंत सुमधुर और अतीव श्रेष्ठ जायकेदार, शीतवीर्य और दिल दिमाग को तरावट पहुंचाने वाला है। हृदयो-ल्लासकारी और हृदय को बल देने वाला है। तृपा, दाह, मूत्रकृच्छू, मूत्राघात; पेशाब का पीलापन, पेशाव में जलन होना, नाकमुख में खुश्की रहना, नक्सीर फूटना और ग्रीष्म ऋतु में होने वाले पित्त विकारों को नष्ट करता है। स्जाक रोग में पेशाव साफ लाता है। गर्मी, प्यास, लू, वेचीनी से रक्षा करता है। एतदर्थ वहुत से मनुष्य गिवयों के दिनों में इस सुमधुर शवंत का नित्य प्रयोग करते हैं। उत्तम शीतपेय है।

सूत्ररोगहर घृत-

(६१) कुलत्यादि घृत (भै.र.)—वरुणत्वक आठ सेर को चीसठ सेर पानी में तैयार किया क्वाथ सौलह सेर में घृत चार सेर तथा कुलथी, यवक्षार, विङङ्ग, शीतल चीनी, गोखरू, पेठा बीज, सोंघानमक, चीनी समभाग का मिलित करक १ सेर डालकर घृतपाक विधि से तैयार करें। माता- आधा से १ तो. सेवन करने से कप्टसाध्य अष्मरी, मूटाकुच्छ, मूत्राघात तथा मूराविवन्छ तथा वृक्क जूल जीझ ही नष्ट होते हैं।

(६२) कुंगादि घृत (मै.र.)— कुम, काम, गर (सर-फण्डे की जड़), गिलोय, रक्त गन्ना, गन्ने की जड़,पापाण-भेद, दर्भ की जड़, विदारी कन्द वाराही कन्द मालिकी जड़ गोखक दयोनाक पादल वाछ मालि मीली भिण्डी į , į

म्हण स्विति सिक्टिना

रनत पुननंवा शिरीप इनको सम्मिलत जीकुट चूणं २ सेर पानी चौसठ सेर अवशिष्ट नवाय १६ सेर घृत चार सेर तथा शिलाजीत मुलहठी कमलबीज खीरे के चीज ककड़ी के बीज सम्मिलित कर कल्क १ सेर डालकर घृत पाक विधि से तैयार करें। मात्रा – गाधा तो से १ तो. पित्ताश्मरी में सेवनीय है। पैत्तिक अश्मरी के सभी उपद्रव मूलदाह, मूला में रवत जाना मूलकुच्छू मूलाघात में उपयोगी है।

[६३] पाषाणभेदादि घृत (अ ह.) - पाषाणभेद वड़े वकुल (मोलसुरी) के पुष्प अपामार्ग की जड़ सिरहरा (अष्टमन्तक -- मराठी में आपटा) शतावर ब्राह्मी वितवला ध्योनांक खण केतकी की जड़ बन्दाल सागीन के फल छोटी कटेरी रोहिप घास (कतृण) गोखरू जब कुलस्थ वेर वहणा की छाल और निर्मेली के फल इन बीस सीपधियों को १६-१६ तो. लेकर यवहुट कर मं गुने पानी में चतुर्थांग, नदाय करें । फिर नदाय को छानकर दो सेर गौ या वकरी के घृत तथा ऊपर (रेह मिट्टी) सैंधानमक शिलाजीत हींग रक्त कासीस हरी कासीस और तुत्वक (खपरिया) इन ७ सीपिधयों के चार चार तो. क्लक में मिलाकर वृत पाक विधि से सिङ्करें। माला-१-२ तो. भोजन के शारमभू में (दो तीन शास के साथ) दिन में दो बार दें। उपयोग - यह घृत बात प्रकीपज सण्मरी वस्ति स्यात में शून पेशाव में रेती जाना आदि विकार एक दो मास में दूर हो जाते हैं। रोग की प्रारंभिक अवस्था में यह अत्यन्त लाभदायक है। हजरुल यहूद भस्म के अनुपान रूप में भी इस घृत का प्रयोग करना उत्तम है। भोजन में द्विदल घान्य विल्कुल नहीं देना चोहिये।

[६४] वरणादि घृत (भी.र.) — वरणादि गण के क्वाय से तथा गुगगलु छोटी इलायकी रेणुका कूठ मोथा कालीमिर्च चिवाक देवदार तथा उपकादि गण के करक से यथाविधि घृत सिंह कर प्रयोग करने है कफ्ज छम्मरी नष्ट होती है। माजा—६ से व बूंद मूलकुन्छ धर्करा जम्मरी नामक है।

सूत्ररोग हर तेल-लेप-

[६४] उद्योरादि तैल (भी.र.)—तिल तैल २ प्रस्थ (१२८ तो०). क्वायार्थ-गोजक पंचांग १० तेर, पानी ४० सेर गोप क्वाय १० सेर तथा खश १० सेर, पानी ४० सेर शोप १० सेर, दोनों को मिलाकर । कलक द्रव्य~खस, तगर, कूठ, मुलेठी, लाल चन्दन, बहेड़ा, हरड़ शतावर, पद्माख, नीलोत्पल, अनन्त मूल, वला, असगंध, दशमूल, शतावर, विदारी कन्द, काकोली अतिवला, गोखल सोय, श्वेतवला, सोंफ प्रत्येक २-२ तो० तथा तक और तिल तैल १-६- १० २१८ तो. लेकर घृतपाक विधि से सिद्ध करले । इस तेल के अध्यक्ष से मूलकुच्छ, मूलाधात, अवमरी प्रकृपित वात नष्ट होते हैं। यह बय और वर्ण को बढ़ाता है तथा वृष्य है।

[६६] चन्दन तैल — सफेद चन्दन के बुरादे को पानी
में भिगोकर वड़े बड़े भवका यन्त्र से परिलवण विधि द्वारा
यह तैल निकाला जाता है। वाजारों में दना बनाया
विकता है। 9 चम्मच चीनी में १०-२० वूंद ढाल फांक
ऊपर ठण्डा पानी पीलों। यह उत्तम मूत्रमार्ग शोधक है,
मूल की जलन को पहली ही मात्रा शांत कर देती है।
सूजाक की नई पुरानी अवस्था में जब यूयस्राव व बूंद बूंद
मूल त्याग तीज़ कष्ट एवं जचन के साथ हो तो इसके प्रयोग
से तत्काल शमन होता है।

[९ ए] प्रमेह मिहिर तैल (भी. र.) — सोया, देवदारु, नागरमोथा, हल्दी, दाँरुहल्दी सूर्वी, क्ठ, असगन्ध, सफेद्र चन्दन, लाल चन्दन, रेणुका, कुटकी, मुलेठी, रास्ना, दाल-चीनी, छोटी इलांगची के ढाने, जारङ्गी, चब्यू, धनियां, इन्द्र जी, करंज बीज, अगर, तेजपात. हरड़ वहेड़ा आंवला, नालुका (सुगन्धित द्रव्य अभाव में खुरु) नेव वाला, खरैटी, कंधी, मजीठ, सरल काण्ठ, कमल लोझ सीफ वच काला-जीरा, खण, जायफल, वासा और तगर इन ४९ औषधियों को 9-9 ती० लेकर करक करें फिर इस करक को तिल तैल १२८ तोले, शतावर का रस १२८ तो०, लाख क रस ४१२ तो॰, वही का जल ४९२ तो॰ और दूध १२ = तो॰ में मिलाकर मन्दारिन पर सिद्ध करे। इस तेल की मालिश, हे वातज, पित्तज, कफज,सन्निपातज मेदोगत और मांसगत ज्वर नष्ट होते हैं। शुक्रक्षय के कारण दुर्वल व्यक्तियों के लिये तथा विशेषतः ध्वजभंग (नपुंसकता) में विशेष लाभ-दायक है एवं दाह, पित्त प्रकोप, प्यास, र्छाद, मुख शोष और २० प्रकार के प्रमेह रोग, इसके मर्दन से नि:सन्देह नष्ट हो जाते हैं।

[६८] वरुणादि तैल (भैं: र.)—तिल तैल ४ सेर । — मोपांश पृष्ठ ३७६ पर देखें।



- (१) पापाणभेद (पत्थर फोन) १ तो. के पंचांग को पत्थर की सिला पर पानी के साथ पीसकर, और उसे पानी में घोलकर प्रात: मध्याह्म और सायं पीने से ७२ घंटे के अन्दर अश्मरी गलकर पृत्र के साथ वाहर निकलने लगती है। १२ दिन के सेवन से कफल अश्मरी तथा शुक्रा-श्मरी का नाश होता है। १ माह में पित्ताश्मरी और ४२ दिन में वाताश्मरी निश्चयपूर्वक नष्ट हो जाती है। इस औपिय के सेवन फरते हुए केवल जब की दिलया कुलथी का यूप और भेड़ का दूध सेवन करना चाहिए। खटाई लाल हरीमिर्च सेवन विल्कुल बन्द रखना चाहिए। नमंक प्रति दिन चार रत्ती से अधिक नहीं खाना चाहिए।
 - (२) शकरं शंकुश—जामुन की छाल की संफेद भस्म, गुड़मार बूटी, निर्मली का यहीन चूणं, बटबून की कोमल पित्यों का महीन चूणं, आमकी गुठली की मींगी का चूणं, स्पटिका भस्म, जामुन की गुठली का चूणं, सत्व गंधा विरोजा, राल, मुक्तासीप भस्म, कांतलीह भस्म (हिंगुल योगेन जारित ६० पुटी जलतर), बंगभस्म (तविकया हर्ताल योगेन जारित १० पुटी जलतर), नाग भस्म (तिल-पणीं के रस के योग से जारित हरित वर्णं जलतर), शुंख कुचला चूणं, प्रत्येक ४-४ तोले। सूर्यतापी खुद्ध लोह णिलाजीय म तोले—सब प्रव्यों को खरल में डालफर खूब मर्दन करे, फिर करेला वा करेला पत्र के स्वरस की भावना देकर वार-बार रक्ती की बटी बनालें। मात्रा १ वटी से २ वटी तक। अनुपान—विजयसार का हिम, अमृता स्वरस व ताजा पानी। समय प्रातः सारं।

गुण-मधुमेह वा शर्करामेह नाधक है। १० दिन में

शकरा निरस्त हो जाती है, रक्त में बढ़ी हुई शकरा कम होकर स्वाधाविक मात्रा में स्थित होजाती है। ६ माह तक इस शौपधि के सेवन करने से शकरामें ह का लाक्रमण सदा के लिये स्थाई रूप से रक जाता है, इसमें संदेह नहीं।

(भीहा) त्वक् घनसार, उदुम्बरत्वक् घनसार, मधुपुष्प (भीहा) त्वक् घनसार, उदुम्बरत्वक् घनसार, घटत्वक् घनसार, पीपलत्वक् घनसार, जामुनत्वक् घनसार, बीज बन्द, विरयार (खरैटी) की जड़ का चूर्ण, विजयसार वृक्ष की लकड़ी का घनसार, िर्मली के बीज का चूर्ण, महा निम्ब के बीज का चूर्ण, अर्जु नत्वक् घनसार, तुलसी वीज चूर्ण, बिल्वबीज चूर्ण, ईसवगोल का चूर्ण, वामला बीज चूर्ण, प्रत्येक ४-४ तो॰, सिद्ध मक्तरव्यज स्वर्णयुक्त क तोले सब द्रव्यों को पत्थर के खरल में डालकर खुब मर्दन करे। फिर एक सेर बिल्व स्वरस, १ सेर अमृता स्वरस, १ सेर करेला स्वरस, १ सेर ब्राह्मीपल स्वरस की क्रमशः शावना देकर एक माशे के बटक ननावें। मात्रा— १ बटक प्रातः धारीण्ण किन्तु शकरा रहित गो दुख से सेवन करें।

गुण—यह योग मूत्र शर्करा को सर्वपा निरस्त करने वाला सर्वोत्तम योग है। रक्त में भी शर्करा की माना स्वाभाविक से अधिक नहीं बढ़ने पाती।

- (४) कांत लोह भस्म (जलतर) १ रती मधु के साथ फाटकर ऊपर से बरुणार का सुखोज्ण क्वाय पीने से ६ दिन में मूक्कुन्छ और मूत्र वाधा मिटती है। परंतु स्थायी लाभ के लिये इसे १ माह तक सेवन कराना चाहिए। इसका सेवन प्रति दिन प्रातः सायं भोजन के पूर्व उपयुक्त है।
 - (प्र) निर्मेलीबीब के २ माणा कल्क की नित्य मधु के — शेपांस पृष्ठ ३७६ पर देखें।

परण वृक्ष की छाल हरेक को हर समय उपलब्ध नहीं होती। मेरे विचार से छाल उपलब्ध न होने पर किसी अच्छी फार्मेसी का वर्णासव २ तो. बरावर जल मिलाकर अनुपान रूप में प्रयोग करें। —दाऊदयाल गर्ग

स्त्रकृच्छ्ता निवारण के लिये अनुभूत योग

वैद्य श्री हर्पवर्धन सिंह शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, वी.ए.एल.एल.बी., इद्र भवन, आगरा।

- (१) गोखरू, तृणपञ्चमूल, जवासा गौर चन्दन इनको सम धाग लेकर चूर्ण बना लें,इसमें से १॥-१॥ तो. पानी या दूध में औटाकर पीने से शीझ ही क्रच्छता का नाण हाता है।
- (२) पापाणभेद, दरुणछाल, गोखरू, वड़ी इलायची सबको १-१ तो. लें। जौकुटकर २ मालाएं बनावें। प्रत्येक मात्रा को आधा सेर पानी में औटाकर आधा शेप रहने पर १ तो. मिश्री मिलाकर दोनों समय पीवें।
- (३) जी, ककड़ी बीज का छिलका, छरबूजे के बीज व छिलका, गोखक प्रत्येक २-२ तो. लेकर २ मात्राएं बनावें। एक मात्रा १० गुने पानी में पकाकर पीवें, इतनी मात्रा साथं पीवें। निर्दल व्यक्ति इसकी आधी-२ मात्रा पीवें।
 - (४) मूत्रकृच्छ में विविध क्षारों का प्रयोग कराया

- जाता है। क्षार तीव होते हैं' अतएव १ रसी या २ रसी से अधिक एक वार में न दें, लक्षी या शर्वत के साथ दिन में दो वार पिलाना हितावह है।
- (५) त्रिफला १ तो. को आधा सेर पानी में राहित में भिगो दें। मिट्टी के पात्र में भीगा यह जल प्रातः मसल कर फान कर पीवें, इसमें १ तोले मिश्री मिला लें।
- (६) इक्षुरस, मौसमीस्वरस, अनार, शर्वत, ग्लुकीस, देशी घी ठण्डाई सादि का सेवन भी वार-२ करना चाहिए।
- (७) गोखरू १ तो. चन्दंन असली का चर्ण १ तो. खसनई का चूर्ण १ तो. इनमें से किसी एक का हिम ११ दिन तक पीवें। चूर्ण को रात्रि में आधा सेर ठण्डा पानी में भिगो दें, प्रात: मसल छान कर पीवें। ※

—पुष्ठ ३७५ का शेषांश—

साथ चाटने से सभी प्रकार के प्रमेह दूर होते हैं।

- (६) महा निम्ब के फलों की मींगी का चूर्ण ३ माशा नित्य चावल के प्रथम धोवन के साथ सेवन करें।
- (७) स्फटिका भस्म ४ रती से १ माशे तक मधु मिश्रित सुखोज्ण जल के साथ लेने से रक्तमेह मिटता है। २४ घंटे में मूत्र के साथ रक्त का स्राव होना रक जाता है।
- (द) सत्व गंधा विरोजा चूर्ण १ माशे प्रातः सायं मृधु के साथ चाटने से उप्ण वात, सुजाक, पूयमेह १५ दिन में ही स्थाई एप से आराम हो जाते हैं। यह स्तियों के गनी-रिक योनि झावों को भी तत्काल वन्द करता है।

(६) वरणस्वक् का कार २ रत्ती,लशुन स्वरस १ तो. कौर असली मधु १ तो. के साथ प्रातः सायं चाटकर ऊपर से गुड़ मिश्रित गांग के दुग्ध के दही का तोय (जल) पीने से वृक्कों में सिक्ताप्रमिरियों का निर्माण निःसंदेह रुंकता है।

(१०) वरुणत्वक के ५ तो. काढ़े में १ माशे सूर्यतापी लोह शिलाजीत और १ तो. गुड़ घोलकर नित्य प्रातः पीने से वृक्कों में सिक्तारमरी का निर्माण बंद होजाता है। इससे वृक्क स्थित अति पीड़ाकर बड़ी सिक्ताश्मरी भी मूल के साम घुलकर अनुलोग गित से शरीर से वाहर निकल जाती है।

— प्राणाचार्य पं. हपूं ल मिश्र B.A लायुर्वेद प्रवीण, आयुर्वेदाचार्य, रायपुर (म॰ प्र॰)

—पृष्ठ ३७४ का शेपांश —

वरण पंचांग तथा गोखक पंचाग दोनों म सेर, क्वाथार्थजल ६४ सेर शेप १६ सेर । इस क्वाथ से ययाविधि तैल सिद्ध कर वस्ति तथा आस्यापन द्वारा प्रयोग करावें। इसके प्रयोग से शकेंस, अश्यरी शूल तथा मूत्रकुन्छ नष्ट होता है।

[६६] शिलोदिमदादि तैल-तैल ४ सेर, पुननैवा तथा शतावरी का रस. १६ सेर। कल्कार्य-पापाणभेद, एरण्डमूल शालपणी मिलित १ सेर यथाविधि तैल सिद्ध कर दूध के साथ देने से मूत्रकृच्छादि रोग शांत होते हैं। मात्रा आधा तोले।

[१००] श्वदंप्ट्रादि लेप—गोखरू बीज, गोखरू की जड़, ककड़ी के बीज, इन्हें एकत्र कांजी में पीस कर वस्ति-स्थल पर लेप करने से शोध्न ही मूलाशाय से मूत्र बाहर निकल जाता है। इसमें कलमी शोरा मिलाकर लेप करने से और भी शोध्न मूत्र प्रवर्त्तान हो जाता है।

THE STATE OF THE

मृत्ररोग एवं प्रसेह पर उपयोगी प्रयोग

मेह वज रस (र. सा. सं.)—रस सिन्दूर, कान्तलोह भरम शतपुटी, शुद्ध शिलाजतु, स्वणं माक्षिक भरम. शुद्ध मनःशिला, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरं, बहेड़ा, आमला, वेल की जड़ की छाल या कच्चे वेल की गिरी, श्वेत जीरा, कैथ का गूदा, हल्दी समभाग ले, मस्मों को अलग खरल कर छान लें। दोनों को मिलाकर भांगरा के रस की २९ भावना देकर ४-४ रत्तीकी वटियां बना रखें। मात्रादि ९-२ वटियां। यह सब प्रमेह, अशक्ति, श्वास, उपसिष्टियता, चर्मरोग, श्वेतकुष्ठ, रक्तिवकृति क्रण, भगन्दर, अनुषयत्म, अनुजेता, योनिकण्डू नाशक।

महकेशरी रस (र. सा. सं.) वंग भस्म, स्वर्ण भस्म, कान्तनीह भस्म, रस सिन्दूर, मुक्तापिष्टी, वाल-चीनी, छोटी इलायची, नागकेशर सबकी समभाग लें। उचित रूप से खरल करें। घी कुमार के रस से ७ भाव-नायें दें। दो दो रत्ती की वटियां बना रखें। मात्रा एक वो बटी दूध से सेवन करें। मधुमेह में विल्वस्वरस, जामुन पत्र स्वरस या गिलीय. स्वरस से सेवन करें। यदि नाभ प्रतीत न हो तो करेला स्वरस १-१ तो. प्रतिदिन पिलावें। शुक्रमेह, मधुमेह, क्षय रोग, जीणं ज्वर, रक्तित्त कास, प्रतमक श्वास, रक्त वमन अशक्ति, प्रदर, योनिशैथिस्य अनुपश्यता और अनुजंता से उत्पन्न विकृतियां, धातुक्षय, वात संस्थान की निवंतता।

मधुनाणिनीवटी—शीतलचीनी ३ ग्राम, मेंथी का चूर्ण ६ ग्राम, गुड़मार चूर्ण ६ ग्राम, सूखा करेला ६ ग्राम, वेल- पत्रचूर्ण ६ ग्राम, नागरमोथा ६ ग्राम, त्रिकला ६ ग्राम, अश्वगंधा ६ ग्राम, हल्दी ६ ग्राम, गिलोय सत्व ६ ग्राम, त्रिकट ६ ग्राम, वंशलोचन ६ ग्राम छोटी इलायंची के दाने ३ ग्राम, रजत भर्म ३ ग्राम, अश्रक भरम, त्रिवङ्ग भरम, लोह भरम शतपुटी ६-६ ग्राम, शिलाजतु ३६ ग्राम, कुचला ३ ग्राम, लशुनकली ६ ग्राम, सबको खरल करें। फिर करेलापत्र स्वरस और बिल्वपत्र स्वरस से खरल कर ६-६ रत्ती की विटियां वनाए या रजतदल मदित करलें। मात्रा एक दो विटियां दूध से दशमूलाक से, अपामार्ग स्वरस या करेला स्वरस से दिन में १ वार सेवन करावें। साधारण रोग में लाधी, मात्रा या १ वटी दें। गम्भीर अवस्था में यसंत कुमुमाकर रस १ रत्ती प्रति मात्रा मिलाकर दें और

मामज्जघनवटी अनुयोग के रूप में दें। ७ दिनों बाद मूल परीक्षा करावें। मधुमेह, सर्व प्रमेह, स्वप्नदोप, अशक्ति, आलस्य, बहुमूत्र, इन्द्रिकण्डू, सन्यास,मूर्च्छानाशक है।

तुत्थरसांजन द्रव (व. स.) — उष्ण जल २ किलो, रसोत २ तोला, शुद्ध तूलिया ६ माशे, सबको घोलकर छान लें। कांच की पिचकारी से पेशाव की नली में घीरें-घीरे डालकर मूल मार्ग को स्वच्छ करलें। यदि रोग-का ज्ञान हो जाय आरम्भिक अवस्था में उपदंश-सुजाक, त्रण-मेह बौर फिरंग एक-दो बार के प्रयोग से ही ठीक हो जाते हैं। रेजन देने के बाद खाने की दवा भी दे देनी चाहिए। इक्त प्रकालन से जीवाणु विनाश हो जाते हैं। शूलशमन होजाती है ज्ञण भर जाते हैं। दाह दूर होजाती है मूलमार्ग खुल जाता है। फिरंग, इणमेह लिख्न त्रण।

उष्ण वात्र हो वटी—शिलाजतु ४ तोला, माजूफल, कत्या, विरोजासत्व, सफेद इलायची, राल, तालमखाना बीज, छोटे गोखक, कौड़ी भस्म, प्रवालिपच्टी, मोचरस, शित्लचीनी, सफेद चन्दन का बुरादा पापाण भेद प्रत्येक १-१ तोले चन्दन का तैल ६ माशे मिश्री १६ तोला। शिलाजीत चन्दन का तैल विरोजा सत को छोड़ कर सबको पीसकर पानी से खरल कर मिलाले फिर शेष तीनों द्रव्यों को मिलाकर ४-४ रत्ती की वटियां बना रखें मात्रा १-२ वटियां कच्चे दूध या शीतल जल से। सायं-प्रातः सुजाक, पूय दाह, मूत्ररोध, शूल शोष, व्रण क्षत पुरस्थ ग्रन्थि वृद्धि प्रमेह, स्वय्नप्रमेह।

पिताश्मरी हर वटी— शुद्ध शिलाजतु, गोखरू, शर-पुंखा, वरुणा की छाल, पापानभेद सब सम भाग लेकर खरल करें गोखरू स्वरस से ३ दिन मदंन कर ४-४ रत्ती की वटियां बना रखें। माना १-४ वटियां गोखरू पाचित दूध से सेवन करावें या ४ तोला गोमूत्र से दें। पिता-श्मरी, यक्कत विकार शूल शोध, मूत्र रोधा,।

> —श्री जगदम्वामसाद श्रीवास्तव ् पो. अरोल, कानपुर (उ० प्र०)

भूत्ररोग पर स्वानुभूत प्रयोग मूत्रकृष्ठ की दवा—

शीतल मिरच पीसकर दिन में ३-४ बार मर्बु के साथ लेनी है। शतबीविदि क्वाय दुग्ध सिद्ध हुये कलगी भीर

मृत कुमारी अकँ एवं छोटी दुवी,पीसकरः, तैयार रवर्षे । उशीरासव भी मंगवाना होगा ।

. मूलादरोध पर चूर्ण - इसमें गोक्षुर, पंचाज़ को दुग्ध सिद्धकर रीप्य महम १-१ रती से दें तो अश्वर्यजनक हो -फायदा होता है। साधारएं इप्टि से इसमें खण-को रात्रि में हुम्ब-पानी में भिगोक्र सुंबह उसकें साथ वनद्रमभा में कहरवा पिट्टी को हुद्वरिस शर्करा मिलाई हिनुपान ्से देने मात्र से ही दाह व कुच्छता वगैर नहीं रहते। है। ताट्यादि लीह चन्दनासन के साथ देते उहुने में यह जीर्ण मूत्रदाह वर्गर ठीक होते हैं कि वैसे भेरी निजी अनुभव ... प्रयोग इस प्रकार है-

कर्पूर कलमी सोरा स्वर्ण गैरिक मिसरी का बनाया हुआ योग हर मूत्ररोग में दाह कुन्छता मूत्राधात एवं मूबनली में बण व शोय सबमें हितकर है। इस प्रकार ्की व्याधिजग्य रोगी के लिए अपने यहां गोरस- कर्मठी ृ(गोल काकड़ी) नाम से प्रसिद्ध वेल की जड़ की ठडे पानी - में पीस छानकर- अजमोदादि - चूर्ण के साथ दें। यवृक्षार ४-६ रती वी में चटाकर ऊपर से गाय का ठंडा किया हुआ दूध की लस्सी दें और शीत जल पीना चाहिए। ् मुलभ रक्तपुननेवा घोटकर पिलानी चाहिए और मुनक्का े १०-१५ वीज निकालकर प्रवाल पिप्टी ४ रती के साथ पीसकर मधु मिला चटाते रहें। कीकर के विरछा ंकच्चाको कूटकर पूर्ण किया हुआ दो तो दुग्ध की लस्सी से दिलावें या गिलोय सत्त्व,६ रत्ती कुशा की जड़ का क्वाय कर चासनी बनाकर उसमें चटानें। घृत कुमारी ेकारस एवं कलमी सीरा मिलाकर रक्खें। १-१ तीला -. पानी से देवें।

प्रसेह की चिकित्सा कम में सर्गप्रथम उदर शुद्धि . का घ्यान रखना सावश्यक है चुंकि विशेषकर मलावरोध की चिकित्सा किये विना चिकित्सक सफल नहीं होते, कहा है जायन्ते विविधाः रोगाः प्रायणः मल संदयात् । जतः सवीत्रथम उसे खाने में घृत का प्रयोग कराने जिससे उसकी . कार्ते स्निग्ध हो जावे । वाद में उसे सूखे विरेचनीय जैसे इन्द्रायण की जड़ पसरकटाई नीम की छाल विरछा आदि का ववाय बनाकर दें और भोजन में खूब घी दिया जावे। पेहों की अलग चिकित्सा क्रम नं कर कफज प्रमेह की

चिक्तिमा में यही उपचार ठीक है। हरड़, हत्दी, अजमीद, चित्रक्मूल और लोधं—इनका हुण कर यद्य से दें। पित्तजमेह के लिये — नाग्रमोधा, एसं, चन्देन, शामलकी संबका चूंण कर शकरा मिला शीतल जल से पिलायें बीर जातज प्रमेह के लिए--णीशम और वर्वल की छाल कृट त्वे, इसमें कुटकी पील मिलाय, हींग गुढकर पीसी जाय, देने है भी विशेष फर्यदा होते देखा है। अथवा, मूलरोगों , गुहूची दूर्ण मुद्ध के साथ दीजें। वातजमह जड़ से खी - लीजें।

् सामान्य चिकित्सा प्रमेह की जो बीस प्रकार के प्रमेहों में देपयोगी है। त्रिकता चूर्ण मुबह शाम कीजें। शिला-जीत तो दूध में पीये । सितीपला तथा क्षीरी एला हिल्दी म्घु में चटाय दीजी।

इसके वुलावा वंग भस्म, वृगेश्वर, चन्द्रंप्रभा, चद्रो-द्यादि चूर्ण, गोक्षरादि चूर्ण, यटपंत्रधन वटी, बड़ के पीले प्ता को लेकर उन्हें कूटकर १६ गुने पानी में जबालकर बवाय कर छान ले बाद उस पानी की जुलाकर घन जी बचे उसकी वटी करके प्रयोग करें अनुपान दूध रहे। मूसली आदि पौष्टिक चूर्ण उनका प्रयोग कर सकता है। शतावरी घृत, अध्वगन्धा पाक, वृहत्पूर्णचन्द्ररस वसन्त कुसुमाकर शिवा रुटिका, चन्द्रप्रभा, लक्ष्मी विलास, मनमध रस वगैर बहुत औपध हैं।

—'आचार्य निरिञ्जिलाल शर्मा यैदा उपाध्यक्ष राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन जयपुर, प्रधान चिकित्सक श्री महेरवरी बायुर्वेदीय श्रीपधालय, मु पो॰ इस्लामंपुर (भूं भूतूं), राज॰

मूत्र प्रवाह की अनुभूत चिकित्सा हैमारे स्वर्गीय पितानह शतवंपीय पं० मन्तूलाल मिधा राजवैद्य निम्न औषधियों का प्रयोग करते में-

ी. पाषाण भेद, हजरत जंहर गुखरू छोटी, इन्द्र जब, वड़ी इलायची बीज, राजन १२-१२ ग्राम, मिन्नी २४ ग्राम सब बीपधियों को कूट कर वस्त्र से छान लें और ३ मात्रा बनाकर सुबह साम दूध से लें। ४० दिन के प्रयोग से मूत्र-प्रदाह पूर्ण रूप से अच्छा होता है।

र चन्दन का तैल १० बूद एक पाव भीतल जेल में निलाकर दोवहर को वीये। जलन में आराम तथा पेशाव जुनकर होता है।

PIGI ITUGATE

्रे गोक्षुर छोटी ५० ग्राम को कूटकर पानी आधा ्लीटर में पुक्र वे जिब ५० ग्राम रहे हत्व छानकर शहद ्मिला रोगी को पिलावें। मूत्रप्रदाह में तुरन्त लाभ होता है। सम्बन्धी अवयव या संस्थान में उपसर्ग, अवमरी या पीरूप ्रद्राग, साइकिल-पा स्कूटर की अधिक सवारी से बर्चे तथा ्यीतल पेयः (शर्वत नादि) दूधः भातः खिचड़ी ुरीवन करे। इन निष्यस माणिक्ये २०० मि० ग्रा०, मुक्ती शुक्ति भस्म ूपो ् विन्दकी ज़िला–फतेहपुर ः मीनन बार्ट्स कि कि कि कि कि

पहास्ता स्वाद्य all San and बहुमूत्र और सोम रोग

्रीबहुमूर्य को प्रमेह में बन्तर्गत जल प्रमेह कहा जा के गोंक्षुरादि गुग्गुल ४०० मि० ग्रा०। श्वेत पर्वेटी संकता है। परनेतु सोम रोग प्राय: स्वियों को ही कहा है। अठ० मि० ग्रा०। कारण इसे महेत न हैं। अतः सोम रोग स्त्री की जो बहु- कि सुवह, शाम दर्शादि ववार्थ के साथ दो बार लम्बे मूल है उसे कहा जाता है। 41 4 6 5 77 18 17 17 1

प्रातः १ गोली हेमनाथ रस अथवा बसन्तकुसुमाकर, मध् के साथ चाटकर ५० ग्राम गूलर फल का रस पीवें।

दोपहर केले का पुका फल एक, आमला के रस १२ ग्राम मधु ४ ग्राम मिधी १० ग्रा. गाय का दुग्ध १०० ग्रा., पुक्तित कर अवलेह की तरह चाट जावें।

रात में सोते समय-इस रोग में केला, आमला विदारीकरद, शतावर ताल वृक्ष के कन्द, खजूर पका, गाय हुग्ध, मधु, बंग भस्म उपयुक्त सौपधि हैं।

, औपसंगिक मेह (सुजाक)— १ गोली प्रातः कन्दर्परस (भै. र.) अनन्तमूल २ मांशा, यवकार १ माशा, नौसादर आधा माणा या त्रिफला, वधूल की गोंद या छाल, पीपर ः की छाल क्वाथ की बण में पिचकारी दें या कन्चे दुग्ध में जल मिश्री मिलाकर पीवें प्रांतः सायं। 💖

ै दोपहर—खाने के बाद ध्वेत पर्यटी (फिटकिरी सोरा समभाग की पपँटी बनावें) १ था. चूंणें (चूना) के नियरा जल पीये ४० सा.।

शामको - गंधा विरोजा (सत्व) वतासे में १० वृद देकर नित्य सेवन- वाद चन्दनासंव ४० ग्रा. खरावर जल सहित पान करे चमेली झिफला न्वाथ से पिचकारी धोने से जलन शांत होती है।

> - वैद्यरत द्वारका मिश्र आयुर्वेदाचार्य मंत्री-विहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन वैद्य सेवासंघ, ओड़ो (नवादा) बिहार

मूत्र कुच्छता एवं मूत्रावरोध

वृक्क, वृक्क गवीनी सीर मूलाशय आदि किसी भी मूल पथ्य-गर्म एवं मिर्च मसाला ।से वर्ने पदार्थी का , ग्रथि प्रदाह के कारण उक्त परेशानी हो सकती है। उपसर्ग होने पर-

ल वैद्यं वलिवहारी मिश्राएम अएट (इय) वायुर्वेद रतन अक्षर् मिर्णयान, दिन में दो बार सुवह शाम कि है है संगठन मंत्र-था भा आयु महासम्मेल्न (उ.प्र.)दिल्ली हिन्ह चन्दनासव १ तोला, जर्ल १ तोला दिन में दो बार

> किंटी बिस्मरी विने से कुछ बड़ी होने तक की अवस्था में---

ंसमयं तकं देने से अप्मरी कट कट कर वाहर था जाती है।

बहुत बड़ी अश्मरी और पौरुष ग्रन्थि बढ़ जाने पर शत्य क्रिया ही अन्तिम उपाय है।

🗓 . -वातज प्रमेह-- वातज प्रमेह में यह योग बहुत ही साण् गुणकारी पाया गया है—

्रवंबन्तकुस्माकर १२५ मि. ग्रा., गूलर पत्र स्वरस ७ माशा, जामुन पत्र स्वरस ७ माशा, शहद १० ग्रा. सुबह शाम दें।

पित्तज प्रमेह-प्रवाल भस्म २२५. मि. ग्रा., वंगभस्म २ ० मि. ग्राम, हरिद्राचूण आधा साशा--गाय या वकरी के दूध के साथ सुबह शाम देना चाहिए।

श्लेप्सज प्रमेह - चन्द्रप्रभा गोली पीस या आमल की ्रसायन १ तोला के साथ मिलाकर चटाना श्रेयस्कर है।

र मधुमेह- मधुमेह का ज्ञान होते हो प्रारंभिकावस्था में चिकित्सा गुरू करदेनी चाहिए। वर्गोकि द्वितीयावस्था में यह कष्टसाध्य होता तुआ असाध्यं स्थिति में पहुंचता है।

ताजे जामुन रोजाना खाने से यह प्रारम्भिक काल में ही समाप्त हो जाता है। जामुन का मौसम न होने या जामून उपलब्ध न होने की स्थित में निम्न योग

कुल फल देता है।

जामून की निरी २ मण दोनो वक्त जल है े

" उपद श

रसमाणिनय २०० मि.ग्रा., मुक्ताशुक्ति नस्म ४०० ्मि. गा., महा मंजिप्टादि वयाथ के साथ भीजन के बाद - शहद के साथ दें। मधुमेह में शकरा की ना दोनों वक्त द्वेना चाहिए।

मूव्रातिसार

बार-वार पेशव आने पर और अधिक पेशाव आने पर राई चूर्ण ४०० मि. ग्रा. और बङ्गभस्म २०० मि. ग्रा. दिन में दो या तीन बारं कई दिन देने से लाम दिखाई देता है। बच्चों को सोने में मूत्र त्याग करने की आदत में भी इस योग को शहप मात्रां (वयानुमार) में देने से अच्छा लाभ करता है।

> - कवि. ब्रजमोहन विशाप्ठ ए. एम. वी. एस. डी. एस-सी. ए., एम. ए. एम. एस. प्रधान चिकित्सक, राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, मन्नीवाली (श्रीगंगानगर)

अमूर्वता पर मेरा अनुभव

वारहसिंगा सींग, कलमी सोढा, समान भाग लेकर पहले बारहिंसगा सींग को शीतल जल से पिसे फिर उसमें कलमी सोडा मिलाकर नाभी पर लेप करे।

—मूत्रकृरक, मूत्रा घात एवं मूत्रावरोध पर— स्वर्ण बङ्ग २ रत्ती, वंग भस्म १ रत्ती, स्वर्ण मालिक भरम १ रत्ती, यह एक गात्रा है। ऐसे दिन में २ मात्रा प्रातः गाम शहद के साय दें।

चन्द्रप्रभावटी या चन्दनासः भोजनपरान्त दुग्ध या पानी से लेवें।

—वैद्य वद्रीनारायण शर्मा ग्राम-सायपुर तः जमवा रामगढ़ जि. जयपुर (राज.) ×

गधुमेहारि योग

लीह भर्म, नाग भरम वंग भस्म, १-१ तीला, अन्नक भस्म ४ तो., शुद्ध शिलाजीत ४ तो.. वासा, की फूलों की . ैं पर ६ तो सबको एकत्र मिलांकर नींवू के स्वरस से विक चरल करे और एक रत्ती की गोलियां बना

हों। १-३ गोली दिन में २ वार जल, गुड़मार रोगानुसार अनुपान के साथ दें। प्रमेह में घी, ही कम होती हैं।

- - ठाः गजाननसिंह भूवाल आत्मज सु ५राम ः आयुर्वेद विशारद, आयुर्वेदिक औपघालय, ले पोस्ट नवागढ़ त. वेमेंतरा जि. 🕫

मधुमेह चिकित्सा

सर्वे प्रथम साधारण विरेचन एवं मूत्र । शरीर को शुद्ध कर लेना आवश्यक है। तत्परन बौपधियों का प्रयोग निरन्तर बारम्भ कर देना .

- (१) करेले का सूखा चूण दतो., गृहमार का चूर्ण २ तो., जामुन की गुठली का चूर्ण णिलाजीत गुढ ३ तोला, गुढ अहिफेन ६ मागा, भस्म २ तोला, लोह भस्म १ तोला, सबको मी रस में घोंटकर ३-३ रत्ती की गोली वनावें। न दिन २ से ४ गोली प्रातः साय फीके दुग्ध के स. करें।
- (२) बसन्त कुसुमाकर रस १ रत्ती भिलाजी १ माशा प्रातःसायं करेला के १ औं सरस के ए जावे।
- (३) बन्द्रप्रभावटी १ ग्रा,, घुद्ध शिलाजीत त्रिवंग भस्म ९ रत्ती, २ मात्रा फीके दुग्ध सें प्रातः
- (४) यह एक आश्चयं जनक प्रयोग पूर्ण -इसे निम्न प्रकार से प्रयोग करे-निखालिस दूध का ३ किसी लें और उसे स्टील की याली में कर के बाद छोटी-२ चनकी काट कर २-४ दिन घूप कर उसका पाउडर वनालें और शीशी में रखलें। १ चम्मच पाउंडर सुवह शाम जत के साथ लेने में ही आफ्त्रयंजनक लाभ हो जादेगा । आवश्यक एफ-दो मास तक प्रयोग किया जा सकता है।

—वैद्य मिश्रीलाल गुप्त बाचार्य भारतीय मु. पो. आप्ट्रा जि. सीहोर